



जैन

भाजन

# Index

## अधिकार

देव	शास्त्र	गुरु	धर्म
तीर्थ	कल्याणक	महामंत्र	अध्यात्म
पं-दौलतराम-कृत	पं-भागचंद-कृत	पं-द्यानतराय-कृत	पं-सौभाग्यमल-कृत
पं-भूधरदास-कृत	पं-बुधजन-कृत	पं-मंगतराय-कृत	पं-न्यामतराय-कृत
पं-बनारसीदास-कृत	पं-ज्ञानानन्द-कृत	पं-नयनानन्द-कृत	पं-मख्खनलाल-कृत
पं-बुध-महाचन्द्र	सहजानन्द-वर्णी	पर्व	आदिनाथ-भगवान
नेमिनाथ-भगवान	पार्श्वनाथ-भगवान	महावीर-भगवान	बाहुबली-भगवान
दस-धर्म	बच्चों-के-भजन	मारवाड़ी	selected

# देव भजन



1) अंतर में आनंद आयो	2) अपना ही रंग मोहे
3) अभिनंदन--जगदानंदन	4) अरिहंत देव स्वामी शरण
5) अशरण जग में चंद्रनाथ जी	6) अशरीरी सिद्ध भगवान
7) आओ जिनमंदिर में आओ	8) आगया शरण तिहारी आगया
9) आज खुशी तेरे दर्शन की	10) आज मैं महावीर जी
11) आज हम जिनराज	12) आदिनाथ--जपलो रे आदीश्वर
13) आदिनाथ--देखो जी आदीश्वर	14) आया तेरे दरबार में
15) आये आये रे जिनंदा	16) आये तेरे द्वार
17) आयो आयो रे हमारो	18) एक तुम्हीं आधार हो
19) ओ जगत के शांति दाता	20) कभी वीर बनके
21) कर लो जिनवर का गुणगान	22) करता हूं तुम्हारा सुमिरन
23) करुणा सागर भगवान	24) कुंथुनाथ--कुंथुन के प्रतिपाल
25) केसरिया केसरिया	26) कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप
27) कैसी सुन्दर जिन प्रतिमा	28) कोई इत आओ जी
29) गंगा कल कल स्वर में	30) गा रे भैया
31) गाएँ जी गाएँ आदिनाथ	32) चंद्रनाथ--चंद्रानन

33) चंद्रनाथ--निरखत जिन चंद्रवदन	34) चरणों में आया हूं
35) चवलेश्वर पारसनाथ	36) चाँदनी फीकी पड़ जाए
37) चाह मुझे है दर्शन की	38) जपि माला जिनवर
39) जब कोई नहीं आता	40) जय जय जय जिनवर जी मेरी
41) जय बोलो त्रिशला के वीर	42) जयवंतो जिनबिम्ब
43) जिन ध्याना गुण गाना	44) जिन पूजन कर लो ये ही
45) जिन मंदिर में आके हम	46) जिनजी के दरश मिले
47) जिनदेव से कीनी जाने प्रीत	48) जिनवर की भक्ति करेगा
49) जिनवर की वाणी में म्हारो	50) जिनवर की होवे जय जयकार
51) जिनवर तू है चंदा तो	52) जिनवर दरबार तुम्हारा
53) जो पूजा प्रभु की रचाता	54) झीनी झीनी उडे रे
55) तिहारे ध्यान की मूरत	56) तुझे प्रभु वीर कहते हैं
57) तुम जैसा मैं भी	58) तुमसे लागी लगन
59) तुम्हारे दर्श बिन स्वामी	60) तुम्ही हो ज्ञाता
61) तू ज्ञान का सागर है	62) तेरी परम दिगंबर मुद्रा को
63) तेरी शांत छवि	64) तेरी शीतल शीतल मूरत
65) तेरी सुंदर मूरत	66) तेरे दर्शन को मन
67) तेरे दर्शन से मेरा	68) त्रिशला के नन्द तुम्हें
69) दया करो भगवन् मुझपर	70) दयालु प्रभु से दया

71) दरबार तुम्हारा मनहर है	72) दिन रात स्वामी तेरे गीत
73) धन्य धन्य आज घड़ी	74) ध्यान धर ले प्रभू को
75) ना जिन द्वार आये ना	76) नाथ तुम्हारी पूजा
77) नाम तुम्हारा तारणहारा	78) निरखी निरखी मनहर
79) निरखो अंग अंग	80) नेमि जिनेश्वर
81) नेमिनाथ--नेमिप्रभू की श्यामवरन	82) पंचपरम परमेष्ठी
83) पद्मप्रभु--पद्मसद्म	84) पारसनाथ--पारस प्यारा लागो
85) पारसनाथ--पारस प्रभु का	86) पारसनाथ--पार्श्व प्रभुजी पार
87) पारसनाथ--मेरे प्रभु का पारस	88) प्रभु दर्शन कर जीवन की
89) प्रभु हम सब का एक	90) प्रभुजी अब ना भटकेंगे
91) प्रभुजी मन मंदिर में आओ	92) बाहुबली भगवान
93) भगवान मेरी नैया उस	94) भटके हुए राही को
95) भावना की चूनरी	96) मंगल थाल सजाकर
97) मन ज्योत जला देना प्रभु	98) मन तड़फत प्रभु दरशन
99) मन भाये चित हुलसाये	100) मनहर तेरी मूरतियाँ
101) मनहर मूरत जिनन्द निहार	102) महाराजा स्वामी
103) महावीर--एक बार आओ जी	104) महावीर--मस्तक झुका के
105) महावीर स्वामी	106) मिलता है सच्चा सुख
107) मूरत है बनी प्रभु की प्यारी	108) मेरे मन मंदिर में आन

109) मेरे सर पर रख दो	110) मैं करूँ वंदना तेरी
111) मैं तेरे ढिंग आया रे	112) मैं ये निर्ग्रथ प्रतिमा
113) म्हारा आदीश्वर जी	114) रंग दो जी रंग जिनराज
115) रंगमा रंगमा	116) रोम रोम पुलकित हो जाये
117) रोम रोम में नेमिकुंवर के	118) रोम रोम से निकले
119) लिया प्रभू अवतार जयजयकार	120) वर्तमान को वर्धमान की
121) वर्धमान ललना से	122) वासुपूज्य--जय जिन वासुपूज्य
123) वीतरागी देव	124) वीर प्रभु के ये बोल
125) शौरीपुर वाले	126) श्री अरहंत सदा मंगलमय
127) श्री अरिहंत छवि लखिके	128) श्री जिनवर पद ध्यावें जे
129) सच्चे जिनवर सच्चे सारे	130) सांची कहें तोहरे दर्शन से
131) सुरपति ले अपने शीश	132) स्वर्ग से सुंदर अनुपम
133) हम यही कामना करते हैं	134) हरो पीर मेरी
135) हे जिन तेरे मैं शरणै	136) हे जिन मेरी ऐसी बुधि
137) हे ज्ञान सिन्धु भगवान	138) हे प्रभो चरणों में
139) हे वीर तुम्हारे द्वारे पर	140) है कितनी मनहार बहती

## शास्त्र भजन



1) अमृतझार झुरि झुरि आवे	2) इतनी शक्ति हमें देना माता
3) ओंकारमयी वाणी तेरी	4) करता हूं मैं अभिनंदन
5) चरणों में आ पड़ा हूं	6) जब एक रत्न अनमोल
7) जिन बैन सुनत मोरी	8) जिनवर की वाणी से
9) जिनवर चरण भक्ति वर गंगा	10) जिनवाणी अमृत रसाल
11) जिनवाणी को नमन करो	12) जिनवाणी जग मैया
13) जिनवाणी माँ आपका शुभ	14) जिनवाणी माँ जिनवाणी माँ
15) जिनवाणी माँ तेरे चरण	16) जिनवाणी माता दर्शन की
17) जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि	18) जिनवाणी मोक्ष नसैनी है
19) जिनवानी जान सुजान	20) तू कितनी मनहर है
21) धन्य धन्य जिनवाणी माता	22) धन्य धन्य वीतराग वाणी
23) नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी	24) परम उपकारी जिनवाणी
25) प्राणां सूं भी प्यारी लागे	26) भवदधि तारक नवका जगमाहीं
27) मंगल बेला आई आज श्री	28) मन भाया, तेरे दर आया
29) महिमा है अगम	30) माँ जिनवाणी ज्ञायक बताय
31) माँ जिनवाणी तेरो नाम	32) माँ जिनवाणी बसो हृदय में
33) माता तू दया करके	34) मीठे रस से भरी जिनवाणी
35) म्हारी माँ जिनवाणी	36) ये शाश्वत सुख का प्याला
37) वीर हिमाचल तें निकसी	38) शरण कोई नहीं जग में

39) शांती सुधा बरसाये	40) शास्त्रों की बातों को मन
41) सांची तो गंगा	42) सारद तुम परसाद तैं
43) सीमंधर मुख से	44) सुन जिन बैन श्रवन सुख
45) सुन सुन रे चेतन प्राणी	46) हम लाए हैं विदह से
47) हमें निज धर्म पर चलना	48) हे जिनवाणी माता तुमको
49) हे शारदे माँ	

## गुरु भजन

ॐ

1) उड़ चला पंछी रे	2) ऐसा योगी क्यों न अभयपद
3) ऐसे मुनिवर देखें	4) ऐसे साधु सुगुरु कब
5) कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु	6) गुरु निर्गन्ध परिग्रह त्यागी
7) गुरु रत्नत्रय के धारी	8) गुरु समान दाता नहिं
9) गुरुवर तुम बिन कौन	10) धनि हैं मुनि निज आतमहित
11) धन्य धन्य हे गुरु गौतम	12) धन्य मुनिराज हमारे हैं
13) धन्य मुनीश्वर आतम हित में	14) नित उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ
15) निर्गथों का मार्ग	16) परम गुरु बरसत ज्ञान झरी
17) परम दिगम्बर मुनिवर देखे	18) परम दिगम्बर यती
19) मुनि दीक्षा लेके जंगल में	20) मुनिवर आज मेरी कुटिया में
21) मुनिवर को आहार	22) मैं परम दिगम्बर साधु

23) मोक्ष के प्रेमी हमने	24) म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर
25) म्हारे आंगणे में आये मुनिराज	26) वनवासी सन्तों को नित ही
27) वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी	28) वेष दिगम्बर धार
29) शान्ति सुधा बरसा गये	30) शुद्धात्म तत्व विलासी रे
31) श्री मुनि राजत समता संग	32) संत साधु बन के विचर्ण
33) सम आराम विहारी साधुजन	34) सिद्धों की श्रेणी में आने वाला
35) हे परम दिगम्बर यति	36) हे परम दिगम्बर मुद्रा जिनकी
37) होली खेलें मुनिराज शिखर	

## धर्म भजन



1) आजा अपने धर्म की तू राह में	2) आप्त आगम गुरुवर
3) जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व	4) जय जिनेन्द्र बोलिए
5) जिनशासन बड़ा निराला	6) जैन धर्म के हीरे मोती
7) बडे भाग्य से हमको मिला जिन धर्म	8) भावों में सरलता रहती है
9) मैं महापुण्य उदय से जिनधर्म	10) ये धरम है आतम ज्ञानी का
11) ये धर्म हमारा है हमें	12) लहर लहर लहराये केसरिया झंडा
13) लहराएगा लहराएगा झंडा	14) श्रीजिनधर्म सदा जयवन्त
15) सब जैन धर्म की जय बोलो	16) हर पल हर क्षण हर दम

# तीर्थ भजन

ॐ

1) आज गिरिराज निहारा	2) ऊंचे ऊंचे शिखरों वाला 1
3) ऊंचे ऊंचे शिखरों वाला 2	4) ऊंचे शिखरों पे बसा है
5) गगन मंडल में उड़ जाऊं	6) चलो सब मिल सिधगिरी
7) चांदखेड़ी ले चालो जी सांवरिया	8) जहाँ नेमी के चरण पढ़े
9) जीयरा...जीयरा...जीयरा	10) नमो आदीश्वरम
11) नर तन रतन अमोल	12) पूजा पाठ रचाऊँ मेरे बालम
13) मधुबन के मंदिरों में	14) रे मन भज ले प्रभु का नाम
15) विश्व तीर्थ बड़ा प्यारा	16) सम्मेद शिखर पर मैं जाऊंगा
17) सांवरिया पारसनाथ शिखर पर	

# कल्याणक भजन

ॐ

1) आज जन्मे हैं तीर्थकर	2) आज तो बधाई राजा नाभि
3) आज नगरी में जन्मे आदिनाथ	4) आनंद अंतर मा आज न समाय
5) आनंद अवसर आज सुरगण	6) आया पंच कल्याणक महान 2
7) आया पंच कल्याणक महान	8) आयो आयो पंचकल्याणक भविजन
9) इन्द्र नाचे तेरी भक्ति में	10) उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान चुनरियाँ

11) कल्पद्रुम यह समवसरण है	12) कुण्डलपुर में वीर हैं जन्मे
13) कुण्डलपुर वाले वीरजी	14) गर्भ कल्याणक आ गया
15) गावो री बधाईयां	16) गिरनारी पर तप कल्याणक
17) घर घर आनंद छायो	18) चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी
19) छायो रे छायो आनंद छायो	20) जन्म लिया है महावीर ने
21) जहाँ महावीर ने जन्म लिया	22) जागो जी माता जागन घड़ियाँ
23) जूनागढ़ में सज गए	24) झुलाय दइयो पलना
25) झूल रहा पलने में वामा दुलारा	26) तेरे पांच हुये कल्याण प्रभु
27) दिन आयो दिन आयो	28) दिव्य ध्वनि वीरा खिराई
29) देखा मैंने त्रिशला का लाल	30) नाचे रे इन्द्र देव
31) पंखिड़ा तू उड़ के जाना स्वर्ग	32) पंखिडा रे उड़ के आओ कुण्डलपुर
33) पंखिडा रे उड़ के आओ शोरीपुर	34) पंचकल्याण मनाओ मेरे साथी
35) पालकी उठाने का हमें अधिकार है	36) बधाई आज मिल गाओ
37) बाजे कुण्डलपुर में बधाई	38) मंगल ये अवसर आंगण
39) मणियों के पलने में स्वामी	40) महावीरा झूले पलना
41) माता थारी परिणति तत्त्वमयी	42) मेरा पलने में
43) मेरे महावीर झूले पलना	44) मोरी आली आज बधाई गाईयाँ
45) म्हारे आंगण आज आई	46) ये महामहोत्सव पंच कल्याणक
47) रोम रोम में नेमिकुंवर के	48) लिया प्रभू अवतार जयजयकार

49) लिया रिषभ देव अवतार

50) विषयों की तृष्णा को छोड़

51) सुरपति ले अपने शीश

52) स्वागत करते आज तुम्हारा

53) हो संसार लगने लगा अब

## महामंत्र भजन



1) करना मन ध्यान महामंत्र	2) जप जप रे नवकार मंत्र
3) जप ले मंत्र सदा नवकार	4) जय जय जय कार परमेष्ठी
5) जो मंगल चार जगत में हैं	6) णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं
7) णमोकार नाम का ये कौन मंत्र	8) णमोकार मंत्र
9) णमोकार मन्त्र को प्रणाम हो	10) नमन हमारा अरिहंतों को
11) नवकार मंत्र रागों में	12) पंच परम परमेष्ठी देखे
13) बने जीवन का मेरा आधार रे	14) मंत्र जपो नवकार मनुवा
15) मंत्र नवकार हमें प्राणों से प्यारा	16) मंत्र नवकारा हृदय में धर
17) महामंत्र णमोकार की रचना	18) म्हारा पंच प्रभु भगवान
19) ये तो सच है कि नवकार	20) श्री अरिहंत सदा मंगलमय
21) समरो मन्त्र भलो नवकार	

## अध्यात्म भजन



1) अध्यात्म के शिखर पर

2) अपना करना हो कल्याण

3) अपनी सुधि पाय आप	4) अपने घर को देख बावरे
5) अपने में अपना परमात्म	6) अब गतियों में नाहीं रुलेंगे
7) अब मेरे समकित सावन	8) अब हम अमर भये
9) अरे मोह में अब ना	10) आ तुझे अंतर में शांति मिलेगी
11) आओ झूलें मेरे चेतन	12) आओ रे आओ रे ज्ञानानंद की
13) आज खुशी है आज खुशी है	14) आज सी सुहानी
15) आत्म अनुभव आवै	16) आत्म अनुभव करना रे भाई
17) आत्म अनुभव कीजै हो	18) आत्म जानो रे भाई
19) आत्मरूप अनूपम है	20) आत्मरूप सुहावना
21) आत्म चिंतन का ये समय	22) आत्मा अनंत गुणों का धनी
23) आत्मा हूँ आत्मा हूँ आत्मा	24) आनंद स्रोत बह रहा
25) आया कहां से	26) आर्जव--काहे पाप करे काहे छल
27) इस नगरी में किस विधि	28) उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान
29) ऐ आत्म है तुझको नमन	30) ऐसे जैनी मुनिमहाराज
31) ऐसो नरभव पाय गंवायो	32) ओ जाग रे चेतन जाग
33) ओ जाननहारे जान जगत है	34) ओ जीवड़ा तू थारी
35) ओ प्यारे परदेशी पन्छी	36) कंकड़ पत्थर गले लगाए
37) कबधौं सर पर धर डोलेगा	38) कबै निरग्रंथ स्वरूप धरूंगा
39) कर कर आत्महित रे	40) करलो आत्म ज्ञान परमात्म

41) कहा मान ले ओ मेरे भैया	42) कहा मानले ओ मेरे भैया
43) कहाँ तक ये मोह के अंधेरे	44) किसको विपद सुनाऊँ हे नाथ
45) कृत पूरब कर्म मिटे	46) केवलिकन्ये वाङ्मय
47) कैसो सुंदर अवसर आयो है	48) कोई राज महल में रोए
49) कोई लाख करे चतुराई	50) कौलो कहूँ स्वामी बतियाँ
51) क्या तन माझना रे	52) क्यूँ करे अभिमान जीवन
53) क्षणभंगुर जीवन है पगले	54) गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार
55) गुरुवर जो आपने बताया	56) घटमें परमात्म ध्याइये
57) चंद दिनों का जीना रे जिवड़ा	58) चतुर नर चेत करो भाई
59) चन्द क्षण जीवन के तेरे	60) चन्द्रगुप्त राजा के सोलह स्वप्न
61) चलता चल भाई मोक्षमार्ग	62) चलो रे भाई अपने वतन
63) चेतन अपनो रूप निहारो	64) चेतन चेत बुढ़ापो आयो रे
65) चेतन जाग रे	66) चेतन तूँ तिहुँ काल अकेला
67) चेतन नरभव ने तू पाकर	68) चेतन है तू ध्रुव
69) चेतना लक्षणम् आनंद	70) चेतो चेतन निज में आओ
71) चैतन्य मेरे निज ओर चलो	72) जगत में सम्यक उत्तम
73) जन्म जन्म तन धरने	74) जब चले आत्माराम
75) जहां सत्संग होता है	76) जानत क्यों नहिं रे

77) जाना नहीं निज आत्मा ज्ञानी	78) जायें तो जायें कहाँ ढूँढ
79) जिंदगी में घड़ी यह सुहानी	80) जिंदगी रत्न अनमोल है
81) जिया कब तक उलझेगा	82) जीव! तू भ्रमत सदैव
83) जीव तू समझ ले आत्म	84) जीवन के किसी भी पल में
85) जीवन के परिनामनि की	86) जीवड़ा सुनत सुणावत इतरा
87) जैन धरम के हीरे मोती	88) जो अपना नहीं उसके अपनेपन
89) जो आज दिन है वो	90) जो इच्छा का दमन
91) जो जो देखी वीतराग	92) ज्ञानमय ओ चेतन तुझे
93) ज्ञानी का धन ज्ञान	94) तन पिंजरे के अन्दर बैठा
95) तू जाग रे चेतन देव	96) तू जाग रे चेतन प्राणी
97) तू निश्चय से भगवान	98) तू ही शुद्ध है तू ही
99) तेरे अंतर में भगवान है	100) तोड़ विषयों से मन
101) तोरी पल पल	102) तोड़ दे सारे बंधन सदा के लिए
103) थाने सतगुरु दे समझाय	104) थोड़ा सा उपकार कर
105) दिवाली--अबके ऐसी दीवाली	106) देख तेरी पर्याय की हालत
107) देखा जब अपने अंतर को	108) देखो भाई आत्मराम
109) देखोजी प्रभु करमन की	110) धन धन जैनी साधु
111) धनि ते प्रानि जिनके	112) धन्य धन्य है घड़ी आज
113) धिक धिक जीवन	114) धोली हो गई रे काली कामली

115) नर तन को पाकर के	116) निजरूप सजो भवकूप तजो
117) नेमिनाथ--नेमि पिया राजुल	118) परणति सब जीवन
119) परम गुरु बरसत ज्ञान झरी	120) परिग्रह डोरी से झूठ
121) परिणामों से मोक्ष प्राप्त हो	122) पल पल बीते उमरिया
123) पाना नहीं जीवन को	124) पाप मिटाता चल ओ बंधू
125) पावन हो गई आज ये धरती	126) पीजे पीजे रे चेतनवा पानी
127) पुद्गल का क्या विश्वासा	128) प्यारे काहे कूं ललचाय
129) प्रभु पै यह वरदान	130) प्रभु शांत छवि तेरी
131) बेला अमृत गया आलसी सो रहा	132) भगवंत भजन क्यों
133) भरतजी घर में ही वैरागी	134) भला कोई या विध मन
135) भले रूठ जाये ये सारा	136) भले रूठ जाये ये सारा
137) भव भव के दुखड़े हजार	138) भूल के अपना घर
139) मतवाले प्रभु गुण गाले	140) मन महल में दो
141) ममता की पतवार ना तोड़ी	142) ममता तू न गई मोरे
143) माया में फँसे इंसान	144) मार्दव--मान न कीजिये हो
145) मितवा रे सुवरण अवसर	146) मुझे है स्वामी उस बल
147) मुसाफिर क्यों पड़ा सोता	148) मेरा आज तलक प्रभु
149) मेरे शाश्वत शरण	150) मैं ऐसा देहरा बनाऊं
151) मैं क्या माँगू भगवान	152) मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं

153) मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी हूं	154) मैं निज आतम कब
155) मैं राजा तिहुं लोक का	156) मैं हूँ आतमराम
157) मैनासुंदरी कहे पिता से	158) मोको कहाँ द्वंदें बन्दे
159) मोक्ष पद मिलता है धीरे धीरे	160) मोह की महिमा देखो
161) मोहे भावे न भैया थारो देश	162) म्हारा चेतन ज्ञानी घणो
163) यही इक धर्ममूल है	164) या संसार में कोई सुखी
165) ये प्रण है हमारा	166) ये शाश्वत सुख का प्याला
167) ये सर्वसृष्टि है नाट्यशाला	168) लुटेरे बहुत देखे हैं
169) विराजै रामायण घटमाहिं	170) वीर जिनेश्वर अब तो मुझको
171) वीर भज ले रे भाया	172) शुद्धात्मा का श्रद्धान
173) शौच--मूंजी धरी रहेली	174) संसार महा अघसागर
175) संसार में सुख सर्वदा	176) सजधज के जिस दिन
177) सन्त निरन्तर चिन्तत	178) सब जग को प्यारा
179) समकित सुंदर शांति अपार	180) समझ आत्मा के स्वरूप को
181) समझ मन स्वारथ का संसार	182) सहजानन्दी शुद्ध स्वभावी
183) साधना के रास्ते आत्मा के	184) सिद्धों से मिलने का मार्ग
185) सुन चेतन ज्ञानी क्यों	186) सुन रे जिया चिरकाल गया
187) सुन ले ओ भोले प्राणी	188) सुन सतगुरु की सीख
189) सुमर सदा मन आतमराम	190) सोते सोते ही निकल

191) स्वारथ का व्यवहार जग	192) हठ तजो रे बेटा हठ
193) हम अगर वीर वाणी	194) हम आतम ज्ञानी हम भेद
195) हम न किसीके कोई न हमारा	196) हमने तो घूमीं चार गतियाँ
197) हूँ स्वतंत्र निश्चल	198) हे चेतन चेत जा अब तो
199) हे परमात्मन तुझको पाकर	200) हे भविजन ध्याओ आत्मराम
201) हे मन तेरी को कुटेव यह	202) हे सीमंधर भगवान शरण
203) होली--जे सहज होरी के	

## पं दौलतराम कृत भजन



1) अपनी सुधि भूल आप	2) अब मोहि जानि परी
3) अभिनंदन--जगदानंदन	4) अरिरजरहस हनन प्रभु
5) अरे जिया जग धोखे	6) आज गिरिराज निहारा
7) आज मैं परम पदारथ	8) आतम रूप अनूपम अद्भुत
9) आदिनाथ--चलि सखि देखन	10) आदिनाथ--जय श्री क्रष्ण
11) आदिनाथ--देखो जी आदिश्वर	12) आदिनाथ--निरख सखी क्रष्णिन
13) आदिनाथ--भज क्रष्णिपति	14) आदिनाथ--मेरी सुध लीजै
15) आप भ्रमविनाश आप	16) आपा नहिं जाना तूने
17) उरग सुरग नरईश शीस	18) ऐसा मोही क्यों न अधोगति
19) ऐसा योगी क्यों न अभयपद	20) और अबै न कुदेव सुहावै

21) और सबै जगद्वन्द	22) कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु
23) कुंथुनाथ--कुंथुन के प्रतिपाल	24) कुमति कुनारि नहीं है भली
25) गुरु कहत सीख इमि	26) घड़ि घड़ि पल पल
27) चंद्रनाथ--चंद्रानन	28) चंद्रनाथ--निरखत जिन चंद्रवदन
29) चंद्रनाथ--निरखि जिनचन्द री	30) चित चिंतकैं चिदेश
31) चिदराय गुण मुनो सुनो	32) चिन्मूरत दग्धारी की
33) चेतन अब धरि सहज	34) चेतन कौन अनीति गही
35) चेतन तैं यौं ही भ्रम	36) चेतन यह बुधि कौन सयानी
37) छाँडत क्यों नहिं रे नर	38) छांडत क्यौं नहिं रे
39) छांडि दे या बुधि भोरी	40) जबतैं आनंदजननि दृष्टि
41) जम आन अचानक दाकेगा	42) जय जग भरम तिमिर हरन
43) जाऊँ कहाँ तज शरन	44) जिन बैन सुनत मोरी
45) जिन राग द्वेष त्यागा	46) जिनवर आनन भान
47) जिनवानी जान सुजान	48) जिया तुम चालो अपने
49) जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ	50) ज्ञानी जीव निवार भरमतम
51) तुम सुनियो श्रीजिननाथ	52) तोहि समझायो सौ सौ
53) त्रिभुवन आनंदकारी जिन	54) थारा तो बैनामें सरधान
55) धन धन साधर्मजिन मिलन	56) धनि मुनि जिन यह

57) धनि मुनि जिनकी लगी	58) धनि हैं मुनि निज आतमहित
59) ध्यानकृपान पानि गहि नासी	60) न मानत यह जिय निपट
61) नमिनाथ--अहो नमि जिनप	62) नाथ मोहि तारत क्यों ना
63) निजहितकारज करना	64) नित पीज्यौ धी धारी
65) निरख सुख पायो जिनमुख	66) नेमिनाथ--नेमिप्रभू की श्यामवरन
67) नेमिनाथ--लाल कैसे जावोगे	68) पद्मप्रभु--पद्मसद्म
69) पारसनाथ--पारस जिन चरन निरख	70) पारसनाथ--पास अनादि अविद्या
71) पारसनाथ--वामा घर बजत बधाई	72) पारसनाथ--सांवरिया के नाम
73) प्यारी लागै म्हाने जिन छवि	74) प्रभु थारी आज महिमा जानी
75) भविन सरोरुहसूर	76) मत कीजो जी यारी यह
77) मत कीज्यो जी यारी धिन	78) मत राचो धीधारी भव रंभ
79) मनवचतन करि शुद्ध	80) महावीर--जय शिव कामिनि
81) महावीर--जय श्री वीर जिन	82) महावीर--जय श्री वीर जिनेन्द्र
83) महावीर--वंदों अद्भुत चन्द्र वीर	84) महावीर--सब मिल देखो हेली
85) महावीर--हमारी वीर हरो भवपीर	86) मान ले या सिख मोरी
87) मानत क्यों नहिं रे हे नर	88) मेरे कब हैं वा
89) मैं आयौ जिन शरन तिहारी	90) मैं भाखूं हित तेरा सुनि हो
91) मोहि तारो जी क्यों ना	92) मोहिड़ा रे जिय हितकारी
93) मोही जीव भरमतम ते नहि	94) राचि रह्यो परमाहिं

95) लखो जी या जिय भेरे	96) वासुपूज्य--जय जिन वासुपूज्य
97) विषयोंदा मद भानै ऐसा	98) शांतिनाथ--वारी हो बधाई या
99) शिवपुर की डगर समरस	100) सुधि लीज्यो जी म्हारी
101) सुनि जिन बैन श्रवन सुख	102) सुनो जिया ये सतगुरु
103) सौ सौ बार हटक नहिं	104) हम तो कबहुँ न निज गुन
105) हम तो कबहुँ न निज घर	106) हम तो कबहुँ न हित उपजाये
107) हे जिन तेरे मैं शरणै	108) हे जिन तेरो सुजस
109) हे जिन मेरी ऐसी बुधि	110) हे नर भ्रम नींद क्यों न
111) हे मन तेरी को कुटेव यह	112) हे हितवांछक प्रानी रे
113) हो तुम त्रिभुवन तारी	114) हो तुम शठ अविचारी जियरा
115) होली--ज्ञानी ऐसे होली मचाई	116) होली--मेरो मन ऐसी खेलत

## पं भागचंद कृत भजन

ॐ

1) अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि	2) अहो यह उपदेश माहीं
3) आकुल रहित होय इमि	4) आतम अनुभव आवै
5) आवै न भोगन में तोहि	6) ऐसे जैनी मुनिमहाराज
7) ऐसे विमल भाव जब पावै	8) ऐसे साधु सुगुरु कब
9) करो रे भाई तत्त्वारथ	10) चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी
11) जिन स्व पर हिताहित चीना	12) जीव! तू भ्रमत सदैव

13) जीवन के परिनामनि की	14) जे दिन तुम विवेक बिन
15) ज्ञानी जीवनि के भय होय	16) तुम परम पावन देख जिन
17) धन धन जैनी साधु	18) धनि ते प्रानि जिनके
19) धन्य धन्य है घड़ी आज	20) परणति सब जीवन
21) प्रभु पै यह वरदान	22) महिमा है अगम
23) मार्दव--मान न कीजिये हो	24) यह मोह उदय दुख पावै
25) यही इक धर्ममूल है	26) श्री मुनि राजत समता संग
27) सन्त निरन्तर चिन्तत	28) सफल है धन्य धन्य वा
29) सम आराम विहारी साधुजन	30) सुमर सदा मन आत्मराम
31) होली--जे सहज होरी के	

## पं द्यानतराय कृत भजन

ॐ

1) अब मोहे तार लेहु महावीर	2) अब हम अमर भये
3) अब हम आत्म को पहिचान्यौ	4) अब हम नेमिजी की शरन
5) अरहंत सुमर मन बावरे	6) अहो भवि प्रानी चेतिये हो
7) आत्म अनुभव करना रे भाई	8) आत्म अनुभव कीजिये यह
9) आत्म अनुभव कीजै हो	10) आत्म अनुभव सार हो
11) आत्म काज सँवारिये	12) आत्म जान रे जान रे जान

13) आतम जानो रे भाई	14) आत्मरूप अनूपम है
15) आत्मरूप सुहावना	16) आदिनाथ--भज श्रीआदिचरन
17) आपा प्रभु जाना मैं जाना	18) आरति कीजै श्रीमुनिराज की
19) आरती--करौं आरती वर्द्धमान	20) आरती--मंगल आरती आत्मराम
21) आरती--मंगल आरती कीजे भोर	22) आरती श्रीजिनराज तिहारी
23) ऐसो सुमिरन कर मेरे भाई	24) कर कर आत्महित रे
25) कर मन निज आत्म चिंतौन	26) कर मन वीतराग को ध्यान
27) कर रे तू आत्म हित	28) कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी
29) कहत सुगुरु करि सुहित	30) कहिवे को मन सूरमा
31) काया तेरी दुख की ढेरी	32) कारज एक ब्रह्महीसेती
33) काहे को सोचत अति भारी	34) किसकी भगति किये हित
35) क्षमा--काहे क्रोध करे	36) क्षमा--क्रोध कषाय न मैं
37) क्षमा--सबसों छिमा छिमा कर	38) गलता नमता कब आवैगा
39) गहु सन्तोष सदा मन	40) गुरु समान दाता नहिं
41) घटमें परमात्म ध्याइये	42) चेतन नागर हो तुम चेतो
43) चेतन प्राणी चेतिये हो	44) जग में प्रभु पूजा सुखदाई
45) जगत में सम्यक उत्तम	46) जब बानी खिरी महावीर
47) जानत क्यों नहिं रे	48) जानो धन्य सो धन्य सो धीर
49) जानौं पूरा ज्ञाता सोई	50) जिन नाम सुमर मन बावरे

51) जिनके हिरदै प्रभुनाम नहीं	52) जिनवरमूरत तेरी शोभा
53) जीव तैं मूढ़पना कित पायो	54) जो तैं आतमहित नहिं कीना
55) ज्ञान का राह दुहेला रे	56) ज्ञान का राह सुहेला रे
57) ज्ञान को पंथ कठिन है	58) ज्ञान ज्ञेयमाहिं नाहि ज्ञेय
59) ज्ञान बिना दुख पाया रे	60) ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै
61) ज्ञानी जीव दया नित पालै	62) तुम प्रभु कहियत दीनदयाल
63) तुमको कैसे सुख है मीत	64) तू जिनवर स्वामी मेरा
65) तू तो समझ समझ रे	66) दरसन तेरा मन भाये
67) देखे जिनराज आज राजऋद्धि	68) देखे सुखी सम्यकवान
69) देखो भाई आतमराम	70) देखो भाई श्रीजिनराज विराजै
71) देख्या मैंने नेमिजी प्यारा	72) धनि ते साधु रहत वनमाहीं
73) धनि धनि ते मुनि गिरी	74) धिक धिक जीवन
75) परम गुरु बरसत ज्ञान झरी	76) प्रभु तेरी महिमा किहि
77) प्राणी आतमरूप अनूप है	78) प्राणी लाल छांडो मन चपलाई
79) प्रानी ये संसार असार है	80) भजि मन प्रभु श्रीनेमि को
81) भाई अब मैं ऐसा जाना	82) भाई कहा देख गरवाना रे
83) भाई कौन कहै घर मेरा	84) भाई कौन धरम हम पालें
85) भाई जानो पुद्गल न्यारा रे	86) भाई ज्ञान बिना दुख पाया रे
87) भाई ज्ञानी सोई कहिये	88) भाई ब्रह्म विराजै कैसा

89) भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे	90) भैया सो आतम जानो रे
91) भोर भयो भज श्रीजिनराज	92) भ्रम्यो जी भ्रम्यो संसार महावन
93) मगन रहु रे शुद्धात्म में	94) मन मेरे राग भाव निवार
95) महावीर जीवाजीव छीर नीर	96) मानुषभव पानी दियो जिन
97) मेरे घट ज्ञान घनागम	98) मेरे मन कब है है बैराग
99) मैं निज आतम कब	100) मोहि कब ऐसा दिन आय
101) राम भरतसों कहैं सुभाइ	102) राम सीता संवाद
103) रे जिय क्रोध काहे करै	104) रे जिय जनम लाहो लेह
105) रे जिय भजो आतमदेव	106) रे भाई करुना जान रे
107) रे भाई मोह महा दुखदाता	108) रे मन भज भज दीन दयाल
109) लागा आत्मराम सों नेहरा	110) वे कोई निपट अनारी
111) शौच--जियको लोभ महा	112) श्रीजिनर्धम् सदा जयवन्त्
113) सँभाल जगजाल में काल दरहाल	114) सब जग को प्यारा
115) सबको एक ही धरम सहाय	116) सबमें हम हममें सब ज्ञान
117) समझत क्यों नहिं वानी	118) साधो छांडो विषय विकारी
119) सील सदा दिढ़ राखि हिये	120) सुन चेतन इक बात हमारी
121) सुन चेतन लाड़ले यह चतुराई	122) सोई ज्ञान सुधारस पीवै
123) सोग न कीजे बावरे मरें	124) हम न किसीके कोई न हमारा
125) हम लागे आत्मराम सों	126) हमको कैसैं शिवसुख होई

127) हमारो कारज ऐसे होय

129) हो भविजन ज्ञान सरोवर सोई

131) होली--आयो सहज बसन्त खेलैं

133) होली--चेतन खेलै होरी

128) हमारो कारज कैसे होय

130) हो भैया मोरे कहु कैसे सुख

132) होली--खेलौंगी होरी आये

## पं सौभाग्यमल कृत भजन



1) अध्यात्म के शिखर पर

3) आज सी सुहानी

5) आर्जव--चार दिनां को जीवन मेलो

7) कबधौं सर पर धर डोलेगा

9) कहा मानले ओ मेरे भैया

11) कोई जब साथ न आये

13) जहाँ रागद्वेष से रहित

15) ज्यों सरवर में रमै माछली

17) तेरी कहाँ गई मतिमारी

19) तेरे दर्शन से मेरा

21) तोरी पल पल

23) त्रिशला के नन्द तुम्हें

25) धन्य धन्य आज घड़ी

2) अय नाथ ना बिसराना आये

4) आर्जव--काहे पाप करे काहे छल

6) ओ वीर जिन जी तुम्हें हम

8) कलश देखने आया जी

10) किये भव भव भव में फेरे

12) क्षमा--करल्यो क्षमा धरम न धारण

14) जो आज दिन है वो

16) तप--तप बिन नीर न बरसे

18) तेरे दर्शन को मन

20) तोड़ विषयों से मन

22) त्याग बिना जीवन की गाड़ी

24) दया कर दो मेरे स्वामी तेरे

26) धोली हो गई रे काली कामली

27) ध्यान धर ले प्रभू को	28) नचा मन मोर ठौर
29) नमन तुमको करते हैं महावीर	30) नमें मात वामा के पारस
31) नित उठ ध्याँ गुण गाँ	32) निरखी निरखी मनहर
33) नेमी जिनेश्वरजी काहे कसूर	34) पर्युषण—पर्वराज पर्युषण आया
35) पल पल बीते उमरिया	36) प्राणां सूं भी प्यारी लागे
37) बधाई आज मिल गाओ	38) बिन ज्ञान जिया तो जीना
39) ब्रह्मचर्य—क्षमाशील सो धर्म	40) भव भव रुले हैं
41) भाया थारी बावली जवानी	42) मन महल में दो
43) महावीर—दुःख मेटो वीर	44) मार्दव—मानी थारा मान
45) मेरे भगवन यह क्या हो गया	46) मेरे मन मन्दिर में आन
47) मैं हूँ आत्मराम	48) म्हानै पतो बताद्यो थाँसू
49) म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर	50) लहराएगा लहराएगा झंडा
51) लिया प्रभू अवतार जयजयकार	52) शौच—मूंजी धरी रहेली
53) संसार महा अघसागर	54) सत्य—आओ सत्य धरम
55) सत्य—लागे सत्य सुमन	56) साँवरे बनवासी काहे छोड
57) स्वामी तेरा मुखडा	58) हे परम दिगम्बर यति

## पं भूधरदास कृत भजन



1) अजितनाथ--अजित जिन विनती	2) अजितनाथ--अजित जिनेश्वर
3) अज्ञानी पाप धतूरा	4) अन्तर उज्जल करना रे
5) अब नित नेमि नाम भजौ	6) अब पूरी कर नींदङ्गी
7) अब मेरे समकित सावन	8) अरे हाँ चेतो रे भाई
9) आदिनाथ--आज गिरिराज के	10) आदिनाथ--आदिपुरुष मेरी आस
11) आदिनाथ--मेरी जीभ आठौं	12) आदिनाथ--रटि रसना मेरी
13) आदिनाथ--लगी लौ नाभिनंदन	14) आयो रे बुढ़ापो मानी
15) ऐसी समझ के सिर धूल	16) ऐसो श्रावक कुल तुम
17) और सब थोथी बातैं भज	18) करम गति टारी नाहिं टरे
19) करुणाष्टक	20) काया गागरि जोजरी तुम
21) गरव नहिं कीजै रे	22) गाफिल हुवा कहाँ तू डोले
23) चरखा चलता नाहीं रे	24) चादर हो गई बहुत
25) चित्त चेतन की यह विरियां	26) जग में जीवन थोरा रे
27) जग में श्रद्धानी जीव	28) जगत जन जूवा हारि चले
29) जपि माला जिनवर	30) जिनराज चरन मन मति बिसरै
31) जिनराज ना विसारो मति	32) जीवदया व्रत तरु बड़ो
33) जै जगपूज परमगुरु नामी	34) तुम जिनवर का गुण गावो
35) तुम तरनतारन भवनिवारन	36) तुम सुनियो साधो मनुवा
37) ते गुरु मेरे मन बसो	38) थांकी कथनी म्हानै प्यारी

39) देखे देखे जगत के देव	40) देखो भाई आत्मदेव
41) नेमिनाथ--अहो बनवासी पिया	42) नेमिनाथ--त्रिभुवनगुरु स्वामी
43) नेमिनाथ--देखो गरब गहेली	44) नैननि को वान परी
45) पार्श्वनाथ--पारस प्रभु को नाऊँ	46) पुलकन्त नयन चकोर पक्षी
47) प्रभु गुन गाय रै यह	48) बीरा थारी बान परी रे
49) भगवंत भजन क्यों	50) भलो चेत्यो वीर नर
51) भवि देखि छबी भगवान	52) मन मूरख पंथी उस मारग
53) मन हंस हमारी लै शिक्षा	54) मेरे चारौं शरन सहाई
55) मेरे मन सूवा जिनपद	56) म्हें तो थांकी आज महिमा
57) यह तन जंगम रूखड़ा	58) वीर हिमाचल तें निकसी
59) वे कोई अजब तमासा	60) वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी
61) सब विधि करन उतावला	62) सीमंधर--वा पुर के वारौँ
63) सीमंधर स्वामी	64) सुन ज्ञानी प्राणी श्रीगुरु
65) सुनि सुजान पांचों रिपु	66) सुनी ठगनी माया तैं सब
67) सो गुरुदेव हमारा है	68) सो मत सांचो है मन मेरे
69) स्वामीजी सांची सरन	70) होरी खेलूंगी घर आए
71) होली--अहो दोऊ रंग भरे	

## पं बुधजन कृत भजन



1) अब तू जान रे चेतन जान	2) अब थे क्यों दुख पावो
3) आगैं कहा करसी भैया	4) आज मनरी बनी छै जिनराज
5) उत्तम नरभव पायकै	6) और ठौर क्यों हेरत प्यारा
7) काल अचानक ही ले	8) किकर अरज करत जिन
9) गुरु दयाल तेरा दुःख	10) चंद्रनाथ--थे म्हारे मन भायाजी
11) जगत में होनहार सो होवै	12) जिनवाणी की सुनै सो
13) ज्ञानी थारी रीति रौ अचंभौ	14) तेरो करिलै काज बखत
15) तैं क्या किया नादान तैं	16) देखा मैंने आतमरामा
17) धनि सरधानी जग में	18) धरम बिन कोई नहीं
19) नरभव पाय फेरि दुख	20) पतितउधारक पतित
21) परम जननी धरम कथनी	22) प्रात भयो सब भविजन
23) बाबा मैं न काहू का	24) भज जिन चतुर्विंशति नाम
25) भजन बिन योंही जनम गमायो	26) भवदधि तारक नवका जगमाहीं
27) मति भोगन राचौ जी	28) मुनि बन आये जी बना
29) मेरा साँई तौ मोमैं नाहीं	30) मेरी अरज कहानी सुनीए
31) मेरो मनवा अति हर्षाय	32) या नित चितवो उठिकै
33) सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम	34) सारद तुम परसाद तैं
35) सुणिल्यो जीव सुजान	36) सुनकर वाणी जिनवर

37) हम शरन गह्यो जिन चरन	38) हमकौ कछू भय ना
39) हे आतमा देखी दुति तोरी	40) हो जिनवाणी जू तुम
41) होली--अब घर आये चेतनराज	42) होली--और सब मिलि होरि
43) होली--खेलूंगी होरी श्रीजिनवर	44) होली--चेतन खेल सुमति संग
45) होली--चेतन तोसौं आज होरी	46) होली--निजपुर में आज मची

## पं मंगतराय कृत भजन

ॐ

1) अरे उङ चला हंस सैलानी

2) पर्युषण--धर्म के दशलक्षण

## पं न्यामतराय कृत भजन

ॐ

1) अपने निजपद को मत खोय

2) अमोलक मनुष जनम प्यारे

3) अरे यह क्या किया नादान

4) कर सकल विभाव अभाव

5) क्यों परमादी रे चेतनवा

6) घर आवो सुमति वरनार

7) चेतो चेतोरे चेतनवा

8) तन मन सारो जी सांवरिया

9) तुम्हारे दर्श बिन स्वामी

10) दया दिल में धारो प्यारे

11) भगवन मरुदेवी के लाल

12) मत तोरे मेरे शील का सिंगार

13) विषय भोग में तूने ऐ जिया

14) विषय सेवन में कोई

15) होली--भ्रात ऐसी खेलिये

# पं बनारसीदास कृत भजन

ॐ

1) ऐसैं क्यों प्रभु पाइये	2) ऐसैं यों प्रभु पाइये
3) कित गये पंच किसान	4) चेतन उलटी चाल चले
5) चेतन तूँ तिहुँ काल अकेला	6) चेतन तोहि न नेक संभार
7) चेतन रूप अनुप अमूरत	8) जगत में सो देवन
9) दुविधा कब जैहै या	10) देखो भाई महाविकल
11) भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके	12) भोंदू भाई ते हिरदे की आँखें
13) भोंदू भाई समुझ सबद	14) मगन है आराधो साधो
15) मूलन बेटा जायो रे	16) मेरा मन का प्यारा जो
17) या चेतन की सब सुधि	18) रे मन कर सदा संतोष
19) वा दिन को कर सोच	20) सुण ज्ञानी भाई खेती
21) हम बैठे अपनी मौन सौं	22) होली--चलो सखी खेलन होरी

# पं शानानन्द कृत भजन

ॐ

1) अवधू सूतां क्या इस मठ	2) क्योंकर महल बनावै पियारे
3) भोर भयो उठ जागो मनुवा	

# पं नयनानन्द कृत भजन



1) अरे मन पापनसों नित डरिये	2) इक योगी असन बनावे
3) ऐसो नरभव पाय गंवायो	4) जड़ता बिन आप लखें
5) लिया आज प्रभु जी ने	6) हिंसा झूठ वचन अरु

## ॐ मख्खनलाल कृत भजन



1) क्षमा--मेरी उत्तम क्षमा न जाय	2) तुम सुनो सुहागन नार
3) भाग्य बिना कछु हाथ न आवे	4) मोहि सुन सुन आवे हाँसी
5) ये आत्मा क्या रंग दिखाता	

## ॐ बुध महाचन्द्र भजन



1) अमृतझर झुरि झुरि आवे	2) कुमति को छाड़ो भाई
3) चिदानंद भूलि रह्यो सुधि	4) जीव तू भ्रमत भ्रमत
5) जीव निज रस राचन खोयो	6) देखो पुद्गल का परिवारा
7) देखो भूल हमारी हम	8) निज घर नाय पिछान्या
9) विषय रस खारे इन्हैं छाड़त	10) सिद्धारथ राजा दरबारे

## सहजानन्द वर्णी भजन



1) चिद्रूप हमारा इसका

2) भैया मेरे नरभव विषयों

# पर्व भजन



1) अष्टाहिका पर्व--आयो आयो पर्व अठाई	2) अष्टाहिका पर्व--आयो पर्व अठाई
3) ऐसी दीवाली मनाऊं	4) जब बानी खिरी महावीर
5) जिनमंदिर का शिलान्यास	6) दिवाली--अबके ऐसी दीवाली
7) दिव्य धनि वीरा खिराई	8) पर्युषण--दश धर्मों को धार सोलह
9) पर्युषण--दशलक्षण के दश धर्मों	10) पर्युषण--दस लक्षणों को ध्याके
11) पर्युषण--दसलक्षण पर्व का समा	12) पर्युषण--धर्म के दशलक्षण
13) पर्युषण--पर्व दशलक्षण मंगलकार	14) पर्युषण--पर्व दस लक्षण खुशी से
15) पर्युषण--पर्व पर्युषण आया आनंद	16) पर्युषण--पर्व पर्युषण आया है
17) पर्युषण--पर्वराज पर्युषण आया	18) पर्युषण--पर्वराज पर्यूषण आया
19) पर्युषण--ये पर्व पर्युषण प्यारा है	20) प्राणां सूं भी प्यारी लागे
21) महावीर जयंती आई	22) मोक्ष सप्तमी--मंगल गाओ
23) रक्षाबंधन--जय मुनिवर विष्णुकुमार	24) वीर शासन जयंती--वीर की वाणी
25) वीर शासन जयंती--वैशाख शुक्ल	26) श्रुत पंचमी--आचार्य श्री धरसेन जो
27) श्रुत पंचमी--भूतबली श्री पुष्पदन्त	28) सिद्ध चक्र--मंगल महोत्सव भला आ गया
29) होरी खेलूंगी घर आए	30) होली--अब घर आये चेतनराज
31) होली--अरे मन कैसी होली	32) होली--अहो दोऊ रंग भरे

33) होली--आयो सहज बसन्त खेलैं	34) होली--और सब मिलि होरि
35) होली--कहा बानि परी पिय	36) होली--कैसे होरी खेलूँ होरी
37) होली--खेलूंगी होरी श्रीजिनवर	38) होली--खेलौंगी होरी आये
39) होली--चलो सखी खेलन होरी	40) होली--चेतन खेल सुमति संग
41) होली--चेतन खेलै होरी	42) होली--जे सहज होरी के
43) होली--ज्ञानी ऐसे होली मचाई	44) होली--निजपुर में आज मची
45) होली--भ्रात ऐसी खेलिये	46) होली--मेरो मन ऐसी खेलत
47) होली खेलें मुनिराज शिखर	

## आदिनाथ भगवान भजन

ॐ

1) आज तो बधाई राजा नाभि	2) आज नगरी में जन्मे आदिनाथ
3) आदिनाथ--आज गिरिराज के	4) आदिनाथ--आदिपुरुष मेरी आस
5) आदिनाथ--चलि सखि देखन	6) आदिनाथ--जपलो रे आदीश्वर
7) आदिनाथ--जय श्री क्रष्ण	8) आदिनाथ--देखो जी आदिश्वर
9) आदिनाथ--निरख सखी क्रष्णि	10) आदिनाथ--भज क्रष्णिपति
11) आदिनाथ--भज श्रीआदिचरन	12) आदिनाथ--मेरी जीभ आठौं
13) आदिनाथ--मेरी सुध लीजै	14) आदिनाथ--रटि रसना मेरी
15) आदिनाथ--लगी लौ नाभिनंदन	16) गाएँ जी गाएँ आदिनाथ
17) भगवन मरुदेवी के लाल	18) म्हारा आदीश्वर जी

19) लिया रिषभ देव अवतार

## नेमिनाथ भगवान भजन



1) अब हम नेमिजी की शरन	2) गिरनारी पर तप कल्याणक
3) जहाँ नेमी के चरण पड़े	4) जूनागढ़ में सज गए
5) देख्या मैंने नेमिजी प्यारा	6) निर्मोही नेमी जाओ ना गिरनार
7) नेमजी की जान बणी भारी	8) नेमि जिनेश्वर
9) नेमिनाथ--अहो बनवासी पिया	10) नेमिनाथ--त्रिभुवनगुरु स्वामी
11) नेमिनाथ--देखो गरब गहेली	12) नेमिनाथ--नेमि पिया राजुल
13) नेमिनाथ--नेमिप्रभू की श्यामवरन	14) नेमिनाथ--लाल कैसे जावोगे
15) नेमी जिनेश्वरजी काहे कसूर	16) भजि मन प्रभु श्रीनेमि को
17) रोम रोम में नेमिकुंवर के	18) विषयों की तृष्णा को छोड
19) वीर भज ले रे भाया	20) शौरीपुर वाले

## पार्श्वनाथ भगवान भजन



1) आज जन्मे हैं तीर्थकर	2) आनंद अंतर मा आज न समाय
3) चवलेश्वर पारसनाथ	4) झूल रहा पलने में वामा दुलारा
5) तुमसे लागी लगन	6) पारसनाथ--पारस जिन चरन निरख

7) पारसनाथ--पारस प्यारा लागो	8) पारसनाथ--पारस प्रभु का
9) पारसनाथ--पास अनादि अविद्या	10) पारसनाथ--मेरे प्रभु का पारस
11) पारसनाथ--वामा घर बजत बधाई	12) पारसनाथ--सांवरिया के नाम
13) पार्श्वनाथ--पारस प्रभु को नाऊँ	14) मंगल थाल सजाकर
15) मधुबन के मंदिरों में	16) मैं करूँ वंदना तेरी
17) सांवरिया पारसनाथ शिखर पर	

## महावीर भगवान भजन



1) आज मैं महावीर जी	2) आये तेरे द्वार
3) कुण्डलपुर वाले वीरजी	4) छायो रे छायो आनंद छायो
5) जन्म लिया है महावीर ने	6) जय बोलो त्रिशला के वीर
7) जहाँ महावीर ने जन्म लिया	8) तुझे प्रभु वीर कहते हैं
9) दिव्य धनि वीरा खिराई	10) देखा मैंने त्रिशला का लाल
11) पंखिडा रे उड के आओ कुंडलपुर	12) बधाई आज मिल गाओ
13) बाजे कुण्डलपुर में बधाई	14) महावीर--एक बार आओ जी
15) महावीर--जय शिव कामिनि	16) महावीर--जय श्री वीर जिन
17) महावीर--जय श्री वीर जिनेन्द्र	18) महावीर--दुःख मेटो वीर
19) महावीर--वंदों अद्भुत चन्द्र वीर	20) महावीर--सब मिल देखो हेली
21) महावीर--हमारी वीर हरो भवपीर	22) महावीर जीवाजीव छीर नीर

23) महावीर स्वामी	24) महावीरा झूले पलना
25) मेरे महावीर झूले पलना	26) वर्तमान को वर्धमान की
27) वर्धमान ललना से	28) वीर प्रभु के ये बोल
29) सब मिल देखो हेली	30) सिद्धारथ राजा दरबारे
31) हरो पीर मेरी	32) हे वीर तुम्हारे द्वारे पर

## बाहुबली भगवान भजन

ॐ

1) आरती--बाहुबली भगवान	2) बाहुबली भगवान
3) हम यही कामना करते हैं	

## दस धर्म भजन

ॐ

1) आर्जव--कपटी नर कोई साँच न बोले	2) आर्जव--काहे पाप करे काहे छल
3) आर्जव--चार दिनां को जीवन मेलो	4) आर्जव--तज कपट महा दुखकारी
5) क्षमा--करल्यो क्षमा धरम न धारण	6) क्षमा--काहे क्रोध करे
7) क्षमा--क्रोध कषाय न मैं	8) क्षमा--जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी
9) क्षमा--थाँकी उत्तम क्षमा पै	10) क्षमा--दस धरम में बस क्षमा
11) क्षमा--मेरी उत्तम क्षमा न जाय	12) क्षमा--सबसों छिमा छिमा कर
13) तप--तप बिन नीर न बरसे	14) त्याग--तैने दियो नहीं है दान

15) ब्रह्मचर्य--क्षमाशील सो धर्म	16) ब्रह्मचर्य--परनारी विष बेल
17) ब्रह्मचर्य--शील शिरोमणी रतन	18) मार्दव--त्यागो रे भाई यह मान बड़ा
19) मार्दव--धर्म मार्दव को सब मिल	20) मार्दव--मत कर तू
21) मार्दव--मान न कीजिये हो	22) मार्दव--मानी थारा मान
23) रे भाई मोह महा दुखदाता	24) शौच--जियको लोभ महा
25) शौच--जैनी धारियोजी	26) शौच--मूंजी धरी रहेली
27) सत्य--आओ सत्य धरम	28) सत्य--इस जग में थोड़े दिन
29) सत्य--ओ जी थे झूठ	30) सत्य--जिया तोहे बार बार
31) सत्य--लागे सत्य सुमन	

## बच्चों के भजन भजन

ॐ

1) उठे सब के कदम	2) चाहे अंधियारा हो या
3) चौबीस तीर्थकर नाम चिह्न	4) छोटा सा मंदिर
5) जगमग आरती कीजे आदीश्वर	6) जिनमंदिर आना सभी
7) ज्ञाता दृष्टा राही हूं	8) ज्ञानी का ध्यानी का सबका
9) ठंडे ठंडे पानी से नहाना	10) तुझे बेटा कहूँ कि वीरा
11) नहे मुत्रे बच्चे तेरी	12) पाठशाला जाना पढ़कर
13) माँ मुझे सुना गुरुवर	14) माँ सुनाओ मुझे वो कहानी
15) ये जैन होने का परिचय	16) रेल चली भई रेल चली

17) वंदे शासन

18) वर्धमान बोलो भैया बोलो

19) सारे जहां में अनुपम

20) सुबह उठे मम्मी से बोले

21) सूरत प्यारी प्यारी है

22) हम होंगे ज्ञानवान एक दिन

## मारवाड़ी भजन



1) आर्जव--चार दिनां को जीवन मेलो

2) कठिन नर तन है पायो

3) क्षमा--थाँकी उत्तम क्षमा पै

4) गलती आपाँ री न जाणी

5) चन्द्रगुप्त राजा के सोलह स्वप्न

6) चाँदनी फीकी पड़ जाए

7) चेतन नरभव ने तू पाकर

8) छवि नयन पियारी जी

9) जीवड़ा सुनत सुणावत इतरा

10) धोली हो गई रे काली कामली

11) निर्मोही नेमी जाओ ना गिरनार

12) पारस प्यारा लागे

13) प्राणं सूं भी प्यारी लागे

14) महाराजा स्वामी

15) म्हानै पतो बताद्यो थाँसू

16) म्हारा चेतन ज्ञानी घणो

17) लगी म्हारा नैना री डोरी

18) शौच--मूंजी धरी रहेली

19) हजूरिया ठाडो

## selected भजन



1) आतम अनुभव आवै

2) आवै न भोगन में तोहि

3) इक योगी असन बनावे	4) कर कर आत्महित रे
5) काहे को सोचत अति भारी	6) घटमें परमात्म ध्याइये
7) जपि माला जिनवर	8) जिनशासन बड़ा निराला
9) जूनागढ़ में सज गए	10) जे दिन तुम विवेक बिन
11) तुझे बेटा कहूँ कि वीरा	12) तू तो समझ समझ रे
13) निर्मोही नेमी जाओ ना गिरनार	14) परम गुरु बरसत ज्ञान झरी
15) पुद्गल का क्या विश्वासा	16) भगवंत भजन क्यों
17) मेरो मनवा अति हर्षाय	18) मोक्ष के प्रेमी हमने
19) रंग दो जी रंग जिनराज	20) रे भाई मोह महा दुखदाता
21) रे मन भज भज दीन दयाल	22) साधो छांडो विषय विकारी
23) सिद्धों की श्रेणी में आने वाला	24) हमकौ कछू भय ना
25) हे भविजन ध्याओ आत्मराम	26) होली--जे सहज होरी के

## देव भजन





# अंतर में आनंद आयो

अंतर में आनंद आयो, जिनवर दर्शन पायो ॥टेक॥

अंतर्मुख जिन मुद्रा लखकर,  
आतम दर्शन पायो... जी पायो,  
अंतर में आनंद आयो, जिनवर दर्शन पायो ॥

वीतराग छवि सबसे न्यारी, भव्य जनों को आनंद कारी  
दर्शन कर सुख पायो... जी पायो  
अंतर में आनंद आयो, जिनवर दर्शन पायो ॥१॥

पुण्य उदय है आज हमारे, दर्शन कर जिनराज तुम्हारे  
सम्यग्दर्शन पायो... जी पायो  
अंतर में आनंद आयो, जिनवर दर्शन पायो ॥२॥

मेघ घटा सम जिनवर गरजे, दिव्य ध्वनि से अमृत बरसे  
भव आताप नशायो... नशायो  
अंतर में आनंद आयो, जिनवर दर्शन पायो ॥३॥



## अपना ही रंग मोहे



अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी,  
आतम का रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।  
रंग दो रंग दो रंग दो प्रभुजी ॥

ज्ञान में मोह की धूल लगी है,  
धूल लगी है प्रभु धूल लगी है ।  
इससे मुझको छुड़ा दो प्रभुजी ॥1॥

सच्ची श्रद्धा रंग अनुपम,  
रंग अनुपम प्रभु रंग अनुपम ।  
इससे मोकों सजा दो प्रभुजी ॥2॥

रत्नत्रय रंग तुमरा सरीखा,  
तुमरा सरीखा, तुमरा सरीखा ।  
इससे मोकों सजा दो प्रभुजी ॥3॥

सेवक शरण गही जिनवर की,  
सेवक शरण गही आतम की ।  
जन्म-मरण दुःख मिटा दो प्रभुजी ॥4॥





# अरिहंत देव स्वामी शरण

अरिहंत देव स्वामी, शरण तेरी आए  
दुःख से हैं व्याकुल, कर्म के सताए हम ॥टेक ॥

निज कर्म काट करके, आप सिद्ध हो गए हो  
तारण-तरण तुम्ही हो, जिनवाणी बताए ॥१॥

शक्ति है तुझमें ऐसी, कर्म काटने की  
छोड़कर तुम्हे हम, किसकी शरण जाएं ॥२॥

मङ्गधार में पड़ी है, प्रभुजी नाव मेरी  
भव-पार तुम लगा दो आस लेके आए ॥३॥

तारा है तुमने उनको, जिसने भी पुकारा  
हम भी पुकारते हैं, तुझसे लौ लगाए ॥४॥



## अशरण जग में चंद्रनाथ जी



अशरण जग में चंद्रनाथ जी ने सांचे शरण तुम ही हो ।  
भवसागर से पार लगाओ तारण तरण तुम ही हो ॥टेक ॥

दर्शन पाकर अहो जिनेश्वर मन में अति उल्लास हुआ  
देहादिक से भिन्न आत्मा अंतर में प्रत्यक्ष हुआ ॥  
आराधन की लगी लगन प्रभु परमादर्श तुम ही हो ॥ भव..१ ॥

अद्भुत प्रभुता झलक रही है निरख के हुवा निहाल में  
रत्नत्रय की महिमा बरसे हुवा सो मालामाल में  
समता मई ही जीवन होवे प्रभु अवलंब तुम ही हो ॥ भव..२ ॥

मोह न आवे क्षोभ ना आवे ज्ञाता मात्र रहूँ मैं  
अविरल ध्याऊँ चित स्वरूप को अक्षय सौख्य लहू में  
हो निष्काम वंदना स्वामी मेरे साध्य तुम ही हो ॥ भव..३ ॥



## अशरीरी सिद्ध भगवान



तर्ज :- ऐ मेरे दिले नादां

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे  
अविरुद्ध शुद्ध चिदघन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे ॥ टेक ॥

सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन  
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन ॥  
हे गुण-अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे  
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ॥१॥

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल  
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल ॥  
रहते निज में निश्वल, निष्कर्म साध्य मेरे  
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ॥२॥

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो  
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो ॥  
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे  
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ॥३॥

भविजन तुम-सम निज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते  
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते ॥  
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे  
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ॥४॥





# आओ जिनमंदिर में आओ

आओ जिन मंदिर में आओ,  
श्री जिनवर के दर्शन पाओ ।  
जिन शासन की महिमा गाओ,  
आया-आया रे अवसर आनन्द का ॥टेक ॥

हे जिनवर तव शरण में, सेवक आया आज ।  
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निज पद राज ॥

प्रभु अब शुद्धात्म बतलाओ,  
चहुँगति दुःख से शीघ्र छुड़ाओ  
दिव्य-ध्वनि अमृत बरसाओ,  
आया-प्यासा मैं सेवक आनन्द का ॥१॥

जिनवर दर्शन कीजिए, आत्म दर्शन होय ।  
मोह महात्म नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय ॥

शुद्धात्म को लक्ष्य बनाओ,  
निर्मल भेद-ज्ञान प्रकटाओ,  
अब विषयों से चित्त हटाओ,  
पाओ-पाओ रे मारग निर्वाण का ॥२॥

चिदानन्द चैतन्यमय, शुद्धात्म को जान ।

निज स्वरूप में लीन हो, पाओ केवलज्ञान ॥  
नव केवल लब्धि प्रकटाओ,  
फिर योगों को नष्ट कराओ,  
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ,  
आया-आया रे अवसर आनन्द का ॥३॥



## आगया शरण तिहारी आगया



तर्ज : आएगा आनेवाला - महल

आगया.. आगया... आगया...  
आगया शरण तिहारी आगया... आगया... आगया..

सुनकर बिरद तुम्हारा, तेरी शरण में आया ।  
तुमसा न देव मैंने, कोई कहीं है पाया ।  
सर्वज्ञ वीतरागी सच्चे हितोपदेशक  
दर्शन से नाथ तेरे कटते हैं पाप बेशक ॥ आगया..१॥

चारों गति के दुख जो, मैंने भुगत लिये हैं ।  
तुमसे छिपे नहीं हैं, जो जो करम किये हैं ।

अब तो जन्म मरण की काटो हमारी फ़ांसी २  
वरना हंसेगी दुनिया, बिगड़ेगी बात खासी ॥ आगया..२ ॥

अंजन से चोर को भी, तुमने किया निरंजन ।  
श्रीपाल कोडि की भी, काया बना दी कंचन ।  
मेंढक सा जीव भी जब, तेरे नाम से तिरा है २  
पंकज ये सोच तेरे, चरणों में आ गिरा है ॥ आगया..३ ॥



## आज खुशी तेरे दर्शन की



तर्ज़ : मैं तुलसी तेरे आँगन की  
घर आया मेरा परदेसी

आज खुशी तेरे दर्शन की,  
प्यास बुझी है, मेरे नयनन की ॥टेक ॥

बड़ा पुण्य अवसर ये आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया ।  
भक्ति में जब चित्त लगाया, चेतन में तब चित्त ललचाया ॥  
शरण मिली तेरे चरणन की ॥१ आज ॥

तेरे दर्शन से हे प्रभुकर, अंतरज्योति आज जलाऊँ ।

तेरी वाणी से मैं अद्भुत, भेदज्ञान की कला प्रगटाऊँ ॥  
मूरत मेरे भगवन की ॥२ आज ॥

ज्ञाता दृष्टा बनकर अब तो, कर्ता-भोक्ता भाव मिटाऊँ ।  
फौज भगाई करमन की ॥३ आज ॥



## आज मैं महावीर जी

आज मैं महावीर जी आया तेरे दरबार में,  
कब सुनाई होगी मेरी आपकी सरकार में ।



तेरी किरपा से है माना लाखों प्राणी तिर गये ।  
क्यों नहीं मेरी खबर लेते मैं हुं मंझधार में ।१।

काट दो कर्मों को मेरे है ये इतनी आरजू ।  
हो रहा हूं ख्वार मैं दुनिया के मायाचार में ।२।

आप का सुमिरन किया जब मानतुंगाचार्य ने ।  
खुल गयी थी बेडियां झट उनकी कारागार में ।३।

बन गया सूली से सिंहासन सुदर्शन के लिये ।  
हो रहा गुणगान है उस सेठ का संसार में ॥४॥

मुश्किलें आसान कर दो अपने भक्तों की प्रभो ।  
यह विनय पंकज की है बस आपके दरबार में ॥५॥



## आज हम जिनराज



आज हम जिनराज! तुम्हारे द्वारे आये ।  
हाँ जी हाँ हम, आये-आये ॥टेक॥

देखे देव जगत के सारे, एक नहीं मन भाये ।  
पुण्य-उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये ॥१॥

जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये ।  
अब तो स्वामी जन्म-मरण का, दुःखड़ा सहा न जाये ॥२॥

भवसागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये ।  
तुमहीं स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये ॥३॥

अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये ।  
'पंकज' की प्रभु यही वीनती, चरण-शरण मिल जाये ॥४॥



## जपलो रे आदीश्वर



जपलो रे आदीश्वर नाम, मंगल होंगे सारे काम  
ॐ आदिनाथाय नमः ॥टेक ॥

प्रथम सूर्य हैं जैन धर्म के, बंधन तोड़े अष्ट कर्म के  
वंदन करलो सुबहो शाम  
जपलो रे आदीश्वर नाम, मंगल होंगे सारे काम ॥1॥

बड़े भाग्य से नरतन पाया, प्यारे प्रभु को क्यूँ बिसराया  
करलो पूजा तुम निष्काम  
जपलो रे आदीश्वर नाम, मंगल होंगे सारे काम ॥2॥



## आया तेरे दरबार में



आया, आया, आया तेरे दरबार में त्रिशला के दुलारे  
अब तो लगा मँझधार से यह नाव किनारे ॥

अथा संसार सागर में फँसी है नाव यह मेरी  
फँसी है नाव यह मेरी  
ताकत नहीं है और जो पतवार संभारे ॥१ अब...॥

सदा तूफान कर्मों का नचाता नाच है भारी  
नचाता नाच है भारी  
सहे दुख लाख चौरासी नहीं वो जाते उचारे ॥२ अब...॥

पतित पावन तरण तारण, तुम्हीं हो दीन दुख भन्जन  
तुम्हीं हो दीन दुख भन्जन  
बिगड़ी हजारों की बनी है तेरे सहारे ॥३ अब...॥

तेरे दरबार में आकर न खाली एक भी लौटा  
न खाली एक भी लौटा  
मनोरथ पूर दें 'सौभाग्य' देता ढोक तुम्हारे ॥४ अब...॥



आये आये रे जिनंदा



(तर्ज :- दूँढों दूँढों रे साजना)

आये-आये रे जिनंदा, आये रे जिनंदा, तोरी शरण में आये,  
कैसे पावे....हो कैसे पावे, तुम्हारे गुण गावे रे, मोह में मारे-मारे,  
भव-भव में गोते खाये, तोरी शरण में आये,  
हो....आये-आये रे जिनंदा.....॥टेक॥

जग झूठे से प्रीत लगाई, पाप किये मनमाने,  
सद्गुरु वाणी कभी ना मानी, लागे भ्रम रोग सुहाने ॥१॥

आज मूल की भूल मिटी है, तब दर्शन कर स्वामी,  
तत्त्व चराचर लगे झलकने, घट-घट अन्तरयामी ॥२॥

जन्म मरण रहित पद पावन, तुम सा नाथ सुहाया,  
वो 'सौभाग्य' मिले अब सत्वर, मोक्ष महल मन भाया ॥३॥



## आये तेरे द्वार

आये तेरे द्वार सुन ले भक्तों की पुकार  
त्रिशला लाल रे ॥टेक॥



कुण्डलपुर में जन्म लियो तब, बजने लगी थी शहनाई,  
दीपावली को मुक्ति पाई तब मन में सबके तहनाई,  
तुम पा गये मुक्ति धाम  
हम भी पायें निज का धाम...त्रिशला लाल रे ॥१॥

सुन्दर स्याद्वाद की सरगम, जब तुमने थी बरसाई,  
भव्यजनों को आनंदकारी, अमृत धारा बरसाई,  
निज को तुमसम जान  
कर गये आतम का कल्याण...त्रिशला लाल रे ॥२॥

नीर क्षीर सम तन चेतन को, भिन्न सदा ही बताया है,  
जिन चेतन के दर्शन पा, निज चेतन दर्शन पाया है,  
मैं पाऊं निज का धाम  
वही सच्चा जिन का धाम...त्रिशला लाल रे ॥३॥



## आयो आयो रे हमारो

आयो आयो रे हमारो बडो भाग, कि हम आये पूजन को,  
पूजन को प्रभु दर्शन को, पावन प्रभु पद दर्शन को ॥



जिनवर की अंतर्मुख मुद्रा आतम दर्श कराती,  
मोह महातम प्रक्षालन कर शुद्ध स्वरूप दिखाती ॥

भव्य अकृत्रिम चैत्यालय की जग में शोभा भारी,  
मंगल ध्वज ले सुरपति आये शोभा जिनकी न्यारी ॥

अनेकांत मय वस्तु समझ जिन शासन ध्वज लहरावें,  
स्याद्वाद शैली से प्रभुवर मुक्ति मार्ग समझावें ॥



## एक तुम्हीं आधार हो

एक तुम्हीं आधार हो जग में, ए मेरे भगवान ।

कि तुमसा और नहीं बलवान ॥

सँभल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान.

कि तुमसा और नहीं बलवान ॥टेक ॥



आया समय बड़ा सुखकारी, आतम-बोध कला विस्तारी ।  
मैं चेतन, तन वस्तुमन्यारी, स्वयं चराचर झलकी सारी ॥  
निज अन्तर में ज्योति ज्ञान की अक्षयनिधि महान,

कि तुमसा और नहीं बलवान् ॥१॥

दुनिया में इक शरण जिनंदा, पाप-पुण्य का बुरा ये फँदा ।  
मैं शिवभूप रूप सुखकंदा, ज्ञाता-दृष्टा तुम-सा बंदा ॥  
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान,  
कि तुमसा और नहीं बलवान् ॥२॥

सहज स्वभाव भाव दरशाऊँ, पर परिणति से चित्त हटाऊँ ।  
पुनि-पुनि जग में जन्म न पाऊँ, सिद्धसमान स्वयं बन जाऊँ ॥  
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का है 'सौभाग्य' प्रधान,  
कि तुमसा और नहीं बलवान् ॥३॥



## ओ जगत के शांति दाता



तर्ज : ओ बसंती पवन पागल

ओ जगत के शान्तिदाता, शान्ति जिनेश्वर,  
जय हो तेरी ॥टेक ॥

मोह माया में फँसा, तुझको भी पहिचाना नहीं  
ज्ञान है ना ध्यान दिल में धर्म को जाना नहीं

दो सहारा, मुक्तिदाता, शान्ति जिनेश्वर ॥1 जय...॥

बनके सेवक हम खडे हैं, आज तेरे द्वार पे  
हो कृपा जिनवर तो बेडा, पार हो संसार से  
तेरे गुण स्वामी मैं गाता, शान्ति जिनेश्वर ॥2 जय...॥

किसको मैं अपना कहूं, कोई नजर आता नहीं  
इस जहां में आप बिन कोई भी मन भाता नहीं  
तुम ही हो त्रिभुवन विधाता, शान्ति जिनेश्वर ॥3 जय...॥



## कभी वीर बनके

कभी वीर बनके महावीर बनके चले आना,  
दरस हमें दे जाना ॥

तुम ऋषभ रूप में आना, तुम अजित रूप में आना।  
संभवनाथ बनके, अभिनंदन बनके चले आना॥  
दरस हमें दे जाना ॥

तुम सुमति रूप में आना, तुम पद्मरूप में आना।



सुपार्श्वनाथ बनके चंद्रप्रभु बनके चले आना ॥  
दरस हमें दे जाना ॥

तुम पुष्य रूप में आना, शीतलनाथ रूप में आना ।  
श्रेयांसनाथ बनके वासुपूज्य बनके चले आना ॥  
दरस हमें दे जाना ॥

तुम विमल रूप में आना, तुम अनंत रूप में आना ।  
धर्मनाथ बनके शांतिनाथ बनके चले आना ॥  
दरस हमें दे जाना ॥

तुम कुंथु रूप में आना, अरहनाथ रूप में आना ।  
मल्लिनाथ बनके मुनिसुव्रत बनके चले आना ॥  
दरस हमें दे जाना ॥

नमिनाथ रूप में आना, नेमिनाथ रूप में आना ॥  
पार्श्वनाथ बनके वर्द्धमान बनके चले आना ॥  
दरस हमें दे जाना ॥



कर लो जिनवर का गुणगान



करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ।  
आई मंगल घड़ी, देखो मंगल घड़ी ॥टेक॥

वीतराग का दर्शन पूजन, भव-भव को सुखकारी ।  
जिन प्रतिमा की प्यारी छविलख, मैं जाऊँ बलिहारी ॥  
करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ॥१॥

तीर्थकर सर्वज्ञ हितंकर, महा मोक्ष के दाता ।  
जो भी शरण आपकी आता, तुम सम ही बन जाता ॥  
करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ॥२॥

प्रभु दर्शन से आर्त रौद्र, परिणाम नाश हो जाते ।  
धर्म ध्यान में मन लगता है, शुक्ल ध्यान भी पाते ॥  
करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ॥३॥

सम्यक्दर्शन हो जाता है, मिथ्यात्म मिट जाता ।  
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से, कर्म नाश हो जाता ॥  
करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ॥४॥

निज स्वरूप का दर्शन होता, निज की महिमा आती ।

निज स्वभाव साधन के द्वारा, स्वगति तुरत मिल जाती ॥  
करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी ॥५॥



## करता हूं तुम्हारा सुमिरन



तर्ज : करती हूं व्रत तुम्हारा

करता हूं तुम्हारा सुमरण उद्धार करो जी,  
मंज्ञधार में हूं अटका, बेड़ा पार करो जी,  
हे रिषभ जिनंदा, हे रिषभ जिनंदा ॥

आया हूं बड़ी आशा से तुम्हारे दरबार में,  
ना पाया कभी भी चेना, इस दुखमय संसार में,  
देते हैं कर्म दुःख इनका, संहार करो जी ॥

करता हूं चरण प्रक्षालन, आरतियाँ उतारूं,  
शत शत मैं करूं पड़ वंदन, तन मन हैं सभी वारूं,  
पद में हो ठिकाना मेरा, तरण तार करो जी ॥

जल, चंदन, अक्षत, उज्जवल, ये सुमन चरु लीन,  
ये दीप धुप फल सभी प्रभु अरपन हैं कीने,  
मल पाप छुड़ा कर तुमसा, अविकार करो जी ॥

नाभि राजा के नंदन, मरू देवी दुलारे,  
आए जो शरण में उनको प्रभु आपने तारे,  
शिव तक पहुंचा कर मुझको, उपकार करो जी ॥



## करुणा सागर भगवान



करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना ।  
तूफां हैं बहुत भारी, मेरी नाव तिरा देना ॥

मोही बनकर मैंने अब तक जीवन खोया ।  
अपने ही हाथों से काटों का बीज बोया ।  
अब शरण तेरी आया, दुख जाल हटा देना ।  
करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना ॥१॥

मैंने चहुंगतियों में बहु कष्ट उठाया है ।  
लख चौरासी फ़िरते सुख चैन न पाया है ।  
दुखिया हूं भटक रहा प्रभु लाज बचा देना ।  
करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना ॥२॥

भगवन तेरी भक्ति से संकट टल जाते हैं ।  
अज्ञान तिमिर मिटता सुख अमृत पाते हैं ।  
चरणों में खड़ा प्रभुजी मुझे राह बता देना ।  
करुणा सागर भगवान्, भव पार लगा देना ॥३॥

आत्म अनुभव अमृत तजकर विषपान किया,  
मिथ्यात्व हलाहल से छनकर स्नान किया ।  
शुद्धात्म पीयूष पीऊँ सद्बोध दिशा देना ।  
करुणा सागर भगवान्, भव पार लगा देना ॥४॥



## केसरिया केसरिया



केसरिया, केसरिया, आज हमारो मन केसरिया ॥

तन केसरिया, मन केसरिया, पूजा के चावल केसरिया ।  
भक्ति में हम सब केसरिया ॥ केसरिया... ॥

हम केसरिया, तुम केसरिया, अष्ट द्रव्य सब हैं केसरिया ।  
मंदिर की है ध्वजा केसरिया, भक्ति में हम सब केसरिया ॥  
केसरिया... ॥

इन्द्र के सरिया, इन्द्राणि के सरिया, सिद्धों की पूजन के सरिया।  
पूजा के सब भाव के सरिया, भक्ति में हम सब के सरिया॥  
के सरिया...॥

वीर प्रभु की वाणी के सरिया, अहिंसा परमो धर्म के सरिया।  
जीयो जीने दो के सरिया, भक्ति में हम सब के सरिया॥  
के सरिया...॥

पीछी के सरिया, कमण्डल के सरिया, दिगम्बर साधु भी के सरिया।  
शत शत वंदन है के सरिया, भक्ति में हम सब के सरिया॥  
के सरिया...॥

स्वर्णम् रथ देखो के सरिया, स्वर्ण वरण प्रभुजी के सरिया।  
छत्र चंवर ध्वज सब के सरिया, भक्ति में हम सब के सरिया॥  
के सरिया...॥



**कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप**



कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप, अक्षय मंगलमय जिनरूप ॥टेक ॥

अहो परम मंगल के काज, हमने पहिचाने जिनराज ।  
जिन-समान ही आत्मस्वरूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥१॥

कर्म कलंक हुए निःशेष, अनन्त-चतुष्य भाव विशेष ।  
निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥२॥

अद्भुत महिमा मंडित देव, सब संक्लेश नशें स्वयमेव ।  
तदपि अकर्ता ज्ञाता रूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥३॥

सर्व कामना सहज नशावें, निजगुण निज में ही प्रगटावें ।  
विलसे निज आनन्द स्वरूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥४॥

शरण में आये हे जिननाथ, दर्शन पाकर हुए सनाथ ।  
प्रगट दिखाया ज्ञायक रूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥५॥

बाह्य सुखों की नहीं कामना, शिवसुख की हो रही भावना ।  
ध्यावें ध्रुव शुद्धात्म स्वरूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥६॥

भक्ति भाव से शीश नवावें, अन्तर्मुख हो प्रभु को पावें ।  
प्रभु प्रभुता जग मांहि अनूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥७॥

धन्य हुए कृत-कृत्य हुए हैं, सर्व मनोरथ सिद्ध हुए हैं ।  
मानों हुए अभी शिव रूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥८॥

कैसा सुख अरु कैसा ज्ञान, वचनातीत अहो भगवान ।  
सहज मुक्त परमात्म स्वरूप, कैसा अद्भुत शान्त स्वरूप ॥९॥



## कैसी सुन्दर जिन प्रतिमा



तर्ज़ : प्यार में होता है क्या जादू  
चाँद सी महबूबा हो मेरे कब

कैसी सुन्दर जिन प्रतिमा है, कैसा सुंदर है जिन रूप ।  
जिसे देखते सहज दीखता, सबसे सुंदर आत्मस्वरूप ॥

नग्न दिगम्बर नहीं आडम्बर, स्वाभाविक है शांत स्वरूप ।  
नहीं आयुध नहीं वस्त्राभूषण, नहीं संग नारी दुःख रूप ॥१॥

बिन श्रृंगार सहज ही सोहे, त्रिभुवन माहि अतिशय रूप ।  
कायोत्सर्ग दशा अविकारी, नासा दृष्टि आनंदरूप ॥२॥

अर्हत प्रभु की याद दिलाती, दर्शाती अपना प्रभु रूप ।  
बिन बोले ही प्रगट कर रही, मुक्तिमार्ग अक्षय सुखरूप ॥३॥

जिसे देखते सहज नशावे, भव-भव के दुष्कर्म विरूप ।  
भावों में निर्मलता आवे, मानो हुए स्वयं जिनरूप ॥४॥

महाभाग्य से दर्शन पाया, पाया भेद-विज्ञान अनूप ।  
चरणों में हम शीश नवावें, परिणति होवे साम्यस्वरूप ॥  
कैसी सुन्दर जिन प्रतिमा है, कैसा सुंदर है जिन रूप ॥५॥



## कोई इत आओ जी



कोई इत आओ जी, वीतराग ध्याओ जी,  
जिनगुण की आरती संजोय लाओ जी ॥

दया का हो दीपक, क्षमा की हो ज्योत,  
तेल सत्य संयम में, ज्ञान का उद्योत,  
मोहतम नशाओ जी, वीतराग ध्याओ जी ॥

संयम की आरती में, समकित सुगंध,

दर्श ज्ञान चारित्र की, हृदय में उमंग,  
भेद ज्ञान पाओ जी, वीतराग ध्याओ जी ॥

नर-तन को पाय कर, भूलयो मती,  
बन जा दिगम्बर, महाव्रत यती,  
भावना ये भावो जी, वीतराग ध्याओ जी ॥

जिनगुण की आरती में, ध्यान की कला,  
भव भव के लागे सब, कर्म लो गला,  
भवभ्रमण मिटाओ जी, वीतराग ध्याओ जी ॥



## गंगा कल कल स्वर में



तर्ज : जन गण मन अधिनायक जय हे

गंगा कल-कल स्वर में गाती, तव गुण गौरव गाथा,  
सुर नर मुनि वर तब पद युग में नित निज करते माथा ।  
हम भी तब यश गाते सादर शीष झुकाते, हे सद्बुद्धि प्रदाता,  
दुख हारक सुख कारक जय है, सन्मति युग निर्माता,  
जय हे, जय हे, जय, जय, जय, जय हे ॥

मंगल कारक दया प्रचारक, खग पशु नर उपकारी,

भविजन तारक, कर्म विदारक, सब जग तव आभारी,  
जब तक रवि शशि तारे, तब तक गीत तुम्हारे, विश्व रहेगा गाता,  
हे दुर्जय! दुख त्रायक जय हे! सन्मति युग निर्माता,  
जय हे, जय हे, जय, जय, जय हे ॥

भ्रात भावना, भुला परस्पर लड़ते हैं जो प्राणी,  
उनके उर में विश्व प्रेम फिर, भरे तुम्हारी वाणी,  
सब में करुणा जागे, जग से हिंसा भागे,  
चिर सुख शांति विधायक, जय हे! सन्मति युग निर्माता,  
जय हे, जय हे, जय हे, जय, जय, जय हे ॥



## गा रे भैया

गा रे भैया, गा रे भैया, गा रे भैया गा,  
प्रभु गुण गा तू समय ना गवाँ॥



किसको समझे अपना प्यारे, स्वारथ के हैं रिश्ते सारे  
फ़िर क्यों प्रीत लगाये, ओ भैया जी ॥गा रे भैया...॥

दुनियां के सब लोग निराले, बाहर उजले अंदर काले

फ़िर क्यों मोह बढ़ाये, ओ बाबू जी ॥गा रे भैया...॥

मिट्टी की यह नश्वर काया, जिसमें आत्म राम समाया  
उसका ध्यान लगा ले, ओ दादा जी ॥गा रे भैया...॥

स्वारथ की दुनियां को तजकर, निश दिन प्रभु का नाम जपाकर  
समयगदर्शन पाले, ओ काका जी ॥गा रे भैया...॥

शुद्धात्म को लक्ष्य बनाकर, निर्मल भेदज्ञान प्रगटाकर  
मुक्ति वधू को पाले, ओ लाला जी ॥गा रे भैया...॥



## गाएँ जी गाएँ आदिनाथ



तर्ज़ : माई री माई

गाएँ जी गाएँ आदिनाथ की, आरति मंगल गाएँ  
विशद भाव से आरति करके, मन में अति हर्षाएँ  
जिनवर के चरणों में नमन, प्रभुवर के चरणों में नमन

स्वर्ग लोक से चय करके प्रभु, माँ के उर में आए  
देवों ने खुश होकर अनुपम, दिव्य रत्न बरसाए

चिर निद्रा में मरुदेवी को, सोलह स्वप्न दिखाए ॥विशद॥

भोग-भूमि के अन्त समय में, तुमने जन्म लिया है  
नाभिराय अरु मरुदेवी का, जीवन धन्य किया है  
नगर अयोध्या जन्म लिया है, ऋषभ चिन्ह को पाए ॥विशद॥

सौधर्म इंद्र ने ऋषभ चिन्ह लख, वृषभ नाम बतलाया  
षट्कर्मों का भावी जीवों को, प्रभु सन्देश सुनाया  
नीलांजना की मृत्यु देखकर, प्रभु वैराग्य जगाए ॥विशद॥

चार घातिया कर्म नाशकर केवल-ज्ञान जगाया  
भव-सागर का अन्त किया प्रभु, शिव-रमणी को पाया  
मानतुंग जी भक्ति करके, भक्तामर जी गाए ॥विशद॥



## चरणों में आया हूं

चरणों में आया हूं, उद्धार जिनंद कर दो।  
निज रीति निभाकर के, उपकार जिनंद कर दो॥

संसार की नश्वरता, मैंने अब जानी है,



मंगलकारी जब ही, सुनी जिनवर वाणी है।  
चारित्र की नाव चढ़ा, भवपार जिनंद कर दो॥ निज...॥

ना चाहत भोगों की, ना जग का कोई बंधन,  
गर ध्यान करूँ कोई, तो देखूँ केवल जिन।  
तम दूर हटा मन का, उजियार जिनंद कर दो॥ निज...॥

कर्मों ने जन्म जन्म, मेरा पीछा नहीं छोड़ा,  
भरमाया यूंही प्रभू से, नाता ना कभी जोड़ा।  
करुणा कर अब इनसे, निस्तार जिनंद कर दो॥ निज...॥



## चवलेश्वर पारसनाथ

चँवलेश्वर पारसनाथ , म्हारी नैया पार लगाजो

म्हें सुन सुन अतिशय सारा , आया दर्शन हित सारा।  
होजी म्हाने पार करो मंझधार , म्हारी नैया पार लगाजो ॥

ऊँचा पर्वत गहरी झाड़ी , नीचे बह रही नदियां भारी।  
होजी थांका दर्शन पर बलिहार , म्हारी नैया पार लगाजो ॥



थे चिंतामणि रतन कहावो , दुखिया रा दुख मिटाओ।  
म्हाके अंतर ज्योति जगार , म्हारी नैया पार लगाजो ॥

तोडी मान कमठ की माला , त्यारा नाग नागिन काला।  
बन गया देव कृपा तब धार , म्हारी नैया पार लगाजो ॥

म्हैं भी अजयमेरुं सुं आया , थांका दर्शन कर हरषाया।  
जावां दर्शन पर बलिहार म्हारी नैया पार लगाजो ॥

थांको नाम मंत्र जो ध्यावे , ब्याकां सगला दुख मिट जावे।  
प्रगटे शील आत्मबल सार , म्हारी नैया पार लगाजो ॥



## चाँदनी फीकी पड़ जाए



चाँदनी फीकी पड़ जाये, चमक तारा री उड़ जायै,  
म्हारा वीर प्रभु रा तेज सामने सूरज सरमावै -2 ॥टेक -2 ॥  
चाँदनी फीकी पड़ जाये -2

त्रिशला माँ का लाडला थे, (महावीर है नाम) - 2,

थारा दरसण पाकर प्रभु जी, पायो म्हे विश्राम ॥१ चाँदनी...॥

कुण्डलपुर थारो जन्म धाम है, (पावापुर सुख नीड़) - 2,  
जठे विराज्या वीर आप थे, हरल्यो सबकी पीड़ ॥२ चाँदनी...॥

हिवड़े माँहि थे ही बस्या हो, (थे हो म्हारा वीर) - 2,  
जद भी थाने हेलो पाडां, सुन लीज्यो महावीर ॥३ चाँदनी...॥

वर्धमान सन्मति प्रभु जी थे, (वीर और अतिवीर) - 2,  
हिवड़ा माँहि आन बिराजो , विश्ववंद्य महावीर ॥४ चाँदनी...॥



## चाह मुझे है दर्शन की

चाह मुझे है दर्शन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की ॥टेक ॥



वीतराग-छवि प्यारी है, जगजन को मनहारी है ।  
मूरत मेरे भगवन की, वीर के चरण स्पर्शन की ॥१॥

कुछ भी नहीं श्रृंगार किये, हाथ नहीं हथियार लिये ।  
फौज भगाई कर्मन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की ॥२॥

समता पाठ पढ़ाती है, ध्यान की याद दिलाती है ।  
नासादृष्टि लखो इनकी, प्रभु के चरण स्पर्शन की ॥३॥

हाथ पे हाथ धरे ऐसे, करना कुछ न रहा जैसे ।  
देख दशा पद्मासन की, वीर के चरण स्पर्शन की ॥४॥

जो शिव-आनन्द चाहो तुम, इन-सा ध्यान लगाओ तुम ।  
विपत हरे भव-भटकन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की ॥५॥



## जब कोई नहीं आता

जब कोई नहीं आता मेरे बाबा आते है...(२)  
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते है...(२)



मेरी नैयाँ चलती है, पतवार नहीं चलती,  
किसी और की अब मुझको, दरकार नहीं होती,  
मैं डरता नहीं जग से जब बाबा साथ में है...(२)  
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते है...(२)

जो याद करें उनको दुःख हलका हो जाये,  
जो भक्ति करे उनकी वे उनके हो जाये,  
ये बिन बोले कुछ भी पहचान जाते हैं...(२)  
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं...(२)

ये इतने बड़े होकर भक्तों से प्यार करे  
अपने भक्तों के दुःख पलभर में दूर करे  
सब भक्तों का कहना प्रभु मान जाते हैं...(२)  
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं...(२)

मेरे मन के मंदिर में बाबा का वास रहे  
कोइ पास रहे न रहे बाबा मेरे पास रहे  
मेरे व्याकुल मन को ये जान जाते हैं...(२)  
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं...(२)



## जय जय जय जिनवर जी मेरी



तर्ज़ : हाय हाय ये मजबूरी - रोटी कपड़ा और मकान

जय जय जय जिनवर जी मेरी तुमसे है एक अर्जी,

मेरा अन्त समय जब आये,  
सब ओर से मन हट जाये, तुम्हारे चरणों चित लग जाये,  
जय जय जिनवर जी ॥टेक ॥

कितने ही युग बीत गये... भव बन्धन कट नहीं जाये,  
कौन चूक हो गई ऐसी जो अब तक गोते खाये ,  
करो कृपा तारो भगवन्, यह दास भटक नहीं जाये,  
सब ओर से मन हट जाये , तुम्हारे चरणों चित लग जाये ॥१॥

तव भक्त से लाखों जन के बिगड़े काज सरे हैं,  
मैं अज्ञानी क्या बतलाऊँ आगम लिखे पड़े हैं,  
एक बार मिल जाऊँ तुमसे ऐसा कुछ हो जाये,  
सब ओर से मन हट जाये तुम्हारे चरणों चित लग जाये ॥२॥

जी भर गया जगत से स्वामी बस इतना ही चाहूँ,  
तुम सुमरन करते करते मैं मरन समाधि पाऊँ,  
'पंकज' मोह माया का पर्दा आँखों से हट जाये,  
सब ओर से मन हट जाये तुम्हारे चरणों चित लग जाये ॥३॥





# जय बोलो त्रिशला के वीर

जय बोलो त्रिशला के वीर की,  
जय जय बोलो प्रभु महावीर की ॥टेक ॥

आओ भक्तो चलें प्रभु दर्शन को,  
मिलता है परम सुख अखियन को,  
मेरे संग तुम भी गाओ रे, महावीरा को ध्याओ रे ॥१॥

सुर नर मुनि गायें यशगान जिनका,  
करते हैं योगी सभी ध्यान जिनका,  
जो हैं सब के सहारे, भक्तो के कष्ट निवारे,  
ऐसे वीतरागी की महिमा सभी गाओ रे ॥२॥

सिद्धार्थ त्रिशला की आँखों के तारे,  
वर्द्धमान बन गए जगत उजियारे,  
वैराग्य मन में था जागा राज सुख वैभव को त्यागा,  
तप करने में चित लागा उसे ध्याओ रे ॥३॥

जिसने अहिंसा सन्देश सुनाया,  
जियो और जीने दो सबको बताया,

जिनकी वाणी मंगलकारी, भक्तो की नैया है तारी,  
वीर की भक्ति के रंग में ही रंग जाओ रे ॥४॥



## जयवंतो जिनबिम्ब



जयवन्तो जिनबिम्ब जगत में, जिन देखत निज पाया है ॥

वीतरागता लखि प्रभुजी की, विषय दाह विनशाया है।  
प्रगट भयो संतोष महागुण, मन थिरता में आया है ॥

अतिशय ज्ञान षरासन पै धरि, शुक्ल ध्यान शरवाया है।  
हानि मोह अरि चंड चौकड़ी, ज्ञानादिक उपजाया है ॥

वसुविधि अरि हर कर शिवथानक, थिरस्वरूप ठहराया है।  
सो स्वरूप रुचि स्वयंसिद्ध प्रभु, ज्ञानरूप मनभाया है ॥

यद्यपि अचित तदपि चेतन को, चितस्वरूप दिखलाया है।  
कृत्य कृत्य जिनेश्वर प्रतिमा, पूजनीय गुरु गाया है ॥





तर्ज़ : दीवाना मस्ताना हुआ दिल

# जिन ध्याना गुण गाना

प म ग म रे ग, प म ग म आ  
सा नि ध प म ग रे सा नि नि नि ...  
जिन ध्याना गुण गाना हुआ जब  
जीवन में है मेरे बहार आई

हो<sub>s</sub> मन ये मेरा हुआ मतवाला  
पी के प्रभु नाम का प्याला  
आन मिले सुख नाना .. ॥जिन..॥

हो<sub>s</sub> जिस दम सुने प्रभु के वचनन  
ऐसा लगा मिले जैसे रतनन  
लाल भरा है खजाना ... ॥जिन..॥

हो<sub>s</sub> पूजन रची विमल बना है मन  
पाके प्रभु सफल हुआ जीवन  
आत्म को पहचाना .. ॥जिन..॥





# जिन पूजन कर लो ये ही

(तर्ज :- पायो जी मैंने रामरतन धन पायो)

जिन पूजन कर लो, ये ही जगत में सार ॥टेक॥

बड़ा पुण्य अवसर ये आया, श्री जिनवर का दर्शन पाया,  
जिन भक्ति कर लो, ये ही जगत में सार ॥जिन...१॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, जिनगुरु का उपदेश सुहाया,  
उपदेश सु सुन लो, ये ही जगत में सार ॥जिन...२॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, दुर्लभ मनुज तन उत्तम पाया,  
व्रत संयम धर लो, ये ही जगत में सार ॥जिन...३॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, साधर्मी जन मेला पाया,  
तत्त्वचर्चा कुछ कर लो, ये ही जगत में सार ॥जिन...४॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, श्री दसलक्षण पर्व सुहाया,  
'निज धर्म समझ लो', ये ही जगत में सार ॥जिन...५॥





# जिन मंदिर में आके हम

जिन मंदिर में आके हम प्रभु का ध्यान धरें ।  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥टेक॥

सबसे पहले अरिहंतों को करते हैं नमन ।  
सिद्धों को आचार्यों को स्वीकार हो वंदन ॥  
उपाध्याय सर्व साधु का भी ध्यान हम धरें ।  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥१॥

भक्ति-रस में आज हम आरती गाएँ ।  
सर्व पाप कटे सारे, मुक्ति पद पाएँ ॥  
लख चौरासी योनियों में हम भटक रहे ।  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥२॥

वीतरागी आत्म ध्यानी भेद ज्ञानी हो ।  
ज्ञान अमृत पी पी करके मोक्षधामी हो  
शांत मूरत तुम्हारी हमको भा गई ।

शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥  
शुद्ध मन से आज हम अर्चना करें ॥३॥



## जिनजी के दरश मिले



(तर्ज : नीले गगन के तले - हमराज)

जिनजी के दरश मिले, खुशियों के फूल खिले ।  
दरश से जिनके, सुख रवि चमके, दुख की शाम ढले ॥टेक॥

मन-मन्दिर में हो उजियारा, ज्ञान की ज्योति जले ॥जिनजी...॥

जिन सुमिरन से भय मिट जावे, बाधा विघ्न टले ॥जिनजी...॥

भव-भव के पातक धुल जाते, श्रीजी के चरण तले ॥जिनजी...॥

भक्ति-भाव से पूज रचावे, मन की आस फले ॥जिनजी...॥

मन-वच-तन से जो 'प्रभु' ध्यावे, शिव की ओर चले ॥जिनजी...॥





# जिनदेव से कीनी जाने प्रीत

तर्ज़ : आ लौट के आजा मेरे मीत - रानी रूपमति

जिनदेव से कीनी जाने प्रीत, उसे शिव मीत बनाते हैं ।  
मुझे आ ही गई रे परतीत, उसे शिव मीत बनाते हैं ॥टेक ॥

अब तो लगन लागी, जिनके चरण मेरा,  
हरषे है मन, सुख है पाया,  
दुःख की अगन ही हुई है शमन ही, शरण जब से उनकी मैं आया ।  
प्रभु गाये जो महिमा गीत, उसे शिव मीत बनाते हैं ॥जिन...१॥

ये जग है सपना, कोई ना अपना,  
जग चार दिनों का है मेला,  
धन जन औ ललना सब कुछ विनशना, संग में ना जायेगा धेला,  
प्रभु पद में उमर जाये बीत, उसे शिव मीत बनाते हैं ॥जिन...२॥

पूजे चरण स्वामी, गाये भजन पाये,  
सम्यक रतन का खजाना,  
करके जतन जला चिंतन अगन हो, रमन निज में कर भेद ज्ञाना,  
'प्रभु' लेवै करम रिपु जीत, उसे शिव मीत बनाते हैं ॥जिन...३॥



# जिनवर की भक्ति करेगा



तर्ज़ : हर दिल जो प्यार करेगा -- संगम

जिनवर की भक्ति करेगा, वो मुक्ति पायेगा,  
जग बंधन से हटकर के, शिव शक्ति पायेगा ।  
जिनवर की भक्ति करेगा, वो मुक्ति पायेगा ॥१॥

पाप हटेंगे मिथ्या मद के पुण्य बढ़ेंगे पल-पल में  
शुचिता का सागर लहरेगा, भावों के अन्तर उज्जवल में ।  
रत्नत्रय की ज्योति जगेगी, वीतराग विज्ञानमयी,  
'सौभाग्य' भव की नैया, तेरा ले जायेगी ॥  
जिनवर की भक्ति करेगा, वो मुक्ति पायेगा ॥२॥



# जिनवर की वाणी में म्हारो



तर्ज़ :- चलो चलो रे ड्राइवर गाढ़ी

जिनवर की वाणी में म्हारो मन डोले,  
प्रभु की भक्ति में म्हारो मन डोले,  
करो-करो रे प्रभु की पूजन होले-होले ॥टेक ॥

थारा दर्शन के कारण मैं बड़ी दूर से आया,  
सुन-सुन थारी महिमा मैं तो, दौड़ा-दौड़ा आया,  
करो-करो रे-२, प्रभु के दर्शन होले होले ॥  
जिनवर की वाणी में म्हारो मन डोले ॥१॥

थारा रंग में रंगी चुनरिया, दूजा रंग नहीं लागे,  
थारे रंग में ऐसा झूबा, सारी दुनिया आवे,  
गावो-गावो रे-२, प्रभु के गुण होले होले ॥  
जिनवर की वाणी में म्हारो मन डोले ॥२॥

जिनमंदिर में सब नर-नारी, थारा ही गुण गावे,  
तन से, मन से, तेरी भक्ति, करके पुण्य कमावे,  
नाचो-नाचो रे-२, प्रभु के आगे होले होले ॥  
जिनवर की वाणी में म्हारो मन डोले ॥३॥



## जिनवर की होवे जय जयकार

(तर्ज :- झीनी-झीनी उड़े रे गुलाल)



जिनवर की होवे जय-जयकार, चलो रे जिन-मंदिर में,  
प्रभुजी की होवे जय-जयकार, चलो रे जिन-मंदिर में ॥टेक॥

मंदिर में मेरे जिनराज विराजे, मंदिर में मेरे तीर्थकर विराजे,  
जिनकी पूजा करने आये, पूजन भक्ति कर सुख पाये,  
देखत ही हर्ष अपार रे, चलो रे जिन मंदिर में ॥१॥

प्रभुजी से नाता हमने जोड़ा, सिद्धों से नाता हमने जोड़ा,  
धर्म से नाता हमने जोड़ा, कर्मों से नाता हमने तोड़ा,  
जीवन में आई बहार, चलो रे जिन मंदिर में ॥२॥

निज आत्म से नाता जोड़ा, चार कषायों से नाता तोड़ा,  
आत्म प्रभु का शरणा पाया, सब पापों से आश्रय छोड़ा,  
हो जावे भव से पार, चलो रे जिन मंदिर में ॥३॥



## जिनवर तू है चंदा तो



तर्ज़ : सावन का महिना पवन करे शोर - मिलन

जिनवर तू है चंदा तो मैं हूँ चकोर ।

दर्शन तेरे पाकर मेरा झूम उठा मन मोर ॥टेक ॥

अष्ट कर्म को तूने मार भगाया,  
अज्ञानियों को तूने, ज्ञान सिखाया,  
कर्मों का तेरे आगे, चले ना कोई जोर,  
दर्शन तेरे पाकर मेरा झूम उठा मन मोर, मो.... ॥१ जिन.. ॥

नैया खिवैया तू है, लाज बचैया,  
किनारे लगादे मेरी भटकी है नैया,  
मांझी तू है मेरा, सम्भालो मेरी डोर,  
दर्शन तेरे पाकर, मेरा झूम उठा मन मोर, मो.... ॥२ जिन.. ॥

आया है जिनवर जो भी तेरी शरणवा,  
छवि तेरी पाकर उसका, खोया है मनवा,  
विनती मैं भी करता, तू सुन ले चितचोर,  
दर्शन तेरे पाकर मेरा झूम उठा मन मोर, मो... ॥३ जिन.. ॥



## जिनवर दरबार तुम्हारा



जिनवर दरबार तुम्हारा, स्वर्ण से ज्यादा प्यारा ।  
वीतराग मुद्रा से परिणामों में उजियारा ।  
ऐसा तो हमारा भगवन है, चरणों में समर्पित जीवन है ॥

समवसरण के अंदर, स्वर्ण कमल पर आसन,  
चार चतुष्टय धारी, बैठे हो पद्मासन ।  
परिणामों में निर्मलता, तुमको लखने से आये,  
फिर वीतरागता बढ़ती, जो जिनवर दर्शन पाये ॥  
ऐसा तो हमारा...

त्रैलोक्य झलकता भगवन, कैवल्य कला में,  
तीनों ही कालों में कब क्या होगा कैसे ।  
जग के सारे ज्ञेयों को, तुम एक समय में जानो,  
निज में ही तन्मय रहते, उनको न अपना मानो ॥  
ऐसा तो हमारा...

दिव्यध्वनि के द्वारा, मोक्ष मार्ग दर्शाया,  
प्रभु अवलंबन लेकर, मैंने भी निजपद पाया ।  
मैं भी तुमसा बनने को, अब भेदज्ञान प्रगटाऊं,  
निज परिणति में ही रमकर, अब सम्यकदर्शन पाऊं ॥  
ऐसा तो हमारा...



# जो पूजा प्रभु की रचाता



तर्ज : जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा - ताजमहल

जो पूजा प्रभु की रचाता रहेगा,  
पूजा रचा के, पीके वानी सुधा को, खुशियाँ पाता रहेगा ॥टेक ॥

शरण ही जिन्होनें जिनराज ली है,  
मिला एक दिन उनको शिवराज ही है  
आधि हटे, व्याधि मिटे,  
दुःख गम नस जाता, खुशियाँ पाता रहेगा,  
वो महिमा प्रभु की गाता रहेगा,  
बस ये समझ लो दिन-दिन,  
भव के किनारे वो आता रहेगा ॥जो...१॥

आ जिनके द्वारे ना फिर दूर होगा,  
ध्याके प्रभु को वो प्रभु सा ही होगा  
शुभ योग से स्वामी मिले,  
उनको शिरनाता, मल को छुड़ाता रहेगा ॥जो...२॥

भटकता है भव वन में कर्मों का मारा,  
न आयेगा फिर भव में प्राणी दुबारा,  
देख 'प्रभु' में निज को  
उसी में ही रम जाता, खुशियाँ पाता रहेगा ॥जो...३॥



## झीनी झीनी उडे रे



झीनी झीनी उडे रे गुलाल, चालो रे मंदरिया में ।  
चालो रे मंदरिया में, चालो रे मंदरिया में ॥

म्हारा तो गुरुजी आत्मज्ञानी, ज्ञान की जिसने ज्योत जगा दी ।  
ज्ञान का भरा रे भंडार, चालो रे मंदरिया में ॥

वीर प्रभु जी दया के सागर, महावीर प्रभु जी दया के सागर ।  
शीश झुकाऊं बारम्बार, चालो रे मंदरिया में ॥

वीर प्रभु के चरणों में आये, आकर चरणों में शीश नवाये ।  
हो रही जयजयकार, चालो रे मंदरिया में ॥



# तिहारे ध्यान की मूरत



तर्ज़ : बहारों फूल बरसाओ मेरा

तिहारे ध्यान की मूरत, अजब छवि को दिखाती है ।  
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती है ॥टेक ॥

तेरे दर्शन से हे स्वामी! लखा है रूप मैं तेरा ।  
तजूँ कब राग तन-धन का, ये सब मेरे विजाती हैं ॥१॥

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी ।  
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है ॥२॥

जगत के देव हठग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं ।  
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती हैं ॥३॥

मुझे कुछ चाह नहीं जग की, यही है चाह स्वामी जी ।  
जपूँ तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है ॥४॥

तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे ।  
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है ॥५॥



## तुझे प्रभु वीर कहते हैं

तुझे प्रभु वीर कहते हैं, और अतिवीर कहते हैं  
अनेकों नाम तेरे पर, अधिक महावीर कहते हैं ॥

अनंतो गुणों का तू धारी, तेरा यशगान हम गायें,  
हे युग के नाथ निर्माता, तुझे नत शीश नवायें,  
दया होवे प्रभू ऐसी, कि हम सब (भव से पार हों)-३,  
अनेकों नाम तेरे पर, अधिक महावीर कहते हैं ॥१...तुझे ॥

युगों से जीव यह मेरा, देह का योग है पाता,  
मोह के जाल में फँसकर, आत्म निज ओर नहीं जाता,  
पिला अध्यात्म रस स्वामी, ज्ञान की (क्षुधा धार हो)-३,  
अनेकों नाम तेरे पर, अधिक महावीर कहते हैं ॥२...तुझे ॥

सत्य श्रद्धान हो मेरे, कि सम्यक ज्ञान हो मेरे,  
यही विनती मेरे स्वामी, रहूं चरणों में नित तेरे,  
कभी फ़िर मोक्ष मिल जाए, कि वृद्धि (सुख अपार हो)-३,  
अनेकों नाम तेरे पर, अधिक महावीर कहते हैं ॥३...तुझे ॥





तर्ज़ : चाँद सी महबूबा हो मेरी

# तुम जैसा मैं भी

तुम जैसा मैं भी बन जाऊं, ऐसा मैंने सोचा है,  
तुम जैसी समता पा जाऊं, ऐसा मैंने सोचा है ।

भव वन में भटक रहा भगवन, ऐसी चिन्मूरत न पाई है ।  
तेरे दर्शन से निज दर्शन की, सुधि अपने आप ही आई है ।  
शांति प्रदाता मंगलदाता, मुश्किल से मैंने खोजा है,  
तुम जैसी समता पा जाऊं, ऐसा मैंने सोचा है ॥१॥

कितनी प्रतिकूल परिस्थिति में, मुझको वैराग्य न आता है ।  
संसार असार नहीं लगता, मन राग रंग में जाता है ।  
विषय वासना की जड गहरी, काटो नाथ भरोसा है,  
तुम जैसी समता पा जाऊं, ऐसा मैंने सोचा है ॥२॥

हे जिनधर्म के प्रेमी सुन लो, कह गये कुंद कुंद स्वामी ।  
भव सागर से तिरने में फ़िर, कल्याणी माँ श्री जिनवाणी ।  
रूप तुम्हारा सबसे न्यारा, करना सिफ़्र भरोसा है,  
तुम जैसी समता पा जाऊं, ऐसा मैंने सोचा है ॥३॥





## तुमसे लागी लगन

तुमसे लागी लगन ले लो अपनी शरण--पारस प्यारा,  
मेटो मेटो जी संकट हमारा।

निशदिन तुमको जपूं पर से नेहा तजूं--जीवन सारा,  
तेरे चरणों में बीते हमारा॥ तुमसे लागी...॥

अश्वसेन के राज दुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे।  
सबसे नेहा तोडा जग से मुख को मोडा--संयम धारा,  
मेटो मेटो जी संकट हमारा॥ तुमसे लागी...॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।  
आशा पूरो सदा, दुख नहीं पावे कदा--सेवक थारा,  
मेटो मेटो जी संकट हमारा॥ तुमसे लागी...॥

जग के दुख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।  
मेटो जामन मरण होवे ऐसा जतन--तारण हारा,  
मेटो मेटो जी संकट हमारा॥ तुमसे लागी...॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं।

ਪੰਕਜ ਵਾਕੁਲ ਭਯਾ, ਦਰਸਨ ਬਿਨ ਧੇ ਜਿਧਾ--ਲਾਗੇ ਖਾਰਾ,  
ਮੇਟੋ ਮੇਟੋ ਜੀ ਸਂਕਟ ਹਮਾਰਾ ॥ ਤੁਮਸੇ ਲਾਗੀ... ॥



## ਤੁਮਹੀ ਹੋ ਜਾਤਾ



ਤੁਮ ਹੀ ਹੋ ਜਾਤਾ, ਵਣਾ ਤੁਮਹੀ ਹੋ, ਤੁਮ ਹੀ ਜਗੋਤਿਮ, ਸ਼ਰਣ ਤੁਮਹੀ ਹੋ ॥

ਤੁਮ ਹੀ ਹੋ ਤਾਗੀ, ਤੁਮ ਹੀ ਵੈਰਾਗੀ, ਤੁਮ ਹੀ ਹੋ ਧਰ्मੀ, ਸਰਵਜ਼ ਸ਼ਵਾਮੀ।  
ਹੋ ਕਰਮ ਜੇਤਾ, ਤੀਰਥ ਪ੍ਰਣੇਤਾ, ਤੁਮ ਹੀ ਜਗੋਤਿਮ, ਸ਼ਰਣ ਤੁਮਹੀ ਹੋ ॥

ਤੁਮਹੀ ਹੋ ਨਿਸ਼ਲ, ਨਿ਷ਕਾਮ ਭਗਵਨ, ਨਿਰਦੇਖ ਤੁਮ ਹੋ, ਹੇ ਵਿਸ਼ਵਭੂ਷ਣ।  
ਤੁਮਹੇਂ ਤ੍ਰਿਵਿਧ ਹੈ ਵਨਦਨ ਹਮਾਰੀ, ਤੁਮ ਹੀ ਜਗੋਤਿਮ, ਸ਼ਰਣ ਤੁਮਹੀ ਹੋ ॥

ਤੁਮਹੀ ਸਕਲ ਹੋ, ਤੁਮਹੀ ਨਿਕਲ ਹੋ, ਤੁਮਹੀਂ ਹਜਾਰੋਂ ਹੋ ਨਾਮਧਾਰੀ।  
ਕੋਈ ਨਾ ਤੁਮਸਾ ਹਿਤੋਪਕਾਰੀ, ਤੁਮ ਹੀ ਜਗੋਤਿਮ, ਸ਼ਰਣ ਤੁਮਹੀ ਹੋ ॥

ਜੋ ਤਿਰ ਸਕੇ ਨਾ ਭਵ ਸਿੰਧੁ ਮਾਂਹੀ, ਕਿਧਾ ਕਥਣੋਂ ਮੇਂ ਹੈ ਪਾਰ ਤੁਮਨੇ।  
ਬੈਰੀ ਹੈ ਪਾਵਨ ਮੁਕਤਿਰਮਾ ਕੋ, ਤੁਮ ਹੀ ਜਗੋਤਿਮ, ਸ਼ਰਣ ਤੁਮਹੀ ਹੋ ॥

जो ज्ञान निर्मल है नाथ तुममें, वही प्रगट हो वीरत्व हममें।  
मिले परमपद सौभाग्य हमको, तुम ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो॥



## तू ज्ञान का सागर है



तर्ज़ : तू प्यार का सागर

तू ज्ञान का सागर है, आनंद का सागर है  
उसी आनंद के प्यासे हम,  
निज ज्ञान सुधा चाखे, प्रभु अब तेरी कृपा से हम ॥तू॥

विषय भोग में तन्मय होकर, खोया है जीवन वृथा,  
खोया है जीवन वृथा,  
बात प्रभु तेरी एक ना मानी, अपनी ही धुन में रहा-२  
जाना है किधर हमको-२ और आये हैं कहां से हम ॥  
तू ज्ञान का सागर है, आनंद का सागर है ॥१॥

आतम अनुभव अमृत तज के, पिया विषय जड़ का,  
पिया विषय जड़ का,  
मोह नशे में पागल होकर, किया ना तत्व विचार-२  
नैया है मेरी मझधार-२, इसी से प्रभु को बुलाते हम ॥

तू ज्ञान का सागर है, आनंद का सागर है ॥२॥

भूल रहे हैं राह वतन की, भटक रहे संसार,  
भटक रहे संसार,  
भीख मांगते दर दर भ्रमते, घर में भरा है भंडार-२  
निजधाम हमारा है-२, जहां है स्वदेस यहां से हम ॥  
तू ज्ञान का सागर है, आनंद का सागर है ॥३॥



## तेरी परम दिगंबर मुद्रा को



तेरी परम दिगंबर मुद्रा को, मैं पल-पल निहारा करूँ  
रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर ॥  
मेरे मन-मंदिर में आओ प्रभु, मैं हरदम पुकारा करूँ ॥  
रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर ॥टेक ॥

ये जग पापों का डेरा, लाख चौरासी का फेरा  
भटक भटक कर हार गया हूँ, पाया अब मैं शरण तेरा ॥  
तेरी परम दिगंबर मुद्रा को, मैं पल-पल निहारा करूँ  
रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर ॥१॥

सीता ने तुमको ध्याया, जल बिच कमल बिछा पाया,  
लाज रखी तुमने सीता की, अद्भुत है तेरी माया  
तेरी परम दिगंबर मुद्रा को, मैं पल-पल निहारा करूँ  
रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर, रहूँ नहीं दूर ॥२॥



## तेरी शांत छवि



तेरी शांति छवि पे मैं बलि बलि जाऊँ ।  
खुले नयन मारग आ दिल मैं बिठाऊँ ॥

लेखा ना देखा, धर्म पाप जोड़ा,  
बना भोग लिप्सा कि चाहों में दौड़ा,  
सहे दुख जो जो कहा लो सुनाऊँ - तेरी शांति... ॥तेरी॥

तेरा ज्ञान गौरव जो गणधर ने गाया,  
वही गीत पावन मुझे आज भाया,  
उसी के सुरों में सुनो मैं सुनाऊँ - तेरी शांति छवि. ॥तेरी॥

जगी आत्म ज्योति सम्यक्त्व तत्त्व की,

घटी है घटा शाम मिथ्या विकल की,  
निजानन्द 'सौभाग्य' सेहरा सजाऊँ-२ ॥तेरी ॥



## तेरी शीतल शीतल मूरत



तर्ज : तेरी प्यारी प्यारी सूरत को

तेरी शीतल-शीतल मूरत लख,  
कहीं भी नजर ना जमें, प्रभू शीतल  
सूरत को निहारें पल पल तब,  
छबि दूजी नजर ना जमें ॥प्रभू... ॥

भव दुःख दाह सही है घोर, कर्म बली पर चला न जोर ।  
तुम मुख चन्द्र निहार मिली अब,  
परम शान्ति सुख शीतल ढोर  
निज पर का ज्ञान जगे घट में भव बंधन भीड़ थमें ॥प्रभू... ॥

सकल ज्ञेय के ज्ञायक हो, एक तुम्हीं जग नायक हो ।  
वीतराग सर्वज्ञ प्रभू तुम,  
निज स्वरूप शिवदायक हो  
'सौभाग्य' सफल हो नर जीवन, गति पंचम धाम धमे ॥प्रभू... ॥



# तेरी सुंदर मूरत



तर्ज : तेरी प्यारी प्यारी सूरत को

तेरी सुन्दर मूरत देख प्रभो, मैं जीवन दुख सब भूल गया ।  
यह पावन प्रतिमा देख प्रभो ॥टेक ॥

ज्यों काली घटायें आती हैं, त्यों कोयल कूक मचाती है ।  
मेरा रोम रोम त्यों हर्षित है, हाँ हर्षित है ॥  
यह चन्द्र छवि जिन देख प्रभो ॥१॥

ओ...दोष के हरनेवाले हो, ओ... मोक्ष के वरनेवाले हो ।  
मेरा मन भक्ति में लीन हुआ, हाँ, लीन हुआ ॥  
इसको तो निभाना देख प्रभो ॥२॥

हर श्वांस में तेरी ही लय हो, कर्मों पे सदा विजय भी हो ।  
यह जीवन तुझसा जीवन हो, हाँ जीवन हो ॥  
'सौभाग्य' यह ही लिख लेख प्रभो ॥३॥





# दया करो भगवन् मुझपर

दया करो भगवन्, मुझपर भी कुछ तो दया करो ।  
कृपा करो भगवन्, मुझपर भी कुछ तो कृपा करो ॥टेक॥

कभी न तेरी माला फेरी, कभी न जाप किया है ।  
मैंने जाने अनजाने में, कितना पाप किया है ॥दया...१॥

भटक गया और उलझ गया, मुझे मोह-माया ने घेरा ।  
ना कोई मंजिल, ना ही ठिकाना और न कोई डेरा ॥दया...२॥

ज्ञान की ज्योति जलाकर प्रभुजी, संकट हर लो मेरे ।  
अंधियारे में दीप जलाकर, कर दो दूर अन्धेरे ॥दया...३॥



## दयालु प्रभु से दया



तर्ज : तुम्ही मेरे मंदिर, तुम्ही मेरे पूजा

दयालु प्रभु से दया मांगते हैं  
अपने दुःखों की दवा मांगते हैं ॥टेक॥

नहीं हमसा कोई, अधम् चोर पापी ,

सत् कर्म हमने न, किये हैं कदापि ।  
किये नाथ हमने यह अपराध भारी,  
उनकी हृदय से हम क्षमां मांगते हैं ॥दयालु....१॥

दुनियां के भोगों की ना कुछ चाहना,  
स्वर्ग के सुखों की भी ना कुछ कामना ।  
मिले सत् संयम करें आत्म चिन्तन ,  
वरदान भगवन् ये सदा मांगते हैं ॥दयालु....२॥

प्रभु तेरी भक्ति में, मन ये मग्न हो ।  
निजातम के चिन्तन कि हरदम लगन हो,  
यहीं एक आशा है बन जाऊँ तुम सा,  
सेवक नहीं और कुछ मांगते हैं ॥दयालु....३॥



## दरबार तुम्हारा मनहर है



दरबार तुम्हारा मनहर है, प्रभु दर्शन कर हर्षये हैं ।  
दरबार तुम्हारे आये हैं, दरबार तुम्हारे आये हैं ॥टेक॥

भक्ति करेंगे चित से तुम्हारी, तृप्त भी होगी चाह हमारी ।

भाव रहें नित उत्तम ऐसे, घट के पट में लाये हैं ॥१॥

जिसने चिंतन किया तुम्हारा, मिला उसे संतोष सहारा ।  
शरणे जो भी आये हैं, निज आत्म को लख पाये हैं ॥२॥

विनय यही है प्रभू हमारी, आत्म की महके फुलवारी ।  
अनुगामी हो तुम पद पावन, 'वृद्धि' चरण सिर नाये हैं ॥३॥



## दिन रात स्वामी तेरे गीत



तर्ज : तुम्ही मेरे मंदिर, तुम्ही मेरी पूजा

दिन रात स्वामी तेरे गीत गाऊं,  
भावों की कलियां चरणे खिलाऊं ॥

तेरी शांत मूरत मुझे भा गई है,  
मेरे नैनों में नजर आ गई है,  
मैं अपने में अपने को कैसे समाऊं ॥भावों..॥

मैं सारे जहां में कहीं सुख ना पाया,

है गम का भरा गहरा दरिया है छाया,  
ये जीवन कि नैया मैं कैसे तिराऊं ॥भावों..॥

निगोदावस्था से मानव गति तक,  
तुझे लाख ढूँढा न पाया मैं अब तक,  
कहां मेरी मंजिल तुझे कैसे पाऊं ॥भावों..॥

यही आस जिनवर शरण पाऊं तेरी,  
मिट जाय मेरी ये भव भव की फेरी,  
शरण दो तुम्हें नाथ शीश नवाऊं ॥भावों..॥



## ना जिन द्वार आये ना



तर्ज : वो जब याद आये - पारसमाणि

ना जिन द्वार आये, ना जिन नाथ ध्याये,  
सदा जिन्दगी के अंधेरे में हमको,  
कर्मों ने दर-दर नचाये, डुलाये ॥टेक॥

गैर की चाह सदा मन के माँही पली,  
रात दिन कल कहीं, पल को भी ना मिली,

सदा लोक माँही तो धोखा मिला है,  
हुए ना कभी कोई अपने पराये ॥  
ना जिन द्वार आये, ना जिन नाथ ध्याये ॥१॥

मन तड़पता रहा, नैन बहते रहे,  
कैसी-कैसी सदा पीर सहते रहे,  
मगर सारी पीड़ा कहीं खो गई है,  
द्वारे पे आके जो जिन दर्श पाये ॥  
ना जिन द्वार आये, ना जिन नाथ ध्याये ॥२॥



## नाथ तुम्हारी पूजा

नाथ तुम्हारी पूजा में सब, स्वाहा करने आया  
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया ॥

पंचेन्द्रिय का लक्ष्य करूँ मैं, इस अग्नि में स्वाहा  
इन्द्र-नरेन्द्रों के वैभव की, चाह करूँ मैं स्वाहा  
तेरी साक्षी से अनुपम मैं यज्ञ रचाने आया ॥१॥

जग की मान प्रतिष्ठा को भी, करना मुझको स्वाहा



नहीं मूल्य इस मन्द भाव का, व्रत-तप आदि स्वाहा  
वीतराग के पथ पर चलने का प्रण लेकर आया ॥२॥

अरे जगत के अपशब्दों को, करना मुझको स्वाहा  
पर लक्ष्यी सब ही वृत्ति को, करना मुझको स्वाहा  
अक्षय निरंकुश पद पाने और पुण्य लुटाने आया ॥३॥

तुम्हो पूज्य पुजारी मैं, यह भेद करूँगा स्वाहा  
बस अभेद में तन्मय होना, और सभी कुछ स्वाहा  
अब पामर भगवान बने, यह सीख सीखने आया ॥४॥



## नाम तुम्हारा तारणहारा



तर्ज़ : फूल तुम्हे भेजा है खत में  
तुझे देखकर जगवाते पर

नाम तुम्हारा तारणहारा, कब तेरा दर्शन होगा  
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा ॥

सुर नर मुनिजन तुम चरणों में, नितदिन शीश नवाते हैं  
जो गाते हैं तेरी महिमा, मनवांछित फल पाते हैं

धन्य घडी समझुंगा उस दिन, जब तेरा दर्शन होगा ॥१-नाम॥

दीन दयाला करुणासागर, जग में नाम तुम्हारा है  
भटके हुए हम भक्तों का प्रभु, तू ही एक सहारा है  
भव से पार उतरने को तेरे गीतों का सरगम होगा ॥२-नाम॥



## निरखो अंग अंग



निरखो अंग-अंग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार ॥

चरण-कमल जिनवर कहें, धूमा सब संसार  
पर क्षणभंगुर जगत में, निज आत्मतत्त्व ही सार  
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥१॥

हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का कर्ता होय  
ऐसी मिथ्याबुद्धि से ही, भ्रमण चतुरगति होय  
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥२॥

लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार  
पर दुःखमय गति चतुर में, ध्रुव आत्मतत्त्व ही सार

यातैं नाशाद्यष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥३॥

अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्मतत्त्व दरशाय  
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सत्गुरु वचन सुहाय  
यातैं अन्तर्द्यष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥४॥



## नेमि जिनेश्वर



नेमि जिनेश्वर...

नेमि जिनेश्वर तेरी जय जयकार करें हम सारे ॥टेक ॥

भव भय हारी, मम हित कारी, तुम हो ज्ञाता, तुम हो दृष्टा ।

प्राणी मात्र के प्रभु आपने सारे कष्ट निवारे ।

नेमि जिनेश्वर तेरी जय जयकार करें हम सारे ॥१॥

विघ्न विनाशक, स्व-पर प्रकाशक, तुम्हीं महन्ता, तुम भगवन्ता ।

तीन जगत के सारे ज्ञेयाकार निहारे ।

नेमि जिनेश्वर तेरी जय जयकार करें हम सारे ॥२॥

ज्ञेय प्रकाशक, हेय विनाशा, उपादेय निज, तुम दर्शाया ।

इंद्र सुरेन्द्र नरेन्द्र तुम्हारी आरती उतारें ।  
नेमि जिनेश्वर तेरी जय जयकार करें हम सारे ॥३॥



## पंचपरम परमेष्ठी

पंच परम परमेष्ठी देखे  
हृदय हर्षित होता है, आनन्द उल्लसित होता है ।  
हो s s s सम्यग्दर्शन होता है ॥टेक ॥



दर्श-ज्ञान-सुख-वीर्य स्वरूपी गुण अनन्त के धारी हैं ।  
जग को मुक्तिमार्ग बताते, निज चैतन्य विहारी हैं ॥  
मोक्षमार्ग के नेता देखे, विश्व तत्त्व के ज्ञाता देखे ।  
हृदय हर्षित होता है----- ॥१॥

द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित, जो सिद्धालय के वासी हैं ।  
आत्म को प्रतिबिम्बित करते, अजर अमर अविनाशी हैं ॥  
शाश्वत सुख के भोगी देखे, योगरहित निजयोगी देखे ।  
हृदय हर्षित होता है----- ॥२॥

साधु संघ के अनुशासक जो, धर्मतीर्थ के नायक हैं ।

निज-पर के हितकारी गुरुवर, देव-धर्म परिचायक हैं ॥  
गुण छत्तीस सुपालक देखे, मुक्तिमार्ग संचालक देखे ।  
हृदय हर्षित होता है----- ॥३॥

जिनवाणी को हृदयंगम कर, शुद्धातम रस पीते हैं ।  
द्वादशांग के धारक मुनिवर, ज्ञानानन्द में जीते हैं ॥  
द्रव्य-भाव श्रुत धारी देखे, बीस-पाँच गुणधारी देखे ।  
हृदय हर्षित होता है----- ॥४॥

निजस्वभाव साधनरत साधु, परम दिगम्बर वनवासी ।  
सहज शुद्ध चैतन्यराजमय, निजपरिणति के अभिलाषी ॥  
चलते-फिरते सिद्धप्रभु देखे, बीस-आठ गुणमय विभु देखे ।  
हृदय हर्षित होता है----- ॥५॥



## पारस प्यारा लागो

पारस प्यारा लागो, चँवलेश्वर प्यारा लागो  
थांकी बांकडली झाड्यां में, गैलो भूल्यो जी म्हारा पारस जी,  
म्हैं रस्तो कियां पावांला ॥ पारस प्यारा ... ॥



अब डर लागे छै म्हाने, हर बार पुकारां थांने  
थांका पर्वत रा जंगल में, सिंह धडूके हो चँवलेश्वर जी,  
म्हैं रस्तो कियां पावांला ॥ पारस प्यारा ... ॥

थे राग द्वेष न त्यागा, म्है आया भाग्या भाग्या  
थांका पर्वत री भाटा की, ठोकर लागी हो चँवलेश्वर जी,  
म्हैं रस्तो कियां पावांला ॥ पारस प्यारा ... ॥

म्हे अजमेर शहर से चाल्या, थांका ऊंचा देख्या माला  
म्हाने पेड्या पेड्या चढवो, प्यारो लागे हो चँवलेश्वर जी,  
म्हैं रस्तो कियां पावांला ॥ पारस प्यारा ... ॥

थांका विशाल दर्शन पाया, जद तन मन से हरषाया  
थांकी छतरी की तो शोभा, न्यारी लागे हो चँवलेश्वर जी,  
म्हैं रस्तो कियां पावांला ॥ पारस प्यारा ... ॥

थे झूंठ बोलबो छोडो, और धर्म सूं नातो जोडो  
म्हारी बांकडली झाड्यां में, गैलो पावो जी म्हारा सेवक जी,  
थे सीधो रस्तो पावोला ॥ पारस प्यारा ... ॥





तर्ज – रिमाझिम बरसता सावन

# पारस प्रभु का

पारस प्रभु का दर्शन होगा, चरणों में उनके तन मन होगा  
ऐसा सुन्दर, उज्ज्वल, अपना जीवन होगा ॥टेक॥

पारस प्रभु को भजूँ नित सांझ और सवेरे  
मोह तृष्णा को तजूँ तब ही कुछ काम बने रे  
दश विधि धर्म का पालन होगा, चरणों में उनके तन मन होगा ॥  
ऐसा ॥

फिर तो दुनिया के सब ही, ज्ञामेले छूट जायेंगे  
कर्मों के बन्धन भी सारे, अवश्य छूट जायेंगे  
केवल ज्ञान का दर्शन होगा, चरणों में उनके तन मन होगा ॥ऐसा ॥



# पार्श्व प्रभुजी पार



तर्ज : नगरी नगरी द्वारे द्वारे

पार्श्व प्रभुजी पार लगादो, मेरी यह नावरिया ।  
बीच भंवर में आन फंसी है काढोजी सांवरिया ॥टेक॥

धर्मी तारे बहुत ही तुमने, एक अधर्मी तार दो ।  
वीतराग है नाम तिहारो तीन जगत हितकार हो ।  
अपना विरद निहारो स्वामी, काहे को विसरिया ।  
पार्श्व प्रभुजी पार लगादो, मेरी यह नावरिया ॥१॥

चोर भील चांडाल हैं तारे, ठील क्यों मेरी बार है ।  
नाग नागिनी जरत उबारे, मन्त्र दिया नवकार है ।  
दास तिहारो संकट में है, लीजोजी खबरिया ।  
पार्श्व प्रभुजी पार लगादो, मेरी यह नावरिया ॥२॥

लोहे को जो कंचन करदे, पारस नाम प्रमान वो ।  
मैं हूँ लोहा तुम प्रभु पारस, क्यों ना फिर कल्याण हो ।  
पार्श्व प्रभुजी पार लगादो, मेरी यह नावरिया ॥३॥



## मेरे प्रभु का पारस

पारस नाम पारस नाम,  
मेरे प्रभु का पारस नाम ।  
है सुखधाम प्रभु का नाम,  
मेरे प्रभु का पारस नाम ॥टेक॥



है सुखकारी पर हितकारी,  
जन हितकारी महिमा भारी ।  
निशदिन जपते तेरा नाम ।  
मेरे प्रभु का पारस नाम ॥१॥

पाप मर्दन कर्म निकंदन,  
भव तम भंजन जन मन रंजन ।  
भक्तजनों के तुम अभिराम ।  
मेरे प्रभु का पारस नाम ॥२॥

कर्म खपाए, नाग बचाए  
इंद्र लोक में उन्हे पठाए  
प्रभु ने पाया केवलज्ञान ।  
मेरे प्रभु का पारस नाम ॥३॥

दे उपदेश भविक जन तारे ।  
सिद्धालय में आप विराजे ।  
हम भी पहुँचे शिवपुर धाम ।  
मेरे प्रभु का पारस नाम ॥३॥





तर्ज़ : घर आया मेरा परदेसी, प्यास बुझी

# प्रभु दर्शन कर जीवन की

प्रभु दर्शन कर जीवन की, भीड़ भगी मेरे कर्मन की ॥टेर ॥

भव-वन भ्रमता हारा था पाया नहीं किनारा था ।  
घड़ी सुखद आई सुमरण की ॥१...भीड़ ॥

शान्त छबी मन भाई है, नैनन बीच समाई है ।  
दूर हट्टूं नहीं पल छिन भी ॥२...भीड़ ॥

निज पद का 'सौभाग्य' वर्ण, अरु न किसी की चाह कर्ण ।  
सफल कामना हो मन की ॥३...भीड़ ॥



## प्रभु हम सब का एक

प्रभु हम सब का एक, तू ही है, तारणहारा रे ।  
तुम को भूला, फिरा वही नर, मारा मारा रे ॥टेक ॥



बढ़ा पुण्य अवसर यह आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया ।  
फूला मन यह हुआ सफल, मेरा जीवन सारा रे ॥१॥

भक्ति में अब चित्त लगाया, चेतन में तब चित ललचाया ।  
वीतरागी देव! करो अब, भव से पारा रे ॥२॥

अब तो मेरी ओर निहारो, भवसमुद्र से नाव उबारो ।  
'पंकज' का लो हाथ पकड़, मैं पाऊँ किनारा रे ॥३॥

जीवन में मैं नाथ को पाऊँ, वीतरागी भाव बढ़ाऊँ ।  
भक्तिभाव से प्रभु चरणन में, जाऊँ-जाऊँ रे ॥४॥



## प्रभुजी अब ना भटकेंगे

प्रभु जी अब ना भटकेंगे संसार में,  
अब अपनी खबर हमें हो गयी ॥



भूल रहे थे निज वैभव को, पर को अपना माना ।  
विष सम पंचेंद्रिय विषयों में, ही सुख हमने जाना ।  
पर से भिन्न लखुं निज चेतन ... मुक्ति निश्चित होगी ॥

प्रभु जी अब...

महा पुण्य से हे जिनवर अब, तेरा दर्शन पाया ।  
शुद्ध अतीन्द्रिय आनंद रस पीने को, चित्त ललचाया ।  
निर्विकल्प निज अनुभूति से ... मुक्ति निश्चित होगी ॥

प्रभु जी अब...

निज को ही जाने पहिचाने, निज में ही रम जाये ।  
द्रव्य भाव नोकर्म रहित हो, शाश्वत शिवपद पाये ।  
रत्नत्रय निधियां प्रगटाएं .... मुक्ति निश्चित होगी ॥

प्रभु जी अब...



## प्रभुजी मन मंदिर में आओ

प्रभुजी, मन मंदिर में आओ ॥टेक ॥



हृदय सिंहासन सूना तुम बिन, उसमें आ बस जाओ ॥१॥  
नीरस मन को भक्ति के रस में, प्रभुकर अब सरसाओ ॥२॥

भर दे सद्गुण गण प्रभु मुझमें, दुर्गुण दूर हटाओ ॥३॥

आनंदमय हो जाऊँ ऐसा, प्रभु सन्मार्ग बताओ ॥४॥

जीवन यह आदर्श बने प्रभु, ज्ञान की ज्योति जगाओ ॥५॥  
शुद्ध उपयोग में रमण करूँ मैं, सज्जन तुम मिल जाओ ॥६॥



## बाहुबली भगवान

बाहुबली भगवान का मस्तकाभिषेक,  
बारह वर्षों से हम इसकी राह रहे थे टेक,  
धन्य धन्य वे लोग यहां जो आज रहे सिर टेक ॥ बाहुबली... ॥  
मस्तकाभिषेक.... महामस्तकाभिषेक

बीते वर्ष सहस्र मूर्ति ये तप की गढ़ी हुई,  
खडे तपस्वी का प्रतीक बन तब से खड़ी हुई  
श्री चामुण्डराय की माता, इसका श्रेय उन्हीं को जाता  
उनके लिये गढ़ी प्रतिमा से लाभान्वित प्रल्येक ॥ धन्य... ॥

ऋषभ देव पितु मात सुनंदा भ्राता भरत समान,  
घुट्टी में श्री बाहुबली को मिला धर्म का ज्ञान  
चक्रवर्ती का शीश झुकाकर प्रभुता छोड़ी प्रभुता पाकर  
विजय गर्व से पहले प्रभु ने धरा दिगम्बर वेश ॥ धन्य.. ॥

पर्वत पर नर नारी चले कलशों में नीर भरे,  
होड़ लगी अभिषेक प्रभु का पहले कौन करे  
नीर क्षीर की बहती धारा, फ़िर भी ना भीगा तन सारा  
ऐसी अन्य विशाल मूर्ति का कहीं नहीं उल्लेख ॥ धन्य... ॥

ऐसा ध्यान लगाया प्रभु को रहा ना ये भी ध्यान,  
किस किस ने चरणार्बिन्दु में बना लिया है स्थान  
बात उन्हें ये भी ना पता थी तन लिपटी माधवी लता थी  
ये लाखों में एक नहीं हैं, दुनिया भर में एक ॥ धन्य... ॥

महक रहे चंदन केशर पुष्पों की झड़ी लगी,  
देखन को यह दृश्य भीड़ यहां कितनी बड़ी लगी  
ऐसी छटा लगे मनभावन, फ़ागुन बन बरसे क्यूँ सावन  
आज यहां वे जुड़े जिन्होंने जोड़े पुण्य अनेक ॥ धन्य... ॥

अपने गुरुकर सहित पधारे मुनि श्री विद्यानंद,  
चारु कीर्ति की सौम्य छवि लख हर्षित श्रावक वृंद  
नगर नगर से घूम घुमाकर आया मंगल कलश यहां पर  
एक सभी की भक्ति भावना लक्ष्य सभी का एक ॥ धन्य... ॥

गोमटेश का है संदेश धारो अपरिग्रह वाद,  
सब कुछ होते सब कुछ त्यागो वो भी बिना विषाद

भौतिक बल पर मत इतराओ, दया क्षमा की शक्ति बढ़ाओ  
आत्म हित के हेतु हृदय में जागृत करो विवेक ॥ धन्य... ॥



## भगवान मेरी नैया उस



भगवान मेरी नैया, उस पार लगा देना  
अब तक तोह निभाया है, आगे भी निभा देना ॥टेक ॥

हम दीन दुखी निर्धन, नित नाम जपें प्रतिपल  
यह सोच दरस दोगे, प्रभु आज नहीं तो कल  
जो बाग़ लगाया है, फूलों से सजा देना  
भगवान मेरी नैया, उस पार लगा देना ॥१॥

तुम शांति सुधाकर हो, तुम ज्ञान दिवाकर हो  
मम हँस चुगे मोती, तुम मानसरोवर हो  
दो बूँद सुधा रस की, हम को भी पिला देना  
भगवान मेरी नैया, उस पार लगा देना ॥२॥

रोकोगे भला कब तक, दर्शन दो मुझे तुम से  
चरणों से लिपट जाऊं प्रभु शोक लता जैसे

अब द्वार खड़ा तेरे, मुझे रह दिखा देना  
भगवान मेरी नैया, उस पार लगा देना ॥३॥

मँझधार पड़ी नैया डगमग डोले भव में  
आओ त्रिशला नंदन, हम ध्यान धरें मन में  
अब दास करे विनती, मुझे अपना बना लेना ॥  
भगवान मेरी नैया उस पार लगा देना ।  
अब तक तोह निभाया है आगे भी निभा देना ॥४॥



## भटके हुए राही को

भटके हुए राही को प्रभु राह बता देना,  
इस डगमग नैया की प्रभु की लाज बचालेना ॥



जग की माया ने मुझे, पथ से भटकाया है,  
भोगों की पिपासा ने भव वन में भ्रमाया है,  
करुणासागर भगवान, सत पथ दिखला देना ॥

बाहर के वैभव में, मैं खुद को भूल गया,  
ममता और माया के, झूले में झूल गया,

अब शरण तेरी आया, गफलत से बचा देना ॥

दुःख का दावानल है, चहुँ ओर अंधेरा है,  
बोझल इस जीवन में, चौरासी का फेरा है,  
बुझते हुए दीपक की, प्रभु ज्योत जगा देना ॥



## भावना की चूनरी



भावना की चूनरी ओढ के जिनमन्दिर में आवजो रे ।  
आवजो आवजो आवजो रे, सारी नगरी बुलावजो रे ॥  
भावना की चूनरी...

श्रद्धा के रंग से रंग लो चुनरियां, ज्ञान गुणों से जड़ी ।  
मंगल उत्सव आज दिवस का, होगी प्रभावना बड़ी ।  
हो ... लेके श्रद्धा अपार आप आवजो रे,  
आप आवजो आवजो आवजो रे, सारी नगरी बुलावजो रे ॥  
भावना की चूनरी...

वीतरागता उर में धारी, वेश दिगम्बर लिया ।  
जग को मुक्ति मार्ग बताया, जग का कल्याण किया ।

हो ... लेके भक्ति अपार आप आवजो रे,  
आप आवजो आवजो आवजो रे, सारी नगरी बुलावजो रे ।  
भावना की चूनरी...



## मंगल थाल सजाकर



मंगल थाल सजाकर, मंगल दीप जलाकर  
पारस प्रभु की बोल जय-जय, मंगल वाद्य बजाकर ॥टेक ॥

मन की कलियाँ निकस गई हैं, पारस प्रभु के दर्शन से ।  
मनता पूर्ण हुई है मेरी, चिंतामणि पद वंदन से ॥

मंगल थाल सजाकर, मंगल दीप जलाकर  
पारस प्रभु की बोल जय-जय, मंगल वाद्य बजाकर ॥१॥

आज जगा सौभाग्य हमारा, जिनमंदिर में आकर ।  
सुंदर मूरति तरु तट सोहे, छत्र-त्रय फैराने से ।  
सुमन, सुवृष्टि करे देवगण, मंगल वाद्य बजाकर ॥

मंगल थाल सजाकर, मंगल दीप जलाकर  
पारस प्रभु की बोल जय-जय, मंगल वाद्य बजाकर ॥२॥

चौसठ चँवर दुरावे सुरगण, मधुर गुण गाने से ।  
मनहर नृत्य करे किन्नरियां, नूपुरों की झंकारों से  
बीन मंजीरा शंख झल्लरी, सुर टाई ताल बजाकर ॥  
मंगल थाल सजाकर, मंगल दीप जलाकर  
पारस प्रभु की बोल जय-जय, मंगल वाद्य बजाकर ॥३॥



## मन ज्योत जला देना प्रभु



तर्ज : जब दीप जले आना - चितचोर

मन ज्योत जला देना, प्रभु ज्ञान जगा देना,  
मिथ्यात तिमिर को दूर हटाना, मेरी विनती सुन लेना,  
मन ज्योत जला देना, प्रभु ज्ञान जगा देना ॥टेक॥

मैं नयन के कलश दुराऊँगा, तेरी पूजा नित्य रचाऊँगा,  
प्रभु पाप का काजल तुम मेरी आत्म से हटा देना ।  
मन ज्योत जला देना, प्रभु ज्ञान जगा देना ॥१॥

मुझे जिनका द्वार मिला है अब, मन आश का दीप जला है अब,  
भव सिन्धु किनारे नाव प्रभु, जीवन की लगा देना ।  
मन ज्योत जला देना, प्रभु ज्ञान जगा देना ॥२॥

प्रभु सांझ सवेरे जपता हूँ, तव रूप में आत्म लखता हूँ,  
बस जाऊँ जहाँ तुम जाके बसे, युक्ति को मिला देना ।  
मन ज्योत जला देना, प्रभु ज्ञान जगा देना ॥३॥



## मन तड़फत प्रभु दरशन



तर्ज : राग माल कोष

मन तड़फत प्रभु दरशन को आज ॥टेक ॥

मोरे तुम बिन बिगरे सगरे काज,  
विनती करत हूँ रखियो लाज,  
मन तड़फत प्रभु दरशन को आज ॥

तुमरे द्वार का मैं हूँ जोगी,  
हमरी ओर नजर कब होगी,  
सुन मेरे व्याकुल मन का बाज,  
मन तड़फत प्रभु दरशन को आज ॥

बिन गुरु ज्ञान कहाँ से पाऊँ, (2)  
दीजो दान प्रभु गुण गाऊँ,  
सब मुनिजन पर तुमरो राज,  
मन तड़फत प्रभु दरशन को आज ॥



## मन भाये चित हुलसाये



तर्ज : मन डोले मेरा तन

मन भाये चित हुलसाये मेरे छाया हर्ष अपार रे -  
लख वीर तुम्हारी मूरतियां ॥

देख लिया मैंने जग सारा तुमसा नजर ना आये,  
वीतराग मुद्रा तुम धारे बैठे ध्यान लगाय-  
प्रभू तुम बैठे ध्यान लगाय,  
सुरपति आवे, मंगल गावे, नाचे दे दे ताल रे ॥१॥

अष्ट कर्म को जीत प्रभू तुम पाया केवलज्ञान,  
दे उपदेश बहुत जन तारे कहां तक कर्सूं बखान-  
प्रभू मैं कहां तक कर्सूं बखान,  
भय जाये, मेरे रोग ना आये मेरे, सुधरे काम हजार रे ॥२॥

राग-द्वेष में लिप्त हुआ मैं सत को नहीं पिछाना,  
पर-वस्तु को अपना समझा, झूठे मत को माना-  
प्रभू जी उलटे मत को माना,  
अब तुम पाये भरम नशाये, 'पंकज' होगा पार रे ॥३॥



## मनहर तेरी मूरतियाँ



तर्ज़: रिमझिम बरसे बदरवा

मनहर तेरी मूरतियाँ, मस्त हुआ मन मेरा  
तेरा दर्श पाया, पाया, तेरा दर्श पाया ॥

प्यारा प्यारा सिंहासन अति भा रहा, भा रहा  
उस पर रूप अनूप तिहारा, छा रहा, छा रहा  
पद्मासन अति सोहे रे, नयना उमगे हैं मेरे  
चित्त ललचाया, पाया, तेरा दर्श पाया..

तव भक्ति से भव के दुख मिट जाते हैं, जाते हैं  
पापी तक भी भव सागर तिर जाते हैं, तिर जाते हैं  
शिव पद वह ही पाये रे, शरणा आगत में तेरी

जो जीव आया, पाया, तेरा दर्श पाया..

सांच कहूं कोइ निधि मुझको मिल गयी, मिल गयी  
जिसको पाकर मन की कलियां खिल गयी, खिल गयी  
आशा पूरी होगी रे, आश लगा के वृद्धि  
तेरे द्वार आया, पाया, तेरा दर्श पाया..



## मनहर मूरत जिनन्द निहार



तर्ज : पतझर सावन बसन्त बहार — सिन्धुर

मनहर मूरत जिनन्द निहार  
आज मिला है जीवन सार, (३),  
मार्ग मिला भव पार का, शिव द्वार का ।

पूजन रच के होSS,  
पूजन रचके गुण गण गाऊँ, हर जीवन में स्वामी ध्याऊँ,  
हो जबलों मोक्ष का संगम पाऊँ,  
बीते जीवन ये देव द्वार, देव द्वार ॥मनहर...१॥

वीतरागता हो॥

वीतरागता मुख से बरसे, आपसा बनने को मन तरसे,  
'सेवक' का प्रभु अपनी महर से, मेट दो अब फेरा संसार ॥  
मनहर...२॥



## महाराजा स्वामी



महाराजा स्वामी हो जी हो जिनराजा स्वामी  
थे तो म्हानै त्यारो म्हाका राज  
थे तो म्हानै त्यारो म्हाका राज जी, महाराजा स्वामी... ॥

थे ही तारन तरण छोजी, थे छो गरीबनवाज  
अधम उधारन जान के जी, शरणैं आया री लाज जी ॥

जीव अनंता त्यारिया जी, जाको अंत न पार  
अधम उदधि तिर्यच के जी, बहुत किये भवपार जी ॥

ऐसी सुणकर साख तिहारी, आयो छूँ दरबार  
भवदधि झूबत काढ मोकूँ, सरणैं आया की लाज जी ॥

अर्ज करूँ कर जोड के जी, विनवूं बारंबार  
बलदेव प्रभू है दास तिहारो, दीजो शिवपुर वास जी ॥



## एक बार आओ जी



एक बार आओ जी महावीरा म्हांके पावना  
थांकी घणीजी करां म्हें मनवार,  
घणा ही थांका लाड़ लडां ॥टेक ॥

म्हाके घरां आवोला मन-मंदिर में बिठाऊँगा  
पूजा कर म्हें थारी भगवन् थांका ही गुण गाऊँगा  
अब तो दर्शन दे दृ-यो जी एकबार  
घणा ही थांका लाड़ लडां ॥१॥

थांका दर्शन खातिर म्हैं तो घणी दूर से आया जी  
अब तो दर्शन दे दे प्रभुजी थाकां ही गुण गावांजी  
म्हारी बिनती सुणों जी जिनराज  
घणा ही थांका लाड़ लडां ॥२॥

हिंसा, झूठ चोरी को थे नाम निशान मिटायोजी

तीन लोक थांका चरणां में झुक-झुक शीश नवायोजी  
अब तो शरण दे द्-यो जी महाराज,  
घणा ही थांका लाड़ लडां  
एक बार आओ जी महावीरा म्हांके पावना  
थारी घणीजी करां म्हें मनवार,  
घणा ही थांका लाड़ लडां ॥३॥



## मस्तक झुका के



तर्ज : दे दी हमें आजादी

सब मिलकर आज जय कहो, श्री वीर प्रभु की।  
मस्तक झुका के जय कहो, श्री वीर प्रभु की ॥टेक॥

ज्ञानी बनो, दानी बनो, बलवान भी बनो ।  
अकलंक सम बन, जय कहो, श्री वीर प्रभु की ॥१॥

विघ्नों का नाश होता है, लेने से नाम के ।  
माला सदा जपते रहो, श्री वीर प्रभु की ॥२॥

तुमको भी अगर मोक्ष की, इच्छा हुई है दास ।  
उस वाणी पर श्रद्धा करो, श्री वीर प्रभु की ॥३॥



## महावीर स्वामी

महावीर स्वामी तुम्हारा सहारा,  
बिना आपके कौन जग में हमारा ॥



जगत संकटों को, सदा आप हरते-२  
तथा शांति संतोष, सुखपूर्ण करते-२  
तुम्हीं कल्पतरू, कामधेनु तुम्हीं हो,  
सभी कामना पूर्ण कर्ता तुम्हीं हो ॥

तुम्हीं रत्न चिंतामणी स्वर्णदाता-२  
तुम्हीं पाप हर्ता तुम्हीं विघ्नधाता-२  
तुम्हीं समदर्शी तुम्हीं वीतरागी,  
तुम्हीं सत्यवक्ता तुम्हीं सर्वत्यागी ॥

तुम्हीं बुद्ध ब्रह्मा महेश्वर व शंकर-२  
महादेव ईश्वर अशुभ के शयंकर-२  
सती अंजना द्रौपदी सीता माता,  
मनोरम बनीली हुई जग विख्याता ॥

सुदर्शन श्रीपाल तुम नाम ध्याया-२  
सबों के दुखों को क्षणिक में मिटाया-२  
नहीं आज शरणा प्रभुजी तुम्हारी,  
रहेंगे जगत में क्या फ़िर भी दुखारी ॥

परम पूज्य श्रद्धेय तुमको जो ध्यावे,  
वही इन्द्र भगवान पदवी को पावे ॥  
महावीर स्वामी....



## मिलता है सच्चा सुख

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों में।  
मेरी विनती है पल-पल छिन-छिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥



चाहे बैरी कुल संसार रहे, मेरा जीवन मुझ पर भार रहे।  
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।  
पर चित्त न मेरा डगमग हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥

चाहे अग्नि में भी जलना हो, चाहे कांटों पे भी चलना हो।  
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

जिक्हा पर तेरा नाम रहे, तेरी याद सुबह और शाम रहे।  
बस काम ये आठों धाम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥



## मूरत है बनी प्रभु की प्यारी



तर्ज : जीवन से भरी तेरी आँखे - सफर

मूरत है बनी प्रभु की प्यारी, दुख नाश खुशी लाने के लिये,  
सुरगण भी तरसते रहते हैं, जिन रूप सुधा पाने के लिये ॥टेक॥

गुणगान करेगा क्या कोई , क्या कोई बखान करे महिमा,  
छन्दों गाथा में समायेगी, किस तरह से श्री जिन की गरिमा,  
पावन ये प्रभु का रूप बहुत, कोई ज्ञान स्व-पर पाने के लिये ॥  
मूरत है बनी प्रभु की प्यारी, दुख नाश खुशी लाने के लिये ॥१॥

अनुपम ही तरंग है भक्ति में, पूजा में हृदय की निर्मलता,  
झरता जो तेज है मुखड़े से, हरने को है पातक कालुषता,

वाणी में प्रभु की सार बहुत कोई भव से पार जाने के लिये ॥  
मूरत है बनी प्रभु की प्यारी, दुख नाश खुशी लाने के लिये ॥२॥



## मेरे मन मंदिर में आन



मेरे मन-मन्दिर में आन, पधारो महावीर भगवान ॥टेक ॥

भगवन तुम आनन्द सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर ।  
निशि-दिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान ॥१॥

सुर किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते ।  
गाते सब तेरा यशगान, पधारो महावीर भगवान ॥२॥

जो तेरी शरणागत आया, तूने उसको पार लगाया ।  
तुम हो दयानिधि भगवान, पधारो महावीर भगवान ॥३॥

भगत जनों के कष्ट निवारें, आप तरें हमको भी तारें ।  
कीजे हमको आप समान, पधारो महावीर भगवान ॥४॥

आये हैं हम शरण तिहारी, भक्ति हो स्वीकार हमारी ।

तुम्हो करुणा दयानिधान, पधारो महावीर भगवान ॥५॥

रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू-मण्डल तुमसे उजियारा ।  
रवि-शशि तुमसे ज्योतिर्मनि, पधारो महावीर भगवान ॥६॥



## मेरे सर पर रख दो



मेरे सर पर रख दो भगवन, अपने ये दोनों हाथ,  
देना हो तो दीजिये, जन्म-जन्म का साथ ॥

मेरे सर पर रख दो भगवन, अपने ये दोनों हाथ,  
देना हो तो दीजिये, जन्म-जन्म का साथ ॥

सूना है हमने शरणागत को अपने गले लगाते हो  
ऐसा हमने क्या माँगा जो, देने से घबराते हो  
चाहे सुख में रख या दुःख में, बस थामें रखियो हाथ ॥१॥

झुलस रहे हैं गम की धुप में, प्यार की छैंया कर दे तू  
बिन मांझी के नाव चलै ना, अब पतवार पकड़ ले तू  
मेरा रास्ता रौशन कर दो, छाई अंधियारी रात ॥२॥

इसी जन्म में सेवा देकर, बहुत बड़ा एहसान किया  
तू ही मांझी तू ही खिलैया, मैंने तुझे पहचान लिया  
रहे सात जन्म, जन्मों तक बस रख लो इतनी बात ॥३॥



## मैं करूँ वंदना तेरी

मैं करूँ वंदना तेरी ओ मेरे परसनाथ  
मुझपर तो किरपा कर दो ओ मेरे पारसनाथ ॥टेक॥



चरणों में तुमको शीश नवाऊँ, नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ ।  
दरश बिना व्याकुल रहता हूँ, पल भर चैन नहीं पाऊँ ।  
मेरे जीवन में कर दे, तू किरपा की बरसात ॥१॥

दुख की तो परवाह नहीं है, सुख की कोई चाह नहीं ।  
सच्चा तो शिवपद है प्रभुजी, और कोई मेरी राह नहीं ।  
मेरे जन्म मरण को मेटो, बस इतनी सी है बात ॥२॥

डोल रही भव-भव में नैया, अब तो पार लगा दे तू ।  
छाए हैं संकट के बादल, संकट मेरा मिटा दे तू ।

इक तुझसे आस है मेरी, मैं जपूँ तुम्हें दिन-रात ॥३॥

अश्वसेन के राजदुलारे, वामा-देवी के प्यारे ।  
नाग-नागिनी तारने वाले, पारस तुम सबसे न्यारे ।  
मुझे महामंत्र सिखला दो मैं जपूँ मंत्र दिन-रात ॥४॥



## मैं तेरे ढिंग आया रे

मैं तेरे ढिंग आया रे, पद्म तेरे ढिंग आया ।  
मुख मुख से जब सुनी प्रशंसा, चित मेरा ललचाया ।  
चित मेरा ललचाया रे, पद्म तेरे ढिंग आया ॥



चला मैं घर से तेरे दरश को,  
वरणूं क्या वरणूं क्या, वरणूं क्या मैं मेरे हरष को,  
मैं क्षण क्षण में नाम तिहारा, रटता रटता आया  
रटता रटता आया रे ... पद्म तेरे ढिंग आया ॥

पथ में मैंने पूछा जिसको,  
पाया तेरा, पाया तेरा, पाया तेरा दर्शक उसको,  
यह सुन सुन मन हुआ विभोरित, मग नहीं मुझे अघाया

मग नहीं मुझे अघाया रे ... पद्म तेरे ढिंग आया ॥

सन्मुख तेरे भीड़ लगी है,  
भक्ति की, भक्ति की, भक्ति की इक उमंग जगी है,  
सब जय जय का नाद उचारे, शुभ अवसर यह पाया,  
शुभ अवसर यह पाया रे ...पद्म तेरे ढिंग आया ॥

सफल कामना कर प्रभू मेरी,  
पाऊं मैं, पाऊं मैं, पाऊं मैं चरण रज तेरी,  
होगी पुण्य वृद्धि आशा है, दरश तिहारा पाया,  
दरश तिहारा पाया रे...पद्म तेरे ढिंग आया ॥



## मैं ये निर्गंथ प्रतिमा



तर्ज : निरखत जिन चन्द्र वदन

मैं ये निर्गंथ प्रतिमा, देखूँ जब ध्यान से ।  
बैठे पद्मासन जिनवर, देखो किस शान से ॥टेक ॥

राग-द्वेष का नाम नहीं, बैठे अपने अन्तर में ।  
दृष्टि को अंदर करके, प्रभु बैठे हैं निज घर में ।  
अन्जन से पापी तिर गए, जिनके गुणगान से ।

मैं ये निर्ग्रंथ प्रतिमा, देखूँ जब ध्यान से ॥१॥

कर्मकालिमा नष्ट करी और अष्टकर्म को जीता ।  
वो भी हो जाता जिनवर सम, जो आत्म रस पीता ।  
आत्म के अनुभवी देखें सबको निष्काम से ।  
मैं ये निर्ग्रंथ प्रतिमा, देखूँ जब ध्यान से ॥२॥

देती ये उपदेश मूर्ति, अरे जगत के जीवों ।  
चौरासी से थकान लगी, तो आत्म रस पीवो ।  
हम तो थक कर बैठे, हैं सारे जहान से ।  
मैं ये निर्ग्रंथ प्रतिमा, देखूँ जब ध्यान से ॥३॥

हाथ पै हाथ धरे बैठे जो वही वीतरागी है ।  
तीन लोक की सभी सम्पदा, जिनवर ने त्यागी है ।  
अब भी भगवान हो तुम, पहले भी भगवान थे ।  
मैं ये निर्ग्रंथ प्रतिमा, देखूँ जब ध्यान से ॥४॥



**म्हारा आदीश्वर जी**



म्हारा आदीश्वर जी की सुन्दर मूरत  
....म्हारे मन भाई जी  
म्हारे मन भाई म्हारे चित चाही,  
....म्हारे मन भाई जी ।

तीन छत्र वांके सिर सोहे,  
चौंसठ चंवर ढुराई जी, म्हारे....

रत्न सिंहासन आप विराजो,  
नासा दृष्टि लगाई जी, म्हारे....

सेवक अर्ज करे कर जोडे,  
आवागमन मिटाओ जी, म्हारे...



## रंग दो जी रंग जिनराज

रंग दो रंग दो जी रंग जिनराज,  
हमारा मन ऐसा रंग दो ॥  
रंग दो रंग दो रंग दो रंग दो  
प्रभुजी बस तुम जैसा रंग दो ॥टेक ॥



दर्शन पा मेरे भाग्य जगे हैं, भाग्य जगे हैं भाग्य जगे हैं  
मेरे हृदय में तेरा मंदिर, उस मंदिर में आप बसे हैं  
हटे धूल करम जिनराज ॥हमारा.. १॥

प्रभुजी मेरी श्रद्धा जगे, श्रद्धा से मेरी भक्ति बढ़े  
भक्ति में ऐसी शक्ति हो, जिससे आत्म शक्ति जगे  
जले ज्ञान की ज्योति महान ॥हमारा.. २॥

ऐसा ज्ञान सरोवर हो, जिसमें जल शुचि केशर हो  
ऐसा दूबे मन उसमें, जहां परम परमेश्वर हो  
उड़े सम्यक ज्ञान गुलाल ॥हमारा.. ३॥



## रंगमा रंगमा

रंग मा रंग मा रंग मा रे  
प्रभु थारा ही रंग मा रंग गयो रे।



आया मंगल दिन मंगल अवसर,  
भक्ति मा थारी हूं नाच रह्यो रे॥ प्रभु थारा..

गावो रे गाना आत्म राम का,  
आत्म देव बुलाय रह्यो रे॥ प्रभु थारा..

आत्म देव को अंतर में देखा,  
सुख सरोवर उछल रह्यो रे॥ प्रभु थारा..

भाव भरी हम भावना ये भायें,  
आप समान बनाय लियो रे॥ प्रभु थारा..

समयसार में कुन्दकुन्द देव,  
भगवान कही न बुलाय रह्यो रे॥ प्रभु थारा..

आज हमारो उपयोग पलट्यो,  
चैतन्य चैतन्य भासि रह्यो रे॥ प्रभु थारा..



## रोम रोम पुलकित हो जाये

रोम रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥टेक ॥  
ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जायेँ, जब जिनवर के दर्शन पाय



जिन-मन्दिर में श्री जिनराज, तन-मन्दिर में चेतनराज  
तन-चेतन को भिन्न पिछान, जीवन सफल हुआ है आज ॥

वीतराग सर्वज्ञ-देव प्रभु, आये हम तेरे दरबार  
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर होवें भव से पार  
मोह-महातम तुरत विलाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥१॥

दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रभु का, बल अनन्त आनन्द अपार  
गुण अनन्त से शोभित हैं प्रभु, महिमा जग में अपरम्पार  
शुद्धातम की महिमा आय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥२॥

लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान  
लीन रहें निज शुद्धातम में, प्रतिक्षण हो आनन्द महान  
ज्ञायक पर दृष्टि जम जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥३॥

प्रभु की अन्तर्मुख-मुद्रा लखि, परिणति में प्रकटे समभाव  
क्षण-भर में हों प्राप्त विलय को, पर-आश्रित सम्पूर्ण विभाव  
रत्नत्रय-निधियाँ प्रकटाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥४॥



रोम रोम में नेमिकुंवर के



रोम रोम में नेमिकुंवर के, उपशम रस की धारा,  
राग द्वेष के बंधन तोड़े, वेष दिगम्बर धारा ॥

ब्याह करन को आये, संग बराती लाये,  
पशुओं को बंधन में देखा, दया सिंधु लहराये,  
धिक-धिक जग की स्वारथ वृत्ति, कहीं न सुकर्ख लघारा ॥१॥

राजुल अति अकुलाये, नौ भव की याद दिलाये,  
नेमि कहे जग में न किसी का, कोई कभी हो पाये।  
रागरूप अंगारों द्वारा, जलता है जग सारा ॥२॥

नौ भव का सुमिरण कर नेमि, आतम तत्व विचारे,  
शाश्वत ध्रुव चैतन्य-राज की, महिमा चित में धारे,  
लहराता वैराग्य सिंधु अब, भायें भावना बारा ॥३॥

राजुल के प्रति राग तजा है, मुक्ति-वधू को ब्याहें,  
नग्न दिगम्बर दीक्षा धर कर, आतम-ध्यान लगायें,  
भव-बंधन का नाश करेंगे, पावें सुख अपारा ॥४॥





# रोम रोम से निकले

रोम रोम से निकले प्रभुवर नाम तुम्हारा, हाँ नाम तुम्हारा ।  
ऐसी भक्ति करूँ प्रभु जी, पाऊँ न जन्म दुबारा ॥

जिनमंदिर में आया, जिनवर दर्शन पाया,  
अंतर्मुख मुद्रा को देखा, आत्म दर्शन पाया ।  
जन्म जन्म तक ना भूलूँगा, यह उपकार तुम्हारा ॥

अरहंतों को जाना, आत्म को पहिचाना,  
द्रव्य और गुण पर्यायों से, जिन सम निज को माना ।  
भेद ज्ञान ही महामंत्र है, मोह तिमिर क्षयकारा ॥

पंच महाव्रत धारूँ, समिति गुप्ति अपनाऊँ,  
निर्ग्रथों के पथ पर चलकर, मोक्ष महल में आऊँ ।  
पुण्य पाप की बंध श्रंखला, नष्ट करूँ दुखकारा ॥

देव-शास्त्र-गुरु मेरे, हैं सच्चे हितकारी,  
सहज शुद्ध चैतन्य राज की, महिमा जग से न्यारी ।  
भेदज्ञान बिन नहीं मिलेगा, भव का कभी किनारा ॥





# वर्तमान को वर्धमान की

हर आत्मा दुखी है, सुख शांति खो चुकी है,  
परदृष्टि होके व्याकुल, महावीर पे रुकी है  
महावीर... महावीर...महावीर...महावीर...

हिंसा पीड़ित विश्व राह महावीर की तकता है,  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है  
पापों के दलदल में फ़ंसकर धर्म सिसकता है ॥टेक ॥

हिंसा के बादल छायें संसार पर,  
सर्वनाश के दुनिया खड़ी कगार पर  
नहीं शास्त्रों में अब शास्त्रों में होड है,  
मानवता रोती है अपनी हार पर  
महावीर ही पथभूलों को समझा सकता है  
हिंसा पीड़ित विश्व राह महावीर की तकता है,  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ॥१॥

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,  
समं भ्रान्ति धौव्य-व्यय-जनि-लसन्तौ<sup>s</sup>न्तरहिता ।  
जगत्साक्षी मार्ग-प्रगटन-परो-भानुरिव यो,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी-भवतुममे ॥

बांधो प्रभु को भक्ति भाव की डोर से,  
करो प्रार्थना सब जीवों की ओर से  
वीतराग व्यथितों के दुख पर ध्यान दें,  
हमको करें कृतार्थ कृपा की कोर से  
प्रभु के नयनों से करुणा का नीर झलकता है,  
हिंसा पीड़ित विश्व राह महावीर की तकता है,  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ॥२॥

वर्धमान के आदर्शों पर ध्यान दो,  
हितोपदेशों को अंतर में स्थान दो।  
तुम जिसके वंशज जिसकी संतान हो,  
होकर एक उसे पूरा सम्मान दो।

मिलकर जीने में ही जीवन की सार्थकता है ॥  
हिंसा पीड़ित विश्व राह महावीर की तकता है,  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ॥३॥

महामोहांतक-प्रशमनःप्राकस्मिक-भिषडः,  
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गलकरः ।  
शरण्यः साधूनां भव भयभृतामुत्तमगुणो,  
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी-भवतुममे ॥

वह आये तो हर संकट को प्राण हो,  
अभय सुरक्षित सर्व सुखी हर प्राण हो।  
जियो और जीने दो के महामंत्र से,  
विश्व शांति पाये सबका कल्याण हो।  
प्रभु की मृदु वाणी में आध्यामिक मादकता है ॥  
हिंसा पीड़ित विश्व राह महावीर की तकता है,  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ॥४॥

महावीर... महावीर... महावीर... महावीर...  
वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ...



## वर्धमान ललना से



वर्धमान ललना से कहे त्रिशला माता।  
लाल मेरे शादी क्यों नहीं रचाता... ॥टेक॥

बोले मुस्कुराते वीरा, सुनो मेरी माई,  
कितनी ही बार मैने शदियां रचाई,  
शदियां रचाई फिर भी हो sss  
शदियां रचाई फिर भी, पाई नहीं साता, इसीलिये माता... ॥१॥

बोले मुस्कुराते वीरा, जगत के सहारे,  
नेमिनाथ हैं ये सच्चे साथी हमारे,  
उन मूक प्राणियों का हो sss

उन मूक प्राणियों का हो, रुदन है बुलाता, इसीलिये माता... ॥२॥

बोले मुस्कुराते वीरा, सुनो मेरी माई,  
नरभव में उम्र हमने थोड़ी कमाई,  
भव-भव का दुख भैया हो sss

भव-भव का दुख भैया, सहा नहीं जाता, इसीलिये माता... ॥३॥

सुनो मैया आतम का, बन के पुजारी,  
तोड़ुंगा कर्मों की जंजीर सारी,  
राजपाट वैभव ये हो sss

राजपाट वैभव ये, कुछ न सुहाता, इसीलिये माता... ॥४॥



## वीतरागी देव

वीतरागी देव तुम्हारे जैसा जग में देव कहाँ  
मार्ग बताया है जो जग को, कह न सके कोई और यहाँ ॥टेक॥



हैं सब द्रव्य स्वतंत्र जगत में, कोई न किसी का कार्य करे  
अपने अपने स्वचतुष्य में, सभी द्रव्य विश्राम करे  
अपनी अपनी सहज गुफा में, रहते पर से मौन यहां ॥वीतरागी ॥

भाव शुभाशुभ का भी कर्ता, बनता जो दीवाना है  
ज्ञायक भाव शुभाशुभ से भी, भिन्न न उसने जाना है  
अपने से अनजान तुझे, भगवान कहें जिनदेव यहां ॥वीतरागी ॥

पुण्य भाव भी पर आश्रित है, उसमें धर्म नहीं होता  
ज्ञान भाव में निज परिणति से बंधन कर्म नहीं होता  
निज आश्रय से ही मुक्ति है, कहते हैं जिनदेव यहां ॥वीतरागी ॥



## वीर प्रभु के ये बोल

वीर प्रभु के ये बोल, तेरा प्रभु! तुझ ही में डोले  
तुझ ही में डोले, हाँ तुझ ही में डोले  
मन की तू घुंडी को खोल, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥टेक ॥



क्यों जाता गिरनार, क्यों जाता काशी,

घट ही में है तेरे घट-घट का वासी ॥  
अन्तर का कोना टटोल, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥१॥

चारों कषायों को तूने है पाला,  
आतम प्रभु को जो करती है काला ॥  
इनकी तो संगति को छोड़, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥२॥

पर में जो ढूँढा न भगवान पाया,  
संसार को ही है तूने बढ़ाया ॥  
देखो निजातम की ओर, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥३॥

मस्तों की दुनिया में तू मस्त हो जा,  
आतम के रंग में ऐसा तू रँग जा ॥  
आतम को आतम में घोल, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥४॥

भगवान बनने की ताकत है तुझमें,  
तू मान बैठा पुजारी हूँ बस मैं ॥  
ऐसी तू मान्यता को छोड़, तेरा प्रभु तुझ ही में डोले ॥५॥



शौरीपुर वाले



शौरीपुर वाले शौरीपुर वाले नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले  
नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले ॥

शिवादेवी घर जन्म लियो है, माता की कोख को धन्य कियो है  
अंतिम जन्म हुआ प्रभुजी का, जन्म मरण को नाश कियो है  
समुद्रविजय के आंखों के तारे...नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले ॥

स्वर्ग पुरी से सुरपति आये, ऐरावत हाथी ले आये  
पांडुक शिला पर प्रभु को बिठाये, क्षीरोदधि से न्हवन कराये  
रतन बरसाये हां न्हवन कराये...नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले ॥

देखो भैया इन्द्र भी आये, पंचकल्याणक का उत्सव कराये  
प्रभु दर्शन कर अति हरषाये, मंगल तांडव नृत्य रचाये  
सभी हरषाये हां खुशियां मनाये...नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले ॥

तन से भिन्न निजातम निरखे, निज अंतर का वैभव परखे  
भेद ज्ञान की ज्योति जलावे, संयम की महिमा चित लावे  
गये गिरनारे गये गिरनारे...नेमिजी हमारे शौरीपुर वाले ॥





# श्री अरहंत सदा मंगलमय

श्री अरहंत सदा मंगलमय, मुक्ति मार्ग का करे प्रकाश,  
मंगलमय श्री सिद्ध प्रभु जो, निज स्वरूप में करे विलास,  
शुद्धात्म के मंगल साधक, साधु पुरुष की सदा शरण हो,  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥१॥

मंगलमय चैतन्य स्वरों में, परिणति की मंगलमय लय हो,  
पुण्य-पाप की दुःखमय ज्वाला, निज आश्रय से त्वरित विलय हो,  
देव शास्त्र गुरु को वंदन कर, मुक्ति वधु का त्वरित वरण हो,  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥२॥

मंगलमय पांचों कल्याणक, मंगलमय जिनका जीवन है,  
मंगलमय वाणी सुखकारी, शाश्वत सुख का भव्य सदन है,  
मंगलमय सत्धर्म तीर्थ-कर्ता की, मुझको सदा शरण हो,  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥३॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरणमय, मुक्तिमार्ग मंगलदायक है,  
सर्व पाप मल का क्षय करके, शाश्वत सुख का उत्पादक है,  
मंगल गुण पर्यायमयी, चैतन्यराज की सदा शरण हो,  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥४॥





## श्री अरिहंत छवि लखिके

श्री अरहंत छबि लखि हिरदै, आनन्द अनुपम छाया है ॥टेक ॥

वीतराग मुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है ।  
दीषि नासिका अग्रधार मनु, ध्यान महान बढ़ाया है ॥१॥

रूप सुधाकर अंजलि भरभर, पीवत अति सुख पाया है ।  
तारन-तरन जगत हितकारी, विरद सचीपति गाया है ॥२॥

तुम मुख-चन्द्र नयन के मारग, हिरदै माहिं समाया है ।  
प्रमतम दुःख आताप नस्यो सब, सुखसागर बढ़ि आया है ॥३॥

प्रकटी उर सन्तोष चन्द्रिका, निज स्वरूप दर्शाया है ।  
धन्य-धन्य तुम छवि 'जिनेश्वर', देखत ही सुख पाया है ॥४॥



## श्री जिनवर पद ध्यावें जे



श्री जिनवर पद ध्यावें जे नर, श्री जिनवर पद ध्यावें हैं ॥

तिनकी कर्म कालिमा विनशे, परम ब्रह्म हो जावें हैं  
उपल-अग्नि संयोग पाय जिमि, कंचन विमल कहावें हैं ॥

चन्द्रोज्ज्वल जस तिनको जग में, पण्डित जन नित गावें हैं  
जैसे कमल सुगन्ध दशों दिश, पवन सहज फैलावें हैं ॥

तिनहि मिलन को मुक्ति सुन्दरी, चित अभिलाषा लावें हैं  
कृषि में तृण जिमि सहज उपजियो, स्वर्गादिक सुख पावें हैं ॥

जनम-जरा-मृत दावानल ये, भाव सलिल तैं बुझावें हैं  
'भागचंद' कहाँ ताँई वरने, तिनहि इन्द्र शिर नावें हैं ॥



## सच्चे जिनवर सच्चे सारे



सच्चे जिनवर सच्चे, सारे जग के जाननहारे ।  
अन्तर्मुख रहते हो भगवान, फिर भी तारणहारे ॥टेक ॥

तुम न किसी को कुछ देते हो, बिन मांगे मिल जाता है ।  
इंद्रादिक चक्री का पद भी, सहज उसे मिल जाता है ।  
बिन मांगे ही मुक्ति देते, ऐसे देवनहारे ॥१॥

द्रव्य और गुण पर्यायों से, जो भी तुमको ध्याता है  
मोह भाव का नाश करे, वह निज स्वरूप पा जाता है  
भव रोगों से मुक्ति देते, ऐसे पालनहारे  
सच्चे जिनवर सच्चे, सारे जग के जाननहारे ॥२॥

तीन लोक तीनों कालों के तुम तो ज्ञाता वृष्टा हो  
लिकिन छह द्रव्यों के नहीं तुम अनु मात्र के सृष्टा हो  
कर्ता धर्ता नहीं जगत के फिर भी हो रखवारे  
सच्चे जिनवर सच्चे, सारे जग के जाननहारे ॥३॥

वस्तु स्वरूप बताते हो, कर्ता बुद्धि नशाते हो।  
पुण्य उदय से सुख नाही, स्वर्ग में दुख समझाते हो।  
सभी जीव भगवान बने ये उपदेश तुम्हारे ॥  
सच्चे जिनवर सच्चे, सारे जग के जाननहारे ॥४॥



## सांची कहें तोहरे दर्शन से



तर्ज : सांची कहें तोरे आवन से हमरा

सांची कहें तोरे दर्शन से वीरा,  
जीवन में आई बहार प्रभुजी  
पुण्योदय जागे प्रभु तोहरे आगे,  
झूठा सा लागे संसार प्रभूजी ॥टेक ॥

तन-मन में था कषायों का डेरा,  
जब से हुआ प्रभु दर्शन तेरा ।  
पीड़ा बिखर गई, आत्म निखार गई ।  
बरसे है आनंद अपार प्रभूजी ॥१...सांची॥

कर्मों से अब हम तो लड़-लड़ के हारे ।  
अपना तो जीवन है तोहरे सहारे  
दई दो जिनवाणी, जिनवर की वाणी,  
आत्म का कर दो उद्धार प्रभूजी ॥२...सांची॥



## सुरपति ले अपने शीश

सुरपति ले अपने शीश, जगत के ईश गये गिरिराजा,  
जा पाण्डुकशिला विराजा ॥ सुरपति... ॥



शिल्पी कुबेर वहाँ आकर के, क्षीरोदधि मेरु लगा करके,  
रुचि पैठि ले आये, सागर का जल ताजा,  
फ़िर न्हवन कियो जिनराजा ॥ सुरपति... ॥

नीलम पन्ना वैदुर्यमणि, कलशा लेकर के देवगणि,  
एक सहस आठ कलशा लेकर नभराजा,  
फ़िर न्हवन कियो जिनराजा ॥ सुरपति... ॥

वसु योजन गहराई वाले, चउ योजन चौडाई वाले,  
इक योजन मुख के कलश ढरे जिनमाथा,  
नहिं जरा डिगे शिशुनाथा ॥ सुरपति... ॥

सौधर्म इन्द्र अरु ईशान, प्रभु कलश करें धर युग पाना,  
अरु सनकुमार महेन्द्र दोउ जिनराजा,  
शिर चमर ढुरावें साजा ॥ सुरपति... ॥

ऐरावत पुनि प्रभु लाकर के, माता की गोद बिठा करके,  
अति अचरज ताण्डव नृत्य कियो दिविराजा,  
स्तुति करके जिनराजा ॥ सुरपति... ॥





# स्वर्ग से सुंदर अनुपम

स्वर्ग से सुंदर अनुपम है ये जिनवर का दरबार ।  
 श्रद्धा से जो ध्याता निश्चित हो जाता भव पार,  
 यही श्रद्धान हमारा, नमन हो तुम्हें हमारा ॥टेक॥

कभी न टूटे श्रद्धा, तुम पर भगवान हमारी ।  
 झुक जाएँगी जीवन, में प्रतिकूलता सारी ॥  
 है विश्वास हमारा, इक दिन छूटेगा संसार ।  
 यही श्रद्धान हमारा, नमन हो तुम्हें हमारा ॥१॥

निर्वान्धक है भगवन, ये आराधना हमारी ।  
 होवे दशा हमारी, बस जैसी हुई तुम्हारी ॥  
 रत्नत्रय के मार्ग चलेंगे, पाएँ मुक्तिद्वार ।  
 यही श्रद्धान हमारा, नमन हो तुम्हें हमारा ॥२॥

स्याद्वाद वाणी ही, भ्रम का अज्ञान मिटाए ।  
 निज गुण पर्यायें ही, अपना परिवार सदा है ॥  
 है विश्वास हमारा एक दिन, छूटेगा संसार ।  
 यही श्रद्धान हमारा, नमन हो तुम्हें हमारा ॥३॥

लोकालोक झलकते, कैवल्यज्ञान है पाया ।  
फिर भी शुद्धात्म ही, बस उपादेय बतलाया ॥  
मानो आज मिला मुझको, ये द्वादशांग का सार ॥यही..४ ॥



## हम यही कामना करते हैं



गोमटेश जय गोमटेश, मम हृदय विराजो-२  
गोमटेश जय गोमटेश, जय जय बाहुबली

हम यही कामना करते हैं, कामना करते हैं,  
ऐसा आने वाला कल हो, हो नगर नगर में बाहुबली,  
सारी धरती धर्मस्थल हो... हम यही कामना...

हम भेदमतों के समझें पर, आपस में कोई मतभेद ना हो,  
ऐसे आचरण करें जिन पर, कोई क्षोभ ना हो कोई खेद ना हो,  
जो प्रेम प्रीत की शिक्षा दे, वही धर्म हमारा संबल हो ॥

आराध्य वही हो जिन सबने, मानवता का संदेश दिया,  
तुम जीयो सभी को जीने दो, सबके हित यह उपदेश दिया,  
उनके सिद्धान्तों को माने, और जीवन का पथ उज्जवल हो ॥

चिंतामणी की चिंता ना करें, जीवन को चिंतामणी जानें,  
परिग्रह ना अनावश्यक जोड़ें, क्या है आवश्यक पहचानें,  
क्षण भंगुर सुख के हेतु कभी, नहीं चित्त हमारा चंचल हो ॥

हम नहीं दिगम्बर श्वेताम्बर, तेरहपंथी स्थानकवासी,  
सब एक पंथ के अनुयायी, सब एक देव के विश्वासी,  
हम जैनी अपना धर्म जैन, इतना ही परिचय केवल हो ॥

सब णमोकार का जाप करें, और पाठ करें भक्तामर का,  
नित नियमित पाले पंचशील, और त्याग करें आडम्बर का,  
वो कर्म करें जिन कर्मों से, सारे संसार का मंगल हो ॥

वैराग्य हुआ जिस पल प्रभु को, कोई रोक नहीं पाया मग में,  
अपनी उपमा बन आप खड़े, कोई और नहीं इन सा जग में,  
इनके सुमिरन से प्राप्त हमें, बाहुबल हो आतम बल हो ॥



हरो पीर मेरी



हरो पीर मेरी त्रिशला के लाला,  
मैं सेवक तुम्हारा बड़ा भोला भाला

मुझे ठग लिया अष्ट कर्मों ने स्वामी,  
भटकता फिरा मैं बना मूढगामी,  
विषय भोग ने मुझपे (हो...-२), ऐसा जादू डाला, हुआ मतवाला

मैं पर को ही अपना समझता रहा हूँ,  
वृथा विकथा में उलझता रहा हूँ,  
धरम क्या है मैंने कभी (हो.. -२), देखा न भाला, यूँ ही वक्त टाला

न देखा गया तुमसे जग के दुखों को ,  
तजा क्षण में अपने सारे सुखों को,  
अहिंसा से मेटी तुमने (हो..-२), हिंसा की ज्वाला, हुई दीपमाला

सुना है प्रभो आप सुनते हो सबकी,  
आती है पंकज को वो याद तबकी,  
सती चंदना का तुमने (हो..-२), संकट था टाला, यह सच है दयाला



हे ज्ञान सिन्धु भगवान्



(तर्जः—अशरीरी सिद्ध भगवान्,  
ऐ मेरे दिले नादां)

हे ज्ञान सिन्धु भगवान्, हम आये शरण तेरे,  
निज आत्म सुमरने से, मिट जाये भव फेरे ॥टेक॥

निज आत्म मग्न होर, महिमा को तेरी जाना,  
चैतन्य के वैभव से, स्वातम को पहिचाना,  
निज ज्ञान के अनुभव से, मिटे मोह माया घेरे ॥१॥

सम्यक्त्व के होने पर, सुख की कणिका प्रगटी,  
अतीन्द्रिय आनंद से क्रोध, मान, लोभ, विघटी,  
प्रज्ञामय छेनी से मिटे राग द्वेष घेरे ॥२॥

निःशल्य स्वभावी मैं, शल्यों को दूर करूँ,  
परमामृत औषधि से, कर्मों को दूर करूँ,  
त्रिगुप्ति में गुप्त होकर, काटो कर्मों के घेरे ॥३॥

द्रव्य, गुण, पर्यायें, सत् मैंने ऐसा जाना,  
निज द्रव्य की शक्ति को, मैंने अब पहिचाना,  
शुद्धात्म रमण करके, केवल निधि को तेरे ॥४॥

अध्यात्म में भीगे, आतम हित की अभिलाषा,  
रलाकर को पाऊँ, चिर शांति में हो वासा,  
आनंद के अनुभव से, मिले मुक्ति में डेरे ॥५॥



हे प्रभो चरणों में  
हे प्रभो चरणों में तेरे आ गये  
भावना अपनी का फ़ल हम पा गये ॥



वीतरागी हो तुम्हीं सर्वज्ञ हो,  
सप्त तत्वों के तुम्हीं मर्मज्ञ हो,  
मुक्ति का मारग तुम्हीं से पा गये, ॥भावना...

विश्व सारा है ज्ञलकृता ज्ञान में,  
किंतु प्रभुवर लीन हैं निज ध्यान में,  
ध्यान में निज ज्ञान को हम पा गये ॥भावना...

तुमने बताया जगत के सब आत्मा,

द्रव्य दृष्टि से सदा परमात्मा,  
आज निज परमात्मा पद पा गये ॥ भावना...



## हे वीर तुम्हारे द्वारे पर



हे वीर तुम्हारे द्वारे पर एक दर्श भिखारी आया है ।  
प्रभु दर्शन भिक्षा पाने को दो नयन कटोरे लाया है ॥

नहीं दुनियाँ मे कोई मेरा है आफत ने मुझको घेरा है ।  
प्रभु एक सहारा तेरा है जग ने मुझको ठुकराया है ॥

धन दौलत की कुछ चाह नहीं घरबार छुटे परवाह नहीं ।  
मेरी इच्छा तेरे दर्शन की दुनिया से चित्त घबराया है ॥

मेरी बीच भंवर मे नैया है बस तु ही एक खिवैया है ।  
लाखों को ज्ञान सिखाकर तुमने भवसिंधु से पार उतारा है ॥

आपस मे प्रीत व प्रेम नहीं तुम बिन अब हमको चैन नहीं ।  
अब तो तुम आकर दर्शन दो त्रिलोकी नाथ अकुलाया है ॥  
हे वीर तुम्हारे द्वारे पर एक दर्श भिखारी आया है ।



# है कितनी मनहार बहती



तर्ज़ : ना कजरे की धार - मोहरा

है कितनी मनहार, बहती शांति की धार  
 ये मूरतिया अविकार, लगती कितनी सुन्दर है,  
 ये कितनी सुन्दर है ।  
 सुखकर रूप लगा, और दुःख हर रूप लगा,  
 मंगल कर रूप लगा,  
 तुमसा और न ईश्वर है, तुम्ही सा कोई न ईश्वर है ।

निर्ग्रन्थ है तेरा बाना, छवि वीतराग क्या कहना,  
 नासा दृष्टि प्यारी, ये अनिमिष अद्भुत नयना,  
 हो हर्षित, मन लखे जब, हो पूजे तो मिटे विकार ॥कितनी...१॥

सारे जग में भटकाया, तेरा रूप ही सच्चा पाया,  
 इसलिये छोड़ के सबको, तेरे द्वार खिंचा चला आया,  
 ये दर्शन तूने देकर, पापों से दिया छुड़ा ॥सुखकर...२॥

तेरा रंग सुवरण जैसा, तेरे बोले सच्चे मोती,

तेरी शान्त सलोनी मुद्रा, तू ज्ञान की है ज्योति,  
तेरी मूरत, मोही आतम, 'प्रभु' देखूँ बार-बार ॥है कितनी...३॥



## शास्त्र भजन



### इतनी शक्ति हमें देना माता



इतनी शक्ति हमे देना माता, मन का विश्वास कमजोर हो ना ।  
हम चलें मोक्षमारग में हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना ॥टेक॥

दूर अज्ञान के हो अंधेरे, तू हमे ज्ञान की रौशनी दे ।  
हर बुराई से बचते रहें हम, हमको तू ऐसी मोक्षपुरी दे ।  
बैर हो न किसी का किसी से, भावना मन में बदले की हो ना  
हम चलें मोक्षमारग में हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना ॥१॥

हम न सोचें हमें क्या मिला है, हम ये सोचें किया क्या है अर्पण ।  
फूल समता के बाँटे सभी को, सबका जीवन ही बन जाये मधुवन ।

अपनी समता का जल तू बहा के, कर दे पावन हरेक मन का कोना  
हम चलें मोक्षमारग में हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना ॥२॥



## ओंकारमयी वाणी तेरी



तर्ज़ : फूलों सा चहरा तेरा

ओंकारमयी वाणी तेरी, जिनधर्म की शान है,  
समवशरण देखके, शांत छवि देखके, गणधर भी हैरान हैं ॥

स्वर्ण कमल पर, आसन है तेरा, सौ इंद्र कर रहे गुणगान है,  
दृष्टि है तेरी, नासा के ऊपर, सर्वज्ञता ही तेरी शान है,  
चाँद सितारों में, लाख हजारों में, तेरी यहां कोई मिसाल नहीं है,  
चार मुख दिखते, समोशरण मे, स्वर्ग में भी ऐसा कमाल नहीं है,  
हमको भी मुक्ति मिले हम सब का अरमान है ॥समवशरण ॥

सारे जहां में, फैली ये वाणी, गणधर ने गूंथी इसे शास्त्र में,  
सच्ची विनय से, श्रद्धा करे तो, ले जाती है मुक्ति के मार्ग में,  
कषाय मिटाय, राग को भगाये, इसके श्रवण से ये शांति मिलि है,  
सुख का ये सागर, आत्म में रमणकर,  
आत्म की बगिया में मुक्ति खिलि है,

हम सब भी तुमसा बनें ऐसा ये वरदान है ॥समवशरण ॥

मैं हूं त्रिकाली, ज्ञान स्वभावी, दिव्य ध्वनि का यही सार है.,  
शक्ति अनंत का, पिण्ड अखंड, पर्याय का भी ये आधार है,  
जेय झलकते हैं, ज्ञान की कला में, ऐसा ये अद्भुत कलाकार है,  
सृष्टि को पीता, फ़िर भी अछूता, तुझमें ये ऐसा चमत्कार है,  
जग में है महिमा तेरी गूंज रहा नाम है ॥समवशरण ॥



## करता हूं मैं अभिनंदन



तर्ज : करती हूँ व्रत तुम्हारा

करता हूं मैं अभिनन्दन, स्वीकार करो माँ,  
शरणागत अपने बालक का, उद्धार करो माँ ।  
हे माँ जिनवाणी, हे माँ जिनवाणी ॥टेक ॥

मिथ्यात्व वश रुल रहा हूं माँ, अशरण संसार में,  
पुण्योदय से आ गया हूं माँ, तेरे दरबार में ।  
सम्प्यक हो मेरी बुद्धि, उपकार करो माँ,  
शरणागत अपने बालक का, उद्धार करो माँ ॥१॥

इस पंचम काल में तीर्थकर, दर्शन हैं नहीं,  
सच्चे ज्ञानी गुरु दुर्लभ, मिलते कभी कभी ।  
अतएव मुझ निराधार की, आधार तुम्हीं माँ,  
शरणागत अपने बालक का, उद्धार करो माँ ॥२॥

जीवादि सात तत्वों का माँ, मर्म बताया,  
स्याद्वाद अनेकांत ले, निजरूप जताया ।  
निजरूप को लखकर माँ निज में लीन रहूँ माँ,  
शरणागत अपने बालक का, उद्धार करो माँ ॥३॥

भोगों से उदासीन निज पर की धारूँ करुणा,  
सम्यक श्रद्धा पूर्वक कषाय परिहरना ।  
रत्नत्रय पथ पर चलकर शिवनारी वर्ण माँ,  
शरणागत अपने बालक का, उद्धार करो माँ ॥  
हे माँ जिनवाणी, हे माँ जिनवाणी ॥४॥



## चरणों में आ पड़ा हूँ



तर्ज : सारे जहां से अच्छा...

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी

मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥टेक ॥

मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा  
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी ॥१॥

षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया  
भवफन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ॥२॥

रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में  
ठाड़े हैं मोक्ष-मग में, तकरार मोसों ठानी ॥३॥

दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता  
होवे 'सुदर्शन' साता, नहिं जग में तेरी सानी ॥४॥



## जब एक रत्न अनमोल

जब एक रत्न अनमोल है तो, रत्नाकर फ़िर कैसा होगा,  
जिसकी चर्चा ही है सुन्दर तो, वो कितना सुन्दर होगा,

इसके दीवाने हैं ज्ञानी, हर धुन में वही सवार रहे,



बस एक लक्ष्य अरु एक प्रक्ष्य, हर श्वांस उसी के लिये रहे,  
जिसको पाकर सब कुछ पाया, उससे भी बढ़कर क्या होगा ॥टेक ॥

जो वाणी के भी पार कहा, मन भी थक कर के रह जाये,  
इन्द्रिय गोचर तो दूर अतीन्द्रिय के भी कल्प में ना आये  
अनुभव गोचर कुछ नाम नहीं निर्नाम भी क्या अद्भुत होगा ॥टेक ॥

सप्त भंग पढे नौ पूर्व रटे, पर उस का स्वाद नहीं आये,  
उनसे ग्रसीते अनपढ भी ले स्वाद सफल होकर जाये,  
जड़ पुद्धल तो अनजान स्वयं, वो ज्ञान तुझे कैसे देगा ॥टेक ॥

जिसकी महिमा प्रभु की वाणी, जाती मन मोह को लहराये,  
जो साम्य गुणों के रत्नाकर सब हे परमेश्वर फ़रमाये  
तू माने या ना भी माने, परमात्मपना सम ना होगा ॥टेक ॥



## जिनवर की वाणी से



तर्ज : द्विलमिल सितारों का अंगन होगा  
यशोमती मैया से बाले

जिनवर की वाणी से, हमने ये जाना ।  
सबसे सरल है निजपद पाना ॥टेक ॥

सोये थे आनादि से हम, मोह की गहल में,  
वीर की वाणी से आये, चेतना महल में ।

आज समझ में आया ओ ੫੫,  
आज समझ में आया जग है बेगाना ।  
सबसे सरल है निजपद पाना ॥१॥

अपनी निधि को भूला दुःखी संसारी,  
प्रभु से पदार्थ माँगे, भक्त बन भिखारी ।

भोगों के भगत तेरा ओ ੫੫,  
भोगों के भगत तेरा कैसे होगा जाना ।  
सबसे सरल है निजपद पाना ॥२॥

गुरु ने बताया मारग सीधा और सपाट रे,  
तेरी उपयोग परिणति खा जावे कुलाटरे ।

इसी रास्ते से होगा ओ ੫੫,  
इसी रास्ते से होगा शिवपुर जाना ।  
सबसे सरल है निजपद पाना ॥३॥





# जिनवर चरण भक्ति वर गंगा

जिनवर चरण-भक्ति वर गंगा, ताहि भजो भवि नित सुखदानी ।  
स्याद्वाद हिमगिरि तैं उपजी, मोक्ष-महासागरहि समानी ॥टेक॥

ज्ञान-विरागरूप दोऊ ढाये, संयम भाव मगर हित आनी ।  
धर्म-ध्यान जहाँ भँवर परत है, शम-दम जामें सम-रस पानी ॥२॥

जिन-संस्तवन तरंग उठत हैं, जहाँ नहीं भ्रम-कीच निशानी ।  
मोह-महागिरि चूर करत हैं, रत्नत्रय शुद्ध पन्थ ढलानी ॥३॥

सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी, जहाँ रमत नित सम-रस ठानी ।  
'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करि, फिर नहीं होत मलिन भवि प्राणी ॥४॥



# जिनवाणी अमृत रसाल



जिनवाणी अमृत रसाल, रसिया आवो जी सुणवा ॥टेक॥

छह द्रव्यों का ज्ञान करावे, नव तत्त्वों का रहस्य बतावे  
आत्म तत्त्व है महान, रसिया आवोजी सुणवा ।

जिनवाणी अमृत रसाल, रसिया... आवो जी सुणवा ॥१॥

विषय कषाय का नाश करावे, निज आत्म से प्रीति बढ़ावे  
मिथ्यात्व का होवे नाश, रसिया... आवोजी सुणवा ।  
जिनवाणी अमृत रसाल, रसिया आवो जी सुणवा ॥२॥

अनेकान्तमय धर्म बतावे, स्याद्वाद शैली कथन में आवे  
भवसागर से होवे पार, रसिया... आवोजी सुणवा ।  
जिनवाणी अमृत रसाल, रसिया आवो जी सुणवा ॥३॥

जो जिनवाणी सुन हरषाए, निश्चय ही वह भव्य कहावे  
स्वाध्याय तप है महान्, रसिया... आवोजी सुणवा ।  
जिनवाणी अमृत रसाल, रसिया आवो जी सुणवा ॥४॥



## जिनवाणी को नमन करो



तर्ज : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ

जिनवाणी को नमन करो, यह वाणी है भगवान की ।  
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की ।  
वन्दे जिनवरम्, वन्दे गुरुवरम् ... ॥टेक॥

स्याद्वाद की धारा बहती, अनेकान्त की माता है ।  
मद-मिथ्यात्व कषायें गलती, राग-द्वेष जल जाता है ।  
पढ़ने से है ज्ञान जागता, पालन से मुक्ति मिलती ।  
जड़ चेतन का ज्ञान हो इससे, कर्मों की शक्ति हिलती ।  
इस वाणी को नमन करो यह वाणी है भगवान की ।  
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की ॥1॥

इसके पूत-सपूत अनेकों कुन्दकुन्द जैसे ज्ञानी ।  
खुद भी तरे अनेकों तारे, मुक्ति कला के वरदानी ॥  
महावीर की वाणी है, गुरु गौतम ने इसको धारी ।  
सत्य धर्म का पाठ पढ़ाती, भक्तों को है हितकारी ।  
सब मिल करके नमन करो यह वाणी केवलज्ञान की ।  
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की ॥2॥

शुद्धात्म है सिद्ध स्वरूपी, जिनवाणी बतलाती है ।  
शुद्ध ज्ञानमय चिदानंदमय, बार-बार समझाती है ।  
द्रव्य भाव नोकर्म हैं न्यारे, प्रगट प्रत्यक्ष दिखाती है ।  
स्वसंवेदन से अनुभव में, भी प्रमाणता आती है ।  
मोह नींद से आई जगाने भव्य-जनों के काम की ।  
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की ॥3॥





# जिनवाणी जग मैया

जिनवाणी जग मैया, जनम दुख मेट दो  
जनम दुख मेट दो, मरण दुख मेट दो ॥

बहुत दिनों से भटक रहा हूं, ज्ञान बिना हे मैया  
निर्मल ज्ञान प्रदान सु कर दो, तू ही सच्ची मैया ॥

गुणस्थानों का अनुभव हमको, हो जावे जगमैया  
चढँ उन्हीं पर क्रम से फ़िर, हम होवें कर्म खिपैया ॥

मेट हमारा जन्म मरण दुख, इतनी विनती मैया  
तुमको शीश त्रिलोकी नमावे, तू ही सच्ची मैया ॥

वस्तु एक अनेक रूप है, अनुभव सबका न्यारा  
हर विवाद का हल हो सकता, स्यादवाद के द्वारा ॥



## जिनवाणी माँ आपका शुभ



जिनवाणी माँ आपका शुभ, शरण मिल गया ।  
जिनवाणी को सुनकर मेरा, हृदय खिल गया ॥टेक॥

मेटो जामन मरण हमारा, यही है अरमान ।  
लाख चौरासी भटक रहे हम हुआ न आत्म ज्ञान ॥  
मुक्ति का पद दो यही, अरमान रह गया ।  
जिनवाणी माँ आपका शुभ, शरण मिल गया ॥१॥

मोह तिमिर का नाश करके, दुख का हो अवसान ।  
शाश्वत सुख को प्राप्त करके करे इसी का पान ।  
मुक्ति का पावन संदेशा, आज मिल गया ।  
जिनवाणी माँ आपका शुभ, शरण मिल गया ॥२॥

अब तो केवल आप शरणा, करें सुधा रस पान ।  
माँ जिनवाणी को है वंदन, जग मेन आप महान ॥  
तेरे चरणों का मैं सच्चा, दास बन गया ।  
जिनवाणी माँ आपका शुभ, शरण मिल गया ।  
जिनवाणी को सुनकर मेरा, हृदय खिल गया ॥३॥





# जिनवाणी माँ जिनवाणी माँ

जिनवाणी माँ जिनवाणी माँ, जयवन्तो मेरी जिनवाणी माँ ॥

शुद्धातम का ज्ञान कराती, चिदानन्द रस पान कराती,  
कुन्दकुन्द से भेंट कराती, आत्मख्याति का बोध कराती,  
जिनवाणी माँ...

नित्यबोधनी माँ जिनवाणी, स्व पर विवेक जगाती वाणी,  
मिथ्याभ्रान्ति नशाती वाणी, ज्ञायक प्रभु दरशाती वाणी,  
जिनवाणी माँ...

असताचरण नसाती वाणी, सत्य धर्म प्रगटाती वाणी,  
भव दुख हरण पियूष समानी, भव दधि तारक नौका जानी,  
जिनवाणी माँ...

जो हित चाहो भविजन प्राणी, पढो सुनो ध्याओ जिनवाणी,  
स्वानुभूति से करो प्रमानी, शिवपथ को है यही निशानी,  
जिनवाणी माँ...





# जिनवाणी माँ तेरे चरण

जिनवाणी माँ तेरे चरण आया -२  
ज्ञान की ये दिव्य ज्योति आज पाया, सतज्ञान पाया

शुद्धात्म तत्व दिखाया, रत्नत्रय पथ प्रगटाया  
वीतरागता ही मुक्ति का पथ, हमें शुभ व्यवहार बताया  
मैं शुद्ध- बुद्ध एक अविरुद्ध -२  
ऐसा ही तो सम्यकज्ञान कराया  
जिनवाणी माँ तेरे चरण आया -२  
ज्ञान की ये दिव्य ज्योति आज पाया, सद्ज्ञान पाया ॥१॥

नव तत्वों में छुपा हुआ जो, हमें ज्ञान प्रकाश बताया  
चिदानंद चैतन्यराज का, दर्शन सदा ही कराया  
मैं तो हूँ अखण्ड चैतन्यपिंड -२  
ऐसा ही तो सम्यकज्ञान कराया  
जिनवाणी माँ तेरे चरण आया -२  
ज्ञान की ये दिव्य ज्योति आज पाया, सद्ज्ञान पाया ॥२॥

परभावों से भिन्न बताया, निजआत्म दर्शन कराया  
शुद्धात्म को ही बताया, हमें सिद्ध समान बताया  
मैं सिद्ध समान मैं हूँ भगवान -२

ऐसा ही तो सम्यकज्ञान कराया  
जिनवाणी माँ तेरे चरण आया -२  
ज्ञान की ये दिव्य ज्योति आज पाया, सद्ज्ञान पाया ॥३॥



## जिनवाणी माता दर्शन की



जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ ॥टेक ॥

प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधरजी को ध्याऊँ  
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ ॥१॥

योनि लाख चौरासी माहीं, घोर महादुःख पायो  
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो ॥२॥

जानै थाँको शरणो लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनो  
जनम-मरण मिटा के माता, मोक्ष महापद दीनो ॥३॥

ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता  
द्वादशांग चौदह पूरव का, कर दो हमको ज्ञाता ॥४॥



# जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि



जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये ॥टेक ॥

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण में, काल अनादि घूमे,  
सम्यग्दर्शन भयौ न तातैं, दुःख पायो दिन दूने ॥१॥

है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता  
हम पावैं निजस्वरूप आपनो, क्यों न बनैं गुणज्ञाता ॥२॥

जीव अनन्तानन्त पठाये, स्वर्ग-मोक्ष में तूने  
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने ॥३॥

भव्यजीव हैं पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दुःख से हारे  
इनको जिनवर बना शीघ्र अब, दे दे गुण-गण सारे ॥४॥

औगुण तो अनेक होत हैं, बालक में ही माता  
पै अब तुम-सी माता पाई, क्यों न बने गुणज्ञाता ॥५॥

क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे दोष अनन्ते भव के  
शिव का मार्ग बता दो माता, लेहु शरण में अबके ॥६॥

जयवन्तो जिनवाणी जग में, मोक्षमार्ग प्रवर्तो  
श्रावक 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर तो ॥७॥



## जिनवाणी मोक्ष नसैनी है



जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ॥टेक ॥

जीव कर्म के जुदा करन को, ये ही पैनी छेनी है ॥  
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ॥१॥

जो जिनवाणी नित अभ्यासे, वो ही सच्चा जैनी है ॥  
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ॥२॥

जो जिनवाणी उर न धरत है, सैनी हो के असैनी है ॥  
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ॥३॥

पढ़ो लिखो ध्यावो जिनवाणी, यदि सुख शांति लेनी है ॥  
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ॥४॥





तर्ज - तू कितनी अच्छी है...

# तू कितनी मनहर है

तू कितनी मनहर है, तू कितनी सुखकर है ।  
सुपथ दिखलाती है, ओऽS माँ ओऽS माँ ॥

वस्तु स्वरूप की समझ सिखाती, निज को निज का मार्ग दिखाती ॥  
स्याद्वाद अरु अनेकांत निश्चय व्यवहार बताती ।  
सुख के आंचल से, नयों के काजल से, मोक्ष मग दर्शाया ॥१॥

जीना सिखाती है माँ तेरी बतियाँ, अब छोड़ दुख मय चहुँ गतियाँ ॥  
पार भई तोरी शरण से सीता जैसी सतियाँ ।  
भय जो मृत्यु का, स्वप्न तड़पाता था, निंदिया टूट गयी ॥२॥

सम्यक दर्शन ज्ञान चरण मय, शुद्धात्म इक शरण है सुखमय ॥  
मुक्ति महल में पग ढै धरकर तज दूंगा भव दुखमय ।  
'समकित' पाकर के, दृष्टि उर लाकर के, सिद्ध पद पाऊँगा ॥३॥



## धन्य धन्य जिनवाणी माता



धन्य धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आये,  
परमागम का मंथन करके, शिवपुर पथ पर धाये,  
माता दर्शन तेरा रे, भविक को आनंद देता है,  
हमारी नैया खेता है ॥

वस्तु कथंचित नित्य अनित्य, अनेकांतमय शोभे,  
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे,  
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है,  
जगत का फेरा मिटता है ॥

नयनिश्चय व्यवहार निरूपण, मोक्ष मार्ग का करती,  
वीतरागता ही मुक्ति पथ, शुभ व्यवहार उचरती,  
माता तेरी सेवा से, मुक्ति का मार्ग खुलता है,  
महा मिथ्यातम धुलता है ॥

तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते,  
तेरी अनुपम लोरी क्या है, अनुभव की बरसाते,  
माता तेरी वर्षा मे, निजानंद झरना झरता है,  
अनुपमानंद उछलता है ॥

नव तत्वो मे छुपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती,  
चिदानंद चैतन्य राज का, दर्शन सदा कराती,

माता तेरे दर्शन से, निजातम् दर्शन होता है,  
सम्यकदर्शन होता है ॥



## धन्य धन्य वीतराग वाणी



धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी  
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥टेक॥

उत्पाद व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप ।  
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥१॥

नित्य अनित्य अरु एक अनेक, वस्तु कथंचित भेद अभेद  
अनेकान्त रूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥२॥

भाव शुभाशुभ बंध स्वरूप, शुद्ध चिदानन्दमय मुक्ति रूप  
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी ॥३॥

चिदानन्द चैतन्य आनन्दधाम, ज्ञान स्वभावी निजातम् राम  
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥४॥





# नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी

नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी, चरणों में सादर वंदन ।  
भटक-भटक कर हार गये हम, मेटो भव-भव का क्रंदन ॥टेक॥

मैं अनादि से मोह नींद की, मदहोशी में मस्त रहा ।  
परद्रव्यों की आसक्ति में, हरपल में संलग्न रहा ।  
खोज रहा पर में सुख को मैं, व्यर्थ गया सारा मंथन ॥नित्य...१॥

अनेकांतमय जिनवाणी ने, मुक्ति का पथ दिखलाया ।  
सप्त तत्व और छह द्रव्यों का, ज्ञान जगत को करवाया ।  
हम भी प्रभु वाणी पर चलकर, मेटेंगे भव के बंधन ॥नित्य...२॥

शुद्धात्म स्वरूप से सज्जित, द्वादशांगमय जिनवाणी ।  
पावन वाणी को अपनाकर, लाखों संत बने ज्ञानी ।  
जयवंतो हे माँ जिनवाणी, बार-बार हम करे नमन ॥नित्य...३॥



# परम उपकारी जिनवाणी



तर्ज : है अपना दिल तो आवारा

परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है ।

हुआ निर्भार अन्तर में, परम आनन्द छाया है ॥टेक ॥

अहो परिपूर्ण ज्ञाता रूप, प्रभु अक्षय विभवमय हूँ ।  
सहज ही तृप्त निज में ही, न बाहर कुछ सुहाया है ॥  
परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है ॥१॥

उलझकर दुर्विकल्पों में, बीज दुख के रहा बोता ।  
ज्ञान-आनन्दमय अमृत, धर्म-माता पिलाया है ॥  
परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है ॥२॥

नहीं अब लोक की चिन्ता, नहीं कर्मों का भय किंचित् ।  
ध्येय निष्काम ध्रुव ज्ञायक, अहो दृष्टि में आया है ॥  
परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है ॥३॥

मिटी भ्रान्ति मिली शान्ति, तत्त्व अनेकान्तमय जाना ।  
सार वीतरागता पाकर, शीश सविनय नवाया है ॥  
परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है ॥४॥



मंगल बेला आई आज श्री



मंगल बेला आई आज, श्री जिनवाणी पाई आज ॥टेक ॥

वीर गिरी से सरिता फूटी, धार रही जिसे गौतम धरती  
कुंदकुन्द ने करके स्नान, सार निकाला समय महान  
मंगल बेला आई आज, श्री जिनवाणी पाई आज ॥१॥

दिव्य देशना निर्मल जल से, भेद ज्ञान की धारा छलके  
परिणति का प्रक्षालन आज, मैं हूं ज्ञायक चेतन राज  
मंगल बेला आई आज, श्री जिनवाणी पाई आज ॥२॥

एक ज्ञान मेरा स्वभाव है, राग द्वेष सब अन्य जात है  
क्षण क्षण बदले यह संसार, मैं हूं त्रिकाली निज आधार  
मंगल बेला आई आज, श्री जिनवाणी पाई आज ॥३॥

जिनप्रवचन का यही सार है, समयसार ही नियमसार है  
शुद्धात्म ही है भगवान, परिणति झाँके ले पहचान  
मंगल बेला आई आज, श्री जिनवाणी पाई आज ॥४॥



**मन भाया, तेरे दर आया**



तर्ज : मन डोले, मेरा तन डोले - नागिन

मन भाया, तेरे दर आया, दिल में खुशी अपार रे,  
तेरा दरश मिला है सांवरिया ॥टेक ॥

मधुर मधुर हृदय में मेरे, अद्भुत उमंग जगी है,  
दूँढ़ा अन्तर पट में पाया, दर्शन चाह लगी है,  
तन झूला, मन है फूला, जैसे छाई चहुँ बहार रे,  
तेरा दरश मिला है सांवरिया ॥मन...१ ॥

चमक दमक से छवि की शोभा, छाई अजब निराली,  
दर्शक का चित हरने को जिमि, है अमृत की प्याली,  
मन राचे, झूम झूम नाचे, 'वृद्धि' छिन-छिन रहा निहार,  
तेरा दरश मिला है सांवरिया ॥मन...२ ॥



## माँ जिनवाणी ज्ञायक बताय



तर्ज : दो हंसों का जोड़ा

माँ जिनवाणी ज्ञायक बताय दियो रे,  
आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ।

सविनय शीश नवाय रहो रे ।  
आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ॥टेक॥

काल अनादि से भ्रमता फिरता, जन्म-जन्म में बहु दुःख सहता ।  
अब सब ही दुःख पलाय गयो रे, आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ।

जो प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है, ज्ञायक शुद्ध अभेद सही है ।  
स्वयं सिद्ध दरशाय दियो रे, आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ।

पर अवलंबन छोड़ जो देखा, निज का वैभव प्रत्यक्ष देखा ।  
सम्यक रत्नत्रय प्रकटाय रह्यो रे, आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ।

अब न कामना कोई बाकी, निज महिमा सर्वोत्तम है आंकी ।  
निज महिमा में डुलोय रह्यो रे, आनंद भयो भारी, आनंद भयो रे ।



## माँ जिनवाणी तेरो नाम

माँ जिनवाणी तेरो नाम, सारे जग में धन्य है,  
तेरी उतारे आरती माँ, तेरो नाम धन्य है ॥



ज्ञान की ज्योति तू ही जलाती,  
भक्तों को भगवान् तू ही बनाती,  
अमृत पिलाती, मारग दिखाती, तेरो नाम धन्य है ॥माँ॥

अरिहन्त भासित जिनवाणी प्यारी,  
गणधर रची और मुनियों ने धारी,  
जीवन की नैया को तू तार दे माँ, तेरो नाम धन्य है ॥माँ॥

तेरे श्रवण से महिमा समाई,  
चैतन्य चैतन्य की ध्वनि आई,  
सन्तों के हृदय को, ईश्वर के गृह को तेरे गुंजाते छन्द हैं ॥माँ॥

सुनने से संसार का रस शिथिल हो,  
गुनने से ज्ञायक का मंगल मिलन हो,  
तुझको नमन है, तुझको नमन है, तेरो नाम धन्य है ॥माँ॥



## माँ जिनवाणी बसो हृदय में



माँ जिनवाणी बसो हृदय में, दुख का हो निस्तारा  
नित्यबोधनी जिनवर वाणी, वन्दन हो शतवारा ॥टेक॥

वीतरागता गर्भित जिसमें, ऐसी प्रभु की वाणी  
जीवन में इसको अपनाएँ, बन जाए सम्यक्ज्ञानी  
जन्म-जन्म तक ना भूलूँगा, यह उपकार तुम्हारा ॥१॥

युग युग से ही महादुखी है, जग के सारे प्राणी  
मोहरूप मदिरा को पीकर, बने हुए अज्ञानी  
ऐसी राह बता दो माता, मिटे मोह अंधियारा ॥२॥

द्रव्य और गुणपर्यायों का, ज्ञान आपसे होता  
चिदानन्द चैतन्यशक्ति का, भान आपसे होता  
मैं अपने में ही रम जाऊँ, यही हो लक्ष्य हमारा ॥३॥

भटक भटक कर हार गए अब, तेरी शरण में आए  
अनेकांत वाणी को सुनकर, निज स्वरूप को ध्याएँ  
जय जय जय माँ सरस्वती, शत शत नमन हमारा ॥४॥



**माता तू दया करके**



माता तू दया करके, कर्मों से छुड़ा देना ।  
इतनी सी विनय तुमसे, चरणों में जगह देना ॥टेक ॥

माता मैं भटका हूं, माया के अंधेरे में,  
कोई नहीं मेरा है, इस कर्मों के रेले में ।  
कोई नहीं मेरा है तुम धीर बंधा देना ॥इतनी...१ ॥

जीवन के चौराहे पर मैं सोच रहा कब से,  
जाऊं तो किधर जाऊं, यह पूछ रहा मन से ।  
पथ भूल गया हूं मैं, तुम राह दिखा देना ॥इतनी...२ ॥

लाखों को उबारा है, मुझको भी उबारो तुम,  
मंझधार में नैया है, उसको भी तिरा दो तुम ।  
मंझधार में अटका हूं, उस पार लगा देना ॥इतनी...३ ॥



## मीठे रस से भरी जिनवाणी

मीठे रस से भरी जिनवाणी लागे, जिनवाणी लागे ।  
म्हने आत्मा की बात घणी प्यारी लागे ।



आत्मा है उजरो उजरो, तन लागे म्हने कालो ।  
शुद्ध आत्म की बात, अपने मन में बसा लो ।  
म्हने चेतना की बात, घणी प्यारी लागे, मनहारी लागे ।  
म्हने आत्मा की बात घणी प्यारी लागे ॥१॥

देह अचेतन, मैं हूँ चेतन, जिनवाणी बतलाये ।  
जिनवाणी है सच्ची माता, सच्चा मार्ग दिखाए ।  
अरे मान ले तू चेतन, भैया काई लागे, थारो काई लागे ।  
म्हने आत्मा की बात घणी प्यारी लागे ॥२॥

नहीं भावे म्हाने लाडू पेड़ा, नहीं भावे काजू ।  
मोक्षपुरी में जाऊँगा मैं बन के दिगंबर साधू ।  
म्हने मोक्ष महल को, मारग प्यारो लागे, घणो प्यारो लागे  
म्हने आत्मा की बात घणी प्यारी लागे ॥३॥



## म्हारी माँ जिनवाणी

म्हारी माँ जिनवाणी थारी हो जयजयकार ॥



चरणां में राखी लीजो, भव से अब तारी लीजो ।

कर दीज्यो इतनो उपकार, थारी हो जयजयकार ॥  
म्हारी माँ जिनवाणी थारी हो जयजयकार ॥1॥

कुँदकुँद सा थारा बेटा, दुखडा सब जग का मेटा ।  
रच्यो समय को सार, थारी हो जयजयकार ॥  
म्हारी माँ जिनवाणी थारी हो जयजयकार ॥2॥

जिनवाणी सुन हरषाये, निश्चित ही भव्य कहावे ।  
हो जावे भव से पार, थारी हो जयजयकार ॥  
म्हारी माँ जिनवाणी थारी हो जयजयकार ॥3॥

तत्त्वों का सार बतावे, ज्ञायक से भेंट करावे ।  
कियो अनंत उपकार, थारी हो जयजयकार ॥  
म्हारी माँ जिनवाणी थारी हो जयजयकार ॥4॥



## ये शाश्वत सुख का प्याला



ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥

ध्रुव अखंड है, आनंद कंद है, शुद्ध बुद्ध चैतन्य पिण्ड है

ध्रुव की फ़ेरो माला ॥कोई॥

मंगलमय है मंगलकारी, सत चित आनंद का है धारी  
ध्रुव का हो उजियारा ॥कोई॥

ध्रुव का रस तो ज्ञानी पावे, जन्म मरण का दुःख मिटावे  
ध्रुव का धाम निराला ॥कोई॥

ध्रुव की धुनी मुनी रमावे, ध्रुव के आनंद में रम जावे  
ध्रुव का स्वाद निराला ॥कोई॥

ध्रुव के रस में हम रम जावें, अपूर्व अवसर कब यह आवे  
ध्रुव का हो मतवाला ॥कोई॥



## शरण कोई नहीं जग में

शरण कोई नहीं जग में, शरण बस है जिनागम का  
जो चाहो काज आत्म का, तो शरणा लो जिनागम का ॥



जहाँ निज सत्त्व की चर्चा, जहाँ सब तत्त्व की बातें

जहाँ शिवलोक की कथनी, तहाँ डर है नहीं यम का ॥  
शरण कोई नहीं जग में, शरण बस है जिनागम का ॥१॥

इसी से कर्म नसते हैं, इसी से भरम भजते हैं  
इसी से ध्यान धरते हैं, विरागी वन में आत्म का ॥  
शरण कोई नहीं जग में, शरण बस है जिनागम का ॥२॥

भला यह दाव पाया है, जिनागम हाथ आया है  
अभागे दूर क्यों भागे, भला अवसर समागम का ॥  
शरण कोई नहीं जग में, शरण बस है जिनागम का ॥३॥

जो करना है सो अब करलो, बुरे कामों से अब डरलो  
कहे 'मुलतान' सुन भाई, भरोसा है न इक पल का ॥  
शरण कोई नहीं जग में, शरण बस है जिनागम का  
जो चाहो काज आत्म का, तो शरण लो जिनागम का ॥४॥



## शांति सुधा बरसाये

शांति सुधा बरसाए जिनवाणी  
वस्तुस्वरूप बताए जिनवाणी ॥टेक॥



पूर्वापर सब दोष रहित है, वीतराग मय धर्म सहित है  
परमागम कहलाए जिनवाणी ॥१॥

मुक्ति वधू के मुख का दरपण, जीवन अपना कर दें अरपण  
भव समुद्र से तारे जिनवाणी ॥२॥

रागद्वेष अंगारों द्वारा, महाक्लेश पाता जग सारा  
सजल मेघ बरसाए जिनवाणी ॥३॥

सात तत्त्व का ज्ञान करावे, अचल विमल निज पद दरसावे  
सुख सागर लहराए जिनवाणी ॥४॥



## शास्त्रों की बातों को मन



तर्ज़ : माता तू दया करके

शास्त्रों की बातों को मन से ना जुदा करना,  
संकट जो कोई आये स्वाध्याय सदा करना ॥  
जीवन के अंधेरों में दुखों का बीड़ा है,  
पहचान जरा कर ले फिर जड़ से मिटा देना ॥

हम राह भटकते हैं, मंजिल का नहीं पाना,  
चहुं ओर अंधेरा है बुझा दीप हमारा है ।  
हमें राह दिखा जिनवर भव पार हमें करना ॥

धन दौलत की दुनिया अपना ही पराया है,  
तू सार करे किसकी माटी की काया है,  
पहचान जरा करले फ़िर जग से विदा लेना ॥



## सांची तो गंगा

सांची तो गंगा यह वीतरागवानी  
अविच्छिन्न धारा निज धर्म की कहानी ॥टेक ॥



जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी  
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥१॥

सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी  
संतचित मरालवृंद रमैं नित्य ज्ञानी ॥२॥

जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्रानी  
'भागचन्द' निहचै घटमाहिं या प्रमानी ॥३॥



## सीमंधर मुख से



सीमंधर मुख से फुलवा खिरे, जाकी कुन्दकुन्द गूंथें माल रे  
जिनजी की वाणी भली रे ॥

वाणी प्रभू मन लागे भली, जिसमें सार समय शिरताज रे ॥१॥

गूंथा पाहुड अरु गूंथा पंचास्ति, गूंथा जो प्रवचनसार रे ॥२॥

गूंथा नियमसार, गूंथा रयणसार, गूंथा समय का सार रे ॥३॥

स्याद्वादरूपी सुगन्धी भरा जो, जिनजी का ओंकारनाद रे ॥४॥

वन्दू जिनेश्वर, वन्दू मैं कुन्दकुन्द, वन्दू यह ओंकार नाद रे ॥५॥

हृदय रहो, मेरे भावे रहो, मेरे ध्यान रहो जिनबैन रे ॥६॥

जिनेश्वर देव की वाणी की गूंज, गूंजती रहो दिन रात रे ॥७॥



## सुन सुन रे चेतन प्राणी



तर्ज़ : ऐ मेरे वतन के लोगों

सुन सुन रे चेतन प्राणी - नित ध्यालो जिनवरवाणी  
दुर्लभ नर भव को पाकर - बन जावो सम्यक्ज्ञानी ॥

मानव कुल तुमने पाया, जिनवाणी का शरणा पाया ।  
समझाते गुरुवर ज्ञानी, प्रभु वाणी जग कल्याणी ।  
अब तज दो विषय कषाएँ - छोड़ो सारी नादानी ।  
दुर्लभ नर भव को पाकर बन जावो सम्यक्ज्ञानी ॥१॥

यह जीवन है अनमोला, इसको न व्यर्थ खो देना ।  
जीवन में धर्म कमाकर, पर्याय सकल कर लेना ।  
यह नित्य बोधनी वाणी, श्री कुंदकुंद की वाणी ।  
दुर्लभ नर भव को पाकर बन जावो सम्यक् ज्ञानी ॥२॥

चलते चलते जीवन की कब जाने शाम हो जाए ।  
ना जाने जलता दीपक, तूफां में कब बुझ जाए ।

यह अवसर चूक न जाना, प्रभु वाणी भूल न जाना ।  
भोगों में उलझ उलझ कर, जिनधर्म को न बिसराना ।  
सुख का पथ दिखलाती है, माँ सरस्वती जिनवाणी ।  
दुर्लभ नर भव को पाकर बन जाओ सम्यक्ज्ञानी ॥३॥



## हम लाए हैं विदह से



हम लाए हैं विदेह से तत्त्वों के ज्ञान को  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ।  
मक्खन ही परोसा है छाछ को निकाल के  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥

देखो ये ग्रंथराज है चिंतामणी जैसा  
आचार्य पद्मनन्दी ने निज भाव से लिखा ।  
भगवान आत्मा कह जगाया जहान को  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥१॥

दुनिया में जैन धर्म का न्यारा है रास्ता  
पुद्गल का जीव से नहीं है कोई वास्ता ।  
भूलो नहीं समझो जरा इस भेद-ज्ञान को

जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥२॥

कर्तत्व बुद्धी से दुखी होती है ये दुनियां  
रागों में धर्म मान कर बैठी है ये दुनियाँ  
आओ जरा समझो अरे ज्ञायक स्वभाव को  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥३॥

जिनवाणी का देखो सदा बहुमान ही करना  
जिनवाणी को जिनदेव से कमती न समझना ।  
अभ्यास से इसके मिटालो मिथ्यात्व को  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥४॥

जिनवाणी जिन की वाणी है अपमान न करना  
अग्नि व जलाशय कभी इसको न दिखाना ॥  
अनुभव की कलम से इसे लिखा अरे भव्यों  
जिनवाणी को रखना अरे भव्यों संभाल के ॥५॥



हमें निज धर्म पर चलना



हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज जिनवाणी ।  
सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रोज जिनवाणी ॥१॥

चौरासी लाख योनि में, भटक नर जन्म पाया है ।  
निधि निज भूल नहिं पावें, सिखाती रोज जिनवाणी ॥२॥

ग्रहण करना नहीं करना , कि क्या निज क्या पराया है ।  
भेद-विज्ञान इसका भी, सिखाती रोज जिनवाणी ॥३॥

धनिक निर्धन स्वजन परिजन, कि ज्ञानी या अज्ञानी है ।  
भेद तज मार्ग सुखकारी, सिखाती रोज जिनवाणी ॥४॥

जिन्हें संसार सागर से, उतर भव पार जाना है।  
उन्हें सुख के किनारे पर, लगाती रोज जिनवाणी ॥५॥

सत्य सुख सार पा इसमें, पतित तम पार जाना है ।  
शरण 'दोषी' यही तेरी, है तारनहार जिनवाणी ॥६॥

हमें संसार सागर में, रुलाते कर्म हैं आठों ।  
करें किस भाँति इनका क्षय, सिखाती रोज जिनवाणी ॥७॥

करें जो भव्य मन निर्मल, पठन कर शीघ्र तिर जावे ।  
मार्ग शिवपुर में जाने का, दिखाती रोज जिनवाणी ॥७॥



## हे जिनवाणी माता तुमको



हे जिनवाणी माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम ।  
शिवसुखदानी माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम ॥

तू वस्तु-स्वरूप बतावे, अरु सकल विरोध मिटावे ।  
हे स्याद्वाद विख्याता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम ॥

तू करे ज्ञान का मण्डन, मिथ्यात कुमारग खण्डन ।  
हे तीन जगत की माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम  
॥

तू लोकालोक प्रकाशे, चर-अचर पदार्थ विकाशे ।  
हे विश्वतत्त्व की ज्ञाता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम ॥

शुद्धात्म तत्त्व दिखावे, रत्नत्रय पथ प्रकटावे ।  
निज आनन्द अमृतदाता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम

॥

हे मात! कृपा अब कीजे, परभाव सकल हर लीजे ।  
‘शिवराम’ सदा गुण गाता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम

॥



## हे शारदे माँ



हे शारदे माँ, हे शारदे माँ, अज्ञानता से हमें तार दे माँ॥

मुनियों ने समझी, गुणियों ने जानी,  
शास्त्रों की भाषा, आगम की वाणी।  
हम भी तो जानें, हम भी तो समझें,  
विद्या का फ़ल तो हमें माँ तू देना॥

तू ज्ञानदायी हमें ज्ञान दे दे,  
रत्नत्रयों का हमें दान दे दे।  
मन से हमारे मिटा दे अंधेरा,  
हमको उजालों का शिवद्वार दे माँ॥

तू मोक्ष दायी ये संगीत तुझपे,  
हर शब्द तेरा है हर भाव तुझमें।  
हम हैं अकेले हम हैं अधूरे,  
तेरी शरण माँ हमें तार देना ॥



## गुरु भजन



### उड़ चला पंछी रे

उड़ चला पंछी रे हरी-भरी डाल से  
रोको रे रोको कोई मुनि को विहार से ॥



खिल भी न पाई रामा, सुबह से कलियाँ  
सूनी पड़ी है आज नगरी की गलियाँ  
धो रहे हैं नैना पथ को निहार के ॥१॥

दर्शन को आकुल अँखियाँ असुवां लुटावें

नाम लेके विद्यासागर होंठ हम बुलावें  
बैठूँ तो कैसे बैठूँ मनवा को मार के ॥२॥

महावीर के लघु-नंदन, कृपा ऐसी कीजिए  
भूल हुई जो भी हमसे, क्षमा दान दीजिए  
चरणों को धोउंगा मैं आँसुओं की धार से ॥३॥



## ऐसे मुनिवर देखें



ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग द्वेष नहिं मन में ॥टेक॥

ग्रीष्म ऋतुशिखर के ऊपर, वे तो मगन रहे ध्यानन में ॥१॥

चातुर्मास तरु तल ठाड़े, वे तो बून्द सहे छिन-छिन में ॥२॥

शीत मास दरिया के किनारे, वे तो धीरज धारे तन में ॥३॥

ऐसे गुरु को नितप्रति ध्याऊँ, हम तो देत ढोक चरणन में ॥४॥





# गुरु निर्गन्थ परिग्रह त्यागी

गुरु निर्गन्थ परिग्रह त्यागी, भव-तन-भोगों से वैरागी ।  
आशा पाशी जिनने छेदी, आनंदमय समता रस वेदी ॥टेक॥

ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहावें, ऐसे गुरुवर मोकों भावें ।  
हरष-हरष उनके गुण गाऊँ, साक्षात् दर्शन मैं पाऊँ ॥१॥

उनके चरणों शीश नवाकर, ज्ञानमयी वैराग्य बढ़ाकर ।  
उनके ढिंग ही दीक्षा धारुं, अपना पंचम भाव संभारुँ ॥२॥

सकल प्रपञ्च रहित हो निर्भय, साधूँ आत्म प्रभुता अक्षय ।  
ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, दुखमय आवागमन नशाऊँ ॥३॥



## गुरु रत्नत्रय के धारी



तर्ज : सूरज कब द्वार गगन

गुरु रत्नत्रय के धारी, निज आत्म में विहारी,  
वे कुन्दकुन्द अविकारी, हैं निश्चय शिवमगचारी  
गुरुवर को हमारा वंदन है, चरणों में अर्चन है ॥

काया की ममता को टारे, सहते परीषह भारी (२),  
पंच महाव्रत के हो धारी, तीन रत्न भंडारी ॥  
आतम निधि अविकारी, संवर भूषण के धारी,  
वे कुन्दकुन्द शिवचारी, है निर्मल सुखकारी ॥टेक ॥

तुम भेदज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धात्म में रमते (२),  
क्षण क्षण में अंतर्मुख हो, सिद्धों से बातें करते ॥  
तेरे पावन चरणों में, मस्तक झुका हम देंगे,  
तेरी महिमा नित गाकर, निज की महिमा पावेंगे ॥टेक ॥

सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तुम, आचारों के धारी (२),  
मन वच तन का तज आलम्बन, निज चैतन्य विहारी ॥  
गुरु जब हम तुझको ध्यायें, तेरी शरणा को पायें,  
तेरा नाम जपेगा जो नित, मनवांछित फ़ल पा जायें ॥टेक ॥



## गुरुवर तुम बिन कौन

गुरुवर तुम बिन कौन हमारा,  
पग पग पर हम सबको स्वामी, है तुमरा ही सहारा ॥टेक ॥



सिर पर रखना हाथ ओ गुरुवर,  
हर पर देना साथ ओ गुरुवर  
आप दया कर देंगे, भव से हम भी तर लेंगे  
कर देना उद्धारा  
गुरुवर तुम बिन कौन हमारा ॥1॥

हमको ले लो अपनी शरन में  
थोड़ी जगह दे दो चरण में  
आतम ज्योति जला देना, अंतर तिमिर मिटा देना  
कर दो ना उजियारा  
गुरुवर तुम बिन कौन हमारा ॥2॥



## धन्य धन्य हे गुरु गौतम



धन्य धन्य हे गुरु गौतम पुरुषार्थ तुम्हारा ।  
निश्चय भक्ति करे प्रभु की, भव का लिया किनारा ॥टेक॥

शिष्य पाँच सौ पाए, इस गौरव में भरमाए ।  
जिन-शासन के तीव्र विरोधी, मोह महातम छाए ॥  
कहाँ छिपी थी महा योग्यता जिसने लिया उजारा ॥१ धन्य॥

काल-लब्धि जब आई, इंद्रा निमित्त बन आया ।  
जिनशासन के सारभूत इक, मंगल छंद सुनाया ॥  
मंगलमय भवितव्य दिशा में, तुमने चरण बढ़ाया ॥२ धन्य ॥

वीर प्रभु के समवशरण का, मान-स्तंभ निहारा ।  
मिथ्यामद गल गया तुहारा, वेश दिगंबर धारा ॥  
योग्य शिष्य थे वीर प्रभु के, झेली जिन श्रुत-धारा ॥३ धन्य ॥

अनेकांतमय वस्तु बताई, स्याद्वाद के द्वारा ।  
वीर प्रभुजी मुक्ति पधारे, तुमने केवल धारा ॥  
धन्य-धन्य निर्वाण महोत्सव, जग में हुआ उजारा ॥४ धन्य ॥



## धन्य मुनिराज हमारे हैं

धन्य मुनिराज हमारे हैं, हमें प्राणों से प्यारे हैं – २

धन्य मुनिराज की मुद्रा, धन्य मुनिराज की निद्रा  
धन्य मुनिराज की चर्या, धन्य मुनिराज की चर्चा  
धन्य मुनिराज की समता, धन्य मुनिराज की क्षमता



धन्य मुनिराज हमारे हैं, हमें प्राणों से प्यारे हैं – २

धन्य मुनिराज की गुप्ती, धन्य संसार से विरक्ति  
धन्य मुनिराज की भक्ति, धन्य मुनिराज की शक्ति  
धन्य मुनिराज का वैभव, धन्य मुनिराज का गौरव  
धन्य मुनिराज हमारे हैं, हमें प्राणों से प्यारे हैं – २

धन्य मुनिराज का आहार, धन्य मुनिराज का विहार  
धन्य मुनिराज का संयम, धन्य मुनिराज का उद्यम  
धन्य मुनिराज का अध्ययन, धन्य मुनिराज का चिंतन  
धन्य मुनिराज हमारे हैं, हमें प्राणों से प्यारे हैं – २

धन्य मुनिराज का सन्देश, धन्य मुनिराज का उपदेश  
धन्य मुनिराज की दृष्टी, धन्य आनन्द की वृष्टि  
धन्य मुनिराज का जीवन, है शत शत बार उन्हें वंदन – २  
धन्य मुनिराज हमारे हैं, हमें प्राणों से प्यारे हैं – २



**धन्य मुनीश्वर आत्म हित में**



धन्य मुनीश्वर आत्म हित में छोड़ दिया परिवार,

कि तुमने छोड़ दिया परिवार ।

धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत् असार,

कि तुमने छोड़ दिया संसार ॥टेक ॥

काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी  
पंच महाव्रत के हो धारी, तीन रत्न के हो भंडारी ॥

आत्म स्वरूप में झुलते, करते निज आत्म-उद्धार,  
कि तुमने छोड़ा सब घर बार ॥१॥

राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर-विरोध हृदय से भागे  
परमात्म के हो अनुरागे, वैरी कर्म पलायन भागे ॥

सत् सन्देश सुना भविजन को, करते बेड़ा पार,  
कि तुमने छोड़ा सब घर बार ॥२॥

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते  
निजपद के आनंद में झुलते, उपशम रस की धार बरसते ॥

मुद्रा सौम्य निरख कर, मस्तक नमता बारम्बार,  
कि तुमने छोड़ा सब घर बार ॥३॥





## निर्ग्रंथों का मार्ग

निर्ग्रंथों का मार्ग हमको प्राणों से भी प्यारा है...  
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रंथों का मार्ग....॥

शुद्धात्मा में ही, जब लीन होने को, किसी का मन मचलता है,  
तीन कषायों का, तब राग परिणति से, सहज ही टलता है,  
वस्त्र का धागा.... वस्त्र का धागा नहीं फ़िर उसने तन पर धारा है,  
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रंथों का मार्ग....॥

पंच इंद्रिय का, निस्तार नहीं जिसमें, वह देह ही परिग्रह है,  
तन में नहीं तन्मय, है दृष्टि में चिन्मय, शुद्धात्मा ही गृह है,  
पर्यायों से पार... पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव का सदा सहारा है,  
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रंथों का मार्ग....॥

मूलगुण पालन, जिनका सहज जीवन, निरन्तर स्व-संवेदन,  
एक ध्रुव सामान्य में ही सदा रमते, रत्नत्रय आभूषण,  
निर्विकल्प अनुभव... निर्विकल्प अनुभव से ही जिनने निज को  
श्रंगारा है,  
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रंथों का मार्ग....॥

आनंद के झरने, झरते प्रदेशों से, ध्यान जब धरते हैं,

मोह रिपु क्षण में, तब भस्म हो जाता, श्रेणी जब चढ़ते हैं,  
अंतर्मुहूर्त मे... अंतर्मुहूर्त मे ही जिनने अनन्त चतुष्टय धारा है,  
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रथों का मार्ग.... ॥



## परम दिगम्बर मुनिवर देखे



परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है  
आनन्द उल्सित होता है, हो-हो सम्प्रदर्शन होता है ॥

वास जिनका वन-उपवन में, गिरि-शिखर के नदी तटे  
वास जिनका चित्त गुफा में, आत्म आनन्द में रमे ॥१॥

कंचन-कामिनी के त्यागी, महा तपस्वी ज्ञानी-ध्यानी  
काया की ममता के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी ॥२॥

परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ  
शान्त-मूर्ति सौम्य-मुद्रा, आत्म आनन्द में रमूँ ॥३॥

चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं है रमणी की  
चाह हृदय में एक यही है, शिव-रमणी को वरने की ॥४॥

भेद-ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं  
क्षण-क्षण में अन्तर्मुख हो, सिद्धों से बातें करते हैं ॥५॥



## परम दिग्म्बर यती



परम दिग्म्बर यती, महागुण व्रती, करो निस्तारा  
नहीं तुम बिन कौन हमारा ॥टेक ॥

तुम बीस आठ गुणधारी हो, जग जीवमात्र हितकारी हो  
बाईस परीषह जीत धरम रखवारा ॥१॥

तुम आत्मध्यानी ज्ञानी हो, शुचि स्वपर भेद विज्ञानी हो  
है रत्नत्रय गुणमंडित हृदय तुम्हारा ॥२॥

तुम क्षमाशील समता सागर, हो विश्व पूज्य वर रत्नाकर  
है हितमित सत उपदेश तुम्हारा प्यारा ॥३॥

तुम धर्ममूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी  
है निर्विकार निर्दोष स्वरूप तुम्हारा ॥४॥

है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार  
'सौभाग्य' आपसा बाना होय हमारा ॥५॥



## मुनि दीक्षा लेके जंगल में



होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥टेक ॥

जिस माता ने बड़े चाव से, कीना था प्रतिपाल ।  
आज उसी से मोह छोड़कर, बन गए वे मुनि हाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥१॥

जिस तन में सरसों का दाना, चुभता था तत्काल ।  
आज चले नंगे पैरों से, जंगल में खुशहाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥२॥

जिसने कभी स्वप्न में भी, दुख देखा सुना न हाल ।  
निरख-निरख पग रखते मुनिवर, धन्य-धन्य सुकुमाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥३॥

अति-कोमल सुकुमाल पगों से, चलते ईर्या चाल ।  
कंकड़ पत्थर चुभे पैर में, धरती हुई है लाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥४॥

खून चाटती चली स्यालिनी, साथ लिए युग बाल ।  
तीन दिवस तक भक्षण करके, यति को किया हलाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥५॥

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, धन्य-धन्य तत्काल ।  
धन्य-धन्य मुनिधर्म धन्य, जिन-धर्म महा खुशहाल ॥  
होइ मुनि दीक्षा लेके, जंगल में पहुंचे सुकुमाल ॥६॥



## मुनिवर आज मेरी कुटिया में

मुनिवर आज मेरी कुटिया में आये हैं,  
चलते फ़िरते.... चलते फ़िरते सिद्ध प्रभु आये हैं॥



हाथ कमंडल बगल में पीछी है, मुनिवर पे सारी दुनिया रीझी है,  
नगन दिगम्बर... नगन दिगम्बर मुनिवर आये हैं॥

अत्र अत्र तिष्ठो हे मुनिवर ! भूमि शुद्धि हमने कराई है,  
आहार कराके... आहार कराके नर नारी हषये हैं॥

प्रासुक जल से चरण पखारे हैं, गंधोदक पा भाग्य संवारे हैं,  
शुद्ध भोजन के... शुद्ध भोजन के ग्रास बनाये हैं॥

नगन दिगम्बर मुद्रा धारी हैं, वीतरागी मुद्रा अति प्यारी है,  
धन्य हुए ये... धन्य हुए ये नयन हमारे हैं॥

नगन दिगम्बर साधु बडे प्यारे हैं, जैन धरम के ये ही सहारे हैं,  
ज्ञान के सागर... ज्ञान के सागर ज्ञान बरसाये हैं॥



## मुनिवर को आहार



आया पुण्य योग से अवसर, आये गुरुवर तेरे द्वार  
अक्षय पुण्य कमाले देकर, मुनिवर को आहार ॥

गिरिवर माने हार, देख कर गुरुवर की ऊँचाई  
ज्ञान के सागर के आगे, क्या सागर की गहराई ॥  
मन में जिनरूप संजोये-२, करे वन वन मुनि विहार

अक्षय पुण्य कमाले देकर, मुनिवर को आहार ॥१॥

नवधा भक्ति लिए हृदय में, तुम आहार कराना  
श्रावक धर्म को ध्यान में रखना, कहीं भूल न जाना ॥  
मुनिवर के रूप में जिनवर-२, करते हैं भोग स्वीकार  
अक्षय पुण्य कमाले देकर, मुनिवर को आहार ॥२॥

कर पड़गाहन, उच्चासन धर, करो पाद प्रक्षालन  
पूजा और प्रणाम करो, कर शुद्ध वचन काया मन ॥  
रख ध्यान कि जल और भोजन-२, ये शुद्ध हो सभी प्रकार  
अक्षय पुण्य कमाले देकर, मुनिवर को आहार ॥३॥

पुण्यमयी वे जीव हैं जो, मुनि को आहार कराते  
अरे मुनिवर से वर पाकर, श्रावक भवसागर तर जाते ॥  
कहे गुणी, मुनि की सेवा-२, खोले मुक्ति का द्वार  
अक्षय पुण्य कमाले देकर, मुनिवर को आहार ॥४॥



मैं परम दिग्म्बर साधु



मैं परम दिग्म्बर साधु के गुण गाऊँ-गाऊँ रे ।  
मैं शुध उपयोगी सन्तन को नित ध्याऊँ-ध्याऊँ रे ।  
मैं पंच महाव्रत धारी को शिर नाऊँ-नाऊँ रे ॥

जो बीस आठ गुण धरते, मन-वचन-काय वश करते ।  
बाईस परीषह जीत जितेन्द्रिय ध्याऊँ-ध्याऊँ रे ॥१॥

जिन कनक-कामिनी त्यागी, मन ममता त्याग विरागी ।  
मैं स्वपर भेद-विज्ञानी से सुन पाऊँ-पाऊँ रे ॥२॥

कुंदकुंद प्रभुजी विचरते, तीर्थकर-सम आचरते ।  
ऐसे मुनि मार्ग प्रणेता को, मैं ध्याऊँ-ध्याऊँ रे ॥३॥

जो हित-मित वचन उचरते, धर्मामृत वर्षा करते ।  
'सौभाग्य' तरण-तारण पर बलि-बलि जाऊँ-जाऊँ रे ॥४॥



## मोक्ष के प्रेमी हमने

मोक्ष के प्रेमी हमने, कर्मों से लड़ते देखे ।  
मखमल पर सोनेवाले, भूमि पर बढ़ते देखे ॥



सरसों का दाना जिनके, बिस्तर पर चुभता था ।  
काया की सुध नहीं, गीदड़ तन भखते देखे ॥१॥

अर्जुन व भीम जिनके, बल का ना पार था ।  
आत्मोन्नति के कारण, अग्नि में जलते देखे ॥२॥

सेठ सुदर्शन प्यारा, रानी ने फंदा डाला ।  
शील को नाहीं छोड़ा, सूली पर चढ़ते देखे ॥३॥

बौद्धों का जोर था जब, निकलंक देव देखे ।  
धरमोन्नति के लिए, मस्तक तक कटते देखे ॥४॥

हे पारस नाथ स्वामी, तद्व मोक्षगामी ।  
कर्मों ने नाहीं बछशा, पथर तक पड़ते देखे ॥५॥

भोगों को त्याग चेतन, जीवन है बीता जाए ।  
तृष्णा न पूरी हुई, अरथी पर चढ़ते देखे ॥५॥



**म्हारे आंगणे में आये मुनिराज**



(तर्ज :- आयो-आयो रे हमारो)

म्हारे आंगणे में आये मुनिराज, हमारो मन नाचे छै ॥टेक ॥

भेष दिगम्बर प्यारा-प्यारा, आंखों को लगता मनहारा,  
परम दिगम्बर मुद्रा प्यारी, संतों की मुद्रा है न्यारी,  
मानो सिद्ध प्रभु का है अवतार, हमारो मन नाचे छै ॥१॥

हाथ कमण्डल काठ का, पीछी पंख मयूर,  
विषय वास आरम्भ तज, परिग्रह से है दूर,  
मानो मुक्तिपुरी का राज, हमारो मन नाचे छै ॥२॥

बालक सम निर्दोष तुम्हारा, चारित्र है जीवन में प्यारा,  
मुद्रा ही संदेश सुनाती, जग नश्वरता भान कराती,  
मानो बहता निर्मल नीर, हमारो मन नाचे छै ॥३॥

अत्रो अत्रो तिष्ठो तिष्ठो, हृदय कमल में अत्रो तिष्ठो,  
मम मंदिर में आन विराजो, रत्नत्रय की निधियां बांटो,  
मानो आँगन में आया कल्पवृक्ष, हमारो मन नाचे छै ॥४॥

कनक, कामिनी के हैं त्यागी, सब कुछ ममता त्याग विरागी,

मित्रों के संग बातें करते, गुण अनंत में केलि करते,  
मानो सर्व सुखों का है धाम, हमारो मन नाचे छै ॥५॥



## वनवासी सन्तों को नित ही

वनवासी सन्तों को नित ही, अगणित बार नमन हो ।  
द्रव्य-नमन हो भाव-नमन हो, अरु परमार्थ-नमन हो ॥टेक॥



गृहस्थ अवस्था से मुख मोड़ा, सब आरम्भ परिग्रह छोड़ा ।  
ज्ञान ध्यान तप लीन मुनीश्वर, अगणित बार नमन हो ॥१॥

जग विषयों से रहे उदासी, तोड़ी जिनने आशा पाशी ।  
ज्ञानानंद विलासी गुरुवर, अगणित बार नमन हो ॥२॥

अहंकार ममकार न लावें, अंतरंग में निज पद ध्यावें ।  
सहज परम निर्गन्ध दिगम्बर, अगणित बार नमन हो ॥३॥

ख्यातिलाभ की नहिं अभिलाषा, सारभूत शुद्धात्म भासा ।  
आत्मलीन विरक्त देह से, अगणित बार नमन हो ॥४॥

उपसर्गों में नहिं अकुलावें, परीषहों से नहीं चिगावें ।  
सहज शान्ति समता के धारक, अगणित बार नमन हो ॥५॥

जिनशासन का मर्म बतावें, शाश्वतसुख का मार्ग दिखावें ।  
अहो-अहो जिनवर से मुनिवर, अगणित बार नमन हो ॥६॥

ऐसा ही पुरुषार्थ जगावें, धनि निर्गन्थ दशा प्रगटावें ।  
समय-समय निर्गन्थ रूप का, सहजपने सुमिरन हो ॥७॥



## वेष दिग्म्बर धार



वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके  
मुक्ति-पुरी के द्वार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥

पंच महाव्रत जामा सजाया, दशलक्षण का सेहरा बंधाया,  
चारित्र रथ हो सवार... चले हैं मुनि दूल्हा बनके  
वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥१॥

बारह भावना संग बाराती, समिति गुप्ति सब हिल मिल गाती,  
हर्ष से मंगलाचार... चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥

वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥२॥

राग द्वेष आतिशबाजी छूटी, क्रोध कषाय की लड़ियां टूटी,  
समता पायल झनकार... चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥  
वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥३॥

शुक्ल ध्यान की अग्नि जलाकर, होम किया निज कर्म खिपाकर,  
तप तेरा यशगान... चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥  
वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥४॥

शुभ बेला शिवरमणी वरेंगे, मुक्ति महल में प्रवेश करेंगे,  
गूंजेगी ध्वनि जयकार... चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥  
वेष दिग्म्बर धार चले हैं मुनि दूल्हा बनके ॥५॥



## शान्ति सुधा बरसा गये



शान्ति सुधा बरसा गये गुरु तोहि बिरियां,  
तत्त्वज्ञान समझा रहे गुरु तोहि बिरियां ॥

अनेकांत और स्याद्वाद पथ दरशाया,

सुनकर के सारे जग का मन हरषाया,  
इन पे निछावर हीरा मोती और मणियां,  
ज्ञान सुधा बरसा गये गुरु तोहि बिरिया ॥तत्त्व ॥

निश्चय और व्यवहार तुम्हीं ने समझाया,  
बड़े बड़े विद्वानों के भी मन भाया,  
स्वाध्याय प्रवचन चिंतन गुरु की किरिया ॥तत्त्व ॥

समयसार के गणधर बनकर तुम आये,  
कर दिये अंधेरे दूर हृदय में जो छाये,  
मैं पड़ुं हजारों बार गुरु तोरी पैया ॥तत्त्व ॥



## शुद्धात्म तत्व विलासी रे



शुद्धात्म तत्व विलासी रे, मुनि मगन नगन वनवासी रे,

क्षण क्षण में अंतर्मुख होते, नित सहज प्रत्याशी रे,  
मुनि...

शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मंदर अचल प्रवासी रे,

मुनि...

ज्यों निःसंग वायु सम निर्मल, त्यों निर्लेप अकासी रे,  
मुनि...

विनय शुभोपयोग की परिणति, दत्ता सहज विनाशी रे,  
मुनि...



## संत साधु बन के विचर्स्त



संत साधु बन के विचर्स्त, वह घड़ी कब आयेगी  
चल पहुँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी ॥टेक ॥

हाथ में पीछी कमण्डलु, ध्यान आत्म राम का  
छोड़कर घरबार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी ॥१॥

आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से  
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ॥२॥

पाँच समिति तीन गुप्ति, बाईस परिषह भी सहुँ

भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ॥३॥

बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ  
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ॥४॥

भव-भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से  
विचरूँ मैं निज आतमा में, वह घड़ी कब आयेगी ॥५॥



## सिद्धों की श्रेणी में आने वाला

सिद्धों की श्रेणी में आने वाला जिनका नाम है,  
जग के उन सब मुनिराजों को मेरा नम्र प्रणाम है,



मोक्ष मार्ग के अंतिम क्षण तक, चलना जिनको इष्ट है,  
जिन्हें न छ्युत कर सकता पथ से, कोई विघ्न अनिष्ट है,  
दृढ़ता जिनकी है अगाध और, जिनका शौर्य अगम्य है,  
साहस जिनका है अबाध और, जिनका धैर्य अदम्य है,  
जिनकी है निःस्वार्थ साधना, जिनका तप निष्काम है  
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम है ॥१॥

मन में किंचित हर्ष न लाते, सुन अपना गुणगान जो,  
और न अपनी निंदा सुनकर, करते हैं मुख म्लान जो,  
जिन्हें प्रतीत एक सी होती, स्तुतियाँ और गालियाँ,  
सिर पर गिरती सुमना-वलियाँ, चलती हुई दुनालियाँ  
दोनों समय शांति में रहना, जिनका शुभ परिणाम है ॥  
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम है ॥२॥

हर उपसर्ग सहन जो करते, कहकर कर्म विचित्रता,  
तन तज देते किंतु न तजते, अपनी ध्यान पवित्रता,  
एक दृष्टि से देखा करते, गर्भी वर्षा ठंड जो,  
तप्त उष्ण लू रिमझिम वर्षा, शीत तरंग प्रचण्ड जो,  
जिनकी ज्यों है शीतल छाया, त्यों ही भीषण धाम है,  
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम है ॥३॥

जिन्हें कंकड़ों जैसा ही है, मणि मुक्ता का ढेर भी ।  
जिनका समता धन खरीदने, को असमर्थ कुबेर भी ॥  
दूर परिग्रह से रह माना, करते हैं संतोष जो ।  
रत्नत्रय से भरते रहते, अपना चेतन कोष जो,  
और उसी की रक्षा में, रत रहते आठों याम हैं ॥  
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम है ॥४॥



## है परम दिग्म्बर मुद्रा जिनकी



है परम-दिग्म्बर मुद्रा जिनकी, वन-वन करें बसेरा  
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा ॥  
शाश्वत सुखमय चैतन्य-सदन में, रहता जिनका डेरा  
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा ॥टेक ॥

जहाँ क्षमा मार्दव आर्जव सत् शुचिता की सौरभ महके  
संयम तप त्याग अकिञ्चन स्वर परिणति में प्रतिपल चहके  
है ब्रह्मचर्य की गरिमा से, आराध्य बने जो मेरा ॥१॥

अन्तर-बाहर द्वादश तप से, जो कर्म-कालिमा दहते  
उपसर्ग परीषह-कृत बाधा, जो साम्य-भाव से सहते  
जो शुद्ध-अतीन्द्रिय आनन्द-रस का, लेते स्वाद घनेरा ॥२॥

जो दर्शन ज्ञान चरित्र वीर्य तप, आचारों के धारी  
जो मन-वच-तन का आलम्बन तज, निज चैतन्य विहारी

शाश्वत सुखदर्शन-ज्ञान-चरित में, करते सदा बसेरा ॥३॥

नित समता स्तुति वन्दन अरु, स्वाध्याय सदा जो करते  
प्रतिक्रमण और प्रति-आख्यान कर, सब पापों को हरते  
चैतन्यराज की अनुपम निधियाँ, जिसमें करें बसेरा ॥४॥



## होली खेलें मुनिराज शिखर



होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, रे अकेले वन में, मधुवन में  
मधुवन में आज मची रे होली, मधुवन में ॥टेक॥

चैतन्य-गुफा में मुनिवर बसते, अनन्त गुणों में केली करते  
एक ही ध्यान रमायो वन में, मधुवन में ॥होली - १॥

ध्रुव धाम ध्येय की धूनी लगाई, ध्यान की धधकती अग्नि जलाई  
विभाव का ईंधन जलायें वन में, मधुवन में ॥होली - २॥

अक्षय घट भरपूर हमारा, अन्दर बहती अमृत धारा  
पतली धार न भाई मन में, मधुवन में ॥होली - ३॥

हमें तो पूर्ण दशा ही चहिये, सादि-अनंत का आनंद लहिये  
निर्मल भावना भाई वन में, मधुवन में ॥होली - ४॥

पिता झलक ज्यों पुत्र में दिखती, जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती  
श्रेणी माँडी पलक छिन में, मधुवन में ॥होली - ५॥

नेमिनाथ गिरनार पे देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो  
केवलज्ञान लियो है छिन में, मधुवन में ॥होली - ६॥

बार-बार वन्दन हम करते, शीश चरण में उनके धरते  
भव से पार लगाये वन में, मधुवन में ॥होली - ७॥



## धर्म भजन



आजा अपने धर्म की तूराह में



आजा अपने धर्म की तू राह में, वो ही करे भव पार रे...

देरों जनम तूने भोगों में खोये..तूने भोगों में खोये  
फिर भी हवस तेरी पूरी न होये..तेरी पूरी न होये  
तज दे तू इनकी याद हो sss

आजा अपने धर्म की तू राह में, वो ही करे भव पार रे ॥१॥

तेरा जग में साथी यही ये एक धरम है  
आशा जिसकी तू करता वो एक भरम है  
झूठा है जग संसार हो sss

आजा अपने धर्म की तू राह में, वो ही करे भव पार रे ॥२॥

सुख होता जग में ना तजते फिर तीर्थकर  
तज धन मालिक ना रचते भेष दिगम्बर  
जग में नहीं कुछ सार हो sss

आजा अपने धर्म की तू राह में, वो ही करे भव पार रे ॥३॥



आप्त आगम गुरुवर



तर्ज : थोड़ा सा प्यार हुआ है

आप्त आगम गुरुवर, सौख्य दातार हैं।  
ज्ञान दातार हैं, मुक्ति दातार हैं ॥टेक ॥

वीतरागी छवि जिनकी, शांत मुद्रा सुपावन ।  
दिव्य ध्वनि अमृत वर्षा, भविक जन को मन भावन ॥  
श्री अरिहंत दर्शन, करता भव पार है ॥१॥

नित्य नव नव सुखों का, सदा वेदन जो करते ।  
अष्ट गुणों से शोभित, अष्टम वसुधा में बसते ॥  
तुम्ही आदर्श मेरे, महिमा अपार है ॥२॥

निष्पृही अपरिग्रही जो, सिद्धों के लघु नंदन हैं ।  
मोक्षमार्गी यतियों को, मेरा शत शत वंदन है ॥  
आप ही जिनशासन के, मूल आधार हैं ॥३॥

आगम चक्षु से माता, निज की प्रभुता बताई ।  
सात तत्त्व छह द्रव्यों से, विश्व रचना समझाई ॥  
सर्वज्ञ प्रभु सम माता, तेरा उपकार है ॥४॥



# जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व



जिनवर जिनालय और जिनवाणी ध्याइये,  
जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व सुख पाइए ॥टेक॥  
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए ।  
जय जिनेन्द्र बोलके भाग्य अपना खोलिए ।

जिनवर जग के पालनहारे वो ही तारणहारे,  
जिनके दर्शन करने से ही मन के मिटे अँधियारे ।  
पूजा ध्यान कीजिए जिनवर मनाइए,  
जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व सुख पाइए ॥1॥

नित्य नियम से जाओ जिनालय अरिहंतों को ध्याओ,  
चौबीसों भगवान की महिमा, साँचे मन से गाओ ।  
सच्ची श्रद्धा से मंत्र नवकार गाइए,  
जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व सुख पाइए ॥2॥

जिनवाणी में सार छुपा है, जीवन को जीने का,  
हमें मिला है पावन अवसर, अमर्स्त रस पीने का ।  
स्वाध्याय करके जीवन सुखमय बनाइये,  
जय जिनेन्द्र बोलिए सर्व सुख पाइए ॥3॥



## जय जिनेन्द्र बोलिए

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए  
जय जिनेन्द्र की ध्वनि से, अपना मौन खोलिए ॥

सुर असुर जिनेन्द्र की महिमा को नहीं गा सके  
और गौतम स्वामी न महिमा को पार पा सके ॥

जय जिनेन्द्र बोलकर जिनेन्द्र शक्ति तौलिए  
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, बोलिए ॥

जय जिनेन्द्र ही हमारा एक मात्र मंत्र हो  
जय जिनेन्द्र बोलने को हर मनुष्य स्वतंत्र हो ॥

जय जिनेन्द्र बोलबोल खुद जिनेन्द्र हो लिए  
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए ॥

पाप छोड़ धर्म जोड़ ये जिनेन्द्र देशना  
अष्ट कर्म को मरोड़ ये जिनेन्द्र देशना ॥

जाग, जाग, जग चेतन बहुकाल सो लिए  
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए ॥

हे जिनेन्द्र ज्ञान दो, मोक्ष का वरदान दो  
कर रहे प्रार्थना, प्रार्थना पर ध्यान दो ॥

जय जिनेन्द्र बोलकर हृदय के द्वार खोलिए  
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए ॥  
जय जिनेन्द्र की धनि से अपना मौन खोलिए ॥



## जिनशासन बड़ा निराला



जिनशासन बड़ा निराला, मानो अमृत का प्याला  
सभी द्रव्य हैं..... भिन्न भिन्न निर्भार हमें कर डाला रे ॥

मोह उदय से जग के प्राणी, चतुर्गति भरमाए  
कर्मोदय से भिन्न आत्मा, कुंद कुंद फरमाए  
मुनिराजों ने खोल दिया, मानो मुक्ति का ताला रे ॥१॥

वीतराग हैं देव हमारे, उनसे हम क्या मांगे

रत्नत्रय के आगे स्वर्गों, का वैभव भी त्यागे  
सारी दुनिया में नहीं देखा, तुमसा देने वाला रे ॥२॥

पंचम काल लगा भारी अध्यात्म की नदियाँ सूख गई  
प्राणों की कीमत देने पर जिनवाणी लिपिबद्ध हुई  
मुनिराजों ने तीर्थकर का, विरह भुला ही डाला रे ॥३॥

आओ हम उन ऋषि मुनियों का ऋण ये आज चुकाएं  
तत्त्वज्ञान का अमृत पीकर अपनी प्यास बुझाएं  
काल अनंत हमें कोई फिर दुखी न करने वाला ॥४॥



## जैन धर्म के हीरे मोती

जैन धर्म के हीरे मोती, मैं बिखराऊं गली गली  
ले लो रे कोइ प्रभु का प्यारा, शोर मचाऊं गली गली



दौलत की दीवानों सुन लो, एक दिन ऐसा आयेगा  
धन दौलत और माल खजाना, पड़ा यहीं रह जायेगा  
सुन्दर काया मिट्टी होगी, चर्चा होगी गली गली ॥१॥

क्यों करता तू तेरी मेरी, तज दे उस अभिमान को  
झूँठे झगड़े छोड़ के प्राणी, भज ले तू भगवान को  
जग का मेला दो दिन का, अंत में होगी चला चली ॥२॥

जिन जिन ने ये मोती लूटे, वे ही माला माल हुए  
दौलत के जो बने पुजारी, आखिर में कंगाल हुए  
सोने चांदी वालों सुन लो, बात कहूं मैं भली भली ॥३॥

जीवन में दुख है तब तक ही, जब तक सम्यकज्ञान नहीं  
ईश्वर को जो भूल गया, वह सच्चा इंसान नहीं  
दो दिन को ये चमन खिला है, फिर मुझ्यि कली कली ॥४॥



## बड़े भाग्य से हमको मिला जिन धर्म

बड़े भाग्य से हमको मिला जिन धर्म,  
हमारी कहानी है, तुम्हारी कहानी है, बड़ी बेरहम,

अनादि से भटके चले आ रहे हैं,  
प्रभु के वचन क्यूँ नहीं भा रहे हैं,  
रुदन तेरा भव भव में सुने कौन जन।

बड़े भाग्य से हमको...

भगवान बनने की ताकत है मुझमें,  
मैं मान बैठा पुजारी हूं बस मैं,  
मेरे घट में घट घट का वासी चेतन।  
बड़े भाग्य से हमको...

अणु अणु स्वतंत्र प्रभु ने ज्ञान है कराया,  
विषयों का विष पी पी उसे ना सधाया,  
क्षण भर को भी तो चेतन हो जा मग्न  
बड़े भाग्य से हमको...



## भावों में सरलता रहती है



भावों में सरलता रहती है, जहाँ प्रेम की सरिता बहती है ।  
हम उस धर्म के पालक हैं, जहाँ सत्य अहिंसा रहती है ॥

जो राग में मूँछे तनते हैं, जड़ भोगों में रीझ मचलते हैं  
वे भूलते हैं निज को भाई, जो पाप के सांचे ढलते हैं  
पुचकार उन्हें माँ जिनवाणी, जहाँ ज्ञान कथायें कहती हैं

॥ हम उस - १ ॥

जो पर के प्राण दुखाते हैं, वह आप सताये जाते हैं  
अधिकारी वे हैं शिव सुख के, जो आत्म ध्यान लगाते हैं  
'सौभाग्य' सफल कर नर जीवन, यह आयु ढलती रहती है

॥ हम उस - २ ॥



## मैं महापुण्य उदय से जिनधर्म

मैं महापुण्य उदय से जिनधर्म पा गया ॥



चार घाति कर्म नाशे ऐसा अरहंत है,  
अनंत चतुष्टय धारी श्री भगवंत है,  
मैं अरहंत देव की शरण आ गया ॥

अष्ट कर्म नाश किये ऐसे सिद्ध देव हैं,  
अष्ट गुण प्रगट जिनके हुए स्वयमेव हैं,  
मैं ऐसे सिद्ध देव की शरण आ गया ॥

वस्तु का स्वरूप बतावे वीतराग वाणी है,

तीन लोक के जीव हेतु महाकल्याणी है,  
मैं जिनवाणी माँ की शरण में आ गया ॥

परिग्रह रहित दिगम्बर मुनिराज हैं,  
ज्ञान ध्यान सिवा नहीं दूजा कोई काज है,  
मैं श्री मुनिराज की शरण पा गया ॥



## ये धरम है आत्म ज्ञानी का



ये धरम है आत्म ज्ञानी का, सीमंधर महावीर स्वामी का,  
इस धर्म का भैया क्या कहना, ये धर्म है वीरों का गहना,  
जय हो जय हो जय हो...

यहां समयसार का चिंतन है, यहां नियमसार का मंथन है,  
यहां रहते हैं ज्ञानी मस्ती में, मस्ती है स्व की अस्ति में,  
जय हो जय हो जय हो...

अस्ति में मस्ती ज्ञानी की, यह बात है भेद विज्ञानी की,  
यहां झरते हैं झरने आनंद के, आनंद ही आनंद आत्म है,  
जय हो जय हो जय हो...

यहां बाहुबली से ध्यानी हुए, यहां कुंदकुंद जैसे ज्ञानी हुए,  
यहां सतगुरुओं ने ये बोला, ये धर्म है कितना अनमोला,  
जय हो जय हो जय हो...



## ये धर्म हमारा है हमें



तर्ज़ : की हम तुम चोरी से

ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है,  
हम है इसी की शान से,  
अरे ये गौरव अति प्यारा है ॥ टेक ॥

सिद्धों ने फरमाया, तू बन सकता भगवान है,  
इतनी तुझमें शक्ति, पा सकता केवलज्ञान है ।  
बस थोड़ा श्रद्धान कर, ज्ञान कर,  
मारग ये मोक्ष का

ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है, हम हैं इसी की शान से ॥१॥

वीतराग विज्ञान, ये जैन धर्म के प्राण है  
शुद्धदृष्टि से देखो, सब प्राणी सिद्धसमान हैं ।  
बस थोड़ा श्रद्धान कर, ज्ञान कर, मारग ये मोक्ष का

ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है, हम हैं इसी की शान से ॥२॥

तीर्थकरों की देशना, और उनका ये सन्देश है,  
प्रथम अन्तर्रंग नग्नता, फिर बाह्य दिगम्बर वेष है ।

ये ही सच्चा मार्ग है, मार्ग है, भेदज्ञान का  
ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है, हम हैं इसी की शान से ॥३॥



## लहर लहर लहराये केसरिया झंडा



तर्ज़ : हवा में उड़ता जाए

लहर लहर लहराये, केसरिया झंडा जिनमत का... हो जी  
सबका मन हरषाये, केसरिया झंडा जिनमत का हो जी

फ़र फ़र फ़र फ़र करता झंडा, गगन शिखा पे डोले  
स्वास्तिक का यह चिन्ह अनूठा, भेद हृदय के खोले  
यह ज्ञान की ज्योति जगाये,

केसरिया झंडा जिनमत का... हो जी ॥

लहर लहर लहराये, केसरिया झंडा जिनमत का... हो जी

इसकी शीतल छाया में सब, पढ़े रत्न जिनवाणी

सत्य अहिंसा प्रेम युक्त सब, बने तत्व श्रद्धानी  
यह सत पथ पर पहुंचाये,  
केसरिया झंडा जिनमत का...हो जी ॥  
लहर लहर लहराये, केसरिया झंडा जिनमत का...हो जी



## सब जैन धर्म की जय बोलो



सब जैन धर्म की जय बोलो, हम गीत उसी के गाते हैं  
जो विश्वशांति का प्रेरक है, हम उसकी बात सुनाते हैं ॥

यह सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य का, पाठ हमें सिखलाता है  
अज्ञेय परिग्रह त्याग हमें, मानव बनना सिखलाता है  
ये पंच महाव्रत सार जगत-२,  
ये शास्त्र-ये शास्त्र सभी बतलाते हैं ॥जो. ॥

सच्ची राह बताने को चौबीस हुये अवतार यहाँ  
सबने इसकी महिमा गायी, और पार हुये संसार यहाँ  
सिद्धांत अमर सुखदाई है-२,  
जो ध्यान-जो ध्यान धरे तिर जाते हैं ॥जो. ॥

है जैन धर्म वट कृक्ष बड़ा, जिसकी छाया अति शीतल है  
जिन वर्धमान और साधू को पा, धन्य हुआ अवनीतल है

रखने को जीवित मानवता-२

हम जैन- हम जैन ध्वजा फ़हराते हैं ॥जो.॥



## हर पल हर क्षण हर दम



तर्ज़ : बचपन की मौहब्बत को -- बैजू बावरा

हर पल, हर क्षण, हर दम, आशीष रहे तेरा,  
ऐ देव शास्त्र गुरुवर कल्याण करो मेरा ॥टेक॥

मेरे मन मंदिर में, तस्वीर रहे तेरी,  
तू दूर रहे तो क्या तेरे पास नजर मेरी,  
अंतिम साँसों तक हो सिर चरणो में मेरा ॥हर....१॥

मेरे गुरु बिन तेरे, सब सूना लगता है,  
तू है गुरु उर मेरे, तो सलोना लगता है,  
अब यही हकीकत है, तू सब कुछ है मेरा ॥हर....२॥

ऐ जिनवाणी माता, तुम सदा बसो उर में,

जब तक ना मुक्ति मिले, छोड़ूं न भव भव में,  
मेरा पथ उज्ज्वल कर दो, मेटो तम का घेरा ॥हर...३॥



## तीर्थ भजन



### ॐ ऊंचे ऊंचे शिखरों वाला १

ऊंचे ऊंचे शिखरों वाला है रे, तीरथ हमारा  
तीरथ हमारा हमें लागे है प्यारा ॥

श्री जिनवर से भेंट करावे, जग को मुक्ति मार्ग दिखावे  
मोह का नाश करावे रे, ये तीरथ हमारा ॥

शुद्धात्म से प्रीति लगावे, जड चेतन को भिन्न बतावे  
भेद विज्ञान करावे रे, यह तीरथ हमारा ॥

भाव सहित वंदे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई

भेद विज्ञान करावे रे, ये तीरथ हमारा ॥

रंग राग से भिन्न बतावे, शुद्धात्म का रूप बतावे  
मुक्ति का मारग दिखावे रे, ये तीरथ हमारा ॥



## ॐ ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला 2



ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला है ये, तीरथ हमारा  
तीरथ हमारा ये जग से न्यारा  
मधुबन माही बरसे रे अमरत की धारा ॥ऊँचे.॥

भाव सहित वंदे जो कोई, ताहि नरक पशु गति ना होई  
उनके लिये खुल जाये रे, सीधा स्वर्ग का द्वारा ॥

जहां तीर्थकर ने वचन उचारे, कोटि कोटि मुनि मोक्ष पधारे  
पूज्य परम पद पाये रे, जन्मे ना दोबारा ॥

हरे-हरे वृक्षों की झूमे डाली, समवसरण की रचना निराली  
पर्वतराज पे शीतल जरना, बहता सुप्यारा ॥



# ॐ शिखरों पे बसा है



उचें शिखरों पे बसा है, ये जैनागम कि शान  
मोक्षगिरि मधुबन में मिलता, मुक्ति का वरदान

चारों ओर फ़िजाओं में जहां गूंज रही जिनवाणी  
मोक्ष दायिनी भूमि है ये भूमि है निर्वाणी  
जहां कण-कण में बसते हैं, मानों जिनेन्द्र भगवान् ॥१ मोक्ष॥

ॐ-ॐ पर्वत पर बैठे दरबार लगाए  
वैरागी का दर्शन ही मन में वैराग्य जगाए  
जहाँ तीर्थकरों ने पाया, है अक्षय पद निर्वाण ॥२ मोक्ष॥

एक बार जो करे वंदना, खुले मोक्ष का द्वारा  
नरक पशु तिर्यच गति ना पाये वो दोबारा  
प्रत्यक्ष युगों से है जो, क्या चाहे वो प्रमाण ॥३ मोक्ष॥

इस धरती का स्वर्ग कहाए अपना मधुबन प्यारा  
ना जाने कितनों को इसने भव से पार उतारा  
चल तू भी दर्शन करले, क्या सोच रहा नादान ॥४ मोक्ष॥





# गगन मंडल में उड़ जाऊं

गगन मंडल में उड़ जाऊं  
तीन लोक के तीर्थ क्षेत्र सब वंदन कर आऊं ॥

प्रथम श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर मैं जाऊं।  
बीस टोंक पर बीस जिनेश्वर चरण पूज ध्याऊं ॥

अजित आदि श्री पार्श्वनाथ प्रभु की महिमा गाऊं।  
शाश्वत तीर्थराज के दर्शन करके हर्षाऊं ॥

फ़िर मंदारगिरि चम्पापुर वासुपूज्य ध्याऊं।  
हुए पंचकल्याणक प्रभु के पूजन कर आऊं ॥

ऊर्जयंत गिरनार शिखर पर्वत पर फ़िर जाऊं।  
नेमिनाथ निर्वाण क्षेत्र को वंदूं सुख पाऊं ॥

फ़िर पावापुर महावीर निर्वाणपुरी जाऊं।  
जलमंदिर में चरण पूजकर नाचूं हर्षाऊं ॥

फ़िर कैलाश शिखर अष्टापद आदिनाथ ध्याऊं।

ऋषभदेव निर्वाण धरा पर शुद्ध भाव लाऊं ॥

पंच महातीर्थों की यात्रा करके हर्षाऊं ।  
सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्रों पर भी मैं हो आऊं ॥

तीन लोक की तीर्थ वंदना कर निज घर आऊं ।  
शुद्धात्म से कर प्रतीति मैं समकित उपजाऊं ॥

फ़िर रत्नत्रय धारण करके जिन मुनि बन जाऊं ।  
निज स्वभाव साधन से स्वामी शिवपद प्रगटाऊं ॥



## चलो सब मिल सिधगिरी

चलो सब मिल सिधगिरी चलिए, जहाँ आदिनाथ भगवान हैं ।  
तिर जायेगी वहाँ तेरी आत्मा, इस तीर्थ की महिमा महान हैं ॥



लाखों नर नारी यहाँ पर दर्शन करने आते हैं,  
शुध मन से दर्शन जो करते, पाप कर्म कट जाते हैं,  
करता प्राणी क्यों अभिमान हैं,  
दो दिन का यहाँ तू मेहमान है ..तिर ...

इस गिरी पर ध्यान लगाकर साधू अनंता सिध गए,  
नंदन दशरथ श्री राम और पांडव पाँचों मोक्ष गए,  
चाहता जीवन का अगर कल्याण है,  
वीतराग प्रभु का कर ध्यान रे ..तिर ....

धर्म किए बिन मोक्ष जो चाहो ऐसा कभी नहीं हो सकता,  
व्रत तप संयम प्रभु भजन से, भव सागर से तिर सकता,  
कहता सुभाग रस्ता आसान है,  
विषयन में फँसा क्यों नादान है...तिर....



## चांदखेड़ी ले चालो जी सांवरिया



तर्ज : कौन दिशा में ले के चला रे बटोहिया

चांदखेड़ी ले चालो जी साँवरिया,  
ऐसी लागी जी लगन, मेरे मन में सजन, प्रभु दर्शन की ॥  
नैना भर आए कैसी प्यारी रे मूरतिया,  
आदि-बाबा के नगर, चांदखेड़ी की डगर, ले चालूँ रे ॥टेक ॥

नाभिराय मरुदेवी के नन्दन, आदीश्वर जिनराज जी ।  
चांदखेड़ी में आन विराजो, शोभा वरणी न जाय जी ।  
मन मचला दर्शन करने को, नैन रहे ललचाए रे ।  
चन्दा बाबा भी हैं मेरे बाबा की नगरिया ॥१...आदि॥

रुपलनदी के तट पे बसा है, अतिशय क्षेत्र ये प्यारा ।  
जिला है झालावाड खानपुर, मंदिर बना है प्यारा ॥  
भाव सहित वंदन जो कर ले, जन्म सफल हो जाए रे ।  
सुन रे ओ साथी, यही मुक्ति की डगरिया ॥२...ऐसी॥

मंजिल एक भूमि के भीतर, जा बैठे जिनराज जी,  
पद्मासन मूरत अति प्यारी, किस विधि कर्सूं बखान जी ।  
जो कोई वंदन पूजन कर ले, जन्म सफल हो जाए रे ।  
बाबा ऐसे चमके जैसे चमके रे बिजुरिया ॥३...आदि॥



## जहाँ नेमी के चरण पड़े



तर्ज़: ऐ मेरे दिले नादान, बीस साल बाद

जहाँ नेमी के चरण पड़े, गिरनार वो धरती है

वो प्रेम मूर्ती राजूल, उस पथ पर चलती है

उस कोमल काया पर, हल्दी का रंग चदा  
मेहंदी भी रुचीर रची, गले मंगल सुत्र पड़ा  
पर मांग ना भर पायी, ये बात ही खलती है ॥ जहाँ ॥

सुन पशुओं का क्रुन्दन, तुमने तोड़े बंधन  
जागा वैराग्य तभी, पा ली प्रभु पथ पावन  
उस परम वैरागी से, चिर प्रीत उमड़ती है ॥ जहाँ ॥

राजूल की आंखों से, झर झर झरता पानी  
अन्तर में घाव भरे, प्रभु दर्श की दीवानी  
मन मन्दिर में जिसकी, तस्वीर उभरती है ॥ जहाँ ॥

नेमी जिस और गये, वही मेरा ठिकाना है  
जीवन की यात्रा का, वो पथ अनजाना है  
लख चरण चंद्र प्रभु के, राजूल कब रूकती है ॥ जहाँ ॥



जीयरा...जीयरा...जीयरा



जीयरा...जीयरा...जीयरा  
जीवराज उड के जाओ सम्मेदशिखर में  
भाव सहित वन्दन करो, पार्श्व चरण में ॥जीवराज...॥

आज सिद्धों से अपनी बात होके रहेगी,  
शुद्ध आत्म से मुलाकात होके रहेगी।  
रंगरहित रागरहित भेदरहित जो,  
मोहरहित लोभरहित शुद्ध बुद्ध जो ॥जीवराज...॥

ध्रुव अनुपम अचल गति जिनने पाई है,  
सारी उपमायें जिनसे आज शरमाई है।  
अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य मय,  
अनंतसूक्ष्म नामरहित अव्याबाधी है ॥जीवराज...॥

अहो शाश्वत ये सिद्धधाम तीर्थराज है,  
यहां आकर प्रसन्न चैतन्यराज है।  
शुरु करें आज यहां आत्मसाधना,  
चतुर्गति में हो कभी जन्म मरण ना ॥जीवराज...॥



नमो आदीश्वरम्



# नमो-आदीश्वरम



## नर तन रतन अमोल



ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला है रे, तीरथ हमारा  
तीरथ हमारा हमें लागे है प्यारा ॥

श्री जिनवर से भेंट करावे, जग को मुक्ति मार्ग दिखावे  
मोह का नाश करावे रे, ये तीरथ हमारा ॥

शुद्धात्म से प्रीति लगावे, जड चेतन को भिन्न बतावे  
भेद विज्ञान करावे रे, यह तीरथ हमारा ॥

भाव सहित वंदे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई  
भेद विज्ञान करावे रे, ये तीरथ हमारा ॥

रंग राग से भिन्न बतावे, शुद्धात्म का रूप बतावे  
मुक्ति का मारग दिखावे रे, ये तीरथ हमारा ॥





## पूजा पाठ रचाऊँ मेरे बालम

(सेठानी) पूजा पाठ रचाऊँ मेरे बालम, आत्म ध्यान लगाऊँगी ।  
चंदा प्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥

(सेठ) सोनागिर मत जाय री सेठानियाँ, घर को वन है जायेगो ।  
ताती-ताती नरम-गरम मोय, करके कौन खावएगो ॥

(सेठानी) भरत क्षेत्र में अतिशय तीरथ, नंगानंग कहावे ।  
टोंक-टोंक पर ध्वजा विराजे, शोभा खूब बढ़ावे ॥  
सब प्रतिमाओं को अर्ध चढ़ाउंगी, प्रभु चरनन चित लाऊँगी ।  
चंदा प्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥

(सेठ) पति की सेवा, दर्शन, पूजन उत्तम शास्त्र बतावे ।  
पति की आज्ञा बिना कोई सत नारी कही न जावे ॥  
भीड़-भाड़ में कोई फुसलाकर, दूर कहीं ले जायेगो ।  
ताती-ताती, नरम-गरम मोय, करके कौन खावएगो ॥

(सेठानी) नित-प्रति स्वाध्याय पूजन में, अपनो ध्यान लगाऊँगी ।  
करूँ वन्दना और आरती, परिकम्मा को जाऊँगी ॥  
अक्षत, धुप चढ़ाऊँ मेरे बालम, जुग-जुग दीप जलाऊँगी ।  
चंदा प्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥

(सेठ) प्रभु की मैं तस्वीर लाय दूँ, ताको ध्यान लगाय ले ।  
दिव्य दृष्टि से मन मंदिर में, दर्शन कर सुख पाय ले ॥  
हो जायेगो धन खर्च तो गोरी, तेरो पति भूखन मर जायेगो ।  
ताती-ताती, नरम-गरम मोय, करके कौन खावएगो ॥

(सेठानी) जैनेश्वरी लयुं मैं दीक्षा, आठों करम जराऊँगी ।  
नाच नचूँ भव-भव नहीं फिर मैं, ऐसो जोग मिलाऊँगी ॥  
बनूँ अर्जिका केश लोच कर, मुक्ति पद को पाऊँगी ।  
चंदाप्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥

(सेठ) कर्म जरें जर जाएँ, यह दिल होरी सो मती जरइयो ।  
मूँड मुड़ाय छोड़ बच्चन कों, घर को मती भूलइयो ॥  
चोर कोऊ घुस आय ठरगजी, सब चोरी कर जायेगो ।  
ताती-ताती, नरम-गरम मोय, करके कौन खावएगो ॥

(सेठानी) लोक लाज संसार के बंधन, अरहंत सच्चो वीरा ।  
नरियल कुण्ड को नीर पियत ही, मिट जाय तपन शरीरा ॥  
अनहद गाना गाऊँ मेरे सजना, बजानी शिला बजाऊँगी ।  
चंदाप्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥

(सेठ) सच्चो हे अरहंत अगर तो, मोकुं धन दिलवाय दे ।

हँस के संग चलूँ तेरे गोरी, मोय यात्रा करवाय दे ॥  
धोको मत दे जइयो मेरी रानी, पति बिन मौतन मर जायेगो ।  
ताती-ताती , नरम-गरम मोय, करके कौन खावएगो ॥

(सेठानी) तुम तो बालम, धन के लोभी, सब यहीं पर रह जायेगो ।  
पाप, पुण्य और ज्ञान-ध्यान ही, सब के संग में जायेगो ॥  
जबरन तुमको अब मैं 'कमल' जी अपने संग ले जाऊँगी ।  
चंदाप्रभु के दर्शन करने, सोनागिर को जाऊँगी ॥



## मधुबन के मंदिरों में



मधुबन के मंदिरों में, भगवान बस रहा है।  
पारस प्रभु के दर से, सोना बरस रहा है॥

अध्यात्म का ये सोना, पारस ने खुद दिया है,  
ऋषियों ने इस धरा से निर्वाण पद लिया है।  
सदियों से इस शिखर का, स्वर्णिम सुयश रहा है॥ पारस...॥

तीर्थकरों के तप से, पर्वत हुआ है पावन,  
कैवल्य रश्मियों का, बरसा यहां पे सावन।

उस ज्ञान अमृत जल से, पर्वत सरस रहा है॥ पारस...॥

पर्वत के गर्भ में है, रत्नों का वो खजाना,  
जब तक है चाँद सूरज, होगा नहीं पुराना।  
जन्मा है जैन कुल में, तू क्यों तरस रहा है॥ पारस...॥

नागों को भी ये पारस, राजेन्द्र सम बनाये,  
उपसर्ग के समय जो, धरणेन्द्र बन के आये।  
पारस के सिर पे देवी पद्मावती यहां है॥ पारस...॥



## रे मन भज ले प्रभु का नाम



रे मन भज ले प्रभु का नाम उमरिया रह गई थोड़ी,  
उमरिया रह गई थोड़ी, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

कैलाशगिरि को जाइयो, और आदिनाथ जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम पावापुरी को जाइयो, और वर्द्धमान जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम चम्पापुरी को जाइयो, और वासुपूज्य जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम हस्तिनापुर को जाइयो, और शांतिनाथ जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम सम्मेदशिखर जी को जाइयो, और पार्श्वनाथ जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम तिजाराजी को जाइयो और, चन्द्रप्रभुजी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम पदमपुराजी को जाइयो और, पद्मप्रभु जी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम गोम्मटेश्वर जाइयो और, बाहुबलीजी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥

तुम महावीर जी को जाइयो और, वीर प्रभुजी से कहियो।  
हो बुलालो अपने पास, उमरिया रह गई थोड़ी॥ रे मन...॥



# विश्व तीर्थ बडा प्यारा

तर्ज : गोरी तेर गांव बडा प्यारा

विश्व तीर्थ बडा प्यारा, अजब है नजारा, (आओ यहां रे)  
यहां मंदिर बना न्यारा, देश का प्यारा, (सुनों जरा रे) ॥टेक॥

दूर दूर से आए मनीषी, जिन वचनामृत कहने  
जड़ चेतन का विन्ह बताकर, मोह अंधेरा हरने  
सही शिव मार्ग बताने को, जैन ग्रंथ देखो, (गुरु कहे रे) ॥विश्व-१॥

जिनवाणी के लाल बनों तुम, बन जाओ प्रभू जैसे  
सम्यक श्रद्धा गर हो जाए, भटकोगे तुम कैसे  
कुंदकुंद कहान के ये सपने, कैसे होंगे अपने, (सोचो जरा रे) ॥  
विश्व-२॥

एक शुद्ध मैं, सदा अरूपी, गुरुवर का कहना है  
मान ले भैया, बात प्रभू की, भवसागर तिरना है  
ले लो अब आत्म का सहारा, तीर्थ बडा प्यारा, (आओ यहां रे) ॥  
विश्व-३॥



# सम्मेद शिखर पर मैं जाऊँगा

सम्मेद शिखर पर मैं जाऊँगा डोली रखदो कहारों ।  
मैं टोंकों की वंदन को जाऊँगा डोली रखदो कहारों ॥

परस प्रभु का जो दर्शन पाऊँ,  
मैं भी तो पथर से सोना हो जाऊँ,  
अपने पारस को मैं रिझाऊँगा, डोली....

चौबीस जिनराज बैठे जहाँ पे,  
ऐसा सुहाना है मन्दिर वहाँ पे,  
बैठ मन्दिर मैं भजन सुनाऊँगा, डोली ...

अन्दर के भावों का अर्ध बनाऊँ,  
पूजा की थाली चरणों मे लाऊँ,  
जा के आष द्रव्य को चढाऊँगा, डोली...

ऐसा ललित कूट हृदय विहंगम,  
ललित कलाओं का कैसा ये संगम,  
ऐसी सुंदर छवि मन मैं लावूँगा, डोली..



# सांवरिया पारसनाथ शिखर पर

ऊँचे शिखरों वाला, सबसे निराला

सांवरिया पारसनाथ शिखर पर भला विराज्या जी  
भला विराज्या जी ओ बाबा थे तो भला विराज्या जी ॥

वैभव काशी का ठुकराया, राज पाट तोहे बाँध ना पाया  
तू सम्मेद शिखर पे मुक्ति पाने आया -२  
वो पर्वत तेरे मन भाया जहाँ भीलों का वासा जी ॥

टोंक टोंक पर ध्वजा विराजे, झालर बाजे घंटा बाजे  
चरण कमल जिनवर के कूट-कूट पर साजे  
दूर-दूर से यात्री आए आनंद मंगल खासा जी ॥

झर-झर बहता शीतल नाला, शांत करे भव-भव की ज्वाला  
गीत नहीं जग में इतने जिनवर वाला  
वंदन करके पूरण होती भक्त जनों की आसा जी ॥

हमको अपनी भक्ति का वर दो, समताभाव से अन्तर भर दो

हे पारसमणि भगवन हमको कंचन कर दो  
दो आशीष मिट जाए हमारा जन्म मरण का रासा जी ॥



## कल्याणक भजन



### आज जन्मे हैं तीर्थकर



आज जन्मे हैं तीर्थकर इस भरत क्षेत्र वसुधा पर,  
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है...

प्रगटा है परमेश्वर शिवा देवी माँ के आँगन,  
हर्षित समुद्र विजय जी समाचार ये सुनकर,  
सारी नगरी बनी है दुल्हन हुआ कण-कण धरा का पावन ।  
अभिनन्दन है, अभिनन्दन है...





# आज तो बधाई राजा नाभि

आज तो बधाई, राजा नाभि के दरबार में  
नाभि के दरबार में, नाभि के दरबार में ॥

मरुदेवी ने ललना जायो, जायो रिषभ कुमार जी  
अयोध्या में उत्सव कीनो, घर घर मंगलाचार जी ॥१॥

हाथी दीना घोड़ा दीना, दीना रथ भंडार जी  
नगर सरीखा पट्टन दीना, दीना सब श्रृंगार जी ॥२॥

घन घन घन घन घंटा बाजे, देव करे जयकार जी  
इंद्राणी मिल चौक पुराए, भर-भर मुतियन थाल जी ॥३॥

तीन लोक में दिनकर प्रकटे घर घर मंगलाचार जी  
केवल-कमला रूप निरंजन आदीश्वर महाराज जी ॥४॥

हाथ जोड़ मैं करूँ वीनती, प्रभुजी यो चिरकाल जी  
नाभि राज दान देवें बरसे रतन अपार जी ॥५॥





# आज नगरी में जन्मे आदिनाथ

आज नगरी में जन्मे आदिनाथ, सुन सुन मेरे भैया ।

चल भव सागर के ती...र, अब मिल गई नैया ।  
आदीश्वर का जन्म हुआ है, घर घर मंगल छाया ॥टेक ॥

सौधर्म इन्द्र भी आया है और इन्द्राणी भी आई है  
क्या रूप सलौना देखा, तो, अखियाँ हजार बनाई है

नर नारी सब मंगल गावें... हाथ से लेय बलैयाँ  
आज नगरी में जन्मे आदी, सुन सुन मेरे भैया ॥आज...१॥

ऐरावत हाथी पर चढ़कर, पाण्डुक शिला ले जायेंगे ।

क्षीर सागर के निर्मल जल से, अभिषेक प्रभु का कराएंगे  
फूली नहीं समाये मन में आज तो त्रिशला मैया ॥आज...२॥

जन्म जगत से सबका होता, किन्तु निश्चित मरना होता हो

जन्म सबका होता है, किन्तु निश्चित मरना होता,

कल्याणक जिनका होता, कभी न जीना मरना होता

भव से पार लगाने वाला, मिला खिवैया ॥आज...३॥





# आनंद अंतर मा आज न समाय

आनंद अंतर मा आज न समाय,  
जनमे पारसकुमार खुला मुक्ति का द्वार।  
तिहुँ लोक में आनंद छाया।

स्वर्ग पुरी से देवगति तज प्रभु ने नर-तन पायो ।  
धन्य वामादेवी माता तीर्थङ्कर सुत जायो ।  
इन्द्र नगरी माँ आये, मंगल उत्सव रचाये...  
सारी धरती दुल्हन सी सजी जाये ॥आनंद...१॥

सोलह सपने माँ ने देखे, मन में अचरज भारी ।  
अश्वसेन से फल जब पूछा, उपजा आनंद भारी ।  
तीनों लोकों का नाथ, तेरे गर्भ में मात  
अनुभूति में दर्शन पाय ॥आनंद...२॥

अंतिम जन्म लिया प्रभु तुमने सुरपति द्वारे आये ।  
नेत्र हजार निहारे प्रतिक्षण तृप्त नहीं हो पाये ।  
गीत सुर बाला गायें, शाची चौक पुराय  
नरकों में भी शान्ति छाय ॥आनंद...३॥

भव्य जनों के इष्ट जिनेश्वर, अंतिम भव को धारे ।

स्वयं तिरे भवसागर से और हमको पार उतारे ॥  
सब मिलकर के आये प्रभु दर्शन को पाय  
प्रभुता निज की पा जाय ॥आनंद...४ ॥



## आनंद अवसर आज सुरगण



आनंद अवसर आज सुरगण आये नगर में ।  
तीर्थकर संग आज आनंद छाया नगर में  
आनंद अवसर...

स्वर्गपुरी से सुरपति आये, सुंदर स्वर्ण कलश ले आये।  
निर्मल जल से तीर्थकर का, मंगलमय शुभ न्हवन कराये।  
परिणति शुद्ध बनाये, सुरगण आये नगर में ।  
आनंद अवसर...

प्रभु जी वस्त्राभूषण धारे, चेतन को निर्वस्त्र निहारे।  
एक अखंड अभेद त्रिकाली, चोतन तन से भिन्न निहारे  
आनंद रस बरसाये, सुरगण आये नगर में ।  
आनंद अवसर...

पुण्य उदय है आज हमारे, नगरी में जिनराज पधारे।  
निशदिन प्रभु की सेवा करने, भक्ति सहित सुरराज पधारे।  
जीवन सफल बनाये, सुरगण आये नगर में ।  
आनंद अवसर...

सुरपति स्वर्ग पुरी को जावे, भोगों में नहीं चित्त ललचावे।  
आनंद घन निज शुद्धात्म का, रस ही परिणति में नित भावे।  
भेद विज्ञान सुहाये, सुरगण आये नगर में ।  
आनंद अवसर...



## आया पंच कल्याणक महान 2



आया पंचकल्याणक महान आया पंचकल्याणक महान  
जन्म मरण दुख क्षय कर हम भी, पायें पद निर्वाण ॥

जग तारक प्रभु तीर्थश्वर का अन्तिम जन्म महा सुखमय ।  
स्वयं तिरे प्रभु भवसागर से हमको तारो यही विनय ॥

ज्ञान दिवाकर उदित हुआ अब पाओ सम्यग्ज्ञान...  
आया पंचकल्याणक महान आया...

निरख निरख छवि बाल प्रभु की सुरपति आनन्द उर भारी ।  
रूप अनुपम प्रभु बालक का लख शचि लेती बलिहारी ॥  
हिल मिल नृत्य करें सब भविजन गावें मंगल गान...  
आया पंचकल्याणक महान आया...

गुण अनन्त के धारी प्रभुकर अन्तर परणति क्या कहना  
तीन ज्ञान संग ले जन्मे प्रभु पहने रत्नत्रय गहना ॥  
धन्य धन्य है भाग्य ह मारे मिला मुक्ति वरदान...  
आया पंचकल्याणक महान आया...

ज्यों पारस से संस्पर्शित हो लोह स्वयं पारस होता  
त्यों जिनवर के दर्श मात्र से मोह अन्धेरा क्षय होता ॥  
आप कृपा से जागे वह बल मैं भी बनू भगवान...  
आया पंचकल्याणक महान आया...



आया पंच कल्याणक महान



आया पंच कल्याणक महान्, श्री नेमी बनेंगे भगवान्  
आनन्द रस झरता है - २

स्वर्ग-पुरी से प्रभु जब आएँगे, सुरपति गर्भ कल्याण मनाएँगे  
नाचे गाएं करें गुणगान, श्री नेमी बनेंगे भगवान् - ॥१॥

नेमी कुंवर का जन्म जब होएगा, पांडू-शिला पर अभिषेक होगा  
प्रभु धारेंगे तिन-तीन ज्ञान, श्री नेमी बनेंगे भगवान् - ॥२॥

जीवन की क्षण-भंगुरता जानकर, एक शुद्ध आत्म उपादेय मानकर  
फिर धारेंगे मुनिपद महान्, श्री नेमी बनेंगे भगवान् - ॥३॥

क्षायिक श्रेणी प्रभुजी चढ़ेंगे, क्षण में केवल-ज्ञान वरेंगे  
दिव्य-ध्वनी खिरेगी महान्, श्री नेमी बनेंगे भगवान् - ॥४॥

प्रभु जब योग निरोध करेंगे, मुक्ति पूरी का राज्य वरेंगे  
तब होगा आनन्द महान्, श्री नेमी बनेंगे भगवान् - ॥५॥



आयो आयो पंचकल्याणक भविजन



आयो आयो पंचकल्याणक भविजन आ जाओ...  
खुला है आज मुक्ति का द्वार भविजन आ जाओ...  
आनन्द है उत्सव... आ जाओ, ये महा महोत्सव...  
आओ रे पधारो सिद्धक्षेत्र मंगल यह उत्सव आया यहाँ ॥

क्षेत्र शिखरजी सिद्धधरा का कण कण है अति पावन ।  
नगर बनारस आज बन गया भरत का मधुवन ।  
बहे आनन्द रस की धार भविजन आ जाओ ॥१॥

भव्यों का सौभाग्य खिला है जिनदर्शन सब पायें ।  
सिद्धक्षेत्र में आकर हम सब सिद्धों से मिल जावें ॥  
लागा सिद्धों का दरबार भविजन आ जाओं ॥२ आनन्द...॥

आनन्द है उत्सव... रत्नत्रय उर धार स्वयं प्रभु, शाश्वत सिद्धपद पायें  
।

भवोदधि में हम थे अटके हमको पार लगावों ॥  
चलो भवसागर के पार भविजन आ जाओ ॥३ आनन्द...॥

आनन्द है उत्सव... सिद्धों को मंगल आमन्त्रण सिद्धालय से आया ।  
अब जो जागों निज हित लागों सिद्धों ने बुलवाया ।  
पाने सिद्धगति सुखकार भविजन आ जाओ ॥४ आनन्द...॥





## इन्द्र नाचे तेरी भक्ति में

इन्द्र नाचे तेरी भक्ति में छनन छनन,  
छन छनन छनन तुं तनन तनन ।

तीन प्रदिक्षण प्रभु की लगा के शचि देख हरषाई,  
बाल प्रभु सीने से लगे, बजी ममता की शहनाई ।  
इन्द्राणी की पायल बाजे झनन झनन ॥इन्द्र...१॥

बाल प्रभु के सुरपति निरखे लोचन सहस बनाये,  
नर-नारी भी देख प्रभु को, हिये न हर्ष समाये ।  
पुण्य बढ़े और पाप का होवे हनन हनन ॥इन्द्र...२॥

सनत कुमार माहेन्द्र इन्द्र भी चौसठ चंवर दुरावे,  
शेष शुक्र के जयकारे से गनाम्बर गुंजावे ।  
मन्द सुगधित पवन बह रही सनन सनन ॥इन्द्र...३॥

क्षिरोदधि से कलश इन्द्र ने हाथों हाथ भराये,  
पाण्डु शिला पर प्रभु विराजे चन्द्र सूर्य शमयि ।  
स्वर्ग लोक से घंटे बाजे घनन घनन ॥इन्द्र...४॥



# उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान चुनरियाँ

उड़ उड़ रे उड़ उड़ रे उड़ उड़ रे उड़ उड़ रे ।  
 उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान चुनरियाँ  
 तारणहारा प्रभुजी घर आवे,  
 तारणहारा प्रभुजी घर आवे रे आवे ॥टेक॥

स्वर्ग पुरी से प्रभु जी पधारे हो ५५...  
 जग को मुक्ति मार्ग बताये।  
 कण कण में... कण कण में छाई है खुशियाली  
 तारणहारा प्रभुजी घर आये...  
 रे आवे तारणहारा प्रभुजी घर आवें ॥१॥

समकित सुगन्धी दश दिश महके हो ५५...  
 चैतन्य परणति पंछी चहके ।  
 दुल्हन सी... दुल्हन सी सजी नगरी प्यारी  
 तारणहारा प्रभुजी घर आये...  
 रे आवे तारणहारा प्रभुजी घर आवें ॥२॥

त्रिभुवनपति की शोभा न्यारी हो ५५...  
 अन्तर परणति निजरस पागी ।

मुक्ति का... मुक्ति का मार्ग पाये नर नारी  
तारणहारा प्रभुजी घर आये...  
रे आवे तारणहारा प्रभुजी घर आवें ॥३॥



## कल्पद्रुम यह समवसरण है



कल्पद्रुम यह समवसरण है, भव्य जीव का शरणागार,  
जिनमुख घन से सदा बरसती, चिदानंद मय अमृत धार ॥

जहां धर्म वर्षा होती वह, समसरण अनुपम छविमान,  
कल्पवृक्ष सम भव्यजनों को, देता गुण अनंत की खान  
सुरपति की आज्ञा से धनपति, रचना करते हैं सुखकार,  
निज की कृति ही भासित होती, अति आश्वर्यमयी मनहार ॥कल्प॥

निजज्ञायक स्वभाव में जमकर, प्रभु ने जब ध्याया शुक्लध्यान,  
मोहभाव क्षयकर प्रगटाया, यथाख्यात चारित्र महान  
तब अंतर्मुहूर्त में प्रगटा, केवलज्ञान महासुखकार,  
दर्पण में प्रतिबिम्ब तुल्य जो, लोकालोक प्रकाशन हार ॥कल्प॥

गुण अनंतमय कला प्रकाशित, चेतन चंद्र अपूर्व महान,

राग आग की दाह रहित, शीतल झारना झारता अभिराम  
निज वैभव में तन्मय होकर, भोगे प्रभु आनंद अपार,  
ज्ञेय झलकते सभी ज्ञान में, किन्तु न ज्ञेयों का आधार ॥कल्प ॥

दर्शन ज्ञान वीर्य सुख से है, सदा सुशोभित चेतन राज,  
चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्यों से शोभित है जिनराज  
अंतर्बाह्य प्रभुत्व निरखकर, लहें अनंत आनंद अपार,  
प्रभु के चरण कमल में वंदन, कर पाते सुख शांति अपार ॥कल्प ॥



## कुण्डलपुर में वीर हैं जन्मे



कुण्डलपुर में वीर हैं जन्मे सबके मन हषयि  
प्रकट हुए तीर्थकर जग में देव बधाई गायें ॥  
वीरा वीरा गायें, सब मिल वीरा वीरा गायें, सारे जय महावीरा गायें

सच हो गये त्रिशला मैथ्या ने देखे थे जो सपने  
आ गए जग कल्याण करन को वीर प्रभुजी अपने  
देवियाँ आवें, पलना झुलावें, इंद्र सुमन बरसाए ॥१॥

ऐरावत हाथी पे स्वर्ग से इंद्र देवता आये

सुमेरु पर्वत पर स्वामी का कलशाभिषेक कराएं  
हृदय खोलकर कुबेर ने भी रतन बहुत बरसाए ॥२॥

वर्धमान के दर्शन करने सुर नर मुनि सब आये  
करें वंदना बारी-बारी संग में चैवर ढुलायें  
लिखें बेखबर भक्ति भाव से हम सब भजन सुनाएँ ॥३॥



## कुण्डलपुर वाले वीरजी



कुण्डलपुर वाले कुण्डलपुर वाले वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले  
वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

मां त्रिशला घर जन्म लियो है, माता की कोख को धन्य कियो है  
नृप सिद्धार्थ के आंखों के तारे...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

अंतिम जन्म हुआ प्रभुजी का, जन्म मरण को नाश कियो है  
नृप सिद्धार्थ के आंखों के तारे...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

स्वर्ग पुरी से सुरपति आये, ऐरावत हाथी ले आये  
रतन बरसाये हां न्हवन कराये...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

देखो भैया इन्द्र भी आये, पंचकल्याणक का उत्सव कराये  
सभी हरषाये हां खुशियां मनाये...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

पांडुक शिला पर प्रभु को बिठाये, क्षीरोदधि से न्हवन कराये  
प्रभु दर्शन कर अति हरषाये, मंगल तांडव नृत्य रचाये  
सभी हरषाये हां खुशियां मनाये...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥

तन से भिन्न निजातम निरखे, निज अंतर का वैभव परखे  
भेद ज्ञान की ज्योति जलावे, संयम की महिमा चित लावे  
गये पावापुरी गये पावापुरी...वीरजी हमारे कुण्डलपुर वाले ॥



## गर्भ कल्याणक आ गया

गर्भ कल्याणक आ गया,  
देखो देखो जी आनंद छा गया ॥



स्वर्गपुरी से देवगति को तजकर प्रभु ने नरगति पाई,  
धन्य धन्य है त्रिशला माता तीर्थकर की माँ कहलाई,  
कुण्डलपुर में आनंद छा गया ॥

सोलह सपने माँ ने देखे मन में अचरज भारी है,  
सिद्धार्थ नृप से फ़ल पूछा उपजा आनंद भारी है,  
तीन भुवन का नाथ आ गया ॥

अंतिम गर्भ हुआ प्रभुजी का अब दूजी माता नहीं होगी,  
शुद्धात्म के अवलम्बन से आत्मसाधना पूरी होगी,  
ज्ञान स्वभाव हमें भा गया ॥



## गावो री बधाईयां



गावो री बधाईयां, बजाओ मिल सुख शहनाइयां,  
जन्मे हैं श्री जिनराइयां ॥

धन्य मरुदेवी ने जायो है ललना,  
विश्व झुलाये जिसे आज नैन पलना।  
जग हर पाइयां कि सूरज चांद जलाइयां ॥ जन्मे हैं... ॥

छप्पन कुमारियों ने की मात सेवा,  
रची थी अयोध्या नगरी स्वर्ग सम देवा।

धनद उमगाइयां, रत्न है अपार बरसाइयां॥ जन्में हैं...॥

आज अयोध्या साये, बना शुभ नगर है,  
चहका है चप्पा चप्पा, छटा मनहर है।

तोरणहार सजाइयां, बंदनवार बधाइयां॥ जन्में हैं...॥

धन्य है वो नर जिन जन्मोत्सव मनाते,  
पुण्य उदय से ऐसा अवसर पाते।

प्रभु गुण गाइयां, शील निजभाग वराइयां॥ जन्में हैं...॥



## गिरनारी पर तप कल्याणक



गिरनारी पर तप कल्याणक नेमि बनेंगे मुनिराज रे

आए लौकांतिक ब्रह्मचारी, हुए प्रसन्न देख नर नारी,  
धन्य दिवस है आज रे, धन्य दिवस है आज रे ॥१॥

प्रभुजी बारह भवना भाये, परिणति में वैराग्य बढ़ाये,  
हम भी बनेंगे मुनिराज रे, हम भी बनेंगे मुनिराज रे ॥२॥

शुद्धात्म रस को ही चाहे, विषय भोग विष सम ही लागे ,  
राग लगे अंगार रे, राग लगे अंगार रे ॥३॥

प्रभु जी वेश दिगम्बर धारे, चेतन को निर्गन्थ निहारे ,  
बरसे आनंद धार रे, बरसे आनंद धार रे ॥४॥



## घर घर आनंद छायो

घर घर आनंद छायो, जन्म महोत्सव मनायो- मनायो  
अंतिम जन्म हुआ प्रभु जी का, मोक्ष महाफ़ल पायो जी पायो ॥



स्वर्ग पुरी से सुरपति आये, एरावत हाथी ले आये,  
जीवन सफल हुआ सुरपति का, जन्म मरण को शीघ्र नशाये,  
मंगल महोत्सव मनायो मनायो, घर घर... ॥घर..१॥

पुण्य उदय है आज हमारे, नगरी में जिनराज पधारे,  
जिनदर्शन की प्यास जगाये, भक्ति सहित सुरराज पधारे,  
आत्म रस बरसायो बरसायो, घर घर... ॥घर..२॥

धन्य धन्य तुम देवी जाओ, सर्वप्रथम दर्शन सुख पाओ,

कष्ट न किंचित हो माता को, मायामयी सुत देकर आओ,  
आतम दर्शन पाओ जी पाओ, घर घर... ॥घर..३॥

हरि ने नेत्र हजार बनाये, तो भी तृप्त नहीं हो पाये,  
ज्ञान चक्षु से जिन दर्शन कर, एक अभेद स्वभाव लखाये,  
जीवन सफल बनायो बनायो, घर घर... ॥घर..४॥



## छायो रे छायो आनंद छायो



छायो छायो छायो रे छायो, आनंद छायो रे  
जन्मकल्याणक आयो रे  
आयो आयो आयो रे आयो, जिन शिशु आयो रे  
मरुदेवी ने जायो रे ॥

देव-देवियाँ नृत्य रचाएँ, हर्षित हैं, सब सुरबालाएँ  
जिनवर की भक्ति के रंग में, हम सब भी रंग जाएँ  
ओSSS सभी नाचे गाएँ झूम-झूम कर नाच-नाचकर हर्षोत्सव मनाएँ  
छायो छायो... ॥१॥

चंदन केशर घोलें सखियाँ, वंदनवार सजाएँ

बाजे दुंदुभी साज मनोहर, भूमंडल गुंजाएँ।  
ओऽSSS भूमंडल गुंजाएँ झूम-झूम कर नाच-नाचकर जन्मोत्सव  
मनाएँ  
छायो छायो... ॥२॥

अद्भुत ललना माँ ने जायो, तीन ज्ञान का धारी  
अन्तर के आनंद में झूले, त्रिजग मंगलकारी ओऽSSS  
मंगलकारी झूम-झूम कर नाच-नाचकर धर्मोत्सव मनाएँ  
छायो छायो... ॥३॥



## जन्म लिया है महावीर ने



तर्ज : आओ बच्चों तुम्हें सुनाएँ

जन्म लिया है महावीर ने, उत्सव बड़ा महान है  
जैनम जयति शासनं ये जैन धर्म की शान है ॥

चैत्र सुदी तेरस तिथि आयी, शुक्रवार का दिन प्यारा  
माँ त्रिशला के गर्भ से आये लिया प्रभु ने अवतारा  
दर्शन को आते नर-नारी, गाते मंगल गान हैं ॥  
जन्म लिया है महावीर ने, उत्सव बड़ा महान है ॥१॥

कुण्डलपुर में खुशियां छाई, सिद्धार्थ जी हष्यि  
वर्द्धमान शुभ नाम रखाया, मेरु शिखर पर वो आये  
न्वहन पूजा करें सभी, मंत्रों की गूंजे तान है ॥  
जन्म लिया है महावीर ने, उत्सव बड़ा महान है ॥२॥

हिंसा पशु बलि आडम्बर से वर्द्धमान मन द्रवित हुआ  
मन में करुणा भर आयी, फिर जैन धर्म था उदित हुआ  
सत्य अहिंसा धर्म जियो, और जीने दो का ज्ञान है ॥  
जन्म लिया है महावीर ने, उत्सव बड़ा महान है ॥३॥

बारह वर्ष की घोर तपस्या, खपा दिए थे कर्म सभी  
कैवल्यज्ञान को पाकर के फिर, जान लिए थे मर्म सभी  
निर्मल मन से महावीर का हम करते गुण-गान हैं ॥  
जन्म लिया है महावीर ने, उत्सव बड़ा महान है ॥४॥



## जहाँ महावीर ने जन्म लिया



तर्ज : हे प्रीत जहाँ की रीत सदा

जहाँ महावीर ने जन्म लिया, मैं गीत वहां के गाता हूँ ।

जिसका कण-कण पावन है, मैं उस भू को शीश नवाता हूँ ॥

थी चेत सुधि तेरस महान, अवतरित धरा पर वीर हुआ ।  
भूमण्डल पर छा गयी शांति, जब महावीर का जन्म हुआ ।  
इस पावन भू की महिमा सुन, मैं रोज रोज हर्षता हूँ ॥१॥

सिद्धार्थ पिता का नौनिहाल, जग की आँखों का तारा था ।  
त्रिशला माँ के दिल से पूछो वो उनका राज दुलारा था ।  
उस वीर प्रभु की महिमा सुन, मैं नित-नित शीश झुकता हूँ ॥२॥

तुम जियो सभी को जीने दो, था धर्म यही जो बतलाया ।  
हिंसा से मुक्ति नहीं मिलती, ये सबके दिल में ठहराया ।  
उस वीर प्रभु की पूजा में, श्रद्धा के सुमन चढ़ाता हूँ ॥३॥



## जागो जी माता जागन घड़ियाँ

जागो जी माता जागन घड़ियाँ आई  
उदयाचल से भानु जागा, नव किरणें उमगाई  
जागो जी माता जागन घड़ियाँ आई ॥टेक ॥



सृष्टि का श्रृंगार मनोरम, गाते पंछी मधुरिम मधुरिम  
प्रातः लालिमा छाई...  
जागो जी माता जागन घड़ियाँ आई ॥२॥

सुरबालायें मिलकें उठायें, मधुरिम स्वर में गीत सुनायें  
तज दो शयन वामा माई...  
जागो जी माता जागन घड़ियाँ आई ॥३॥

सुखकारिणी - हितकारिणी माता, रत्न कुक्षी धारिणी जगमाता  
नारी में श्रेष्ठ कहाई ...  
जागो जी माता जागन घड़ियाँ आई ॥४॥



## जूनागढ़ में सज गए

जूनागढ़ में सज गए देखो, तोरण द्वार  
डोली लाए नेमि कुमार ।  
रंग महल में राजुल रानी, करे श्रंगार  
डोली लाए नेमि कुमार ॥टेक॥



हाथों में मेहंदी रची, हृदय में राजा-स्नेह ।

राजुल राह निहारती, भर नैनन में नेह ।  
परिणय सूत्र में गूंज रहे हैं, मंगलाचार ॥डोली...१॥

रास रचाए चंद्रमा, रौशन है ये रात ।  
रत्नों के रथ से सजी, ये सुंदर बारात ।  
गगन से बरसे झिरमीर-झिरमिर, प्रेम फुहार ॥डोली...२॥

पशुओं का कुँदन सुना, चित्त में जगा वैराग ।  
टूट गई आशा सभी, टूट गया अनुराग ।  
रो-रोकर राजुल सुकुमारी, करत पुकार ॥डोली...३॥

नेमि कुँवर राजेन्द्र ने, धारा योगी वेश ।  
राजुल भी जोगन भई, बदल गया परिवेश ।  
धन्य-धन्य हो गया जगत में, गढ़ गिरनार ॥डोली...४॥



## झुलाय दइयो पलना

झुलाय दइयो पलना धीरे धीरे... २ ॥

झिलमिल मोती झालर झूमे, मैया ललन का मुखडा चूमे



मुस्काय रहे ललना धीरे धीरे ॥

त्रिशला माता पलना झुलावे, सिद्धारथ नृप मोती लुटाये  
सो जाओ रे ललना धीरे धीरे ॥

चंदन को पलना रेशम की डोरी, रतन जडे हैं चारों ओरी  
उनसे किरणें निकलना धीरे धीरे ॥

मंगल गीत गाय सुरनारी, बलि बलि जावे आज पुजारी  
भवदधि तरना धीरे धीरे ॥



## झूल रहा पलने में वामा दुलारा



तर्ज़: चाँद जैसे मुखड़े पे बिंदिया

पौष महीना की वदी, ग्यारस तिथी महान,  
अश्वसेन के अंगने, जन्मे श्री भगवान ॥

झूल रहा पलने में वामा दुलारा,  
लागे है ऐसे जैसे चाँद, ही जमीं पे, हो उतारा,

दर्शनों को देवों की भीड़ है अपारा ।

सीप से जैसे मोती उपजे, उज्जवल जन-मनहारी ।  
दीप से जैसे ज्योति उपजे, त्रिभुवन का तमहारी  
वामा-माँ की कोख से उपजा, जगत का सहारा ॥१... लागे॥

खुशियों का चहुं-दिश में फैला, आलम सजा बनारस ।

सर्प चिन्ह-युत कदली-दल सम काया धारे पारस ।  
हर्षित होके सहस नेत्र कर इन्द्र ने निहारा ॥२... लागे॥

पुत्र छवि को निरख-निरख कर, हर्षित वामा माता ।  
अश्वसेन घर जन्म महोत्सव, लख जग-आनंद भाता ॥  
बालक सबको दिखलाएगा, भव का ये किनारा ॥३... लागे॥



## तेरे पांच हुये कल्याण प्रभु



तेरे पांच हुये कल्याण प्रभु इक बार मेरा कल्याण कर दे।  
अंतर्यामी अंतर्ज्ञानी प्रभु दूर मेरा अज्ञान कर दे॥

गर्भ समय में रत्न जो बरसे, उनमें से एक रत्न नहीं चाहूं।

जन्म समय क्षीरोदधि से इन्द्रों ने किया वो न्हवन नहीं चाहूं ॥

मैं क्या चाहूं सुनले २

जो चित्त को निर्मल शांत करे वहीं गंधोदक मुझे दान कर दे ॥

धार दिगम्बर वेश किया तप तप कर विषय विकार को त्यागा ।

सार नहीं संसार में कोई इसीलिये संसार को त्यागा ।

मैं क्या चाहूं सुनले २

अपने लिये बरसों ध्यान किया मेरी ओर भी थोड़ा ध्यान कर दे ॥

केवलज्ञान की मिल गई ज्योति लोकालोक दिखाने वाली ।

समवशरण में खिर गई वाणी सबकी समझ में आने वाली ।

मैं क्या चाहूं सुनले २

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभु मेझे तेरा दर्श आसान कर दे ॥

तीर्थकर बनकर तू प्रगटा स्वाभाविक थी मुक्ति तेरी ।

मुक्ति मुझको दे तब देना भव भव की भक्ति तेरी ।

मैं क्या चाहूं सुनले २

निशदिन तेरे गुणगान करूँ बस इतना ही भगवान कर दे ॥

यहां कौन है ऐसा तेरे सिवा औरों को जो अपने समान कर दे ॥





# दिन आयो दिन आयो

दिन-आयो दिन-आयो दिन-आयो, आज जन्मकल्याणक दिन आयो  
दिन-आयो दिन-आयो दिन-आयो आज.. जन्मकल्याणक दिन आयो

झूमे आज नर-नारी ऐसे हरषाय  
झूमे आज नर-नारी ऐसे हरषाय  
म्हारो तन मनवा प्रभु के गुण गाये  
म्हारो तन मनवा प्रभु के गुण गाये  
रंग-लाग्यो रंग-लाग्यो रंग-लाग्यो थारी.. भक्ति में म्हारो प्रभु रंग-  
लाग्यो

दिन-आयो दिन-आयो दिन-आयो आज.. जन्मकल्याणक दिन आयो

तन भीगे मन भीगे भीगे मोरो आतम  
तन भीगे मन भीगे भीगे मोरो आतम  
प्रभु ने बतायो आतम परमातम  
प्रभु ने बतायो आतम परमातम  
रंग-लाग्यो रंग-लाग्यो रंग-लाग्यो थारी.. भक्ति में म्हारो प्रभु रंग-  
लाग्यो

दिन-आयो दिन-आयो दिन-आयो आज.. जन्मकल्याणक दिन आयो

सोलह सप्ने माँ ने देखे, उनका फ़ल राजा से पूछा,

रानी तेरे गर्भ से पुत्र जन्म लेगा, तीन लोक का नाथ बनेगा,  
हरषायो हरषायो हरषायो,  
माता शिवा देवी को मन हरषायो ॥

सौरीपुर में जन्म हुआ है, तीन भुवन आनंद हुआ है,  
इंद्र इंद्राणी मिल खुशियां मनावे, मंगलकारी गीत सुनावें,  
फ़ल पायो फ़ल पायो फ़ल पायो,  
माता शिवादेवी ने शुभ फ़ल पायो ॥



## दिव्य ध्वनि वीरा खिराई



दिव्य ध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,  
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम ॥  
आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं, आपूर्ण माध्यन्त विमुक्त मेकम ॥  
दिव्य ध्वनि....

वैसाख दसमी को घातिया खिपाये, मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये,  
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये,  
काल लब्धि वाणी की आयी नहीं उस दिन,  
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम...

इन्द्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर ना पाये,  
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये,  
काल लब्धि लेकर के आई आज गौतम,  
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम...

मेरे प्रभु ओंकार ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये,  
उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत समझाये, तन चेतन भिन्न भिन्न बताये,  
भेद विज्ञान सुहायो आज शुभ दिन,  
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम...

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यं,  
विकल्प जाल च्युत शांत चित्ता, स्तयेव साक्षातामृतं पिबन्ति ,  
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभ दिन,  
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम...



## देखा मैंने त्रिशला का लाल

देखा मैंने त्रिशला का लाल सोने के पलने में  
देखा मैंने त्रिशला का लाल मणियों के पलने में



माँ त्रिशला का दुलारा वो प्यारा प्यारा प्यारा ॥टेक ॥

माता त्रिशला ने, सोला सपनो में,  
इक बैल देखा, सिंघासन देखा,  
दो माला देखीं, मछली के जोड़े,  
जलमग्न सरोवर, चन्द्रमा देखा,  
निर्धूम अग्नि, दो मंगल कलशे,  
रत्नों की राशि, लक्ष्मी को देखा,  
सूरज भी देखा, कुछ और भी देखा,  
राजा से पूछा, राजा ने बोला,  
ओ रानी तेरे गर्भ से सुन्दर पुत्र होगा,  
तीनों लोकों का राजा वो तेरा पुत्र होगा,  
तो राजा सिद्धार्थ के लाल सोने के पलने में  
झूला झूले लाल सोने के पलने में ॥१॥

फिर घड़ियाँ बीती, वो चेत का महीना,  
प्यारी शुभ तेरस, एक बालक जन्मा,  
खुशियों की वर्षा, रत्नों की वर्षा,  
मणियों की वर्षा, फिर देव आये,  
सौधर्म भी आया, सची देवी आयी,  
और इंद्र भी आया, इन्द्राणी आयी,  
वो बालक ले गयी, पंडुक शिला पर,

फिर न्वहन कराया, फिर वापिस लायी,  
थी चारो ओर खुशियाँ, तो झूला झूले पलने में लाल ॥२॥



## नाचे रे इन्द्र देव



नाचे रे इन्द्र देव रे.... नाचे रे इन्द्र देव रे,  
जन्म कल्याण की बज रही बधैया मुक्ति में अब का देर रे

शिवादेवी के गर्भ में आये, देखो जी नेमिकुमार रे,  
समुद्रविजय जी फ़ल बतावें, होवे खुशियाँ अपार रे ॥१ नाचे॥

शिवादेवी ने ललना जायो, जायो नेमिकुमार रे,  
समुद्रविजय जी मुहरें लुटायें, देखो दोई दोई हाथ रे ॥२ नाचे॥

देव देवियाँ स्वर्ग से आये, मन में खुशियाँ अपार रे,  
छप्पन कुमारी मंगल गावें, गावें मंगलाचार रे ॥३ नाचे॥



## पंखिड़ा तू उड़ के जाना स्वर्ग



## पंखिड़ा हो<sup>ss</sup> पंखिड़ा

पंखिड़ा तू उड़ के जाना स्वर्ग-पुरी में  
कहना इन्द्र से कि चलो मध्य-लोक में

मध्य लोक में श्री जिनवारों के नाथ जन्मे हैं  
उनके माता पिता और तीनों लोक हर्षे हैं  
हाथी लाओ घोड़ा लाओ चलो बैठ के ॥१ कहना..॥

प्रभु के जन्म-कल्याणक खुशी से बढ़के कुछ नहीं  
प्रभु के रूप सौन्दर्य से है बढ़के कुछ नहीं  
स्वर्ण लाओ रत्न लाओ बांटों जनम में ॥२ कहना..॥

प्रभु का जन्म-नह्नन मेरु शिखर पर कराना है  
क्षीरोदधि से इक सहस्र कलश भर के लाना है  
भक्ति करो नृत्य करो प्रभु के जनम में ॥३ कहना..॥



# पंखिड़ा रे उड़ के आओ कुंडलपुर



पंखिडा ओ .... पंखिडा...

पंखिडा रे उड के आओ कुंडलपुर में,  
तीर्थकर जन्मे आज भरतक्षेत्र में॥पंखिडा..

माता त्रिशला ने देखे थे सोलह सपने,  
उनका फ़ल बताया सिद्धार्थराज ने,  
तेजवान बुद्धिमान लाल होएगा,  
ज्ञानवान तीर्थकर बाल होएगा॥पंखिडा..

सिद्धार्थराज के द्वार बजती बधाई है,  
प्रथम दर्शन को शची इंद्राणी आई है,  
इंद्र इंद्राणी आये आज नगर में,  
खुशियां अपार छाई नगर नगर में॥पंखिडा..

प्रभु आये यहां अच्युत विमान से,  
यह बालक शोभित सम्यक्त्व रिद्धि से,  
मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान है,  
सम्यक्दर्शन ज्ञान रत्न भी महान है॥पंखिडा..

प्रभु पूरी करेंगे यहां आत्मसाधना,  
अब धारण करेंगे कभी पुनर्जन्म ना,

वीतराग से जिनराज बनेंगे,  
चिदानंद चैतन्यराज वरेंगे ॥पंखिडा..



## पंखिडा रे उड के आओ शोरीपुर



पंखिडा ओ .... पंखिडा....

पंखिडा रे उड के आओ शोरीपुर में,  
तीर्थकर जन्मे आज भरतक्षेत्र में ॥पंखिडा..

शीवादेवी ने देखे थे सोलह सपने,  
उनका फ़ल बताया समुद्रविजय ने,  
तेजवान बुद्धिमान लाल होएगा,  
शानवान तीर्थकर बाल होएगा ॥पंखिडा..१॥

समुद्रविजय के द्वार बजती बधाई है,  
प्रथम दर्शन को शची इंद्राणी आई है,  
इंद्र इंद्राणी आये आज नगर में,  
खुशियां अपार छाई नगर नगर में ॥पंखिडा..२॥

प्रभु आये यहां अच्युत विमान से,  
यह बालक शोभित सम्यक्त्व रिद्धि से,  
मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान है,  
सम्यकदर्शन ज्ञान रत्न भी महान है ॥पंखिडा..३॥

प्रभु पूरी करेंगे यहां आत्मसाधना,  
अब धारण करेंगे कभी पुनर्जन्म ना,  
वीतराग से जिनराज बनेंगे,  
चिदानन्द चैतन्यराज वरेंगे ॥पंखिडा..॥



## पंचकल्याण मनाओ मेरे साथी

पंचकल्याण मनाओ मेरे साथी, जीवन सफल बनाओ मेरे साथी,  
आओ रे आओ आओ मेरे साथी,  
पंचकल्याण....



स्वर्गपुरी से प्रभुजी पधारे, मति श्रुत ज्ञान अवधि को धारे,  
अंतिम गर्भ हुआ प्रभु जी का, जन्म मरण के कष्ट निवारे,  
गर्भकल्याण मनाओ मेरे साथी॥ पंचकल्याण...

प्रथम स्वर्ग से इन्द्र पधारे, ऐरावत हाथी ले आये,  
पांडु शिला पर न्हवन रचाया, सकल पाप मल क्षय कर डारे,  
जन्मकल्याण कराओ मेरे साथी ॥ पंचकल्याण...

प्रभु ने आत्म ध्यान लगाया, निर्ग्रीथों का पथ अपनाया,  
नग्न दिगम्बर दीक्षा धर कर, राग द्वेष को दूर भगाया,  
तपकल्याण मनाओ मेरे साथी ॥ पंचकल्याण...

शुक्ल ध्यान की अग्नि जलाकर, चार घातिया कर्म नशाया,  
केवलज्ञान प्रकट कर प्रभु ने, जग को मुक्ति मार्ग बताया,  
ज्ञानकल्याण मनाओ मेरे साथी ॥ पंचकल्याण...

चरमशरीर छोड़कर प्रभुजी, सिद्ध शिला पर जाय विराजे,  
सादि अनंत काल तक शाश्वत, सुख निज परिणति में प्रगटाये,  
मोक्ष कल्याण मनाओ मेरे साथी ॥ पंचकल्याण...



**पालकी उठाने का हमें अधिकार है**



पालकी उठाने का हमें अधिकार है

देवों और मानवों की चर्चा का सार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

मनुष्य : प्रभु और हमारी गति भी समान है  
गति भी समान है मति भी समान है  
और.... चाहे कोई जीत कहो चाहे कोई हार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

देव : अद्भुत शक्ति के धारी हम देव हैं  
पालकी उठाके लाये कीनी हमने सेव है  
हमारा ही अभी तक प्यार और दुलार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

मनुष्य : शक्ति और वैभव तो पुङ्गल की माया है  
आत्म शक्ति का बल हमने ही पाया है  
और... फर्क तुम्हारे दुख होते निराधार हैं  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

वैक्रियिक शरीर ये तो पुङ्गल का खेल है  
नष्ट होय एक दिन मेरा नहीं मेल है

और... समय नष्ट नहीं करो क्योंकि समयसार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

दिव्य वस्त्राभूषण भोग अपने ही आप हैं  
प्रभु का ये अतिशय है पुण्य का प्रताप है  
और... कर्मों का खेल इसमें देवों पे क्या भार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

अभिमान छोड़ दो ये वैभव ना तुम्हारा है  
उग्र साधना का फल हमने ही पाया है  
आत्म शक्ति के आगे तीनों लोक हारा है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

जड़ रत्न बरसाए ये भी कोई जोर है  
संयम रतन के आगे इसका नहीं मोल है  
रत्नत्रय के आगे सब निस्सार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

पंच कल्याणक की पूजन का भाव है  
वो तो शुभ भाव है उससे क्या लाभ है  
मोक्ष मार्ग में नहीं उसका सार है  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

पुण्य और वैभव की तुम ना दुहाई दो  
शक्ति वाले बनते हो तो दीक्षा तुम धार लो  
संयम धारण करने को हमी तैयार हैं  
पालकी उठाने का हमें अधिकार है

देव : मनुष्यों तुम जीत गए स्वर्ग निस्सार है  
तुमको नमस्कार आज बारम्बार है  
आज संयम के आगे हुई पुण्य हार है  
पालकी उठाने का तुम्हें अधिकार है



## बधाई आज मिल गाओ



ताज़: बहारों फूल बरसाओ

बधाई आज मिल गाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं  
बजा दो गीत मङ्गलमय, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥

बिछा दो चाँदनी चन्दा, सितारों नाचते आओ  
सुनहला थार भर ऊषा, प्रभाकर आरती लाओ  
सुस्वागत साज सजवाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥१॥

लतायें तुम बलैयां लो, हृदय के फूल हारों से  
तितलियाँ रङ्ग बरसाओ, सतरंगी बहारों से  
मुबारकबाद सखि गाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥२॥

उमड़कर गंगा यमुना तुम, चरण प्रक्षाल कर जाओ  
अरी धरती उगल सोना, धनद सम कोष भर जाओ  
जगत् आनन्द-घन छाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥३॥

सफल हो आगमन इनका, हमें सौभाग्य स्वागत का  
सुखद जिनराज के दरशन, इष्ट साधर्मी सज्जन का  
मङ्गलाचार नित गाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥४॥

ऐरावत साथ में लेकर, स्वयं ही इन्द्र आते हैं  
हजारो नेत्र लखकर भी नहीं वे तृप्ति पाते हैं  
प्रभु गुणगान मिल गाओ, यहाँ महावीर जन्मे हैं ॥५॥



**बाजे कुण्डलपुर में बधाई**



बाजे कुण्डलपुर में बधाई  
कि नगरी में वीर जन्मे, महावीर जी ॥१॥

जागे भाग हैं त्रिशला माँ के..  
त्रिभुवन के नाथ जन्मे, महावीर जी ॥२॥

शुभ घड़ी जन्म की आई...  
कि स्वर्ग से देव आये, महावीर जी ॥३॥

तुझे देवियां झुलावे पलना..  
कि मन में मगन होके, महावीर जी ॥४॥

तेरे पलने में हीरे मोती..  
कि डोरियों में लाल लटके, महावीर जी ॥५॥

तेरे न्हवन करें मेरु पर..  
कि इंद्र जल भर लायें, महावीर जी ॥६॥

हम तेरे दरस को आये..  
कि पाप सब कट जाएंगे, महावीर जी ॥७॥

अब ज्योति तेरी जागी

के सूर्य चाँद छिप जाए, महावीर जी ॥७॥

तेरे पिता लुटावें मोहरें  
खजाने सारे खुल जाएंगे, महावीर जी ॥८॥



## मंगल ये अवसर आंगण



आओ नी आओ नी भविजन... आओ नी आओ नी भविजन  
सिद्धक्षेत्र के तले, सिद्धप्रभु से मिलें...  
निज अनुभव रस पान करें।  
आओ नी आओ नी भविजन ॥

मधुवन की पावन वसुधा से... २ मंगल आमन्त्रण आया... २  
सिद्धों के संग मिल जाने को... २ भव्यों को है बुलवाया... २  
खण्ड अष्टकर्म के बंधन छूटे... २  
भव भव से निज अनुभव रस पान करें... ॥१॥

मंगलकारी प्रभुकल्याणक, भव्यों के कल्याण स्वरूप  
जिन दर्शन है उनका सच्चा, प्रभु सम जो देखे निज रूप  
चिरभावी तब मोह पलाय...

पल भर में निज अनुभव रस पान करें ॥२॥

यदि दुख से परिमुक्ति चाहो, तो श्रामण्य स्वीकार करों... २  
इन्द्रिय सुख तो सदा दुखमय, अब इनका परिहार करो... २  
भव सागर से पार चलो अब  
क्षण भर में निज अनुभव रस पान करें ॥३॥



## मणियों के पलने में स्वामी

मणियों के पलने में स्वामी महावीर,  
झूला झूले रे भैया हां हां रे झूला झूले रे भैया

पलना में रेशम की डोरी पड़ी है, वा में मणियन की गुरिया जड़ी है  
त्रिशला माता झुलाय रही रे, झूला झूले ।

कुंडलपुर वासी बोले सारे, वीरा कुंवर की जय जयकारे  
दर्शन कर चरणा छूले रे, झूला झूले ।

चुटकी बजाय रही, हंस हंस खिलाय रही  
होले होले से झूला झुलाय रही



घर घर बाजे बधाई रे, झूला झूले ।

इंद्र भी आवे, इंद्राणी भी आवे, देश विदेश के राजा भी आये  
चरणों में भेंट चढ़ाय रहो रे, झूला झूले ।



## महावीरा झूले पलना



महावीरा झूले पलना, जरा हौले झोटा दीजो ॥

कौन के घर तेरो जन्म भयो है,  
कौन ने जायो ललना ॥ जरा... ॥

सिद्धारथ घर जन्म लियो है,  
त्रिशला ने जायो ललना ॥ जरा... ॥

काहे को तेरो बन्यों पालनो,  
काहे के लागे फुँदना ॥ जरा... ॥

अगर चंदन को बण्यों पालनो,  
रेशम के लागे फुँदना ॥ जरा... ॥

पैरों में घुंघरू हाथ में झुंझना,  
आंगन में चाले ललना ॥ जरा... ॥

अंदर से बाहर ले जावे, बाहर से अंदर ले जावे,  
नजर ना लागे ललना ॥ जरा... ॥



## माता थारी परिणति तत्त्वमयी



माता थारी परिणति तत्त्वमयी...  
पायों जिनवचनों ना सार माता संग चर्चा मां...  
माता थारी परिणति तत्त्वमयी ॥टेक ॥

समय नुसार आतम... समय नुसार आतम... माता मन भावें...  
राग से भिन्न ज्ञायक मात बतलावें ॥  
पायी तृष्णि अन्तर मां अविकारी माता संग चर्चा मां...  
माता थारी परणति तत्त्वमयी...  
पायों जिनवचनों ना सार माता संग चर्चा मां...  
माता थारी परणति तत्त्वमयी...

शुद्ध स्वरूपी ज्ञायक... २ सहज अनूपा ।

अरूपी अमूर्तिक सदा आनन्दरूपा ॥

जाना निज स्वरूप सुखकार माता संग चर्चा मां...

माता थारी परणति तत्त्वमयी...

पायों जिनवचनों ना सार माता संग चर्चा मां...

माता थारी परणति तत्त्वमयी...

जो न करे कर्म... जो न करे कर्म नोकर्म परिणाम ।

मात्र जाने न करें ज्ञानी आत्मराम ॥

पायों दिव्यध्वनि नों सार माता संग चर्चा मां...

माता थारी परणति तत्त्वमयी...२

पायों जिनवचनों ना सार माता संग चर्चा मां...

माता थारी परणति तत्त्वमयी...



## मेरा पलने में

मेरा पलने में झूले ललना... मेरा पलने में ॥



स्वर्णमयी अरु रत्न जडित यह स्वर्गपुरी से आया है,  
इस पलने में बैठ झूलने सुरपति मन ललचाया है,

किन्तु पुण्य है वीर कुंवर का ... इसमें शोभे ललना ॥मेरा ॥

बड़े प्यार से आज झुलाऊ अपने प्यारे लाल को,  
सप्त स्वरों में गीत सुनाऊ तीर्थकर सुत बाल को,  
शुद्ध बुद्ध आनंद कंद मैं... अनुभव करता ललना ॥मेरा ॥

तन मन झूमे पिताश्री का अवसर है आनंद का,  
सोच रहे हैं पुत्र हमारा रसिया आनंद कंद का,  
ज्ञानानंद झूले में झूले... देखो मेरा ललना ॥मेरा ॥

देवों के संग क्रीड़ा करता सब झूले आनंद में,  
किन्तु पुत्र की अंतर परिणति झूले परमानंद में,  
गुणस्थान षष्ठम सप्तम में ... कब झूलेगा ललना ॥मेरा ॥

अंतर के आनंद में झूले जाने ज्ञान स्वभाव को,  
मुझसे भिन्न सदा रहते हैं पुण्य पाप के भाव तो,  
भेदज्ञान की डोरी खीचें .... देखो मा का ललना ॥मेरा ॥

ज्ञान मात्र का अनुभव करता रमे नहीं पर ज्ञेय में,  
दृष्टि सदा स्थिर रहती है चिदानंद मय ध्येय में,  
निज अंतर में केलि करता ... देखो मेरा ललना ॥मेरा ॥



# मेरे महावीर झूले पलना

मेरे महावीर झूले पलना, सन्मति वीर झूले पलना

काहे को प्रभु को बनो रे पालना, काहे के लागे फुँदना  
रत्नों का पलना मोतियों के फुँदना, जगमग कर रहा अंगना  
ललना का मुख निरख के भूले, सूरज चाँद निकलना ॥१॥

कौन प्रभु को पलना झुलावे, कौन सुमंगल गावे  
देवीयां आवें पलना झुलावे, देव सुमन बरसावें  
पालनहारे पलना झूले, बन त्रिशला के ललना ॥२॥

त्रिशला रानी मोदक लावे, सिद्धारथ हषविं  
मणि-मुक्ता और सोना-रूपा दोनों हाथ उठावें  
कुण्डलपुर से आज स्वर्ग का स्वाभाविक है जलना ॥३॥

निर्मल नैना निर्मल मुख पर, निर्मल हास्य की रेखा  
यह निर्मल मुखड़ा सुरपति ने सहस नयन कर देखा  
निर्मल प्रभु का दर्श किये बिन भाव होय निर्मल ना ॥

# मोरी आली आज बधाई गाईयाँ



मोरी आली आज बधाई गाईयाँ ॥टेक ॥

विमला देवी बेटो जायो, श्री श्रेयांस मन नाँव धरायो,  
सब ही के मन भाइयाँ सो, मोरी आली आज बधाई गाईयाँ ॥१॥

इन्द्र सखी मिल नाचत गावत, तब लग तब लग मृदंग बजावत,  
घुंघरू ताल मजीरा बाजे, ताल देत है विविध भाँति की,  
सब ही के मन भाइयाँ सो मोरी आली आज बधाई गाईयाँ ॥२॥

विमल राय राजा घर बाजत बधाईयाँ, वाह वाह जी वाह वाह,  
आये है गुणी सब गावन बधाईयाँ, वाह वाह जी वाह वाह,  
बाजत ताल मृदंग नौपत शहनाईयाँ, वाह वाह जी वाह वाह,  
दान दियो राजा श्रेयांस मन भाइयाँ, वाह वाह जी वाह वाह,  
सो मोरी आली आज बधाई गाईयाँ, आज बधाई नसियाँ माई,  
आज बधाई मंदिर माई, आज बधाई गाईयाँ ॥३॥



## म्हारे आंगण आज आई



म्हारे आंगण आज आई देखो मंगल घड़ी  
मंगल घड़ी आई पावन घड़ी...  
म्हारे आंगण आज आई देखो मंगल घड़ी ॥टेक ॥

त्रिशला माता जी ललना जायो,  
तीर्थक्कंर सुत वीर घर आयो ।  
दुल्हन सी आज लागे देखो कुंडलपुरी ॥म्हारे ... १ ॥

अंतिम जन्म लिया प्रभु तुमने ।  
स्वानुभूति रमणी को रमने ।  
फिर नरकों में भी पलभर देखो शांति पड़ी ॥म्हारे ... २ ॥

सुरपति ऐरावत ले आए ।  
शाचि इंद्राणी मंगल गाए ।  
कलशा सजाके आए इंद्र नीर भरी ॥म्हारे ... ३ ॥

गगनमई पालने में झूले ।  
निज वैभव के रतन न भूले ।  
महावीर प्रभुजी महिमा तुमरी जग में बड़ी ॥म्हारे ... ४ ॥





# ये महामहोत्सव पंच कल्याणक

ये महामहोत्सव पंच कल्याणक आया मंगलकारी...  
ये महामहोत्सव...

जब काललब्धिवश कोई जीव निज दर्शन शुद्धि रखाते हैं,  
उसके संग में शुभ भावों की धारा उत्कृष्ट बहाते हैं।  
उन भावों के द्वारा तीर्थकर कर्म प्रकृति रज आते हैं,  
उनके पक्ने पर भव्य जीव वे तीर्थकर बन जाते हैं ॥१॥

इस भूतल पर पंद्रह महीने धनराज रतन बरसाते हैं,  
सुरपति की आज्ञा से नगरी दुल्हन की तरह सजाते हैं।  
खुशियां छाई हैं दश दिश में यूं लगे कहीं शहनाई बजे,  
हर आतम में परमात्म की भक्ति के स्वर हैं आज सजे ॥२॥

माता ने अजब निराले अद्भुत देखे हैं सोलह सपने,  
यह सुना तभी रोमांच हुआ तीर्थकर होंगे सुत अपने।  
अवतार हुआ तीर्थकर का क्या मुक्ति गर्भ में आई है,  
क्षय होगा भ्रमण चतुर्गति का मंगल संदेशा लाई है ॥३॥

जब जन्म हुआ तीर्थकर का सुरपति ऐरावत लाते हैं,

दर्शन से तृप्त नहीं होते तब नेत्र हजार बनाते हैं।  
जा पांडुशिला क्षीरोदधि जल से बालक को नहलाते हैं,  
सुत माता-पिता को सांप इंद्र, तब तांडव नृत्य रचाते हैं॥४॥

वैराग्य समय जब आता है प्रभु बारह भावना भाते हैं,  
तब ब्रह्मलोक से लौकांतिक आ धन्य धन्य यश गाते हैं।  
विषयों का रस फ़ीका पड़ता, चेतनरस में ललचाते हैं,  
तब भेष दिगंबर धार प्रभु संयम में चित्त लगाते हैं॥५॥

नवधा भक्ति से पड़गाहें, हे मुनिवर यहां पधारो तुम,  
हे गुरुवर अत्र अत्र तिष्ठो, निर्दोष अशन कर धारो तुम।  
हे मन-वच-तन आहार शुद्ध अति भाव विशुद्ध हमारे हैं,  
जन्मांतर का यह पुण्य फ़ला, श्री मुनिवर आज पधारे हैं॥६॥

सब दोष और अंतराय रहित, गुरुवर ने जब आहार किया,  
देवों ने पंचाश्वर्य किये, मुनिवर का जय-जयकार किया।  
है धन्य धन्य शुभ घड़ी आज, आंगन में सुरतरु आया है,  
अब चिदानंद रसपान हेतु, मुनिवर ने चरण बढ़ाया है॥७॥

प्रभु लीन हुए शुद्धात्म में निज ध्यान अग्नि प्रगटाते हैं,  
क्षायिक श्रेणी आरूढ़ हुए, तब घाति चतुष्क नशाते हैं।  
प्रगटाते दर्शन-ज्ञान-वीर्य, सुख लोकालोक लखाते हैं,

ॐकारमयी दिव्य धनि से प्रभु मुक्ति मार्ग बतलाते हैं ॥८॥

प्रभु तीजे शुक्लध्यान में चढ योगों पर रोक लगाते हैं,  
चौथे पाये में चढ प्रभुवर गुणस्थान चौदवां पाते हैं।  
अगले ही क्षण अशरीरी होकर सिद्धालय में फ़िर जाते हैं,  
थिर रहें अनंतानंत काल कृत्कृत्य दशा पा जाते हैं ॥९॥

है धन्य धन्य वे महान गुरु जिनवर महिमा बतलाते हैं,  
वे रंग राग से भिन्न चिदानंद का संगीत सुनाते हैं।  
हे भव्य जीव आओ सब जन, अब मोहभाव का त्याग करो,  
यह पंचकल्याणक उत्सव कर अब आत्म का कल्याण करो ॥१०॥



## रोम रोम में नेमिकुंवर के



रोम रोम में नेमिकुंवर के, उपशम रस की धारा,  
राग द्वेष के बंधन तोड़े, वेष दिगम्बर धारा ॥

ब्याह करन को आये, संग बराती लाये,  
पशुओं को बंधन में देखा, दया सिंधु लहराये।  
धिक धिक जग की स्वारथ वृत्ति, कहीं न सुक्ख लघारा ॥

राजुल अति अकुलाये, नौ भव की याद दिलाये,  
नेमि कहे जग में न किसी का, कोई कभी हो पाये।  
रागरूप अंगारों द्वारा, जलता है जग सारा ॥

नौ भव का सुमिरण कर नेमि, आत्म तत्व विचारे,  
शाश्वत ध्रुव चैतन्य राज की, महिमा चित में धारे।  
लहराता वैराग्य सिंधु अब, भायें भावना बारा ॥

राजुल के प्रति राग तजा है, मुक्ति वधू को ब्याहें,  
नग्न दिग्म्बर दीक्षा धर कर, आत्म ध्यान लगायें।  
भव बंधन का नाश करेंगे, पावें सुख अपारा ॥



## लिया रिषभ देव अवतार



लिया रिषभ देव अवतार निरत सुरपति ने किया आके,  
निरत किया आके हर्षा के प्रभूजी के नव भव कुं दरशा के,  
सरर सरर कर सारंगी तंबूरा बाजे  
पोरी पोरी मटका के ॥लिया... ॥

प्रथम प्रकासी वाने इंद्र जाल विद्या ऐसी,  
आजलों जगत मैं सुनी ना कहूं देखी ऐसी,  
आयो है छबीलो छटकीलो है मुकुट बंध,  
छम्म देसी कूदो मानु आ कूदो पूनम को चांद,  
मन को हरत गत भरत प्रभू को..  
पूजै धरनी को शिर नाके ॥लिया..॥

भूजों पै चढाये हैं हज़ारों देव देवी ताने  
हाथों की हथेली में जमाये हैं अखाडे तानै  
ताधिन्ना ताधिन्ना तबला किट किट उनकी प्यारी लागे  
धुम किट धुम किट बाजा बाजे नाचत प्रभू जी के आगे  
सैना मै रिझावै तिरछी ऐड लगावे..  
उड जावे भजन गाके ॥लिया...॥

छिन मैं जाब दे वो तो नंदीश्वर द्वीप जाय,  
पांचो मेर वंद आ मृदंग पै लगावे थाप,  
वंदे ढाई द्वीप तेरा द्वीप के शकल चैत्य,  
तीन लोक मांहि बिघ्न पूज आवे नित्य नित्य,  
आबै वो झपट समही पै दोडा लेने दम..  
मन मोहन मुसका के ॥लिया...॥

अमृत की लगी झड़ी बरषै रतन धारा,

सीरी सीरी चाले पोन बोलै देव जय जय कारा ,  
भर भर झोरी बषवि फूल दे दे ताल,  
महके सुगंध चहक मुचंग षट्ताल,  
जन्मे ये जिनेन्द्र यों नाभि के आनंद भयो..  
गये भक्ति को बतलाके ॥लिया..॥



## विषयों की तृष्णा को छोड



विषयों की तृष्णा को छोड, संयम की साधना में ...  
चल पडे नेमि कुमार ।  
परिग्रह की चिंता को तोड़कर निज के चिंतन में ....  
रम रहे नेमि कुमार, वेष दिगम्बर धार ॥

यह जीव अनादि से, है मोह से हारा ।  
चहुंगति में भटक रहा, दुख सहता बेचारा ।  
कोई नहीं है शरण अतः, आत्म ही शरण है,  
जाना जगत् असार... वेष दिगम्बर धार ॥१॥

प्रभु चल पडे वन को, ध्याये निज चेतन को ।  
सब राग तंतु तोड़े, काटे भव बंधन को ।

फिर मोह शत्रु नाशे और क्षायिक चारित्र धारे,  
जिस में है आनंद अपार... वेष दिगम्बर धार ॥२॥

कर चार घातिया क्षय, प्रगटे चतुष्ट अक्षय ।  
सारी सृष्टि झलके, परिणति निज में तन्मय ।  
शाश्वत शिवपद पायें और फिर मुक्ति वधु ब्याहें,  
हो भव सागर पार... वेष दिगम्बर धार ॥  
विषयों की तृष्णा को छोड़, संयम की साधना में ...  
चल पडे नेमि कुमार ॥३॥



## सुरपति ले अपने शीश



सुरपति ले अपने शीश, जगत के ईश, गए गिरिराजा  
जा पांडुक शिला विराजा ॥  
फ़िर न्हवन कियो जिनराजा ॥

शिल्पी कुबेर वहां आकर के क्षीरोदधि का जल लाकर के,  
रुचि पैडि ले आये, सागर का जल ताजा ॥फ़िर ॥

नीलम पन्ना वैदूर्यमणी, कलशा लेकर के देवगणी,

इक सहस आठ कलशा लेकर नभ राजा ॥फ़िर॥

वसु योजन गहराई वाले, चहुं योजन चौडाई वाले,  
इक योजन मुख के कलश द्वरे जिनमाथा ॥फ़िर॥

सौधर्म इंद्र अरु ईशाना, प्रभु कलश करें धर युग पाना,  
अरु सनकुमार महेन्द्र, दोय सुरराजा ॥फ़िर॥

फ़िर शेष दिविज जयकार किया, इंद्राणी प्रभु तन पोंछ लिया,  
शुभ तिलक दगांजान शची कियो शिशुराजा ॥फ़िर॥

एरावत पुनि प्रभु लाकर के माता की गोद बिठा करके,  
अति अचरज तांडव नृत्य कियो दिविराजा ॥फ़िर॥

चाहत मन मुन्नालाल शरण वसु कर्म जाल दुठ दूर करन,  
शुभ आशीष वरदान देहु जिनराजा, मम न्हवन होय गिरीराजा ॥



स्वागत करते आज तुम्हारा



स्वागत करते आज तुम्हारा,  
आवो-आवो हे प्रिय मेहमान, मंगल स्वागत है ॥टेक ॥

स्वागत करते हैं जिनवर का, परम पूज्य तीर्थकर प्रभु का,  
स्वागत है निर्मल परिणति में, मंगलमय चेतन ज्ञायक का,  
प्रभु के चरणों में वंदन कर, श्रद्धा सुमनों का अर्पण कर,  
तुम धन्य बनो मेहमान, मंगल स्वागत है ॥१॥

सारा भूमण्डल रोमांचित, कण-कण में छायी हरियाली,  
तीर्थकर के शुभागमन से, भरत क्षेत्र की छटा निराली,  
हम तुम सब स्वागत करते हैं, चरणों में वन्दन करते हैं,  
तुम भले पधारे भाग्यवान, मंगल स्वागत है ॥२॥

पंच प्रभु में भक्ति तुम्हारी, निशादिन हो भावना हमारी,  
प्रभु के पंच कल्याणक महोत्सव की, हमने कर ली तैयारी,  
शुद्धात्म को लक्ष्य बनाये, रलत्रय निधियां प्रगटायें,  
जन-जन का हो कल्याण, मंगल स्वागत है ॥३॥





तर्ज़ : चलो रे डोली उठाओ

# हो संसार लगने लगा अब

हो संसार लगने लगा अब असार, निज ज्ञायक की सुधि आई  
यतियों के मार्ग की महिमा अपार, द्वादश अनुप्रेक्षा मन भाई

उपशम रस की धारा बहती, अंतर परिणति ये ही कहती  
जन्म मरण का अंत होएगा, अनगारियों का पंथ होएगा  
लौकांतिक देवों ने की जय-जय कार, धन्य मुनिदशा मन भाई ॥  
हो संसार लगने लगा अब असार, निज ज्ञायक की सुधि आई ॥१॥

दशों दिशाओं की चुनरिया, ओढ चले मुक्ति डगरिया  
मुक्ति नगर को चले दिगंबर, हर्षित धरा और अंबर  
स्वर्गों से पुष्पों की वर्षा अपार, दिगंबर मुद्रा मन भाई ॥  
हो संसार लगने लगा अब असार, निज ज्ञायक की सुधि आई ॥२॥

सुरपति शिविका ले आए, पालकी में प्रभू को बैठाए  
पंच मुष्टि केषलोंच करके, वस्त्राभूषण सब तजके  
तिलतुष मात्र न परिग्रह धार, यथाजात मुद्रा मन भाई ॥  
हो संसार लगने लगा अब असार, निज ज्ञायक की सुधि आई ॥३॥



# महामंत्र भजन



## करना मन ध्यान महामंत्र

करना मन ध्यान महामंत्र णमोकार ॥



पहली बार बोले मन 'णमो अरिहंताणं'  
होंगे पाप के नाश महामंत्र णमोकार ॥

दूजी बार बोले मन 'णमो सिद्धाणं'  
होगा ज्ञान प्रकाश महामंत्र णमोकार ॥

तीजी बार बोले मन 'णमो आयरियाणं'  
होवे ज्ञान ध्यान महामंत्र णमोकार ॥

चौथी बार बोले मन 'णमो उवज्ञायाणं'  
होवे आत्म ज्ञान महामंत्र णमोकार ॥

पांचवी बार बोले मन 'णमो लोए सब्बसाहूणं'  
होंगे भव से पार महामंत्र णमोकार ॥



## जप जप रे नवकार मंत्र



जप जप रे नवकार मंत्र तू, इस भव पर भव सुख पासी,  
इस भव पर भव सुख पासी ॥

अरिहंत सिद्ध आचार्य सुमरले, उपाध्याय साधु चित धर ले,  
जन्म मरण थारो मिट जासी,  
जन्म मरण थारो मिट जासी ॥ जप जप रे... ॥

सीता सती ने इसको ध्याया, अग्नि का था नीर बनाया ,  
धन्य धन्य कहे जगवासी ,  
धन्य धन्य कहे जगवासी ॥ जप जप रे... ॥

सेठ पुत्र का जहर हटा था, श्रीपाल का कुष्ठ मिटा था ,  
टली सुदर्शन की फ़ांसी ,  
टली सुदर्शन की फ़ांसी ॥ जप जप रे... ॥

महिमा इसकी कही ना जाय, पंकज जो नर इसको ध्याये ,  
वो भवसागर तिर जासी ,  
वो भवसागर तिर जासी ॥ जप जप रे...॥



## जप ले मंत्र सदा नवकार



तर्ज : कह दो कोई ना करे यहाँ प्यार - गूंज उठे शहनाई

जप ले मंत्र सदा नवकार  
इससे पुण्य बढ़े, पाप बोझ हटे,  
ये ही मुक्ति का है दातार ॥टेक ॥

सेठ सुदर्शन ने इसको जपा,  
तो सूली से सिंहासन उसको मिला,  
कट गई बेड़ियाँ, फैली शील रश्मियाँ,  
सारे जग में हुई जय जयकार ॥जप....१॥

मैना सती ने इसको जपा,  
कुष्ठ रोग उसके पति का मिटा,  
मंत्र में घड़ता हुई, कंचन काया हुई,  
जिन धर्म की हुई जय जयकार ॥जप...२॥

करना जो चाहो जीवन सफल,  
सुमिरन करके हो जाओ 'विमल',  
संकट कट जायेंगे, भव भ्रम मिट जायेंगे,  
स्वर्ग मुक्ति के खुल जाये द्वार ॥जप...३॥



## जय जय जय कार परमेष्ठी



जय जय जय जय कार परमेष्ठी, जय जय जय जय कार

जय जय भविजन बोध विधाता, जय जय आत्म शुद्ध विधाता  
जय भव भंजन हार परमेष्ठी...जय जय जय कार

जय सब संकट चूरण कर्ता, जय सब आशा पूरण कर्ता  
जय जग मंगलकार परमेष्ठी...जय जय जय कार

तेरा जाप जिन्होने कीना, परमानन्द उन्होने लीना  
कर गये खेवा पार परमेष्ठी...जय जय जय कार

लीना शरणा सेठ सुदर्शन, सूली से बन गया सिंहासन

जय जय करें नर नार परमेष्ठी...जय जय जय कार

द्रौपदी चीर सभा में हरणा, तब तेरा ही लीना शरणा  
बढ़ गया चिर अपार परमेष्ठी...जय जय जय कार

सोमा ने तुम सुमरन कीना, सर्प फूल माला कर दीना  
वर्ते मंगलाचार परमेष्ठी...जय जय जय कार

अमर शरण में सम्प्रति आया, कर्मों के दुख से घबराया  
शीघ्र करो उद्धार परमेष्ठी...जय जय जय कार



## जो मंगल चार जगत में हैं



तर्ज़: है प्रीत जहां की रीत सदा

जो मंगल चार जगत में हैं, हम गीत उन्हीं के गाते हैं,  
मंगलमय श्री जिन चरणों में, हम सादर शीश झुकाते हैं॥

जहां राग द्वेष की गंध नहीं, बस अपने से ही नाता है,  
जहां दर्शन ज्ञान अनंतवीर्य-सुख का सागर लहराता है

जो दोष अठारह रहित हुऐ, हम मस्तक उन्हें नवाते हैं,  
मंगलमय श्री जिन चरणों में, हम सादर शीश झुकाते हैं ॥१॥

जो द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित, नित सिद्धालय के वासी हैं,  
आत्म को प्रतिबिम्बित करते, जो अजर अमर अविनाशी हैं

जो हम सबके आदर्श सदा, हम उनको ही नित ध्याते हैं,  
मंगलमय श्री जिन चरणों में, हम सादर शीश झुकाते हैं ॥२॥

जो परम दिगंबर वन वासी गुरु रत्नत्रय के धारी हैं,  
आरंभ परिग्रह के त्यागी, जो निज चैतन्य विहारी हैं  
चलते-फ़िरते सिद्धों से गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं,  
मंगलमय श्री जिन चरणों में, हम सादर शीश झुकाते हैं ॥३॥

प्राणों से प्यारा धर्म हमें, केवली भगवान का कहा हुआ,  
चैतन्यराज की महिमामय, यह वीतराग रस भरा हुआ  
इसको धारण करने वाले भव-सागर से तिर जाते हैं,  
मंगलमय श्री जिन चरणों में, हम सादर शीश झुकाते हैं ॥४॥



## णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं



णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,  
णमो आईरियाणं, णमो उवज्ञायाणं,  
णमो लोए सब्ब साहुणं ॥

पहला नमन अरिहंत को, जिनसे कुछ भी छिपा नहीं,  
विषयों के प्रकोप से जो दूर हैं, राग द्वेष पास आता नहीं,  
इन्द्र भी पूजन करें, कर्म भी डर-डर मरे,  
केवल ज्ञान पग धरे, अरिहंत अरि हरे ॥णमो...१॥

दूसरा नमन श्री सिद्ध को, साध्य को सिद्ध जिसने किया,  
अपने रूप में स्थिर हैं जो, अष्ट कर्मों को नष्टकर लिया,  
एकाग्र मन से याद कर, सिद्ध प्रभु का जाप कर,  
पापों का नाश कर, भव सागर पार कर ॥णमो...२॥

तीसरा नमन आचार्य को, पाँच आचारों का जो पालन करें,  
धर्म की रक्षा का जिन पे भार है, और साधुओं का जो रक्षण करें,  
बुद्धि से निर्मल हैं जो, नियमों में दृढ़ है जो,  
सिंह से निशंक हैं जो, हर तरह से शुद्ध है जो ॥णमो...३॥

चौथा नमन उपाध्याय को, पठन पाठन जिनका काम है,  
आत्मा के ध्यान में जो लीन हैं, आगमों का जिनको ज्ञान है,

ध्यान उनका जो धरे पुण्य से झोली भरे,  
मन की शुद्धि करे, जीवन सफल करे ॥४॥

पाँचवा नमन सर्व साधु को, त्यागा जिन्होंने घर-बार है,  
सत्य अहिंसा शौच तप, शील जिन्हें श्रृंगार है,  
कमल सा जीवन जियें, संयम का पालन करें,  
जीवों पे दया करें, ज्ञान फैलाते चलें ॥५॥



## णमोकार नाम का ये कौन मंत्र



तर्ज़ : यशोमती मैया से कहे

आचार्य जी से ये पूछे जग सारा ,  
णमोकार नाम का ये कौन मंत्र प्यारा ।

बोले मुस्काते मुनिवर सुनो भाई सारे...२  
अनंतानंत हैं ये पंचरंग प्यारे,  
पैंतिस अक्षर से शोभित, ओ...  
मंत्र है निराला, इसीलिये प्यारा ॥ आचार्य जी से ॥

महामंत्र कहती इसको है सारी जनता...२

पार लगाता उसको जो इसे जपता,  
मंत्र है ये ऐसा जिसने, ओ...  
लाखों को तारा, इसीलिये प्यारा ॥ आचार्य जी से ॥

पंच परमेष्ठी के गुणों को प्रचारता... २  
धर्म विशेष को ये नहीं है दुलारता,  
ये महामंत्र है, ओ...  
तारण हारा, इसीलिये प्यारा ॥ आचार्य जी से ॥

मनोरमा सती का शील था बचाया... २  
महामंत्र का ये वर्णन ग्रंथों ने गाया ,  
ऐसे महामंत्र को, ओ...  
वन्दन हमारा, इसीलिये प्यारा ॥ आचार्य जी से ॥



## णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,  
णमो उवज्ञायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥



एसो पंच-णमोयारो, सव्व-पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसि, पढमं हवइ मंगलम् ॥

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं,  
साहू मंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं ॥

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,  
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो ॥  
चत्तारि सरणं पञ्जामि, अरिहंते सरणं पञ्जामि,  
सिद्धे सरणं पञ्जामि, साहू सरणं पञ्जामि,  
केवलिपण्णतं धम्मं सरणं पञ्जामि ॥



## णमोकार मन्त्र को प्रणाम हो

णमोकार मन्त्र को प्रणाम हो, प्रणाम हो  
है अनादि महामंत्र मंगल निष्काम हो ॥टेक ॥



पहला अरिहंत नाम करता है कर्म नाश  
जीवों को देता है ये ज्ञान सूर्य का प्रकाश  
जय हो अरहंत देव तुम्ही धर्मध्यान हो  
है अनादि महामंत्र मंगल निष्काम हो ॥१ णमो..॥

दूजा है सिद्ध नाम जन्म मृत्यु से विहीन  
अविनाशी वीतरागी सदा स्वयं आत्मलीन  
है अनंत शुद्ध सिद्ध सृष्टि के ललाम हो  
है अनादि महामंत्र मंगल निष्काम हो ॥२ णमो..॥

महाव्रती ज्ञानी आचार्य नमस्कार हो  
उपाध्याय ज्ञान ज्योति जहां अन्धकार हो  
विनयशील वीतराग साधु ज्ञानवान हो  
है अनादि महामंत्र मंगल निष्काम हो ॥३ णमो..॥

सर्व साध्य मुक्ति हो महामंत्र ध्यान से  
अंतर बाहर पवित्र मन्त्र नमस्कार से  
नमस्कार मन्त्र मुक्ति सिद्धि के निधान हो  
है अनादि महामंत्र मंगल निष्काम हो  
णमोकार मन्त्र को प्रणाम हो, प्रणाम हो ॥४ ॥



## नमन हमारा अरिहंतों को

नमन हमारा अरिहंतों को, जो जग के सब पाप मिटाते,  
जिनकी पावन चरण धूलि पर, पग पग पर तीरथ हो जाते ॥नमन॥



नमन हमारा सिद्ध प्रभु को, तोड़ चुके जो भव की कारा,  
जिनके ज्योतिर्मय चिंतन से, कर्मन से होवे उजियारा ॥नमन॥

नमन हमारा आचार्यों को, विश्ववन्द्य जो आचरणों से,  
सहज मुक्ति लिपटी रहती है, जिनके मंगलमय चरणों से ॥नमन॥

फिर हैं नमन उपाध्यायों को, जो जग में निर्ग्रीथ कहाते,  
ज्ञानज्योति से तिमिर हटाकर, पथभूलों को राह दिखाते ॥नमन॥

नमन हमारा साधुजनों को, जो परहित के हैं अवतारी,  
कोटिजनों के लिए बनी है, जिनकी पावन निधिया सारी ॥नमन॥

पञ्च नमन ये पुण्य विधायक, इनसे होता पाप शमन,  
सर्व मंगलो में मंगलमय, यही प्रथम मंगलाचरण है ॥नमन॥



## नवकार मंत्र रागों में

णमो अरिहंताणं  
णमो सिद्धाणं



णमो आयरियाणं  
णमो उवज्ञायाणं  
णमो लोए सञ्च साहूणं



## पंच परम परमेष्ठी देखे

पंच परम परमेष्ठी देखे, हृदय हर्षित होता है,  
आनंद उल्लसित होता है, हो... सम्पर्क दर्शन होता है॥



दर्श-ज्ञान-सुख वीर्य स्वरूपी, गुण अनंत के धारी हैं,  
जग को मुक्ति मार्ग बताते, निज चैतन्य विहारी हैं,  
मोक्ष मार्ग के नेता देखे, विश्व तत्व के ज्ञाता देखे ॥१॥

द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित, जो सिद्धालय के वासी हैं,  
आत्म को प्रतिबिम्बित करते, अजर अमर अविनाशी हैं,  
शाश्वत सुख के भोगी देखे, योगरहित निज योगी देखे ॥२॥

साधु संघ के अनुशासक जो, धर्म तीर्थ के नायक हैं,  
निजपर के हितकारी गुरुवर, देव धर्म परिचायक हैं,  
गुण छत्तीस सुपालक देखे, मुक्ति मार्ग संचालक देखे ॥३॥

जिनवाणी को हृदयंगम कर, शुद्धात्म रस पीते हैं,  
द्वादशांग के धारक मुनिवर, ज्ञानानंद में जीते हैं,  
द्रव्य-भाव श्रुत धारी देखे, बीस-पांच गुणधारी देखे ॥४॥

निजस्वभाव साधन रत साधु, परम दिगंबर वनवासी,  
सहज शुद्ध चैतन्य राजमय, निजपरिणति के अभिलाषी,  
चलते-फ़िरते सिद्ध प्रभु देखे, बीस-आठ गुणमय विभु देखे ॥५॥



## बने जीवन का मेरा आधार रे

बने जीवन का मेरा आधार रे,  
णमोकार णमोकार णमोकार रे ॥



पहली शरण अरिहंतों की जाना,  
हो जाओगे भव से पार रे ॥१॥

दूजी शरण श्री सिद्धों की जाना,  
मुक्ति का अंतिम द्वार रे ॥२॥

तीजी शरण आचार्यों की जाना,  
करते हैं सबका उद्धार रे ॥३॥

चौथी शरण उपाध्यायों की जाना,  
देते जिनवाणी का ज्ञान रे ॥४॥

पांचवीं शरण सर्व साधु की जाना,  
जिन पथ पे चलते वो शान से ॥५॥



## मंत्र जपो नवकार मनुवा



मंत्र जपो नवकार मनुवा, मंत्र जपो नवकार,  
पंचप्रभु को वंदन कर लो, परमेष्ठी सुखकार ॥

अरहंतों का दर्शन करलो, शुद्धात्म का परिचय कर लो।  
शिवसुख साधनहार, मनुवा, मंत्र जपो नवकार ॥

सब सिद्धों का ध्यान लगालो, सिद्ध समान ही निज को ध्यालो।  
मंगलमय सुखकार मनुवा, मंत्र जपो नवकार ॥

आचार्यों को शीश नवाओ, निर्ग्रथों का पथ अपनाओ।  
मुक्ति मार्ग आराध मनुवा, मंत्र जपो नवकार॥

उपाध्याय से शिक्षा लेकर, द्वादशांग को शीश नवाकर।  
जिनवाणी उर धार मनुवा, मंत्र जपो नवकार॥

सर्व साधु को वंदन कर लो, रत्नत्रय आराधन कर लो।  
जन्म मरण क्षयकार मनुवा, मंत्र जपो नवकार॥



## मंत्र नवकार हमें प्राणों से प्यारा



मंत्र नवकार हमें प्राणों से प्यारा,  
ये हैं वो जहाज जिसने लाखों को तारा

अरिहंतों का नमन हमारे, अशुभ कर्म अरि हनन करे।  
सिद्धों के सुमिरन से आत्मा, सिद्ध क्षेत्र को गमन करे।  
भव भव में नहीं जन्में दुबारा ॥मंत्र नवकार...॥१॥

आचार्यों के आचारों से, निर्मल निज आचार करें।  
उपाध्याय का ध्यान धरें हम, संवर का सत्कार करें।

सर्व साधु को नमन हमारा ॥मंत्र नवकार...॥२॥

इसी मंत्र से नाग नागिनी, पद्मावती धरणेन्द्र हुए ।  
सेठ सुदर्शन को सूली से, मुक्ति मिलि राजेन्द्र हुए ।  
अंजन चोर का कष्ट निवारा ॥मंत्र नवकार...॥३॥

सोते उठते चलते फ़िरते, इसी मंत्र का जाप करो ।  
आप कमाये पाप तो उनका, क्षय भी अपने आप करो ।  
इस महामंत्र का ले लो सहारा ॥मंत्र नवकार...॥४॥



## मंत्र नवकारा हृदय में धर

मंत्र नवकारा हृदय में धर लिया ,  
उसने जीते कर्म शिव को वर लिया ॥



मंत्र मे अरिहन्त सिद्धों को नमन ,  
उसने आत्म सिद्ध अपना कर लिया ॥ उसने जीते ..॥

भाव से आचार्य को वंदन किया ,

ज्ञान मोती से ये दामन भर लिया ॥ उसने जीते .. ॥

भक्ति से उवज्ज्ञाय को कीना नमन,  
उसने जड़ता का अंधेरा हर लिया ॥ उसने जीते .. ॥

सर्व साधु तारने को नाव है,  
जो चढ़ा इस नाव पे भव तर लिया ॥ उसने जीते .. ॥

मंत्र तीनो लोक में ऐसा नहीं ,  
जिन जपा जीवन सफल प्रभु कर लिया ॥ उसने जीते .. ॥



## महामंत्र णमोकार की रचना



महामंत्र णमोकार की रचना जिनवाणी का सार है ।  
नमन करें हम वीतराग यही मंत्र नवकार है ॥टेक ॥

आत्म साधना का पथ इसके सिवा न कोई दूजा ।  
मुक्त आत्माओं को इसने सिद्ध रूप में पूजा ।  
कहा हमारे मुनिराजों ने ॐ का ये विस्तार है ।  
नमन करें हर वीतराग को यही मंत्र नवकार है ।

महामंत्र णमोकार की रचना जिनवाणी का सार है ॥1॥

सब धर्मों ने सुख समृद्धि और शांति हेतु एक मंत्र दिया ।  
पर स्वार्थ की सिद्धि हेतु मानव ने इसको तंत्र दिया ।  
जैन धर्म ने अखिल विश्व को दिया मंत्र नवकार है ।  
नमन करें हर वीतराग को यही मंत्र नवकार है ।  
महामंत्र णमोकार की रचना जिनवाणी का सार है ॥2॥



## म्हारा पंच प्रभु भगवान

म्हारा पंच प्रभु भगवान्, सुहावनो रे ।  
थारी वीतराग जिनमुद्रा, मन भावनो रे ॥टेक॥



म्हारा अरिहंत प्रभुवर प्यारा, जग को मुक्तिमार्ग दिखलावे ।  
प्रभु की सौम्य छवि मनभावन, हमको वस्तु स्वरूप दिखावे ।  
प्रभु ने रत्नत्रय प्रगटायो, सुखकारणो रे ॥म्हारा...१॥

सर्वकर्मों से विरहित प्रभुवर, शाश्वत सिद्ध परमपद पायो ।  
अविनाशी अविचल सुखरूपी, भव्यों के आदर्श सदा हो ।  
भोगें सुःख अनंतानंत, आनंदकारणो रे ॥म्हारा...२॥

साधु संघ के अनुशासक, आचारज विज्ञानी ध्यानी ।  
निर्मल आचारज के धारी, मुनिवर पथ के हैं अनुगामी ।  
पंचाचार धारी मुनिवर, हितकारणो रे ॥म्हारा...३॥

श्रुत आगम के बहु अभ्यासी, स्वयं पढ़ें हैं और पढ़ावें ।  
ज्ञानादिक स्वभाव आराधक, ध्रुव ज्ञायक के गीत सुनावें ।  
विषयों की न चाह है जिनके, मंगलकारणो रे ॥म्हारा...४॥

मुनिवर सकलवृति बड़भागी, भव-भोगों से सदा विरागी ।  
चलते फिरते सिद्धों-से मुनि, परिणति अनुभव रस नित पागी ।  
बहती उपशम रस की धारा, सुखकारणो रे ॥म्हारा...५॥



## ये तो सच है कि नवकार



तर्ज़ : ये तो सच है कि भगवान है

ये तो सच है कि नवकार में, सब मंत्रों का ही सार है ।  
इसे जो भी जपे रात-दिन, होता उसका ही भव-पार है ॥टेक॥

अरिहंतों को भी इसमें सुमिरन किया,

और सिद्धों का भी इसमें ध्यान धरा ।  
आचार्यों को भी नत-मस्तक होकर,  
उपाध्यायों को भी इसमें वंदन किया ॥

सब साधु भगवंतों को भी, नमन इसमें बारंबार है ।  
इसे जो भी जपे रात-दिन, होता उसका ही भव-पार है ॥१... ये तो ॥

राजा श्रेणिक भी जब कुष्ट रोगी हुआ,  
जाप इसका किया वो निरोगी बना ।  
सुदर्शन श्रावक जब सूली चढ़ा,  
ध्यान इसका धरा, सोली आसन बना ।

हम तो कहते हैं नवकार तो सब मंत्रों तो सब मंत्रों का सरताज है  
इसे जो भी जपे रात-दिन, होता उसका ही भव-पार है ॥२... ये तो ॥



## श्री अरिहंत सदा मंगलमय



श्री अरिहंत सदा मंगलमय मुक्तिमार्ग का करें प्रकाश ।  
मंगलमय श्री सिद्ध प्रभु जो निज स्वरूप में करें विलास ।  
शुद्धात्म के मंगल साधक साधु पुरुष की सदा शरण हो ।  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥१॥

मंगलमय चैतन्य स्वरों में परिणति की मंगलमय लय हो ।  
पुण्य पाप की दुखमय ज्वाला निज आश्रय से त्वरित विलय हो।  
देव शास्त्र गुरु को वंदन कर मुक्तिवधू का त्वरित वरण हो ।  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥२॥

मंगलमय पांचों कल्याणक मंगलमय जिनका जीवन है ।  
मंगलमय वाणी कल्याणी शाश्वत सुख की भव्य सदन है ।  
मंगलमय सत्त्वर्म तीर्थ कर्ता की मुझको सदा शरण हो ।  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥३॥

सम्यगदर्शन ज्ञान चरणमय मुक्तिमार्ग मंगल दायक है ।  
सर्व पाप माल का क्षय कर के शाश्वत सुख का उत्पादक है ।  
मंगल गुण पर्यायमयी चैतन्यराज की सदा शरण हो ।  
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥४॥



## समरो मन्त्र भलो नवकार



समरो मन्त्र भलो नवकार, ए छै चौदह पुरब नो सार  
एहना महिमा नो नहीं पार, एहनो अर्थ अनन्त अपार ॥

सुख मा समरो, दुःख मा समरो, समरो दिवस ने रात  
जीवता समरो, मरता समरो, समरो सौ संघात ॥

योगी समरे, भोगी समरे, समरे राजा रंक  
देव समरे दानव समरे, समरे सहु निशंक ॥

अडसठ अक्षर एहना जाणो, अड़सठ तीरथ सार  
आठ सम्पदाती परमाणो, अड सिद्धि दातार ॥

नवपद एहना नवनिधि आपै, भवभव ना दुःख कांपे  
'वीर' वचन थी हृदय व्यापे, परमात्म पद आपे ॥



## अध्यात्म भजन



## अध्यात्म के शिखर पर



अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढ़ के,  
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढ़ के ॥टेक॥

जड़ से लगा के प्रीति, अब तक करी अनीति,  
अपने को आप देखो, आत्म से जोड़ो प्रीति,  
भव भ्रमण से बचोगे, सन्मार्ग को पकड़ के ॥१॥

भव भोग-रोग घर है, पद-पद में इससे डर है,  
रागादि भाव तज दो, नरकों का ये भंवर है,  
ऊँचे तुम्हें है उठना, माया से युद्ध लड़ के ॥  
अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढ़ के,  
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढ़ के ॥२॥

जो अंजुलि का पानी, ढलती है जिन्दगानी,  
मुश्किल है हाथ लगाना, ऐसी घड़ी सुहानी,  
'सौभाग्य' सज ले माला, रत्नत्रय की झट से ॥  
अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढ़ के,  
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढ़ के ॥३॥





# अपना करना हो कल्याण

अपना करना हो कल्याण, साँचे गुरुवर को पहिचान ।  
जिनकी वाणी में अमृत बरसता है ॥टेक ॥

रहते शुद्धात्म में लीन, जो है विषय-कषाय विहीन ।  
जिनके ज्ञान में ज्ञायक झलकता है ॥1॥

जिनकी वीतराग छवि प्यारी, मिथ्यातिमिर मिटावनहारी ।  
जिनके चरणों में चक्री भी झुकता है ॥2॥

पाकर ऐसे गुरु का संग, ध्यावो ज्ञायक रूप असंग ।  
निज के आश्रय से ही शिव मिलता है ॥3॥

अनुभव करो ज्ञान में ज्ञान, होवे ध्येय रूप का ध्यान ।  
फेरा भव भव का ऐसे ही मिटता है ॥4॥



# अपनी सुधि पाय आप

अपनी सुधि पाय आप, आप यों लखायो ॥टेक ॥



मिथ्यानिशि भई नाश, सम्यक रवि को प्रकाश  
निर्मल चैतन्य भाव, सहजहिं दर्शयो ॥

ज्ञानावर्णादि कर्म, रागादि मेटे भर्म  
ज्ञानबुद्धि तें अखंड, आप रूप थायो ॥

सम्यकदृग ज्ञान चरण, कर्ता कर्मादि करण  
भेदभाव त्याग के, अभेद रूप पायो ॥

शुक्लध्यान खड़ग धार, वसु अरि कीने संहार  
लोक अग्र सुथिर वास, शाश्वत सुख पायो ॥



## अपने घर को देख बावरे



तर्ज :- जिसने राग द्वेष कामादिक  
नगरी नगरी द्वारे द्वारे  
फूल तुह्हें भेजा है खत में  
प्यार में होता है क्या जादू

अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥टेक ॥

ये माटी के खेल खिलौने, माटी तन की रानी है,  
माटी का तन, माटी का मन, माटी की राजधानी है,

माटी के पुतले तेरा तो माटी-भरा बिछौना रे ॥  
अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥१॥

पर परणति परभाव निरखता, आत्मतत्त्व को भूला रे,  
परभावों में सुख दुःख माने, झूल रहा भव झूला रे,  
सहजानन्दी रूप तुम्हारा, जग सारा वेगाना रे ॥  
अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥२॥

चिंतामणि सा नरभव पाया, कल्पवृक्ष सा जिनवृष रे,  
गवां रहा है रत्न अमोलक, क्यों विषयों में फंस-फंस रे,  
बिखर जायेगा इक दिन तेरा, सारा ताना-बाना रे ॥  
अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥३॥

घूम लिये हो चारों गति में, अब तो निज का ध्यान करो,  
विषय हलाहल बहुत पिया है, अब समता रस पान करो,  
अपने गुण की छांह बैठ जा, बहुत दूर नहीं जाना रे  
अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥४॥

त्रस, स्थावर पर्याय बदलता, पिये मोह की हाला रे,  
कभी स्वर्ग के आंगन देखे, कभी नरक की ज्वाला रे,  
चौरासी के 'पथिक' तुम्हारा, शिवपुर दूर ठिकाना रे  
अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे,  
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे ॥५॥



## अपने में अपना परमात्म

अपने में अपना परमात्म, अपने से ही पाना रे  
अपने को पाने अपने से, दूर कहीं नहीं जाना रे ॥



अपनी निधि अपने में होगी, अपने को अपनेपन दे,  
अपनी निधि की विधि अपने में, अपना साधन आत्म रे,  
अपना अपना रहा सदा ही, परिचय ही को पाना रे,  
अपने को पाने अपने से...

अपने जैसे जीव अनन्ते, अपने बल से सेते हुए,  
अपनी प्रभुता की प्रभुता ही, पहचानी प्रसेते हुए,  
अपनी प्रभुता नहीं बनाना, अपने से है पाना रे,  
अपने को पाने अपने से...



## अब गतियों में नाहीं रुलेंगे



अब गतियों में नाहीं रुलेंगे, निजानंद पान करेंगे

अब भव भव का नाश करेंगे, निजानंद पान करेंगे  
खुद की खुद में ही खोज करेंगे, निजानंद पान करेंगे ॥  
अब गतियों में...

मैं मुझ में पर पर में रहता, निज रस के आनंद में रहता  
अब केवल ज्ञान करेंगे, निजानंद पान करेंगे ॥  
अब गतियों में...

मैं ज्ञायक ज्ञायक ही न जाना, मैं तो हूं बस सिद्ध के समाना  
अब सिद्धों के बीच रहेंगे, निजानंद पान करेंगे ॥  
अब गतियों में...



## अरे मोह में अब ना



अरे मोह में अब ना भरमाइयेगा  
घड़ी दो घड़ी आत्मा ध्याइएगा ॥

दिखे जिसमें सबकुछ, न दिखता वो तुमको  
न छिपता न क्षणभर है सदियों से ओझल  
उसे आज देखें जो देखे सभी को ॥  
अरे मोह में अब ना भरमाइयेगा ॥१॥

प्रकाशित सदा है न झूबा कभी वो  
जो सबको प्रकाशे वो कैसे न दीखे  
अरे भ्रम को तज दे जो दिखता वही तू ॥  
अरे मोह में अब ना भरमाइयेगा ॥२॥

है ज्ञायक सभी का स्वयं ही सदा से,  
है दुनियाँ झलकती स्वयं की कला से,  
चलो ज्ञान की इस कला को तो जानें ॥  
अरे मोह में अब ना भरमाइयेगा ॥३॥

सदा से प्रभू है, न किंचित कमी है  
नहीं वो बंधा है, वो मुक्त अभी है

अरे मुक्त होंगे चलो आज हम सब ॥  
अरे मोह में अब ना भरमाइयेगा ॥४॥



## आ तुझे अंतर में शांति मिलेगी



आ तुझे अंतर में शांति मिलेगी  
सुख कली खिलेगी की पर में कहीं शांति नहीं  
शुद्धात्म को निरखले सब भ्रान्ति टलेगी  
सुख कली खिलेगी कि पर में कहीं शांति नहीं ॥१॥

इच्छा के दास अब कभी नहीं बनना  
भूल ये अनादि की कभी नहीं करना  
द्रव्य-दृष्टि से ही ज्ञान ज्योति जलेगी  
सुख कली खिलेगी कि पर में कहीं शांति नहीं ॥२॥

क्यों विकल्प करता पर्याय नाशवान है  
तू स्वयं गुणधाम तुझमें ध्रुवधाम है  
लीन हो स्वयं में तुझे मुक्ति मिलेगी  
सुख कली खिलेगी कि पर में कहीं शांति नहीं ॥३॥





# आओ झूलें मेरे चेतन

आओ झूलें मेरे चेतन आतम भवन में ।  
आतम भवन में चेतन अपने भवन में ॥टेक॥

काहे का वहाँ वृक्ष खड़ा है, काहे की झूल पड़ी वामें ?  
सम्यक्दर्शन वृक्ष खड़ा है, ज्ञान की झूल पड़ी वामें ।  
आओ झूलें मेरे चेतन आतम भवन में ॥१॥

काहे की वामें पटरी पड़ी है, कौन झुलावे वहाँ झूलना ?  
चारित्र की वामें पटरी पड़ी है, अनुभव झुलावे वहाँ झूलना ।  
आओ झूलें मेरे चेतन आतम भवन में ॥२॥

ऐसा झूला जो कोई झूले आनंद पावे आतम में ।  
आनंद पावे आतम में, आनंद पावे आतम में ॥  
आओ झूलें मेरे चेतन आतम भवन में ।  
आतम भवन में चेतन अपने भवन में ॥३॥



## आओ रे आओ रे ज्ञानानंद की



आओ रे आओ रे ज्ञानानंद की डगरिया,  
तुम आओ रे आओ, गुण गाओ रे गाओ,  
चेतन रसिया, आनंद रसिया ॥ टेक ॥

बड़ा अचंभा होता है, क्यों अपने से अनजान रे,  
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान रे ॥१॥

दर्शन ज्ञान स्वभाव में, नहीं ज्ञेय का लेश रे,  
निज में निज को जानकर, तजो ज्ञेय का वेश रे ॥२॥

मैं ज्ञायक मैं ज्ञान हूं, मैं ध्याता मैं ध्येय रे,  
ध्यान ध्येय में लीन हो, निज ही निज का ज्ञेय रे ॥३॥



## आज खुशी है आज खुशी है

(तर्ज : लिया प्रभू अवतार)



आज खुशी है, आज खुशी है, तुम्हें खुशी है, हमें खुशी है,  
खुशियां अपरम्पार,

जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥टेक ॥

श्री जिनश्वर के दर्शन पावो, जिनशासन की महिमा गावो,  
शिवपुर पथ दरशाय,  
जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥१॥

प्रभु अब शुद्धात्म बतलावो, चहुंगति दुःख से शीघ्र छुड़ावो,  
दिव्य ध्वनि अमृत बरसावो, पावो केवल ज्ञान,  
जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥२॥

नव केवल लब्धि प्रगटावो, फिर योगों को नष्ट करावो,  
फिर विषयों से चित्त हटावो,  
पाओ पद निर्वाण,  
जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥३॥

शुद्धात्म को लक्ष्य बनावो, निर्मल भेद ज्ञान प्रगटावो,  
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ, कर लो आत्म ज्ञान,  
जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥४॥

काम विकल्पों से नहीं होता, व्यर्थ मूर्ख ही बोझा ढोता,  
कर लो आत्म ज्ञान,  
जय-जयकार ! जय-जयकार ! जय-जयकार ॥५॥



# आत्म चिंतन का ये समय



तर्ज़ : तुमको देखा तो ये खयाल

आत्म चिंतन का ये समय आया,  
पाके नरतन क्या खोया क्या पाया ॥टेक ॥

हम जिसे ज्ञान-ज्ञान कहते हैं (2)  
मन तो इंद्रियों में ही भरमाया ॥पाके...१॥

देखो पर्यायें तो है क्षणभंगुर (२)  
फिर भी पर्यायों में ही इतराया ॥पाके...२॥

तू तो टंकोल्कीर्ण ज्ञायक है (2)  
बस यही तू समझ नहीं पाया ॥पाके...३॥

एक क्षण निज में ठहर जाओ (२)  
बस यही आखिरी समय आया ॥पाके...४॥



# आत्मा अनंत गुणों का धनी



तर्ज - रिश्तों के भी रूप बदलते हैं

पल पल जीवन बीता जाता है, बीता कल नहीं वापस आता है ।  
लोभ मोह में तू भरमाया है, सपनों का संसार सजाया है ॥  
ये सब छलावा है, ये सब भुलावा है, कर ले तू चिंतन अभी ॥  
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी,  
फिर भी देखो पर्यायों में रुली ॥१॥

अनहोनी क्या कभी भी होती है, होनी भी तो कभी न टलती है ।  
काललब्धी जिसकी आ जाती है, बात समझ में तब ही आती है ॥  
किसको समझाना है, किसको जगाना है, पहले तू जग जा खुद ही ॥  
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी,  
फिर भी देखो पर्यायों में रुली ॥२॥

समझाने से समझ नहीं आता, जब समझे तब स्वयं समझ जाता ।  
दिव्य ध्वनि भी किसे जगाती है, स्वयं जागरण हो तब भाती है ॥  
तीर्थकर समझाया, मारीची बौराया, माने क्या किसकी कोई  
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी,  
फिर भी देखो पर्यायों में रुली ॥३॥

साधर्मी से भी न बहस करना, और विधर्मी संग भी चुप रहना ।

बुद्धू बन कर चुप रह जाओगे, बहुत विवादों से बच जाओगे ॥  
जीवन दो दिन का है, मौका निज हित का है, आवे न अवसर यूँ ही ॥  
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी,  
फिर भी देखो पर्यायों में रुली ॥४॥



## आत्मा हूँ आत्मा हूँ आत्मा



तर्ज : दिल के अरमाँ आसुओं में

आत्मा हूँ आत्मा हूँ आत्मा ।  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ॥टेक ॥

शस्त्र से भी, मैं कभी कटता नहीं ।  
अग्नि से भी, मैं कभी जलता नहीं ।  
जल गलाये तो कभी गलता नहीं ।  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ॥१॥

चर्म चक्षु से कभी दिखता नहीं ।  
मूर्ख नर अज्ञान वश जाने नहीं ।  
ज्ञानियों की साध्य-साधक आत्मा ।  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ॥२॥

क्रोध माया मान से भी भिन्न हूँ ।  
लोभ अरु रागादि से भी भिन्न हूँ ।  
भाव कर्मों से रहित मैं आत्मा ।  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ॥३॥

गोरा काला जो भी दिखता चाम है ।  
मोटा पतला होना उसका काम है ।  
सब शरीरों से रहित मैं आत्मा ।  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ॥४॥

दीप सम स्व पर प्रकाशी हूँ सदा,  
मात्र ज्ञाता और दृष्टा हूँ सदा ।  
शांत शीतल शुद्ध निर्मल आत्मा,  
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी आत्मा ।  
आत्मा हूँ, आत्मा हूँ आत्मा ॥



आनंद स्रोत बह रहा



आनंद स्रोत बह रहा और तू उदास है,  
अचरज है जल में रहकर भी, मछली को प्यास है ॥टेक॥

उठ जाग चक्षु खोल के तू देख तो जरा,  
जिसकी तुझे तलाश है वह तेरे पास है ॥१॥

गन्ने में जो मिठास है, फूलों में सुवास है,  
निज आतम में तेरे ही परमात्म वास है ॥२॥

कुछ तो समय निकाल आत्म शुद्धि के लिये,  
नर जन्म का ये लक्ष न, केवल विलास है ॥३॥

आतम प्रभु को भूलकर, दूषित है मन तेरा,  
प्रभु का न स्मरण तुझे और जग से आस है ॥४॥



आया कहां से



आया कहां से, कहां है जाना,  
दूंढ़ ले ठिकाना चेतन दूंढ़ ले ठिकाना ।

इक दिन चेतन गोरा तन यह, मिट्टी में मिल जाएगा ।  
कुटुम्ब कबीला पड़ा रहेगा, कोई बचा ना पायेगा ।  
नहीं चलेगा कोई बहाना... ॥ दूंढ़ ले ठिकाना... ॥१॥

बाहर सुख को खोज रहा है, बनता क्यों दीवाना रे ।  
आतम ही सुख खान है प्यारे, इसको भूल ना जाना रे ।  
सारे सुखों का ये है खजाना... ॥ दूंढ़ ले ठिकाना... ॥२॥

जब तक तन में सांस रहेगी, सब तुझको अपनायेंगे ।  
जब न रहेंगे प्राण जो तन में, सब तुझसे घबरायेंगे ।  
तुझको पडेगा प्यारे है जाना... ॥ दूंढ़ ले ठिकाना... ॥३॥

दौलत के दीवानों सुन लो, इक दिन ऐसा आयेगा ।  
धन दौलत और रूप खजाना, पड़ा यहीं रह जायेगा ।  
कन्धा लगायेगा सारा जमाना... ॥ दूंढ़ ले ठिकाना... ॥४॥

गुरुचरणों के ध्यान से चेतन, भवसागर तिर जायेगा ।  
सम्यग्दर्शन ज्ञान से प्यारे, दुख तेरा मिट जायेगा ।  
सारे सुखों का है ये खजाना... ॥ दूंढ़ ले ठिकाना... ॥५॥



## इस नगरी में किस विधि

इस नगरी में किस विधि रहना,  
नित उठ तलब जगाओ री सेना ॥टेक॥

एक कूओं पांचों पनिहारी,  
एक ही डोर भरे सब न्यारी ॥१॥

सुस गया नीर, निपट गया पानी,  
बिलख रही पांचों पनिहारी ॥२॥

सोना का महल, रूपा का छाजा,  
छोड़ चल्यो काया नगरी का राजा ॥३॥

बालू की रेत, फूस की टाटी,  
उड गया हंस, पड़ी रह गई माटी ॥४॥

इस नगरी का दस दरवाजा,  
पांचों ही चोर छठो मन राजा ॥५॥



'घासी' को राम, शहर का मेला,  
उड़ गया हाकम लद गया डेरा ॥६॥  
इस नगरी में किस विधि रहना,  
नित उठ तलब जगा ओ री सेना ॥



## उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान



उड़ उड़ रे, उड़ उड़ रे ।  
उड़ उड़ रे म्हारी ज्ञान चुनरियाँ  
तारणहारा प्रभुजी घर आवे,  
तारणहारा प्रभुजी घर आवे रे आवे ॥टेक ॥

स्वर्ग पुरी से प्रभु जी पधारे हो॥५...  
जग को मुक्ति मार्ग बताये  
कण कण में... कण कण में छाई है खुशियाली ॥तारण...१॥

समकित सुगन्धी दश दिश महके हो॥६...  
चैतन्य परणति पंछी चहके  
दुल्हन सी... दुल्हन सजी नगरी प्यारी ॥तारण...२॥

त्रिभुवनपति की शोभा न्यारी हो ५५...  
अन्तरपरणति निजरस पागी  
मुक्ति का... मुक्ति का मार्ग पाये नर नारी ॥तारण...३॥



## ऐ आतम है तुझको नमन



तर्ज़ : ए मालिक तेरे बंदे हम

ऐ आतम है तुझको नमन, शुद्धात्म है तुझको नमन ।  
वीरवाणी का हम, जिनवाणी का हम, सदा करते रहें चिंतवन ॥  
टेक ॥

राग और द्वेष हममें भरा, और मिथ्यात्व से मन भरा ।  
क्रोध और मान में, आतम अज्ञान में, अपना जीवन अभी तक रहा ॥  
अब हटाएं सभी आवरण, और रखूँ धर्म पथ पर कदम ॥वीर...१॥

आज जीवन हुआ दुःखमय, ये तो संघर्ष का है समय ।  
हर तरफ भ्रांति है, हर तरफ क्रांति है, अपना जीवन बने शांतिमय ॥  
निज को निज से मिलाएंगे हम, ऐसे सिद्ध पद को पाएंगे हम ॥  
वीर...२॥

ऐसे जिनवर प्रभु को नमन, आत्मा में सदा बस रमण ।  
चली चलहुँ न हो, तुम मुक्तिश्री, जिन ज्ञान की ले के शरण ॥

जिनवाणी को पढ़कर के हम, अब सुधारेंगे अपना जनम ॥वीर...३॥



## ओ जाग रे चेतन जाग



तर्ज :- आ लौट के आजा मेरे मीत

ओ जाग रे चेतन जाग, तुझे ध्रुवराज बुलाते हैं,  
तूने किससे करी है प्रीत, तुझे ध्रुवराज बुलाते हैं ॥टेक ॥

पर द्रव्यों में सुख नहीं है तज इनकी अभिलाषा,  
धन, शरीर, परिवार अरु बांधव सब दुःख की परिभाषा,  
तेरी दृष्टि रही विपरीत, तुझे ध्रुवराज बुलाते हैं ॥१॥

स्वर्ग कभी तू नरक कभी तू, देव तिर्यंच में गया था,  
मग्न रहा बाह्य क्रिया काण्ड में, ध्रुव का न आश्रय लिया था,  
कैसे मिलते तुझे मेरे मीत, तुझे ध्रुवराज बुलाते हैं ॥२॥

अपने स्वरूप को न ध्याया कभी भी, अपने स्वरूप में आ जा,  
पर के गाने गाता रहा तू, निज का आनंद कैसे पाता,  
प्रभु पाने की नहीं है ये रीत, तुझे ध्रुवराज बुलाते हैं ॥३॥



## ओ जाननहारे जान जगत है



ओ जाननहारे, जान जगत है असार ।  
तीन लोक अरु तीन काल में शुद्धातम इक सार ॥टेक॥

पुढ़ अरु गल स्वभाव से ही ये परमाणु परिणमते ।  
बंधते बिखरते क्षण क्षण में, अरु दिखते एकाकार ॥  
ओ जाननहारे, जान जगत है असार ॥१॥

मनोहर अरु अमनोहर वस्तु विध-विध रूप बदलते ।  
हर्ष विषाद करे जीव मिथ्या अज्ञानता अपार ॥  
ओ जाननहारे, जान जगत है असार ॥२॥

चेतन दर्पण निज रस से ही तन धन प्रकाशित करता ।  
भेदज्ञान बिन निज को भूला, महिमा जड़ की अपार ॥  
ओ जाननहारे, जान जगत है असार ॥३॥

मैं इक चेतन सदा अरूपी, परमाणु सब न्यारे ।  
इमि जानि जड़ महिमा तज, ध्या निज चेतन शिवकार ॥  
ओ जाननहारे, जान जगत है असार  
तीन लोक अरु तीन काल में शुद्धातम इक सार ॥४॥



## ओ जीवड़ा तू थारी



ओ जीवड़ा तू थारी करणी रो, फल इक दिन पावेलो  
पापां रो बांध्योड़ो बोझो, थारे सागै जावेलो ॥टेक ॥

चार दिना री चाँदनी जी, फेर अँधेरी रात  
आयु पल पल बीतै छै जी, मत ना भूलो या बात  
पापां रो बांध्योड़ो बोझो, थारे सागै जावेलो ॥१॥

भाई बंधु साथी सगलां, कोई न साथै जाय  
जीव अकेलो अवतरयो जी, और अकेलो जाय  
पापां रो बांध्योड़ो बोझो, थारे सागै जावेलो ॥२॥

जो जैसी करनी करे जी, वैसो ही फल पाय

पाप करयां दुःख ही मिले जी, जिनवाणी बतलाय  
पापां रो बांध्योड़ो बोझो, थारे सागै जावेलो  
ओ जीवड़ा तू थारी करणी रो, फल इक दिन पावेलो ॥३॥



## ओ प्यारे परदेशी पन्छी



ओ प्यारे, परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ।  
तेरा प्यारा पिंजगा पीछे, यहाँ जलाया जायेगा ॥टेक॥

जिस पिंजरे को सदा सभी ने पाला-पोसा प्यार से।  
खूब खिलाया खूब पिलाया, हरदम रखा संभार के ॥

तेरे होते-होते इसको नीचे सुलाया जायेगा ।  
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ॥ ॥

देखे बिना तरसती आँखें, रहना चाहती साथ में ।  
तेरे बिना न खाती खाना, तू ही था हर बात में ॥  
तुझको पूछे बिना ही सारा, काम चलाया जायेगा ।  
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ॥२॥

रोयेगें थोड़े दिन तक, ये भूलेगें फिर बाद में ।

ज्यादा से ज्यादा इतना कुछ करवा देंगे याद में ॥  
हलवा पूँड़ी खाकर तेरा श्राद्ध मनाया जायेगा ।  
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ॥३॥

तुझे पता है क्या कुछ होता, फिर भी क्यों नहीं सोचता ।  
मूरख वह दिन भी आवेगा, पड़ा रहेगा सोचता ॥  
जन्म 'अमोलक' खोकर हीरा, पीछे तू पछतायेगा ।  
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ॥४॥



## कंकड़ पत्थर गले लगाए



कंकड़ पत्थर गले लगाए हीरे को ठुकराए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है  
पुद्धल से तू रास रचाए, आत्म को बिसराए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है ॥टेक ॥

कुछ तो समझ तू, जाना कहाँ था, कहाँ जा रहा  
देवता भी तरसे जिसको, विषयों में तन को तू गंवा रहा  
पारसमणि को हाथ में लेकर, उससे काग उड़ाए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है ॥१॥

जिस दिन खुलेगा पिंजड़ा, तेरा पखेरु उड़ जाएगा  
लाया था साथ क्या रे, खोले ही मुठि चला जाएगा  
सोना चांदी महल अटारी, कुछ भी साथ न जाए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है ॥२॥

मकड़ी सरीखा बैठके, बुनता तू रहता अरे जालियाँ  
लेकिन नहीं है खबर, सपनों से छल-छल तेरी प्यालियाँ  
क्या जाने कब मौत तेरे घर, डोली लेकर आए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है ॥३॥

चेतन अभी भी समय है, अंतर की अँखियों को खोल लो  
छोड़ रस विषयों का, अंतर में आतम रस घोल लो  
ये मानव पर्याय है दुर्लभ, फिर हाथ न तेरे आए  
तुझे क्या हो गया है, तुझे क्या हो गया है ॥४॥



## कबै निरग्रंथ स्वरूप धरूंगा



राग असावरी; तर्ज : जीव तू भ्रमत सदीव अकेला

कबै निरग्रंथ स्वरूप धरूंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥

कब गृह वास आस सब छाड़ुं, कब वन में विचरुंगा ।  
बाह्याभ्यंतर त्याग परिग्रह, उभय लोक विचरुंगा ॥  
कबै निरग्रंथ स्वरूप धरुंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥

होय एकाकी परम उदासी, पंचाचार धरुंगा ।  
कब स्थिर योग धरु पद्मासन, इन्द्रिय दमन करुंगा ॥  
कबै निरग्रंथ स्वरूप धरुंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥

आतम ध्यान साजि दिल अपने, मोह अरि से लड़ुंगा ।  
त्याग उपाधि समाधि लगाकर, परिषह सहन करुंगा ॥  
कबै निरग्रंथ स्वरूप धरुंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥

कब गुणस्थान श्रेणी पर चढ के करम कलंक हरुंगा ।  
आनन्दकंद चिदानन्द साहब, बिन तुमरे सुमरुंगा ॥  
कबै निरग्रंथ स्वरूप धरुंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥

ऐसी लब्धि जबे मैं पाऊं, आप मैं आप तिरुंगा ।  
'अमोलकचंद सुत हीराचंद' कहै यह, चहुरि जग में ना भ्रमूंगा ॥  
कबै निरग्रंथ स्वरूप धरुंगा, तप करके मुक्ति वरुंगा ॥





# करलो आतम ज्ञान परमात्म

करलो आतम ज्ञान परमात्म बन जइयो  
करलो भेदविज्ञान ज्ञानी बन जइयो ॥

जग झूठा और रिश्ते झूठे,  
रिश्ते झूठे नाते झूठे ।

सांचो है आतम राम, परमात्म बन जइयो ॥

कुन्दकुन्द आचार्य देव ने,  
आतम तत्व बताया है ।

शुद्धात्म को जान, परमात्म बन जइयो ॥

देह भिन्न है आतम भिन्न है,  
ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है ।

ज्ञायक को पहिचान, परमात्म बन जइयो ॥

कुन्दकुन्द के ही प्रताप से,  
ध्रुव की धूम मची है रे ।

धर लो ध्रुव का ध्यान, परमात्म बन जइयो ॥



# कहा मान ले ओ मेरे भैया



तर्ज़ : जरा सामने तो आओ

कहा मानले ओ मेरे भैया, शांतिजीवन बनाना अब सार है ।  
तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्मा की मूक पुकार है ॥टेक ॥

मान बुरा है त्याग सजन जो, विपद करे और बोध हरे,  
चित्त प्रसन्नता सार सजन जो, विपद हरे और मोद भरे,  
नीति तजने में तेरी ही हार है, वाणी जिनवर की हितकार है ।  
तूं बन जा बने तो परमात्मा, तेरी आत्मा की मूक पुकार है ॥१॥

समय बड़ा अनमोल सजन जो, इधर फिरे तो उधर फिरे,  
कर नहीं पाया मूल्य सजन जो, समय गया ना हाथ लगे,  
गुप्त शांति की यहां भरमार है, इनको समझे तो बेड़ा पार है ।  
तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्मा की मूक पुकार है ॥२॥

जीवन को सफल बना, यह पुण्य योग से प्राप्त हुआ ।  
बातों से नहीं काम सजन, कर्तव्य सामने खड़ा हुआ ॥  
सुख-शांति का ये ही द्वार है, शिक्षा दैनिक महा हितकार है ।  
तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्मा की मूक पुकार है ॥३॥





## कहाँ तक ये मोह के अंधेरे

कहाँ तक ये मोह के अंधेरे छलेंगे ।  
सम्यक्त्व दीपक कभी तो जलेंगे ॥टेक॥

ये नरकों के दुःख सब, निगोदों की आयु  
ये स्वर्गों में जीवन, ये पशुओं का कृंदन

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक  
दुःख ही है पाया कभी सुख न पाया  
जन्म-मरण दुःख कभी तो टलेंगे  
भव के किनारे कभी तो मिलेंगे ॥  
कहाँ तक ये मोह के अंधेरे छलेंगे ।  
सम्यक्त्व दीपक कभी तो जलेंगे ॥१॥

हाथ कमंडल बगल में पीछी हो  
दिगम्बर वेष हो, वन विचरण हो  
महाव्रत पालें, निज को अराधें,  
समता श्रंगारें, निजपद धारें  
संयम के पथ पर कभी तो बढ़ेंगे  
मुनियों के मारग कभी तो चलेंगे ॥  
कहाँ तक ये मोह के अंधेरे छलेंगे ।

सम्यक्त्व दीपक कभी तो जलेंगे ॥२॥

निमित्तों के आधीन चलती ये दुनियाँ  
क्षणिक सुख के पीछे दौड़ती दुनियाँ  
कर्तृत्व बोझ से दबी है ये दुनियाँ  
पर में ही सुख को खोजती ये दुनियाँ  
कभी तो स्वयं की ओर ढलेंगे  
सम्यक्त्व दीपक कभी तो जलेंगे ॥  
कहाँ तक ये मोह के अंधेरे छलेंगे ।  
सम्यक्त्व दीपक कभी तो जलेंगे ॥३॥



## किसको विपद् सुनाऊँ हे नाथ



तर्ज़ : वो दिल कहाँ से लाऊँ - भरोसा

किसको विपद् सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे, (2)  
तेरे सिवा न कोई जो कष्ट को मिटा दे ॥टेक ॥

अपराध नाथ बेशक मैंने किये हैं भारी, (2)  
हो दीन के दयालु, उनकी मुझे क्षमा दे ।  
किसको विपद् सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे ।

यह कर्म दुष्ट मुझको, भटका रहे हैं दर-दर, (2)  
जीवन मरण के दुःख से हे नाथ तू बचा दे ।  
किसको विपद सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे ।

धन ज्ञान अपना खोकर, परेशान हो रहा हूँ, (2)  
शान्ति हृदय में आवे, वो उपाय तो सुझा दे ।  
किसको विपद सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे ।

टाला नहीं है टलता, विधि का उदय किसी से, (2)  
'शिवराम' शोक चिंता, तू चित से हटा दे ।  
किसको विपद सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे ।



## कृत पूरब कर्म मिटे

मात पिता परलोक गए, सुत नारि सभी परिवार नशायो ।  
देखत देखत लोप भयो, धन धान मकान निशान न पायो ॥  
राज समाज सजे गज बाज, धरे सरताज न आज रहायो ।  
शोच प्रवीण कछु ना करो कृत पूरब कर्म मिटे न मिटायो ॥



राम गए वनवास सहोदर साथ सिया संग कष्ट उठायो ।  
पांडु कुमार जुए मंह हार, तजे घरवार आहार न पायो ॥  
आनि पड़ी विपदा नल पै, हरिचन्द महत्तर हाथ बिकायो ।  
शोच प्रवीण कछु ना करो कृत पूरब कर्म मिटे न मिटायो ॥

काहू के नौबत नाद बजै, कोई रोबत नैननि नीर बहायो ।  
काहू के लाख करोर भरे, कोई रंक भयो कण को तरशायो ॥  
कोई फिरे वृहना भुवि पै, कोई शाल दुशाल दुकूल उड़ायो ।  
शोच प्रवीण कछु ना करो, कृत पूरब कर्म मिटे न मिटायो ॥

कोई चढ़े गज बाज फिरैं, कोई धूप समै पग नांगे ही धायो ।  
कोई भखैं विविधामृत भोजन, कोई क्षुधातुर प्राण गमायो ॥  
कोउ सुता सुत पौत्र खिलावत, कोई बिना सनतान झुरायो ।  
शोच प्रवीण कछु ना करो कृत पूरब कर्म मिटे न मिटायो ॥



## केवलिकन्ये वाङ्मय

केवलिकन्ये, वाङ्मय गंगे, जगदम्बे, अघ नाश हमारे ।  
सत्य-स्वरूपे, मङ्गलरूपे, मन-मन्दिर में तिष्ठ हमारे ॥टेक॥



जम्बूस्वामी गौतम-गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे ।  
जगतै स्वयं पार है करके, दे उपदेश बहुत जन तारे ॥१॥

कुन्दकुन्द, अकलंकदेव अरु, विद्यानन्द आदि मुनि सारे ।  
तव कुल-कुमुद चन्द्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे ॥२॥

तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जग के भ्रम सब क्षय कर डारे ।  
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि-शशि छिपते नित्य विचारे ॥३॥

भव-भय पीड़ित, व्यथित-चित्त जन जब जो आये शरण तिहारे ।  
छिन भर में उनके तब तुमने, करुणा करि संकट सब टारे ॥४॥

जब तक विषय-कषाय नशें नहिं, कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे ।  
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहै नित, सब जीवन में समता धारे ॥५॥



## कैसो सुंदर अवसर आयो है



तर्ज : काई जमानो आयोरे

कैसो सुंदर अवसर आयो है, आयो है  
ज्ञान स्वभावी आत्मा, मेरे मन को भायो है ॥

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान,  
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥

रूप तुम्हारा सबसे न्यारा, भेद ज्ञान करना,  
जौलों पौरुष थके न तौलों, उद्यम सो चरना ॥

अनुभव चिंतामणी रतन, अनुभव है रस कूप,  
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष स्वरूप ॥

जो कर्ता सो भोक्ता, साथी सगा न कोय,  
धर्म छुड़ावे बंध ते, धर्म धरो सब कोय ॥

निर्मल ध्यान लगाय कर, कर्म कलंक नशाय,  
भये सिद्ध परमात्मा, वन्दुं मन वच काय ॥



## कोई राज महल में रोए

कोई राज महल में रोए, कोई पर्ण कुटीर में सोए  
अलग अलग हैं जनम के अंगना, मरण का मरघट एक है ॥टेक ॥



कोई हलकी कोई भारी, कोई गहरी कोई उथली  
सब माटी की बनी गगरियाँ, ना कोई असली ना कोई नकली  
अलग अलग घट भरे गूजरियाँ, पनघट सबका एक है ॥  
कोई राज महल में रोए, कोई पर्ण कुटीर में सोए ॥१॥

कहीं फिरोजी कहीं है पीले, लाल गुलाबी काले नीले  
भांति-भांति की तसवीरों ने, रंग भरे हैं सूखे गीले  
चेहरे सबके अलग अलग हैं, मोह का घूँगट एक है ॥  
कोई राज महल में रोए, कोई पर्ण कुटीर में सोए ॥२॥

खेल रहे सब आँख मिचोली, सबकी सूरत देख सलोनी  
सोच समझकर दांव लगा ले, टाले नहीं टाले जो होनी  
अलग अलग अलग सब खेल खिलाड़ी, मिरमिट सबकी एक है ॥  
कोई राज महल में रोए, कोई पर्ण कुटीर में सोए ॥३॥

सब जाएंगे आगे पीछे, हाथ पसारे आँखें मीचे  
स्वर्ग-नरक सब सांची बातें, पुण्य से ऊँचे, पाप से नीचे  
आए तो सौ सौ अंगड़ाई, मौत की करवट एक है ॥  
कोई राज महल में रोए, कोई पर्ण कुटीर में सोए ॥४॥





## कोई लाख करे चतुराई

कोई लाख करे चतुराई, करम का लेख मिटे ना रे भाई  
ज़रा समझो इसकी सच्चाई रे, करम का लेख मिटे ना रे भाई ॥

इस दुनिया में भाग्य के आगे चले ना किसी का उपाय  
कागद हो तो सब कोई बांचे, कर्म ना बांचा जाए  
इक दिन इसी किस्मत के कारण वन को गए थे रघुराई रे ॥करम॥

काहे मनवा धीरज खोता, काहे तू नाहक़ रोए  
अपना सोचा कभी नहीं होता, भाग्य करे तो होए  
चाहे हो राजा चाहे भिखारी, ठोकर सभी ने यहाँ खायी रे ॥करम॥



## कौलो कहूँ स्वामी बतियाँ

कौलो कहूँ स्वामी बतियाँ भ्रमण की  
बतियाँ भ्रमण की सुन छतिया फटत है ॥टेक॥

नारक दुःख सुन छतियाँ फटत है  
तिर्यञ्चनि दुःख जैसे नदियां सावन की ॥कौलो...१॥



मानुष गति में इष्ट-अनिष्ट जु,  
कष्ट होत जु नाहीं सहन की ॥कौलो...२॥

देवन में पर-संपत्ति देखत,  
झाल उठे जैसे अगनी पवन की ॥कौलो...३॥

चारों गति में दुःख अनादि को,  
ज्ञान मांहि तुम जानों सबनकी ॥कौलो...४॥

त्यारो भव-सागर से मुझको,  
नाव गही प्रभु तुमरे चरण की ॥कौलो...५॥



## क्या तन मांझना रे

क्या तन मांझना रे, इक दिन मिट्ठी में मिल जाना ।  
मिट्ठी ओढ़न, मिट्ठी बिछावन मिट्ठी का सिरहाना ॥टेक॥



इस तन को तू रोज सजावे, खूब खिलावे खूब पिलावे ।  
निश दिन सेवा करके सुन्दर, सुन्दर वस्त धनावे ॥  
अंत समय में साथ जाएगा, इस भ्रम में न आना ।

क्या तन मांझना रे, इक दिन मिट्टी में मिल जाना ॥१॥

काल अनंत गए अब तक बस इससे प्रीत करी है ।  
लेकिन इसमें महक रहे ज्ञायक की शरण न ली है ॥  
ये नहीं मुझमें, मैं नहीं इसमें, भेद विज्ञान जगाना ।  
क्या तन मांझना रे, इक दिन मिट्टी में मिल जाना ॥२॥

इसी देह को छोड़ सिद्ध प्रभु ने शास्वत सुख पाया ।  
अपने में अपनापन करके निज वैभव प्रकटाया ॥  
नहीं तोड़ना इस तन को, बस इससे राग घटाना ।  
क्या तन मांझना रे, इक दिन मिट्टी में मिल जाना ॥३॥

अब तो स्वानुभूति उर लाओ, ज्ञाता वृष्टि सिद्ध बन जाओ ।  
भेद-ज्ञान से सिद्ध हुए हैं, जीव अनन्तानन्त हुए है ॥  
भेद-ज्ञान बिन कभी न होता मिथ्या भ्रम छयकारा ।  
क्या तन मांझना रे, इक दिन मिट्टी में मिल जाना ॥४॥



**क्यूं करे अभिमान जीवन**



तर्ज़: मेरा जीवन कोरा कागज

क्यूं करे अभिमान जीवन, है ये दो दिन का ।  
इक हवा के झोंके से उड़ जाए ज्यों तिनका ॥

लाखों आए और चले गए, पिर न रह पाया ।  
खाक बन जायेगी इक दिन, ये तेरी काया ।  
ये समय है आज तेरे आत्म चिंतन का ॥

खाली हाथों आया जग में, संग ना कुछ जाए ।  
कर्म तू जैसा करेगा, काम वो ही आए ।  
ज्ञान की ज्योति जगा, तम दूर कर मन का ॥

छोड़कर झंझट जगत के, शरण प्रभु की आ ।  
त्याग जप तप शील संयम, साधना चित ला ।  
दास है ये भक्त तेरा, वीर चरणन का ॥



## क्षणभंगुर जीवन है पगले

(तर्ज :- जिसमें राग-द्वेष)



क्षणभंगुर जीवन है पगले, करले प्रभु का ध्यान रे,  
न जाने कब देह का पंछी, कर जाये प्रस्थान रे ॥टेक ॥

लख चौरासी में घूम-घूमकर, रतन अमोलक पाया रे,  
जग के क्षणभंगुर भोगों में, तूने इसे गवाया रे,  
अंतरंग के ज्ञान चक्षु से, कर इसकी पहचान रे ॥१॥

चोटी पकड़े काल खड़ा है, पता नहीं कब खावे रे,  
तन का पिंजरा छोड़ के पंछी, पता नहीं कब जावे रे,  
अभी लगा ले नेह वीर से, करने को कल्याण रे ॥२॥

तात, सुता, सुत, नारी, भगिनी, संग तेरे नहीं जावे रे,  
तेरी शुभाशुभ पुण्य कमाई, तेरे सभी बन जावे रे,  
अब तज दे तू मोह जगत से, बन के साधु महान रे ॥३॥

गगन चूमने वाली बिल्डिंग, ऊँचे महल अटारी रे,  
अमर जानकर तूने इसमें, खोई उमरिया सारी रे,  
संग न जाता एक भी कंकड़, आत्म ज्ञान पहिचान रे ॥४॥



गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार



गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार, चलो रे भाई शिवपुर को ॥

जो तू चाहे मोक्ष को, सुन रे मोही जीव  
मिथ्यामत को छोड कर, जिनवाणी रस पीव ॥१॥

जो जिन पूजै भाव धर, दान सुपात्रहि देय  
सो नर पावे परम पद, मुक्ति श्री फल लेय ॥२॥

जिनकी रुचि अति धर्म सों, साधर्मिन सौं प्रीत  
देव शास्त्र गुरु की सदा, उर में परम प्रतीत ॥३॥

इस भव तरु का मूल इक, जानों मिथ्या भाव  
ताको कर निर्मूल अब, करिये मोक्ष उपाव ॥४॥

दानों में बस दान है, श्रेष्ठ ज्ञान ही दान  
जो करता इस दान को, पाता केवलज्ञान ॥५॥

जो जाने अरहंत गुण, द्रव्य और पर्याय  
सो जाने निज आत्मा, ताके मोह नशाय ॥६॥

निज परिणति से जो करे, जड़ चेतन पहिचान

बन जाता है एक दिन, समयसार भगवान ॥७॥

तीन लोक का नाथ तू, क्यों बन रहा अनाथ  
रत्नत्रय निधि साध ले, क्यों न होय जगनाथ ॥८॥



## गुरुवर जो आपने बताया



तर्ज : बाबुल जो तुमने सिखाया

गुरुवर जो आपने बताया, वो अनुभव में आया,  
श्रमण बन जो पली,  
यादों में पल पल आये, वही मन भाये,  
निजातम की कली ॥टेक ॥

माता पिता पुत्र अनुरागा, तजूँ मोह की, कहानिया,  
देह के है रिश्ते मेरे भैया, दुःख की, निशानियाँ ।  
संयम का पहनूँ गहना, सजूँ दिन रैना,  
ये शिवमग की गली ॥१ गुरुवर... ॥

पंच परावर्तन हर जन्म का, मिली है दुनियां, मुझे नई ,  
शुद्धता से रिश्ता मैने जोड़ा, मानों मुक्ति ही, मिल गई,

ज्ञायक का जिन को पता है, परम देवता है,  
वो छवि निज तत्त्व की ॥२ गुरुवर...॥



## चंद दिनों का जीना रे जिवड़ा



तर्ज : कसमें वादे प्यार वफा सब

चंद दिनों का जीना रे जिवड़ा, ये दुनियाँ मकड़ी का जाल  
क्यों झूबा विषयों में पगले, हाल हुआ तेरा बेहाल ॥टेक॥

आखिर तेरा जाना होगा कोई न साथ निभाएगा ।  
तेरे कर्मों का फल बंदे साथ तेरे ही जाएगा ॥  
धन दौलत से भरा खजाना पड़ा यही रह जाएगा ।  
चंद दिनों का जीना जीवड़ा, ये दुनियाँ मकड़ी का जाल ॥१॥

दया धरम संयम के द्वारा मुक्ति मंजिल पाएगा ।  
तेरे त्याग की अमर कहानी सारा जमाना गाएगा ॥  
चिंतन कर ले इन बातों का जनम सफल हो जाएगा ।  
चंद दिनों का जीना जीवड़ा, ये दुनियाँ मकड़ी का जाल ॥२॥

ये तन है माटी का पुतला माटी में मिल जाएगा ।

मुट्ठी बांधे आया जगत में, हाथ पसारे जाएगा ॥  
ज्ञानी जन कहते हैं सुन लो, गया वक्त नहीं आएगा ।  
चंद दिनों का जीना जीवड़ा, ये दुनियाँ मकड़ी का जाल ।  
क्यों झूबा विषयों में पगले हाल हुआ तेरा बेहाल ॥३॥



## चतुर नर चेत करो भाई



चतुर नर चेत करो भाई (2)  
एजी आयु काय थिर नाहीं रहेगी, तजो गरव ताई ॥टेक ॥

जिया रे मोह नींद में सोय रह्यो, तू निज सुध बिसराई ।  
एजी जागे तो निरभय पद पावे, सब दुःख मिट जाई ।  
चतुर नर चेत करो भाई ॥१॥

जिया रे अथिर बनी इस जग की रचना उपजै विनसाई ।  
जाको तू थिर कर कर माने बड़ी गैल ताई ।  
चतुर नर चेत करो भाई ॥२॥

जिया रे बाल तरुण यौवन वृद्धापन ये सब बहु छाई  
खबर नहीं जिसकी जा दिन जम पकड़े आई

चतुर नर चेत करो भाई ॥३॥

जिया रे लाख चौरासी भ्रमता भ्रमता, मिनखा देह पाई ।  
एजी कुल श्रावक जिन धर्म मिल्या है बड़ी कठिन ताई  
चतुर नर चेत करो भाई ॥४॥



## चन्द क्षण जीवन के तेरे



तर्ज : दिल के अरमां आंसुओं में

चन्द क्षण जीवन के तेरे रह गये,  
और तो विषयों में सारे बह गये ॥टेक ॥

चक्रवर्ती भी न बच पाये यहाँ,  
मृत्यु के उपरांत जाएगा कहाँ ?  
मौत की ऊँधी में तृण सम उड़ गये ॥१॥

अपनी रक्षा को बनाये कई महल,  
किन्तु मृत्यु की रहे बेला अचल ।  
तास के पत्तों के घर सम ढह गये ॥२॥

जाने कब जाना पड़े तन छोड़कर,

इष्ट मित्रों से सदा मुँह मोड़कर।  
जानकर अनजान क्यों तुम बन गये ॥३॥

श्रद्धा मोती न मिला राहीं तुझे,  
कंकरों का ही भरोसा है तुझे।  
ज्ञान के सागर की तह तुम न गये ॥४॥

छोड़ धन-दौलत सिकन्दर चल दिये,  
आत्मा का हित जरा भी नहिं किया।  
हीरे-मोती के खजाने रह गये ॥६॥

लक्ष्य था शिवपुर में जाने का बड़ा,  
जिस समय मां के गर्भ में था तू पड़ा।  
लक्ष्य क्यों अपना भुलाकर रह गये ॥५॥

क्या तू लेकर आया था, क्या जायेगा,  
तन भी एक दिन खाकमें मिल जायेगा।  
देह भी है ज्ञेय, ज्ञानी कह गये ॥७॥

ज्ञान का अंदर समुन्दर बह रहा,  
खोज सुख की मूढ़ बाहर कर रहा।  
क्यों चिदानन्द व्यर्थ में दुख सह रहे ॥८॥



# चन्द्रगुप्त राजा के सोलह स्वप्न



तर्ज : म्हारी दीनतणी सुन वीनती

चन्द्रगुप्त राजा कहे सुनजो जी महाराज  
सोलह सपना देखिया जी बागा में पोङ्या आज ॥

उज्जैनी जी नागरी का बागाँ में भाख्या छे बाहुभद्र स्वामीजी ।  
चउदह जी पूरब पाठिया निमित्त ज्ञान गुरु ज्ञानीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१॥

पहलो सपनो राजा देखियो टूटो कल्पवृक्ष को डालोजी ।  
राजाजी संयम ले नहीं दुखमो पंचम कालोजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥२॥

दूजो अकारज सूरज आतियो जाको फल राय जानो जी ।  
जाया जी पञ्चम काल का केवलज्ञानी नहीं होसी जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥३॥

तीजे चंद्रमा छेकलो जालो फल इम होसीजी ।

जैनधर्म के माय में पाखण्डी घना होसी जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥४॥

चौथोजी सुपनो देखियो बारहफणों नाग विकरालोजी ।  
थोड़ा दिनां के आंतरे पड़सी बारह बरसों कालोजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥५॥

देव विमान पीछा फिर्या सुपनो पांचवो देख्योजी ।  
देव विद्याधर नहीं आवसी जी चारण मुनि नहीं होसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥६॥

छट्टोजी सपनो देखियो रोड़ी ऊपर कमल विकस्याजी ।  
ब्राह्मण क्षत्रिय पाले नहीं धर्म वैश्य घर होसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥७॥

भूतभूताणी देख्या नाचता सपनो सातवों देख्योजी ।  
मिथ्यामत की मानता अधिक से अधिक होसी जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥८॥

आठवों सपनो राजा देखियो आग्या को चिमकारो जी ।  
उद्योत होसी धर्म को बिच बिच होसी अंधियारों जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥९॥

तीन दिशा का ताल सूखिया दक्षिण दिशा में पानीजी ।  
तीन दिशा में धर्म रहे नहीं दक्षिण में धर्म थोड़ोजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१०॥

सोना की थाली में कूकरो, खीर खांड खाता देख्याजी ।  
ऊंच घरा लक्ष्मी रहे नहीं, नींच घरा में जासी जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥११॥

हाथी ऊपर बांदरो सपनो ग्यारहवों देख्योजी ।  
म्लेच्छ राजा ऊंचा चढ़े सब हिन्दू नीचा होसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१२॥

समुद्र मर्यादा लोपेजी सपनो बारहवों देख्योजी ।  
राजनीति को छोड़ के लूट प्रजा धन खासीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१३॥

रथ के जी जोत्यो बाछरो सपनो तेरहवों देख्योजी ।  
तरुण पुरुष धर्म चलावसी वृद्धपने शीतल होसी जी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१४॥

राजकंवर ऊंटां चढ़ा सपनों चौदहवों देख्योजी ।

बकसी की चुगली चोरटा साहूकार मन में डरसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१५॥

रतन धूल से ढांकियो सपनों पन्द्रहवों देख्योजी ।  
पञ्चम काल विषम जती बेर परस्पर होसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१६॥

बिन महावत हाथी लड़े, सपनो सोलहवों देख्योजी ।  
थोड़ा दिनां के आतरे मेल-भाव नहीं होसीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१७॥

सोलहजी सपना की कामिनी, भाख्या छे बाहुभद्र स्वामीजी ।  
चउदह जी पूरब पाठिया निमित्त ज्ञान गुरु झानीजी ।  
चन्द्रगुप्त राजा सुनो... ॥१८॥



## चलता चल भाई मोक्षमार्ग

चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल  
रे ! व्यवहार मार्ग निर्देशक, तू निज-बल से बढ़ता चल ॥टेक॥



शान्ति प्रपूरित तू अमृत-घट, तेरी जीवन यात्रा बेहद  
जो तेरे पथ को रोके तू, उसका मद-दल दलता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥१॥

अगणित शक्ति-निलय तू चेतन, तू भरचक आनन्द निकेतन  
जन्म-मृत्यु का स्पर्श न तुझको, निर्भय निज पद धरता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥२॥

ये आंधी-तूफान जगत के, प्रलयंकर पवमान विकट से  
अरे! ज्ञान के वज्र किले से, केवल उन्हे निरखता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥३॥

तेरा जीवन ज्ञान सुधा है, आनन्दामृत पान सदा है  
कहता दुखी अरे! अपने को, बस इस भ्रम को हरता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥४॥

तुझे पुण्य वरदान नहीं रे!, तुझे पाप अभिशाप नहीं रे!  
तू बेअसर अरे नटनागर, सुमति नटी संग नटता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥५॥

तुझे कर्म की छाँह नहीं है, कुछ भी करना राह नहीं है  
तू भरचक आनन्द टीला है, केवल यह हाँ भरता चल ॥

चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥६॥

चार गति पर तू अगति है, अरे असंख्य प्रदेश क्षितिज हैं।  
उदय अस्त बिन तू प्रचण्ड रवि, जग आलोकित करता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥७॥

बोधि धाम आनन्द राम तू, है समग्र भगवान अरे! तू  
तुझे भुलावा देती जड़ता, हीरा कांच परखता चल ॥  
चलता चल भाई, चलता चल, मोक्षमार्ग पर ढलता चल ॥८॥



## चलो रे भाई अपने वतन



चलो रे भाई अपने वतन में चलें  
अपने वतन में तन ही नहीं है,  
तन ही नहीं है मन भी नहीं है ॥टेक॥

राग-द्वेष की दुविधा नहीं है,  
विषय-कषाय की आंधी नहीं है, सुख सरोवर बहें  
चलो रे भाई अपने वतन में चलें ॥१॥

मोहादिक की गंध नहीं है,  
मिथ्यात्व की दुर्गंध नहीं है, सम्यक रतन झरें  
चलो रे भाई अपने वतन में चलें ॥२॥

सिद्ध-शिला है भूमि हमारी  
मंगलमय परिणति है अविकारी, सादि-अनंत सुख लहें  
चलो रे भाई अपने वतन में चलें ॥३॥

अपने वतन में देह नहीं है,  
देह नहीं है इंद्रियाँ नहीं है, अतींद्रिय आनंद बहें  
चलो रे भाई अपने वतन में चलें ॥४॥

गुण-पर्याय का भेद नहीं है  
ज्ञायक ज्ञेय का विकल्प नहीं है, ज्ञाता-दृष्टा रहें  
चलो रे भाई अपने वतन में चलें ॥५॥



## चेतन अपनो रूप निहारो

चेतन अपनो रूप निहारो, नहीं गोरो नहीं कारो  
दर्शन ज्ञान मयी तिन मूरत, सकल कर्म ते न्यारो ॥



जाकी बिन पहचान किये ते, सहो महा दुख भारो,  
जाके लखे उदय हुए तत्क्षण, केवलज्ञान उजारो ॥

कर्म जनित पर्याय पाय ना, कीनो आप पसारो,  
आपा पर स्वरूप ना पिछान्यो, तातें सहो रुझारो ॥

अब निज में निज जान नियत कहां सो सब ही उरझारो,  
जगत राम सब विधि सुखसागर, पदी पाओ अविकारो ॥



## चेतन चेत बुढ़ापो आयो रे



तर्ज : काईं जमानों आयो रे

चेतन चेत बुढ़ापो आयो रे, आयो रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥टेक ॥

आछो खायो, आछो पहरियो, खूब उड़ाई मोज  
वो दिन नजरा नहीं देखे तो, मन में आवे रोज ।  
यो तो भुगते बिन नहीं छूटे रे, छूटे रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥१॥

नैना नजर गेलो नहीं सूझे, दाँत हो गया खोला,  
लेई सके नहीं गंध नाक से, कान हो गया बोला ।

अब तो सुनता ढोल बजावे रे, बजावे रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥२॥

बुंआ छोड़ियो कांण कायदो, कब मरसी यो डाकी,  
पहर सकी न ओढ़ सकी मैं, हिवड़ा कर कर थाकी ।

मैं तो कदी न सुख से खायो रे, खायो रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥३॥

बेटा चाले आंका-बांका, बुआ का वो भरमाया  
रोटी पानी सी ओढ़न को, पूछ करे नहीं भाया ।

भाया कहतो मने घणो सतावे रे, सतावे रे,  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥४॥

करड़ी रोटी चबे न अब तो, नर्म खीचड़ी भावे,  
खारो खाटों खाय सकूं न, मन मीठा पर जावे ।

म्हारी सुनना म्हारा जाया रे, जाया रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥५॥

घर की नारी देख देख कर, फर-फर मुंडा मोड़े  
छोरा-छोरी केवण लाग्या, मरे न मांचो छोड़े

म्हारो जीवन होग्यो दुखियारो रे, दुखियारो रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥६॥

कपड़ा की सुध-बुध न रहवे, बिगड्यो सारो ढांचो  
भरण भरण ये करे मांखियाँ, पोल पटकियो मांचो  
अब तो गंदो जीव बतावे रे, बतावे रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥७॥

गोड़ा से चाल्यो नहीं जावे, हाथ में लीनी गेंडी  
थर-थर धूजे हाथ-पांव और कमर हो गई टेढ़ी  
हँसती छोरा और लुगांया रे, लुगांया रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥८॥

चेत होय तो चेत मानवा, मरबा का दिन आया  
'माधव' कहे गाफिल रहने का, अवसर नहीं है भाया  
आखिर सिर धुन-धुन पछतासी रे, पछतासी रे  
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे ॥९॥



चेतन जाग रे



जाग जाग सुमति का प्यारा, काहे तू सोयो रे  
चेतन जाग रे ॥टेक॥

अष्ट करममय मदिरा पीकर, भ्रमत महल में सोयो रे  
कुमति की नारी लगे पियारी, तासंग सोयो रे ॥चेतन...१॥

चार गति का पलंग बिछाया, तकिया झूठ लगाया रे  
मोह नींद में मगन होयकर, समय गंवाया रे ॥चेतन...२॥

विषय लूटरा धरम रतन को, निशदिन लूटा जाए रे  
अब तो चेत काहे सोयो रे, फिर पछतावे रे ॥चेतन...३॥

सप्त व्यसन से करी मित्रता, तू जाने सुखदायी रे  
जो कोई मूरख खाय धतूरा, कंचन माने रे ॥चेतन...४॥



## चेतन नरभव ने तू पाकर

चेतन नरभव ने तू पाकर, उत्तम मानुष भव में आकर,  
जीवन विरथा यूँ ही गमाकर, बन रह्यो कैसे सैलानी ॥टेक॥



माँ के पेट अधो मुख लटक्यो, मूरख नौ महिना ताईं,  
ज्यों-ज्यों दुःख सहया छा भारी, सारा भूल गयो कॉई,  
पूरब पुण्य उदय से भाई, अब तू सभी संपदा पाई,  
करले जिनवर भजन कमाई, जो है सच्ची शिवदानी ॥चेतन...१॥

बचपन थारो सारो प्यारो, खेलन कूदन में बीत्यो,  
हो रह्यो विषयन में अलमस्त जवानी कीनो मन चित्यो,  
प्रभू को नाम कदै नहीं लीनो, निश्चय जिनवाणी नहीं कीनो,  
कुछ नहीं सुकृत कारज कीनो, जो है सच्ची सुख दानी ॥चेतन...२॥

थारो जदाँ बुढ़ापो आसी, इन्द्रियाँ शीथिल पड़ जासी,  
देह सूँ कुछ नहीं होसी काम, पलंग थारो पोल्याँ ढल जासी,  
बेटा बहू भतीजा दासी, थारी एक साथ नहीं जासी,  
आ है मोह जाल की फाँसी, फँस रह्यो कैसे अज्ञानी ॥चेतन...३॥

अब तो चेतो चेतन प्यारे, बीती बाताँ न छोड़ो,  
छोड़ो दंत कथा अब सारी, नातो जिन जी से जोड़ो,  
थारा भव भव दुख टल जासी, उत्तम मन चीत्याँ फल पासी,  
उन्नत हो जासी 'सौभाग्य', वरसी मोक्ष की रानी,  
चेतन नरभव ने तू पाकर, उत्तम मानुष भव में आकर,  
जीवन विरथा यूं ही गमाकर, बन रह्यो कैसे सैलानी ॥चेतन...४॥



# चेतन है तू ध्रुव

चेतन है तू, ध्रुव ज्ञायक है तू  
अनन्त शक्ति का धारक है तू ॥

सिद्धों का लधुनन्दन कहा, मुक्तिपुरी का नायक है तू ॥

चार कषायें, दुःख से भरी, तू इनसे दूर रहे,  
पापों में, जावे न मन, वृष्टि निज में ही रहे ।

चलो चलो अब मुक्ति की ओर, पञ्चम गति के लायक है तू ॥२॥

श्री जिनवर से राह मिली, उस पर सदा चलना,  
माँ जिनवाणी शरण सदा, बात हृदय रखना ।  
मुनिराजों संग केलि करे, मुक्ति वधु का नायक है तू ॥३॥



# चेतना लक्षणम् आनंद

(तर्जः-तुमसे लागी लगन)



चेतना लक्षणम्, आनंद वंदनं,

वंदनं, वंदनं, वंदनं, वंदनं ॥टेक ॥

शुद्धातम हो सिद्ध स्वरूपी,  
ज्ञान दर्शन मय हो अरूपी,  
शुद्ध ज्ञानं मयं, चेतना नंदनं,  
वंदनं वंदनं, वंदनं वंदनं..... ॥१ ॥

द्रव्य भाव नो कर्मो से न्यारे,  
मात्र ज्ञायक हो इष्ट हमारे,  
सु-समय चिन्मयं, निर्मलानंदनं,  
वंदनं, वंदनं, वंदनं, वंदनं..... ॥२ ॥

पंच परमेष्ठी जिसको ही ध्याते,  
तुम ही तारण-तरण हो कहाते,  
शाश्वतं जिनवरं, ब्रह्मनंदनं,  
वंदनं, वंदनं, वंदनं, वंदनं..... ॥३ ॥



चेतो चेतन निज में आओ



चेतो चेतन निज में आओ  
अन्तर आत्मा बुला रही है ॥टेक ॥

जग में अपना कोई नहीं है, तू तो ज्ञानानंदमयी है  
एक बार अपने में आजा, अपनी खबर क्यों भुला दयी है ॥१॥

तन धन-जन ये कुछ नहीं तेरे, मोह में पड़कर कहता है मेरे  
जिनवाणी को उर में भर दे, समता में तुझे सुला रही है ॥२॥

निश्चय से तू सिद्ध प्रभु सम, कर्मोदय से धारे ये तन  
स्याद्वाद के इस झूले में माँ जिनवाणी झुला रही है ॥३॥

मोह राग और द्वेष को छोड़ो, निज स्वभाव से नाता जोड़ो  
ब्रह्मानंद जल्दी तुम चेतो, मृत्यु पंखा झुला रही है ॥४॥

ज्ञायक हो ज्ञायक हो बस तुम, ज्ञाता वृष्टि बनकर जीवो  
जागो जागो अब तो चेतन, माँ जिनवाणी जगा रही है ॥५॥



चैतन्य मेरे निज ओर चलो



चैतन्य मेरे, निज ओर चलो, ज्ञायक की छाँव तले  
जहाँ राग नहीं, जहाँ द्वेष नहीं, बस ज्ञान की ज्योति जले  
ज्ञायक की छाँव तले ॥टेक ॥

मिथ्यात्व की काली घटाएं, अज्ञान का जल बरसाती  
है मोह की दल-दल गहरी, प्रज्ञा मेरी भरमाती  
जिन दर्श किये--मम हर्ष हिये, सत्संग का लाभ मिले  
ज्ञायक की छाँव तले ॥१॥

परिणाम हुए अति पावन, ध्रुवता के गीत नित गाये  
स्व-पर को भिन्न समझ कर, निज में निजता ही ध्याये  
सम भाव जगे, पथ मुक्ति सजे, समकित के कमल खिले  
ज्ञायक की छाँव तले ॥२॥

हे चेतन ! निज अनुभव से, निज से ही परिचय होगा  
यह काल अनादि का फेरा, पल भर में निर्बल होगा  
जहाँ जन्म नहीं, अरु मरण नहीं, बस अमृत रस झलके  
ज्ञायक की छाँव तले ॥३॥



# जन्म जन्म तन धरने



जन्म-जन्म तन धरने वाले, अपने से अनजान रे ।  
बसे देह के देवालय में, देव तनिक पहचान रे ॥टेक॥

किसी पुण्य से वैभव पाकर तू कितना मदहोश है ।  
मदहोशी में अति विभ्रम से करता अगिनत दोष है॥  
दोषों पर फिर चादर ताने दया दान सम्मान की ।  
पाप पले तो पुण्य व्यर्थ है चर्चा थोथे ज्ञान की॥  
बाहर से तो शीश महल सा अन्दर से शमशान रे ।  
बसे देह के देवालय में, देव तनिक पहचान रे ॥1॥

चार दान के दान बहुत हैं प्रतिपल इन्द्री भोग हैं ।  
कठिन तपस्या से इन्द्रासन का मिलता संयोग है ॥  
पुण्य-भाव से मिले देव गति नर्क पशु गति पाप से ।  
पाप-पुण्य मिलकर मनुष्य गति पीड़ित भव संताप से ॥  
शुद्धात्म की शरण तरुण-तारण उसको पहचान रे ।  
बसे देह के देवालय में, देव तनिक पहचान रे ॥2॥

तीरथ-तीरथ भटका पाया द्वार नहीं शिवधाम का ।  
नयन मूँदकर ध्यान किया कब अपने आत्म राम का ॥

जग प्रपंच यह निज वैभव के कुशल लुटेरे जान लो ।  
कृत्रिम कर्माधीन देह भी साथ न देगी जान लो ॥  
तू अभेद अविनाशी अपना जगा भेद-विज्ञान रे ।  
बसे देह के देवालय में देव तनिक पहचान रे ॥३॥



## जब चले आत्माराम



जब चले आत्माराम, छोड धन-धाम, जगत से भाई  
जग में न कोई सहायी ॥

तू क्यों करता तेरा मेरा, नहीं दुनिया में कोई तेरा  
जब काल आय तब सबसे होय जुदाई, जग में न कोई सहायी ॥

तू मोहजाल में फँसा हुआ, पापों के रंग में रंगा हुआ  
जिन्दगानी तूने वृथा यों जी गवाई, जग में न कोई सहायी ॥

सम्यक्त्व सुधा का पान करो, निज आत्म ही का ज्ञान करो  
यूं टले जीव से लगी कर्म की काई, जग में न कोई सहायी ॥

चेतो चेतो अब बढे चलो, सतपथ सुमार्ग पर बढे चलो  
यूं बाज रही यमराजा की शहनाई, जग में न कोई सहायी ॥



## जहाँ सत्संग होता है



जहाँ सत्संग होता है, वहाँ पर नित्य जाओ तुम ।  
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गँवाओ तुम ॥टेक॥

अरे सत्संग करने की ना कोई उम्र होती है ।  
अमर ये दीप है इसकी कभी बुझती ना ज्योति है ।  
इसी ज्योति से जीवन की सदा ज्योति जलाओ तुम ॥  
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गँवाओ तुम ॥१॥

जरा अनुभव तो कर देखो, कि क्या बदलाव आता है ।  
कपट सब दूर होता है, हृदय निर्मल हो जाता है ।  
इन्हीं सत्संगियों के संग में, सदा डुबकी लगाओ तुम ॥  
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गँवाओ तुम ॥२॥

करके एकाग्र मन को तुम, जाके सत्संग को सुनना ।  
होके तल्लीन भावों के, सुनहरे फूलों को चुनना ।

इस सत्संग सागर में, सदा झुबकी लगाओ तुम ॥  
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गँवाओ तुम ॥३॥

चढ़े एक बार फिर उतरे नहीं, सत्संग का ये रंग ।  
बिना प्रभु की कृपा मिलता नहीं सत्संगियों का संग ।  
गुरु संतों की सेवा कर, सदा सान्निध्य पाओ तुम ॥  
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गँवाओ तुम ॥४॥



## जाना नहीं निज आत्मा ज्ञानी



जाना नहीं निज आत्मा, ज्ञानी हुए तो क्या हुए ।  
ध्याया नहीं निज आत्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए ॥टेक॥

श्रुत सिद्धांत पढ़ लिए, शास्त्रवान बन गए ।  
आत्म रहा बहिरात्मा, पंडित हुए तो क्या हुए ॥१॥  
पंच महाव्रत आदरे, घोर तपस्या भी करे ।  
मन की कषायें ना गई, साधु हुए तो क्या हुए ॥२॥  
माला के दाने फेरते, मनुवा फिरे बाजार में ।  
मनका न मन से फेरते, जपिया हुए तो क्या हुए ॥३॥  
गा के बजा के नाचके, पूजन भजन सदा किए ।

भगवन् हृदय में ना बसे, पुजारी हुए तो क्या हुए ॥४॥

करते न जिनवर दर्श को, खाते सदा अभक्ष्य को ।

दिल में जरा दया नहीं, मानव हुए तो क्या हुए ॥५॥

मान बड़ाई कारणे, द्रव्य हजारों खर्चते ।

घर के तो भाई भूखन मरे, दानी हुए तो क्या हुए ॥६॥

रात्रि न भोजन त्यागते, पानी न पीते छान के ।

छोड़े नहीं दुर्व्यसन को, जैनी हुए तो क्या हुए ॥७॥

औगुण पराए हेरते, दृष्टि न अंतर फेरते ।

शिवराम एक ही नाम के शायर हुए तो क्या हुए ॥८॥



## जायें तो जायें कहाँ ढूंढ



तर्ज : जाये तो जाये कहाँ - टैक्सी ड्राइवर

जायें तो जायें कहाँ, ढूंढ लिया सारा जहाँ,  
तेरे सिवा कौन यहाँ, जायें तो जायें कहाँ ॥टेक॥

नरक पशु तन से मैं भ्रमाया,

स्वर्गो मे मुझे चैन न आया ।

नरतन मिला यूँ ही गँवाय ॥जायें...१॥

लाखों अधर्मी आपने तारे,  
भव सागर से पार उतारे,  
नाव भँकर में, सो तू उबार ॥जायें...२॥

कर्मों को अपने तूने जराया,  
तीर्थकर पद आपने पाया,  
बना लो प्रभु, मौहे अपना सा ॥जायें...३॥



## जिंदगी में घड़ी यह सुहानी



तर्ज : जिंदगी एक सफर है सुहाना ... अंदाज

जिंदगी में घड़ी यह सुहानी,  
मिली नर देह मत हो मानी ॥टेक॥

आतम अनुभव कर तू संभल,  
मत भोगों के पीछे चल,  
मुश्किल यह घड़ी फिर आनी ॥मिली...१॥

राम रहे ना रावण नर,

अगणित प्राणी गये हैं गुज़र,  
अमर हो गये आत्म ध्यानी ॥मिली...२॥

समय सार का समरस पी,  
निजपुर में निज जीवन जी,  
'सौभाग्य' यही जिनवाणी ॥मिली...३॥



## जिंदगी रत्न अनमोल है



तर्ज : जिन्दगी प्यार का गीत है -- सौतन

जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा,  
ये तो संयम का साधन भी है, इसका कुछ लाभ पाना पड़ेगा ॥टेक॥

जिंदगी मुश्किलों से मिली, योनियाँ लाख जब है धरी,  
सार इसका जो पाया नहीं, अन्त में पछताना पड़ेगा ॥  
जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा ॥१॥

जितने करता करम शुभ है प्राणी, सुख और वैभव भी उतने मिलेंगे  
पाप जीवन में गर किये तो, पापों का फल उठाना पड़ेगा ॥

जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा ॥२॥

जिंदगी तो सुखाभास है, झूठी समझो इसे आस है,  
जिंदगी का बना दास है, फेर भव का लगाना पड़ेगा ॥  
जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा ॥३॥

जिंदगी तो नाशवान है, देह दुःख से भरी खान है,  
चार दिन की ये महमान है, फेर परलोक जाना पड़ेगा ॥  
जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा ॥४॥

जिंदगी नाश होगी तो क्या, 'प्रभु' लेते हैं भवि लाभ पा,  
धार संयम दे कर्मन खपा, उन्हें भव में न आना पड़ेगा ॥  
जिंदगी रत्न अनमोल है, इसे यूँ ना गँवाना पड़ेगा ॥५॥



## जिया कब तक उलझेगा

जिया कब तक उलझेगा संसार विकल्पों मे  
कितने भव बीत चुके, संकल्प विकल्पों में ॥टेक॥



उड उड कर यह चेतन, गति गति में जाता है

भोगों में लिप्त सदा भव भव दुख पाता है ॥  
निज तो न सुहाता है, पर ही मन भाता है  
ये जीवन बीत रहा, झूँठे संकल्पों में ॥१ जिया. ॥

तू कौन कहां का है और क्या है नाम अरे  
आया किस गांव से है, जाना किस गांव अरे ॥  
यह तन तो पुद्धल है, दो दिन का ठाठ अरे  
अन्तर मुख हो जा तू, तो सुख अति कल्पों में ॥२ जिया. ॥

यदि अवसर चूका तो, भव भव पछतायेगा  
यह नर भव कठिन महा, किस गति में जायेगा ॥  
नर भव पाया भी तो, जिन कुल नहीं पायेगा  
अनगिनत जन्मों में, अनगिनत विकल्पों में ॥३ जिया. ॥



## जीव तू समझ ले आतम



राग : असावरी

जीव तू समझ ले आतम पहला,  
कोई मरण समय नहीं तेरा ॥टेक ॥

आया कहाँ से जाना कहाँ है, कौन स्वरूप है तेरा,  
क्या करना था, क्या कर डाला, क्या ये कुटुम्ब कबीला ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥१॥

आये अकेला जाये अकेला, कोई न संगी तेरा,  
नंगा आया जाना है नंगा, फिर क्या है, ये झामेला ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥२॥

रेल में आता जाता मानव, विघट जात ज्यूँ मेला,  
स्वार्थ भये सब बिछुड़ जायेंगे, अपनी-अपनी बेला ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥३॥

पापाचार किया धन संग्रह, भोगत सब घर मेला,  
पाप के भागी, कोई नहीं है, भोगत दुःख अकेला ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥४॥

तन धन यौवन विनस जात ज्यूँ इन्द्रजाल का खेला,  
करना हो सो करले प्राणी, आयु अन्त की बेला ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥५॥

सम्प्रक से कर दूर रागादि, रह जा समय अकेला,

अरिहंत शरण से 'चुन्नी' मिटेगा , जन्म मरण का फेरा ॥  
जीव तू समझ ले आत्म पहला ॥६॥



## जीवन के किसी भी पल में



तर्ज : ए मेरे वतन के लोगों

जीवन के किसी भी पल में वैराग्य उमड़ सकता है  
संसार में रहकर प्राणी, संसार को तज सकता है ॥

कहीं दर्पण देख विरक्ति, कहीं मृतक देख वैरागी,  
बिन कारण दीक्षा लेता, वो पूर्व जन्म का त्यागी,  
निर्गन्ध साधु ही इतने, सदगुण से सज सकता है ॥  
संसार में रहकर प्राणी, संसार को तज सकता है ॥१॥

आत्मा तो अजर अमर है, हम आयु गिनें इस तन की,  
वैसा ही जीवन बनता, जैसी धारा चिंतन की,  
जो पर को समझ पाया है, वह खुद को समझ सकता है ॥  
संसार में रहकर प्राणी, संसार को तज सकता है ॥२॥

शास्त्रों में सुने थे जैसे, देखे वैसे ही मुनिवर,

तेजस्वी परम तपस्वी, उपकारी मेरे गुरुवर ,  
इनकी मृदु वाणी सुनकर, हर प्राणी सुधर सकता है ॥  
संसार में रहकर प्राणी, संसार को तज सकता है ॥३॥



## जीवड़ा सुनत सुणावत इतरा



तर्ज : क्षमावणी विनती

जीवड़ा सुनत सुणावत इतरा दिन बीत्या,  
जीवड़ा क्यों नहीं करियो उपकार,  
जिनवाणी बहुत सुनावनी जीवड़ा,  
जीवड़ा जो धारयो सोई उबरयो  
जीवड़ा उतर गया छ भव पार,  
जिनवाणी छ जी बहुत सुहावनी ॥

जीवड़ा त्यागा छ अन धन कामणी,  
वन में जाय दीक्षा धरि जीवड़ा चेतन सूचित लाय,  
जीवड़ा पंच महाव्रत जी वेल्या संग लिया,  
जीवड़ा दिव्य ध्वनि की घुंघर माल,  
चारित्र पथ पर वे मुनि बैठिया,

# जीवड़ा दर्शन ज्ञान बन्यो रथ माय ॥

जीवड़ा शिखर पर वे मुनि तप तप्या,  
जीवड़ा तीनों काल मंझार, बात कर्म को  
वे मुनि कियो जीवड़ा उपज्यो छ केवल ज्ञान,  
जीवड़ा मोक्ष मार्ग में वे मुनि पूँछियो,  
जीवड़ा जीनो ही काल मंझार,  
जो नर गावे जी शुद्धि मन भाव से,  
जीवड़ा 'सुभाषचन्द' बनाया जिनवाणी ॥



## जैन धरम के हीरे मोती



तर्ज : सांवली सलोनी तेरी

जैन धरम के हीरे मोती चुन ले प्राणी  
चार दिनों की तेरी बची जिंदगानी हो..  
करता है क्यों पगले तू मनमानी  
मिल जाएगी तेरी मिट्टी में जवानी हो

जनम हुआ तेरा इस धरती पे तूने रुदन मचाया  
आंख ही तेरी खुल ना पाई, भूख-भूख चिल्लाया

बचपन बीता, खेल में तेरा,  
आया बुढ़ापा, रोग ने घेरा,  
सोने जैसे शास्त्र की कदर ना पहचानी  
चार दिनों की तेरी बच्ची जिंदगानी हो..

दौलत के दीवानों सुन लो एक दिन ऐसा आएगा  
धन दौलत और रूप खजाना पड़ा यहीं रह जाएगा  
स्वारथ का है बस यही खेला - २  
दो दिन का है बस यही मेला  
यूं ही उमरिया तेरी खाली बीत जानी  
चार दिनों की तेरी बच्ची जिंदगानी हो..



## जो अपना नहीं उसके अपनेपन

जो अपना नहीं उसके अपनेपन में जीवन चला गया  
पर में अपनापन करके हा मैं अपने से छला गया ॥



जग में ऐसा हुआ कौन जो अपने से ही हारा,  
जिसकी परिणति को अनादि से मोह शत्रु ने मारा  
जिसने जिसको अपना माना, उसे छोड़ वह चला गया,

पर में अपनापन करके हा मैं अपने से छला गया ॥

अपने को विस्मृत करके हाँ जिसको अपना माना,  
क्या वह अपना हुआ कभी, यह सत्य अरे ना जाना  
जो अनादि से अपना है वह विस्मृति में क्यों चला गया,  
पर में अपनापन करके हा मैं अपने से छला गया ॥

अपने में पर के शासन का अंत कहो कब होगा,  
निज में पर के अवभासन का अंत कहो कब होगा  
प्रगट ज्ञान का अंश अरे पर परिणति में क्यों चला गया,  
पर में अपनापन करके हा मैं अपने से छला गया ॥

जिसने वीतराग मुद्रा लख निज स्वरूप को जाना,  
रंग राग से भिन्न अरे निज आत्म तत्व पहिचाना  
प्रगट ज्ञान का पुंज तभी निज ज्ञान पुंज में चला गया,  
अपने में अपनापन करके मैं अपने में चला गया ॥



जो इच्छा का दमन



जो इच्छा का दमन न हो तो,  
चारित्र से शिव गमन नहीं रे ॥टेक ॥

अन्न त्याग से मुक्ति होय तो, भिक्षुक लंघन करत रही रे ।  
नीर तजै भव पीर कटै तो, मृग तृष्णा-वश जान दई रे ॥1 ॥

बिन बोले ते मौनी हो तो, बगुला बैठो मौन गही रे ।  
नाम जपै निज नाथ मिलै तो, तोता निशदिन रटत वही रे ॥2 ॥

वस्त्र त्याग अरु वन निवास तें, जो होवै सो साधु कही रे ।  
तो पशु वस्त्र कभी नहीं पहिनत, वन में आयुष बीत गयी रे ॥3 ॥

काया कृष कर कृत नहीं होवै, जो इच्छा नहीं दमन भई रे ।  
'भोमराज' जो ताहि दमत है, सो पावै है मोक्ष मही रे ॥4 ॥

**अर्थ :** बिना इच्छाओं के अभाव के बाहर शरीर से कितनी भी क्रियाएँ (बाह्य चारित्र) कर ली जाएँ, वे मुक्ति का कारण नहीं हैं।

यदि भोजन का त्याग करने से मुक्ति होती हो, तो सभी भिक्षु लंघन (उपवास) करते हैं, उन सभी को मुक्ति क्यों नहीं होती? तथा यदि जल त्याग करने से मुक्ति होती है, तो रेगिस्तान में हिरण जल के लिए ही मृग-मरीचिका के कारण अपने प्राण तक त्याग कर देता है। फिर उसे भी मुक्ति होनी चाहिए?

नहीं बोलने (मौन रखने) से मौनी होते, तो बगुला भी मौनी कहलाया जाना चाहिए। और यदि भगवान का नाम जपने से निज नाथ अर्थात् भगवान/सच्चा सुख मिलता, तो तोता तो दिनभर उसकी रटन लगा सकता है। फिर उसे भगवान क्यों नहीं मिलते?

वस्त्रों के त्याग और वन में रहने मात्र से किसी को साधु कह दिया जाए, तो पशु कभी वस्त्र नहीं पहनते और जीवन भर ही वन (जंगल) में रहते हैं, तब उन्हें भी साधु क्यों नहीं कहा जाना चाहिए?

अगर इच्छा का दमन अर्थात् नाश नहीं हुआ हो तो, शरीर के कृष अर्थात् सुखा लेने मात्र से कृत-कृत्य नहीं हुआ जा सकता। तथा, जो इच्छा का दमन कर देता है, वह ही मुक्ति भूमि को प्राप्त करता है।



## जो जो देखी वीतराग

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे  
अनहोनी होसी नहि क्यों जग में, काहे होत अधीरा रे ॥

समय एक बढै नहिं घटसी, जो सुख दुख की पीरा रे  
तू क्यों सोच करै मन मूरख, होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥

लगै न तीर कमान बान कहूं, मार सकै नहिं मीरा रे  
तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे ॥

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारे भव भीरा रे  
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारैं भव नीरा रे ॥



## ज्ञानमय ओ चेतन तुझे

तर्ज : श्याम तेरी बंसी पुकारे

ज्ञानमय ओ चेतन, तुझे जग से क्या काम?

मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥टेक॥

पल-पल की भूल तुझे पल-पल रुलाये,  
भव-भव में भटका के दुःख ही दुःख दिलाये ।  
सद्गुरु की वाणी को सुनो आत्मराम ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥१॥

इस जग में तेरा कोई नहीं है सहारा ।  
कर ममत्व पर से, दुःख पाया अपारा ।  
फिर भी तू करता क्यों, उन्हीं में मुकाम ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥२॥

बाहर में तेरा कोई नहीं है सहारा ।  
तुझमें अत्यन्त अभाव सबका अपारा ।  
फिर भी तू माने उन्हें निज से महान ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥३॥

चेतन स्वयं तू ही सुख का निधान है ।  
दुःख का कारण तुझे तेरा अज्ञान है ।  
'मैं तो प्रभु सुखमय हूँ', ऐसा कर ध्यान ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥४॥

सोच तज केवल पर्याय ही समल हैं ।  
दिव्य अन्तस्तत्व निज आत्मा अमल है ।  
भव्य अब तो आश्रय ले, ध्रुव का विराम ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥५॥

मुक्ति को पाने का हरदम यतन हो ।  
मुक्तिरूप प्रभुता की प्रतिक्षण लगन हो ।  
शीघ्र ही मिलेगा तुझे, शाश्वत शिवधाम ॥  
मुक्ति तेरी मंजिल है, ध्रुव तेरा धाम ॥६॥



## ज्ञानी का धन ज्ञान

ज्ञानी का धन ज्ञान जगत में ॥टेक ॥

पाप ना भाये, पुण्य ना भाये  
नित्य निरंजन रूप रमावे  
चक्रवर्ती की संपत्ति भी गर  
मिले तो धूल समान ॥  
जगत में, ज्ञानी का धन ज्ञान ॥१॥



तीव्र उदय तदरूप बने  
घोर दुख सुख सहे घने  
फिर भी पर को पर ही जाने  
सुवरण अग्नि समान ॥  
जगत में, ज्ञानी का धन ज्ञान ॥२॥

ज्ञान बिना तो स्वर्ग बला है  
ज्ञान होय तो नरक भला है  
करम मैल को चूर करन को  
ज्ञान ही वज्र समान ॥  
जगत में, ज्ञानी का धन ज्ञान ॥३॥

ज्ञान को धारे ज्ञान का धारी  
ज्यों सिर गगर धरे पनिहारी  
चंचल चाल करे बहु बातें  
चन्द्र गगर पर ध्यान ॥  
जगत में, ज्ञानी का धन ज्ञान ॥४॥



तन पिंजरे के अन्दर बैठा



तन पिंजरे के अन्दर बैठा आत्मराम कहे  
पिंजरा दिन दिन होत पुराना पंछी वही रहे ॥

इस पिंजरे के नौ दरवाजे न सांकल ना ताला  
खुले हुए पिंजरे में रहता पंछी उड़ने वाला  
पिंजरा जन्मे पिंजरा पनपे पिंजरा जरे बहे ॥१॥

ना जाने कितने युग से है पिंजरे पंछी का नाता  
पञ्च तत्त्व से निर्मित पिंजरा बिखर बिखर जुड़ जाता  
हानि लाभ सुख दुःख पिंजरे का पंछी आप सहे ॥२॥

लाख चौरासी भाँती के पिंजरे पंछी सब एक जैसे  
ज्ञानी सोचे इस पिंजरे से मुक्ति मिलती कैसे  
पिंजरा पंछी भिन्न जानने से ही मुक्ति मिलती ॥३॥



## तू जाग रे चेतन देव



तर्ज़ : आ लौट के आजा मेरे मीत

तू जाग रे चेतन देव तुझे जिनदेव जगाते हैं  
तेरे अंदर में आनन्द के गीत तुझे संगीत न भाते हैं ॥

परपद अपद है, परपद अपद है तुझको न शोभा देता  
अपने ही रंग में, अपनी ही धुन में रम जा तू संतों ने घेरा  
तेरी महिमा अगम अनूप, तुझे जिनदेव जगाते हैं ॥१॥

इस पल भी जीना, निज बल पे जीना, शोभावे सन्मुख ही जीना  
दो दिन का मेला फ़िर तू अकेला कोई है जग का कहीं ना  
सुन समयसार संगीत तुझे जिनदेव सुनाते हैं ॥२॥

चैतन्य रस में, आनन्द के रस में, शान्ति के रस में नहाले  
प्रभुता के रस में, भीरुता के रस में, वैराग्य रस में मजा ले  
फ़िर सब गावें तेरे गीत, तुझे जिनदेव जगाते हैं ॥३॥



## तू जाग रे चेतन प्राणी



तर्ज : ए मेरे वतन के लोगों

तू जाग रे चेतन प्राणी कर आतम की अगवानी  
जो आतम को लखते हैं उनकी है अमर कहानी ॥

है ज्ञान मात्र निज ज्ञायक, जिसमें है ज्ञेय झलकते

यह झलकन भी ज्ञायक है, इसमें नहीं ज्ञेय महकते  
मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी मेरी चैतन्य निशानी ॥  
जो आत्म को लखते हैं उनकी है अमर कहानी ॥१॥

अब समकित सावन आया, चिन्मय आनंद बरसता  
भीगा है कण कण मेरा, हो गई अखंड सरसता  
समकित की मधु चितवन में, झलकी है मुक्ति निशानी ॥  
जो आत्म को लखते हैं उनकी है अमर कहानी ॥२॥

ये शाश्वत भव्य जिनालय है शांति बरसती इनमें  
मानों आया सिद्धालय मेरी बस्ती हो उसमें  
मैं हूं शिवपुर का वासी भव-भव की खतम कहानी ॥  
जो आत्म को लखते हैं उनकी है अमर कहानी ॥३॥



## तू निश्चय से भगवान



तर्ज़ : तेरे द्वार खड़ा भगवान

तू निश्चय से भगवान, दृष्टि में समता धर ले रे ।  
तुझे तेरी नहीं रे पहचान, कि तू तो है अनंत सुख की खान,  
मोह तज दे रे भोले ॥टेक ॥

मन नहीं तू, वचन नहीं तू, पाँच रीति न तू काया ।  
जीवस्थान न, गुणस्थान तू, कर्म उदय का न मारा रे ।  
तेरा लोक-शिखर है स्थान, करले रे अपने से पहचान,  
मोह तज दे रे भोले,  
तू निश्चय से भगवान, दृष्टि में समता धर ले रे ॥१॥

रस न रूप न गंध तेरे में, चेतनता तेरी काया ।  
शब्द और स्पर्श रहित तू, सर्व द्रव्य से न्यारा रे ।  
तेरा नियत न कोई संस्थान, न ही तेरी लिंग से पहचान,  
मोह तज दे रे भोले,  
तू निश्चय से भगवान, दृष्टि में समता धर ले रे ॥२॥

पर द्रव्यों का कर्ता नहीं तू, न उनका तू भोक्ता ।  
परमारथ से अबद्ध है तू, कर्मों से तू अछूता रे ।  
उपयोग तेरी पहचान, प्रकट करले रे तू केवलज्ञान,  
मोह तज दे रे भोले,  
तू निश्चय से भगवान, दृष्टि में समता धर ले रे ।  
तुझे तेरी नहीं रे पहचान, कि तू तो है अनंत सुख की खान,  
मोह तज दे रे भोले ॥३॥





## तू ही शुद्ध है तू ही

तू ही शुद्ध है, तू ही बुद्ध है  
तू ही गुण अनन्त की खान है  
सुन चेतना अब जागना,  
अब जागना सुन चेतना ॥टेक॥

कोई कर्म तुझको छुआ नहीं  
तुझे कुछ भी तो हुआ नहीं  
तू ही ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान है  
अंतर में तू भगवान है ॥१..सुन॥

निःकलंक है निष्काम है  
निर्वेद है निर्विकार है  
निर्दोष है निष्पाप है  
निर्बाध निराधार है ॥२..सुन॥

मेरे ज्ञान में बस ज्ञान है  
तू सूर्य रश्मि खान है  
उपयोग में उपयोग है  
तू बन रहा अनजान है ॥३..सुन॥

कर्तत्व भार उतार ले  
निज आत्म शक्ति निहार ले  
अकर्ता तू अजर अमर  
तू ही अनादि नाथ है ॥४..सुन॥

तेरी आत्मा ध्रुव सिद्ध जो  
परमात्मा से कम नहीं  
तू एक ज्ञायक भाव बस  
परिपूर्ण प्रभुतावान है ॥५..सुन॥



## तेरे अंतर में भगवान है



तर्ज़ : ये तो सच है कि भगवान है

तेरे अंतर में भगवान है, तू मगर फिर भी अनजान है,  
माता जिनवाणी भी समझा रही,  
सिद्धों जैसी तेरी शान है ॥टेक॥

क्या कहूँ माता दर्शन की बलिहारियाँ,

सोता बालक भी जागे ये वो लोरियां,  
आत्म-अनुभूति पलटी शरण में तेरी,  
गंगा जमना सी पावन माँ सच्ची मेरी,  
कितनी महिमा है हम क्या कहें,  
गणधर भी कह के हैरान हैं ॥१... माता ॥

मोह विध्वंसिनी विष-विषय-नाशिनी,  
दिव्य-ध्वनि वंदनीय माँ तरण-तारिणी  
जितने जिनवर हुए सब कृपा से तेरी,  
जितने होंगे तेरी ये छटा सावनी  
सब समाधान रूपा है माँ, तू अनेकांत की ॥२... माता ॥

चेतना शुद्ध है चेतना बुद्ध है,  
आत्मा आज भी देखो भगवान है,  
गुण का समुदाय जो, द्रव्य तूने कहा,  
लगा आत्म मेरा रत्न की खान है,  
वंदना बन्द हो ना मेरी,  
मुक्ति-दाता तेरा ज्ञान है ॥३... माता ॥



# तोड़ दे सारे बंधन सदा के लिए



तर्ज : छोड़ दें सारी दुनिया किसी के लिए

कहाँ चले ओ पर में चेतन, निज से नाता तोड़ के  
नश्वर सुख के कारण ही, यूं शाश्वत सुख को छोड़ के ॥

तोड़ दे सारे बंधन सदा के लिए,  
यह मुश्किल नहीं आत्मा के लिए  
ज्ञान से भी जरूरी निज ध्यान है,  
ध्यान चेतन का कर स्वात्म सुख के लिए ॥टेक ॥

तू अनादि से कर्मों के संग रहा  
कर्म फिर भी तुझे तो छुए ही नहीं  
पर पदार्थों को तुम अपना कहते रहे  
पर कभी ये तुम्हारे हुए ही नहीं  
निज में भण्डार है स्वात्म गुण-धाम का  
कर ले दृष्टि स्वयं में स्वयं के लिए ॥१॥

इष्ट संयोग में राग क्यों कर रहा  
इन विकारों में सुख की सुगंधी नहीं  
शुद्ध निश्चय से तू ही है परमात्मा

अपनी महिमा को क्यों जानता नहीं  
काल नन्ता गया यों ही भ्रमते हुए  
आ पुकारे गुरु आत्म-हित के लिए ॥२॥



## थाने सतगुरु दे समुद्घाय



थाने सतगुरु दे समुद्घाय, ज्ञान का बाग लगाओजी ॥टेक॥

सम्यक् धरती शुद्ध कराओ,  
मन का बीज बुवाओजी ॥ज्ञान...१॥

क्षमा की क्यारी भविक डोलची,  
समता जल छिटकाओजी ॥ज्ञान...२॥

ज्ञान गुलाब चारित्र चमेली,  
तप को मरुवो बुवाओजी ॥ज्ञान...३॥

शील बाढ़ चहुं ओर चुनाओ,  
नव निधि बेल चढ़ाओजी ॥ज्ञान...४॥

अनुभव मेवा उतरन लाग्या,  
हर्ष-हर्ष फल पाओजी ॥ज्ञान...५॥



## थोड़ा सा उपकार कर

थोड़ा सा उपकार कर  
जीवन को पहचान ए मानव, सब जीवों से प्यार कर ।  
भव-सागर से तर जाएगा, थोड़ा सा उपकार कर ॥टेक॥

दीन दुखी जो मिले राह में, उसका कष्ट निवार तू ।  
जितना भी हो सके तू दे, तन मन धन का प्यार तू ।  
रत्न अमोल है जीवन तेरा, मत इसको बेकार कर ॥भव...१॥

राग-द्वेष को मार तू ठोकर, क्रोध मान को छोड़ दे ।  
मन से अपना बसा पुराना, लोभ का रिश्ता तोड़ दे ।  
जो भी आए दर पर तेरे, उसका तू सक्कार कर ॥भव...२॥

झूठी है यह दुनियाँ सारी, झूठी सारी माया है ।  
पल भर का है सपना तेरा, झूठी तेरी काया है ।  
झूठ छोड़कर सच अपना ले, केवल सच से प्यार कर ॥भव...३॥

सत्य पथ पर चला जो राही, उसका तो उद्धार हुआ ।  
क्षमा मयी जो हुआ विश्व में, उसका बेड़ा पार हुआ ।  
बन सकता है वह तीर्थकर, चले जो जीवन संवार कर ॥भव...४॥

लेकर जिनवाणी का सहारा, जिसने मन चमकाया है ।  
सप्त व्यसन को त्यागा जिसने, कभी न वह घबराया है ।  
जन्म मरण बंधन से छूटा, पहुंचा मोक्ष द्वार पर ॥भव...५॥

जैसा जिसने कर्म किया है, वैसा ही फल पाया है ।  
आलस करने वाला जग में, भूखा मारता आया है ।  
जीवन की अंतिम घड़ियों में, यही करेगा हार कर ।  
जीवन को पहचान हे मानव, अब जीवों से प्यार कर ॥भव...६॥



## अबके ऐसी दीवाली



तर्ज : अब मेरे समक्ष सावन आये

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ ॥

आन कुदेव कुरीति छाँड के, श्री महावीर चितारूँ ।

राग-द्वेष का मैल जलाकर, उज्जवल ज्योति जगाऊँ ॥  
अपनी मुक्ति-तिया हर्षाऊँ ॥  
अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ ॥१॥

निज अनुभूति महालक्ष्मी का, वास हृदय करवाऊँ ।  
निज गुण लाभ दोष टोटे का, लेखा ठीक लगाऊँ ॥  
जासों फेर ना टोटा पाऊँ ॥  
अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ ॥२॥

ज्ञान रतन के दीप में, ताप का तेल पवित्र भराऊँ ।  
अनुभव ज्योति जगा के, मिथ्या अन्धकार विनसाऊँ ॥  
जासों शिव की गैल निहारूँ ॥  
अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ ॥३॥

अष्ट कर्म का फोड़ा फटाका, विजई जिन कहलाऊँ ।  
शुद्ध-बुद्ध सुख-कंद मनोहर, शील स्वभाव लखाऊँ ॥  
जासों शिवगोरी बिलसाऊँ ॥  
अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ ॥४॥





# देख तेरी पर्याय की हालत

देख तेरी पर्याय की हालत क्या हो गई भगवान  
 तू तो गुण अनन्त की खान  
 चिदानन्द चैतन्य राज क्यों अपने से अनजान  
 तुझमें वैभव भरा महान् ॥टेक॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, श्री जिनवर का दर्शन पाया  
 जिनने निज में निज को ध्याया, शास्वत सुखमय वैभव पाया  
 इसीलिए श्री जिन कहते हैं करलो भेद-विज्ञान  
 तू तो गुण अनन्त की खान ॥देख...१॥

तन चेतन को भिन्न पिछानो, रत्नत्रय की महिमा जानो  
 निज को निज पर को पर जानो, राग-भाव से मुक्ति न मानो  
 सप्त तत्त्व की यही प्रतीति देगी मुक्ति महान  
 तू तो गुण अनन्त की खान ॥देख...२॥

अपने में अपनापन लाओ, निर्गुणों का पथ अपनाओ  
 निज स्वभाव में ही रम जाओ, निर्मल सम्यकचारित्र पाओ  
 सम्यगदर्शन ज्ञान चरित्रमय मुक्ति-मार्ग पहचान  
 तू तो गुण अनन्त की खान ॥देख...३॥



# देखा जब अपने अंतर को



देखा जब अपने अंतर को कुछ और नहीं भगवान हूं मैं  
पर्याय भले ही पामर हो अंदर से वैभववान हूं मैं,  
देखा जब अपने अंतर को...

चैतन्य प्राणों से जीवित हैं, इंद्रिय बल श्वासोच्छवास नहीं,  
हूं आयु रहित नित अजर अमर, सच्चिदानन्द गुणखान हूं मैं ॥

आधीन नहीं संयोगों के, पर्यायों से अप्रभावी हूं,  
स्वाधीन अखंड प्रतापी हूं, निज से ही प्रभुतावान हूं मैं ॥

सामान्य विशेषों सहित विशुद्ध, प्रत्यक्ष झलक जावे क्षण में,  
सर्वज्ञ सर्वोदय श्री आदिक, सम्यक निधियों की खान हूं मैं ॥

स्व धर्मों में व्याप्ति विभु हूं, अरु धर्म अनंतामयी धर्मी,  
नित निज स्वरूप की रचना से, अंतर में धीरजवान हूं मैं ॥

मेरा वैभव शाश्वत अक्षुण्ण, पर से आदान प्रदान नहीं,  
त्यागोपादान शून्य निष्क्रिय, अरु अगुरुलघु शिवधाम हूं मैं ॥

तृप्ति आनंदमयी प्रगटी, जब देखा अंतर नाथ को मैं,  
नहीं रही कामना अब कोई, बस निर्विकार निष्काम हूं मैं ॥



## देखोजी प्रभु करमन की



राजा लोभी राज करन्ता पंडित भया रे भिखारी,  
पापी पाखाण्डी ने मिश्री का मेवा तो साधु ने भोजन भारी ।  
देखोजी प्रभु ! करमन की गति न्यारी ।  
मैं तो अरज करत कर हारी ॥टेक ॥

वेश्या ओढ़े शाल दुशाला, पतिव्रता नार उघाड़ी ।  
सुख भर नारी, पुत्र बिन झूरे, तो मूरख जन जन हारी ॥  
देखोजी प्रभु करमन की गति न्यारी ॥१॥

कागद लेके गोखरा बैठे, लेख लिखा सोई होसी ।  
कलम पकड़ हाथ बिच लीनी, तो हो गया लेख हमारा ॥  
देखोजी प्रभु करमन की गति न्यारी ॥२॥

गंगा नीर समुद्र जल पानी, पीवो समुद्र जल खारी ।  
उजलो वरन बगुला सो दीखे तो कोयल पड़ गई कारी ॥

देखोजी प्रभु करमन की गति न्यारी ॥३॥

गरब कियो रत्नागर सागर, जाका हुआ नीर खारा ।  
गरब कियो झूँगर की चिरमी तो हो गहया मुखड़ा कारा ॥  
देखोजी प्रभु करमन की गति न्यारी ।  
मैं तो अरज करत कर हारी ॥४॥



## नर तन को पाकर के



तर्ज : होठों से छू लो तुम...

नर तन को पाकर के, जीवन को विमल कर लो ।  
शिवपुर के पथिक बनो, नरजन्म सफल कर लो ॥टेक॥

न उम्र की सीमा है, न जन्म का है बंधन ।  
निज में निज अनुभव कर, बन जाओ स्वयं भगवन् ॥  
निज के वैभव से तुम, निज को ही धनिक कर लो ।  
शिवपुर के पथिक बनो, नरजन्म सफल कर लो ॥१॥

चारों ही गतियों में, चारों ही कषायों ने ।  
मुझे खूब रुलाया है, तुझे खूब भ्रमाया है ॥

अब मानुष तन पाकर, यह जन्म सफल कर लो ।  
शिवपुर के पथिक बनो, नरजन्म सफल कर लो ॥२॥

परद्रव्य परभावों को, तू निज का मान रहा ।  
निज को तू भूल रहा, पर को निज मान रहा ॥  
अंतर में दृष्टि बदल, अब भेदज्ञान कर लो ।  
शिवपुर के पथिक बनो, नरजन्म सफल कर लो ॥३॥



## निजरूप सजो भवकूप तजो



निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ।  
चितपिण्ड, अखण्ड, प्रचण्ड जिया, तुम रत्न-करण्ड कहावत हो ॥  
टेक ॥

स्वर्गादिक में पछतावत हो, नर देह मिले तो करुँ तप को ।  
अब भूल गए, प्रतिकूल भये, मद फूल गए इतरावत हो ॥  
निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ॥१॥

दुख नक्त निगोद विशाल जहां, अति शीतल उष्ण सहे तुमने ।  
वहाँ ताती त्रिया लपटाती तुम्हें, फिर हूँ मद में लपटावत हो ॥

निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ॥२॥

त्रस थावर त्रास सहे बन्धन, बध छेदन, भेदन भूख सहा ।

सुख रंच न सञ्च करो तुम क्यों, पर-पञ्च में उलझावत हो ॥

निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ॥३॥

तेरे द्वार पे कर्म किवाड़ लगे, तापर मोह ने ताला लगा दिया ।

सम्यक्त्व की कुञ्जी से खोल 'भुवन' कुञ्जी क्यों देर लगावत हो ॥

निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ।

चितपिण्ड, अखण्ड, प्रचण्ड जिया, तुम रत्न-करण्ड कहावत हो ॥४॥



## नेमि पिया राजुल



नेमि पिया राजुल पुकारे तोरा नाम ।

नौ भव की प्रीति मेरी हुई बदनाम ॥टेक॥

गिरि को गए पशुओं का सुन कुंदन  
राजुल को डाल गए उलझन में भगवन ॥

मैं भी अब जपूँ निज आतम राम ।

नौ भव की प्रीति मेरी हुई बदनाम ॥१॥

कजरा लगाऊँ न बिंदिया लगाऊँगी  
मांगों में सिंदूर अब ना भराउंगी ॥  
मेहंदी और महावर से क्या मुझको काम ।  
नौ भव की प्रीति मेरी हुई बदनाम ॥२॥

पीछी मंगा दो कमंडल भी ला दो  
माताजी चल के मोहे दीकशा दिला दो ॥  
वन में रहूँगी मैं तो महलों से क्या काम ।  
नौ भव की प्रीति मेरी हुई बदनाम ॥३॥

कहे माता राजुल ये जिद क्यों पड़ी है ।  
नेमि से क्या तेरी भाँवर पड़ी है ॥  
नेमि से लड़के यहाँ अच्छे तमाम ।  
नौ भव की प्रीति तेरी हुई बदनाम ॥४॥

किसी और को कंत अब ना कहूँगी ।  
उनकी रही उनके मारग चलूँगी ॥  
मुझको तो अब अपने आतम से काम ।  
नौ भव की प्रीति को देती हूँ विराम ॥५॥





# परिग्रह डोरी से झूठ

परिग्रह डोरी से, झूठ और चोरी से ।  
पापी बने ऐ हजूर, अरे बंधन है कर्म का ॥टेक ॥

परनारी परधन पर क्यूँ मन को लुभाया ।  
भोगों पे ललचाया तो दुखड़े उठाया ।  
पाएगा रे सजा, तू पाप भार का ॥१...परिग्रह ॥

देखो तुम जो आए क्या करतब है तुम्हारा  
इन्सां बनके देखो दो दीनों को सहारा  
पाएगा रे दुआ, दीनों के प्यार का ॥२...परिग्रह ॥

तेरी दीन बनी है आत्म, उसको तू पहचान ले  
इसकी शक्ति कितनी, इसको तू अब जान ले  
पाएगा मोक्ष को, छुटे संसार भार से ॥  
परिग्रह डोरी से, झूठ और चोरी से  
पापी बने ऐ हजूर, अरे बंधन है कर्म का ॥३ ॥





# परिणामों से मोक्ष प्राप्त हो

परिणामों से मोक्ष प्राप्त हो, परिणामों से बंध रे ।  
परिणामों की दिव्य शक्ति से, कटे जगत के फंद रे ॥टेक॥

शुभ परिणाम स्वर्ग देते हैं, अशुभ नर्क दिखलाते हैं ।  
यदि परिणाम शुद्ध होते तो, सिद्धालय पहुंचाते हैं ॥  
केवलज्ञान प्रगट होता है, हो जाता परमानन्द रे ।  
परिणामों से मोक्ष प्राप्त हो, परिणामों से बंध रे ॥१॥

निज अनुभव का रस पीते ही, मन विभोर हो जाता है ।  
जो अनादि का राग बसा था, पल भर में खो जाता है ॥  
निज ज्ञायक के आश्रय से ही, हो जाता सहजानन्द रे ।  
परिणामों से मोक्ष प्राप्त हो, परिणामों से बंध रे ॥२॥



# पाना नहीं जीवन को



पाना नहीं जीवन को, बदलना है साधना,  
तू ऐसा जीवन पावत है, जलना है साधना ॥

मूँड मुंडाना बहुत सरल है, मन मुंडन आसान नहीं,  
व्यर्थ भभूत रमाना तन पर, यदि भीतर का ज्ञान नहीं,  
पर की पीड़ा में, मोम सा पिघलना है साधना ॥  
पाना नहीं जीवन को...

मंदिर में हम बहुत गये पर, मन यह मंदिर नहीं बना,  
व्यर्थ शिवालय में जाना जो, मन शिवसुन्दर नहीं बना  
पल पल समता में इस मन का ढलना है साधना ॥  
पाना नहीं जीवन को....

सच्चा पाठ तभी होगा जब, जीवन में पारायण हो,  
श्वास श्वास धडकन धडकन से जुड़ी हुई रामायण हो,  
तब सत पथ पर जन जन मन का चलना है साधना ॥  
पाना नहीं जीवन को....



## पाप मिटाता चल ओ बंधू



तर्ज़ : गीत गाता चल ओ साथी

पाप मिटाता चल ओ बंधू पुण्य कमाता चल  
ओ बंधू रे... भला हो, भलाई कर तू हर घड़ी हर पल

पाप की नैया कभी तर नहीं सकती  
पुण्य से मिलती मेरे भाई आत्म शान्ति  
ओ<sup>ss</sup> कर काम ऐसे आकाश के तले  
धरती पे सदियों (तेरा नाम जो चले) -२

ओ बंधु रे... भलाई का अपने मन में निश्चय कर अटल ॥पाप-१॥

साधना कठिन करके कहलाया साधू  
जाल मोह माया का न तोड पाया बंधू  
ओ<sup>ss</sup> सारा समय तूने यूँ ही खोया

तन किया उजला (मन का मैल न धोया) -२

ओ बंधु रे... करनी का फ़ल भोगेगा आज नहीं तो कल ॥पाप-२॥

कर्म का लेखा कभी टाले न टलेगा  
जैसा जो करेगा यहां वैसा ही भरेगा  
ओ<sup>ss</sup> इस बैरी जग में कोइ न अपना  
सच्ची बात है ये (सदा याद रखना) -२

ओ बंधु रे... किसी से कभी ना करना तू कपट और छल ॥पाप-३॥

दान जो लुटाया तूने कहलाया दानी  
ज्ञान जो गुरु से लिया बना बड़ा ज्ञानी  
ओ<sup>ss</sup> गुरु का किया ना आदर सत्कार

दान और (ज्ञान तेरा हुआ बेकार) - २  
ओ बंधू रे... सेवा कर गुरु की होगा तब जीवन सफल ॥पाप-४॥



## पावन हो गई आज ये धरती



तर्ज : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ

पावन हो गई आज ये धरती, कुंदकुंद के नाम से,  
अरे कण-कण से अब गूंज उठेगी, मुनिराज के नाम से ॥टेक॥

समयसार रचनार नमामि, शुद्धात्म दातार,  
मूल संघ के नायक, गुरुवर कुंदकुंद अवतार,  
चलो जी चलो भक्ति रचायें, मंगलगीत सुनायें,  
कराता श्रद्धा अविकार, गुरुवर कुंदकुंद अवतार ॥१॥

गौरवर्ण निज आतम में, प्रगटा शुद्धाचार,  
भाव लिंग मय संत गुरुवर, कुंदकुंद अवतार,  
चलो जी चलो निज में जायें, सम्यग्दर्शन पायें,  
जताता स्वानुभूति के द्वार, गुरुवर कुंदकुंद अवतार ॥२॥

धन्य-धन्य वे लोग हैं जो, मंगल कार्य किया,  
कुंदकुंद मुनिराज का, सपना साकार किया,  
चलो जी चलो फेरा मिटायें, जीवन सफल बनाये,  
दिखाता सिद्धों सम आकार, गुरुवर कुंदकुंद अवतार ॥३॥



## पीजे पीजे रे चेतनवा पानी



पीजे-पीजे रे चेतनवा, पानी छान-छान के ॥टेक॥

निरख-निरख कर पग धर चलना,  
जैन वयन सत् मान-मान के ॥१॥

हित-मित वचन कहो मेरे प्यारे,  
क्रोध लोभ मद भान-भान के ॥२॥

निशि-भोजन को भूल नहीं करना,  
जीव पड़ गया इनमें आन-आन के ॥३॥

'न्यामत' हलन-चलन जो करना,  
करना सुमति हिय ठान-ठान के ॥४॥



## पुद्गल का क्या विश्वासा

पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ।  
जैसे चमत्कार बिजली का, और इन्द्र धनुष आकाशा ॥टेक॥



झूठा तन धन, झूठा यौवन, झूठा है जग सारा ।  
झूठा ठाठ है दुनिया में, झूठा है महल में वासा ॥  
पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ॥1॥

इक दिन ऐसा होगा लोगों जंगल होगा वासा ।  
इस तन पर हल चल जाएँगे और पशु चरेंगे घासा ॥  
पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ॥2॥

इक बार श्री जिन जी का, भजले तू नाम निराला ।  
'नवन' कहे क्षण भी न भूलों, जब तक है घट में श्वासाँ ॥  
पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ॥3॥



## प्यारे काहे कुं ललचाय



प्यारे, काहे कूं ललचाय ।  
या दुनियाँ का देख तमासा, देखत ही सकुचाय ॥टेक॥

मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीउ अकुलाय ।  
पलक एक में बहुरि न देखे, जल बुंद की न्याय ॥  
प्यारे, काहे कूं ललचाय ॥1॥

कोटि विकल्प व्याधि की वेदन, लही शुद्ध लपटाय ।  
ज्ञान-कुसुम की सेज न पाई, रहे अघाय अघाय ॥  
प्यारे, काहे कूं ललचाय ॥2॥

किया दौर चहुँ ओर जोर से, मृगतृष्णा चित लाय ।  
प्यास बुझावन बूँद न पाई, यौं ही जनम गमाय ॥  
प्यारे, काहे कूं ललचाय ॥3॥

सुधा-सरोवर है या घट में, जिसतें सब दुख जाय ।  
'विनय' कहे गुरुदेव दिखावे, जो लाऊँ दिल ठाय ॥  
च्यारे, काहे कूं ललचाय ॥4॥

**अर्थ :** प्रिय! तू किसलिए ललचाता है? संसारी प्राणियों की मनोवृत्ति देखकर मन में बड़ा संकोच होता है। अरे मूर्ख! तू 'मेरी-मेरी' करता है और अपनी आत्मा को आकुल करता हुआ भ्रमण करता है। जिस प्रकार जलबबूला देखते-देखते ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार हे मूर्ख! यह तेरा संग्रह भी क्षण भर में नष्ट हो जाता है। प्रिय! तू किसलिए ललचाता है?

आत्मन्! सांसारिक माया के करोड़ों विकल्प तुम्हारे शुद्ध स्वभाव को मलिन कर रहे हैं और तुम्हें अशान्त कर रहे हैं। तुम अब तक ज्ञान रूपी फूलों की शाया नहीं प्राप्त कर सके। यही कारण है कि तुम संसार की सीमातीत विभूति पाकर भी अतृप्त के अतृप्त ही दिखलाई दे रहे हो। प्रिय! तुम ललचाते क्यों हो?

आत्मन्! तुम मृगतृष्णा को भाँति तोब्र लालसा से प्रिय पदार्थों में सुख प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करते हो - अविराम दौड़ लगाते हो; परन्तु जिस प्रकार उस मृग को कोसों दूर दौड़ लगाने पर भी एक बूँद पानी नहीं मिलता, उसी प्रकार तुम्हें भी लेशमात्र सुख-शान्ति नहीं मिल पाती और यह दुर्लभ मानुष भव व्यर्थ ही चला जाता है। प्रिय! तुम किसलिए ललचाते हो?

आत्मन्! तुम्हारे अन्दर ही सुधा का सरोवर लहरा रहा है। उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। इस सरोवर में स्नान करने से सब दुःख दूर हो जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है। गुरुदेव भी इसी मार्ग की ओर संकेत कर रहे हैं। आवश्यकता है केवल मन को आत्मस्वरूप में स्थिर करने की। प्रिय! तुम किसलिए ललचाते हो?



## प्रभु शांत छवि तेरी



(तर्ज :- दे दी हमें आजादी,  
दिन रात मेरे स्वामि)

प्रभु शांत छवि तेरी, अन्तर में समाई,  
प्रत्यक्ष देखि मूरत, शांति हृदय में छाई ॥टेक ॥

शुभ ज्ञान ज्योति जागी, आत्म स्वरूप जाना,  
प्रत्यक्ष आज देखा, चैतन्य का खजाना,  
जो दृष्टि पर में भ्रमती, वह लौट निज में आई ॥प्रत्यक्ष...१॥

अक्षय निधि को पाने, चरणों में प्रभु के आया,  
पर प्रभु ने मूक रहकर, मुझको भी प्रभु बताया,  
अन्तर में प्रभुता मेरे, निश्चय प्रतीति आई ॥प्रत्यक्ष...२॥

सर्वोत्कृष्ट निज प्रभु, तजकर कहीं ना जाऊं,  
जिन बहुत धक्के खाये, विश्राम निज में पाऊं,  
हो नमन कोटीशः प्रभु, शिव सुख डगर बताई ॥प्रत्यक्ष...३॥



## बेला अमृत गया आलसी सो रहा



बेला अमृत गया, आलसी सो रहा, बन अभागा ।  
साथी सारे जगे, तू न जागा ॥

झोलियाँ भर रहे भाग वाले, लाख पतितों ने जीवन संभाले,  
रंक राजा बने, प्रभु रस में सने, कष्ट भागा ।  
साथी सारे जगे, तू न जागा ॥१॥

कर्म उत्तम से नर तन जो पाया, आलसी बन के हीरा गंवाया ।  
हंस का रूप था, पानी गदला पिया, बन के कागा ॥  
साथी सारे जगे, तू न जागा ॥२॥

सार ग्रंथों का देखा न भाला, सिर से ऋषियों का ऋण न उतारा ।  
सौदा घाटे का कर, हाथ माथे पर धर, रोवन लागा ॥

साथी सारे जगे, तू न जागा ॥३॥

सीख सतगुरु की अब मान ले तू, जानने वाले को जान ले तू ।  
आतम ज्योति जगा, मन की भूल भगा, बन सयाना ॥  
साथी सारे जगे, तू न जागा ॥४॥



## भरतजी घर में ही वैरागी



घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी  
जड़-वैभव से भिन्न स्वयं में, निज वैभव अनुरागी ॥टेक ॥

छह खण्डों को तुमने जीता, ये कहने में आया  
लेकिन जग की विजय में उनने खुद को हारा पाया  
भोर भई समकित की अंतर, रैन मोह के भागे  
घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी ॥१॥

धन्य-धन्य हैं लोग वही जो, दिव्य-ध्वनी सुन पाते  
किन्तु भरतजी छह खण्डों पर, विजय ध्वजा फहराते  
भाग्यवान कहे सारी दुनिया, पर समझे वोअभागी  
घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी ॥२॥

चक्रवर्ती थे छह-खण्डों के, पर अखण्ड अन्तर में  
बाहर से भोगी दिखते पर, योगी अभ्यन्तर में  
चक्री-पद भी नहीं सुहाए, शुद्धात्म रुचि लागी  
घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी ॥३॥

भाव-लिंगी संतों की प्रतिदिन, भरत प्रतीक्षा करते  
नवधा-भक्ति से पड़गाहन का भाव हृदय में धरते  
हुए एक अन्तर-मुहर्त में, सारे जग के त्यागी  
घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी ॥४॥



## भला कोई या विध मन



कविवर - भवानीदास जी

भला कोई या विध मन को लगाओ  
जाके लगावत शिव सुख पाओ ॥टेक॥

जैसे नटनी चढ़त बरत पर चहुं दिश ढोल बजावे ।  
नाचत गावत लोग रिझावै तो सूरत बरत पे लगावे ॥  
भला कोई या विध मन को लगाओ ॥१॥

जैसे पनरिया सिर पे गगरिया तो गगर ढुलन नहीं पावे ।  
चितवत जात करत बहु बातें तो सूरत गगर पे लगावे ॥  
भला कोई या विध मन को लगाओ ॥२॥

जैसे पतंगा दीप शिखा पर झपट दिवल पर जावे ।  
जगमग जोत देख दीपक की तो बाहिने प्राण गमावे ॥  
भला कोई या विध मन को लगाओ ॥३॥

ये विध धर्म कहौ जिनवर ने तो मन वच तन कर ध्यावे ।  
'दास भवानि' दोउ कर जोड़े तो वोही शिव सुख पावे ॥  
भला कोई या विध मन को लगाओ ॥४॥



## भले रूठ जाये ये सारा



तर्ज : मुबारक हो सबको

भले रूठ जाये ये सारा जमाना,  
नहीं रागियों की शरण मुझको जाना ॥  
बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना-२  
ये श्रद्धान मेरा है मेरु समाना ॥नहीं... टेक॥

मेरे ज्ञान और ध्यान में बस तुम्हीं हो,  
अटल और श्रद्धान में बस तुम्हीं हो ।  
नहीं लाज गौरव, ना भय मुझको आना ॥१ नहीं...॥

तुम्हीं से मुझे मुक्तिमार्ग मिला है,  
रत्नत्रय का सुन्दर चमन ये खिला है ।  
ना तीर्थकरों के, कुल को लजाना ॥२ नहीं...॥

मैं हूँ मात्र ज्ञायक ये अनुभव ने जाना,  
तिहुँ लोक में बस उपादेय माना ।  
ये गुरुओं का ऋण है, मुझे ही चुकाना ॥३ नहीं...॥

है आदर्श अकलंक गुरुवर हमारे,  
है निकलंक आचार्य प्राणों से प्यारे ।  
धर्म के लिये, जिनने मस्तक कटाया ॥४ नहीं...॥



**भले रूठ जाये ये सारा**



भले रूठ जाये ये सारा जमाना,  
नहीं रागियों की शरण मुझको जाना ॥  
बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना  
ये श्रद्धान मेरा है मेरु समाना,  
नहीं रागियों की शरण में है जाना ॥ टेक ॥

मेरे ज्ञान और ध्यान में बस तुम्हीं हो,  
अटल और श्रद्धान में बस तुम्हीं हो ।  
नहीं लाज गौरव, ना भय मुझको आना ।  
नहीं रागियों की शरण में है जाना ।  
बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना ॥१॥

तुम्हीं से मुझे मुक्तिमार्ग मिला है,  
रत्नत्रय का सुन्दर चमन ये खिला है।  
ना तीर्थकरों के, कुल को लजाना ।  
नहीं रागियों की शरण में है जाना ।  
बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना ॥२॥

मैं हूँ मात्र ज्ञायक ये अनुभव से जाना,  
तिहुँ लोक में बस उपादेय माना ।  
ये गुरुओं का ऋण है, मुझे जो चुकाना ।  
नहीं रागियों की शरण में है जाना ।

बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना ॥३॥

है आदर्श अकलंक गुरुवर हमारे,  
है निकलंक हम सबको प्राणों से प्यारे।

धर्म के लिये, जिनने मस्तक कटाया ।

नहीं जैन कुल को उन्होने लजाया  
उसी मार्ग पर हमको चलके दिखाना ।

नहीं रागियों की शरण में है जाना ।

बस एक वीतरागी को मस्तक झुकाना ॥४॥



## भव भव के दुखड़े हजार



तर्ज : इस दिल के टुकड़े

भव भव के दुखड़े हजार सहे,

कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥

गतियों में अकेला भ्रमता फिरा,

कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥टेक॥

शुभ कर्म उदय हो जाने से, मानव का जीवन पाया था ।

जीवन के थपेड़े सह न सका,

कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥१॥

मलमूत्र भरे उस बिस्तर पर, जीवन के वे दिन बीत गए ।  
पैरों के बल जब खड़ा हुआ,  
कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥२॥

अलमस्त जवानी पाते ही, मैं भूल गया सब अपनापन ।  
तरुणाई की मदहोशी में,  
कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥३॥

यौवन की हरियाली बीती, और शुष्क बुढ़ापा आत्म का  
काया का पतझड़ कूप हुआ,  
कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥४॥

झूठे विषयों में फंस करके, जीवन का तमाशा कर डाला  
था रत्न वही, कंकर बनके,  
कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥५॥



## भूल के अपना घर



भूल के अपना घर, जाने कितनों के घर, तुझको जाना पड़ा ॥

इस जहां में कई घर बनाये तूने,  
रिश्तेदारी सभी से निभाई तूने

जिनके थे तुम पिता, फिर उन्हीं को पिता, तुझे बनाना पड़ा ॥  
भूल के अपना घर, जाने कितनों के घर, तुझको जाना पड़ा ॥1॥

जो थी माता तेरी वो ही पत्नी बनी,  
पत्नी से फिर वो ही तेरी भगिनी बनी

रिश्ते करते रहे, हम बिछुड़ते रहे, ना ठिकाना मिला ॥

भूल के अपना घर, जाने कितनों के घर, तुझको जाना पड़ा ॥2॥

बनके थलचर तू सबलों से खाया गया,  
बन के नभचर तू जालों फँसाया गया

नक पशुओं के गम, देख कर ये सितम तुझको रोना पड़ा ॥

भूल के अपना घर, जाने कितनों के घर, तुझको जाना पड़ा ॥3॥

इस जहां की तो वधुऐं अनेकों वरीं,  
मुक्ती रानी न अब तक तेरे मन बसी

जिसने उसको वरा, इस जहां की धरा, पर ना आना पड़ा ॥

भूल के अपना घर, जाने कितनों के घर, तुझको जाना पड़ा ॥4॥



# मतवाले प्रभु गुण गाले

मतवाले प्रभु गुण गाले,  
 ओ वीर गुण गाले, तू अपनी जुबान से  
 तुझको जाना ही पड़ेगा इस जहां से ॥टेक ॥

भूल गया जो तूने वादा किया था  
 गाऊँगा गुण गाऊँगा  
 पूजा करूँगा तेरी साँझ और सवेरे  
 ध्याऊँगा तुझे ध्याऊँगा  
 खाकर झूला, मन में फूला, तू आगे को भूला  
 जग से जोड़ी, मूरख तूने तोड़ी, लगन भगवान से ॥तुझे...१॥

महल अटारी तेरी दौलत ये सारी  
 काम तेरे नहीं आएगी  
 की है भलाई तूने या की बुराई  
 साथ तेरे वो जाएगी  
 जैसा करले वैसा भरले, तू हृदय में धर ले  
 जैसा देगा, वहाँ वो मिलेगा, ये सुन ले तू ध्यान से ॥तुझे...२॥

कैसा अनाड़ी नहीं सोचा अगाड़ी,

अंत समय क्या होएगा  
खाता खुलेगा तेरे कर्मों का इक दिन,  
सुन-सुन के तू रोएगा  
पहले सोया, पीछे रोया, जो पाना था खोया  
कीनी देरी, नजर तूने फेरी, प्रभु के गुणगान से ॥तुझे...३॥



## ममता की पतवार ना तोड़ी



तर्ज : चांदी की दीवार न तोड़ी, प्यार

ममता की पतवार ना तोड़ी आखिर को दम तोड़ दिया  
इक अनजाने राही ने शिवपुर का मारग छोड़ दिया ॥

नर्क में जिसने भावना भायी मानुष तन को पाने की  
भेष दिगम्बर धारण करके मुक्ति पद को पाने की  
लेकिन देखो आज ये हालत ममता के दीवाने की  
चेतन होकर जड़ द्रव्यों से कैसे नाता जोड़ लिया ॥  
इक अनजाने राही ने शिवपुर का मारग छोड़ दिया ॥१॥

ममता के बन्धन मे बंध कर क्या युग युग तक सोना है  
मोह अरी का सचमुच इस पर हो गया जादू टोना है

चेतन क्या नरतन को पाकर अब भी यों ही खोना है  
मन का रथ क्यों शिवमारग से कुमारग पर मोड़ दिया ॥  
इक अनजाने राही ने शिवपुर का मारग छोड़ दिया ॥२॥

मत खोना दुनिया में आकर ये बस्ती अनजानी है  
जायेगा हर जाने वाला जग की रीति पुरानी है  
जीवन बन जाता यहां 'पंकज' सबकी एक कहानी है  
चेतन निज स्वरूप देखा तो दुख का दामन तोड़ दिया ॥  
इक अनजाने राही ने शिवपुर का मारग छोड़ दिया  
ममता की पतवार ना तोड़ी आखिर को दम तोड़ दिया ॥३॥



## ममता तू न गई मोरे



स्वर : चं मांगीलाल जी, कोलारस वाले

ममता तू न गई मोरे मन तें ॥

पाके केस जनम के साथी, लाज गई लोकनतें।  
तन थाके कर कंपन लागे, ज्योति गई नैननतें ॥तू न...1॥

सरवन बचन न सुनत काहुके बल गये सब इंद्रिनतें ।

टूटे दसन बचन नहिं आवत सोभा गई मुखनतें ॥तून...2॥

कफ पित बात कंठपर बैठे सुतहिं बुलावत करतें ।  
भाइ-बंधु सब परम पियारे नारि निकारत घरतें ॥तून...3॥

जैसे ससि-मंडल बिच स्याही छुटै न कोटि जतनतें ।  
तुलसीदास बलि जाउँ चरनते लोभ पराये धनतें ॥तून...4॥



## माया में फँसे इंसान



तर्ज : ए मेरे दिले नादान

माया में फँसे इंसान, विषयों में ना बह जाना  
चिन्मय चैतन्य निधि को भूल ना पछताना ॥

तन धन वैभव परिजन, तेरे काम ना आयेंगे,  
संयोग सभी नश्वर, तेरे साथ ना जायेंगे,  
तू अजर अमर ध्रुव है, यह भाव सदा लाना ॥  
माया में फँसे इंसान, विषयों में ना बह जाना ॥१॥

पर द्रव्यों में रमकर, अपने को भूल रहा,

माया अरु ममता में तू प्रतिक्षण फूल रहा,  
अनमोल तेरा जीवन, गफ़लत में ना खो जाना ॥  
माया में फ़ंसे इंसान, विषयों में ना बह जाना ॥2॥

चैतन्य सदन भासी, तू ज्ञान दिवाकर है,  
है सहज शुद्ध भगवन, तू सुख का सागर है,  
अपने को जरा पहिचान, विषयों में ना खो जाना ॥  
माया में फ़ंसे इंसान, विषयों में ना बह जाना ॥3॥

लख चौरासी भ्रमते, दुर्लभ नरतन पाया,  
जिनश्रुत जिनदेव शरण, पुण्योदय से पाया,  
आतम अनुभूति बिना रह जाये ना पछताना ॥  
माया में फ़ंसे इंसान, विषयों में ना बह जाना ॥4॥



## मितवा रे सुवरण अवसर



तर्ज :- बन्ना रे बागा में झूला डाल्या

मितवा रे सुवरण अवसर आयो - २  
म्हारा हिवड़ा रो, म्हारा जिवड़ा रो,

म्हारा चेतन रो चमक्यो तारो... म्हारा वीर भला सा ॥टेक ॥

साधर्मी रे जिन मंदिर में चाला - २  
म्हारा जिवड़ा रो, म्हारा ज्ञान रो,  
म्हारा चेतनरो चमक्यो तारो, म्हारा वीर भला सा ॥१॥

साधर्मी रे जिनशासन है प्यारो - २  
दश धर्मा रो, छः द्रव्या रो,  
सात तत्त्वा रो वर्णन सारो, म्हारा वीर भला सा ॥२॥

मितवा रे जन्म महोत्सव आयो - २  
मैं सच में, मैं स्व में,  
मैं निज को निज से पावां, म्हारा वीर भला सा ॥३॥



## मुझे है स्वामी उस बल



मुझे है स्वामी उस बल की दरकार ।  
जिस बल को पाकर के स्वामी, आप हुए भव पार ॥टेक ॥

अड़ी खड़ी हों अमिट अड़चनें, आड़ी अटल अपार ।

तो भी कभी निराश निगोड़ी, फटक न पावे द्वार ॥मुझे है...1॥

सारा ही संसार करे यदि, मुझसे दुर्व्यवहार ।  
हटे न मेरी सत्य मार्ग से, श्रद्धा किसी प्रकार ॥मुझे है...2॥

धन-वैभव की जिस आँधी से, अस्थिर सब संसार ।  
उससे भी न जरा डिग पाऊँ, मन बन जाए पहाड़ ॥मुझे है...3॥

असफलता की चोटों से नहीं, मन में पड़े दरार ।  
अधिक अधिक उत्साहित होऊँ, मानूँ कभी न हार ॥मुझे है...4॥

दुख दरिद्रता रोगादिक से, तन होवे बेकार ।  
तो भी कभी निरुद्यम हो नहीं, बैठूँ जगताधार ॥मुझे है...5॥

देवांगना खड़ीं हों सन्मुख, करती अंग विकार ।  
सेठ सुदर्शन सा मैं होऊँ, लगें नहीं अतिचार ॥मुझे है...6॥

जिसके आगे तन-बल धन-बल, तृणवत तुच्छ असार ।  
पाऊँ प्रभु आत्मबल ऐसा, महामहिम सुखकार ॥मुझे है...7॥





# मुसाफिर क्यों पड़ा सोता

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता भरोसा है न इक पल का,  
दमादम बज रहा डंका तमाशा है चलाचल का ॥टेक॥

सुबह जो तख्तशाही पर बड़े सजधज के बैठे थे,  
दुपहरे वक्त में उनका हुआ है वास जंगल का ॥१॥

कहाँ है राम और लक्ष्मण कहाँ रावण से बलधारी ,  
कहाँ हनुमान से योद्धा पता जिनके न था बल का ॥२॥

उन्हें तो काल ने खाया, तुझे भी काल खायेगा,  
सफर सामान बढ़ा ना तू, बना ले बोझ को हलका ॥३॥

जरा सी जिन्दगी पर तू, न इतना मान कर मूरख,  
यह जीवन चंद दिन का है कि जैसे बुद्बुदा जल का ॥४॥

नसीहत मान ले 'ज्योति' उमर पल-पल में कम होती ,  
जो करना आज ही कर ले, भरोसा कुछ न कर कल का ॥  
मुसाफिर क्यों पड़ा सोता भरोसा है न इक पल का,  
दमादम बज रहा डंका तमाशा है चलाचल का ॥५॥



## मेरा आज तलक प्रभु

मेरा आज तलक प्रभु करुणापति,  
थारे चरणों में जियरा गया ही नहीं ।  
मैं तो मोह की नींद में सोता रहा,  
मुझे तत्त्वों का दरस भया ही नहीं ॥टेक ॥

मैंने आतम बुद्धि बिसार दई,  
और ज्ञान की ज्योति बिगाड़ लई ।  
मुझे कर्मों ने ज्यों त्यों फंसा ही लिया,  
थारे चरणों में आन दिया ही नहीं ॥1॥

प्रभु नरकों में दुःख मैंने सहे,  
नहीं जायें प्रभु अब मुझसे कहे ।  
मुझे छेदन भेदन सहना पड़ा,  
और खाने को अन्न मिला ही नहीं ॥2॥

मैं तो पशुओं में जाकर के पैदा हुआ,  
मेरा और भी दुःख वहाँ ज्यादा हुआ ।  
किसी माँस के भक्षी ने आन हता,

मुझ दीन को जीने दिया ही नहीं ॥३॥

मैं तो स्वर्गो में जाकर देव हुआ,  
मेरे दुःख का वहाँ भी न छेद हुआ,  
मैं तो आयु को यूँ ही बिताता रहा,  
मैंने संयम भार लिया ही नहीं ॥४॥

प्रभु उत्तम नरभव मैंने लहा,  
और निशादिन विषयों में लिप्त रहा ।  
माता पिता प्रियजन ने भी मुझे,  
कभी चैन तो लेने दिया ही नहीं ॥५॥

मैंने नाहक जीवों का घात किया,  
और पर धन छलकर खोश लिया ।  
मेरी औरों की नारी पे चाह रही,  
मैंने सत तो भाषण दिया ही नहीं ॥६॥

मैं तो मोह की नींद में सोता रहा,  
मैंने आत्म दरस किया नहीं ।  
मैं तो क्रोध की ज्वाला में भस्म रहा,  
मैंने शान्ति सुधा रस पिया ही नहीं ॥७॥

जिनवर प्रभु अब सुनिये तो जरा,  
मेरा पापों से डरता है जियरा ।  
खड़ा थारे चरणों में ये दास 'चमन',  
मैंने और ठिकाना लिया ही नहीं ॥८॥



## मेरे शाश्वत शरण



(कवि : कविश्री मनोहरलाल वर्णी 'सहजानंद')  
तर्ज़: तुमसे लागी लगन

मेरे शाश्वत-शरण, सत्य-तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥टेक॥

ज्ञान से ज्ञान में ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का एकदम विलय हो ।  
भ्रांति का नाश हो, शांति का वास हो, ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥१॥

सर्वगतियों में रह गति से न्यारे, सर्वभावों में रह उनसे न्यारे ।  
सर्वगत आत्मगत, रत न, नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥२॥

सिद्धि जिनने भी अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।

मेरे संकटहरण, ज्ञान-दर्शन-चरण, ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥३॥

देह-कर्मादि सब जग से न्यारे, गुण व पर्यय के भेदों से पारे ।  
नित्य अन्तःअचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयों में नित श्रेय तू है ।  
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे ।  
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ॥५॥



## मैं ऐसा देहरा बनाऊं



मैं ऐसा देहरा बनाऊं, ताकै तीन रतन मुक्ता लगाऊं ॥टेक॥

निज प्रदेस की भीत रचाऊं, समता कली धुलाऊं ।  
चिदानन्दकी मूरति थापूं लखिलखि आनंद पाऊं ॥  
मैं ऐसा देहरा बनाऊं ॥१॥

कर्म किजोड़ा तुरत बुहारूं, चादर दया बिछाऊं ।

क्षमा द्रव्यसौं पूजा करिकै, अजपा गान गवाऊं ॥  
मैं ऐसा देहरा बनाऊं ॥२॥

अनहद बाजे बजे अनौखे, और कछू नहिं चाऊं ।  
'बुधजन' यामैं बसौ निरंतर, याही वर मैं पाऊं ॥  
मैं ऐसा देहरा बनाऊं ॥३॥

देहरा : मंदिर



## मैं क्या माँगू भगवान



स्वर : पं मांगीलाल जी, कोलारस वाले

मैं क्या माँगू भगवान, कि तुमसे क्या माँगू ?  
मेरे रोम-रोम में बस जाओ भगवान,  
और मैं क्या माँगू ॥टेक ॥

धन न माँगू भगवन्, मान न माँगू  
झूठे जग की शान न माँगू ।  
देना हो तो दे दो भगवन्,  
जपने को जिननाम, और मैं क्या माँगू ॥१॥

हे प्रभु तुम तो अन्तर्यामी,  
पार करो ये नाव हमारी ।  
दया करो हे दया सिंधु भगवान्,  
करो कल्याण, और मैं क्या माँगूँ ॥२॥

तुम सारे जग के रखवारे,  
तुम हो सबके जाननहारे ।  
चरणों में रहे ध्यान प्रभुजी,  
दे ऐसा वरदान, और मैं क्या माँगूँ ॥३॥



## मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं



मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं ॥

मैं हूं अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं ।  
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥

मैं रंग-राग से भिन्न भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूं ।  
मैं हूं अखंड चैतन्य-पिण्ड, निज-रस में रमने वाला हूं ॥

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता, मुझमें पर का कुछ का काम नहीं ।  
मैं मुझमें रमने वाला हूं, पर में मेरा विश्राम नहीं ॥

मैं शुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परिणति से अप्रभावी हूं ।  
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं ॥



## मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी हूं



मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी हूं, मैं सहजानन्द स्वरूपी हूं ।

हूं ज्ञान मात्र परभाव शून्य, हूं सहज ज्ञान धन स्वयं पूर्ण ।  
हूं सत्य सहज आनन्द धाम, मैं सहजानन्द स्वरूपी हूं ॥

हूं खुद का ही कर्ता भोक्ता, पर में मेरा कुछ काम नहीं ।  
पर का न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजानन्द स्वरूपी हूं ॥

आओ उतरो रमलो निज में, निज में निज की दुविधा ही क्या ।  
है अनुभव रस से सहज प्राप्त, मैं सहजानन्द स्वरूपी हूं ॥





# मैं राजा तिहुं लोक का

मैं राजा तिहुं लोक का और चेतन मेरो नाम ।

इन विषयन के कारणे जी नहीं मुझे आराम ॥

मिथ्या मोह उदय लावे और मात तात सुत भ्रात  
ये सब स्वारथ का सगा कोई न आवै काम ॥मैं...१॥

पुद्गल धर्म अधर्म है और काल गगन जड़ धाम  
मैं चिन्मूरत आत्मा कैसे मिले मिलाप ॥मैं...२॥

सुर नर पशु और नारकी चहुं गति दुःख अपार  
लाख चौरासी योन में बहुविध संग कराय ॥मैं...३॥

अलख निरंजन नाम है और मोक्ष हमारा धाम  
चन्द्र वदन ऐसे नवे निश्चय शुद्ध परिणाम ॥मैं...४॥



# मैनासुंदरी कहे पिता से



मैना सुंदरी कहे पिता से भाग्य उदय जब आएगा ।  
कोड़ी पति जो दिया आपने, काम-देव बन जाएगा ॥

बोले पिता इक दिन बेटी से, किसके भाग्य का खाती हो  
सब-कुछ मैंने दिया है तुम, क्या मेरे अवगुण गाती हो ॥

मैना बोली मीठे बैना, सच्ची बात बताती हूँ ।

जो सत्कर्म किए थे मैंने उसका ही फल पाती हूँ ।  
अपने सत्कर्मों के बदले, हर दुख सुख बन जाएगा ॥१... मैना ॥

कोड़ी पिता ने दंभी होकर, कोड़ी का रोगी बुलवाया ।  
प्राणों से प्यारी मैना का फिर, ब्याह उसी से रचवाया ।  
सागर रोया, रो दी नगरिया, पर्वत का दिल थर्या ॥  
आई विदाई की बेला तो, बाप का दिल भी भर आया ।  
मेरे कहानी जो भी सुनेगा, नफरत ही कर पाएगा ॥२... मैना ॥

तुमने मुझको दुख में भेजा, अपना फर्ज निभाया है ।  
कल क्या होगा, किसने जाना, कर्म बली कहलाया है ॥

इन कर्मों की लीला न्यारी, सबको नाच नचाते हैं ।  
शाम को राजा बनने वाले, सुबह को ही बन जाते हैं ।  
मेरी किस्मत सुख होगा तो, दुख भी सुख हो जाएगा ॥३ ... मैना ॥



## मोको कहाँ ढूँढें बन्दे



मोको कहाँ तू ढूँढें रे बन्दे,  
मैं तो तेरे पास हूँ ।

ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकांत निवास में ।  
ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काबे कैलाश में ॥

ना मैं जप में, ना मैं तप में, ना मैं व्रत उपास में ।  
ना मैं क्रिया करम में रहता, ना ही योग संन्यास में ॥

नहीं प्राण में नहीं पिंड में, ना ब्रह्माण्ड आकाश में ।  
ना मैं त्रिकुटी भवर में, सब स्वांसो के स्वास में ॥

खोजी होए तुरत मिल जाऊं एक पल की ही तलाश में ।  
कहत 'कबीरा' सुन भाई साधो, मैं तो हूँ विश्वास में ॥

**अर्थ :** Where do you search me? I am with you

Not in pilgrimage, nor in icons, Neither in solitudes

Not in temples, nor in mosques Neither in Kaba nor in Kailash

I am with you o man, I am with you

Not in prayers, nor in meditation, Neither in fasting

Not in yogic exercises, Neither in renunciation  
Neither in the vital force nor in the body, Not even in the ethereal space  
Neither in the womb of Nature, Not in the breath of the breath  
Seek earnestly and discover, In but a moment of search  
Says Kabir, Listen with care, Where your faith is, I am there.



## मोक्ष पद मिलता है धीरे धीरे

मोक्ष पद मिलता है धीरे धीरे,  
मंदिर जाऊं दर्शन पाऊं, प्रभु चरणों में ध्यान लगाऊं।  
लगन बढ़ती है धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥

ईर्ष्या छोड़ूं, समता धारूं, प्रभु चरणों में सब कुछ वारूं।  
कषाय नशती है धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥

ममता छोड़ूं, सत्संग पाऊं, मूल गुणों को मैं अपनाऊं।  
ज्ञान बढ़ता है धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥

इच्छायें रोकूं, संयम धारूं, बारह भावना मन में विचारूं।  
तपस्या बढ़ती है धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥

परिग्रह छोड़ूं, दीक्षा धारूं, सोहं सोहं मन में विचारूं।  
करमन झरते हैं धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥

सब जीवों से क्षमा कराऊं, केवल ज्ञान की ज्योति जगाऊं।  
शिवपुर मैं जाऊं धीरे धीरे॥ मोक्ष पद...॥



## मोह की महिमा देखो



मोह की महिमा देखो क्या तेरे मन में समाई,  
अपनी ही महिमा भुलाई तूने अपनी ही महिमा ना आई

काहे अरिहन्तो के कुल को लजाया,  
काहे जिनवाणी माँ का कहना भुलाया ।  
काहे मुनिराजों की सीख ना मानी,  
सिद्ध समान शक्ति, हरकत बचकानी,  
अपने ही हाथों अपने घर में ही आग लगाई ॥  
अपनी ही महिमा...

समवसरण में जिनवर, इन्द्रों ने गाया,  
सौ सौ इन्द्रों के मध्य सबको समझाया ।  
अपनी शुद्धात्मा को भगवन बताया,  
भव्यों ने समझा अंदर अनुभव में आया,

जानो और देखो चेतन इसमें ही तेरी भलाई ॥  
अपनी ही महिमा....

काहे अपनाये तूने माटी के ढेले,  
कहता तु सोना चांदी, सिक्के व धेले ।  
पुद्गल अचेतन से प्रीती बढ़ाई,  
प्रभुता को भूला पामर कृति बनाई,  
रघुकुल के राम तूने काहे को रीति गमाई ॥  
अपनी ही महिमा...

आतम आराधना का आतम ही मंच है,  
जिसमें परभावों का ना रंच प्रपंच है ।  
कोई ना स्वामी जिसमें कोई ना चाकर,  
बंसी बजैया तूही तेरा नटनागर,  
जिसने भी मुक्ति पाई अस्ति की मस्ती में पाई ॥  
अपनी ही महिमा....



मोहे भावे न भैया थारो देश



मोहे भावे न भैया थारो देश, रहूंगा मैं तो निज घर में ॥

मोहे न भावे यह महल अटारी, झूठी लागे मोहे दुनिया सारी ।  
मोहे भावे नगन सुभेष, रहूंगा मैं तो निज घर में ॥

हमें यहां अच्छा नहीं लगता, यहां हमारा कोई न दिखता ।  
मोहे लागे यहां परदेस, रहूंगा मैं तो निज घर में ॥

श्रद्धा ज्ञान चारित्र निवासा, अनंत गुण परिवार हमारा ।  
मैं तो जाऊंगा सुख के धाम, रहूंगा मैं तो निज घर में ॥

कब पाऊंगा निज में थिरता, मैं तो इसके लिये तरसता ।  
मैं तो धारूं दिगम्बर वेष, रहूंगा मैं तो निज घर में ॥



## म्हारा चेतन ज्ञानी घणो



तर्ज : राग - मांड, महाराजा स्वामी

म्हारा चेतन ज्ञानी, घणो ही भरमायो,  
अब घर आय रे  
निगोद वासतै बसकै आया रे,

जाँका रे दुख रो न पार ॥म्हारा...टेक॥

कोई एक पुण्य संजोग तेरे, नरभव पायो छै आय,  
अबकै भी चेत नहीं रे, गहरो गोत्या खाय ॥म्हारा...१॥

दान शील तप भावना रे, यह धारो उर मांहि,  
शिवपुर मारग तैयार है रे, श्री गुरु दिया रे बताय ॥म्हारा...२॥

घर तो भूल्यो आपणो रे, तू ढूँढे पर रूप,  
कोल्हूँ केरा बैल जूँरे, दुख पावै बहु कूप ॥म्हारा...३॥

जिनवाणी रुचि से सुणो रे, 'संपत' समझो भाव,  
वाणी के परसाद सै रे, सीधो शिवपुर जाय ॥म्हारा...३॥



## या संसार में कोई सुखी

या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आता ॥टेक॥

कोई दुखिया निर्धनी, दीन-वचन मुख बोले ।  
भ्रमत फिरे परदेशन में, सुख की चाह में डोले ॥



या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥१॥

दौलत के कोठार भरे हैं, तन में रोग समाये  
निशदिन कड़वी खात दवाई, कहो करत नहिं काया ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥२॥

तन निरोग अरु धन बहुतेरा, फिर भी सुख को रोता  
पूजत फिरे कुदेव जगत के, फिर भी पुत्र नहीं होता ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥३॥

तन निरोग धन पुत्र पाय के, फिर भी रहा दुखारी,  
पुत्र नहीं आज्ञा को माने, घर में कर्कशा नारी ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥४॥

तन धन और सुलक्षण नारी, सुत है आज्ञाकारी ।  
फिर भी रहा दुखिया जगत में, भयो न छत्री धारी ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥५॥

चक्रवर्ती भए छत्रपति भए, फिर भी नारी संग मोहे ।  
आशा तृष्णा खुटी न जिनकी, फिर भी सुख को रोवे ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥६॥

'जगनलाल' वही है सुखिया, जो इच्छा का त्यागी,  
राग द्वेष तजि सकाल परिग्रह, भये परम वैरागी ॥  
या संसार में कोई सुखी नजर नहीं आया ॥७॥



## ये प्रण है हमारा



तर्ज :- ये परदा हटा दो, जरा मुखड़ा

ये प्रण है हमारा, ना जन्मे दुबारा,  
क्योंकि विषयों में, आनन्द हमको आता नहीं ।  
अरे! इस झूठे जग में, रहना हमको भाता नहीं ॥टेक॥

जिन-जिन संयोगों में हमने, अपनापन दिखलाया ।  
भ्रमबुद्धि से हमने खुद, अपना संसार बढ़ाया ।  
भव-भव से हो छुटकारा, संकल्प हमारा ॥१ क्योंकि...॥

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, मैं इस जग से न्यारा ।  
छः द्रव्यों से भिन्न चाल है, मेरा रूप निराला ।  
चैतन्य प्रभु हमारा, जब से हमने निहारा ॥२ क्योंकि...॥

धन्य धन्य है कुन्दकुन्द ने, समयसार दिखलाया ।  
कहान गुरु है उपकारी, हमको भगवान बताया ।  
निर्ग्रन्थ धर्म है प्यारा, लेगें उसका सहारा ॥३ क्योंकि... ॥



## ये शाश्वत सुख का प्याला



ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥

ध्रुव अखंड है, आनंद कंद है, शुद्ध बुद्ध चैतन्य पिण्ड है  
ध्रुव की फ़ेरो माला ॥कोई.... ॥

मंगलमय है, मंगलकारी, सत चित आनंद का है धारी  
ध्रुव का हो उजियारा ॥कोई.... ॥

ध्रुव का रस तो ज्ञानी पावे, जन्म मरण का दुःख मिटावे  
ध्रुव का धाम निराला ॥कोई.... ॥

ध्रुव की धूनी मुनि रमावे, ध्रुव के आनंद में रम जावे  
ध्रुव का स्वाद निराला ॥कोई.... ॥

ध्रुव के रस में हम रम जावें, अपूर्व अवसर कब यह पावें  
ध्रुव का हो मतवाला ॥कोई....॥



## ये सर्वसृष्टि है नाट्यशाला



ये सर्वसृष्टि है नाट्यशाला, ये कर्म अभिनव दिखा रहा है ।  
मनुष्य जीवन का बना के नाटक, मनुष्य को ही नचा रहा है ॥टेक ॥

छहों ऋतु और चारों गति में, बने हैं जिनके ये दृश्य सारे ।  
जन्म मरण की लगाई फेरी, जो आ रहा है वो जा रहा है ॥ये...१॥

कभी उदासी कभी विलासी, कभी है डाकू कभी है साधु ।  
किसी का जीवन बिगड़ रहा है, किसी का जीवन सुधर रहा है ॥  
ये...२॥

हँसाये सुख के सुना के गाने, रुलाये दुख के सुना के गाने ।  
मगर ये कोई नहीं समझता, कि कर्म गति ये बहा रहा है ॥ये...३॥

विचित्र नाटक है जिंदगी का, विचित्र है इसके दृश्य तीन ।  
बना के नाटक अवस्थाओं का, उमर का पर्दा गिरा रहा है ॥ये...४॥



## लुटेरे बहुत देखे हैं

लुटेरे बहुत देखे हैं मगर, तुमसा नहीं देखा ।  
सताते चोट दे-देकर मगर, रोने नहीं देते ॥टेक ॥

अजब रिश्ते लुटेरों के, अजब नाते लुटेरों के ।  
कोई भाई कोई बेटे, कोई माँ-बाप बन बैठे ॥  
लुटेरे बहुत देखे हैं मगर तुमसा नहीं देखा ॥१॥

किए गर प्रेम पत्नी से जवानी ठगनी ने लूटा ।  
समझने भी न पाया था की ठगने आ गया बेटा ॥  
लुटेरे बहुत देखे हैं मगर तुमसा नहीं देखा ॥२॥

ये टूटी सांस की माला, लुटेरे सब ये रोते हैं ।  
ये क्यूँ रोते हैं हम इनको भली-भाँति समझते हैं ॥  
मैं कर्जदार हूँ इनका ये साहूकार बन बैठे ।  
लुटेरे बहुत देखे हैं मगर तुमसा नहीं देखा ॥३॥

लगा ले प्रेम आतम से, ये जीवन जाने वाला है ।  
ये हीरा सा जनम तेरा, न फिर ये हाथ आएगा ॥

जिन्होने आत्मा ध्याया वो सिद्धालय में बैठे हैं ।  
लुटेरे बहुत देखे हैं मगर तुमसा नहीं देखा ॥४॥



## विराजै रामायण घटमाहिं

विराजै 'रामायण' घटमाहिं ।  
मरमी होय मरम सो जाने, मूरख मानै नाहि ॥टेक॥



आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन', 'सीता' सुमति समेत ।  
शुभोपयोग 'वानरदल' मंडित, वर विवेक 'रण खेत' ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥१॥

ध्यान 'धनुष टंकार' शोर सुनि, गई विषय दिति भाग ।  
भई भस्म मिथ्यामत 'लंका', उठी धारणा आग ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥२॥

जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल', लरे निकांछित सूर ।  
जूझे राग-द्वेष सेनापति, संसै 'गढ़' चकचूर ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥३॥

बिलखत 'कुम्भकरण' भव विभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव' ।  
थकित उदार वीर 'महिरावण', सेतुबध सम भाव ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥४॥

मूर्छित 'मंदोदरी' दुराशा, सजग चरन 'हनुमान' ।  
घटी चतुर्गति परणति 'सेना', छुटे छपक गण 'बान' ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥५॥

निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन', उदय 'विभीषण' दान ।  
फिरै 'कबंध' मही 'रावण' की, प्राण भाव शिरहीन ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥६॥

इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज 'संग्राम' ।  
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम ॥  
विराजै 'रामायण' घटमाहिं ॥७॥



## वीर जिनेश्वर अब तो मुझको

(तर्ज :- नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे द्वंद्व रे)



वीर जिनेश्वर अब तो मुझको मुक्तिमार्ग बताओ,  
निज को भूल बहुत दुःख पाये, अब मत देर लगावो ॥१॥

जाना नहीं आपको मैंने, पंच पाप में लीन हुआ,  
आत्म हित में रहा आलसी, विषयन मांहि प्रवीण हुआ,  
छूटे विषय, कषाय प्रभो, ऐसा पुरुषार्थ जगावो ॥२॥

पर में इष्ट, अनिष्ट मानकर, हर्ष विषाद सु माना,  
पर निरपेक्ष सहज आनंदमय, ज्ञायक तत्त्व ना जाना,  
महिमावंत परम ज्ञायक, प्रभु अब मुझको दरसावो ॥३॥

आश्रव-अंध है दुःख के कारण, संवर-निर्जरा सुख के,  
चतुर्गति दुःखरूप अवस्था, सुख मुक्ति में प्रगटे,  
अब तो स्वामी शिवपथ में, मुझको भी शीघ्र लगावो ॥४॥

ऐसी स्तुति करते-करते, इक दिन मन में आई,  
कैसे अन्तस्तत्त्व आत्मन, बाहर देख दिखाई,  
प्रभो आपकी मुद्रा कहती, अन्तर्दृष्टि लगावो ॥५॥

मुक्ति की सच्ची युक्ति पा, अपनी और निहारा,  
प्रभुसी प्रभुता निज में लखकर, आनन्द हुआ अपारा,  
जागी यह भावना आत्मन, निज में ही रम जावो ॥६॥



## वीर भज ले रे भाया

वीर भज ले रे भाया वीर भज ले  
(जरा सा) -३ कहना म्हारा मान ले तू वीर भज ले



मुळी बांधे आयो जगत में, हाथ पसारे जासी  
और जरा धरम री कर ले कमाई, या ही आडे आसी ॥जरा-१॥

ज्वानी वी अकडाई में तू टेढो टेढो चाले  
पर तने इतनी नई मालुम रे, काई होसी काले ॥जरा-२॥

मोह माया में भूल रहा तू, कर रहा थारी म्हारी  
अरे ज्ञान धरम की बात करे तो, लगती तुझको खारी ॥जरा-३॥

छोटी मोटी बनी हवेली यहीं पडी रह जासी  
और दो गज कफ़न को टुकडो तेरी, आखिर साथ निभासी ॥  
जरा-४॥

तू मेहमान है चार दिनां का, मत ना भूले भाई

काल के काजी आएँगे तब, कंठ पकड़ ले जासी ॥जरा-५॥

हरख हरख कर कहे 'हरखचंद', ये मौका नहीं आसी  
प्रभू भजन बिन अरे बावले, तू पीछे पछतासी ॥जरा-६॥



## शुद्धात्मा का श्रद्धान



शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा, निज आत्मा तब भगवान होगा  
निज में निज, पर में पर भासक, सम्यकज्ञान होगा ॥

नव तत्वों में छुपी हुई जो, ज्योति उसे प्रगटाएँगे  
पर्यायों से पार त्रिकाली, ध्रुव को लक्ष्य बनाएँगे  
शुद्ध चिदानंद रसपान होगा,

निज आत्मा तब भगवान होगा ॥१... शुद्धात्मा ॥

निज चैतन्य महा हिमगिरि से, परिणति घन टकराएँगे  
शुद्ध अतीन्द्रिय आनंद रसमय, अमृत जल बरसायेंगे  
मोह महामल प्रक्षाल होगा,

निज आत्मा तब भगवान होगा ॥२... शुद्धात्मा ॥

आत्मा के उपवन में, रत्नत्रय पुष्प खिलायेंगे  
स्वानुभूति की सौरभ से, निज नंदन वन महकायेंगे  
संयम से सुरभित उद्घान होगा,  
निज आत्मा तब भगवान होगा ॥३... शुद्धात्मा ॥



## संसार में सुख सर्वदा



संसार में सुख सर्वदा, काहू को ना दीखे ।  
कोई तन दुखी, कोई मन दुखी, कोई धन दुखी दीखे ॥टेक ॥

कोई दुखी औलाद बिन, कोई का सुत जुआरी ।  
कोई की कुलटा स्त्री, कोई को बीमारी ।  
खाते दवा नित वैद्य की, नहीं फायदा दीखे ॥कोई...१॥

कोई रात दिन मेहनत करे, नहीं पेट भरता है ।  
तन पर नहीं है वस्त्र, नंगे पैर फिरता है ।  
कोई किसी धनवान को, तृष्णा अधिक दीखे ॥कोई...२॥

कोई हुकूमत का दुखी, कोई भूखा फिरता है ।  
कोई किसी की संपदा को, देख जलता है ।

परधन हरे ठग, चोर, डाकू, जेल में दीखे ॥कोई...३॥

बहु कुञ्ज औँखें अंग, तन से हीन होते हैं ।  
गुंगे व बहरे तोतले, सब कुछ सहते हैं ।  
हो जाएँ पराधीन, जिन्हें नेत्रों से ना दीखे ॥कोई...४॥

दुखिया दुखी संसार में, सुखिया नहीं पाते ।  
सुखिया वही संसार में, घर बार तज जाते ।  
पीछी-कमण्डल के सिवा, परिग्रह ना दीखे ॥कोई...५॥



## सजधज के जिस दिन

सजधज के जिस दिन मौत की शहजादी आयेगी,  
ना सोना काम आयेगा, ना चांदी आयेगी ॥



छोटा सा तू, कितने बड़े अरमान हैं तेरे,  
मिट्टी का तू सोने के सब सामान हैं तेरे,  
मिट्टी की काया मिट्टी में जिस दिन समायेगी ।  
ना सोना काम आयेगा, ना चांदी आयेगी ॥

कोठी वही बंगला वही बगिया रहे वही,  
पिंजरा वही, पंछी वही है बागवां वही,  
ये तन का चोला आत्मा जब छोड जायेगी ।  
ना सोना काम आयेगा, ना चांदी आयेगी ॥

पर खोल के पंछी तू पिंजरा तोड के उड जा,  
माया-महल के सारे बंधन छोड के उड जा,  
धडकन में जिस दिन मौत तेरी गुनगुनायेगी ।  
ना सोना काम आयेगा, ना चांदी आयेगी ॥



## समकित सुंदर शांति अपार



तर्ज : पतझड़ सावन बसंत बहार

समकित सुंदर शांति अपार  
अल्प समय में लाखों बार - 3  
पंच परमपद भाव का, समयसार का

अनुभव होवे... आत्म भासे  
हर गुण ताली बजाए  
आत्म अनुभव फिर-फिर होवे  
हरएक क्षण में बार-बार... बार-बार ॥समकित...१॥

इंद्र-धनुष सा... जीवन सारा  
तत्त्व समझ ले चेतन प्यारा  
जैन धर्म है जग में न्यारा  
निज में भव ले बेशुमार... बेशुमार ॥समकित...२॥

प्रभु मिले कब... चेतन तरसे  
मोह के फंदे में आतप तड़पे  
स्वयंसाध्य हो, वह साधन से  
जान लो निज को अबकी बार, एक बार ॥समकित...३॥



## समझ आत्मा के स्वरूप को



समझ आत्मा के स्वरूप को, अगर मुक्तिपद पाना रे ।  
इसके जाने बिना किसी का, होगा नहीं ठिकाना रे ॥टेक॥

देख कभी खुद के समुद्र को, क्यों सरिता पर फूला रे ।  
मोती की पहचान नहीं, इसलिए सीप पर झूला रे ।  
निरख आत्मा की दृष्टि को, यह क्या दशा तुम्हारी है ।  
कंचन मालिक, आज काँच के खातिर बना भिखारी है ।

निधि तुम्हारी पास तुम्हारे, कहीं न बाहर जाना रे ॥इसके...१॥

हूँ स्वतंत्र स्वाधीन सदा से, फिर क्यों डरने वाला रे ।  
कोई भी पर द्रव्य किसी का, अहित न करने वाला रे ।  
समझ बिन ज्ञायक स्वभाव ये, डगमग नाव तुम्हारी है ।  
अपना हे कर रहा अहित तू, करके भाव भिखारी है ।  
इस कारण से फिरा अभी तक, धार अनेकों बाना रे ॥इसके...२॥

अब जो हुआ सो चेतो तुम, निज में निश्चय आने दो ।  
अपनी भूल समझ अपने से, जड़ को व्यर्थ न ताने दो ।  
तुम्हें अशुभ शुभ छोड़ दोनों के आगे बढ़ना रे ।  
परंपरा के पद चिन्हों से, तुम्हें कमर कस लड़ना रे ।  
आत्म जागरण तभी सरस हो सकता अगर यह ठाना रे ॥इसके...३॥



## समझ मन स्वारथ का संसार

समझ मन स्वारथ का संसार ॥टेक ॥



हरे वृक्ष पर पक्षी बैठा, गावे राग मल्हार ।  
सूखा वृक्ष गयो उड पक्षी, तजकर उनमें प्यार ॥

## समझ मन स्वारथ का संसार ॥१॥

बैल वही मालिक घर आवत, तावत बांधो द्वार ।  
वृद्ध भयो तब नेह न कीन्हो, दीनो तुरत बिसार ॥  
समझ मन स्वारथ का संसार ॥२॥

पुत्र कमाऊ सब घर चाहे, पानी पीवे वार ।  
भयो नखटू दुर दुर पर पर, होवत बारंबार ॥  
समझ मन स्वारथ का संसार ॥३॥

ताल पाल पर डेरा कीनो, सारस नीर निहार ।  
सूखा नीर ताल को तज गए, उड गए पंख पसार ॥  
समझ मन स्वारथ का संसार ॥४॥

जब तक स्वारथ सधे तभी तक, अपना सब परिवार ।  
नातर बात न पूछे कोई, सब बिछड़े संग छार ॥  
समझ मन स्वारथ का संसार ॥५॥

स्वारथ तज जिनगृह परमारथ, किया जगत उपकार ।  
'ज्योति' ऐसे अमर देव के, गुण चिंते हर बार ॥  
समझ मन स्वारथ का संसार ॥६॥





तर्ज़ : तैर्णव जन तो तेने कहिये

# सहजानन्दी शुद्ध स्वभावी

सहजानन्दी शुद्ध स्वभावी, अविनाशी मैं आत्मस्वरूप ।  
ज्ञानानन्दी पूर्ण निराकुल, सदा प्रकाशित मेरा रूप ॥टेक ॥

स्व पर प्रकाशी ज्ञान हमारा, चिदानन्द घन प्राण हमारा ।  
स्वयं ज्योति सुखधाम हमारा, रहे अटल यह ध्यान हमारा ॥१॥

देह मरे से मैं नहि मरता, अजर अमर हूँ आत्मस्वरूप ।  
देव हमारे श्री अरहन्त, गुरु हमारे निर्गीथ सन्त ॥२॥

निज की शरणा लेकर हम भी प्रकट करें परमात्म रूप ।  
सप्त तत्त्व का निर्णय कर ले, स्वपर भेदविज्ञान करले ॥३॥

निज स्वभाव दृष्टि में धर ले, राग-द्वेष सब ही परिहर लें ।  
बस अभेद में तन्मय होवें, भूलें सब ही भेद विरूप ॥४॥



## साधना के रास्ते आत्मा के



साधना के रास्ते, आत्मा के वास्ते, चल रे राहीं चल ।  
 मुक्ति की मंजिल मिले, शान्ति की सरसिज खिले ॥  
 चल रे राहीं चल ॥टेक ॥

कौन है अपना यहाँ, किसको पराया हम कहें ।  
 एक की आँखों में खुशियाँ, एक के आँसू बहैं ॥  
 आत्म के मंदिर चले, ज्योति से ज्योति जले ।  
 चल रे राहीं चल ॥१॥

ज्ञान ही अज्ञान था, तो भटकते थे हर जनम ।  
 छल कपट माया दुराचार, कर रहे थे हर कदम ॥  
 बात हो कल्याण की, हो शरण भगवान की  
 चल रे राहीं चल ॥२॥



## सिद्धों से मिलने का मार्ग

सिद्धों से मिलने का मार्ग ध्यान है ।  
 निज में ही समाने का मार्ग ध्यान है ॥टेक ॥



अक्षय प्रभुता से सम्पन्न, मैं निरावरण हूँ सदा  
निज दर्शन का झरना देखूँ स्वतः ही झर रहा ।  
अपने से अपनेपन का, मार्ग ध्यान है  
ध्यान मार्ग से ही फिर होता केवलज्ञान है  
सिद्धों से मिलने का मार्ग ध्यान है ।  
निज में ही समाने का मार्ग ध्यान है ॥1॥

अन्तरंग में तत्त्व का, जब ऐसा बंधा समां ।  
मैं ज्ञायक भगवान हूँ, बस ऐसा मुझे लगा ॥  
जाननहार जना रहा, बस एक ही काम है ।  
चिदस्वरूप सम्राट हूँ, हाँ यही श्रद्धान है ॥  
सिद्धों से मिलने का मार्ग ध्यान है ।  
निज में ही समाने का मार्ग ध्यान है ॥2॥

सुख सागर लहराता अब तो अंतर में मेरे ।  
अंतर में नहीं समाता अब तो बाहर में झलके ॥  
रहना मुझको निष्क्रिय अविनश्वर और ज्ञाता है ।  
भीगूँ उपशम रस में, अब यही सुहाता है ।  
सिद्धों के सम बन जाना बस एक ही काम है ॥  
निज में ही समाने का मार्ग ध्यान है ॥3॥

सिद्धालय दिखता है, अब सर्वांग में मुझको,

मुक्त स्वरूप भासित होता, हर पल हर क्षण यों ॥

सिद्धों ने बुलाया मुझको अपने पास है  
उनका यह निमंत्रण यह मुझको, हाँ स्वीकार है ।

सिद्धों से मिलने का मार्ग ध्यान है ।  
निज में ही समाने का मार्ग ध्यान है ॥4॥



## सुन चेतन ज्ञानी क्यों



तर्ज़ : करती हूँ व्रत तुम्हारा

समकित से कब निज चेतन का श्रंगार करोगे  
संयम की तरणी ले कब भव-जल पार करोगे  
सुन चेतन ज्ञानी, क्यों बात न मानी ॥टेक ॥

आया कहाँ से जाना तुझे, कितनी दूर है ।  
सोचा नहीं विषयों में तू क्यों, इतना चूर है ॥  
जप-तप बिन नरभव के पल, बेकार करोगे ॥  
संयम की तरणी ले कब भव-जल पार करोगे ॥१॥

लगते हैं तुझको भोग के, साधन जो सुहाने ।  
लुटवाता है इन गलियों में, सद्गुण के खजाने ॥

ऐसी गलती जीवन में, कितनी बार करोगे ? ॥  
संयम की तरणी ले कब भव-जल पार करोगे ॥२॥

कल्याण यदि चाहो तो, आत्म को जान लो ।  
अपने का और पराये का, अंतर पहचान लो ॥  
जड़ कर्मों की बोलो कब तक, बेगार करोगे ॥  
संयम की तरणी ले कब भव-जल पार करोगे ॥३॥

पग-पग पर भूल-भुलैया है ये, दुनिया की राहें ।  
पथ-भ्रष्ट बनाती तुझको कंचन, कामिनी की चाहें ॥  
बदनाम पथिक होंगे यदि जग की, धार गहोगे ॥  
संयम की तरणी ले कब भव-जल पार करोगे ॥४॥



## सुन रे जिया चिरकाल गया

सुन रे जिया चिरकाल गया,  
तूने छोड़ा ना अब तक प्रमाद, जीवन थोड़ा रहा ॥



जिनवाणी कहती है तेरी कथा,  
तूने भूल करी सही भारी व्यथा ।

अब कर ले स्वयं की पहचान, जीवन थोड़ा रहा ॥

जीव तत्व है तू परम उपादेय,  
अजीव सभी हैं ज्ञान के ज्ञेय ।

निज को निज पर को पर जान, जीवन थोड़ा रहा ॥

आस्रव बंध ये भाव विकारी,  
चेतन ने पाया दुख इनसे भारी ।  
सम्यक्त्व को ले पहिचान, जीवन थोड़ा रहा ॥

संवर निर्जरा शुद्ध भाव है,  
मोक्ष तत्व पूर्ण बंध अभाव है ।  
इनको ही तू हित रूप मान, जीवन थोड़ा रहा ॥



## सुन ले ओ भोले प्राणी



तर्ज : वो दिल कहाँ से लाऊँ - भरोसा

सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी,  
माया का खेल प्यारे, सारा यह जान फानी ॥  
सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी ॥टेक ॥

चलना जरूर होगा, राजा हो चाहे रानी,  
आने के बाद जाना, यह रीत है पुरानी ॥  
सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी ॥१॥

मतलब के रिश्ते नाते मतलब का है जमाना,  
झूठे जहाँ की सारी झूठी है यह कहानी ॥  
सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी ॥२॥

तू जोड़ जोड़ माया, क्यूँ पाप है कमाता,  
आखिर में संग तेरे, कौड़ी न एक जानी ॥  
सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी ॥३॥

छोटी सी जिन्दगी में, कोई नेक काम करले,  
नेकी बदी ही जग में, जीवन की है निशानी ॥  
सुन ले ओ भोले प्राणी, दो दिन की जिन्दगानी ॥४॥



## सुन सतगुरु की सीख

सुन सतगुरु की सीख सयाना धरा रहे धन माल  
होय तेरी राख मसाना रे, मत कर गर्व दीवाना ॥टेक ॥



सनत कंवर जी की सुंदर काया, इंद्र रूप देखन को आया ।  
गर्व किया उस वक्त दिवाना,  
पीकदनी में थूकज कीड़ा देख डराना रे ॥मत...१॥

नगर द्वारका देखन आए, छप्पन करोड़ यादव कहलाए ।  
कृष्ण मावली सूरत पाई,  
भस्म होय छिन माही, देखत सबक मठाना रे ॥मत...२॥

सोने की लङ्घ समुद्र सी खाई, विभीषण कुम्भकर्ण सा भाई ।  
तीन खण्ड में आन बनाई,  
बदी करी जब रावण लक्ष्मण हाथ मराना रे ॥मत...३॥

वीर रूद्र उपसर्ग कराए, हरिश्चंद्र राजा बहु दुख पाए ।  
नीच कौम से मांग रु खाए,  
सब मांगे सुभौम चक्री, ज्यों जलद बखाना रे ॥मत...४॥

अत्र जगत बिच बादल छाया, इंद्रजाल सपने की माया ।  
शांत बोल मत गर्व रे भैया,  
ताक रहो जब जीव चढ़ा पर काल सिराना रे ॥मत...५॥

कोड कपट कर क्या धन जोड़ा, रात दिवस धंधा कौ दौड़ा ।

मत छकिया तृष्णा नहीं तोड़ी,  
मलकर ममता आप मरा, पीछे माल बिराना रे ॥मत...६॥

मात पिता तिरिया सुत नाती, मतलब का सब मिल्या सगाती ।  
परभव जाता कोई है न साथी,  
दान शील तप भाव को ले लो लार खजाना रे ॥मत...७॥

क्रोध मान माया लोभ न करना, मरण वचन मुख से नहीं कहना ।  
कहना प्रेम सहित, अनुभव कर लेना,  
बलिहारी 'श्री कृष्णलालजी' ने तत्त्व पिछाना रे ॥मत...८॥



## सोते सोते ही निकल



सोते सोते ही निकल गयी, सारी जिन्दगी ।  
सारी जिन्दगी तेरी प्यारी जिन्दगी,  
बोझा ढोते ही निकल गयी, सारी जिन्दगी ॥

जनम लेत ही इस धरती पर तूने रुदन मचाया,  
आंखे भी न खुलने पाई, भूख भूख चिल्लाया ।  
रोते रोते ही निकल गयी, सारी जिन्दगी ॥

खेलकूद में बचपन बीता, यौवन पा बौराया,  
धर्म कर्म का मर्म ना जाना, विषय भोग लपटाया ।  
भोगों भोगों में निकल गयी, सारी जिन्दगी ॥

धीरे धीरे बढ़ा बुढ़ापा, डगमग डोले काया,  
सब के सब रोगों ने देखो डेरा खूब जमाया ।  
रोगों रोगों में निकल गयी, सारी जिन्दगी ॥

जिसको तू अपना समझा था, वह दे बैठा धोखा,  
प्राण गये फिर जल जायेगा, ये माटी का खोका ।  
खोका ढोने में निकल गयी, सारी जिन्दगी ॥



## स्वारथ का व्यवहार जग

स्वारथ का व्यवहार जग में,  
बिना स्वारथ कोई बात न पूछे  
देखा खूब विचार ॥टेक॥



पूत कमाकर धन को लावै, माता करे प्यार

पिता कहें यह पूत सपूता, अक्कलमंद होशियार ॥स्वारथ...१॥

नारी सुंदर वस्त्राभूषण मांगत बारंबार  
जो ला कर घर में नहीं देवे तो मुखड़ा देत बिगाड़ ॥स्वारथ...२॥

पूत्र भए नारी के वश में, नित्य करें तकरार  
आप ही अपना माल बटाकर, होवे न्यारो नार

जिनको जानत मीत पियारे, सब मतलब के यार  
ब्रह्मानन्द छोड़कर ममता, सुमरो जाननहार ॥स्वारथ...३॥



## हठ तजो रे बेटा हठ

माता -) हठ तजो रे बेटा ! हठ तजो,  
मत जाओ वनवास, बेटा हठ तजो ॥



(पुत्र -) मोह तजो रे माता, मोह तजो,  
जाने दो वनवास, माता मोह तजो ॥

(माता -) वन में कंटक, वन में कंकड़,

वन में बाघ विकराल, बेटा हठ तजो ॥

(पुत्र -) बाघ सिंह तो परम मित्र सम,  
मैं धारूँ आत्म ध्यान, माता मोह तजो ॥

(माता -) सुख वैभव की रेलमपेल में,  
तू ही एक आधार, बेटा हठ तजो ॥

(पुत्र -) यह संसार दावानल सम है,  
इनको तृणवत् जान, माता मोह तजो ॥

(माता -) लाड़ लड़ाऊँ प्रेम से तुझको,  
खाओ मिष्ट पकवान बेटा हठ तजो ॥

(पुत्र -) क्या करना है राख के ढेर से,  
खाये अनन्ती बार, माता मोह तजो ॥

(माता -) ऊँचा बंगला महल मनोहर,  
करो मोती श्रृंगार, बेटा हठ तजो ॥

(पुत्र -) महल मसान ये हीरा मोती,  
ये पुद्गल के दास, माता मोह तजो ॥

(पिता -) कठिन जोग तप त्याग है बेटा,  
फिर से सोच विचार, बेटा हठ तजो ॥

(पुत्र -) धन्य सौभाग्य मिला संयम का,  
सफल करूँ पर्याय, माता मोह तजो ॥

(माता -) धन्य है तेरी दृढ़ता बेटा,  
जाओ खुशी से आज, हमरो मोह घटो ।  
हमहूँ चल रहे साथ, हमरो मोह घटो ॥



## हम अगर वीर वाणी



तर्ज़: तुम अगर साथ देने का

हम अगर वीर वाणी पर श्रद्धा करें,  
ज्ञान के दीप जलते चले जाएँगे ॥  
गर जले ज्ञान के दीप हृदय में तो,  
मार्ग संयम के खुलते चले जाएँगे ॥टेक ॥

हमने मुश्किल से पाया है मानव जन्म ।

देव तरसे जिसे, ऐसा पाया रतन ॥  
गर इसे हमने विषयों में, ही खो दिया,  
भूल पर अपनी हम, खुद ही पछताएँगे ॥  
हम अगर वीर वाणी पर श्रद्धा करें,  
ज्ञान के दीप जलते चले जाएँगे ॥१॥

अब मिला जिन धर्म, और जिनवर शरण ।  
गुरु मिले हैं दिगंबर, और अमृत वचन ॥  
राग से भिन्न ज्ञायक है, अनुभव करो,  
मार्ग कल्याण के, खुद ही खुल जाएँगे ॥  
हम अगर वीर वाणी पर श्रद्धा करें,  
ज्ञान के दीप जलते चले जाएँगे ॥२॥

जब नहीं सच्ची श्रद्धा, तो क्या अर्थ है ?  
इस बिना ज्ञान और, आचरण व्यर्थ है ॥  
हम पुजारी बने, वीतरागी के तो,  
कर्म के बंधन, कटते चले जाएँगे ॥  
हम अगर वीर वाणी पर श्रद्धा करें,  
ज्ञान के दीप जलते चले जाएँगे ॥३॥



# हम आत्म ज्ञानी हम भेद



तर्ज़: छोड़ो कल की बातें, कल

छोड़ो पर की बातें, पर की बात पुरानी ।  
निज-आत्म से शुरू करेंगे हम तो नई कहानी ।  
हम आत्म ज्ञानी, हम भेद विज्ञानी ॥टेक ॥

आओ आत्मा के आनंद की खान बतायें ।  
रत्नत्रय से सजा हुआ भगवान दिखायें ।  
निज आत्मा ही परमात्मा है, सुख की यही है रवानी ।  
मत कर हैरानी, तज देना दानी ॥1॥

कर्म और पापों की झँझट अब तो छोड़ो ।  
निज की दृष्टि में मुक्ति से नाता जोड़ो ।  
समयसार है नियमसार है और है माँ जिनवाणी ।  
हम आत्म ज्ञानी, हम भेद विज्ञानी ॥2॥

निज प्रभुता को भूल जगत में अब तक रोये ।  
जिनशासन पाकर यह अवसर अब क्यों खोये ।  
गुण अनंत हैं सुख अनंत है आनंदमय जिंदगानी ।  
हम आत्म ज्ञानी, हम भेद ज्ञानी ॥3॥

जिन मंदिर में जाकर आत्म ध्यान लगायें ।  
निज में निज को ध्याकर परमात्म हो जायें ।  
यही रीति है यही नीति है अंतिम लक्ष्य बखानी ।  
हम आत्म ज्ञानी, हम भेद विज्ञानी ॥4॥



## हमने तो घूमीं चार गतियाँ



हमने तो घूमीं चार गतियाँ  
न मानी जिनवाणी की बतियाँ ॥टेक॥

नरको में दुख ही दुख पाये, खण्ड खण्ड यह देह कराये ।  
पायो न चैन दिन-रतियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ ॥१॥

पशु बन करके बोझ उठायो, भूख प्यास सही अकुलायो ।  
अंसुवन से भीग गई अंखियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ ॥२॥

जब दुर्लभ मानुष तन पायो माया ममता में विसरायो ।  
लीनी न अपनी सुरतियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ ॥३॥

पुण्यउदय से सुरगतिपायी, मरण समय माला मुरझाई ।

मरके फिर भये पेड़-पतियां, न मानी जिनवाणी की बतियां ॥४॥

बिन सम्यक् घूमा तन धारी, अपने को पहचान पुजारी ।  
सतगुरु की मानो सुमतियां, न मानी जिनवाणी की बतियां ॥५॥



## हूँ स्वतंत्र निश्चल



हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आत्म राम ॥टेक॥

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।  
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।  
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अज्ञान ॥२॥

सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुःख की खान ।  
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।  
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।  
दूर हटो पर कृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥५॥



## हे चेतन चेत जा अब तो



तर्ज : तू इतनी दूर क्यों है माँ

हे चेतन चेत जा अब तो, न अपना मान तू पर को  
निर्विकल्प हो जा तू, अंतर में ही खो जा तू  
आतम... परमात्म ॥टेक ॥

सुना है मैंने गुरु मुख से, मुक्ति में परम सुख है  
इंद्रिय सुख विनश्वर है, बंध का कारण है दुःख है  
नहीं अब दुःख सहना है, परम सुख में ही रहना है  
निर्विकल्प हो जा तू, अंतर में ही खो जा तू ॥  
आतम... परमात्म

हे चेतन चेत जा अब तो, न अपना मान तू पर को ॥१॥

कर्म से मित्रता करके, ज्ञान धन को लुटाया है  
स्वयं को भूल करके ही, निजातम को सताया है  
कर्म से मित्रता तज दे, प्रीत शुद्धात्म से कर ले

निर्विकल्प हो जा तू, अंतर में ही खो जा तू ॥  
आतम... परमात्म  
हे चेतन चेत जा अब तो, न अपना मान तू पर को ॥२॥

नहीं पर का तू है कर्ता, तेरा पर कभी न कर्ता है  
भिन्न द्रव्यों की परिणतियाँ, भिन्न है आगम कहता है  
है स्वाधीन सुखमय तू, शुद्ध चिद्रूप चिन्मय तू  
निर्विकल्प हो जा तू, अंतर में ही खो जा तू ॥  
आतम... परमात्म  
हे चेतन चेत जा अब तो, न अपना मान तू पर को ॥३॥



## हे परमात्मन तुझको पाकर



(तर्ज :- नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे)

हे परमात्मन तुझको पाकर, अब मुझको चिंता ही क्या ?  
अपना प्रभु निजमाहिं दिखाते, बाह्य जगत में देखूँ क्या ? ॥टेक॥

सहज ज्ञानमय, सहजानंदमय, परम शुद्ध शुद्धात्मा,  
परभावों से न्यारा निरूपम, शुद्ध बुद्ध परमात्मा,  
चिद् विलासमय, अपने घर से, अब मैं बाहर जाऊँ क्या ? ॥

हे परमात्मन तुझको पाकर, अब मुझको चिंता ही क्या ? ॥१॥

जग की सुनते मोह पुष्टकर, भव-भव में देख पाया है,  
महाभाग्य जिनवाणी पाई, भेद-विज्ञान जगाया है,  
परमानंद निज में ही पाया, परभावों में जाऊँ क्या ? ॥  
हे परमात्मन तुझको पाकर, अब मुझको चिंता ही क्या ? ॥२॥

परम ज्योतिमय सहज युक्त है, ध्येय रूप भगवान है,  
ज्ञानमात्र की अनेकांतमय, अद्भुत प्रभुतावान है,  
निज परमात्म को तजकर मैं, परभावों को ध्याऊँ क्या ? ॥  
हे परमात्मन तुझको पाकर, अब मुझको चिंता ही क्या ? ॥३॥

कोलाहल निस्सार जान, परिणाम स्वयं ही शांत हुआ,  
होने योग्य सहज ही होवे, अब विकल्प कुछ नहीं रहा,  
सहजानंद विलासमयी निज, शुद्धात्म ही भाऊँ सदा ॥  
हे परमात्मन तुझको पाकर, अब मुझको चिंता ही क्या ?  
अपना प्रभु निजमाहिं दिखाते, बाह्य जगत में देखूँ क्या ? ॥४॥



हे भविजन ध्याओ आत्मराम



हे भविजन ध्याओ आत्मराम ...  
कौन जानता कब हो जाए इस जीवन की शाम ॥टेक ॥

जग में अपना कुछ भी नहीं है, परिजन तन या दाम  
आयु अंत पर सब छूटेगा, जल जाएगी चाम ॥  
हे भवि जन ध्याओ आत्मराम ॥१॥

यह संसार दुखों की अटवी, यहाँ नहीं आराम ।  
शुद्धात्म की करो साधना जग से रहो निष्काम ॥  
हे भवि जन ध्याओ आत्मराम ॥२॥

मोह राग को छोड़ के चेतन, निज में करो विश्राम ।  
शुद्ध-बुद्ध अविनाशी हो तुम, शुद्धात्म सुखधाम ॥  
हे भवि जन ध्याओ आत्मराम ॥३॥

सिद्ध स्वरूपी अमल स्वभावी, आनन्दमयी ध्रुवधाम ।  
ब्रह्मानन्द में लीन रहो तुम, जग से मिले विराम ॥  
हे भवि जन ध्याओ आत्मराम ...  
कौन जानता कब हो जाए इस जीवन की शाम ॥४॥





# हे सीमंधर भगवान शरण

हे ! सीमंधर भगवान शरण ली तेरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥टेक ॥

निज को बिन जाने नाथ फिरा भव वन में ।  
सुख की आशा से झपटा उन विषयन में ॥  
ज्यों कफ में मक्खी बैठ पंख लिपटावे,  
तब तड़फ-तड़फ दुःख में ही प्राण गमावे ॥  
त्यों इन विषयन में मिली, दुखद भवफेरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥१॥

मिथ्यात्व राग वश दुखित रहा प्रतिपल ही,  
अरु कर्म बंध भी रुक न सका पल भर भी ।  
सौभाग्य आज हे प्रभो तुम्हें लख पाया,  
दुःख से मुक्ति का मार्ग आज मैं पाया ॥  
हो गयी प्रतीति नहीं मुक्ति में देरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥२॥

सार्थक सीमंधर नाम आपका स्वामी ।  
सीमित निज में हो गये आप विश्रामी ॥  
करते दर्शन कर भव सीमित भवि प्राणी ।

फिर आवागमन विमुक्त बने शिवगामी ॥  
चिरतृप्ति प्रदायक शांति छवि प्रभु तेरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥३॥

आत्माश्रय का फल आज प्रभो लख पाया ।  
निज में रमने का भाव मुझे उमगाया ॥  
निज वैभव सन्मुख तुच्छ सभी कुछ भासा ।  
दर्शन से पलट गया परिणति का पासा ॥  
चैतन्य छवि अंतर में आज उकेरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥४॥

हे ! ज्ञायक के ज्ञायक चैतन्य विहारी ।  
मैं भाव वंदना करूँ परम उपकारी ॥  
अपनी सीमा में रहूँ यही वर पाऊँ ।  
प्रभु भेद भक्ति तज निज अभेद को ध्याऊँ ॥  
अब अंतर में ही दिखे मुझे सुख ढेरी  
बस ज्ञाता दृष्टा रहे परिणति मेरी ॥५॥





## अपनी सुधि भूल आप

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ,  
ज्यौं शुक नभचाल विसरि नलिनी लटकायो ॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश बोधमय विशुद्ध  
तजि जड़-रस-फरस रूप, पुद्गल अपनायौ ॥  
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥१॥

इन्द्रियसुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त  
दायकभव विपति वृन्द, बन्धको बढ़ायौ ॥  
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥२॥

चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताहि चाहै  
समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायौ ॥  
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥३॥

मानुषभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय

# 'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ ॥ अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥४॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! तू अपने आपको भूलकर, अपनी सुधि भूलकर आप (स्वयं) ही दुःख को उत्पन्न करता है, दुःख का कारण बनता है। जैसे आकाश में स्वच्छंद उड़ान भरनेवाला तोता रस्सी-बैंधी लकड़ी में उलझकर उल्टा लटक जाता है और अपने उड़ान भरने के स्वभाव को भूलकर स्वयं उल्टा लटका हुआ रस्सी-लकड़ी को पकड़कर समझता है कि रस्सी ने उसे पकड़ रखा है ॥१॥

यह चेतन अविरुद्ध है, इसका किसी से विरोध नहीं, यह किसी से विरुद्ध नहीं, पूर्ण शुद्ध है, सम्यक्दर्शन व ज्ञान को धारण करनेवाला है। फिर भी यह अपना स्वभाव भूलकर, जड़रूप होकर स्पर्श-रस रूपमय पुद्गल को ही अपना मान रहा है ॥१॥

यह जीव इंद्रिय सुख-दुःख, जो संसार में दुःख को उपजानेवाले हैं, उनको ही सब-कुछ समझकर, राग-द्वेष में रत होकर, छूबकर अपनी कर्म-श्रंखला को बढ़ा रहा है; निरंतर कर्म-बंध कर रहा है ॥२॥

यह जीव चाह- इच्छाओं की आग में निरंतर दहक रहा है, तप रहा है, जल रहा है, फिर भी उन इच्छाओं को नहीं छोड़ता और समतारूपी अमृत के पान की चाहना करके भी जिनेन्द्र की भक्ति में अवगाह नहीं करता जबकि यह करना सरल है, सुगम है, तेरे योग्य है, निकट से तुझे बता दिया है, तुझे उपदेश दिया है ॥३॥

हे जीव ! यह मनुष्यभव- श्रेष्ठकुल तुझे मिला है। तुझे जैन-शासन मिला है, धर्म-साधन का अवसर मिला है दौलतराम कहते हैं कि तू अपने निजस्वरूप का चिंतन कर जो अनादि से तूने नहीं किया है ॥४॥



## अब मोहि जानि परी



अब मोहि जानि परी, भवोदधि तारन को हैं जैन ॥

मोह-तिमिर तें सदाकाल से, छाय रहे मेरे नैन ।  
ताके नाशन काज लियो है, अंजन जैन सु ऐन ॥

मिथ्यामती भेष को लेकर, भासत हैं जो बैन ।

सो वे बैन असार लखें हैं, ज्यों पानी के फैन ॥

मिथ्यामती बेल जग फैली, सो दुख-फल की दैन ।  
सतगुरु भक्ति-कुठार हाथ ले, छेद लियो अति चैन ॥

जा बिन जीव अनादि काल तें, विधिवश सुखन लहै न ।  
अशरन-शरन अभय 'दौलत' अब, भजो रैन-दिन जैन ॥

**अर्थ :** अहो, आज मुझे यह भलीभौति ज्ञात हो गया है कि संसार-सागर से तारने के लिए एक जैनधर्म ही समर्थ है ।

अहो, अनादि-काल से मेरे नेत्र मोहरूपी अन्धकार से आच्छादित थे, किन्तु आज मैने उस मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए जैनधर्म का श्रेष्ठ अंजन ग्रहण कर लिया है। संसार में अनेक मिथ्यादृष्टि जीव नाना भेष धारण करके बहुत बातें कहते हैं, किन्तु आज मैने उनके वचनों को पानी के बुलबुलों की भाँति असार जान लिया है ।

संसार में मिथ्यादृष्टियों की बेल बहुत फैल रही है और वह दुःखरूप फल को ही उत्पन्न करनेवाली है, किन्तु मैने तो सद्गुरु के उपासनारूपी कुठार को हाथ में लेकर उसका नाश कर दिया है और परमसुख को प्राप्त कर लिया है ।  
कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे भाई ! जिसके बिना जीव अनादिकाल से कर्मों के अधीन पड़ा है, सुख की प्राप्ति नहीं कर पाया है, जो अशरणों का शरण है और सबको भय-रहित करता है, उस जैनधर्म की दिन-रात उपासना करो ।



## जगदानंदन



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥टेक॥

अरुणवरन अघताप हरन वर, वितरन कुशल सु शरन बड़ेरे ।  
पद्मासदन मदन-मद-भंजन, रंजन मुनिजन मन अलिकेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥१॥

ये गुन सुन मैं शरनै आयो, मोहि मोह दुख देत घनेरे ।  
ता मदभानन स्वपर पिछानन, तुम विन आन न कारन हेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥२॥

तुम पदशरण गही जिनतैं ते, जामन-जरा-मरन-निरवेरे ।  
तुमतैं विमुख भये शठ तिनको, चहुँ गति विपत महाविधि पेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥३॥

तुमरे अमित सुगुन ज्ञानादिक, सतत मुदित गनराज उगेरे ।  
लहत न मित मैं पतित कहों किम, किन शशकन गिरिराज उखेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥४॥

तुम बिन राग दोष दर्पनज्यों, निज निज भाव फलैं तिनकेरे ।  
तुम हो सहज जगत उपकारी, शिवपथ-सारथवाह भलेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥५॥

तुम दयाल बेहाल बहुत हम, काल-कराल व्याल-चिर-घेरे ।  
भाल नाय गुणमाल जपों तुम, हे दयाल, दुखटाल सबेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे ॥६॥

तुम बहु पतित सुपावन कीने, क्यों न हरो भव संकट ।

**भ्रम-उपाधि हर शम समाधिकर, 'दौल' भये तुमरे अब चेरे ॥  
जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूँ मैं तेरे ॥७॥**

**अर्थ :** जगत को आनंदित करनेवाले हे अभिनंदन जिनेश्वर ! मैं आपके चरण कमल में नमन करता हूँ।

आपका अरुण वर्ण (प्रातःकालीन सूर्य की लालिमा) पापों को हरनेवाला है । जो आपकी शरण ग्रहण करता है उसे कुशल-क्षेम प्राप्त होती है। आप कामदेव का मद चूर करनेवाले हैं आप मोक्ष लक्ष्मी के मन्दिर हैं। ये आपके चरण कमल मुनिजनों के मनरूपी भँवरों को मोहित करनेवाले हैं। आनन्दकारी हैं।

मैं आपका यह विरदा गुण/विशेषता सुनकर आपके पास आया हूँ। मोह अत्यन्त दुखकारी है। उस मोह-मद का भान कराने व स्त्र-पर की पहचान कराने को आपके सिवा अन्य कोई निमित्त ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता।

जिनने आपके चरणों में शरण ली, उनको जन्म, जरा और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है; और जो आपसे विमुख हुए उन दुष्ट जनों को चारों गतियों में कर्म अत्यंत विपत्ति में पेलते हैं/घुमाते हैं।

आपके अपरिमित ज्ञान आदि का गुण- स्तवन, गुणगान गणधर देव सदैव प्रसन्नता से करते हैं / उन गुणों को परिमित रूप में भी, थोड़ासा भी, मैं - पापी, अल्पज्ञ किस प्रकार प्रकट करूँ ! क्या कभी पर्वतराज को उखाड़ने में खरगोश समर्थ हो सकते हैं!

आपके स्मरण के बिना राग-द्वेष अपने-अपने भावों के अनुसार दर्पण की भाँति शुभ-अशुभ फल देते हैं ! पण उगत का दुलही उपहा करनेवाले हो। मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ रथ के आप ही सहज सारथी हो, चलानेवाले हो।

हे दयालु ! हम बहुत बुरे हाल में हैं, काल-मृत्यु हिंसक पशु की भाँति हमेशा हमें घेरे रहती है । मैं मस्तक झुकाकर आपके गुणों का स्तवन करता हूँ, मेरे सब दुःख दूर हो जायें, समस्त दुःख टल जायें।

आपने बहुत से पापियों को पवित्र किया है, फिर मेरे संकट क्यों नहीं दूर करते? दौलतराम कहते हैं कि मैं जो भ्रमरूप उपाधि ओढ़े हुए हूँ, आप उसको हरनेवाले हैं, विवेक व समता प्रदान करनेवाले हैं। मैं अब आपका सेवक हूँ, दास हूँ।



## **अरिरजरहस हनन प्रभु**

**अरिरजरहस हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जग में ।  
देव अदेव सेव कर जाकी, धरहिं मौलि पगमें ॥टेक ॥**



जो तन अष्टोत्तरसहसा लक्खन लखि कलिल शमें ।  
जो वच दीपशिखातैं मुनि विचरैं शिवमारगमें ॥  
अरिरजरहस हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जग में ॥२॥

जास पासतैं शोकहरन गुन, प्रगट भयो नगमें ।  
व्यालमराल कुरंगसिंघको, जातिविरोध गमें ॥  
अरिरजरहस हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जग में ॥३॥

जा जस-गगन उलंघन कोऊ, क्षम न मुनी खग में ।  
'दौल' नाम तसु सुरतरु है या, भव मरुथल मग में ॥  
अरिरजरहस हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जग में ॥४॥

**अर्थ :** अरहंत प्रभु, जगत में सदा जयवन्त रहें, जिनने मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन घातियाकर्मों का नाश किया है! देव वे अन्यजन, सभी जिनके चरणों में अपना शीश झुकाकर, चरणों में मुकुट रखकर बन्दना करते हैं, सेवा करते हैं ॥१॥

जिनके शरीर में १००८ सुलक्षण देखकर सारे पापों का शमन हो जाता है। जिनकी दिव्यध्वनि के आलोक (प्रकाश) में मुनिजन मोक्ष की राह में बढ़ते हैं ॥२॥

जिनकी समीपता से वृक्ष में सारे खेद-शोक का नाश करने का गुण प्रकट हो जाता है और वह 'अशोक' वृक्ष कहलाने लगती है, जिनकी समीपता में शरण में सर्प व मोर, हरिण व सिंह सभी अपना जातिगत विरोध भूलकर गमन करते हैं, विचरण करते हैं ॥३॥

जिनका यश सारे आकाश में, जगत में फैल रहा है। उस यश-गगन अर्थात् यश के विस्तार का पार पाने में मुनिरूपी पक्षी भी सक्षम नहीं हैं। दौलतराम कहते हैं कि इस भवरूपी रेगिस्तान की राह में वे कल्पवृक्ष के समान हैं ॥४॥



अरे जिया जग धोखे



अरे जिया जग धोखे की टाटी ॥

झूठा उद्यम लोक करत है, जामें निशदिन घाटी  
जानबूझ कर अंध बने हैं, आंखन बांधी पाटी ॥१॥

निकस जायें प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी  
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी ॥२॥

**अर्थ :** हे जीव! यह संसार भ्रम का पर्दा है।

यहां लोग ऐसा खोटा व्यापार (मिथ्या पुरुषार्थ) करते हैं जिसमें हमेशा हानि ही हानि होती है। हे जीव! तू यहां जान बूझकर अंधा बना हुआ है, तूने अपनी आंखों पर पट्टी बांध रखी है ॥१॥

तू देख लेना कि अंत मे एक दिन तेरे प्राण क्षणभर में निकल जाएंगे और यह मिट्टी यहीं पड़ी रह जायगी। कविवर दौलतराम जी स्वयं से कहते हैं कि हे मेरे मन! तू अपने हृदय के कपाट खोल और सत्य स्वरूप समझ ॥२॥



## आज गिरिराज निहारा



आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा ।  
श्रीसम्मेद नाम है जाको, भूपर तीरथ भारा ॥टेक॥

तहां बीस जिन मुक्ति पधारे, अवर मुनीश अपारा ।  
आरजभूमिशिखामनि सोहै, सुरनरमुनि-मनप्यारा ॥  
आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा ॥१॥

तहं थिर योग धार योगीसुर, निज परतत्व विचारा ।  
निज स्वभाव में लीन होयकर, सकल विभाव निवारा ॥  
आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा ॥२॥

जाहि जजत भवि भावनतैं जब, भवभवपातक टारा ।  
जिनगुन धार धर्मधन संचो, भव-दारिदहरतारा ॥  
आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा ॥३॥

इक नभ नवइक वर्ष माधवदि, चौदश बासर सारा ।  
माथ नाय जुत साथ 'दौल' ने, जय जय शब्द उचारा ॥  
आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा ॥४॥

**अर्थ :** आज गिरिराज (सम्मेदशिखर) के दर्शन किए हैं, अतः धन्य भाग्य हैं हमारे। इसका नाम सम्मेदशिखर हैं, जो इस पृथ्वी पर बहुत बड़ा तीर्थ है। यहाँ से बीस तीर्थकर और अपार मुनिजन मुक्त हुए हैं।

इस भूमि का कण-कण, मिट्टी, पहाड़ों की चोटियाँ अत्यंत शोभित हैं जो देवों को, मनुष्यों को व मुनियों के मन को अत्यन्त प्यारी लगती हैं।

यहाँ मुनिजन स्थिर योग धारणकर भेद-ज्ञान का, स्व-पर का चितवन करते हैं और फिर अपने स्व-भाव में मगन होकर, लीन होकर समस्त अन्य भावों को छोड़ देते हैं।

भव्यजन भावसहित वंदना करके भव-भव के पापों का नाश करते हैं, उन्हें टाल देते हैं। जिनेन्द्र के समान गुणों को धारणकर धर्मरूपी संपत्ति का संचय करते हैं, जिससे भव-भव के दुःख-दारिद्र दूर हो जाते हैं।

माघ वदि चौदस (विक्रम संवत्) उन्नीस सौ एक के दिन दौलतराम ने शीश नमाकर सबके साथ जय.. जयकार किया अर्थात् भगवान ऋषभदेव के मोक्ष कल्याणक के दिन कवि ने इस तीर्थ की भक्तिपूर्वक वंदना की।





राग : शिल्हर

# आज मैं परम पदारथ

आज मैं परम पदारथ पायौ  
प्रभुचरनन चित लायौ ॥टेक॥

अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं  
सहज कल्पतरु छायौ ॥१॥

ज्ञानशक्ति तप ऐसी जाकी  
चेतनपद दरसायो ॥२॥

अष्टकर्म रिपु जोधा जीते  
शिव अंकूर जमायौ ॥३॥

'दौलत' राम निरख निज प्रभो को  
उरु आनन्द न समायो ॥४॥

**अर्थ :** अहो, आज मेरा भगवान के चरणों में चित्त लग गया है और मुझे परम-पदार्थ की प्राप्ति हो गयी है ॥

भगवान के चरणों मे चित्त लगाने से आज मेरे अशुभ भाव नष्ट हो गए हैं और शुभ भाव प्रकट हो गए हैं, अतः जीवन में सहज ही कल्पवृक्ष की छाया हो गयी है ॥१॥

भगवान के चरणों में चित्त लगाने से ही आज मुझे ऐसे चैतन्य पद के दर्शन हुए हैं, जिसमे अपार ज्ञान-वैराग्य शक्ति भरी हुई है ॥२॥

आज मैंने कर्म-शत्रु के आठ योद्धाओं को जीत लिया है और मोक्ष का अंकुर स्थापित कर लिया है ॥३॥



# आतम रूप अनूपम अद्भुत



तर्ज : प्यार में होता है क्या

आतम रूप अनूपम अद्भुत, याहि लखैं भव सिंधु तरो ॥टेक ॥

अल्पकाल में भरत चक्रधर, निज आतमको ध्याय खरो  
केवलज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायौ लोकशिरो ॥

या बिन समुझे द्रव्य-लिंगमुनि, उग्र तपनकर भार भरो  
नवग्रीवक पर्यन्त जाय चिर, फेर भवार्णव माहिं परो ॥

सम्पर्दर्शन ज्ञान चरन तप, येहि जगत में सार नरो  
पूरव शिवको गये जाहिं अब, फिर जैहैं, यह नियत करो ॥

कोटि ग्रन्थको सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो  
'दौल' ध्याय अपने आतमको, मुक्तिरमा तब वेग बरो ॥

**अर्थ :** आत्मा का स्वरूप अनुपम है, इसका ही चिंतवन कर इस संसार - सागर से तिर जाओ, पार हो जाओ।

भरत चक्रवर्ती ने अपनी शुद्ध आत्मा का चिंतवन कर केवलज्ञान प्राप्त किया और भव्यजनों को संबोधकर थोड़े समय में ही मोक्षगामी हो गए ॥1॥

इसके ( आत्मा के) स्वरूप को समझे बिना , द्रव्यलिंगी मुनि घोर तप कर के भी कर्मों का बोझ ही बढ़ाते हैं , कर्म निर्जरा

नहीं कर पाते । वे नव ग्रैवेयक तक जाकर भी इस संसार समुद्र में पड़े रहते हैं अर्थात् भव भ्रमण करते रहते हैं ॥२॥

जो अब तक मोक्ष को गए हैं, जा रहे हैं व जाएंगे उन्होंने निश्चित रूप से यह जान लिया है और बताया है कि इस जगत में सम्प्रकरण ज्ञान चारित्र और तप ही अत्यंत सारवान है ॥३॥

यह ही करोड़ों ग्रंथों का सार हैं । जिनवाणी इस तथ्य का ही वर्णन करती है । दौलतराम कहते हैं कि अपनी आत्मा का ध्यान करो तब ही शीघ्रता से मोक्ष लक्ष्मी का वरण हो सकेगा ॥४॥



## चलि सखि देखन

चलि सखि देखन नाभिराय-घर, नाचत हरि नटवा ।  
अद्भुत ताल मान शुभ लय युत, चक्त राग षटवा ॥

मणिमय नूपुरादि भूषन दुति, युत सुरंग पटवा ।  
हरि कर नखन नखन पै सुरतिय, पण फेरत कटवा ॥

किन्नर कर धर बीन बजावत, लय लावत झटवा ।  
'दौलत' ताहि लखे दग तृपते, सूझत शिव-बटवा ॥

**अर्थ :** हे सखी ! चलो, राजा नाभिराय के घर चलें; आज वहाँ इन्द्र नट बनकर नाच रहा है, उसे देखेंगे। हे सखी ! वहाँ वह इन्द्र नर आज अद्भुत ताल और शुभ लय से युक्त होकर घटप्रकार के राग का गायन कर रहा है। उसने नूपुरादि मणिमय आभूषण पहन रखे हैं और सुन्दर रंग के वस्त्र धारण कर रखे हैं। उसके हाथ के प्रत्येक नख पर अनेक देवियाँ अपनी कमर धुमाकर नृत्य कर रही हैं। किन्नर भी इस समय वीणा को अपने हाथ में लेकर बजा रहे हैं और शीघ्रता के साथ लय उत्पन्न कर रहे हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि इस दृश्य को देखने से आँखें तृप्त हो जाती हैं और मोक्ष का मार्ग दिखाई दे जाता है।





# जय श्री कृष्ण

जय श्री कृष्ण जिनेन्दा, नाश करो मेरे दुखदन्दा ॥टेक ॥

मातु मरुदेवी के प्यारे, पिता नाभि के दुलारे,  
वंश तो इक्ष्वाकु जैसे नभ बीच चन्दा ॥1॥

कनक वरन तन, मोहत भविक जन,  
रवि शशि कोटि लाजैं, लाजे मकरन्दा ॥2॥

दोष तौ अठारा नासे, गुन छिआलीस भासे,  
अष्ट-कर्म काट स्वामी, भये निरफन्दा ॥3॥

चार ज्ञानधारी गनी, पार नहिं पावें मुनी,  
'दौलत' नमत सुख चाहत अमन्दा ॥4॥

**अर्थ :** हे कृष्ण जिनेन्द्र ! आपकी जय हो। हे स्वामी ! मेरे दुःख दूर कीजिए ।

हे प्रभो ! आप माता मरुदेवी के प्यारे हैं, पिता नाभिराय के दुलारे हैं। आपका वंश इक्ष्वाकु है और आप इस जगत में ऐसे शोभायमान हैं जैसे कि आकाश में चन्द्रमा । आपका शरीर स्वर्ण के समान वर्ण वाला है जिसे देखकर भव्यजीव मोहित (आकर्षित या हर्षित) हो जाते हैं, करोड़ों सूर्य-चन्द्र लज्जित हो जाते हैं और पुष्पों का रस भी लज्जित हो जाता है ।

हे स्वामी ! आपने अठारह दोषों का नाश कर दिया है, छियालीस गुणों को प्रकट कर लिया है और आप आठों कर्मों का नाश करके पूर्णतः मुक्त भी हो गए हैं ।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे स्वामी ! चार ज्ञान के धारक गणधर और मुनि भी आपका पार नहीं पा सकते हैं, फिर भी मैं अनन्त सुख की अभिलाषा करता हुआ आपको नमस्कार करता हूँ ।





# देखो जी आदिश्वर

देखो जी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है  
कर ऊपरि कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है ॥टेक ॥

जगत-विभूति भूतिसम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है  
सुरभित श्वासा, आशा वासा, नासादृष्टि सुहाया है ॥१॥

कंचन वरन चलै मन रंच न, सुरगिर ज्यों थिर थाया है  
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जातिविरोध नसाया है ॥२॥

शुध उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है  
श्यामलि अलकावलि शिर सोहै, मानों धुओँ उड़ाया है ॥३॥

जीवन-मरन अलाभ-लाभ जिन, तृन-मनिको सम भाया है  
सुर नर नाग नमहिं पद जाकै, 'दौल' तास जस गाया है ॥४॥

**अर्थ :** हे भाई, देखो ! भगवान आदिनाथ स्वामी ने कैसा अद्भुत ध्यान लगा रखा है । एक हाथ के ऊपर दूसरा हाथ सुंदरतापूर्वक विराजमान है और आसन स्थिरता पूर्वक जमा हुआ है ।

श्री आदिनाथ स्वामी जगत की विभूति को राख के समान त्यागकर निजानन्द स्वरूप का ध्यान कर रहे है । उनकी श्वास सुगंधित है, उन्होंने दिशारूपी वस्त्र धारण कर रखे है अर्थात् वे नग्न दिगम्बर मुद्रा में हैं और नासादृष्टिपूर्वक विराजमान हैं ॥१॥

उनके शरीर का वर्ण कंचन जैसा है, उनका मन ध्यान से रंचमात्र भी चलायमान नहीं है, सुमेरु पर्वत की तरह अचल है । उनके पास सर्प-मोर, हिरन-शेर आदि जन्मजात विरोधी जीवों की भी शत्रुता समाप्त हो गयी है ॥२॥

श्री आदिनाथ स्वामी ने शुद्धोपयोगरूपी अग्नि में अष्टकर्मरूपी ईंधन को जला दिया है । तथा उनके सिर पर काली लटें

इसप्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो उसी का धुआं उड़ रहा हो ॥३॥

कविवर दौलतराम जी कहते हैं कि जो जीवन और मरण, हानि और लाभ तथा तृण और मणि आदि सबको समान दृष्टि से देखते हैं, मैं भी उन श्री आदिनाथ स्वामी का यशोगान करता हूँ ॥४॥



## निरख सखी ऋषिन



निरख सखी ऋषिन को ईश यह ऋषभ जिन,  
परखि कैं स्व-पर परसौंज छारी ॥  
नैन नाशाग्र धरि, मैन विनसाय कर,  
मौनयुत स्वास दिशि सुरभिकारी ॥

धरासम क्षांतियुत, नरामरखचर-नुत,  
वियुत रागादि मद दुरित हारी ।  
जास क्रम पास भ्रम नाश पंचास्य-मृग,  
वास करि प्रीति की रीति धारी ॥

ध्यान-दौं माहिं विधि-दारु प्रजराहिं,  
शिर केश शुभ किधों धूवाँ विथारी ।  
फँसे जगपंक जन रंक तिन काढ़ने,  
किधों जगनाह बाँह प्रसारी ॥

तप्त हाटक वरण, वसन विन आभरण,

**खरे थिर ज्यों शिखर मेरुकारी ।  
'दौल' को देन शिवधौल जगमौल जे,  
तिन्हें कर जोर वन्दना हमारी ॥**

**अर्थ :** हे सखी ! ऋषियों के स्वामी श्री ऋषभ जिनेन्द्र को देखो, जिन्होंने स्व और पर-दोनों को भली प्रकार पहचानकर पर की परिणति का पूर्णतः त्याग कर दिया है। इन्होंने अपने नेत्रों को नासिका के अग्रभाग पर धारण कर रखा है और कामभाव को बिनष्ट कर दिया है। ये मौन भाव से युक्त है और इनकी श्वास दिशाओं को सुगम्भित कर रही है। ये पृथ्वी के समान थैर्य से युक्त है, मनुष्य, देव एवं विद्याधरों द्वारा नमस्कृत हैं, रागादि विकार-भावों से रहित हैं और सम्पूर्ण पापों को दूर करनेवाले हैं। सिंह और मृग भी इनके चरणों के पास भ्रम (अज्ञान, क्रोध) को दूर करके प्रेम का भाव धारण करते हैं।

इनके सिर के बाल सफेद है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों उन्होंने ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी काठ को जला दिया है और यह उसी के धुएँ का विस्तार है। उनकी भुजाएँ नीचे लटकी हुई हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों उन्होंने ससार के कीचड़ में फेंसे हुए अनाथ प्राणियों को उसमें से निकालने के लिए ही अपनी भुजाओं को इस प्रकार नीचे लटका रखा है। श्री ऋषभ जिनेन्द्र के शरीर का वर्ण तप्त स्वर्ण के समान है। वे वस्त्र-आभरण से रहित हैं और सुमेरु पर्वत के शिखर के समान स्थिर हैं। कविवर दौलतराम कहते हैं कि ये श्री ऋषभ जिनेन्द्र मुझे मोक्षमहल को देनेवाले हैं और जगत के शिरोमणि हैं। मैं इन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।



## भज ऋषिपति



**भज ऋषिपति ऋषभेश जाहि नित, नमत अमर असुरा ।  
मनमथ-मथ दरसावन शिव-पथ, वृष-रथ-चक्र-धुरा ॥1॥**

जा प्रभु गर्भ छ-मास पूर्व सुर, करी सुवर्ण धरा ।  
जन्मत सुरगिरि धर सुरगण युत, हरि पय-न्हवन करा ॥2॥

नटत नृत्यकी विलय देख प्रभु, लहि विराग सु थिरा ।  
तबहि देवऋषि आय नाय शिर, जिन पद पुष्प धरा ॥3॥

केवल समय जास वच-रवि ने, जगभ्रम-तिमिर हरा ।  
सुद्दग-बोध-चारित्र-पोत लहि, भवि भव-सिन्धु तरा ॥४॥

योग संहार निवार शेष विधि, निवसे वसुम धरा ।  
'दौलत' जे याको जस गावें, ते हैं अज अमरा ॥५॥

**अर्थ :** हे भाई ! ऋषियों के स्वामी उन ऋषभ जिनेन्द्र का भजन करो जिनको सुर और असुर भी सदा नमस्कार करते हैं। वे काम-विकार को नष्ट करनवाले हैं, मोक्षमार्ग को दिखानेवाले हैं और धर्मरूपी रथ के चक्र की धुरी हैं। श्री ऋषभदेव के गर्भ मे आने से छह माह पूर्व ही ठेवो ने इस पृथ्वी को स्वर्णण्य बना दिया था और उनके जन्म लेने पर इन्द्र ने अपने देवों को साथ लेकर सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया था। श्री ऋषभदेव ने नृत्य करती हुई नीलाजना नामक नर्तकी को विलय होते देखकर वैराग्य प्राप्त कर लिया था और फिर उसी समय लौकान्तिक देवों ने भी आकर एवं उनके चरणों मे मस्तक झुकाकर उनको पुष्पाजलि अर्पित की थी। उसके बाद केवलज्ञान उत्पन्न होने पर ऋषभदेव के वचनरूपी सूर्य ने संसार के भ्रमरूपी अन्धकार को दूर कर दिया था, जिससे भव्यजीवों ने सम्प्रदर्शन-ज्ञान-चारित्रि की नीका प्राप्त करके संसार-सागर को पार कर लिया। अन्त में श्री ऋषभ जिनेन्द्र ने योग-निरोध करके शेष कर्मों का भी नाश कर दिया और वे अष्टम भूमि सिद्धशिला पर जाकर विराजमान हो गये।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि जो जीव श्री ऋषभ जिनेन्द्र का यशकीर्तन करते हैं, वे अजर-अमर पद की प्राप्ति कर लेते हैं।



## मेरी सुध लीजै

मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥टेक॥



मैं अनादि भवभ्रमत दुखी अब, तुम दुख मेटत कृपाधाम ।  
मोहि मोह घेरा कर चेरा, पेरा चहुँगाति विदित ठाम ॥  
मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥१॥

विषयन मन ललचाय हरी मुझ, शुद्धज्ञान-संपति ललाम ।  
अथवा यह जड़ को न दोष मम, दुखसुखता, परनतिसुकाम ॥  
मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥२॥

भाग जगे अब चरन जपे तुम, वच सुनके गहे सुगुनग्राम ।  
परमविराग ज्ञानमय मुनिजन, जपत तुमारी सुगुनदाम ॥  
मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥३॥

निर्विकार संपति कृति तेरी, छविपर वारों कोटिकाम ।  
भव्यनिके भव हारन कारन, सहज यथा तमहरन धाम ॥  
मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥४॥

तुम गुनमहिमा कथनकरन को, गिनत गनी निजबुद्धि खाम ।  
'दोलतनी' अज्ञान परनती, हे जगत्राता कर विराम ॥  
मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम ! मोहि कीजै शिवपथगाम ॥५॥

**अर्थ :** हे ऋषभदेव, हे स्वामी ! मेरी सुधि लीजिए, मुझे भी मोक्ष-पथ पर गमन करने योग्य बनाइए। मोक्षपथ का अनुगामी कीजिए।

मैं अनादि काल से भवभ्रमण करते-करते अब बहुत दुःखी हो गया हूँ। मेरा दुःख मेटनेवाले आप ही दयालु हैं। मुझे मोह ने घेरकर अपना दास बना लिया है और चारों गतियों के परिचित स्थानों में भटकाया है।

विषयों में मेरे मन को ललचाकर, मेरे शुद्ध ज्ञान व संयम की सुंदर निधि को हर लिया है, छीन लिया है। इसमें पुद्गल जड़ का कोई दोष नहीं है; मेरा ही दोष है, मेरा दुःखी व सुखी होना मेरी ही परिणति है।

अब मेरा भाग्योदय हुआ है कि मुझे आपके चरणों में शरण मिली है, आपके चरणों की शरण में मैं आया हूँ और आपके

वचन सुनकर अपने गुणों का भान हुआ है, गुण ग्रहण किए हैं। वीतरागी, ज्ञानी व मुनिगण आदि सब आपके गुणों की माला जाते हैं:

ज्ञान का विकाररहित होना ही आपकी सुन्दर कृति/रचना है। आपकी सुन्दर छवि पर करोड़ों कामदेवों की भी बलिहारी है। भव्यजनों की भवपीड़ा को हरने के लिए आप श्रेष्ठ निमित्त हैं और अज्ञानअंधकार को हरनेवाले प्रकृत सूर्य हैं।

आपके गुणों की महिमा का ज्ञान करना व उस रूप आचरण करने के लिए उन गुणों की गिनती करने में गणधर भी सक्षम नहीं है। दौलतराम कहते हैं कि हे जग के दुःखों से छुड़ानेवाले, मेरे अज्ञान की ऐसी परिणति को अब आप विराम दो, समाप्त करो।



## आप भ्रमविनाश आप



तर्ज : अपनी सुधि भूल आप

आप भ्रमविनाश आप आप जान पायौ ।  
कर्णधृत सुवर्ण जिमि चितार चैन थायौ ॥टेक ॥

मेरो मन तनमय, तन मेरो मैं तनको ।  
त्रिकाल यौं कुबोध नश, सुबोधभान जायौ ॥१॥

यह सुजैनवैन ऐन, चिंतन पुनि पुनि सुनैन ।  
प्रगटो अब भेद निज, निवेदगुन बढ़ायौ ॥२॥

यौं ही चित अचित मिश्र, ज्ञेय ना अहेय हेय ।  
इंधन धनंजय जैसे, स्वामियोग गायौ ॥३॥

भंवर पोत छुटत झटति, बांछित तट निकटत जिमि ।

# रागरुख हर जिय, शिवतट निकटायौ ॥४॥

विमल सौख्यमय सदीव, मैं हूँ नहिं अजीव ।  
द्योत होत रज्जु में, भुजंग भय भगायौ ॥५॥

यौं ही जिनचंद सुगुन, चिंतत परमारथ गुन ।  
'दौल' भाग जागो जब, अल्पपूर्व आयौ ॥६॥

**अर्थ :** अपने भ्रम का, अपने संदेह का नाश करने पर ही मैं अपने आपको जान पाया हूँ, इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट/प्रसन्न हूँ, जैसे कानों से आत्मसात किये हुए! धारण किये हुए (सुने हुए) स्वर्ण को प्रत्यक्ष देखकर सन्तोष मिलता है अर्थात् अब तक जिसे सुनकर जाना था अब उसे प्रत्यक्ष देखकर/अनुभवकर चित्त में संतोष व प्रसन्नता होती है।

यह शरीर मेरा है, और सदा ही मैं इस तन का हूँ - ऐसी एकाग्रता/तन्मयता है जो कि मिथ्या है, जब यह मिथ्याज्ञान टूट जाता है तब ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है।

जिनेन्द्र के इन वचनों पर जब बार-बार विभिन्न नय-पक्षों द्वारा चिंतन किया जाता है तब शरीर व आत्मस्वरूप की भिन्न प्रतीति होती है और धर्म में रुचि बढ़ती है, वैराग्य उत्पन्न होने लगता है।

यह जीव - पुद्गल से तन्मय होकर हेय और अहेय (उपादेय) का भेद नहीं कर पाता (अग्नि व ईधन का योग एक उत्तम योग माना जाता है, स्वामियोग माना जाता है। इसमें जो कुछ भी डालो सब अग्निमय हो जाता है इसलिए), जैसे ईधन और आग दोनों एकमेक हो जाते हैं ऐसा ही योग वह जीव व पुद्गल का समझने लगता है।

नाव के भँवर में से निकलते ही वांछित (इच्छित, चाहा हुआ) तट निकट प्रतीत होने लगता है, निकट आ जाता है, उसी प्रकार राग-द्वेषरूपी भंवर से निकलते हो अर्थात् राग-द्वेष का नाश होते ही, मोक्ष का तट समीप ही लगता है, आ जाता है।

जैसे उजाला होते ही रस्सी को साँप समझे रहने की भाँति मिट जाती है उसी प्रकार 'स्व' का बोध / उजाला होते ही मैं सदा सुखमय हूँ, मैं अजीव नहीं हूँ, ऐसा ज्ञान हो जाता है।

दौलतराम कहते हैं कि अपने कल्याण के लिए श्री जिनेन्द्र के गुणों का चिंतवन सूर्योदय के पूर्व पौ फटने के जैसा एक अवसर है जो भाग्यवश उपलब्ध हुआ है।





# आपा नहिं जाना तूने

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ॥

देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे ॥१॥

निज निवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ॥२॥

शिव चाहै तो द्विविधकर्म तें, कर निज परिणति न्यारी रे ॥३॥

'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यौ, तिन भवविपति विदारी रे ॥४॥

**अर्थ :** हे मनुष्य ! तू अपने आपको नहीं जान सका, अपना स्वरूप नहीं पहचान सका तो तू कैसा ज्ञानी है ?

देह से सम्बन्धित क्रिया करके तू अपने आपको मोक्ष मार्गी मानता रहा । तूने आत्मा को नहीं जाना... ॥१॥

अपने में विरक्ति बिना घोर परीषह सहना, जिनेन्द्र देव कहते हैं कि ये तेरे किसी अर्थ के नहीं, सब विफल, फलरहित या उल्टा फल देनेवाले हैं । तूने आत्मा को नहीं जाना... ॥२॥

यदि तुझे मोक्ष की चाह है तो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के कर्म से अपनी परिणति न्यारी देख, अलग-अलग जान व समझ। तूने आत्मा को नहीं जाना... ॥३॥

दौलतरामजी कहते हैं कि जिन्होने अपने आपको भगवान देखा उन्होंने ही संसारभ्रमण की विपत्ति को दूर किया, उससे छूट गये । तूने आत्मा को नहीं जाना... ॥४॥



# उरग सुरग नरईश शीस



उरग-सुरग-नरईश शीस जिस, आतपत्र त्रिधरे ।  
कुंदकुसुमसम चमर अमरगन, ढारत मोदभरे ॥टेक ॥

तरु अशोक जाको अवलोकत, शोकथोक उजरे ।  
पारजात संतानकादिके, बरसत सुमन वरे ॥१॥

सुमणिविचित्र पीठअंबुजपर, राजत जिन सुथिरे ।  
वर्णविगत जाकी धुनिको सुनि, भवि भवसिंधुतरे ॥२॥

साढ़े बारह कोड़ जातिके, बाजत तूर्य खरे ।  
भामंडलकी दुतिअखंडने, रविशशि मंद करे ॥३॥

ज्ञान अनंत अनंत दर्श बल, शर्म अनंत भरे ।  
करुणामृतपूरित पद जाके, 'दौलत' हृदय धरे ॥४॥

**अर्थ :** समवशरण में जिनके शीश के ऊपर तीन छत्र हैं, जहाँ कुंद के पुष्प के समान सफेद चंकरों को देवगण ढोरते हैं, सुरेन्द्र, नागेन्द्र व नरेन्द्र उन्हें अपने शीश नमाकर आनन्दित होते हैं।

जो समवशरण में अशोक वृक्ष को देखता है उसके दुःखों का समूह उजड़ जाता है, भंग हो जाता है। संतानक, पारिजात आदि श्रेष्ठ पुष्पों की वहाँ वर्षा होती है।

वहाँ सुन्दर मणियों से जड़ित-कमलरूपी सिंहासन पर श्री जिनेन्द्रदेव स्थिर होकर विराजमान हैं। उनकी निरक्षरी दिव्यधनि को सुनकर भव्यजन इस भवसमुद्र से पार होते हैं, तिर जाते हैं।

(समवशरण में) साढ़े बारह करोड़ जाति के बाजे बजते हैं। उनके भामंडल की आभा सूर्य के तेज व चन्द्रमा की कांति को भी फीका (निस्तेज) कर देती है।

उन अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल व अनन्त सुख के धारी अरिहन्त के करुणामयी चरणों को दौलतराम अपने हृदय में धारण करते हैं।



## ऐसा मोही क्यों न अधोगति

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै,  
जाको जिनवानी न सुहावै ॥टेक ॥

वीतराग से देव छोड़कर, भैरव यक्ष मनावै  
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रायनि वावै ॥  
ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥१॥

रुचै न गुरु निर्गन्थ भेष बहु, - परिग्रही गुरु भावै  
परधन परतियको अभिलाषै, अशन अशोधित खावै ॥  
ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥२॥

परकी विभव देख है सोगी, परदुख हरख लहावै  
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ॥  
ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥३॥

ज्यों गृह में संचै बहु अघ त्यों, वनहू में उपजावै  
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ॥

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥४॥

आरम्भ तज शठ यंत्र मंत्र करि, जनपै पूज्य मनावै  
धाम वाम तज दासी राखै, बाहिर मढ़ी बनावै ॥  
ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥५॥

नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि में ललचावै ।  
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, ओरन को भटकावै ॥  
ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ॥६॥

**अर्थ :** ऐसा महामोही जीव अधोगति में क्यों नहीं जाएगा जिसे जिनवाणी अच्छी नहीं लगती है ।

जो श्रेष्ठ वीतरागी देव को छोड़कर भैरव, यक्ष आदि की पूजा करता है, दया की कल्पबेल को छोड़कर हिंसा के इन्द्रायण बीज को बोता है ॥१॥

जिसे निर्ग्रथ (अपरिग्रही) गुरु अच्छे नहीं लगते अपितु नाना भेष धारण करनेवाले परिग्रही गुरु अच्छे लगते हैं, जो परधन व परस्ती की अभिलाषा करता है, अशुद्ध भोजन करता है ॥२॥

पर-सम्पत्ति को देखकर दुःखी होता है, पर-दुःख को देखकर खुश होता है, धर्म के लिए तो जरा भी धन नहीं खर्च करता किन्तु विषयभोगों के लिए लाखों रुपये पानी की तरह बहा देता है ॥३॥

वन में जाकर भी घर की भाँति बहुत पाप-संचय करता है, वस्त्र त्यागकर दिग्म्बर कहलाता है किन्तु अपने शरीर को बाघ आदि की खाल से ढँकता है ॥४॥

आरम्भत्यागी होकर ही यन्त्र-मन्त्र के द्वारा लोगों में पूज्य बनता है, घर एवं पत्नी का त्यागी होकर कुटिया बनवाता है एवं दासी रखता है ॥५॥

यति, तपस्वी जैसे ऊँचे नाम धारण करके भी जिसका मन विषयों में ललचाता है । कवरिवर दोलतराम कहते हैं कि ऐसा तीव्रमोही जीव स्वयं भी अनन्त जन्मों तक संसार में भटकता है और दूसरों को भी भटकाता है ॥६॥





# ऐसा योगी क्यों न अभयपद

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै, सो फेर न भवमें आवै ॥

संशय विभ्रम मोह-विवर्जित, स्वपर स्वरूप लखावै  
लख परमात्म चेतन को पुनि, कर्मकलंक मिटावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥१॥

भवतनभोगविरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै  
मोहविकार निवार निजातम-अनुभव में चित लावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥२॥

त्रस-थावर-वध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावै  
रागादिकवश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥३॥

बाहिर नारि त्यागि अंतर, चिद्वृह्णि सुलीन रहावै  
परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग बहावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥४॥

पंच समिति त्रय गुप्ति पाल, व्यवहार-चरनमग धावै  
निश्चय सकल कषाय रहित है, शुद्धात्म थिर थावै ॥

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥५॥

कुंकुम पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै  
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म-शुकल को ध्यावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥६॥

जाके सुखसमाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै  
'दौल' तासपद होय दास सो, अविचलऋद्धि लहावै ॥  
ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै ॥७॥

**अर्थ :** ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद (भयरहित पद-मोक्ष) पायेगा जिससे संसार में फिर उसका आवागमन नहीं होगा ।

जो संशय, विभ्रम और विमोह का नाशकर, अपना और अन्य के, स्व और पर के भेद-स्वरूप को स्पष्ट जाने व देखें। जो अपने परम आत्मरूप को पहचान-कर आत्मा पर लगे कर्मरूपी कलंक को मिटा दे, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पायेगा ? ॥१॥

संसारी अवस्था में जो देह मिली है, उसके विषयों से विरक्त होकर जो नग्न दिगम्बर मुनि हो जावे और मोहनीय कर्म के विकारों से रहित अपनी आत्मा (निजात्मा) का चिंतन करें; उसकी अनुभूति / प्रतीति करें, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पावेगा ? ॥२॥

जो प्रमाद को छोड़कर स्थावर (एकेन्द्रिय) और त्रस (दो से पंचेन्द्रिय) जीवों की हिंसा से सदा बचे । राग-द्वेष के कारण कभी झूठ न बोले और बिना दिया हुआ किसी का एक तिनका भी ग्रहण न करें, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पावेगा ? ॥३॥

जो बाह्य में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे अर्थात् नारी- प्रसंग का त्याग करके अपने अन्तकरण से अपने चैतन्यगुणों में निमग्न होवे और पूर्णतया धर्म का साररूप अपरिग्रह (बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार परिग्रह-रहितता) का निर्वाह करें - पालन करें, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पावेगा? ॥४॥

जो पाँच समिति, तीन गुप्ति का पालन करते हुए आचरण का व्यवहाररूप पालन करें और फिर निश्चय से सभी कषायों को छोड़कर अपने शुद्ध आत्मध्यान में स्थिर हों, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पावेगा ? ॥५॥

केशर या कीचड़, शत्रु और नौकर, मणि हो या तिनका, सॉप हो या माला, सब में समताभाव रखें। आर्त और रौद्र नाम के दोनों अपध्यान छोड़कर, धर्म और शुक्ल ध्यान को अपनावें, ऐसा योगी क्यों नहीं अभयपद पावेगा ? ॥६॥

उस अलौकिक सुख का अर्थात् जिसकी बाह्य व आन्तरिक महिमा का वर्णन करने में इद्ध को भी आकुलता होती है अर्थात् इन्द्र भी उनके गुणों को पूर्णरूपेण कह नहीं सकता - उनका वर्णन नहीं कर सकता। दौलतराम कहते हैं कि जो उनके चरणों की भक्ति करता है, सेवा करता है, वह स्थिररूप से ऋद्धियों को प्राप्त करता है, धारण करता है ॥७॥



## और अबै न कुदेव सुहावै

और अबै न कुदेव सुहावै,  
जिन थाके चरनन रति जोरी ॥टेक ॥

कामकोहवश गहैं अशन असि,  
अंक निशंक धरै तिय गोरी ।  
औरन के किम भाव सुधारैं,  
आप कुभाव-भारधर-धोरी ॥१॥

तुम विनमोह अकोहछोहविन,  
छके शांत रस पीय कटोरी ।  
तुम तज सेय अमेय भरी जो,  
जानत हो विपदा सब मोरी ॥२॥

तुम तज तिनै भजै शठ जो सो  
दाख न चाखत खात निमोरी ।



## हे जगतार उधार 'दौल' को, निकट विकट भवजलधि हिलोरी ॥३॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र ! मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ, अब मुझे अन्य कोई देव नहीं भाते, नहीं सुहाते, अच्छे नहीं लगते ।

काम और क्रोध के वशीभूत होकर जो भोगों को स्वीकार करते हैं, शरीर पर अस्त्र-शस्त्र रखते हैं और अपने साथ स्त्री को रखते हैं वे औरों के क्या भाव सुधारेंगे, जो स्वयं ऐसे कुभावों / खोटे भावों का बोझ ढोनेवाले हैं, कुभाषों के स्वामी हैं ! ॥१॥

आपने मोह का नाश कर दिया है, आप क्रोध और क्षोभ से रहित हैं और शांति-रस का पान करके तृप्त हैं। आपकी भक्ति को छोड़कर हमने अपरिमित विपदाओं को सहा है, उनका उपार्जन किया है, यह आप सब जानते हैं ॥२॥

आपको छोड़कर जो दुष्ट अन्य की भक्ति करता है, वह (मीठी) दाख को छोड़कर नीम को कड़वी निमोरी खाने के समान है। दौलतराम प्रार्थना करते हैं - हे जगत से पार उतारनेवाले, इस भव-समुद्र की विकट लहरों से हमें बाहर निकालकर हमारा उद्धार करो, अपने निकट लो, अर्थात् हमें भी मोक्ष की प्राप्ति हो ॥३॥



## और सबै जगद्वन्द्व

और सबै जगद्वन्द्व मिटावो, लो लावो जिन आगम-ओरी ॥टेक ॥



है असार जगद्वन्द्व बन्धकर, यह कछु गरज न सारत तोरी ।  
कमला चपला, यौवन सुरधनु, स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ॥१॥

विषय कषाय दुखद दोनों ये, इनतें तोर नेह की डोरी ।  
परद्रव्यन को तू अपनावत, क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी ॥२॥

बीत जाय सागरथिति सुर की, नरपरजायतनी अति थोरी ।  
अवसर पाय 'दौल' अब चूको, फिर न मिलै मणि सागर बोरी ॥३॥

**अर्थ :** इस भक्ति में कवि सभी भव्य जीवों से आग्रह कर रहे हैं, कि जग के द्वन्द्वों को मिटाकर जिनागम (जिनवाणी) की ओर अपनी लौ अर्थात् उपयोग लाइये।

ये जगत के द्वंद असार हैं और बंध के कारण हैं और इनसे तुम्हारी कोई गरज (उद्देश्य) पूरी नहीं होने वाली। कमला (पत्नी), यौवन, धन संपत्ति चपला अर्थात् बिजली की चमकार के समान और स्वजन (परिवारजन) पथिक (राहगीर) के समान हैं ॥१॥

विषय कषाय ये दुख देने वाले हैं अतः इनसे नेह (स्नेह/राग) की डोरी को तोड़ देना चाहिए। हे जीव! तू परद्रव्यों को अपनाता है, ऐसी मिथ्या मान्यता का त्याग तू क्यों नहीं करता (क्योंकि वास्तविकता में कोई किसी को नहीं अपनाता/अपना सकता, मात्र मान सकते हैं कि अपनाया है) ॥२॥

सागरों (असंख्यातों वर्ष) पर्यन्त का देवायु का काल एवम थोड़े काल का मनुष्य भव, दोनों ही जल्दी बीत जाते हैं। अब जो अवसर पाया है, उसे रत्नों की बोरी सागर में डालने के समान, गंवाओ नहीं ॥३॥



## कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु



कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर, करि हैं भवोदधि पारा हो ॥टेक ॥

भोगउदास जोग जिन लीनों, छाँडि परिग्रहभारा हो  
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो ॥१॥

कंचन काँच बराबर जिनके, निंदक बंदक सारा हो  
दुर्धर तप तपि सम्यक निज घर, मनवचतनकर धारा हो ॥२॥

ग्रीष्म गिरि हिम सरिता तीरै, पावस तरुतल ठारा हो

करुणाभीन चीन त्रसथावर, ईर्यापिंथ समारा हो ॥३॥

मार मार व्रत धार शील दृढ़, मोह महामल टारा हो  
मास छमास उपास वास वन, प्रासुक करत अहारा हो ॥४॥

आरत रौद्रलेश नहिं जिनके, धर्म शुकल चित धारा हो  
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम, शुधउपयोग विचारा हो ॥५॥

आप तरहिं औरनको तारहिं, भवजलसिंधु अपारा हो  
'दौलत' ऐसे जैन-जतिनको, नितप्रति धोक हमारा हो ॥६॥

**अर्थ :** वे मुनिवर जिन्होंने भोगों से विरक्त होकर संन्यास ले लिया है और सारे परिग्रह के भार को छोड़ दिया है, इंद्रियों को वश में कर अहंकार का त्याग कर दिया है, जिन्होंने संयम का पालनकर, मान कषाय का नाशकर, इंद्रिय विषयों व कषायों को दूर कर दिया है, नष्ट कर दिया है, ऐसे मुनिवर मुझे कब मिलेंगे?

Those who have renounced the bhog and have given up the burden of all grace, subdued the senses and renounced the ego, who, by exercising restraint, destroying pride from human mind, removing sensory subjects and problems, and destroying them, when will I find such monks?

कंचन (स्वर्ण) और काँच, निंदक और प्रशंसक, सब ही जिनके लिए एक-समान हैं। कठोर साधना-तपकर मन-वचन- काय सहित जो शुद्ध रूप में अपनी आत्मा में लीन हैं, साधनारत हैं, ऐसे मुनिवर मुझे कब मिलेंगे?

For whom kanchan (gold) and kancha (glass), cynic and admirer, all are same, the one who meditates hard, when will I find such a sage, who is absorbed in his soul in a pure form, including mind-words and actions?

गर्भी में पहाड़ की चोटी पर, सर्दी में नदी के किनारे और वर्षा में पेड़ के नीचे बैठ कर जो ध्यान करते हैं; जो करुणा से, दया से भीगे हुए हैं त्रस और स्थावर जीवों को देखकर-संभल कर चलते हैं और ईर्या समिति का पालन करते हैं, ऐसे मुनिवर मुझे कब मिलेंगे?

Those who meditate on the top of a mountain in summer, on the banks of a river in winter and under a tree in rain; those who are drenched in compassion, seeing the tras(2,3,4,5 sensed beings) and the sthavar(single sensed beings), they walk cautiously and follow the irya samiti, when will I find such monks?

जो दृढ़ता से शील व्रत को पालते हैं; काम को जिन्होंने मार दिया है, जीत लिया है और मोहरूपी मैल को दूर कर दिया है, जो वन में रहकर एक मास के, छह मास के उपवास करते हैं और जब भी आहार ग्रहण करते हैं तब केवल प्रासुक अर्थात् शुद्ध आहार ही ग्रहण करते हैं - ऐसे मुनिवर मुझे कब मिलेंगे?

Those who strongly observe Sheel Vrat; those who have killed lust and desire, have conquered and removed the scum of fascination , who fast in the forest for one month,six months, and whenever they eat a diet, only consume the foster diet - when will I meet such a saint?

जिनके जरा-सा भी आर्त और रौद्र ध्यान नहीं है, जो धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में लीन रहते हैं और अपनी आत्मा के गहरे ध्यान में डूबे रहकर, अपना उपयोग शुद्ध रखते हैं, अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करते हैं, ऐसे मुनिवर मुझे कब मिलेंगे? Those who do not have even the slightest aartra and raudra meditation, who are absorbed in Dharma and Shukla meditation and remain immersed in the deep meditation of their soul, keep their use pure, consider their pure form, when will I meet such a saint?

जो आप स्वयं इस अपार अगम अथाह भवसागर से तैरकर परिश्रमकर, तपस्या कर स्वयं पार होते हैं व औरों को भी इसी प्रकार पार कराते हैं। दौलतराम कहते हैं कि ऐसे जैन साधुओं को, गुरुओं को हमारा नित्यप्रति - सदैव नमन है।

Which you yourself swim through this immense aghast bhavasagar and work hard, do penance and cross others in the same way. Pt. Sri Daulatram ji says that we are always bowed down to such Jain monks and gurus.



## कुंथुन के प्रतिपाल



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

कुंथुन के प्रतिपाल कुंथ जग, तार सारगुनधारक हैं ।  
वर्जितग्रन्थ कुपंथवितर्जित, अर्जितपंथ अमारक हैं ॥टेक ॥

जाकी समवसरन बहिरंग, रमा गनधार अपार कहैं ।  
सम्यग्दर्शन-बोध-चरण-अध्यात्म-रमा-भरभारक हैं ॥१॥

दशधा-धर्म पोतकर भव्यन, को भवसागर तारक हैं ।  
वरसमाधि-वन-घन विभावरज, पुंजनिकुंजनिवारक हैं ॥२॥

जासु ज्ञाननभ में अलोकजुत-लोक यथा इक तारक हैं ।

जासु ध्यान हस्तावलम्ब दुख-कूपविरूप-उधारक हैं ॥३॥

तज छखंडकमला प्रभु अमला, तपकमला आगारक हैं।  
द्वादशसभा-सरोजसूर भ्रम,-तरुअंकूर उपारक हैं ॥४॥

गुणअनंत कहि लहत अंत को? सुरगुरु से बुध हारक हैं।  
नमें 'दौल' हे कृपाकंद, भवद्वंद टार बहुबार कहैं ॥५॥

**अर्थ :** भगवान कुंथुनाथ ! कुंथु जैसे छोटे-छोटे सभी जीवों के रक्षक अर्थात् समस्त जीव समूह की रक्षा करनेवाले हैं। आप जगत से तारनेवाले और गुणों के सार को धारण करनेवाले हो। कुपंथ का ज्ञान देनेवाले ग्रन्थों को त्यागने और अहिंसा के मार्ग का प्रतिपादन करनेवाले हो।

जिनके समवसरणरूपी बाह्य वैभव-लक्ष्मी का वर्णन अपार है, जिनका वर्णन गणधरदेव करते हैं। आप अंतरंग से सम्यकदर्शन, ज्ञान, चारित्र और अध्यात्म के वैभव से भरपूर हैं।

दशधर्मरूपी जहाज के द्वारा आप भव्यजनों को संसार-समुद्र से तारनेवाले हैं। समाधिरूपी गहनवन को ग्रहणकर, विभाव से भरे जंगल से बाहर निकालनेवाले हैं अर्थात् विभाव से छुड़ानेवाले हैं।

जिनके ज्ञानरूपी आकाश में लोक और अलोक युगपत (एकसाथ) स्पष्ट दिखाई देते हैं। जिनके ध्यानरूपी हाथ का सहारा, आलंबन दुःखों के कुएँ से बचानेवाले हैं।

छह खंड की राजलक्ष्मी को छोड़कर आप मल-रहितता के लिए, कर्ममल को नाश करने के लिए, तपरूपी लक्ष्मी के साक्षात् आवास हैं, स्थान हैं अर्थात् तपरूपी लक्ष्मी के धारक हैं। भ्रमरूपी वृक्ष के उगते हुए अंकुरों को उपाड़नेवाले, नष्ट करनेवाले व समवसरन की बारह सभारूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले, खिलानेवाले सूर्य हैं।

बृहस्पति समान गुरु भी आपके अनन्त गुणों का संपूर्ण वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं अर्थात् वे भी गुणानुवाद कहते-कहते थककर असमर्थ रहे हैं। दौलतराम बारंबार यह विनती करते हैं कि हे कृपासिंधु। मुझे इस संसार के दुःखों से मुक्त करो, इनसे दूर करो।



**कुमति कुनारि नहीं है भली**



कुमति कुनारि नहीं है भली रे, सुमति-नारि सुन्दर गुणवाली ॥

वासों विरचि रचो नित यासों, जो पावो शिवधाम गली रे ।  
वह कुब्जा दुखदा यह राधा, बाधा टारन करन रली रे ॥1॥

वह कारी पर सों रति ठानत, मानत नाहिं न सीख भली रे ।  
यह गोरी चिद्गुण-सहचारिन, रमति सदा स्वसमाधि-थली रे ॥2॥

वा संग कुथल कुयोनि बस्यो नित, तहाँ महादुख-बेलि फली रे ।  
या संग रसिक भविन की निज में, परिणति 'दौल' भई न चली रे ॥3॥

**अर्थ :** हे भाइयों ! कुमतिरूपी स्त्री अच्छी नहीं है, बुरी है तथा सुमतिरूपी स्त्री सुन्दर और गुणवाली है, अतः कुमतिरूपी स्त्री से विरक्त होओ और सुमतिरूपी स्त्री से अनुराग करो, ताकि तुम्हें मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो ।

हे भाइयों ! कुमतिरूपी स्त्री तो कुब्जा और दुःखदाई है, तथा सुमतिरूपी स्त्री राधा है, दुःख दूर करनेवाली है और सुख उत्पन्न करनेवाली है। कुमतिरूपी स्त्री काली है, पर से प्रेम करती है और अच्छी शिक्षा को नहीं मानती है, किन्तु सुमतिरूपी स्त्री गोरी है, चैतन्यगुण के ही साथ विचरण करती है और सदा अपने समाधि-स्थल पर ही रमण करती है। कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे भाइयो ! तुम कुमतिरूपी स्त्री की संगति से सदा बुरे स्थानों और बुरी योनियों में रहे हो, जहाँ अनन्त दुःख की बेल बढ़ती रहती है, किन्तु जो भव्यजीव सुमतिरूपी स्त्री की संगति के रसिक हैं, उनका परिणमन आत्मा में ऐसा होता है कि एक बार हुआ सो हुआ, वह फिर कभी वहाँ से चलायमान नहीं होता ।



## गुरु कहत सीख इमि

गुरु कहत सीख इमि बार-बार,  
विषसम विषयन को टार-टार ॥टेक ॥



इन सेवत अनादि दुख पायो, जन्म मरन बहु धार धार ॥१॥

कर्माश्रित बाधा-जुत फाँसी, बन्ध बढ़ावन द्वंदकार ॥२॥

ये न इन्द्रिकै तृप्ति-हेतु जिमि, तिस न बुझावत क्षारवार ॥३॥

इनमें सुख कल्पना अबुधके, बुधजन मानत दुख प्रचार ॥४॥

इन तजि ज्ञान-पियूष चख्यौ तिन, 'दौल' लही भववार पार ॥५॥

**अर्थ :** श्री गुरु बार-बार यह सीख देते हैं, उपदेश देते हैं कि विष के समान इन इंद्रिय-भोगों को तू दूर हटा दे, छोड़ दे।

Shri Guru repeatedly teaches to stay away from poisonous materialistic pleasures.

इन विषय-भोगों को भोग-भोग कर, इन्हें मान्यता देकर अनेक बार तू जन्म मरण धारण करता रहा है।

You have been wearing birth and death many times by giving recognition to these subjects and enjoyments.

इन कर्मों का आसरा / आधार लेकर दुःखसहित बंधन को, उलझनभरी जकड़न को कसता रहा, नवीन कर्म-बंध से पुष्ट करता रहा।

Taking the help / basis of these deeds, Jeev continues to tighten the unhappy bond, confusing tightness, and reinforces new karma-bandha.

ये विषय-भोग इन्द्रियों को कभी तृप्त कर ही नहीं पाते, इंद्रिय-विषयों से कभी संतुष्टि नहीं होती, जिस प्रकार खारे जल से प्यास नहीं मिटती।

These subjects never satisfy the senses, there is never any satisfaction with the senses, salted water wont quench thirst.

इनमें सुख की कल्पना करना बुद्धिहीनता है । अविवेक है । बुद्धिमान तो इनमें दुःख ही मानता है।

To imagine happiness in them is intelligence, indiscretion. The wise only believes in them.

इनको छोड़कर जिसने ज्ञानामृत का पान किया. दौलतराम कहते हैं कि वह ही भवसागर के पार हो गया।

Except for those who drank Jnanamrit. Daulatram says that he has crossed the Bhavsagar.





# घड़ि घड़ि पल पल

घड़ि-घड़ि पल-पल छिन-छिन निशदिन,  
प्रभुजी का सुमिरन करले रे ॥

प्रभु सुमिरेतैं पाप कट्ट हैं, जन्म मरण दुख हरले रे ॥१॥

मनवचकाय लगाय चरन चित, ज्ञान हिये विच धर ले रे ॥२॥

'दौलतराम' धर्म नौका चढ़ि, भवसागर तैं तिर ले रे ॥३॥

**अर्थ :** हे मनुष्य ! प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक पल और प्रतिक्षण अर्थात् निरंतर और नित्यप्रति तू प्रभु का स्मरण कर; उनके गुणों का चिंतन कर।

प्रभु के स्मरण से, उनके गुणों के स्मरण से पापों का नाश होता है, जन्म मरण के दुख दूर होते हैं।

मन और वचन और कायसहित प्रभु के चरणों में चित्त लगाकर, ज्ञानस्वरूप को हृदय में धारण करो।

दौलतराम कहते हैं कि धर्मरूपी नौका पर चढ़कर तू इस भव-सागर, संसार समुद्र के पार हो जा।



## चन्द्रानन



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

चन्द्रानन जिन चन्द्रनाथ के, चरन चतुर-चित ध्यावतुमहैं ।  
कर्म-चक्र-चक्रचूर चिदात्म, चिनमूरत पद पावतुमहैं ॥टेक ॥

हाहा-हूहू-नारद-तुंबर, जासु अमल जस गावतुमहैं ।  
पद्मा सची शिवा श्यामादिक, करधर बीन बजावतुमहैं ॥१॥

बिन इच्छा उपदेश माहिं हित, अहित जगत दरसावतुमहैं ।  
जा पदतट सुर नर मुनि घट चिर, विकट विमोह नशावतुमहैं ॥२॥

जाकी चन्द्र बरन तनदुतिसों, कोटिक सूर छिपावतुमहैं ।  
आत्मजोत उदोतमाहिं सब, ज्ञेय अनंत दिपावतुमहैं ॥३॥

नित्य-उदय अकलंक अछीन सु, मुनि-उडु-चित्त रमावतुमहैं ।  
जाकी ज्ञानचन्द्रिका लोका-लोक माहिं न समावतुमहैं ॥४॥

साम्यसिंधु-वर्द्धन जगनंदन, को शिर हरिगन नावतुमहैं ।  
संशय विभ्रम मोह 'दौल' के, हर जो जगभरमावतुमहैं ॥५॥

**अर्थ :** चन्द्रमा के समान मुख है जिनका ऐसे श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र के चरणों का विवेकीजन ध्यान करते हैं, जिससे वे कर्मचक्र का नाशकर शुद्ध ज्ञानमयी आत्मा का पद - मोक्ष को पाते हैं।

गंधर्व जाति के (हाहा, हूहू, नारद और तुंबर) देव आपका यशगान करते हैं । लक्ष्मी, इन्द्राणी, शिवा, श्यामा आदि देवियाँ हाथों में बीन लेकर बजा रही हैं।

जिनका उपदेश बिना किसी इच्छा के, नियोगवश-जगत को हित-अहित का भेद बतानेवाला है, जिनके चरणरूपी किनारे का आश्रय सुर- नर और मुनिगण के हृदय से विकट-कठिन विमोह का स्थायीरूप से नाश करनेवाला है।

जिनके शुभ्र वर्ण शरीर की सुन्दर कान्ति करोड़ों सूर्यों के प्रकाश को भी। छुपानेवाली हैं। जिनके आत्मा की ज्योति के प्रकाश में अनत ज्ञेय (जाननयोग्य पदार्थ) दीपायमान हो रहे हैं; प्रकाशित हो रहे हैं।

वे चन्द्रप्रभ सदैव उदित हैं, कभी अस्त नहीं होते: कलंकरहित हैं, अक्षय हैं। मुनिरूपी तारागण का चित्त जिनमें सदा लगा रहता है, उनके ज्ञान की चाँदनी लोक व अलोक में भी सीमित नहीं रह पा रही है अर्थात् सर्वत्र व्याप रही है।

वे चन्द्रप्रभ समतारूपी समुद्र को बढ़ानेवाले, जगत को आनंदित करनेवाले हैं / उनको देवगण भी शीश नमाते हैं । दौलतराम विनती करते हैं कि जगत में भ्रमण करानेवाले, भटकानेवाले संशय, त्रिमोह व विभ्रम का हरण करो, नाश करो।



## निरखत जिन चंद्रवदन



निरखत जिनचन्द्र-वदन, स्वपदसुरुचि आई ॥टेक ॥

प्रगटी निज आनकी, पिछान ज्ञान भानकी  
कला उदोत होत काम, जामिनी पलाई ॥१॥

शाश्वत आनन्द स्वाद, पायो विनस्यो विषाद  
आन में अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई ॥२॥

साधी निज साधकी, समाधि मोह व्याधिकी  
उपाधि को विराधिकैं, आराधना सुहाई ॥३॥

धन दिन छिन आज सुगुनि, चिंतें जिनराज अबै  
सुधरे सब काज 'दौल', अचल ऋद्धि पाई ॥४॥

**अर्थ :** चन्द्रमा के समान सुन्दर जिनेन्द्र के रूप के दर्शन से स्वपद की रुचि जागृत हुई है अर्थात् पुद्गल से भिन्न अपने चैतन्य स्वरूप की बोधि हुई है ।

स्व की व पर-अन्य की पहचान व अनुभूतिरूपी ज्ञान सूर्य के उदित होते ही कामनाओं -इच्छाओंरूपी रात्रि भाग गई और निजस्वरूप की बोधि हुई है ।

अपने अखण्ड व नित्य आत्मानुभूति के स्वाद से सब प्रकार के विषाद मिट गये हैं और पर अर्थात् पुद्गल के प्रति हो रही इष्ट व अनिष्ट की सारी कल्पनाएँ नष्ट हो गई हैं।

अपने आत्म-स्वभाव की साधना से, चिंतन से मोहरूपी व्याधि समाधि में अंतर्लीन हो गई है, समा गई है। सभी उपाधियों को छोड़कर, स्वभाव की आराधना भली लगने लगी है।

आज का यह क्षण, यह दिन अत्यंत शुभ है, धन्य है, गुण सहित है कि जिनराज के स्वरूप का चिंतन होने लगा है। दौलतराम जी कहते हैं कि मैंने यह अचल व स्थायी सिद्धि पा ली है, अब मेरे सभी कार्य सिद्ध हो जायेंगे, सुधर जायेंगे, ठीक हो जायेंगे।



## निरखि जिनचन्द री



निरखि जिनचन्द री माई ॥

प्रभु-दुति देख मन्द भयो निशिपति, आन सुपग लिपटाई ।  
प्रभु सुचन्द वह मन्द होत है, जिन लख सूर छिपाई ।  
सीत अदभुत सो बताई ॥1॥

अम्बर शुभ्र निरन्तर दीसै, तत्त्व मित्र सरसाई ।  
फैल रही जग धर्म-जुन्हाई, चारन चार लखाई ।  
गिरा अमृत सो गनाई ॥2॥

भये प्रफुल्लित भव्य कुमुद मन, मिथ्या तम सो नसाई ।  
दूर भये भव-ताप सबनि के, बुध-अम्बुधि सो बढ़ाई ।  
मदन-चकवे की जुदाई ॥3॥

**श्री जिनचन्द वन्द अब 'दौलत', चितकर चन्द लगाई ॥  
कर्मबन्ध निर्बन्ध होत हैं, नाग सु दमनि लसाई ।  
होत निर्विष सरपाई ॥४ ॥**

**अर्थ :** हे मां श्री चन्द्रप्रभ भगवान को देखो। उनको देखकर चन्द्रमा भी फीका पड़ गया है और उनके सुन्दर चरणों से लिपट गया है। हे माँ ! श्री चन्द्रप्रभ भगवान ऐसे उल्कष्ट चन्द्रमा है जिन्हें देखकर चन्द्रमा तो फीका पड़ ही जाता है, सूर्य भी छिप जाता है। श्री चन्द्रप्रभ भगवानरूपी चन्द्रमा अद्भुत शीतलता प्रदान करनेवाला है। हे माँ ! श्री चन्द्रप्रभ भगवानरूपी चन्द्रमा के उदय से सारा आकाश सदा स्वच्छ दिखाई दे रहा है, तत्त्वरूपी मित्र प्रसन्न हैं, सारे संसार में धर्मरूपी चाँदनी फैल रही है और चारों-ओर सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। श्री चन्द्रप्रभ भगवान की वाणी ही उस चन्द्रमा का अमृत है। हे माँ ! श्री चन्द्रप्रभ भगवानरूपी चन्द्रमा के दर्शन से भव्यजीवों के मनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये हैं, मिथ्यात्वरूपी अन्धकार नष्ट हो गया है, सभी जीवों के सांसारिक ताप दूर हो गये हैं और सम्पर्कज्ञान के सागर में बाढ़ आ गयी है। श्री चन्द्रप्रभ भगवानरूपी चन्द्रमा के दर्शन से कामदेवरूपी चकवे का भी वियोग हो गया है।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे भाई ! अब तू मन लगाकर श्री चन्द्रप्रभ भगवानरूपी चन्द्रमा की वन्दना कर ' इसी से तू कर्मबन्धन से मुक्त होगा; यही एक ऐसी उत्तम नागठमनी है जिससे सर्प (मोह-राग-द्वेषादि) निर्विष हो जाते हैं ।



## चित चिंतकैं चिदेश



चित चिंतकैं चिदेश, कब अशेष पर वमूँ ।  
दुखदा अपार विधि दुचार की चमूँ दमूँ ॥टेक ॥

तजि पुण्य-पाप थाप, आप-आप में रमूँ ।  
कब राग आग शर्म बाग, दागिनी शमूँ ॥१॥

दग ज्ञान भान तें मिथ्या, अज्ञान तम दमूँ ।  
कब सर्व जीव प्राणी भूत, सत्त्व सौं छमूँ ॥२॥

जल मल्ल लिप्त कल सुकल, सुबल्ल परिनमूँ ।  
दल के त्रिशल्ल मल्ल कब अटल्ल पद पमूँ ॥३॥

कब ध्याय अजर अमर को फिर न भवविपिन भ्रमूँ ।  
जिन पूर कौल दौल को यह, हेत हौं नमूँ ॥४॥

**अर्थ :** ऐसा अवसर कब आवे कि मैं अपने चित्त में अपनी आत्मा का चिंतवन कर शेष सारे पर को त्याग द्वृँ अर्थात् समस्त पर को, अन्य को छोड़कर कब मैं अपने स्वरूप में लीन हो जाऊँ और अपार दुःख को देने वाली आठ कर्मों की सेना का दमन करूँ ।

पाप-पुण्य की स्थिति को छोड़कर मैं अपने आप में रमण करूँ और शांति देने वाले उद्यान को जलाने वाली इस रागरूपी आग का शमन करूँ ।

दर्शन और ज्ञान रूपी सूर्य से अज्ञान, मिथ्यात्व के अंधकार को नाश करूँ और जीवों के प्राणमय तत्व को समझकर क्षमा करूँ व स्वयं क्षमा चाहूँ अर्थात् समता धारण करूँ ।

जल, मल से लिपट इस शरीर का बलशाली होकर अच्छा परिणमन हो, परमौदारिक स्वरूप हो और तीन शल्य - माया, मिथ्यात्व और निदान का दमन कर, नाशकर मोक्षपद को प्राप्त करूँ ।

कब इस जन्म मृत्यु रहित आत्मा का ध्यान करूँ जिससे संसार-वन के भ्रमण से मुक्त हो जाऊँ। दौलतरामजी कहते हैं कि जो अपने दिव्य-वचन और सत्य से भरे पूरे हैं, ऐसे जिनेन्द्र को मैं इस हेतु नमन करता हूँ ।



## चिदराय गुण मुनो सुनो

चिदराय गुण मुनो सुनो, प्रशस्त गुरु गिरा ।  
समस्त तज विभाव हो, स्वभाव में थिरा ॥



निज भाव के लखाव बिन, भवाढ्यि में परा ।  
जामन मरन जरा त्रिदोष, अग्नि में जरा ॥

फिर सादि औ अनादि दो, निगोद में परा ।  
जहँ अंक के असंख्य भाग, ज्ञान ऊवरा ॥

तहँ भव अन्तरमुहूर्त के, कहे गणेश्वरा ।  
छ्यासठ सहस्र त्रिशत छत्तीस, जन्म धर मरा ॥

यों बसि अनन्त काल फिर, तहाँ तें नीसरा ।  
भू जल अनिल अनल प्रतेक तरु में तन धरा ॥

अनुधरीर कुन्थु कानमच्छ अवतरा ।  
जल थल खचर कुनर नरक, असुर उपज मरा ॥

अबके सुथल सुकुल सुसंग, बोध लहि खरा ।  
'दौलत' त्रिरत्न साध, लाध पद अनुत्तरा ॥

**अर्थ :** हे जीव ! चैतन्यराज आत्मा के गुणों का मनन करो, सद्गुरु की मंगल वाणी सुनो और समस्त विभाव-भावों का त्याग करके अपने स्वभाव में स्थिर हो जाओ; क्योंकि अपने स्वभाव के दर्शन बिना ही तुम संसार-सागर में पड़े हो और जन्म-जरा-मरणरूपी त्रिदोष की अग्नि में जले हो ।

हे जीव ! तुम अपने स्वभाव के दर्शन बिना ही नित्यनिगोद और इतरनिगोद में रहे हो, जहाँ तुम्हार ज्ञान अक्षर के असंख्यातरें भाग रह गया था। तीर्थकर कहते हैं कि वहाँ पर तुम एक अन्तर्मुहूर्त में 66,336 बार जन्म धारण करके मरे हो । हे जीव ! अनन्त काल निगोद में रहने के बाद जब तुम वहाँ से निकले तो तुमने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति के स्थावर शरीरों को धारण किया। उसके बाद तुमने अनुद्धरी (दो-इन्द्रिय जीव), कुन्थु (तीन-इन्द्रिय जीव) और काणमच्छ (चार-इन्द्रिय जीव) के रूप में जन्म लिया तथा उसके भी बाद तुम जलचर, धलचर, नभचर के रूप में तिर्यच गति में, खोटी मनुष्य गति में, नरक गति में और असुर के रूप में देवगति में भी जन्म धारण कर-करके मरे हो ।

किन्तु हे जीव ! अब तुम्हें उत्तम क्षेत्र, उत्तम कुल, सत्संगति और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई है, अतः अब सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की साधना करके शीघ्र मोक्षपद की प्राप्ति करो ।



## चिन्मूरत दृग्धारी की



चिन्मूरत दृग्धारी की मोहे, रीति लगत है अटापटी ॥

बाहिर नारकिकृत दुःख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी ।  
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परणति नै नित हटाहटी ॥१॥

ज्ञान-विराग शक्ति तें विधि-फल, भोगत पै विधि घटाघटी ।  
सदन-निवासी तदपि उदासी, तातै आस्रव छटाछटी ॥२॥

जे भवहेतु अबुध के ते तस, करत बन्ध की झटाझटी ।  
नारक पशु तिय षट् विकलत्रय, प्रकृतिन की खै कटाकटी ॥३॥

संयम धर न सकै पै संयम, धारन की उर चटाचटी ।  
तासु सुयश गुन की 'दौलत' के, लगी रहै नित रटारटी ॥४॥

**अर्थ :** चैतन्य की मूरत ऐसे दृष्टि-धारी (सम्यग्दृष्टि) की परिणति बड़ी अटपटी सी लगती है ।

वह बाहर में तो नारकियों द्वारा दिये जाने वाले दुःख को भोगता है, किन्तु अंदर में आत्मिक सुख का भी गटागट पान करता रहता है। बाहर में तो अनेक देवांगनाओं के साथ रमण करता है, किन्तु अंतर में सदा उस भोग परिणति से हटने का भाव रखता है।

ज्ञान व वैराग्य शक्ति सम्पन्न होने से यद्यपि कर्म-फल को भोगता है, तथापि उसके कर्म निरंतर कम होते जाते हैं। वह यद्यपि घर में रहता है, तथापि घर से विरक्त रहता है, अतः उसके आश्रव का निरोध भी होता रहता है।

जो क्रियाएँ अज्ञानी जीव के संसार का कारण होती हैं, वे ही क्रियाएं सम्यग्दृष्टि जीव के निर्जरा का कारण होती हैं। सम्यग्दृष्टि जीव की नारक, पशु, स्त्री, नपुंसक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये कर्म प्रकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं।

संयम को धारण नहीं कर सकने पर भी उसके हृदय में संयम धारण करने की तीव्र अभिलाषा रहती है। कविवर दौलतराम जी कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव के उज्ज्वल यश का गुणगान करने की अभिलाषा मेरे हृदय में सदैव बनी रहती है।



## चेतन अब धरि सहज



चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥टेक ॥

मोह ठगौरी खाय के रे, पर को आपा जान ।

भूल निजातम ऋद्धि को तैं, पाये दुःख महान ॥

चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥१॥

सादि अनादि निगोद दोय में, पर्यो कर्मवश जाय ।

श्वास-उसास मँझार तहाँ भव, मरन अठारह थाय ॥

चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥२॥

काल-अनन्त तहाँ यौं वीत्यो, जब भइ मन्द कषाय ।

भूजल अनिल अनल पुन तरु है, काल असंख्य गमाय ॥

चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥३॥

क्रमक्रम निकसि कठिन तैं पाई, शंखादिक परजाय ।

जल थल खचर होय अघ ठाने, तस वश श्वभ्र लहाय ॥

चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥४॥

तित सागरलों बहु दुख पाये, निकस कबहुँ नर थाय ।  
गर्भ जन्मशिशु तरुणवृद्ध दुख, सहे कहे नहिं जाय ॥  
चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥५॥

कबहुँ किंचित पुण्य-पाकतैं चउविधि देव कहाय ।  
विषय-आश मन त्रास लही तहं, मरन समय विललाय ॥  
चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥६॥

यौं अपार भव खारवार में, भ्रम्यो अनन्ते काल ।  
'दौलत' अब निजभाव नाव चढ़ि, लै भवाद्यि की पाल ॥  
चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव ब्याधि ॥७॥

**अर्थ :** हे चेतन! अब ऐसी सहज समाधि अर्थात् एकाग्रता को धारण करो जिससे यह संसार-भ्रमण की व्याधि छूट जाए, नष्ट हो जाए।

मोहरूप ठगिनी से ठगाया जाकर, सुधिबुधि भूलकर पर को ही अपना समझने लगा। अपनी आत्मा की शक्ति को भूल गया और इस कारण बहुत दुःख पाए।

जीव सादि निगोद और अनादि निगोद में कर्मों के वश पड़ा रहा, वहाँ एक श्वास (नाड़ी की एक बार धड़कन) में अठारह बार जन्म-मरण करता रहा।

वहाँ अनन्त काल इसी प्रकार बीत गये, फिर जब कषायों में कुछ मन्दता, कमी आई तब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पतिकायिक होकर असंख्यात काल तक भ्रमण करता रहा।

फिर वहाँ से निकलकर क्रम से दो इंद्रिय शंखादिकी पर्याय पाई और फिर जल-थल-नभवासी होकर बहुत पापार्जन किया, जिसके कारण नरकगामी हुआ।

वहाँ बहुत सागरपर्यन्त दुःख पाया, फिर किसी प्रकार वहाँ से निकलकर कहीं मनुष्य भव पाया, जहाँ गर्भ, जन्म, बचपन, यौवन व वृद्धावस्था में अनेक दुःख पाये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

फिर कुछ पुण्य कर्मों के फलस्वरूप चारों देव निकाय - भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक में उत्पन्न होकर देव कहलाया, जहाँ विषयों को आशा ही मन को सदैव दुःखी करती रहीं और मरण-समय पर्याय-वियोग (देव-पर्याय छूटने) के

कारण बहुत दुःखी हुआ।

इस प्रकार संसार सागर के खारे जल में अनन्त-काल तक भाषण करता रहा। दौलतराम कहते हैं कि अब तो तू अपने निज-स्वरूप की सँभाल कर, निजभाव (स्वभावरूपी) नाव में बैठकर इस संसार-समुद्र का किनारा पकड़ ले।



## चेतन कौन अनीति गही



चेतन कौन अनीति गही रे, न मानै सुगुरु कही रे ।  
जिन विषयनवश बहु दुख पायो, तिनसौं प्रीति ठही रे ॥१ चेतन॥

चिन्मय है देहादि जड़नसौं, तो मति पागि रही रे ।  
सम्यग्दर्शनज्ञान भाव निज, तिनकौं गहत नहीं रे ॥२ चेतन॥

जिनवृष पाय विहाय रागरुष, निजहित हेत यही रे ।  
'दौलत' जिन यह सीख धरी उर, तिन शिव सहज लही रे ॥३ चेतन॥

**अर्थ :** हे चेतन ! तू यह कैसा अनीतिपूर्ण आचरण कर रहा है कि सद्गुरु ने जो सीख दी है , जो तेरे हित की बात कही है , जो उपदेश दिया है तू उसको नहीं मानता ! जिन इन्द्रिय विषयों के कारण तूने बहुत दुखों का उपार्जन किया है , उनमें ही तू प्रीति लगा रहा है , उनसे अपनापन जोड़ रहा है ।

तू चैतन्य स्वरूप होकर भी पुद्गल जड़ वस्तुओं में अपनापन जोड़ रहा है , उनको अपना मान रहा है , उनमें मन लगा रहा है । तेरे अपने भाव - स्वभाव तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, जिन्हे तू स्वीकार नहीं कर रहा है ।

जैनधर्म पाकर तू राग द्वेष को छोड़ दे , तेरा हित इसी में है । दौलतराम कहते हैं कि जिनने इस सीख को, उपदेश को हृदय में धारण किया, स्वीकार किया उनको मुक्ति का मार्ग सहज हो गया अर्थात् वे सुगमता से मुक्त हो गए ।





# चेतन तैं यौं ही भ्रम

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो ।  
ज्यौं निशितममैं निरख जेवरी, भुजंग मान नर भय उर आन्यो ॥

ज्यौं कुध्यान वश महिष मान निज, फंसि नर उरमाहीं अकुलान्यौ ।  
ल्यौं चिर मोह अविद्या पेर्यो, तेरों तैं ही रूप भुलान्यो ॥  
चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो ॥१॥

तोय तेल ज्यौं मेल न तनको, उपज खपज मैं सुखदुख मान्यो ।  
पुनि परभावनको करता है, तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो ॥  
चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो ॥२॥

नरभव सुथल सुकुल जिनवानी, काललब्धि बल योग मिलान्यो ।  
'दौल' सहज भज उदासीनता, तोष-रोष दुखकोष जु भान्यो ॥  
चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो ॥३॥

**अर्थ :** हे चेतन ! तू भ्रमवश भटक रहा है, जैसे मृग जल की चाह में, मिट्टी के ऊपर चमकते कणों को ही जल समझ कर भागता है; जैसे रात्रि के गहरे अँधेरे में रस्सी को साँप समझकर मनुष्य का हृदय भय से भर जाता है उसी भाँति तू भी भ्रम को धारणकर भटक रहा है।

जैसे खोटे ध्यानवश भैंसें का ध्यान करनेवाला अपने को मोटा व बलवान भैंसा मानता हुआ सोचने लगता है, समझने लगता है, चिन्ता करने लगता है कि वह इस छोटे-से द्वार से बाहर कैसे निकल सकता है? और इसी चिन्तन के कारण अंतरंग में आकुलित होता है; वैसे ही तू अनादि से मोहवश अविद्या में रमकर अपना ही स्वरूप भूल गया है।

जैसे पानी और तेल का मेल नहीं होता उसी भाँति इस शरीर और आत्मा का भी मेल नहीं है फिर भी तू इस शरीर के उत्पन्न होने व विनाश होने में सुख व दुःख मानता है। फिर फिर इन पर-भावों का कर्ता होकर, उनको अपना ही कर्म पहचानता है, समझता है।

यह नरभव, यह श्रेष्ठ क्षेत्र, अच्छा कुल और जिनवाणी - ये सब संयोग काललब्धि के बल से मिले हैं। दौलतरामजी कहते हैं कि अब तू विरागता को भज, स्वीकार कर और तुष्टि व विरोध को, क्रोध को, राग-द्वेष को दुःख की खान-भंडार जान।



## चेतन यह बुधि कौन सयानी

चेतन यह बुधि कौन सयानी,  
कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥  
कठिन काकताली ज्यों पायो,  
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी ॥टेक ॥

भूमि न होत चाँदनी की ज्यों,  
त्याँ नहिं धनी ज्ञेय का ज्ञानी ।  
वस्तुरूप यों तू यों ही शठ,  
हटकर पकरत सोंज विरानी ॥  
चेतन यह बुधि कौन सयानी ॥1॥

ज्ञानी होय अज्ञान राग-रुषकर,  
निज सहज स्वच्छता हानी ।  
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन,  
तहाँ अनिष्ट इष्टता ठानी ॥  
चेतन यह बुधि कौन सयानी ॥2॥

चाहे सुख, दुःख ही अवगाहै,  
 अब सुनि विधि जो है सुखदानी ।  
 'दौल' आपकरि आप-आप मैं,  
 ध्याय ल्याय लय समरससानी ॥  
 चेतन यह बुधि कौन सयानी ॥३॥

**अर्थ :** हे चेतन! यह तेरी कौन सी चतुर बुद्धि है कि तू सदगुरु की हितकारी शिक्षा को स्वीकार नहीं करता ?

अरे, काकतालिय न्याय की भाँति संयोगवश अर्थात् बड़ी कठिनाई से तुझे यह मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर मिला है अतः अब तो सदगुरु की शिक्षा को स्वीकार कर ।

हे चेतन! जिस प्रकार चाँदनी में प्रकाशित होने वाली भूमि चाँदनी की नहीं होती, उसी प्रकार यह आत्मा शेय पदार्थों को जानता हुआ भी उनका स्वामी नहीं होता, यही वस्तु का स्वरूप है। किन्तु हे मूर्ख! तू व्यर्थ ही हठ करके पर परिणति व संयोगों को पकड़ता है।

हे चेतन! तू वास्तव में शुद्ध ज्ञनस्वभावी है, किन्तु अज्ञानमय राष-द्वेष करके तूने अपने सहज स्वभाव की स्वच्छता को नष्ट कर लिया है। इच्छियाँ तो जड़ हैं तथा उनके विषय भी अचेतन हैं, उनमें कोई भी इष्ट या अनिष्ट नहीं है, किन्तु तूने स्वयं ही उनमें इष्ट-अनिष्टपना मान रखा है।

हे चेतन! तू चाहता तो सुख है, किन्तु अनादि से दुःख ही पाता है, अतः अब सदगुरु द्वार बताये हुये इस सुखदायक उपाय को सुन एवं समझ। दौलतरामजी कहते हैं कि यदि यह आत्मा स्वयं, स्वयं के द्वारा और स्वयं में ही ध्यानपूर्वक लीन हो जाये तो समता रस के आनंद में निमग्न हो सकता है।



## छाँडत क्यों नहिं रे नर

छाँडत क्यों नहिं रे नर ! रीति अयानी ।  
 बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी ॥



विषय न तजत न भजत बोध-व्रत, दुख-सुख जाति न जानी ।  
शर्म चहै न लहै शठ ज्यों, घृत हेतु बिलोवत पानी ॥

तन धन सदन स्वजन जन तुझ्स सों, ये परजाय बिरानी ।  
इन परिणमन विनश उपजन सों, तें दुख-सुखकर मानी ॥

इस अज्ञान तें चिरदुख पाये, तिनकी अकथ कहानी ।  
ताको तज दग-ज्ञान-चरन भज, निज परिणति शिवदानी ॥

यह दुर्लभ नरभव सुसंग लहि, तत्त्व लखावन वानी ।  
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी ॥

**अर्थ :** हे नर ! तू अपनी अज्ञानदशा को क्यों नहीं छोड़ता है ? सद्गुरु तुझे बार-बार शिक्षा दे रहे हैं, किन्तु तू आनाकानी कर रहा है।

तू न तो विषयों का त्याग करता है, न सम्पर्क एवं संयम की उपासना करता है और न ही दुःख एवं सुख का सच्चा स्वरूप जानता है। यही कारण है कि तू सुख चाहता है, किन्तु सुख की प्राप्ति नहीं कर पाता है; उसी प्रकार, जिस प्रकार कि कोई व्यक्ति धी के लिए पानी बिलोता है।

हे मनुष्य ! शरीर, धन, मकान, परिवार, मित्रादि तो तुझसे भिन्न पर्यायिं हैं। तूने व्यर्थ ही उनके नष्ट और उत्पन्न होने को अपने दुःख-सुख का कारण मान रखा है और इसी अज्ञान के कारण तूने चिरकाल तक इतने दुख प्राप्त किये हैं कि उनको कहा नहीं जा सकता। अतः अब तू अज्ञान को त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कर। यही आत्मपरिणति तुझे मुक्ति प्रदान करनेवाली है।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे नर ! अब तो तूने इस दुर्लभ मनुष्य भव, सत्संगति और तत्त्वदर्शी जिनवाणी को भी प्राप्त कर लिया है, अतः अब तो तू पर में ममता करना छोड़ और सुखदायक समता को अंगीकार कर।



छांडत क्यौं नहिं रे



छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी ।  
बारबार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी ॥टेक॥

विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुख सुखजाति न जानी ।  
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं घृतहेत विलोवत पानी ।  
छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी ॥१॥

तन धन सदन स्वजनजन तुझसौं, ये परजाय विरानी ।  
इन परिनमन विनश उपजन सों, तैं दुःख सुख-कर मानी  
छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी ॥२॥

इस अज्ञानतैं चिरदुख पाये, तिनकी अकथ कहानी ।  
ताको तज दृग-ज्ञान-चरन भज, निजपरनति शिवदानी ।  
छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी ॥३॥

यह दुर्लभ नर-भव सुसंग लहि, तत्त्व लखावत वानी ।  
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी ।  
छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी ॥४॥

**अर्थ :** हे नर ! तू अपनी अज्ञान दशा को क्यों नहीं छोड़ देता ? सदगुरु तुम्हें बार-बार शिक्षा देकर सचेत कर रहे हैं, किन्तु तू आनाकानी (बहाने) कर रहा है।

है जीव ! तू न तो विषयों का त्याग करता है, और न ही सम्यग्ज्ञान एवं संयम की उपासना करता है और न ही दुःख-सुख के सच्चे स्वरूप को जानता है। यही कारण है कि तू सुख तो चाहता है किन्तु उस की प्राप्ति नहीं कर पाता है; उसी प्रकार जिस प्रकार कोई व्यक्ति धी प्राप्त करने के लिये पानी को बिलोने रूपी कार्य तो करता परंतु पानी के बिलोने से धी कैसे

प्राप्त होगा ।

हे मनुष्य! शरीर, धन, मकान, परिवारजन, मित्र आदि तो तुझसे अत्यंत भिन्न पर्याय हैं और तूने व्यर्थ ही उनके नष्ट और उत्पन्न होने को अपने दुःख-सुख का कारण मान रखा है

और इसी अज्ञान के कारण तूने अनादि से इतने दुःख प्राप्त किये हैं कि उनकी कथा कही नहीं जा सकती। अतः अब तू इस अज्ञान कार्य को त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कर - यही आत्मपरिणति तुझे मुक्ति को प्रदान करने वाली है।

कृविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे नर! अब तो तूने इस दुर्लभ मनुष्य भव को, सत्संगति को और तत्व को दर्शने वाली जिनवाणी को भी प्राप्त कर लिया है, अतः अब तू पर में ममता करना छोड़ और सुख को देने वाली समता को धारण करके सच्चा सुख प्राप्त कर।



## छांडि दे या बुधि भोरी



छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी ॥टेक ॥

यह पर है न रहे थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी ।  
यासौं ममता कर अनादितैं, बंधो कर्मकी डोरी ।  
सहै दुःख जलधि हिलोरी ॥१ छांडि॥

यह जड़ है तू चेतन यौं ही, अपनावत बरजोरी ।  
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण निधि, ये हैं संपति तोरी ।  
सदा विलसौ शिवगोरी ॥२ छांडि॥

सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी ।

# 'दौल' सीख यह लीजे पीजे, ज्ञानपियूष कटोरी । मिटै परचाह कठोरी ॥३ छांडि॥

**अर्थ :** मानव ! तुम अपनी मिथ्या धारणा दूर करो और शरीर से व्यर्थ राग न करो ।

यह शरीर परकीय है । पालन-पोषण होने पर भी स्थिर रहने वाला नहीं है । समस्त प्रकार की गंदगी का केन्द्र है । मानव! तुम इस शरीर से ममत्व रखने के कारण ही अनादिकाल से कर्म-जाल में जकड़े हुए हो और दुःखों को उठा रहे हो ।

भोले मानव! क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि शरीर जड़मय है और तू चेतन्यमय है । जब ये दोनों बिलकुल पृथक्-पृथक् वस्तुएं हैं तो तू हठात् इन दोनों का गठबंधन क्यों करना चाहता है ? सम्यगदर्शन, ज्ञान और चारित्र यह निधियां ही तेरी आत्मीय संपत्ति हैं । इसलिए अन्य समस्त प्रकार की सांसारिक माया को छोड़कर तू इस संपत्ति को प्राप्त करने का ही प्रयत्न कर और 'शिव-गोरी' के साथ सुख भोग ।

मानव एक बात और ध्यान रखना । जिन जीवों ने अपने शरीर से सदा के लिए आसक्ति तोड़ ली है, वे चिरकाल के लिए सुखी हो गये । तू मेरी एक सीख मान -- ज्ञान-रूपी अमृत का आकण्ठ पान करके अपने को खूब तृप्त कर ले, जिससे तेरी कठोर पर-चाह नष्ट हो जाय ।



## जबतैं आनंदजननि दृष्टि



तर्ज : निरखत जिन-चन्द्र-वदन

जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ।  
तबतैं संशय विमोह भरमता विलाई ॥टेक॥

मैं हूँ चितचिह्न भिन्न, परतें पर जड़स्वरूप,  
दोउनकी एकतासु, जानी दुखदाई ॥  
जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ॥१॥

रागादिक बंधहेत, बंधन बहु विपति देत,

संवर हित जान तासु, हेत ज्ञानताई ॥  
जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ॥२॥

सब सुखमय शिव है तसु, कारन विधिज्ञारन इमि,  
तत्त्व की विचारन जिन-वानि सुधिकराई ॥  
जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ॥३॥

विषयचाहज्वालतैं, दह्यो अनंतकालतैं,  
सुधांबुस्यात्पदांकगाह तें प्रशांति आई ॥  
जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ॥४॥

या विन जगजाल में, न शरन तीनकाल में,  
सम्हाल चित भजो सदीव, 'दौल' यह सुहाई ॥  
जबतैं आनंदजननि दृष्टि परी माई ॥५॥

**अर्थ :** जब से ये आनन्ददाता (आनन्द को जन्म देनेवाले) विचार आए हैं, सोचने की स्पष्ट दिशा बनी है तब से संशय, विमोह और विभ्रम मिटने लगे हैं।

मैं चैतन्य हूँ, 'पर' से अर्थात् जड़-पुङ्गल से भिन्न हूँ। किन्तु अब तक मैं दोनों को एक ही मानता रहा। अब जाना कि दुःख का कारण यही है। राग आदि बंध के कारण हैं, उनके कारण हुए कर्मबंधन अत्यन्त विपत्तियों के देनेवाले हैं। उनको रोकने के लिए संवर का होना ही एकमात्र हित साधन है, इसका भान, इसका बोध ही ज्ञान है।

यह आत्मा आनन्द का भंडार है, आनन्दमय है। तत्वों के विचार से कर्मों की निर्जरा होती है। ऐसा बोध-स्मरण जिनवाणी के पढ़ने, सुनने, मनन करने से होता है।

विषय-भोगों की कामना-लालसा की आग में अनंतकाल से मैं जल रहा हूँ। वस्तु के समस्त पहलुओं को देखने-समझने की स्याद्वाद प्रणाली से वस्तुस्वरूप समझ में आने लगा और शान्ति का अनुभव हुआ; व्यग्रता-आकुलता मिटने लगी।

इस संसार के व्यूहजाल से छूटने के लिए, इसके सिवा तीनकाल में भी कोई शरण नहीं है। प्रमाद छोड़कर इसका यत्नपूर्वक सदैव मनन-अध्ययन करो। दौलतराम कहते हैं - ऐसा करना ही सुहावना लगता है, भला भाता है।



तर्ज़ : कहा मान ले ओ मेरे

## जम आन अचानक दाबेगा

जम आन अचानक दाबेगा ॥टेक ॥

छिन छिन कटत घटत थिति ज्यों जल, अंजुलि का झर जावेगा ॥

जन्म-ताल-तरु तें पर जिय-फल, कों लग बीच रहावेगा ।  
क्यों न विचार करै नर आखिर, मरन-मही में आवेगा ॥

जम आन अचानक दाबेगा ॥1॥

सोवत मृत जागत जीवत ही, श्वासा जो थिर थावेगा ।  
जैसें कोऊ छिपै सदा सौं, कबहूँ अवसि पलावेगा ॥

जम आन अचानक दाबेगा ॥2॥

कहूँ कबहूँ कैसे हू कोऊ, अन्तक से न बचावेगा ।  
सम्यग्ज्ञान पियूष पिये सों, 'दौल' अमर पद पावेगा ॥

जम आन अचानक दाबेगा ॥3॥

**अर्थ :** हे भाई ! यमराज तुझे एक दिन अचानक अपने तले दबा लेगा । समय क्षण-क्षण करके उसी तरह कटता जा रहा है, आयुकर्म की स्थिति शनै:-शनै: उसी तरह घटती जा रही है, जिस तरह अंजुलि का जल निकलता है। हे भाई ! तू इसका विचार क्यों नहीं करता है कि जन्मरूपी ताड के वृक्ष से गिरा हुआ जीवरूपी फल बीच मे कब तक रहेगा

? आखिर तो मृत्युरूपी भूमि पर आएगा ही।

जैसे कोई व्यक्ति कहीं छुपा हुआ हो, तो वह कभी-न-कभी अवश्य भाग ही जाता है, उसी प्रकार यह श्वास भी एक दिन अवश्य रुक जाएगी।

हे भाई ! तुझे कहीं थी, कभी भी, कैसे भी और कोई भी मृत्यु से नहीं बचा सकेगा । कविवर दौलतरम कहते हैं कि सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत का पान करने से ही जीव को अमरपद की प्राप्ति होती है।



## जय जग भरम तिमिर हरन

जय जय जग-भरम-तिमिर हरन जिनधुनी ॥

या बिन समझे अजों न सोंज निज मुनी ।  
यह लखि हम निज-पर-अविवेकता लुनी ॥

जाको गनराज अंग-पूर्वमय चुनी ।  
सो कही है कुन्दकुन्द प्रमुख बहु मुनी ॥

जे चर जड़ भये पीय मोह-बारुनी ।  
तत्त्व पाय चेते जिन थिर सुचित सुनी ॥

कर्ममल पखारनेहि विमल सुरधुनी ।  
तज विलम्ब अम्ब करो दौल! उर पुनी ॥

**अर्थ :** हे जगत के भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करनेवाली जिनेन्द्र-ध्वनि ! तुम्हारी बारम्बार जय हो।

अनीद काल से आज तक इस जीव ने तुमको समझे बिना ही अपने सच्चे स्वरूप को नहीं पहचाना है और ज्ञानी जीवों ने तुमको समझकर ही स्व-पर सम्बन्धी अज्ञान को नष्ट कर दिया है।

इसी जिनवाणी को गणधर देवों ने अंग-पूर्वमय चुनकर प्रतिपादित किया है और कुन्दकुन्द आदि अनेक प्रमुख आचार्यों ने

भी इसी जिनवाणी का कथन किया है।

जो जीव मोहरूपी शराब पीकर अचेतन-से हो रहे हैं, उनमें से जिन जीवों ने इस जिनवाणी की स्थिर चित्त होकर सुना है, वे तत्त्व की प्राप्ति करके जागृत हों गये हैं।

कर्मरूपी मैल को धोने के लिए यह जिनवाणी पवित्र गंगा नदी के समान है। कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे माँ ! अब देर न करो, मेरा हृदय पवित्र करो ।



## जाऊँ कहाँ तज शरन

जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे ॥टेक ॥

चूक अनादितनी या हमरी, माफ करो करुणा गुन धारे ॥1॥

झूबत हों भवसागरमें अब, तुम बिन को मुह वार निकारे ॥2॥

तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातै हम यह हाथ पसारे ॥3॥

मो-सम अधम अनेक उधारे, वरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारे ॥4॥

'दौलत' को भवपार करो अब, आयो है शरनागत थारे ।  
जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे ॥5॥

**अर्थ :** हे प्रभु! मैं आपकी शरण को छोड़कर अन्यत्र कहाँ जाऊँ?

मैं अब तक आपकी शरण में नहीं आया - अनादि काल से मेरी यह ही चूक/गलती रही है । हे करुणागुण के धारक! इसके लिए मुझे क्षमा करो।

मैं भव-सागर (संसार-समुद्र) में झूब रहा हूँ, आपके अतिरिक्त कौन है जो मुझे इससे बाहर निकाल सके !

आपके समान अन्य कोई देव नहीं है, जिसके आगे हम हाथ पसारकर याचना कर सकें ।

आपने मेरे समान अनेक पापियों को पार उतार दिया है, गुरु और शास्त्र इसका वर्णन करते हैं।

दौलतराम कहते हैं कि मुझे भी अब भव से / संसार से / जन्म-मरण की भटकन से पार लगाइए, मुक्त कीजिए। मैं अब आपकी शरण में आया हूँ।



## जिन बैन सुनत मोरी



जिन बैन सुनत मोरी भूल भगी ॥टेक॥

कर्म-स्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानत सुमति जगी ॥१॥

निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष-मैल पगी ॥२॥

स्यादवाद धुनी निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी ॥३॥

संशय-मोह-भरमता विघटी, प्रगटी आत्म सोंज सगी ॥४॥

'दौल' अपूरव मंगल पायौ, शिवसुख लेन होंस उमगी ॥५॥

**अर्थ :** जिनेन्द्र के दिव्य वचन सुनकर मेरा अज्ञान दूर हो गया - भ्रान्ति दूर हो गई। कर्म का स्वभाव और चेतना का स्वभाव भिन्न-भिन्न है, यह सुमति जिनेन्द्र के दिव्य वचनों को सुनने से आई है।

Hearing the divine voice of Jinendra, my ignorance disappeared - the confusion disappeared. The nature of karma and the nature of consciousness are different, this comes from listening to the divine words of Jinendra.

अज्ञेय को सहज रूप में जानने का अनुभव, जिसका स्वभाव है, वह अनादि से, दीर्घकाल से क्रोध और मैलरूपी छिलके से

ढ़का है। वह अब स्याद्वादमयों धनि रूपी निर्मल जल से विमल होकर समताभावी होने लगा है।

The experience of knowing the unknowable in a natural way, whose nature is, is covered with eternal, long-lived anger and paleness peels. He is now becoming samtamayi, being blown away by syadwad words like clear water.

संशय, मोह, भ्रम के मिटने पर आत्मपरिणति/आत्मा की सामर्थ्य-शक्ति प्रकट हुई है। दौलतराम को अपूर्व, जो पहले कभी न हुआ, ऐसा मंगल हुआ है, अभीष्ट की सिद्धि हुई है कि जिससे मोक्ष-प्राप्ति हेतु प्रबल इच्छा/उत्सुकता बढ़ी है, प्रगट हुई है। At the erasure of doubt, fascination, illusion, the power of self-determination / soul is revealed. Daulataram has been in awe of Apurva, which has never happened before, it has been desired that by which there has been a strong desire / eagerness for salvation.



## जिन राग द्वेष त्यागा



जिन राग द्वेष त्यागा, वह सतगुरु हमारा ।  
तज राज-रिद्धि तृणवत, निज काज सम्हारा ॥टेक॥

रहता है वह वनखंड में, धरि ध्यान कुठारा ।  
जिन मोह महा तरु को, जड़ मूल उखारा ॥1॥

सर्वांग तज परिग्रह, दिग्-अम्बर है धारा ।  
अनंत ज्ञान गुण समुद्र, चारित्र भंडारा ॥2॥

शुक्लाम्बि को प्रजाल के, वसु कानन है जारा ।  
ऐसे गुरु को 'दौल' है, नमोस्तु हमारा ॥3॥

**अर्थ :** जिन्होंने राग और द्वेष को छोड़ दिया, त्याग दिया वे ही हमारे पूज्य गुरु हैं, साधु हैं। जिन्होंने अपने राज - पाट रिद्धि को तिनके के समान छोड़ दिया और अपने आत्म हित के लिए स्वरूप चिंतन में लीन हो गए, जुट गए, वे ही हमारे गुरु हैं।

वे साधु जो जंगल में अपना निवास करते हैं और गहन व कठोर ध्यान में डूबते हैं । वे मोह रूपी वृक्ष को जड़-मूल से उखाड़ने को तत्पर हैं , वे ही हमारे गुरु हैं ।

सब प्रकार का परिग्रह छोड़कर , दिगम्बर भेष जिनने धारण किया और जो अनंत ज्ञान गुण के समुद्र हैं , अगाध चारित्र के भंडार हैं , वे ही हमारे गुरु हैं ।

वे शुक्लध्यान रूपी अग्नि को जलाकर , आठ कर्मों के इस वन को जला रहे हैं । दौलतराम कहते हैं ऐसे साधुजन को हमारा नमन है ।



## जिनवर आनन भान



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

जिनवर-आनन-भान निहारत, भ्रमतम घान नसाया है ॥टेक ॥

वचन-किरन-प्रसरनतैं भविजन, मनसरोज सरसाया है ।  
भवदुखकारन सुखविस्तारन, कुपथ सुपथ दरसाया है ॥१॥

विनसाई कज जलसरसाई, निशिचर समर दुराया है ।  
तस्कर प्रबल कषाय पलाये, जिन धनबोध चुराया है ॥२॥

लखियत उद्गुग न कुभाव कहूँ अब, मोह उलूक लजाया है ।  
हँस कोक को शोक नश्यो निज, परनतिचकवी पाया है ॥३॥

कर्मबंध-कजकोप बंधे चिर, भवि-अलि मुंचन पाया है ।  
'दौल' उजास निजातम अनुभव, उर जग अन्तर छाया है ॥४॥

**अर्थ :** अहो, आज जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी सूर्य को देखने से मेरा भ्रमरूपी धना अन्धकार नष्ट हो गया है। जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी सूर्य से जो वचनरूपी किरणें फैल रही हैं उनसे भव्यजीवों के मनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये हैं और यह भलीभाँति दिखाई देने लगा है कि क्या तो संसार-दुःखों का कारणभूत कुमार्ग है और क्या सच्चा सुख प्रदान करनेवाला सन्मार्ग है।

जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी सूर्य को देखने से काई नष्ट हो गयी है, जल निर्मल हो गया है, कामदेवरूपी राक्षस भाग गया है और वे कषायरूपी प्रबल तस्कर भी भाग गये हैं जिन्होंने हमारा ज्ञानरूपी धन चुरा रखा था।

मिथ्याभावरूपी तारे अब कहीं नहीं दिखाई देते। मोहरूपी उल्लू भी लज्जित हो गया है। आत्मारूपी चकवे का वियोग-दुःख नष्ट हो गया है, क्योंकि उसने अपनी परिणतिरूपी चकवी को प्राप्त कर लिया है।

कर्मबन्धरूपी कमलों के समूह में चिकराल से बंधे हुए भव्यजीवरूपी भ्रमर मुक्त हो गये हैं। कविवर दौलतराम कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी सूर्य को देखने से मेरे हृदय-जगत में आत्मानभव का प्रकाश छा गया है।



## जिनवानी जान सुजान



राग : अहीर भैरव, तर्ज : पूछो न कैसे मैनेरैन विताइ

जिनवानी जान सुजान रे ॥टेक ॥  
लाग रही चिरतैं विभावता, ताको कर अवसान रे ॥जिनवानी ॥

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे ।  
जाहि पिछाने स्वपरभेद सब, जाने परत निदान रे ॥  
जिनवानी जान सुजान रे ॥१॥

पूरब जिन जानी तिनहीने, भानी संसृतिवान रे ।

अब जानै अरु जानेंगे जे, ते पावैं शिवथान रे ॥  
जिनवानी जान सुजान रे ॥२॥

कह 'तुषमाष' सुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे ।  
यौ लखि 'दौलत' सतत करो भवि, जिनवचनामृत पान रे ॥  
जिनवानी जान सुजान रे ॥३॥

**अर्थ :** हे सज्जन चित्त! जिनेन्द्र की वाणी को जानो, समझो। दीर्घकाल से विभावों के प्रति जो रुचि रही है उसका अब अन्त करदो।

O gentle mind! Know the speech of Jinendra, understand it. End the interest that you have had for long-term effects.

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार परिणाम को पहचानो, जिसको पहचानने पर स्व और पर का भेद गहराई से समझ में आता है।

Identify the result according to matter, area, time and emotion, which on identifying makes a deep sense of understanding of the difference between self and the other.

पूर्व में भी जिन्होंने इस स्व-पर भेद को जाना, उन्होंने ही संसार को पहचाना और संसार में भ्रमण का/आवागमन का नाश किया। जो इस भेद को अब जान रहे हैं और जो आगे जानेंगे, वे भी आवागमन का नाशकर मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

Even in the past, those who knew this distinction on their own, they recognized the world and destroyed the travel / movement in the world. Those who are now knowing this distinction and those who will know further, will also destroy the movement and attain salvation.

तुष और माष-दाल और छिलके से भेदज्ञान कर शिवभूति मुनि मोक्षगामी हुए। यह देखकर दौलतराम कहते हैं कि हे भव्य!

चैतन्य के अमृतरूप वचन का निरन्तर पान करो, श्रद्धान करो, चिन्तन करो, मनन करो।  
Shivbhuti Muni attained salvation by discriminating against Tush and Masha-dal and peel. Seeing this, Pt. Daulatram ji says, “O grand! Continue to cherish the eternal word of Chaitanya, pay obeisance, contemplate, meditate.”



जिया तुम चालो अपने



जिया तुम चालो अपने देस, शिवपुर थारो शुभथान ॥टेक ॥

लख चौरासी में बहु भटके, लह्यो न सुख को लेस ।  
मिथ्या रूप धरे बहुतेरे, भटके बहुत विदेस ॥१॥

विषयादिक सेवत दुख पाये, भुगते बहुत कलेस ।  
भयो तिर्यच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेस ॥२॥

अबतो निज में निज अवलोको, जहाँ न दुख को लेश ।  
'दौलतराम' तोड़ जग-नाता, सुनो सुगुरु उपदेस ॥  
जिया तुम चालो अपने देस, शिवपुर थारो शुभथान ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव ! तुम अपने देश में चलो। शिवपुर (मोक्ष) ही तुम्हारा स्थान है और वह शुभ स्थान है।

चौरासी लाख योनियों में बहुत भटक लिये, परंतु कहीं पर तनिक-सा भी सुख नहीं मिला । अनेक मिथ्यावेश-रूप तुमने धारण किए और अनेक विदेशों, जो तुम्हारे अपने देश नहीं है, में तुम भटकते रहे ।

इन्द्रिय-विषयों के कारण बहुत दुःख पाए और बहुत संक्लेश सहे । चारों गतियों - तिर्यच, मनुष्य, नरक और स्वर्ग आदि में अनेक रूप में जन्म लिया ।

दौलतराम कहते हैं कि है जीव ! तुम सत्गुरु का उपदेश सुनो और इस जगत से अपना नाता / संबंध तोड़कर, अपने आत्मा को देख, वहाँ दुख जरा भी नहीं है ।



**जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ**



जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ शिवगैलवा ॥टेक ॥

मोहमदवार पियौ, स्वपद विसार दियौ,  
पर अपनाय लियौ, इन्द्रिसुख में रचियौ,  
भवतैं न भियौ, न तजियौ मनमैलवा ॥  
जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ शिवगैलवा ॥१॥

मिथ्या ज्ञान आचरन धरिकर कुमरन,  
तीन लोक की धरन, तामें कियो है फिरन  
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा ॥  
जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ शिवगैलवा ॥२॥

अब नरभव पायौ, सुथल सुकुल आयौ,  
जिन उपदेश भायौ, 'दौल' झट झिटकायौ,  
परपरनति दुखदायिनी चुरेलवा ॥  
जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ शिवगैलवा ॥३॥

**अर्थ :** आत्मन्, तू अनादि काल से ही मोक्ष-मार्ग को भूला हुआ है ।

तूने मोह रूपी मदिरा पीकर आत्म-रूप को भूला दिया और पर-पद (परकीय परिणति) अपनाकर इन्द्रियों के सुखानुभव में तल्लीन हो गया । इस पर भी तू संसार से भयभीत नहीं हुआ और न ही तूने मन का मैल दूर करने का प्रयत्न किया ॥१॥

आत्मन्, तूने अपनी मिथ्या बृद्धि के कारण पर-पदार्थों में आत्मीयता मानी परन्तु यह पदार्थ अन्त-समय तेरा साथ न दे सके, उससे तुझे महान् संक्लेश हुआ ।

आत्मन्, इस बार तुझे मनृष्य-जन्म मिला और आत्म-कल्याण के अनुरूप तुझे उत्तम स्थान और उत्तम कुल का संयोग भी प्राप्त हुआ है । अब तो तुझे इस दुखद चुड़ैल (पर-परिणति) को अवश्य और शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए ।



# ज्ञानी जीव निवार भरमतम



ज्ञानी जीव निवार भरमतम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसैं ॥टेक॥

सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतैं हैं भिन्नप्रदेशैं ।  
इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवैं वैसे ॥१॥

देह अचेतन चेतन मैं, इन परनति होय एकसी कैसैं ।  
पूरनगलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसैं ॥२॥

पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा रागरुष द्वंद भयेसैं ।  
नसै ज्ञान निज फँसै बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसैं ॥३॥

विषयचाहदवदाह नसै नहिं, विन निज सुधा सिंधुमें पैसैं ।  
अब जिनवैन सुने श्रवननतैं, मिटे विभाव करूं विधि तैसैं ॥४॥

ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहितहेत विलम्ब करेसैं ।  
पछताओ बहु होय सयाने, चेतन 'दौल' छुटो भव भयसैं ॥५॥

**अर्थ :** ज्ञानी जीव अपने सभी भ्रमरूपी अंधकार का, अनिश्चितता का नाशकर इस प्रकार वस्तु-स्वरूप का चिंतवन करते हैं कि --

पुत्र, स्त्री, बंधुजन, धन-संपत्ति आदि सब स्पष्टतः मुझसे भिन्न हैं, इनके व मेरे प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं। उनका परिणमन उनका है

और उनके ही आश्रित है, जैसे उनके भाव हैं उनका परिणमन भी वैसा ही है, उसी प्रकार का है। परन्तु मुझसे सर्वथा भिन्न है।

यह देह जड़-पुद्धल है और मैं चेतन; इनकी दोनों की परिणति एक-सी कैसे हो सकती है? यह देह पुद्धल-जड़ है अतः इसका स्वभाव पुद्धल के अनुरूप अर्थात् गलना व पुरना ही है, जब कि मैं आकाश की भाँति अजन्मा, शक्तिवाला, स्थिर, मलरहित व निर्मल हूँ।

पर का परिणमन मेरे लिए न किसी भाँति इष्ट है और न अनिष्ट! अपितु राग-द्वेष के द्वंद्व के कारण वह सर्वथा निरर्थक है जिसमें फंसने पर कर्मबंध होता है और अपने ज्ञान की हानि होती है जबकि उनसे (राग-द्वेषमय पर-परिणति से) मुक्त होने पर समता-समभाव होता है (मुक्ति मिलती है)।

बिना अपने आत्मा की ओर गति किये, बिना आनंद-सागर में प्रवेश किये विषयों की चाहरूपी आग की तपन मिटती नहीं। अब श्री जिनेन्द्रदेव का उपदेश कानों से सुनकर ऐसी क्रिया करूँ कि जिससे विभाव मिट जावे।

ऐसा दुर्लभ अवसर बड़ी कठिनाई से जो मिला है, उसमें अपने ही हित के लिए यदि विलम्ब किया गया तो हे सयाने! तुझे पछताना पड़ेगा। दौलतरामजी कहते हैं कि हे चेतन, अब तुम भव-भय से छुटकारा पा लो (भव-बंधन से मुक्त होवो)।



## तुम सुनियो श्रीजिननाथ

तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी ॥टेक॥



तुम बिन हेत जगत उपकारी, वसुकर्मन मोहि कियो दुखारी,

ज्ञानादिक निधि हरी हमारी, द्यावौ सो मम फेरी जी ॥

तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी ॥१॥

मैं निज भूल तिनहिं संग लाग्यो, तिन कृत करन विषय रस पाग्यौ,

तातैं जन्म-जरा दव दाग्यौ, कर समता सम नेरी जी ॥

तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी ॥२॥

वे अनेक प्रभु मैं जु अकेला, चहुँगति विपतिमांहि मोहि पेला,  
भाग जगे तुमसौं भयो भेला, तुम हो न्यायनिवेरी जी ॥  
तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी ॥३॥

तुम दयाल बेहाल हमारों, जगतपाल निज विरद समारो,  
ढील न कोजे बेग निवारो, 'दौलतनी' भवफेरी जी ॥  
तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी ॥४॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र! मेरी अरज, मेरा निवेदन सुनिए।

आप बिना किसी निजी स्वार्थ के जगत के हितकारों हैं, भला करनेवाले हैं। अष्ट कर्मों ने मुझे दुःखी कर रखा है। हमारे ज्ञान आदि गुणों को हर लिया है, उन पर आवरण कर रखा है। उस स्थिति से मैं दूर हो जाऊँकँ, फिर जाऊँ, वापस हो जाऊँ इसलिए आपका ध्यान, चिंतवन, स्मरण करता हूँ।

मैं स्व-रूप को भूलकर उन कर्मों के साथ ही लग गया और उनके कारण इंद्रिय-विषयों में ही लगा रहा। जिससे जन्म, रोग एवं बुढ़ापेरूपी दाह में जलता रहा। मुझे अपने समीप लेकर समता से इन्हें शान्त करो।

वे कर्म अनेक हैं और मैं अकेला हूँ। उन्होंने मुझे चारों गतियों में पेला है, पीस दिया है। अब मेरे भाग्य जगे हैं कि मैं आपके साथ आ गया हूँ। आप ही न्याय करके इन सबमें मुझे मुक्त करो - निवेरो।

आप दयालु हैं और हमारा हाल बेहाल है। हे जगतपाल! आप अपनी महिमा - अपने विरद को सँभालो। दौलतराम कहते हैं कि बिना कोई देर किए तुरन्त मुझे निवारो; दुःखों से, भवप्रमाण से बाहर निकालो।



## तोहि समझायो सौ सौ

तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो ।  
देख सुगुरु की परहित में रति, हितउपदेश सुनायो ॥टेक॥



विषयभुजंग सेय दुख पायो, पुनि तिनसौं लपटायो ।  
स्वपद विसार रच्यौ परपदमें, मद रत ज्यौं बोरायो ।  
तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो ।

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो ।  
क्यों न तजै भ्रम चाख समामृत, जो नित संतसुहायो ।  
तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो ।

अबहू समझ कठिन यह नरभव, जिन वृष बिना गमायो ।  
ते विलखैं मनि डार उदधिमें, 'दौलत' को पछतायो ।  
तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो ।

**अर्थ :** अनेक बार समझाने पर भी यह मोही जीव आत्म हित में नहीं लगता इसलिये कविवर कहते हैं कि हे जीव! अब तू श्रीगुरु की तरफ देख तो सही, परहित अर्थात् दूसरों के कल्याण की भावना होने के कारण श्रीगुरु तुझे समझाते हुये तेरे हित की बात कह रहे हैं।

तूने विषयरूपी सर्प के विष का सेवन करके बहुत दुःख पाया है, लेकिन फिर भी तू उन्हीं से प्रीति करता है। तू शराब के नशे में मस्त पागल व्यक्ति की भाँति अपने वास्तविक पद (स्वरूप) को भूलकर परपद में ही लीन हो रहा है।

हे जीव! यह शरीर, धन, मित्र आदि तेरे नहीं हैं, तू उनसे व्यर्थ ही स्नेह करता है। तू ऐसे मिथ्या-भ्रम को छोड़कर समतारूपी अमृत रस का पान क्यों नहीं करता जो रस मुनिराजों को सदा सुहाता है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि यह मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ है। और जो जीव इस मनुष्य भव को जिनधर्म की आराधना के बिना गंवा देते हैं वे बाद में उसी प्रकार विलाप करते हैं जिस प्रकार कोई चिंतामणि रत्न को समुद्र में फेंककर विलाप करता है और अंत में पछताता है।



त्रिभुवन आनंदकारी, जिन छवि थारी, नैन-निहारी ॥

ज्ञान अपूरब उदय भयो अब, या दिन की बलिहारी ।  
मो उर मोद बढ़ो जु नाथ ! सो, कथा न जात उचारी ॥१॥

सुन घन-घोर मोर-मुद ओर न, ज्यों निधि पाय भिखारी ।  
जाहि लखत झट झड़ित मोह-रज, होय सो भवि अविकारी ॥२॥

जाकी सुन्दरता सु पुरन्दर, शोभ लजावन हारी ।  
निज-अनुभूति सुधारस पुलकित, वदन मदन-रिपु हारी ॥३॥

शूल-दुकूल न ब्याल-माल पुनि, मुनि-मन-मोद प्रसारी ।  
अरुण न नयन भ्रमें नहिं सैन न, लंक न बंक सम्हारी ॥४॥

तातें विधि-विभाव क्रोधादि न, लखियत हे जगतारी ।  
पूजत पातिक-पुंज पलावत, ध्यावत शिव-विस्तारी ॥५॥

कामधेनु सुरतरु चिन्तामणि, इक भव सुख करतारी ।  
तुम छवि लखत मोदते जो सुर, तस तुम-पद करतारी ॥६॥

महिमा कहत न लहत पार सुरगुरु हू की बुधि हारी ।  
वारि' कहैं किम 'दौल' चहैं इम, देहु दशा तुम धारी ॥७॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्रदेव ! आज मैंने आपकी तीनों लोकों को आनन्दित करनेवाली मुद्रा को अपनी औँखों से देखा है ।

हे नाथ ! आज का यह दिन बहुत अच्छा है। मैं इसकी बारम्बार बलिहारी जाता हूँ कि आज मुझमें अपूर्व ज्ञान का उदय हुआ है। हे स्वामी ! आज मेरे हृदय में ऐसा आनन्द उत्पन्न हुआ है, जिसे वचनों से नहीं कहा जा सकता ।

हे प्रभो ! जिस प्रकार मेघगर्जना सुनकर मोर के हर्ष का कोई पार नहीं रहता या धन का भण्डार पाकर भिखारी के हर्ष का कोई पार नहीं रहता, उसी प्रकार आज आपके दर्शन करके मेरे हर्ष का कोई पार नहीं रहा है । आपके दर्शन से मेरा मोहकर्म शीघ्र झङ्ग गया है और निर्मलता प्राप्त हो गयी है ।

हे जिनेन्द्रदेव ! आपकी सुन्दरता इन्द्र की शोभा को भी लज्जित करनेवाली है । आपका आत्मानुभूतिरूपी अमृत से प्रफुल्लित मुख कामदेवरूपी शत्रु को परास्त कर देनेवाला है ।

हे देव ! आपके पास न कोई त्रिशूल आदि अस्त्र हैं, न कोई वस्त्र हैं और न कोई सर्प-माला आदि हैं; अपितु आप मुनियों के मन के आनन्द को बढ़ानेवाले हैं। आपके नेत्रों में कोई लालिमा नहीं है, कोई चंचलता नहीं है और कोई संकेतादि भी नहीं है। आपके कटिभाग में भी किसी प्रकार की कोई वक्रता नहीं है ।

हे जगत को तारनेवाले ! आपमें कर्मजनित क्रोधाग्नि भाव भी नहीं दिखाई देते हैं। हे प्रभो ! आपको पूजने से पाप के समूह भाग जाते हैं और आपका ध्यान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

हे प्रभो ! कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि-ये सब तो एक ही जन्म में सुख देते हैं, किन्तु आपकी छवि तो प्रसन्नतापूर्वक देखनेवाले को आपके ही समान पद को दे देती है ।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे प्रभो ! आपकी महिमा का कथन करने में तो देवताओं के गुरु भी पार नहीं पा सकते, उनकी भी बुद्धि हार जाती है, तब फिर मैं आपकी महिमा का कथन कैसे कर सकता हूँ ? हे प्रभो ! मैं तो आप पर बलिहारी जाता हूँ और चाहता हूँ कि मुझे भी वही दशा दीजिए, जिसे आपने प्राप्त किया है ।



## थारा तो बैनामें सरधान



थारा तो बैनामें सरधान घणो छै, म्हारे छवि निरखत हिय सरसावै ।  
तुम धुनि-घन पर-चहन-दहन-हर, वर समता-रस झर बरसावै ॥  
रूप निहारत ही बुधि हो सो, निज-पर चिह्न जुदे दरसावै ।  
मैं चिंदंक अलंकक अमल थिर, इन्द्रियसुख-दुख जड़ फरसावै ॥  
ज्ञान-विराग सुगुण तुम तिनकी, प्रापति हित सुरपति तरसावै ।  
मुनि बड़भाग लीन तिनमें नित, 'दौल' धवल उपयोग रसावै ॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र देव ! आपके वचनों में मेरी बहुत श्रद्धा है। मेरा हृदय आपकी मुद्रा देखकर बहुत आनन्दित होता है। हे प्रभो ! आपकी दिव्यध्वनि के बादल, परपदार्थों की चाहरूपी आग को बुझाने के लिए श्रेष्ठ समता-रस की भारी

वर्षा करते हैं।

आपका रूप देखते ही हृदय मे ऐसा विवेक प्रगट हो जाता है जो स्व और पर को अपने-अपने चिह्नों द्वारा भिन्न-भिन्न दिखाई देता है। यथा, मैं तो चैतन्यस्वरूपी निर्दोष, निर्मल एव स्थिर तत्त्व हूँ, जबकि ये इन्द्रियसुख-दुख अचेतन है, स्पर्शमयी पुदगल हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव ! आपके जिन ज्ञान-वैराग्य आदि श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिए इन्द्र भी तरसता है, और जिनमें महाभाग्यशाली मुनिराज भी सदा लीन रहते है, उन्हीं ज्ञान-वैराग्य आदि उत्तम गुणों में मै भी अपना स्वच्छ उपयोग रमाता हूँ ।



## धन धन साधर्मीजन मिलन



तर्ज़ : धन्य धन्य है घड़ी आज की

धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी,  
बरसत भ्रमताप हरन ज्ञानघनझरी ॥टेक ॥

जाके विन पाये भवविपति अति भरी ।  
निज परहित अहित की कछू न सुधि परी ॥  
धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥१॥

जाके परभाव चित्त सुथिरता करी ।  
संशय भ्रम मोहकी कु वासना टरी ॥  
धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥२॥

मिथ्या गुरुदेवसेव टेव परिहरी ।  
वीतरागदेव सुगुरुसेव उरघरी ॥

धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥३॥

चारों अनुयोग सुहितदेश दिठपरी ।  
शिवमगके लाह की सुचाह विस्तरी ॥  
धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥४॥

सम्यक् तरु धरनि येह करन करिहरी ।  
भवजलको तरनि समर-भुजंग विषजरी ॥  
धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥५॥

पूरवभव या प्रसाद रमनि शिव वरी ।  
सेवो अब 'दौल' याहि बात यह खरी ॥  
धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी ॥६॥

**अर्थ :** साधर्मी बंधुओं के परस्पर मिलने की यह घड़ी , यह अवसर धन्य है जिससे भ्रमरूपी ताप का नाश होकर ज्ञानरूपी वर्षा होती है ।

ऐसे अवसर की प्राप्ति के बिना इस भव में, इस संसार में अनेक दुःख पाते हैं स्व और पर के हित और अहित का ज्ञान नहीं होता ।

परभाव अर्थात् अन्य के प्रति लगाव की भावना समाप्त होकर चित्त में स्थिरता आती है और संशय, भ्रम, मोह की वासनाएँ रुक जाती हैं ।

साधर्मी बंधुओं के सत्संग से कुगुरु व कुदेव की सेवा करने की आदत छूट जाती है और हृदय में वितरागदेव व गुरु की भक्ति जाग्रत होती है ।

इस संगति से अपने कल्याण के लिए चारों अनुयोगों पर दृष्टि जाती है , उनकी ओर रुचि होती है और मोक्ष का लाभ व उस मार्ग पर बढ़ने की चाह बढ़ जाती है ।

यह संगति सम्यक्त्वरूपी वृक्ष को धारण करने वाली है, देह व मन को वश में करने वाली है, संसार समुद्र से तारने वाली

नौका है व कामदेव रूपी भयंकर सर्प के विष को निरस्त करने वाली है अर्थात् साधमीं बंधुओं की संगति कामदेवरूपी सर्प के विष को दूर करने वाली जड़ी बूटी है ।

पूर्व कर्मों के फलस्वरूप यह मोक्षमार्गरूपी लक्ष्मी मिली है , इसकी साधना करो । दौलतराम कहते हैं कि यह ही बात खरी है, सत्य है ।



## धनि मुनि जिन यह

धनि मुनि जिन यह, भाव पिछाना ।  
तनव्यय वांछित प्रापति मानी, पुण्य उदय दुख जाना ॥टेक॥

एकविहारी सकल ईश्वरता, त्याग महोत्सव माना ।  
सब सुखको परिहार सार सुख, जानि रागरुष भाना ॥  
धनि मुनि जिन यह, भाव पिछाना ॥1॥

चित्स्वभावको चिंत्य प्रान निज, विमल ज्ञानदृगसाना ।  
'दौल' कौन सुख जान लह्यौ तिन, करो शांतिरसपाना ॥  
धनि मुनि जिन यह, भाव पिछाना ॥2॥



## धनि मुनि जिनकी लगी

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिव ओरनै ।  
 सम्यग्दर्शनज्ञानचरननिधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ॥धनि॥  
 यथाजातमुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै ।  
 तृन-कंचन अरि-स्वजन गिनत सम, निंदन और निहोरनै ॥१ धनि॥  
 भवसुख चाह सकल तजि वल सजि, करत द्विविध तप घोरनै ।  
 परम विरागभाव पवित्रैं नित, चूरत करम कठोरनै ॥२ धनि॥  
 छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोहझकोरनै ।  
 जग-तप-हर भवि कुमुद निशाकर, मोदन 'दौल' चकोरनै ॥३ धनि॥

**अर्थ :** वे मुनि धन्य हैं जिनको मोक्ष की लगन लगी है । वे रक्त्रय अर्थात् सम्यकदर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी निधि को धारण करते हैं जो संशयरूपी / भ्रमरूपी चोर को हरती है, उसका नाश कर देती है ।

जो सुंदर, नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण कर निर्जन पहाड़ों की कंदराओं में, कोनों में रहते हैं । जो तिनके और स्वर्ण में, शत्रु और आत्मियजनों में, निंदक और प्रशंसक में समान भाव रखते हैं, वे मुनि धन्य हैं ।

सब सांसारिक सुख की कामना छोड़कर , अपनी पूर्ण क्षमता के साथ आन्तरिक व बाह्य दोनों प्रकार से घोर, कठिन तप की साधना करते हैं । निरासक्त, वैराग्य भाव रूपी वज्र को धारण कर वे कठोर कर्मों को भी चूर कर देते हैं , नष्ट कर देते हैं , वे मुनि धन्य हैं ।

यद्यपि उनका शरीर क्षीण हो गया है अर्थात् काया कृश हो गई है , फिर भी आत्मिक दृष्टि से किसी प्रकार की निर्बलता नहीं है और वे मोह की प्रचंड वायु झाकोरे को भी मोह लेते हैं, रोक लेते हैं , उसका प्रतिघात सह लेते हैं । ऐसे जगत का ताप हरनेवाले, कुमुद को विकसित करनेवाले, चंद्रमा के समान उन मुनि को देखकर चकोर की भाँति दौलतराम का चित्त भी प्रसन्न हो जाता है, मुदित हो जाता है ।



## धनि हैं मुनि निज आत्महित



धनि हैं मुनि निज आत्महित कीना  
 भव प्रसार तप अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना ॥

एकविहारी परिग्रह छारी, परीसह सहत अरीना  
पूरव तन तपसाधन मान न, लाज गनी परवीना ॥१॥

शून्य सदन गिर गहन गुफामें, पदमासन आसीना  
परभावनतैं भिन्न आपपद, ध्यावत मोहविहीना ॥२॥

स्वपरभेद जिनकी बुधि निजमें, पागी वाहि लगीना  
'दौल' तास पद वारिज रजसे, किस अघ करे न छीना ॥३॥

**अर्थ :** धन्य हैं वे मुनि जिन्होंने अपनी आत्मा का हित किया। संसार को असार, देह को अपावन, विषयों की चाह (तृष्णा) को विष के समान विचार कर महाव्रत को धारण किया।

जो समस्त परिग्रह को छोड़कर अकेले ही विचरते हैं, शत्रु-सरीखे परीषहों को सहन करते हैं। पहले जो देह धारण की उसे अब तक तप का साधन नहीं समझा, चतुर-समर्थवान के लिए यह लज्जाजनक था; यह विचार कर पश्चात्ताप कर, प्रायश्चित्त किया, ऐसा माननेवाले साधु धन्य हैं ॥१॥

जो सूने मकान में, पहाड़ों की गहरी गुफाओं में पद्मासन से विराजकर (बैठकर) मोह से रहित होकर यह ध्यान करते हैं कि सभी परभावों से भिन्न अपना आत्मा है, निजात्मा है ॥२॥

जिनकी धारणा में, ज्ञान में स्व-पर का भेद स्पष्ट हो गया है और बुद्धि उसी में झूब रही है, उसी में रत है। दौलतराम कहते हैं कौन से पाप हैं जो उनके चरण-कमल की रज से दूर नहीं किए जा सकते? ॥३॥



## ध्यानकृपान पानि गहि नासी



तर्ज : धन्य-धन्य है घड़ी आज की

ध्यानकृपान पानि गहि नासी, त्रेसठ प्रकृति अरी ।  
शेष प्वासी लाग रही है, ज्याँ जेवरी जरी ॥टेक ॥

दुठ अनंगमातंगभंगकर, है प्रबलंगहरी ।  
जा पदभक्ति भक्तजनदुख-दावानल मेघझरी ॥  
ध्यानकृपान पानि गहि नासी, त्रेसठ प्रकृति अरी ॥१॥

नवल धवल पल सोहै कलमें, क्षुधतृष्ण्याधि टरी ।  
हलत न पलक अलक नख बढत न गति नभमाहिं करी ॥  
ध्यानकृपान पानि गहि नासी, त्रेसठ प्रकृति अरी ॥२॥

जा विन शरन मरन जर धरधर, महा असात भरी ।  
'दौल' तास पद दास होत है, वास मुक्तिनगरी ॥  
ध्यानकृपान पानि गहि नासी, त्रेसठ प्रकृति अरी ॥३॥

**अर्थ :** इस पद में अरिहन्त की भक्ति की गई है जिन्होंने ध्यानरूपी तलवार हाथ में लेकर कर्मों की तिरेसठ प्रकृतियों का नाश कर दिया है, शेष पिचासी प्रकृतियाँ जली हुई जेवड़ी (रस्सी) की भाँति रह गई हैं अर्थात् वे अब नवीन कर्म-बंधन नहीं कर सकतीं ।

जो कामरूपी दृढ़ हाथी को भंग करने के लिए बलवान सिंह हैं; जिनके चरण-कमलों की भक्ति, भक्तजनों की दुःखरूपी अग्नि कों शमन करने के लिए - मेघ की झड़ी के समान है।

जिनके शरीर में श्वेत रक्त है, जिनके क्षुधा व तृष्णा की बाधा नहीं है । जिनके पलक टिमटिमाते नहीं हैं, न नख बढ़ते हैं और न केश बढ़ते हैं । वे ऊपर आकाश में ही चलते हैं, गमन करते हैं अर्थात् केवलज्ञान होने के पश्चात् वे पृथ्वी से ऊपर गमन करते हैं।

जिनको शरण के बिना, अनेक बार बुढ़ापा धारण कर-कर के, रोगों से ग्रस्त होकर असाता से, दुःखभरी मृत्यु होती है । दौलतराम कहते हैं कि उनके चरणों में रहने से मुक्तिपुरी (मोक्ष) में रहने का सौभाग्य मिलता है ।



न मानत यह जिय निपट



न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ॥टेक ॥  
कुमतिकुनारि संग रति मानत, सुमतिसुनारि बिसारी ॥

नर परजाय सुरेश चहैं सो, चख विषविषय विगारी ।  
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह, पर-आकुलता विस्तारी ॥  
न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ॥१॥

अपनी भूल आप समतानिधि, भवदुख भरत भिखारी ।  
परद्रव्यन की परनति को शठ, वृथा वनत करतारी ॥  
न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ॥२॥

जिस कषाय-दव जरत तहाँ, अभिलाष छटा घृत डारी ।  
दुखसौं डरै करै दुखकारनतैं नित प्रीति करारी ॥  
न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ॥३॥

अतिदुर्लभ जिनवैन श्रवनकरि, संशयमोह निवारी ।  
'दौल' स्वपर-हित-अहित जानके, होवहु शिवमग चारी ॥  
न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ॥४॥

**अर्थ :** अरे जिय ! सत्गुरु तुझे तेरा हित करनेवाली सीख-उपदेश देते हैं पर तू बिल्कुल अज्ञानी होकर उसे नहीं मानता, ग्रहण नहीं करता। सुमतिरूपी पत्नी का साथ छोड़कर तू कुमतिरूपी नारी के साथ रमण कर रहा है ! इन्द्र भी इस नर-पर्याय को पाने की कामना करते हैं जिसे तूने विषयों के वशीभूत होकर बिगाढ़ दिया है । तूने आकुलता मिटानेवाले ज्ञान को छोड़कर पर की, पुद्धल की अभिलाषाकर आकुलता का विस्तार किया है । तू अपने स्व-रूप को भूलकर, अपनी

समतारूपी निधि को भूलकर स्वयं भिखारी बन गया है, तूने स्वयं ही अपने दुःखों के संसार का सृजन किया है। अर्थात् भिखारी की भाँति संसार के दुःखों को अपनी झोली में डाल लिया है ! पर-द्रव्य की क्रिया का तू स्वयं कर्ता बनने का निरर्थक/व्यर्थ प्रयास करता रहा है। कषायों की जलती हुई आग में चाहरूपी/अभिलाषारूपी धी की आहुतियाँ डालता हैं। दुःख से डरता हुआ भी तू दुःख उपजाने की क्रियाओं से तीव्र प्रीति करता रहा है।

श्री जिनेन्द्र के संशय और मोह को दूर करनेवाले वचनों को सुनने का अवसर अति दुर्लभ है, यह अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है। दौलतराम कहते हैं कि तू अपने हित-अहित का विचार करके अब मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर उसके अनुकूल आचरण का निर्वाह कर अर्थात् संयमरूप चारित्र का पालन कर।



## अहो नमि जिनप



अहो ! नमि जिनप नित नमत शत सुरप,  
कन्दर्प-गज-दर्प नाशन प्रबल पन-लपन ॥

नाथ ! तुम बानि पय पान जे करत भवि,  
नसें तिनकी जरा-मरन-जामन-तपन ॥

अहो शिव-भौन ! तुम चरन चिन्तौन जे,  
करत तिन जरत भावी दुखद भव-विपन ॥

हे भुवनपाल ! तुम विशद गुन-माल उर,  
धरें ते लहें टुक काल में श्रेय पन ॥

अहो गुन-तूप ! तुम रूप चख सहस करि,  
लखत सन्तोष-प्रापति भयो नाकप न ॥

अज ! अकल ! तज सकल, दुखद परिगह कुगह,  
दुःसह परिसह सही धार व्रत-सार पन ॥

पाय केवल सकल लोक करवत् लख्यो,  
अख्यो वृष द्विधा सुनि नसत भ्रम-तम-झपन ॥

नीच कीचक कियो मीच तैं रहित जिम,  
दास को पास ले नाश भव वास पन ॥

**अर्थ :** हे नमिनाथ भगवान ! आपको सदा सौ इन्द्र नमस्कार करते हैं। आप कामदेव रूपी हाथी के दर्प को नष्ट करने के लिए शक्तिशाली सिंह हैं।

हे स्वामी ! जो भव्य जीव आपके वचनरूपी शीतल जल का पान करते हैं, उनकी जन्म-जरा-मरण रूपी तपन समाप्त हो जाती है।

अहो, मोक्ष के मन्दिर ! जो जीव आपके चरणों का चिन्तवन करते हैं, उनका भविष्यकालीन दुःखदायी संसाररूपी वन जल जाता है।

हे तीन लोक के स्वामी जो जीव आपके निर्मल गुणों की माला को अपने हृदय में धारण करते हैं, वे अल्पकाल में उत्तम कल्याण (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

हे गुणों के स्तूप ! इन्द्र आपके रूप को हजार आँखों से देखकर भी तृप्त नहीं हुआ था।

हे अज ! हे अकल ! आपने सम्पूर्ण परिग्रह का, जो महा दुखद खोटे ग्रहों के समान था, त्याग कर दिया था, और उत्तम पच महाव्रतों को धारण कर कठिन परिषहों को सहन किया था।

उसके बाद आपने सम्पूर्ण विश्व को अपने हाथ के समान देख लिया और फिर दो प्रकार के धर्म (मुनिधर्म व श्रावकधर्म) का उपदेश दिया, जिसे सुनकर भ्रमरूपी घना अन्धकार नष्ट हो जाता है।

हे नमिनाथ स्वामी ! जिस प्रकार आपने अधम प्राणी कीचक को मृत्यु से रहित (अमर) कर दिया था, उसी प्रकार आप मुझे भी मेरे पंच-परावर्तन रूप संसार को नष्ट करके अपने पास ले लीजिए।



नाथ मोहि तारत क्यों ना



नाथ मोहि तारत क्यों ना? क्या तकसीर हमारी? ॥टेक ॥

अंजन चोर महा अघकरता, सप्तविसनका धारी ।  
वो ही मर सुरलोक गयो है, वाकी कछु न विचारी ॥  
नाथ मोहि तारत क्यों ना? क्या तकसीर हमारी? ॥१॥

शूकर सिंह नकुल बानर से, कौन कौन व्रतधारी?  
तिनकी करनी कछु न विचारी, वे भी भये सुर भारी ॥  
नाथ मोहि तारत क्यों ना? क्या तकसीर हमारी? ॥२॥

अष्टकर्म वैरी पूरब के, इन मो करी खुवारी ।  
दर्शनज्ञानरतन हर लीने, दीने महादुख भारी ॥  
नाथ मोहि तारत क्यों ना? क्या तकसीर हमारी? ॥३॥

अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुध न विसारी ।  
'दौलत' दास खड़ा करजोरे, तुम दाता मैं भिखारी ॥  
नाथ मोहि तारत क्यों ना? क्या तकसीर हमारी? ॥४॥

**अर्थ :** हे नाथ, मुझे क्यों नहीं पार लगाते हो, मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हो, मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया?

सातों व्यसनों में रत रहनेवाला अंजन चोर जैसा महान पापी भी व्रत धारण करने से मरकर स्वर्ग में गया, उसके बारे में तो किसी भी प्रकार का कोई विचार नहीं किया !

सूअर, सिंह, नेवला, बंदर, वे कौन से व्रत के धारी थे ? उन्होंने क्या-क्या कर्म किए थे, उनका भी विचार नहीं किया और वे भी स्वर्गों में जाकर जन्मे।

पहले से बँधे हुए अष्टकमों ने मुझे अत्यन्त दुःखी किया हुआ है, मेरे दर्शनज्ञानरूपी रक्तों को इन्होंने मुझसे छीन लिया है और मुझे बहुत दुःख दिए हैं।

प्रभु! आप सबके दोषों को क्षमा करते हो, सबका कल्याण करते हो, उन्हें भूलते नहीं हो। दौलतराम आपके समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा है -- आप मुक्ति के दाता हैं और मैं याचक।



## निजहितकारज करना



तर्ज : जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

भाई! निजहितकारज करना, भाई! निज हित कारज करना ॥टेक॥

जनम मरन दुख पावत जातैं, सो विधिबन्ध कतरना ।  
संधिभेद बुधि छैनी तें कर, निज गहि पर परिहरना ॥  
भाई! निजहितकारज करना ॥1॥

परिग्रही अपराधी शंकै, त्यागी अभय विचरना ।  
त्यों परचाह बंध दुखदायक, त्यागत सब सुख भरना ॥  
भाई! निजहितकारज करना ॥2॥

जो भवभ्रमन न चाहे तो अब, सुगुरुसीख उर धरना ।  
'दौलत' स्वरस सुधारस चाखो, ज्यों विनसै भवभरना ॥  
भाई! निजहितकारज करना ॥3॥

**अर्थ :** अरे भाई ! तू वह कार्य कर जो तेरे निज के हित का हो । जिससे तुझे जन्म मरण के दुख प्राप्त होते हैं , मिलते हैं उस कर्मबंध को , उस श्रृंखला को काट दो , कतर दो ।

दर्शन ज्ञान निज के और राग स्पर्श रस आदि पर के / पुद्गल के चिन्ह हैं , इसका निरंतर स्मरण रखना । दोनों में मिलावट प्रतीत होती है , उसे ज्ञानरूपी छैनी से भेदकर निज को ग्रहण करो और पर को , पुद्गल को छोड़ दो । जो परिग्रही है , जो पर का ग्राहक है , चौर है , वह अपराधी की भाँति सदैव शंकित रहता है और जो पर का त्याग कर देता है वह निर्भय होकर विचरण करता है । इसीप्रकार पर की कामना , तृष्णा कर्मबंध करनेवाली व दुःख को देने वाली है , पर को छोड़ने से निज सुख की प्राप्ति होती है ।

जो तू संसार भ्रमण से छूटना चाहता है तो सद्गुरु के उपदेश को हृदय में धारण करना । दौलतराम कहते हैं कि अपनी ज्ञानसुधारस का , ज्ञान रूपी अमृत का पान करो जिससे संसार में मृत्यु का विनाश होवे अर्थात् जन्म मरण से छुटकारा मिले ।



## नित पीज्यौ धी धारी



राग : उझाज जोगी रासा

नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥टेक॥

वीरमुखारविंदतैं प्रगटी, जन्मजरागद टारी ।  
गौतमादिगुरु-उरघट व्यापी, परम सुरुचि करतारी ॥  
नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥१॥

सलिल समान कलिल-मल गंजन, बुधमन रंजनहारी ।  
भंजन विभ्रमधूलि प्रभंजन, मिथ्या-जलद-निवारी ॥  
नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥२॥

कल्यानक तरु उपवन-धरिनी, तरनी भव-जल-तारी ।  
बंध-विदारन पैनी छैनी, मुक्ति नसैनी सारी ॥

नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥३॥

स्वपर-स्वरूप प्रकाशन को यह, भानु कला अविकारी ।  
मुनिमन-कुमुदिनि-मोदन-शशिभा, शम-सुख सुमनसुबारी ॥  
नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥४॥

जाको सेवत बेवत निजपद, नशत अविद्या सारी ।  
तीनलोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी ॥  
नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥५॥

कोटि जीभसौं महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी ।  
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम उधारनहारी ॥  
नित पीज्यौ धी धारी, जिनवानि सुधासम जानके ॥६॥

**अर्थ :** हे बुद्धिमान , हे बुद्धि के धारक ! जिनवाणी को अमृत समान जान करके तुम उसका नित्य प्रति आस्वादन करो, उस अमृत का पान करो ।

वह जिनवाणी भगवान महावीर के श्रीमुख से निकली हुई है / खिरी हुई है । वह जन्म , बुद्धापा व रोग को टालनेवाली , दूर करनेवाली है । वह जिनवाणी गौतम आदि मुनिजनों के हृदय में धारण की हुई - समाई हुई है ; सर्वोक्तृष्ट है , रुचिकर है और मोक्ष सुख को प्रदान करने वाली है । उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वादन करो ।

यह जिनवाणी जल के समान पापरूपी मैल को धोनेवाली , बुधजनों के , विवेकिजनों के चित्त को हरनेवाली है , विभ्रमरूपी धूल का नाश करनेवाली है , मिथ्यात्व रूपी बादलों का निवारण करनेवाली है , उसको हटाने वाली है । उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वाद करो ।

वह ज्ञान कल्याणक रूपी वृक्ष के उद्यान / बगीचे को धारण करनेवाली है और भव समुद्र से पार ले जाने के लिए , तारने के लिए नौका के समान है । समस्त बंधनों को विवेक की उल्कृष्ट छैनी से काट देनेवाली है और वह मोक्षमहल में जाने के लिए सीढ़ी है । उसको संभालो । उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वादन करो ।

वह जिनवाणी सूर्य के विकाररहित प्रकाश की भाँति स्व और पर दोनों के स्वरूप को स्पष्टतः दिखाने वाली है । जिस प्रकार चंद्रमा की शीतल किरणों से कमलिनी खिलती है उसी प्रकार जिनवाणी मुनियों के मन को आनंदित करनेवाली है , सम्नरूपी आनंद पुष्पों की सुंदर वाटिका है । उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वादन करो ।

जिसकी स्तुति / सेवा करने से अपने स्वरूप की अनुभूति होती है और अविवेक अज्ञान का नाश होता है ; उसको तीन लोक का हित करनेवाली जानकर तीन लोक के स्वामी भी पूजा करते हैं । उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वादन

करो।

दौलतराम कहते हैं कि यह जिनवाणी पतितजनों का उद्धार करनेवाली है। वत्रधारी इन्द्र की करोड़ों जिह्वाएं भी इस जिनवाणी की महिमा का वर्णन करने में असमर्थ हैं। उसका अल्पमती किस भाँति वर्णन कर सकते हैं अर्थात् नहीं कर सकते। उस अमृत समान जिनवाणी का नित्य आस्वादन करो।



## निरख सुख पायो जिनमुख



निरख सुख पायो जिनमुख-चन्द ॥टेक॥

मोह महातम नाश भयो है, उर-अम्बुज प्रफुलायो ।  
ताप नस्यो तब बढ्यो उदधि आनन्द ॥  
निरख सुख पायो जिनमुख-चन्द ॥१॥

चकवी कुमति बिछुरि अति बिलखे, आत्मसुधा स्रवायो ।  
शिथिल भये सब विधिगण-फन्द ॥  
निरख सुख पायो जिनमुख-चन्द ॥२॥

विकट भवोदधि को तट निकट्यो, अघतरु-मूल नसायो ।  
'दौल' लह्यो अब सुपद स्वछन्द ॥  
निरख सुख पायो जिनमुख-चन्द ॥३॥

**अर्थ :** अहो जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर मैंने सच्चा सुख प्राप्त कर लिया है।

जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा को देखने से मेरा मोहरूपी महा अन्धकार नष्ट हो गया है, हृदयरूपी कमल प्रफुलित हो गया है, ताप (दुःख) मिट गया है और फिर आनन्द का सागर उमड़ पड़ा है।

जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर कुबुद्धिरूपी चकवी अलग होकर भारी विलाप कर रही है। आत्म-अमृत बरसने लगा है और समस्त कर्मसमूह के बन्ध शिथिल हो गये हैं।

कविवर दौलतगम कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर दुस्तर संसार-समुद्र का किनारा निकट आ गया है, पापरूपी वृक्ष का मूल नष्ट हो गया है और मुझे अपने स्वाधीन पद की प्राप्ति हो गयी है।



## नेमिप्रभू की श्यामवरन



तर्ज़ : जिनसमादिर में आके हम

नेमिप्रभू की श्यामवरन छवि, नैनन छाय रही ।  
मणिमय तीन पीठ पर अंबुज, तापर अधर ठही ॥टेक ॥

मार मार तप धार जार विधि, केवलऋद्धि लही ।  
चारतीस अतिशय दुतिमंडित, नवदुगदोष नही ॥१॥

जाहि सुरासुर नमत सतत, मस्तकतैं परस मही ।  
सुरगुरुवर अम्बुजप्रफुलावन, अद्भुत भान सही ॥२॥

घर अनुराग विलोकत जाको, दुरित नसै सब ही ।  
'दौलत' महिमा अतुल जासकी, कापै जात कही ॥३॥

**अर्थ :** श्री नेमिनाथ की श्याम रंग की छवि, मुद्रा मेरी आँखों में समा गई है, आँखों के आगे मनभावन दिखती है जो समवसरन में मणिमय सिंहासन पर शोभित कमल के ऊपर अधर - बिना किसी आधार का सहारा लिए पृथ्वी से ऊपर आकाश में विराजमान हैं।

(जिन्होंने) तपरूपी अग्नि को धारणकर, उसके ताप से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया है और कैवल्यरूपी ऋद्धि को प्राप्त किया है। जिसके कारण अत्यंत प्रकाशवान चौंतीस अतिशय प्रकट हुए हैं और अठारह दोषों का नाश हो गया है।

जिनके चरणों की रज मस्तक पर लगाकर सुर व असुर (अर्थात् जो देव नहीं हैं, वे भी) सभी सदैव नमन करते हैं। वे देव व मुनिजन रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए अद्भुत सूर्य के समान हैं।

उनके भक्तिसहित दर्शन करने से सब पापों का नाश होता है। दौलतराम कहते हैं कि उनकी अतुल महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? अर्थात् कोई भी उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं है।



तर्ज़ : जिनमंदिर में आके हम

## लाल कैसे जावोगे

लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल ॥टेक॥

इक दिन सरस वसंतसमय में, केशव की सब नारी ।  
प्रभुप्रदच्छनारूप खड़ी है, कहत नेमिपर वारी ॥  
लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल ॥१॥

कुंकुम लै मुख मलत रुकमनी, रंग छिरकत गांधारी ।  
सतभामा प्रभुओर जोर कर, छोरत है पिचकारी ॥  
लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल ॥२॥

व्याह कबूल करो तौ छूटौ, इतनी अरज हमारी ।  
ओंकार कहकर प्रभु मुलके, छांड दिये जगतारी ॥  
लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल ॥३॥

पुलकितवदन मदनपित-भामिनि, निज निज मदन सिधारी ।

# 'दौलत' जादववंशव्योम शशि, जयौ जगत हितकारी ॥ लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल ॥४॥

**अर्थ :** हे अशरण को शरण देनेवाले कृपालु लाल, अब कैसे (दूर) जाओगे! एक दिन बसंत ऋतु के सुहाने समय में कृष्ण की सब स्त्रियाँ (नेमिनाथ के) चारों ओर खड़ी हो गईं और नेमिनाथ पर निछावर होने की बात कहने लगीं।

रुक्मिणी प्रसन्न होकर कुंकुम लगाने लगी और गांधारी रंग छिड़कने लगी। सत्यभामा दोनों हाथ जोड़कर प्रभु नेमिनाथ की ओर पिचकारी छोड़ने लगी।

वे सब कहने लगी कि अब आप विवाह की स्वीकृति देने पर ही यहाँ से जा सकोगे - यह ही हमारी ओर से निवेदन है / प्रभु ने उकार शब्द का उच्चारण किया और मुस्कराए, तब प्रभु को जाने दिया गया।

तब प्रद्युम्न कामदेव की माता रुक्मिणी आदि अपने-अपने निवास पर चली गई। दौलतराम कहते हैं कि यादव वंशरूपी गगन के चंद्रमा प्रभु नेमिनाथ को जय हो जो जगत का हित करनेवाले हैं।



## पद्मसद्म



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

पद्मसद्म पद्मापद पद्मा, मुक्तिसद्म दरशावन है ।  
कलि-मल-गंजन मन अलि रंजन, मुनिजन शरन सुपावन है ॥

जाकी जन्मपुरी कुशंबिका, सुर नर-नाग रमावन है ।  
जास जन्मदिनपूरब षटनव, मास रतन बरसावन है ॥

जा तपथान पपोसागिरि सो, आत्म-ज्ञान थिर थावन है ।  
केवलजोत उदोत भई सो, मिथ्यातिमिर-नशावन है ॥

जाको शासन पंचाननसो, कुमति मतंग नशावन है ।  
राग बिना सेवक जन तारक, पै तसु रुष्टुष भाव न है ॥

जाकी महिमा के वरननसों, सुरगुरु बुद्धि थकावन है ।  
'दौल' अल्पमति को कहबो जिमि, शशक गिरिंद धकावन है ॥

**अर्थ :** हे पद्मप्रभ जिनदेव ! आप मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वामी हैं और आपके चरण कमल मुक्ति की दिशा - स्थान को बतानेवाले हैं । आप पापरूपी मैल का नाश करनेवाले हैं, आप मनरूपी भ्रमर को प्रसन्नता देनेवाले कमल हैं, मुनिजनों के लिए पवित्र शरणदाता हैं।

सुर, नर और नाग सभी के मन को भानेवाली कोशांबी नगरी जिनकी जन्मस्थली है । जिनके जन्म से पंद्रह मास पूर्व से वहाँ रत्नों की वर्षा होने लगी थी।

पपोसा पर्वत जिनका तपस्थान है जो आत्मज्ञान में एकाग्र होने का, स्थिर होने का स्थान है। वहाँ ही आपने मिथ्यात्वरूपी अंधकार का नाश करनेवाले कैवल्य को प्राप्त किया।

आपका उपदेश सिंह की भाँति मिथ्यात्वरूपी हाथी का नाश करनेवाला है। आप बिना किसी राग के उन सेवकजनों को तारते हो जिनके कुछ भी राग-द्वेष - ममत्व नहीं रहता अर्थात् जो राग-द्वेषरहित होकर समतावान होते हैं आप उन्हें तारते हो।

जिनकी महिमा का वर्णन करने के लिए वृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं। दौलतराम कहते हैं कि जैसे खरगोश सुमेरु पर्वत को धकेलने का प्रयास करे, उसी भाँति मैं अल्पमति उस महिमा का वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ अर्थात् समर्थ नहीं हूँ।



## पारस जिन चरन निरख



तर्ज : अपनी सुधी भूल आप आप  
निरखत जिन चन्द्रवदन

पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो,

चितवन चन्दा चकोर, ज्यों प्रमोद पायो ॥टेक॥

ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्ष को न ओर,  
रंक निधिसमाज राज, पाय मुदित थायो ॥  
पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो ॥१॥

ज्यों जन चिरछुधित होय, भोजन लखि सुखित होय,  
भेषज गदहरन पाय, सरुज सुहरखायो ॥  
पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो ॥२॥

वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज,  
शांतदशा देख महा, मोहतम पलायो ॥  
पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो ॥३॥

जाके गुन जानन जिम, भानन भवकानन इम,  
जान 'दौल' शरन आय, शिवसुख ललचायो ॥  
पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो ॥४॥

**अर्थ :** भगवान पार्वतीनाथ के चरणों के दर्शन पाकर ऐसा हर्ष होता है जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर पक्षी अत्यन्त प्रमुदित होता है।

जैसे बादलों की घटा को देखकर और उसकी गड़गड़ाहट को सुनकर मोर पक्षी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता, जैसे - धन, समाज व सज को पाकर निर्धन-रंक को प्रसन्नता होती है।

जैसे अत्यन्त भूख से विकल मनुष्य, भोजन को देखकर सुख का अनुभव करता है और जैसे - सरुज (रोगी) रोग को दूर करनेवाली औषधि को पाकर प्रफुल्लित होता है।

आज का दिन धन्य है, सभी पाप दूर भागने लगे हैं, प्रभु को शांत छवि को देखकर मोहरूपी महान अंधकार विघटने लगा है।

इस भव- वन में आपके गुणों को जानकर उनकी निज में प्रतीति-अनुभूति होने लगती है, मोक्ष-सुख के लिए लालायित होकर व यह सब जानकर दौलतराम आपकी शरण में आया है।



## पास अनादि अविद्या



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

पास अनादि अविद्या मेरी, हरन पास परमेशा है ।  
चिद्विलास सुखराशप्रकाशवितरन त्रिभोन - दिनेशा है ॥

दुर्निवार कंदर्प सर्प को दर्पविदरन खगेशा है ।  
दुठ-शठ-कमठ-उपद्रव प्रलयसमीर - सुवर्णनगेशा है ॥१॥

ज्ञान अनन्त अनन्त दर्श बल, सुख अनन्त पदमेशा है ।  
स्वानुभूति-रमनी-बर भवि-भव-गिर-पवि शिव-सदमेशा है ॥२॥

ऋषि मुनि यति अनगार सदा तिस, सेवत पादकुशेशा है ।  
वदनचन्द्र झरै गिरामृत, नाशन जन्म-कलेशा है ॥३॥

नाम मंत्र जे जपैं भव्य तिन, अघअहि नशत अशेषा है ।  
सुर अहमिन्द्र खगेन्द्र चन्द्र है, अनुक्रम होहिं जिनेशा है ॥४॥

लोक-अलोक-ज्ञेय-ज्ञायक पै, रति निजभावचिदेशा है ।  
रागविना सेवकजन-तारक, मारक मोह न द्वेषा है ॥५॥

भद्रसमुद्र-विवर्द्धन अद्भुत, पूरनचन्द्र सुवेशा है ।  
'दौल' नमै पद तासु, जासु, शिवथल समेद अचलेशा है ॥६॥

**अर्थ :** हे पार्श्वनाथ ! आप अनादि से चले आ रहे मेरे अज्ञान के बंधन, अज्ञान की शल्य को हरनेवाले परमेश्वर हैं ! आप स्व-रूपचिंतन के प्रकाश से तीनों लोकों को प्रकाशित करनेवाले सूर्य हैं।

आप कामदेवरूपी सर्प, जिससे बचना कठिन है, के विष-मद का विदारण करनेवाले गरुड़ पक्षी के समान हैं। आप दुष्ट चकुटिल कमठ के उपसर्ग के समय प्रलयकाल के झँझावात को सहन करनेवाले सुमेरु के समान हैं।

आप अनन्त चतुष्टय - दर्शन, ज्ञान, सुख और बलरूपी लक्ष्मी के धारी हैं, लक्ष्मी के स्वामी हैं। चैतन्य-अनुभूतिरूपी स्त्री के आप स्वामी हो। भव्यजनों के लिए भवरूपी संसाररूपी पहाड़ पर गिरनेवाली गाज-बिजली हो।

ऋषि, मुनि, यति, गृहत्यागी सदैव आपके चरण-कमलों की वन्दना करते हैं, सेवा करते हैं। आपके मुख-चन्द्र से जन्म-मरण के क्लेश का नाश करनेवाली दिव्यधनि खिरती है।

आपके नामरूपी मंत्र की माला जपने से भव्यजनों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वे इन्द्र, अहमिला, खगेन्द्र, सर.दि होकर, प्रा. बड़कर जिनेश्वर पद को सुशोभित करते हैं, धारण करते हैं।

आप यद्यपि लोक-अलोक के समस्त ज्ञेयों के ज्ञाता हैं फिर भी निज-स्वभाव में रत हैं अर्थात् आत्मनिष्ठ हैं। बिना राग के अपने भक्तों का उद्धार करते हैं। मोह को मारनेवाले होकर भी द्वेषरहित हैं।

सज्जनों के सुखरूपी समुद्र को ज्वार की भाँति बढ़ानेवाले अर्थात् चित्त को प्रमुदित करनेवाले आप पूर्णिमा के चन्द्र के समान अद्भुत रूप के धनी हैं और सम्मेदशिखर से मुक्त हुए हैं। इसलिए दौलतराम आपके चरणों की वन्दना करते हैं।



वामा घर बजत बधाई



वामा घर बजत बधाई, चलि देखि री माई ॥टेक॥

सुगुनरास जग आस भरन तिन, जने पार्श्व जिनराई ।  
श्री हीं धृति कीरति बुद्धि लछमी, हर्ष अंग न माई ॥१॥

वरन वरन मनि चूर सची सब, पूरत चौक सुहाई ।  
हाहा हूहू नारद तुम्बर, गावत श्रुति सुखदाई ॥२॥

तांडव नृत्य नटत हरिनट तिन, नख नख सुरीं नचाई ।  
किन्नर कर धर बीन बजावत, दगमनहर छवि छाई ॥३॥

'दौल' तासु प्रभु की महिमा सुर, गुरु पै कहिय न जाई ।  
जाके जन्म समय नरक में, नारकि साता पाई ॥४॥

**अर्थ :** मैया! चलो देखो, वामादेवी के घर पर बधाइयाँ बज रही हैं।

जगत की आशा पूरी करने हेतु, सर्वगुणों के प्रांगसहित भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ है / श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी सब ही दिक्कुमारियाँ हर्ष से फूली नहीं समा रहीं।

इन्द्राणी भाँति-भाँति के रंगों की मणियों के चूरण से चौक को पूर रही हैं, रंगोली सजा रही है। चौक में माँडने माँड रही है। नारद आदि गंधर्व जाति के देव कानों को सुख देनेवाले, प्रसन्नता का द्योतक ध्वनि-नाद कर रहे हैं, विरुदावलि गा रहे हैं।

इन्द्र नट की भाँति तांडव नृत्य (उन्मत्त नृत्य) कर रहे हैं, देवियाँ नृत्य कर रही हैं, किन्नर हाथों में बीन धारणकर उसे बजा रहे हैं। मन व नेत्रों को मोहनेवाली - मन हरनेवाली छवि वहाँ छा रही है।

दौलतराम कहते हैं कि ऐसे प्रभु की महिमा का वर्णन करने हेतु देव व मुनिगण भी समर्थ नहीं हैं। प्रभु के जन्म के समय नरक में दुःखी नारकीजनों को भी साता (सुख शांति) का उदय व अनुभव होता है। हाहा, हूहू, नारद व तुंबर - ये चारों गंधर्व जाति के देव हैं।





तर्ज़ : मन डौले मेरा तान डौले

# सांवरिया के नाम

सांवरिया के नाम जपेतैं, छूट जाय भव-भामरिया ॥टेक॥

दुरित दुरत पुन पुरत फुरन गुन, आतम की निधि आगरिया ।  
विघटत है परदाह चाह झट, गटकत समरस गागरिया ॥  
सांवरिया के नाम जपेतैं, छूट जाय भव-भामरिया ॥१॥

कटत कलंक कर्म कलसायन, प्रगटत शिवपुर डागरिया ।  
फटत घटाघन मोह छोह हट, प्रगटत भेद-ज्ञान घरिया ॥  
सांवरिया के नाम जपेतैं, छूट जाय भव-भामरिया ॥२॥

कृपा-कटाक्ष तुमारी ही तैं, जुगल-नाग-विपदा टरिया ।  
धार भये सो मुक्तिरमावर, 'दौल' नमै तुव पागरिया ॥  
सांवरिया के नाम जपेतैं, छूट जाय भव-भामरिया ॥३॥

**अर्थ :** साँवरे रंगवाले (श्याम वर्णवाले) हे भगवान पार्श्वनाथ ! आपका नाम जपने से, नाम स्मरण करने से, भव-भ्रमणरूपी भँवर से छुटकारा हो जाता है।

पाप छुप जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं ; गुणों का विकास होता है और आत्मनिधि प्रकाशित हो जाती है, प्रकट होती है । समतारूपी रस से भरी गागर-मटकी को गटकने से, निगलने से, पान करने से अन्य अर्थात् परद्रव्य की कामनारूपी दाह / जलन नष्ट हो जाती है।

कर्मरूपी कलश-पात्र का दाग (काला निशान) जैसे ही नष्ट होता है अर्थात् कर्म के हटते ही मोक्ष की राह स्पष्ट दिखाई देने लगती है और मोहरूपी छाई घटा के विघटने से - बादलों के बिखरने से तत्काल भेद-ज्ञान होता है। स्व और पर का भेद स्पष्ट समझ में आने लगता है।

आपकी कृपा-दृष्टि के कारण ही अग्नि में झुलसते नाग के जोड़े का उद्धार हुआ। ऐसे आपको हृदय में धारण करने से अनेकजन मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वामी हो गए। ऐसे आपके चरणों में दौलतराम नमन करते हैं।



## प्यारी लागै म्हाने जिन छवि

प्यारी लागै म्हाने जिन छवि थारी ॥टेक॥

परम निराकलपद दरसावत, वर विरागताकारी ।  
पट भूषन बिन पै सुन्दरता, सुर-नर-मुनि-मनहारी ॥  
प्यारी लागै म्हाने जिन छवि थारी ॥१॥

जाहि विलोकत भवि निज निधि लहि, चिरविभावता टारी ।  
निरनिमेषतैं देख सचीपती, सुरता सफल विचारी ॥  
प्यारी लागै म्हाने जिन छवि थारी ॥२॥

महिमा अकथ होत लख ताकी, पशु सम समकितधारी ।  
'दौलत' रहो ताहि निरखन की, भव भव टेव हमारी ॥  
प्यारी लागै म्हाने जिन छवि थारी ॥३॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्रदेव ! मुझे आपकी मुद्रा बहुत प्रिय लगती है।

आपकी मुद्रा परम निराकुल पद के दर्शन कराती है, सच्चा वैराग्य उत्पन्न कराती है तथा वस्त्राभूषण से रहित होते हुए भी इतनी सुन्दर है कि देव, मनुष्य और मुनियों के भी मन को हर लेती है।  
हे जिनेन्द्र देव ! आपकी मुद्रा की देखकर भव्यजीव अपनी आत्मिक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं और अपनी अनादिकालीन विभाव-परिणति का त्याग कर देते हैं। इन्द्र भी आपकी मुद्रा को अपलक दृष्टि से देखता हुआ अपने देवत्व को सफल समझता है।

आपकी मुद्रा की महिमा अकथनीय है। पशु-सद्वश अज्ञानी भी आपकी मुद्रा को देखकर सम्प्रदृष्टि हो जाते हैं।  
कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव ! मुझे हर जन्म में आपकी मुद्रा को देखने का अवसर (भाव) अवश्य प्राप्त हो



## प्रभु थारी आज महिमा जानी

प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥टेक ॥



अबलौं मोह महामद पिय मैं, तुमरी सुधि विसरानी ।  
भाग जगे तुम शांति छवी लखि, जड़ता नींद बिलानी ॥  
प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥१॥

जगविजयी दुखदाय रागरुष, तुम तिनकी थिति भानी ।  
शांतिसुधा सागर गुन आगर, परमविराग विज्ञानी ॥  
प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥२॥

समवसरन अतिशय कमलाजुत, पै निर्गन्धि निदानी ।  
क्रोधबिना दुठ मोहविदारक, त्रिभुवनपूज्य अमानी ॥  
प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥३॥

एकस्वरूप सकलज्ञेयाकृत, जग-उदास जग-ज्ञानी ।  
शत्रुमित्र सबमें तुम सम हो, जो दुखसुख फल यानी ॥

# प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥४॥

परम ब्रह्मचारी है प्यारी, तुम हेरी शिवरानी ।  
है कृतकृत्य तदपि तुम शिवमग, उपदेशक अगवानी ॥  
प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥५॥

भई कृपा तुमरी तुममें तैं, भक्ति सु मुक्ति निशानी ।  
है दयाल अब देहु 'दौल' को, जो तुमने कृति ठानी ॥  
प्रभु थारी आज महिमा जानी ॥६॥

**अर्थ :** हे प्रभो ! मैं आज आपकी महिमा को जान गया हूँ। अब तक मोहरूपी महामद का पान करके मैं आपके स्वरूप को भूला हुआ था, किन्तु आज मेरे भाग्य जगे हैं अर्थात् मेरा ऐसा पुण्योदय आया है जो कि मुझे आपकी शान्त मुद्रा के दर्शन हुये और जिससे मेरी अनादिकालीन जड़ता रूपी निद्रा दूर हो गई है।

हे प्रभो! आपने सारे संसार को जीत लेने वाले और महादुःख देने वाले राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है अतः आप शान्तिरूपी अमृत के सागर हैं, गुणों के भण्डार हैं, परम वीतराग विज्ञान स्वरूप हैं।

हे प्रभो! यद्यपि समवशरण आदि अतिशय लक्ष्मी आप के संयोग में हैं, तथापि आप पूर्णतः निग्रन्ध अर्थात् अपरिग्रही हैं। आप क्रोध से रहित हैं, दुष्ट मोह के विनाशक हैं, और मान से रहित तीनों लोकों द्वारा पूज्य हैं।

हे प्रभो! आप केवलज्ञान में सकल ज्ञेय पदार्थों को जानते हुये भी एक स्वरूप में ही रहने वाले हैं, जगत से उदासीन रहकर भी सारे जगत के ज्ञाता हैं तथा दुःख-सुख के पल में निमित्तभूत ऐसे शत्रु-मित्र आदि को समान दृष्टि से देखने वाले हैं।

हे प्रभो! आप परम ब्रह्मचारी हैं, फिर भी आपने अत्यन्त प्रिय मुक्तिरानी को खोजकर प्राप्त किया है तथा आप कृतकृत्य हो गये हैं, फिर भी जगत के जीवों के लिये मोक्षमार्ग के अग्रणी उपदेशक हैं।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे प्रभो! अब आपकी कृपा से मुझमें आपके प्रति भक्ति उत्पन्न हुई है जो कि मोक्ष का उत्तम दशा प्रदान कीजिये। हे प्रभो! आप दयालु होकर मुझे भी वही उत्तम दशा दीजिये, जो आपने अपने में प्रकट की है।





# भविन सरोरुहसूर

भविन-सरोरुहसूर भूरिगुनपूरित अरहंता ।  
दुरित दोष मोष पथघोषक, करन कर्मअन्ता ॥टेक ॥

दर्शबोधतैं युगपतलखि जाने जु भावऽनन्ता ।  
विगताकुल जुतसुख अनन्त विन, अन्त शक्तिवन्ता ॥  
भविन-सरोरुहसूर भूरिगुनपूरित अरहंता ॥१॥

जा तनजोतउदोतथकी रवि, शशिदुति लाजंता ।  
तेजथोक अवलोक लगत है, फोक सचीकन्ता ॥  
भविन-सरोरुहसूर भूरिगुनपूरित अरहंता ॥२॥

जास अनूप रूपको निरखत, हरखत हैं सन्ता ।  
जाकी धुनि सुनि मुनि निजगुनमुन, पर-गर उगलंता ॥  
भविन-सरोरुहसूर भूरिगुनपूरित अरहंता ॥३॥

'दौल' तौल विन जस तस वरनत, सुरगुरु अकुलंता ।  
नामाक्षर सुन कान स्वान से, रांक नाकगंता ॥  
भविन-सरोरुहसूर भूरिगुनपूरित अरहंता ॥४॥

**अर्थ :** हे सर्वगुणसम्पन्न अरिहंत! आप भव्यजनरूपी कमलों को विकसित करनेवाले सूर्य हैं । पापों का नाशकर मोक्ष की राह बतानेवाले हैं। आपने कर्म-राशि का अन्त कर दिया है।

युगपत ज्ञान और दर्शन से आपने अनन्त भावों को देखा व जान लिया है। आप निराकुल सुख के और अनन्त बल के धारी हो।

जिनकी तन की द्य (प्रभा) के समक्ष, रवि/सूर्य का तेज व चन्द्रमा की कान्ति भी लजाती है, फीकी पड़ जाती है। आपके उस अनुपम तेजपुंज को देखने पर इन्द्र जैसे तेजस्वी का तेज भी फीका व हल्का लगता है।

जिनके अद्भुत सुन्दर रूप को देखकर संतजन हर्षित होते हैं। जिनकी दिव्यधनि को सुनकर मुनिजनों को निज गुणों का भान होता है और वे मिथ्यात्वरूपी विष को उगल देते हैं, बाहर निकाल देते हैं।

जिनके अतुल यश का वर्णन करते हुए सुरगुरु (देवताओं के गुरु) भी थक जाते हैं। दौलतराम कहते हैं कि अपने कानों से उनके नाम के अक्षर सुनकर कुत्ते के समान तुच्छ प्राणी भी स्वर्ग को चले गए हैं।



## मत कीजो जी यारी यह



राग : उझाज जोगी रासा  
नित पीज्यो धीधारी

मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥टेक ॥

भुजंग डसै इकबार नसत है, ये अनन्त मृतुकारी,  
तिसना तृष्णा बढ़ै इन सेये, ज्यों पीवे जलखारी ॥  
मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥१॥

रोग, वियोग शोक बनिता धन, समता लता कुठारी,  
केहरि, करि अरीन देख ज्यों, त्यों ये दे दुखभारी ॥  
मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥२॥

इनसे रचे देव तरु थाये, पाये क्ष्वभ्र मुरारी,  
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी ॥

मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥३॥

पराधीन छिन मांहि छीन है, पाप बंध कर नारी,  
इन्हें गिने सुख आक मांहि तिन, आमतनी बुध धारी ॥  
मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥४॥

मीन मतंग, पंतग, भूंग मृग, इन वश भये दुखारी,  
सेवत ज्यों किंपाक ललित, परिपाक समय दुखकारी ॥  
मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥५॥

सुरपति, नरपति, खगपति हूंकी, भोग आस न निवारी,  
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, ज्यों पावे शिवनारी ॥  
मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजंग सम जान के ॥६॥

**अर्थ :** इन भोगों को, विषयों को भुजंग अर्थात् सर्प के समान विषैला जानो और इनमें रुचि न लो। इनसे राग मत करो - प्रीति मत करो।

सर्प द्वारा एक बार डसने से मृत्यु हो जाती हैं, परंतु ये भोग (कर्म श्रृंखला के बंधन से) बार बार, अनंत बार मृत्युकारक हैं - मृत्यु देनेवाले हैं / जिस प्रकार खारा जल पीने से प्यास नहीं बुझती बल्कि और अधिक तीव्र हो जाती है उसी प्रकार इन इन्द्रिय-विषयों को भोगने से तृप्ति/संतुष्टि नहीं होती बल्कि भोगों की चाह और अधिक बढ़ती जाती है।

ये विषय-भोग, रोग शोक-वियोगरूपी वन को बढ़ानेवाले बादल के समान हैं / सिंह, हाथी और दुश्मन भी ऐसे दुःख नहीं देते जितने भारी दुःख ये विषय भोग देते हैं । ये (विषय-भोग) समतारूपी लता को काटनेवाली कुल्हाड़ी के समान घातक हैं।

इनमें लिप्त होकर देव भी एकेन्द्रिय-स्थावर आदि पर्याय पाते हैं और नारायण भी नरक गति को प्राप्त होते हैं। जो इनसे विरक्त होते हैं वे अत्यधिक सुख के अधिकारी होते हैं, इन्द्रों द्वारा पूजनीय होते हैं।

जो इनके पराधीन होते हैं वे सब क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं, पापों का बंध करते हैं । विषयों में, भोग में सुख माननेवाले उसी प्रकार हैं जैसे कोई आम के स्वाद को छोड़कर आक में ही सुख समझते हैं।

आटे के लोभ में मछली, काम-वासना के कारण हाथी, दीपक पर लुब्ध होकर पतंग, सुगंध के कारण भौंरा, संगीत की ध्वनि से वशीभूत होकर मृग अत्यन्त दुःख पाते हैं। जैसे बाहर से अच्छा दिखाई देनेवाला किंपाक का फल (इन्द्रायण फल) भीतर से कहुआ होने के कारण (सेवन करने पर) अन्त में फल देने के समय अत्यंत दुखदायी होता है वैसे ही ये विषय भी प्रारंभ में अच्छे लगते हैं, किन्तु फल देते समय अत्यन्त दुःखदायी होते हैं।

इन्द्र, नरेन्द्र, खगपति (पक्षी-सूर्य चन्द्रादि) की आशा भी भोग से पूरी नहीं होती। दौलतराम कहते हैं कि अरे तुम वैराग्य को धारण करो जो मोक्ष- सुख को देनेवाला है।



## मत कीज्यो जी यारी घिन



राग : उझाज जोगी रासा  
नित पीज्यो धीधारी

मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥टेक ॥

मात तात रज वीरज सों यह उपजी मल फुलवारी ।

१अस्थिमाल रैपल नसा जाल की ३लाल लाल जल क्यारी ॥

मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥१॥

करम ४कुरंग थली पुतली यह मूत्र ५पुरीष भंडारी ।

चर्म मड़ी रिपु कर्म घड़ी धन धर्म चुरावन हारी ॥

मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥२॥

जे जे पावन वस्तु जगत में ते इन सर्व ध्विगारी ।

७स्वेद मेद कफ क्लेदमयी बहु, मद ८गद व्यालि पिटारी ॥

मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥३॥

जा संयोग रोग अब तौलों, जो वियोग शिवकारी ।  
बुध तासों न ममत्व करें यह, मूढ़ मतिन को प्यारी ॥  
मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥४॥

जिन ९पोसी ते भये १०सदोषी, तिन पाये दुख भारी ।  
जिन तप ठान ध्यान कर खोजी, तिन ११परनी शिवनारी ॥  
मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥५॥

१२सुरधनु १३शरद १४जलद जल बुद्बुद त्यो झट विनशनहारी ।  
यारौं भिन्न जान निज चेतन, दौल होहु शमधारी मत ॥  
मत कीज्यो जी यारी, घिन गेह देह जड़ जान के ॥६॥

१अस्थियाँ, २मांस, ३खून, ४हिरण, ५मल, ६बिगाड़ा, ७पसीना, ८रोग, ९पुष्ट किया, १०अपराधी, ११परिणय किया, १२इंद्रधनुष, १३पतझड़, १४बादल

**अर्थ :** हे भाइयों ! इस शरीर से अनुराग मत करो, अपितु इसे घिनावना (अशुचि) और अचेतन समझो। यह शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न हुई एक ऐसी गन्दी फुलवारी है, जिसमें लाल-लाल पानी से भरी हुई हड्डी, मांस, नस आदि की क्यारियाँ हैं।

यह शरीर कर्म की अशुभ रंगस्थली पर नाचनेवाली एक ऐसी पुतली है जो मल एवं मूत्र का भण्डार है। यह चर्म से ढकी हुई है, कर्मशत्रु द्वारा निर्मित है और धर्मरूपी धन को चुरानेवाली है।

जगत में जितनी भी पवित्र वस्तु ऐं है, उन सबको यह शरीर गन्दा कर देता है। यह शरीर पसीना, चरबी, कफ और मवाद स्वरूपी है तथा भयंकर रोगरूपी सर्पों का पिटारा है।

जब तक इसका संयोग है, तभी तक संसार-रोग रहता है। इसका वियोग तो मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अतः ज्ञानी जीव इस शरीर से ममत्व नहीं करते। यह तो केवल अज्ञानियों को ही प्यारा लगता है।

आज तक जिन जीवों ने इस शरीर का पोषण किया है वे ही दोषी बने हैं और उन्होंने ही घोर दुःख प्राप्त किया है। इसके

विपरीत, जिन जीवों ने तप, ध्यान आदि के द्वारा इसका शोषण किया है, उन्होंने मुक्ति-स्त्री को प्राप्त कर लिया है। कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे भाइयो ! यह शरीर इन्द्रधनुष, शीतकाल के मेघ और पानी के बुलबुले की भाँति शीघ्र नष्ट हो जानेवाला है; अतः अपने आपको इस शरीर से भिन्न पहचानो और शान्तभाव के धारक हो जाओ।



## मत राचो धीधारी भव रंभ



राग : उज्जाज जोगी रासा  
नित पीज्यो धीधारी

मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥टेक॥

इन्द्र जाल को ख्याल मोह ठग, विभ्रम पास पसारी ।  
चहुँगति विपतमयी जामें जन, भ्रमत भरत दुख भारी ॥  
मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥१॥

रामा, मां, वांमा, सुत, पितु, सुता श्वसा अवतारी ।  
को अचंभ जहाँ आपके पुत्र दशा विस्तारी ॥  
मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥२॥

घोर नरक दुख ओर न छोर, न लेश न सुख विस्तारी ।  
सुरनर प्रचुर विषय जुर जारे, को सुखिया संसारी ॥  
मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥३॥

\*मंडल है ^आखंडल छिन में, नृप कृमि सघन भिखारी ।  
जासुत विरहमरी है बाधिन ता सुत देह विदारी ॥

मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥४॥

शिशु न हिताहित ज्ञान तरुण उर, #मदन दहन &परजारी ।  
बृद्ध भये विकलांगी थाये, कौन दशा सुखकारी ॥  
मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥५॥

यौं असार लख छार भव्य झट, भये मोख मगचारी ।  
यातें होक उदास 'दौल' अब, भज निज पति जगतारी ॥  
मत राचो धीधारी, भव रंभ थंम सम जानके ॥६॥

\* : राजा, ^ इंद्र, # : कामदेव, & : जला दिया

**अर्थ :** हे बुद्धिमान भाइयों ! इस ससार को केले के थम्भ के समान असार समझकर इसमें अनुरक्त मत होओ। यहाँ मोहरूपी ठग ने इन्द्रजाल के समान विभ्रमरूपी जाल फैला रखा है। यहाँ अपार दुखो से भरी हुई चार गतियाँ हैं जिनमें प्राणी भ्रमण कर रहे हैं और घोर दुःख सहन कर रहे हैं।

यहाँ-इस संसार मे .. कभी पत्नी मरकर माता हो जाती है और कभी माता मरकर पत्नी हो जाती है, कभी पुत्र मरकर पिता हो जाता है और कभी पुत्री मरकर बहिन हो जाती है। यहां तक कि कभी स्वयं ही स्वय का पुत्र हो जाता है, इसमें क्या आश्वर्य है ?

यहाँ नरकगति मे दुख तो इतना घोर है कि जिसका कोई ओरूछोर नहीं है परन्तु सुख लेशमात्र भी नहीं है। देव और मनुष्य भी यहाँ विषय-ज्वर में जल रहे हैं। संसारियों में सुखी कोन है ?

इस संसार की विडम्बना तो देखो ! यहां इन्द्र क्षण भर में कुत्ता बन जाता है, राजा कीड़ा बन जाता है और धनवान भिखारी बन जाता है। यहां तक कि जिस पुत्र के वियोग में मरकर बाधिन हुई थी, उसी पुत्र के शरीर को चीर दिया था !!

यहाँ इस संसार में बाल्यावस्था में तो हिताहित का कुछ ज्ञान ही नहीं होता है, तरुणावस्था में हृदय काम की अग्नि से जलता रहता है और वृद्धावस्था में विकलांग हो जाता है। सुखकारी अवस्था कौन है ?

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे भाई ! भव्य जीव तो इस ससार को उक्त प्रकार से असार और राख के समान देखकर शीघ्र मोक्षमार्गी हो गये हैं, अतः तुम भी इस संसार से उदास होकर संसार-तारक जिनेन्द्र भगवान का भजन करो।





# मनवचतन करि शुद्ध

मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ।  
अवसर मिलै नहिं ऐसा, यौ सतगुरु गाया ॥टेक ॥

बस्थो अनादिनिगोद निकसि फिर, थावर देह धरी ।  
काल असंख्य अकाज गमायो, नेक न समुझि परी ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥१॥

चिंतामनि दुर्लभ लहिये ज्यौं, त्रस परजाय लही ।  
लट पिपिल अलि आदि जन्ममें, लह्यो न ज्ञान कहीं ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥२॥

पंचेन्द्रिय पशु भयो कष्टतैं, तहाँ न बोध लह्यो ।  
स्वपर विवेकरहित बिन संयम, निशदिन भार वह्यो ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥३॥

चौपथ चलत रतन लहिये ज्यौं, मनुजदेह पाई ।  
सुकुल जैनवृष सतसंगति यह, अतिदुर्लभ भाई ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥४॥

यौं दुर्लभ नरदेह कुधी जे, विषयन संग खोवैं ।

ते नर मूढ़ अजान सुधारस, पाय पाँव धोवैं ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥५॥

दुर्लभ नरभव पाय सुधी जे, जैन धर्म सेवैं ।  
'दौलत' ते अनंत अविनाशी, सुख शिवका वेवैं ॥  
मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ॥६॥

**अर्थ :** हे मानव ! मन, वचन और काय से श्री जिनेन्द्र का भजन करो, मनुष्यभव का यह अच्छा अवसर मिला है। सत्गुरु कहते हैं कि ऐसा सु-अवसर फिर सहजतया नहीं मिलेगा।

हे जीव ! तू अनादि काल तक निगोद पर्याय में रहा, फिर वहाँ से निकल कर स्थावर पर्याय में देह धारण की। इस प्रकार बिना किसी आत्मलाभ के असंख्यात काल व्यतीत किया और अपने भले की बात ही नहीं समझ सका।

जिस प्रकार चिंतामणि रत्न दुर्लभ है, उसे पाना कठिन है उसी प्रकार बड़ी कठिनाई से त्रस पर्याय मिली और जिसमें लट, पिपिल, भौंरा आदि रूप में जन्म लिया, देह धारण की, परन्तु कहीं भी ज्ञान नहीं हुआ।

फिर बहुत से कष्ट सहने के पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यच हुआ, वहाँ भी ज्ञान नहीं मिला, न अपने और पराये का बोध हुआ, न संयम धारण किया और नित्यप्रति कर्मों का बोझ ढोता रहा।

चौराहे में भटकते हुए को जैसे कोई रत्न की प्राप्ति हो जाए उसी प्रकार चारों गतियों में भटकते हुए जीव को यह मनुष्य जन्म मिला, यह मनुष्य देह मिली, अच्छा कुल, जैनधर्म और धर्मात्माजनों का साथ मिला जो सब बहुत मुश्किल से मिलते हैं।

ऐसी दुर्लभ, कठिनाई से प्राप्त होनेवाली मनुष्य देह को पाकर अरे मूर्ख ! तू इसे इंद्रिय-विषयों व परिग्रह को संचय करने में गँवा रहा है, तो यह वैसा ही है जैसे कोई अमृत को पाकर उसका पान न करके उससे अपने पाँवों को ही धोये।

जिनको अपनी सुधि है, ध्यान है, वे नरभव पाकर/मनुष्य जन्म पाकर जैनधर्म का पालन करते हैं, दौलतराम कहते हैं कि वे अनंत-अविनाशी पद पाकर मोक्षसुख का लाभ पाते हैं।

दाव = अवसर : कुधी = मूर्ख।



जय शिव कामिनि



जय शिव-कामिनि-कन्त ! वीर भगवन्त अनन्त सुखाकर हैं ।  
विधि-गिरि-गंजन बुध-मन-रंजन, भ्रम-तम-भंजन भाकर हैं ॥

जिन उपदेश्यो दुविध धर्म जो, सो सुर-सिद्ध-रमाकर हैं ।  
भवि-उर-कुमुदिन-मोदन भव-तप-हरन अनूप निशाकर हैं ॥  
परम विराग रहें जगतैं पै, जगत-जीव रक्षाकर हैं ।  
इन्द्र फणीन्द्र खगेन्द्र चन्द्र जग-ठाकर ताके चाकर हैं ॥

जासु अनन्त सुगुण मणिगण, नित गणते मुनिजन थाकर हैं ।  
जा प्रभु पद नव केवल लब्धि सु, कमला को कमलाकर हैं ॥  
जाके ध्यान-कृपान राग-रुष, पास-हरन समताकर हैं ।  
'दौल' नमें कर जोर हरन भव-बाधा शिवराधाकर हैं ॥

**अर्थ :** हे मोक्षरूपी स्त्री के स्वामी श्री महावीर भगवान ! आप अनन्त सुख के भण्डार हैं, आपकी जय हो। आप कर्मरूपी पर्वत को नष्ट करनेवाले, ज्ञानी जीवों के मन को प्रसन्न करनेवाले और भ्रमरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाले सूर्य हैं ।

आपने गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार के धर्म का जो उपदेश दिया है वह स्वर्ग के वैभव और मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करनेवाला हैं । आप भव्यजीवों के हृदय-कमल को प्रसन्न करनेवाले और संसार के ताप को दूर करनेवाले अनुपम चन्द्रमा है ।

यद्यपि आप जगत से अत्यन्त विरागी रहते हैं, तथापि आप जगत के जीवों की रक्षा करनेवाले हैं । इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चन्द्र जैसे जगत के स्वामी भी आपके सेवक हैं ।

बड़े-वडे मुनि भी आपके अनन्त गुणरूपी मणि-समुदाय को नित्य गिनते-गिनते थक गये हैं । आपके चरण नव केवललब्धियों की लक्ष्मी के लिए समुद्र के समान है । आपके ध्यान की तलवार राग-द्वेष के बन्धन को काटकर समता उत्पन्न करनेवाली है ।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे महावीर भगवान ! आप संसार-दुख को दूर करनेवाले और मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्रदान करनेवाले है । मैं हाथ जोड़कर आपको नमस्कार करता हूँ ।





# जय श्री वीर जिन

जय श्री वीर जिनवीर जिनचन्द,  
कलुष-निकन्द मुनिहृद सुखकन्द ॥

सिद्धारथन्द त्रिभुवन को दिनेन्द-चन्द,  
जा वच-किरन भ्रम-तिमिर-निकन्द ।  
जाके पद अरविन्द सेवत सुरेन्द्रवन्द,  
जाके गुण रटत कटत भव-फन्द ॥

जाकी शान्तमुद्रा निरखत हरखत रिषि,  
जाके अनुभवत लहत चिदानन्द ।  
जाके घातिकर्म विघटत प्रगटत भये,  
अनन्त दरश-बोध-वीरज-आनन्द ॥

लोकालोक-ज्ञाता पै स्वभावरत राता प्रभु,  
जग को कुशलदाता त्राता अद्वन्द ।  
जाकी महिमा अपार गणी न सके उचार,  
'दौलत' नमत सुख चाहत अमन्द ॥

**अर्थ :** पापों को नष्ट करनेवाले और मुनियों के हृदय को अपार सुख देनेवाले श्री वीर जिनेन्द्र की जय हो, महावीर जिनेन्द्र की जय हो । श्री महावीर जिनेन्द्र राजा सिद्धार्थ के पुत्र हैं और तीनों लोकों के लिए ऐसे सूर्य-चन्द्र हैं जिनकी वचनरूपी किरणें भ्रमरूपी अन्धकार को समाप्त कर देती हैं । इन्द्र-समुदाय भी उनके चरण-कमलों का सेवन करते हैं । उनके गुणों के जाप से संसार के बन्धन कट जाते हैं ।

उनकी शान्त मुद्रा को देखकर ऋषिगण भी हर्षित होते हैं, तथा उनका अनुभव करने से चेतन्य के आनन्द की प्राप्ति होती है। उनके चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं और अनन्त-दर्शन, अनन्त-ज्ञान, अनन्त-वीर्य एवं अनन्त-सुख प्रकट हो गये हैं। वे सम्पूर्ण लोकालोक के ज्ञाता हैं, फिर भी अपने स्वभाव में पूर्णतया लीन हैं। वे जगत के प्राणियों को कुशलता प्रदान करनेवाले हैं और उनके सच्चे रक्षक हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि श्री महावीर जिनेन्द्र की महिमा अपार है गणधर भी उसका उच्चारण नहीं कर पाते हैं; मैं अनन्त-सुख को चाहता हुआ उनको नमस्कार करता हूँ।



## जय श्री वीर जिनेन्द्र



जय श्री वीर जिनेन्द्र चन्द्र, शत इन्द्र वन्द्य जगतारं ।

सिद्धारथ कुल कमल अमल रवि, भव-भूधर पवि भारं ।  
गुन-मनि-कोष अदोष मोखपति, विपिन-कषाय-तुषारं ॥

मदन-कदन शिव-सदन पद नमति, नित अनमित यति सारं ।  
रमा-अनन्त-कन्त अन्तक-कृत-अन्त जन्तु-हितकारं ॥

फन्द चन्दना कन्दन दादुर, दुरित तुरित निर्वारं ।  
रुद्ररचित अतिरुद्र उपद्रव, पवन अद्विपति सारं ॥

अन्तातीत अचिन्त्य सुगुन तुम, कहत लहत को पारं ।  
हे जगमौल ! 'दौल' तेरे क्रम, नमें शीश कर धारं ॥

**अर्थ :** सौ इन्द्रों द्वारा वन्दनीय और जगत को तारनेवाले श्री महावीर जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा जयवन्त रहें। वे राजा सिद्धार्थ के कुलरूपी स्वच्छ कमल के लिए सूर्य हैं, संसाररूपी पर्वत के लिए मजबूत वज्र हैं, गुणरूपी मणियों के भण्डार हैं, निर्दोष मोक्ष के स्वामी हैं और कषायरूपी जगल के लिए बर्फ के समान हैं।

वे कामदेव को नष्ट करनेवाले हैं और कल्याण के घर है। उनके चरणों में नित्य अगणित श्रेष्ठ यति नमस्कार करते है। वे अनन्त लक्ष्मी के पति हैं, मृत्यु का अन्त करनेवाले हैं और प्राणिमात्र का हित करनेवाले हैं।

वे चन्दना के बन्धनों को काटनेवाले हैं और मेंढक के पापों को तुरन्त मिटानेवाले हैं। रुद्र द्वारा किये गये महाभयकर उपद्रव की पवन के समक्ष वे श्रेष्ठ पर्वतराज हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि है जगत्-शिरोमणि महावीर जिनेन्द्र ! आपके सुगुण अनन्त और अचिन्त्य हैं। उन्हें कहने में कौन पार पा सकता है ? मैं आपके चरणों में हाथ जोड़कर मस्तक झुकाता हूँ।



## वंदों अद्भुत चन्द्र वीर



तर्ज़ : देखो जी आदीश्वर स्वामी

वंदों अद्भुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोर-चितहारी ॥टेक॥

सिद्धारथ-नृप-कुल-नभ-मंडन, खंडन भ्रमतम भारी ।

परमानंद-जलधि-विस्तारन, पाप-ताप-छयकारी ॥

वंदों अद्भुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोर-चितहारी ॥१॥

उदित निरंतर त्रिभुवन अंतर, कीरति किरण प्रसारी ।

दोष-मलंक-कलंक अटंकित, मोहराहु निरवारी ॥

वंदों अद्भुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोर-चितहारी ॥२॥

कर्मावरण पयोद अरोधित, बोधित शिवमगचारी ।

गणधरादि मुनि उद्गुगन सेवत, नित पूनमतिथि धारी ॥

वंदों अद्भुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोर-चितहारी ॥३॥

अखिल अलोकाकाशउलंघन, जास ज्ञान-उजयारी ।  
 'दौलत' मनसाकुमुदनिमोदन, जयो चरम जगतारी ॥  
 वंदों अद्भुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोर-चितहारी ॥४॥

**अर्थ :** मैं उन अद्भुत चन्द्रमा के समान वीर जिनेन्द्र की वंदना करता हूँ, जो चकोर के समान भव्यजनों के चित्त को हरनेवाले हैं।

जो राजा सिद्धार्थ के कुलरूपी आकाश को सुशोभित करनेवाले व अज्ञानरूपी अंधकार का अत्यंत नाश करनेवाले हैं। वह परम आनंदरूपी समुद्र के समान विस्तृत हैं और पाप की तपन को नष्ट करनेवाले हैं।

जो तीन लोक में सदैव उदित हैं और जिनका यश किरणों की भाँति सर्वत्र फैल रहा है। जो पापरूपी मल-कलंक का बिना उकेरा हुआ ढेर हैं। आप उस मोहरूपी राहु का निवारण करनेवाले हैं।

जिनके कर्म-आवरणरूपी बादलों की बाधा दूर हो चुकी है, जिन्होंने मोक्षमार्ग पर बढ़नेवालों को निर्मल ज्ञानधारा का उपदेश दिया। जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूर्ण हैं, नित्य प्रकाशमान हैं, गणधर व मुनिरूपी तारे जिनकी आराधना करते हैं उन अद्भुत वीर जिनेन्द्ररूपी चन्द्र की वन्दना करता हूँ।

जिनके ज्ञान का उजाला अलोकाकाश को भी लाँघ रहा है। दौलतराम कहते हैं कि मनरूपी कुमुदिनी को विकसित करनेवाले, प्रफुल्लित व प्रमुदित करनेवाले, जगत से तारनेवाले हे चरमशरीरी, अंतिम तीर्थकर भगवान महावीर ! आपकी जय हो।



## सब मिल देखो हेली

सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल ॥टेक ॥



आये जुतसमवसरन कृपाल, विचरत अभय व्याल मराल,  
 फलित भई सकल तरूमाल ॥  
 सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल ॥१॥

नैन न हाल भृकुटी न चाल, वैन विदार विभ्रम जाल,  
छवि लखि होत संत निहाल ॥  
सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल ॥२॥

वंदन काज साज समाज, संग लिये स्वजन पुरजन वाज,  
श्रेणिक चलत है नरपाल ॥  
सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल ॥३॥

यों कहि मोदजुत पुरबाल, लखन चाली चरम जिनाल,  
'दौलत' नमत धर धर भाल ॥  
सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल ॥४॥

**अर्थ :** हे मेरी सहेली! त्रिशला के पुत्र महावीर का सुंदर-सरस मुख सब मिलकर देखो।

उन कृपालु के समवसरन में आने पर मोर व सर्प भी अपना जातिगत विरोध छोड़कर निर्भय विचरण करते हैं और सभी वृक्षादि पर पुनः हरियाली छा गई है, फल आ गए हैं।

जिनके नैन नहीं हिलते, न भृकुटी ही चलायमान होती है, जिनकी दिव्यध्वनि भ्रम-जाल का नाश करती है और उस छवि को देख-देखकर संतजन अपने आपको धन्य समझते हैं।

श्रेणिक राजा उन त्रिशलानन्दन महावीर की वंदना करने के निमित्त अपने परिवारजनों, नागरिकों व समाज-समूह को साथ लिये चलकर आते हैं।

नगर के बालकवृद्ध भी प्रसन्न होकर, आनन्दित होकर जिन परमशरीरी जिनेन्द्रदेव के दर्शन हेतु चलकर आते हैं, उन्हें दौलतराम भी, अपने मस्तक पर धारण कर बार-बार नमन करते हैं।



## हमारी वीर हरो भवपीर



हमारी वीर हरो भवपीर ॥टेक॥

मैं दुख-तपित दयामृतसर तुम, लखि आयो तुम तीर ।  
तुम परमेश मोखमगदर्शक, मोहदवानलनीर ॥  
हमारी वीर हरो भवपीर ॥१॥

तुम विनहेत जगतउपकारी, शुद्ध चिदानंद धीर ।  
गनपतिज्ञान-समुद्र न लंघै, तुम गुनसिंधु गहीर ॥  
हमारी वीर हरो भवपीर ॥२॥

याद नहीं मैं विपत सही जो, धर-धर अमित शरीर ।  
तुम गुन-चिंतत नशत तथा भय, ज्यों घन चलत समीर ॥  
हमारी वीर हरो भवपीर ॥३॥

कोटवारकी अरज यही है, मैं दुख सहूं अधीर ।  
हरहु वेदना फन्द 'दौलको', कतर कर्म जंजीर ॥  
हमारी वीर हरो भवपीर ॥४॥

**अर्थ :** हे भगवान महावीर ! हमारी भव-पीड़ा ( संसार-भ्रमण की पीड़ा) का हरण करो।

मैं दुःखों से तप रहा हूँ, आप दयारूपी अमृत के सागर हैं, यह देखकर आपके पास - तट के पास आया हूँ। आप परमेश्वर हैं, मोक्ष-पथ को दिखाने वाले हैं, मोहरूपी अग्नि का शमन करने के लिए नीर हैं, जल हैं।

आप बिना किसी प्रयोजन के - बिना हेतु के जगत का उपकार करनेवाले हैं, शुद्ध आत्मानंद हैं, धैर्यवान हैं। आप गुणों के

इतने गहन, गहरे समुद्र हैं कि गणधर का ज्ञान भी उनको लाँघने में; उनका पार पाने में असमर्थ है।

मैंने बार-बार अनेक बार सुंदर देह धारण करके अगणित दुःख सहे। आपके गुणों के चिंतवन से सारे भय उसी प्रकार विघट जाते हैं जैसे तेज पवन के झौंकों से बादल बिखर जाते हैं।

अनेक बार की, भाँति-भाँति की मेरी अरज-विनती यही है कि अब मैं दुःख सहते-सहते अधीर हो गया हूँ। दौलतराम जी कहते हैं कि मेरे कर्मों की जंजीर को काटकर मेरे इस दुःख जाल का हरण करो।



## मान ले या सिख मोरी



मान ले या सिख मोरी, झुके मत भोगन ओरी ॥टेक॥

भोग भुजंगभोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी ।  
ते अनन्त भव भीम भरे दुःख, परे अधोगति पोरी ॥  
बँधे दृढ़ पातक डोरी, मान ले या सिख मोरी ॥१॥

इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञानवृषधोरी ।  
तिन सुख लह्यो अचल अविनाशी, भवफांसी दई तोरी ॥  
रमें आतम रस बोरी, मान ले या सिख मोरी ॥२॥

भोगन की अभिलाष हरन को, त्रिजग सम्पदा थोरी ।  
यातैं ज्ञानानन्द 'दौल' अब, पियो पियूष कटोरी ।  
मिट भवव्याधि कठोरी, मान ले या सिख मोरी ॥३॥

अर्थ : अरी आत्मा ! हमारी एक सीख मान । तू भोगों की ओर कभी भी अपनी प्रवृत्ति न कर ।

देखो, यह पञ्चन्द्रिय सम्बन्धी भोग भुजङ्ग के भोग -- (सॉप के शरीर जैसे) हैं। यह भी आपाततः भोगकाल में बड़े मनोहारी और प्रिय लगते हैं और जो व्यक्ति इन भोगों से स्नेह-बन्धन जोड़ते हैं, वे अनन्त दुःखों से आकीर्ण संसार की अधोगति रूपी पौर में डेरा डालते हैं और वहाँ वे पाप-जाल में इतनी बुरी तरह से फंस जाते हैं कि उनका वहाँ से निकलना ही कठिन हो जाता है।

जो मनुष्य इन भोगों से विरक्त हो गये हैं और जिन्होंने इन भोगों से अपना नाता तोड़ लिया है, वे सम्पूर्ण ज्ञानी (केवलज्ञानी) हो गये हैं और उन्होंने संसार के बन्धन को तोड़कर अविनश्वर एवं अविचल सुख प्राप्त कर लिया है। उनके साथ मुक्ति-लक्ष्मी विलास करती है।

भोगों की चाह साधारण चाह नहीं है। इस चाह को उपशान्त करने के लिए तीनों लोक की सम्पत्ति भी पर्याप्त नहीं है। इसलिए आत्मा, तू तो ज्ञानानन्दरूपी अमृत को कटोरी भर-भर कर पी, जिससे तेरी कठोर भव-व्याधि मिट जाय और तू निराकुल हो सके।



## मानत क्यों नहिं रे हे नर



मानत क्यों नहिं रे, हे नर सीख सयानी ॥टेक ॥  
भयौ अचेत मोह-मद पीके, अपनी सुधि बिसरानी ॥

दुखी अनादि कुबोध अब्रततैं, फिर तिनसौं रति ठानी ।  
ज्ञानसुधा निजभाव न चाख्यौं, परपरनति मति सानी ॥१॥

भव असारता लखै न क्यौं जहँ, नृप है कृमि विट-थानी ।  
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु, दुखिया हरिसे प्रानी ॥२॥

देह एह गद-गेह नेह इस, हैं बहु विपति निशानी ।  
जड़ मलीन छिनछीन करमकृत-बन्धन शिवसुखहानी ॥३॥

चाहज्वलन इंर्धन-विधि-वन-घन, आकुलता कुलखानी ।  
ज्ञान-सुधा-सर शोषन रवि ये, विषय अमित मृतुदानी ॥४॥

यौं लखि भव-तन-भोग विरचि करि, निजहित सुन जिनवानी ।  
तज रुषराग दौल अब अवसर, यह जिनचन्द्र बखानी ॥५॥

**अर्थ :** हे मनुष्य ! तू विवेकपूर्ण उपदेश को क्यों नहीं मानता है ? मोहरूपी शराब को पीकर तू अपने आपको भूल गया, अचेत हो गया है।

तू मिथ्यात्वी होकर, मिथ्या आचरण कर इनमें रत हो रहा है और अपने ज्ञानस्वरूप को न जानकर/उसका आस्वादन न कर तू पर-परिणति में सना हुआ है, डूब रहा है, चिपक रहा है।

तू इस संसार की असारता को क्यों नहीं देखता जहाँ राजा भी भरकर अपने खराब भावों के कारण विष्टा में कीड़ा होकर जन्मा। जहाँ धनी भी निर्धन हो जाता है, राजा दास हो जाता है, अपने पराए/शत्रु हो जाते हैं और दुःखी प्राणी भी हर्षित हो जाते हैं।

यह देह रोगों का घर है। तू इसमें नेह/अपनापन जोड़ रहा है। यह सब विपत्ति की निशानी है, कष्टप्रद है। यह पुद्गल देह मल से सना है, क्षण-क्षण में नष्ट होनेवाला है। कर्म करके कर्मबंधन में बंधता है जिससे आत्मीय सुख की प्रतीति/ अनुभव नहीं होता। उसकी हानि होती है।

इस कर्मरूपी घने जंगलों में इच्छाएँ जो कि आकुलतादायक हैं अर्थात् दुःख की खान हैं वे ही जलने योग्य ईर्धन हैं / विवेक-ज्ञानरूपी सरोवर को सुखाने के लिए ये विषय ही अपरिमित, अथाह मृत्यु के दाता हैं अर्थात् ये विषय-सुख ही बार-बार मृत्यु के कारण हैं, संसार-भ्रमण के कारण हैं, बार-बार देह धारण करने के कारण हैं ।

यह सब देखकर तो तू इस संसार से, देह से, उसके भोगों से विरक्त होकर उनसे रुचि हटाकर अपना हित करनेवाली जिनेन्द्र की वाणी को, उपदेश को सुन ! दौलतराम कहते हैं कि श्रीजिनदेव बार-बार समझाते हैं कि अभी भी अवसर है तू राग-द्वेष को छोड़ दे।



## मेरे कब है वा

मेरे कब है वा दिन की सुधरी ॥टेक ॥  
तन विन वसन असनविन वनमें, निवसों नासादृष्टिधरी ॥



पुण्यपाप परसौं कब विरचों, परचों निजनिधि चिरविसरी  
तज उपाधि सजि सहजसमाधी, सहों धाम हिम मेघझरी ॥  
मेरे कब है वा दिन की सुघरी ॥१॥

कब थिरजोग धरों ऐसो मोहि, उपल जान मृग खाज हरी  
ध्यान-कमान तान अनुभव-शर, छेदों किहि दिन मोह अरी ॥  
मेरे कब है वा दिन की सुघरी ॥२॥

कब तृनकंचन एक गनों अरु, मनिजडितालय शैलदरी  
'दौलत' सत गुरुचरन सेव जो, पुरवो आश यहै हमरी ॥  
मेरे कब है वा दिन की सुघरी ॥३॥

**अर्थ :** मेरे कब उस दिन को सुघड़ी (शुभमुहूर्त) आवे, जब मैं नग्र दिगम्बर होकर (सब वस्त्र छोड़कर) बिना किसी भोजन के वन में रहूँ (नासादृष्टि लगाकर साधना करूँ)।

जड़ से, पुण्य-पाप से कब विरक्त होऊँ और अपनी निधि को, आत्मा को जिसे दीर्घकाल से भुला रखा है उसे जानूँ अर्थात् उससे परिचय करूँ। सब प्रकार की उपाधि को छोड़कर सहज समाधि में लीन होके और गर्मी, सर्दी व वर्षा की झड़ी की तीव्रता को सहन करूँ।

कब ऐसे योग-साधना में मैं स्थिर होऊँ कि शरीर की (पाषाण कौ-सी) निश्लता को देखकर भोले हरिण अपनी देह की खुजली के निवारण के लिए पाषाण समझकर अपना शरीर खुजाने लगें। ध्यान की कमान तानकर, अनुभवरूपी बाण से मोह-शत्रु का छेदन करूँ।

कब ऐसी समझ होवे कि तिनका और स्वर्ण-मणिजडित महल व पर्वत की कंदराओं को समान, एक-सा समझूँ। दौलतराम कहते हैं कि सत्गुरु के चरणों की सेवा करो, भक्ति करो जिससे यह आशा पूरी हो जावे।



**मैं आयौ जिन शरन तिहारी**



मैं आयौ, जिन शरन तिहारी ।  
मैं चिरदुखी विभावभावतें, स्वाभाविक निधि आप विसारी ॥टेक ॥

रूप निहार धार तुम गुन सुन, चैन होत भवि शिवमगचारी ।  
यौं मम कारज के कारण तुमरी सेव एक उर धारी ॥१॥

मिल्यौ अनन्त जन्मतैं अवसर, अब विनऊँ हे भवसरतारी ।  
परम इष्ट अनिष्ट कल्पना, 'दौल' कहै झट मेट हमारी ॥२॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं (आप जैसी) अपनी स्वाभाविक निधि को भूलकर अपने ही विभावों के कारण अनादिकाल से - दीर्घकाल से दुखी हूँ।

आपके सुन्दर रूप को देखकर, आपके गुणों को हृदय में धारणकर, आपके वचनामृत को सुनकर भव्यजन मोक्ष-मार्ग पर गमन करते हैं। मैं अपने स्वरूप में स्थिर हो सकूँ, इस कार्य के सम्पन्न होने के लिए आप ही कारण हो, आप ही निमित्त हो; इसलिए आपका स्मरण-वन्दन ही हृदय में धारण करने योग्य है।

अनन्त जन्मों के बाद/अनेक जन्मों के बाद ऐसा अवसर मिला है, आप भव से तारनेवाले हो, अब यह निश्चय करके आपकी वन्दना करता हूँ। दौलतराम जी विनती करते हैं कि हे भगवन ! अब हमारी इष्ट और अनिष्ट की भावना तुरन्त मिट जाय अर्थात् राग-द्वेष की भावना नष्ट हो जाय।



## मैं भाखूं हित तेरा सुनि हो

मैं भाखूं हित तेरा, सुनि हो मन मेरा ॥टेक ॥



नरनरकादिक चारौं गति में, भटक्यो तू अधिकानी ।  
परपरणति में प्रीति करी, निज परनति नाहिं पिछानी ।  
सहै दुख क्यों न घनेरा ॥१॥

कुगुरु कुदेव कुपंथ पंकफंसि, बहु खेद लहायो ।  
शिवसुख दैन जैन जगदीपक, सो मैं कबहुं न पायो,  
मिट्यो न अज्ञान अंधेरा ॥२॥

दर्शनज्ञानचरण तेरी निधि, सौ विधिठगन ठगी है ।  
पाँचों इंद्रिन के विषयन में, तेरी बुद्धि लगी है,  
भया इनका तू चेरा ॥३॥

तू जगजाल विषै बहु उरझ्यो, अब कर ले सुरझेरा ।  
'दौलत' नेमिचरन पंकज का, हो तू भ्रमर सबेरा,  
नशै ज्यों दुख भवकेरा ॥४॥

**अर्थ :** हे मेरे मन! तेरे ही हित की बात कही जाती है, उपदेश दिया जाता है, तू सुन !

हे मन, सुन ! तू मनुष्य, नरक, तिर्यच और देव - इन चारों गतियों में बहुत अधिक भटक चुका। अन्य द्रव्य के परिणमन में तो रुचि लेता रहा और स्वयं की परिणति की तू पहचान भी नहीं कर पाया। तो फिर अत्यन्त दुःख कैसे क्यों नहीं सहन करेगा? अर्थात् फिर तुझे अत्यन्त घने दुःख सहन करने ही पड़ेंगे।

हे मन, सुन ! कुगुरु, कुदेव व कुधर्म के कीचड़ में फँसकर तू बहुत दुःखी हुआ और मोक्ष सुख को देनेवाले, उसकी राह बतानेवाले दीपक - जिनधर्म को तूने कभी भी ग्रहण नहीं किया, इसीलिए तेरा यह अज्ञान का अंधेरा नहीं मिट सका।

हे मन, सुन ! कर्मरूपी ठगों ने तेरी अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की रत्नत्रय संपत्ति को हर लिया है, ठग लिया है। पाँचों इंद्रियों के विषयों में तेरी बुद्धि लगी है, रुचि लगी है और तू इन विषयों का दास हो रहा है।

हे मन, सुन! तू इस संसार के व्यूह-जाल में बहुत उलझ चुका, अब तो तू अपने को सुलझा ले। दौलतराम कहते हैं कि तू शीघ्र ही नेमिनाथ भगवान के चरण-कमलों पर मंडरानेवाला ज्ञानरूपी भैंवरा बन जिससे तेरे भव-भव के होनेवाले दुख मिट जाएँ।





# मोहि तारो जी क्यों ना

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥टेक॥

मैं भवउदधि पर्यो दुख भोग्यो, सो दुख जात कह्यौ ना ।

जामन मरन अनंततनो तुम, जानन माहिं छिप्यो ना ॥

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥१॥

विषय विरसरस विषम भयो मैं, चख्यौ न ज्ञान सलोना ।

मेरी भूल मोहि दुख देवै, कर्मनिमित्त भलौ ना ॥

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥२॥

तुम पदकंज धेरे हिरदै जिन, सो भवताप तप्यौ ना ।

सुरगुरुहूके वचनकरनकर, तुम जसगगन नप्यौ ना ॥

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥३॥

कुगुरु कुदेव कुश्रुत सेये मैं, तुम मत हृदय धर्यो ना ।

परम विराग ज्ञानमय तुम जाने विन काज सर्यो ना ॥

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥४॥

मो सम पतित न और दयानिधि, पतिततार तुम-सौ ना ।

'दौलतनी' अरदास यही है, फिर भववास वसौं ना ॥  
मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥५॥

**अर्थ :** तीनों कालों में - तीनों लोकों में आप ही तारनेवाले हैं, आप मुझे क्यों नहीं तारते हैं!

मैं इस संसार-समुद्र में पड़ा हूँ, मैंने बहुत दुःख भोगा है, जिनका अब कथन भी नहीं किया जा सकता। मैं अनन्त बार जन्म मरण कर चुका। यह सब आपके ज्ञान में है, आपसे कुछ छुपा हुआ नहीं है।

मैंने विषम व विकारी रस से भरे विषयों का आस्वादन किया और करता ही रहा पर सलोने ज्ञान-विवेक का स्वाद कभी नहीं चखा। यह मेरी भूल, कर्मों का निमित्त पाकर अब मुझे हो दुःखकारी है, दुःख देनेवाली है।

जिन्होंने आपके चरण-कमलों को भावपूर्वक हृदय में धारण किया, वे भवसंसार के ताप से नहीं झुलसे। वृहस्पति के वचनों के द्वारा भी आपके यशरूपी आकाश के विस्तार को मापा नहीं जा सकता।

मैंने कुगुरु, कुदेव व कुशास्त्र की सेवा की, आपके द्वारा प्रसारित धर्म को हृदय में धारण नहीं किया। परन्तु आप परम वीतरागी हैं, ज्ञानमय हैं, सर्वज्ञ हैं, यह जाने बिना मेरा काम नहीं चला।

हे दयानिधि - मेरे समान कोई पापी नहीं है और पापियों का आप जैसा उद्धारक कोई नहीं है। दौलतराम की यह अरज है कि मुझे अब फिर संसार का निवास कभी प्राप्त न हो, इस संसार में रहना न हो।



## मोहिड़ा रे जिय हितकारी



मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै ।  
भववन भ्रमत दुखी लखि याको, सुगुरुदयालु उचारै ॥टेक॥

विषय भुजंगमय संग न छोड़त, जो अनन्तभव मारै ।

ज्ञान विराग पियूष न पीवत, जो भवव्याधि विड़ारै ॥

मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै ॥१॥

जाके संग दुरैं अपने गुन, शिवपद अन्तर पारै ।  
ता तनको अपनाय आप चिन-मूरतको न निहारै ॥  
मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै ॥२॥

सुत दारा धन काज साज अघ, आपन काज विगारै ।  
करत आपको अहित आपकर, ले कृपान जल दारै ॥  
मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै ॥३॥

सही निगोद नरककी वेदन, वे दिन नाहिं चितारै ।  
'दौल' गई सो गई अबहू नर, धर दृग-चरन सम्हारै ॥  
मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै ॥४॥

**अर्थ :** संसार में भ्रमण करते हुए दुःखी जीव को देखकर दयालु सुगुरु हितकारी उपदेश देते हुए समझाते हैं - हे मोही जीव ! तू तेरे हित की सीख को, उपदेश को क्यों नहीं मानता !

विषय-भोगरूपी भयानक नाग का तू साथ नहीं छोड़ता, जो अनन्त काल तक तुझे भव-भ्रमण कराकर मारता है, पीड़ा हुँचाता है। संसार से वैराग्य और ज्ञानरूपी अमृत का तू पान क्यों नहीं करता जो तुझे भव-भ्रमण की व्याधि से छुड़ा ले, छुटकारा दिला दे।

जिसके साथ रहने से अपने सभी गुण दूर हो जाते हैं, छुप जाते हैं और मुक्ति अर्थात् मोक्ष उतना ही दूर हो जाता है, ऐसे तन को तो तू अपना रहा है और अपने चिदानन्द चिन्मयस्वरूप की ओर नहीं देखता !

पुत्र, स्त्री, धन, उनके कार्य व सज्जा, पाप ये सब अपना कार्य बिगड़ते हैं; इस प्रकार तू स्वयं ही अपने आपका अहित करता है और हाथ में तलवार लेकर जल को काटने के समान निरर्थक श्रम करता है।



## मोही जीव भरमतम ते नहि



मोही जीव भरमतम ते नहि, वस्तु स्वरूप लखे है जैसे ॥टेक ॥

जे जे जड़ चेतन की परनति, ते अनिवार परिनवे वैसे ।  
वृथा दुखी शठ कर विकल्प यों, नहिं परिनवै परिनवै ऐसे ॥  
मोही जीव भरमतम ते नहि, वस्तु स्वरूप लखे है जैसे ॥१॥

अशुचि सरोग समूल जड़मूरत, लखत विलात गगन घन जैसे ।  
सो तन ताहि निहार अपुनपों, चाहत अबाध रहे थिर कैसे ॥  
मोही जीव भरमतम ते नहि, वस्तु स्वरूप लखे है जैसे ॥२॥

सुत तिय बंधु वियोग योग यों ज्यों सराय जन निकसे पैसे ।  
विलखत हरखत शठ अपने लखि रोवत हंसत मत्तजन जैसे ॥  
मोही जीव भरमतम ते नहि, वस्तु स्वरूप लखे है जैसे ॥३॥

जिन रवि बैन किरण लहि निज निज, रूप सुभिन्न कियो पर मेंसै ।  
सो जल मल 'दौल' को, चिर चित मोह विलास हृदैंसै ॥  
मोही जीव भरमतम ते नहि, वस्तु स्वरूप लखे है जैसे ॥४॥

**अर्थ :** मोही जीव अपने भ्रमरूपी अन्धकार के कारण वस्तु-स्वरूप को जैसा है, वैसा नहीं देख पाता ।

चेतन और अचेतन पदार्थों की जो-जो परिणति हो रही है, वह वैसी ही हो रही है जैसी होनी है, उसे कोई बदल नहीं सकता, किन्तु यह मूर्ख व्यर्थ ही ऐसे विकल्प करके दुःखी होता है कि यह वस्तु ऐसे क्यों नहीं परिणमित हो रही है, ऐसे क्यों हो रही है, इसे ऐसे नहीं परिणमित होना चाहिए, इसे ऐसे परिणमित होना चाहिए।

यह शरीर अपवित्र है, रोगयुक्त है, मलिन है, जड़मूर्ति है और आकाश में बादलों की तरह क्षण-भर में दिखकर विलीन हो जानेवाला है; किन्तु यह मोही जीव उसमें अपनापन देखता हैं और चाहता है कि यह अवाधरूप से स्थिर कैसे रहे।

स्त्री-पुत्र व भाईं-बन्धुओं का संयोग-वियोग तो वास्तव में ऐसा है जैसा कि धर्मशाला में यात्रियों का आवागमन, किन्तु यह मूर्ख उन्हे अपने मानकर उनके वियोग-संयोग में इस प्रकार दुःखी-सुखी होता है, इस प्रकार रोता-हँसता है, जैसे कोई पागल हो।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि जिन जीवों ने जिनेन्द्र भगवान रूपी सूर्य की वचनरूपी किरणों को प्राप्त करके पर में से अपना रूप भलीभाँति अलग कर लिया है, वे ही जगत के मुकुट हैं और उन्होंने ही अपने हृदय से अनादिकालीन मोह के विलास को बाहर निकाला है।



## राचि रह्यो परमाहिं



राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो, रूप न जानै रे ॥टेक ॥

अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे ।  
ये पर इनहिं वियोग योग में, यौं ही सुख दुख मानै रे ॥  
तू अपनो रूप न जानै रे ॥१॥

चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे ।  
विपतिखेत विधिवंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे ॥  
तू अपनो रूप न जानै रे ॥२॥

नर भव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे ।  
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुरु बखानै रे ॥  
तू अपनो रूप न जानै रे ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव ! तू पर में ही रुचि लगाए हुए है, तू अपने स्वरूप को नहीं पहचान रहा है / तू अचल स्थिर है, चिन्मय है, या अन्य कोई रूप नहीं है, तू मूर्त नहीं है, तू अपनी निज की अवस्था में ही सुखी रहता है।

तू देह को, धन को, भाई, पिता, पुत्र, माता इनको अपना जान रहा है। ये सब तुझसे अन्य हैं, पर हैं, इनके संयोग-वियोग में ही तू सुख व दुःख मानता रहता है।

तू जो चाह करता है उसकी पूर्ति नहीं होती, तृष्णा बनी रहती है और तू। खोटे अर्थात् जघन्य ज्ञान की साधना करता है जो दुःखों को देनेवाले कर्मबंध का कारण है, ऐसे इंद्रिय विषय जो भोगों की खान हैं, की साधना करता है।

यह नरभव तुझे मिला है, अब जिनवाणी को, जिनेन्द्र की वाणी को सुनकर, समझकर अरे ज्ञानी ! तू अपना हित समझ ले, हित करले। दौलतराम कहते हैं कि सत्तुरु द्वारा कहा गया, बताया गया, उस आत्मज्ञानरूपी अमृतरस का पान करो।



## लखो जी या जिय भोरे



लखो जी या जिय भोरे की बातें, नित करत अहित हित-घातें ॥

जिन गणधर मुनि देशव्रती, समकिती सुखी नित जातें ।  
सो पय ज्ञान न पान करत न अघात विषय-विष खातें ॥

दुखस्वरूप दुखफलद जलद सम, टिकत न छिनक विलातें ।  
तजत न जगत न भजत पतित नित, रंच न फिरत तहाँ तें ॥

देह गेह धन नेह ठान अति, अघ संचत दिन रातें ।  
कुगति विपति फल की न भीत, निश्चिन्त प्रमाद दशा तें ॥

कभी न होय आपनों पर द्रव्यादि पृथक चतुधा तें ।  
पै अपनाय लहत दुख शठ नभ, हतन चलावत लातैं ॥

शिवगृहद्वार सार नरभव यह, लहि दश दुर्लभता तें ।

खोवत ज्यों मणि काग उड़ावत, रोवत रंकपना तें ॥

चिदानन्द निर्द्वन्द्व स्वपद तज, अपद विपदपद रातें ।

कहत सुसिख गुरु गहत नहीं उर, चहत न सुख समता तें ॥

जैन बैन सुनि भवि बहु भवहर, छूटे द्वन्द्व दशा तें ।

तिनकी सुकथा सुनत न मुनत न, आतम बोध कला तें ॥

जे जन समुद्धि ज्ञान-दृग-चारित, पावन पय वर्षा तें ।  
ताप विमोह हर्यों तिनको जस, 'दौल' त्रिभौन विख्यातें ॥

**अर्थ :** हे भाइयो ! जरा इस अज्ञानी जीव की बात तो देखो ! यह हमेशा अपने हित का नाश करके अपना अहित करता रहता है। यह अज्ञानी जीव, जिसके कारण जिनेन्द्र, मुनिराज, देशव्रती श्रावक और सम्यग्वृष्टि जीव सदा सुखी रहते हैं, उस ज्ञानरूपी अमृत का पान तो नहीं करता है और विषयरूपी विष को खाते हुए कभी इसका जी नहीं भरता है। संसार के ये विषय दुःखस्वरूप हैं, दुःखरूप फल को देनवाले हैं और बादल के समान क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं; किन्तु फिर भी यह अज्ञानी जीव उनकी ओर से किचित् भी विमुख नहीं होता, अपितु उन्हीं की इच्छा करता है।

यह अज्ञानी जीव शरीर, मकान, धनादि से बहुत प्रेम करके रात-दिन घोर पाप का सचय करता रहता है। इसे इस तरह का कोई भय नहीं है कि उसे इसके फलस्वरूप खोटी गति में जाकर घोर दुःख सहन करना होगा। यह तो प्रमाद दशा में निश्चिन्त पड़ा है।

यद्यपि जगत के समस्त परपदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव-इन चारों ही प्रकारों से पृथक् हैं, वे कदापि अपने नहीं हो सकते हैं, परन्तु यह मूर्ख उनको अपना समझकर घोर दुख उठाता है। मानो आकाश को मारने के लिए लात मारता है।

यह अज्ञानी जीव, जो मनुष्य भव मोक्षरूपी मन्दिर का द्वार है, अत्यन्त श्रेष्ठ है और बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुआ है, उसे भी व्यर्थ ही खो रहा है और वैसी बात कर रहा है जैसे कोई मूर्ख कौआ उड़ाने के लिए बहुमूल्य मणि को फेंक दे और फिर रंक होकर रोवे।

यह अज्ञानी जीव अपने चिदानन्दस्वरूपी निर्दधन्द पद को छोड़कर विपत्ति के कारणभूत परपदों में लीन हो रहा है। श्रीगुरु भली शिक्षा देते हैं, पर यह उसे भी अपने हृदय में धारण नहीं करता। समताभाव से उत्पन्न सुख की अभिलाषा नहीं करता। अनन्त जीव जिनवाणी को सुनकर संसार की दृन्द्र दशा से मुक्त हो गये हैं, किन्तु यह जीव उनकी कथा भी नहीं सुनता, आत्मज्ञान की कला प्रकट करके उसे स्वीकार भी नहीं करता।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि जिन जीवों ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पावन जलवर्षा से अपने मोहरूपी ताप को दूर कर दिया है, उनकी कीर्ति तीनों लोकों में विख्यात हो गयी है।



तर्ज : देखो जी आदीश्वर स्वामी

# जय जिन वासुपूज्य

जय जिन वासुपूज्य शिव-रमनी-रमन मदन-दनु-दारन हैं ।  
बालकाल संयम सम्हाल रिपु, मोहव्याल बलमारन हैं ॥

जाके पंचकल्यान भये चंपापुर में सुखकारन हैं ।  
वासववृंद अमंद मोद धर, किये भवोदधि तारन हैं ॥१॥

जाकै वैन सुधा त्रिभुवन जन, को भ्रमरोग विदारन हैं ।  
जा गुनचिंतन अमलअनल मृत, जनम-जरा-वन-जारन हैं ॥२॥

जाकी अरुन शांतछवि-रविभा, दिवस प्रबोध प्रसारन हैं ।  
जाके चरन शरन सुरतरु वांछित शिवफल विस्तारन हैं ॥३॥

जाको शासन सेवत मुनि जे, चारज्ञान के धारन हैं ।  
इन्द्र-फणींद्र-मुकुटमणि-दुतिजल, जापद कलिल पखारन हैं ॥४॥

जाकी सेव अछेवरमाकर, चहुंगतिविपति उधारन हैं ।  
जा अनुभवघनसार सु आकुल, तापकलाप निवारन हैं ॥५॥

**द्वादशमों जिनचन्द्र जास वर, जस उजासको पार न हैं ।  
भक्तिभारतें नमें 'दौल' के, चिर-विभाव-दुख टारन हैं ॥६॥**

**अर्थ :** हे वासुपूज्य जिनदेव, आपकी जय हो । आप मोक्षरूपी लक्ष्मी के साथ क्रीड़ा में - केलि में रत हैं, कामरूपी राक्षस का संहार करनेवाले हैं । बाल्यकाल से ही संयम को धारणकर मोहरूपी सर्प का बलपूर्वक नाश करनेवाले हैं।

चंपापुरी में हुए आपके पाँचों कल्याणक अत्यंत सुखकारी हैं। इन्द्र आदि अति आनंद से भरकर भव-समुद्र के पार हो गए हैं।

जिनके वचनामृत संसारीजनों के भ्रम का नाश करनेवाले हैं, जिनके गुणचितवन की शुद्ध ध्यानाग्नि से जन्म-मृत्यु व बुढ़ापारूपी जंगल भस्म हो जाता है।

जिनकी शान्त छवि सूर्य को प्रातःकालीन लाल किरणों के समान ज्ञानरूपी दिन का प्रसार करती हैं। जिनके चरणों की शरण स्वर्ग व मोक्ष की दाता है।

चार ज्ञान के धारी मुनिजन-गणधर आपके शासन की सेवा / मान्यता करते हैं। मुकुटधारी इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदि जिसके चरणों की ज्योतिरूपी जल से अपने पाप-मल को धोते हैं।

जिनकी भक्ति से अक्षयपद की प्राप्ति होती है, जो चारों गति के दुःखों से उद्धार करनेवाली है। जिनके घने अनुभव के फलस्वरूप शाकदा का हार मा हो जाता है।

दौलतराम अपने दीर्घकाल से चले आ रहे विभावों के दुःख को टालने के लिए भक्ति के भारवश उन बारहवें जिनेश्वर को, जिनके यश का कोई पार नहीं है, नमन करते हैं।



## **विषयोंदा मद भानै ऐसा**



**विषयोंदा मद भानै, ऐसा है कोई वे ॥टेक ॥**

**विषय दुःख अर दुखफल तिनको, यौं नित चित्त में ठानै ॥१॥**

**अनुपयोग उपयोग स्वरूपी, तन चेतनको मानै ॥२॥**

**वरनादिक रागादि भावतैं, भिन्न रूप तिन जानै ॥३॥**

स्वपर जान रुषराग हान, निजमें निज परनति सानै ॥४॥

अन्तर बाहर को परिग्रह तजि, 'दौल' वसै शिवथानै ॥५॥

**अर्थ :** ऐसा जीव कोई विरला ही होता है जो विषयों के मद को चकनाचूर कर दे और सदैव अपने चित्त में ऐसा भाव रखे कि ये विषय दुःखरूप है एव इनका फल भी दुःख ही है।

ऐसा जीव कोई विरला ही होता है जो शगैर को तो ज्ञान-दर्शन से रहित अनुपयोग-स्वरूपी मानता है और आत्मा को ज्ञान-दर्शन से सहित उपयोग-स्वरूपी मानता है। ऐसा ही जीव अपने स्वरूप को समस्त वर्णादि एवं रागादि भावों से भिन्न जानता है।

कविवर दौनतराम कहते हैं कि ऐसा जीव कोई विरला ही होता है जो स्व और पर को उक्त प्रकार से पृथक-पृथक् जानकर और राग-द्वेष का अभाव कर अपनी परिणति को अपने में ही लीन कर दे तथा समस्त बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करके मोक्ष में जा बसे।



## वारी हो बधाई या



वारी हो बधाई या शुभ साजे ।  
विश्वसेन ऐरादेवी गृह, जिनभव मंगल छाजै ॥१॥

सब अमरेश अशेष विभवजुत, नगर नागपुर आये ।  
नागदत्त सुर इन्द्र वचन तें, ऐरावत सजि धाये ।  
लख जोजन शत वदन वदन वसु, रद प्रति सर ठहराये ।  
सर सर सौ पन-बीस नलिन प्रति, पद्म पचीस विराजै ॥२॥

पद्म पद्म प्रति अष्टोत्तर शत, ठने सुदल मनहारी ।  
ते सब कोटि सताइस पै मुद जुत नाचत सुरनारी ।  
नवरस गान ठान कानन को, उपजावत सुख भारी ।

वंक लै लावत लंक लचावत, दुति लखि दामिन लाजै ॥३॥

गोप गोपतिय जाय माय ढिंग, करी तास थुति भारी ।  
सुखनिद्रा जननी को करि नमि, अंक लियो जगतारी ।  
लै वसु मंगल द्रव्य दिशसुरीं, चलीं अग्र शुभकारी ।  
हरख हरी चख सहस करी, तब जिनवर निरखन काजै ॥४॥

ता गजेन्द्र पै प्रथम इन्द्र ने, श्री जिनेन्द्र पधराये ।  
द्वितिय छत्र दिय तृतिय तुरिय हरि मुदधरि चमर दुराये ।  
शेष शक्र जय शब्द करत, नभ लंघ सुराचल आये ।  
पांडुशिला जिन थापि नची शचि, दुन्दुभि कोटिक बाजै ॥५॥

पुनि सुरेश ने श्री जिनेश को, जन्म नहवन शुभ ठानो ।  
हेम कुम्भ सुर हाथहिं हाथन, क्षीरोदधि जल आनो ।  
वदन-उदर-अवगाह एक-सौ-वसु योजन परमानो ।  
सहस आठ कर करि हरि जिनशिर, ढारत जयधुनि गाजै ॥६॥

फिर हरि-नारि सिंगार स्वामि-तन, जजे सुरा जस गाये ।  
पूरवली विधि करि पयान, मुद ठान पिता घर लाये ।  
मणिमय ओँगन में कनकासन, पै श्री जिन पधराये ।  
ताण्डव-नृत्य कियो सुरनायक, शोभा सकल समाजै ॥७॥

फिर हरि जगगुरु पिता तोष, शान्तेश धरो जिन नामा ।  
पुत्र जन्म उत्साह नगर में, कियो भूप अभिरामा ।  
साधि सकल निज-निज नियोग, सुर-असुर गये निजधामा ।  
त्रियदधारि जिन चारु चरन की, 'दौलत' करत सदा जै ॥8॥

**अर्थ :** बलिहारी हो बधाई के इस शुभ अवसर की, जो पिता विश्वसेन एवं माता ऐरादेवी के घर पर श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र के जन्म का मंगल उत्सव हो रहा है ॥१॥

इस अवसर पर सभी इन्द्र अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ हस्तिनापुर में आये हुए हैं। इन्द्र की ही आज्ञा पाकर नागकुमार देव भी ऐरावत हाथी को सजाकर यहाँ ले आये हैं। यह ऐरावत हाथी एक लाख योजन ऊँचा है। इसके एक सौ मुख हैं। प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत हैं। प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर है। प्रत्येक सरोवर में एक सौ पच्चीस कमलदण्ड हैं। प्रत्येक कमलदण्ड में पच्चीस कमल हैं। प्रत्येक कमल में एक सौ आठ मनोहर पत्ते हैं, जो कुल मिलाकर 27 करोड़ हैं। इन सभी पत्तों पर हर्षित होकर देवियाँ नृत्य कर रही हैं। साथ ही नव-रस के गीत गा-गाकर कानों को बहुत सुख उत्पन्न कर रही हैं। नृत्य के समय जब ये देवियों टेडी होकर अपनी कमर को झुकाती हैं तो इनकी शोभा देखकर बिजली भी लाञ्जित हो जाती है ॥२-३॥

इन्द्राणी ने इस अवसर पर माता ऐरादेवी के पास गुप्त रूप से जाकर उनकी बहुत स्तुति की। उसके पश्चात् माता को सुखनिद्रा में सुलकर और नमस्कार करके शान्तिनाथ जिनेन्द्र को अपनी गोद में उठा लिया। दिक्कुमारी देवियों अष्ट मंगल द्रव्य लेकर उनके आगे-आगे चलने लगीं। इन्द्र ने हर्षित होकर जिनेन्द्र शान्तिनाथ को देखने के लिए अपनी एक हजार आंखें बनायी ॥४॥

इसके बाद प्रथम स्वर्ग के इन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी पर विराजमान

किया। द्वितीय स्वर्ग के इन्द्र ने उन पर छत्र लगाया। तृतीय व चतुर्थ स्वर्ग के इन्द्रों ने प्रसन्न होकर चंवर दुराये। शेष सभी इन्द्र जय-जय शब्द करने लगे। इस प्रकार सभी इन्द्रादि आकाश-मार्ग को पार करके सुमेरु पर्वत पर आ गये। भगवान को पाण्डुक शिला पर विराजमान कर देने पर इन्द्राणी ने खूब नृत्य किया। करोड़ों दुन्दुभि बाजे बजने लगे ॥५॥

इसके बाद इन्द्र ने श्री जिनेन्द्र का शुभ जन्माभिपेक प्रारम्भ किया। देवों ने

परस्पर हाथों ही हाथो से स्वर्णकनशों में क्षीरसागर का जल लाना प्रारम्भ किया। इन स्वर्णकलशों के मुख का परिमाण एक योजन, पेट का परिमाण चार योजन और उनकी गहराई आठ योजन प्रमाण थी। ऐसे एक हजार आठ कलशों से इन्द्र ने भगवान के मस्तक पर जलधारा डाली और गर्जना के साथ जयध्वनि की ॥६॥

इसके बाद इन्द्राणी ने भगवान के शरीर का शुंगार किया और देवों ने उनकी पूजा की, उनका यशोगान किया। इसके बाद सबने पूर्ववत् वहाँ से प्रयाण किया और प्रसन्नतापूर्वक भगवान को पिता के घर ले आये। वहाँ इन्द्र ने उनको मणिमयी अँगन में स्वर्ण के आसन पर विराजमान कर दिया और उनके समक्ष सकल समाज की शोभा बढ़ानेवाला ताण्डवनृत्य किया ॥७॥

इसके बाद इन्द्र ने जगतगुरु के पिता को प्रसन्न करते हुए बाल जिनेन्द्र का नाम शान्तेश रखा। पिता ने सम्पूर्ण नगर में पुत्रजन्म का सुन्दर उत्सव किया। इसके बाद समस्त सुर-असुर अपने-अपने नियोग को साधकर अपने-अपने स्थान को लौट गये।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि श्री शान्तिनाथ स्वामी चक्रवर्ती, कामदेव और तीर्थकर-इन तीन पदों के धारक हैं। मैं उनके सुन्दर चरणों की सदा जय (वन्दना) करता हूँ ॥८॥





# शिवपुर की डगर समरस

शिवपुर की डगर समरस सों भरी ।  
 सो विषय-विरस रचि चिर विसरी ।  
 सम्यकदरश-बोध-व्रतमय भव-दुख दावानल मेघ-झरी ॥  
 ताहि न पाय तपाय देह बहु, जन्म-जरा करि विपति भरी ।  
 काल पाय जिनधुनि सुनि मैं जब, ताहि लहूँ सोई धन्य घरी ॥  
 ते जन धनि या माँहि चरत नित, तिन कीरति सुरपति उचरी ।  
 विषयचाह भवराह त्याग अब, 'दौल' हरी रज रहस अरी ॥

**अर्थ :** अहो, मोक्षरूपी नगर का मार्ग समतारूपी रस से भरा हुआ है। यह समतारूपी रस सांसारिक विषयों के रस से अत्यन्त भिन्न है और अनादिकाल से विस्मृत है।  
 मोक्षरूपी नगर का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता रूप है और संसार-दुःख की भयंकर अग्नि को बुझाने के लिए जल-वर्षा के समान है। किन्तु अनादिकाल से आज तक कभी इस जीव ने उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं किया है और व्यर्थ ही देह को बहुत तपाया है, अतः जन्म-मरण करके घोर दुःखों को ही सहन किया है।  
 कविवर दौलतराम कहते हैं कि वह घड़ी धन्य होगी, जब मैं काल पाकर अथवा भगवान की वाणी सुनकर इस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय मोक्षमार्ग को प्राप्त करूँगा। धन्य हैं वे जीव जो नित्य इसी मोक्षमार्ग में विचरण करते हैं। इन्द्र भी उनकी कीर्ति का उच्चारण करता है।  
 कविवर दौलतराम स्वयं से कहते हैं कि हे दौलतराम ! अब तू विषयचाह के संसारमार्ग का त्याग करके अरि, रज व रहस्य (समस्त घातिया कर्मों) को नष्ट कर दे ।



## सुधि लीज्यो जी म्हारी



राग : उद्घाज जोगीरासा

‘सुधि लीज्यो जी २म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥टेक ॥

तीनलोक स्वामी नामी तुम, त्रिभुवन के दुखहारी ।

गणधरादि तुम शरण ३लइ ४लख, लीनी शरण ५तिहारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥१॥

जो ६विधि अरी करी हमरी गति, सो तुम जानत सारी ।  
याद किये दुख होत हिये ज्यों, लागत ७कोट कटारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥२॥

लब्धि अपर्याप्त निगोद में एक ८उसांस मंहारी ।  
जनम मरन ९नव दुगुन विथा की, कथा १०न जात उचारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥३॥

११भू जल १२ज्वलन पवन प्रत्येक, विकलत्रय तनधारी ।  
पंचेन्द्री पशु नारक नर सुर, विपति भरी भयकारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥४॥

मोह महारिपु नेक न सुखभय, १३होन दई सुधि थारी ।  
सो १४दुठि बंध भयौ १५भागनतै, पाये तुम जगतारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥५॥

यदपि विराग तदपि तुम शिवमग, सहज प्रगट करतारी ।

ज्यों रवि किरण सहज मग दर्शक, यह निमित्त अनिवारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥६॥

१६नाग १७छाग १८गज बाघ भी दुष्ट, तारे अधम उधारी ।  
शीश नमाय पुकारत कब कैं 'दौल' अधम की बारी ॥  
सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि भवदुख दुखिया जानके ॥७॥

खबर मेरी शरण ली है ४बहार ५आपकी धर्म शत्रु ७करोड़ो कटारी ८एक सांस में ९अद्वारह बार मरना जीना १०कही नहीं जाती ११पृथ्वी १२आग १३आपका स्मरण होने

दिया १४दुष्ट १५सौभाग्य से १६सर्प १७बकरा बकरी १८हाथी

**अर्थ :** हे प्रभो ! मैं ससार-दुःख से बहुत दुःखी हूँ। कृपया मेरी सुधि लीजिए ।

हे प्रभो ! आप तीन लोक के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध है, तीन लोक के दुःख दूर करनेवाले हैं और गणधर आदि ने भी आपकी शरण ली है - यही देखकर मैंने आपकी शरण ली है।

हे प्रभो ! कर्मरूपी शत्रुओं ने हमारी जो हालत की है, उसे आप अच्छी तरह जानते हैं। मैं तो उस याद भी करता हूँ तो ऐसा दुःख होता है मानो हृदय में करोड़ों कटार लग गयी हों ।

हे प्रभो ! मैंने लब्धि-अपर्याप्त दशा में निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करके जो अनन्त दुःख भोगा है, उसकी कहानी वचनों से कही नहीं जा सकती है।

इसके बाद मैंने पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और प्रत्येक-वनस्पतिकायिक शरीरों को धारण किया। इसके बाद मैं दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय जीव हुआ और फिर पंचेन्द्रिय पशु, नारकी, मनुष्य और देव हुआ। हे प्रभो ! मैंने इन सब दशाओं में भयंकर दुःख सहन किये हैं।

हे प्रभो ! मोहरूपी महाशत्रु ने मुझे आपकी सुखमयी याद रंचमात्र भी कभी नहीं होने दी थी, किन्तु अब बड़े भाग्य से वह दुष्ट मन्द हुआ है, इसलिए मुझे आपका समामम प्राप्त हुआ है।

हे प्रभो ! यद्यपि आप वीतराणी है, तथापि आप सहज ही मोक्षमार्ग को प्रकट करनेवाले हैं; उसी प्रकार, जिस प्रकार कि सूर्य की किरणे सहज ही मार्गदर्शक (रास्ता दिखानेवाली) होती है। आप भी ऐसे ही सहज अनिवार्य निमित्त हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे प्रभो ! अब तक आपने साँप, बकरी, हाथी, बाघ, भील आदि अनेक दुष्ट जीवों का उद्धार किया है; किन्तु अब मैं शीश झुकाकर आपको पुकारता हूँ कि अब मेरी बारी है।



सुनि जिन बैन श्रवन सुख



सुनि जिन बैन, श्रवन सुख पायो ॥टेक॥

नस्यौ तत्त्व दुर अभिनिवेष-तम, स्याद उजास कहायो ।  
चिर विसरयो लह्यो आतम वैन श्रवन सुख पायो ॥  
सुनि जिन बैन, श्रवन सुख पायो ॥१॥

दह्यो अनादि असंजम दवतैं, लहि व्रत सुधा सिरायौ ।  
धीर धरी मन जीतन मैन श्रवन सुख पायौ ॥  
सुनि जिन बैन, श्रवन सुख पायो ॥२॥

भरो विभाव अभाव सकल अब, सकल रूप चित लायौ ।  
'दौल' लह्यो अब अविचल जैन, श्रवन सुख पायो ॥  
सुनि जिन बैन, श्रवन सुख पायो ॥३॥

**अर्थ :** श्री जिनेन्द्र के कर्णप्रिय वचन सुनकर अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। तत्त्वज्ञान के ऊपर पापरूपी आवरण के कारण जो अंधकार था, वह स्याद्वादरूपी प्रकाश से नष्ट हो गया है और आत्मा में अनादि से विस्मृत दिन का / प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ है। असंयम के कारण अनादि से जो विषय-कषाय की आग दहक रही थी वह व्रत-संयमरूपी जल से शान्त होने लगी है और मन में धैर्य होने से मन पर विजय होने लगी है। अब समस्त विभावों का अभाव होकर अपने स्वरूप में चित्त लगने लगा है और इस दास को शाश्वत जैन मार्ग की दिशा प्राप्त हुई है।



सुनो जिया ये सतगुरु



सुनो जिया ये सतगुरु की बातें, हित कहत दयाल दया तैं ॥टेक ॥

यह तन आन अचेतन है तू, चेतन मिलत न यातैं  
तदपि पिछान एक आत्म को, तजत न हठ शठ-तातैं ॥१॥

चहुँगति फिरत भरत ममताको, विषय महाविष खातैं  
तदपि न तजत न रजत अभागै, वृग व्रत बुद्धिसुधातैं ॥२॥

मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ, साथी स्वारथ नातैं  
तू इन काज साज गृहको सब, ज्ञानादिक मत धातै ॥३॥

तन धन भोग संजोग सुपन सम, वार न लगत विलातैं  
ममत न कर भ्रम तज तू भ्राता, अनुभव-ज्ञान कलातैं ॥४॥

दुर्लभ नर-भव सुथल सुकुल है, जिन उपदेश लहा तैं  
'दौल' तजो मनसौं ममता ज्यों, निवडो द्वंद दशातैं ॥५॥

**अर्थ :** अरे जिया ! तू सतगुरु का उपदेश सुन; वे दयालु, करुणाकर तेरे हित के लिए कहते हैं ।

यह देह अचेतन है और तू चेतन है, यह अन्य है, तुझसे भिन्न है इसलिए इस देह से तेरा मेल नहीं है तथापि तू इसमें घुल-मिल रहा है, एकाकार हो रहा है। तू मूर्ख अपनी हठ छोड़कर अपने आत्मा को पहचान !

तू मोहवश चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ, इंद्रियविषयों के भोगरूपी महाविष का पान कर रहा है। फिर भी तू उसको नहीं छोड़ता। हे भाग्यहीन, उनमें तू रंजायमान (तृप्त, प्रसन्न) मत हो; दर्शन, ज्ञान व व्रतरूपी अमृत का पान कर ।

यह तन, यह धन और इनका भोग - ये सब संयोग स्वप्नवत् हैं और इनके विलय होने में देर नहीं लगती। इनसे ममत्व मत कर। तू अनुभव और ज्ञान से समझाकर अपना भ्रम छोड़ दे।

यह मनुष्य जन्म, अच्छा क्षेत्र, अच्छा कुल तुझे मिला है और साथ हो जिसमें तुझे श्री जिनेन्द्र का उपदेश सुनने का अवसर मिला है। दौलतराम कहते हैं कि मन से ममत्व को छोड़कर इस दुविधाभरी दशा से छुटकारा पाओ।

माता-पिता, पुत्र- भाई और तेरे कुटुम्बीजन-सब ही स्वारथ के संबंधी है; तू इनके लिए घर को सुव्यवस्थित व सुसज्जित बनाने में लगकर अपने ज्ञान आदि का नाश मत कर।



## सौ सौ बार हटक नहिं



सौ सौ बार हटक नहिं मानी, नेक तोहि समझायो रे ॥१॥  
देख सुगुरुकी परहित में रति, हित उपदेश सुनायो रे ॥  
विषयभुजंगसेय दुखपायो, फुनि तिनसों लपटायो रे ।  
स्वपदविसार रच्यो परपदमें, मदरत ज्यों बोरायो रे ॥२॥  
तन धन स्वजन नहीं है तेरे, नाहक नेह लगायो रे ।  
क्यों न तजै भ्रम चाख समामृत, जो नित संतसुहायो रे ॥३॥  
अब हू समझ कठिन यह नरभव, जिनवृष बिना गमायो रे ।  
ते विलखैं मणिडार उदधिमें, 'दौलत' को पछतायो रे ॥४॥

**अर्थ :** अरे प्राणी ! तुझे अनेक बार समझाया, पर तू बार-बार मना करने पर भी नहीं मानता। देख, सत्गुरु को पर-कल्याण की भावना में रुचि है इस कारण तुझे तेरे हित का उपदेश दिया है।

विषयभोगरूपी नाग की तूने सेवा की है अर्थात् नाग-सरीखे विषैले विषयों में त लगा रहा है और अब भी बार-बार उन्हीं में रत है। अपने मूल स्वरूप को भूल करके तू पर में आसक्त होकर शराबी की भाँति नशे में बहक रहा है।

यह तन, ये स्वजन कुछ भी तेरे नहीं हैं, तू व्यर्थ ही में इनसे मोह किए हुए है। इस मोह के भ्रम को छोड़कर तू संतजनों को सुहावना लगनेवाला आत्म हितकारी उपदेशरूपी अमृत का पान क्यों नहीं करता !

अब भी समझ ले ! यह मनुष्य भव अत्यंत दुर्लभ है। इसे तूने धर्म-साधन के बिना यूँ ही गँवा दिया और अब भी गँवा रहा है। दौलतराम कहते हैं कि जैसे समुद्र में मणि-रत्न को डालकर फिर उसे पाने के लिए बिलख-बिलखकर, दुःखी होकर पछताना ही पड़ता है, उसी प्रकार तू भी पछतायेगा।



## हम तो कबहुँ न निज गुन



हम तो कबहुँ न निजगुन भाये  
तन निज मान जान तनदुखसुख में बिलखे हरखाये ॥

तनको गरन मरन लखि तनको, धरन मान हम जाये ।  
या भ्रम भौंर परे भवजल चिर, चहुँगति विपत लहाये ॥१॥

दरशबोधव्रतसुधा न चाख्यौ, विविध विषय-विष खाये ।  
सुगुरु दयाल सीख दइ पुनि पुनि, सुनि सुनि उर नहि लाये ॥२॥

बहिरातमता तजी न अन्तर-दृष्टि न है निज ध्याये ।  
धाम-काम-धन-रामाकी नित, आश-हुताश जलाये ॥३॥

अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये ।  
'दौल' चिदानंद स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये ॥४॥

**अर्थ :** अरे ! हमने कभी भी अपने गुणों का चिन्तन नहीं किया, उनकी भावना नहीं को। इस तन को अपना मानकर, अपना जानकर हम इस तन के दुःख व सुख में ही रोते बिलखते, हँसते-मदमाते रहे।  
अरे ! हमने कभी भी अपने गुणों का चिन्तन नहीं किया, उनकी भावना नहीं को। इस तन को अपना मानकर, अपना जानकर हम इस तन के दुःख व सुख में ही रोते बिलखते, हँसते-मदमाते रहे।

Hey ! We have never thought of our qualities, never felt them. Accepting this body as our own, we kept crying and laughing and mourning in the sorrow and happiness of this body.

यह तन पुद्गल का है, इस कारण गलना इसका स्वभाव है, इस तन का मरण हमने देखा है, इसे धारण करने को हमने जन्म होना समझा है ! इस धारणा को ही हम उचित ठहराते रहे और इस संसार-समुद्र में अनादि काल से पड़े भ्रम के भँवर में हम चारों गतियों की विपदाओं को भोगते रहे हैं।

This body belongs to Pudgal, hence its nature is of melting, we have seen the death of this body, we have

considered it to be born to wear it! We justify this belief and in the whirlpool of confusion in this world-sea since time immemorial, we have been suffering the calamities of the four gatis.

दर्शन, ज्ञान और व्रत रूपी अमृत को हमने नहीं चखा, भाँति- भौति के विषयों के विष का आस्वादन करते रहे । सत्गुरु ने बार-बार में उपदेश दिया, शिक्षा दी, जिसे सुन-सुनकर भी हमने हृदय से उसे नहीं स्वीकारा, विचार नहीं किया !

We did not taste the nectar of philosophy, knowledge and fast, and continued to taste the poison of the subjects of the mind. Satguru preached again and again, gave education, which, even after listening, we did not accept it from our heart, did not consider it!

बहिरात्मता अर्थात् संसार की ओर उन्मुखता को, आकर्षण को नहीं छोड़ा और आत्मा की ओर मुड़कर हमने अपने स्वरूप का चिंतवन नहीं किया। काम-इच्छाएँ, धन और स्त्री इन हो की आशा रूपी आग में अपने आपको नित्य प्रति जलाते रहे।

We did not leave our attraction to Bahritatma i.e. orientation towards the world and turning to the soul, we did not contemplate our nature. In the fire like hope of fascination, desires, money and women, we keep burning ourselves regularly.

यह आत्मा अचल है, स्थिर है, अनूप है, निराला है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, यह सब सुखमय है - मुनिजन ऐसा हो गाते हैं । दौलतराम कहते हैं कि जो अपने गुणों में मगन होकर चैतन्यस्वरूप के आनंद का ध्यान करते हैं वे जीव सुखी होते हैं, सुख पाते हैं।

This soul is immovable, it is immobile, it is unique, it is infrequent, it is pure consciousness, it is all happy - the monks sing like that. Daulatram says that those who rejoice in their qualities and meditate on the bliss of Chaitanya Swaroop, those creatures are happy, they get happiness.



## हम तो कबहुँ न निज घर

हम तो कबहुँ न निज घर आये  
परघर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ॥

परपद निजपद मानि मगन है, परपरनति लपटाये  
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ॥१॥

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये  
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ॥२॥

यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये  
'दौल' तजौ अजहूँ विषयन को, सतगुरु वचन सुहाये ॥३॥

**अर्थ :** हम अपने घर में कभी नहीं आए अर्थात् आत्मा रूपी घर में आकर नहीं ठहरे, उसे नहीं संभाला। दूसरों के घर घूमते हुए बहुत काल बीत गया और अनेक नाम रखकर उन नामों से जाने-पहचाने जाते रहे अर्थात् बार-बार पुढ़ल देह धारण कर, अनेक नाम से अनेक पर्यायों में जाने जाते रहे।

पर-पद अर्थात् देह को ही अपना समझकर उसमें ही मगन होते रहे और उसकी ही विभिन्न स्थितियों में लिपटते रहे। शुद्ध, ज्ञानवान, सुख के पिंड अपने चैतन्यस्वरूप को कभी भावना नहीं की, चिंतन नहीं किया, विचार नहीं किया।

पर्याय अर्थात् क्षणिक स्थिति को स्थिर मानकर चारों गति - मनुष्य, तिर्यच, देव व नारकी को ही अपना जानता रहा। यह आत्मा मलरहित - अमल है, खंडरहित - अखंड है, तुलनारहित है, अतुलनीय है, विनाशरहित - अविनाशी है, इन गुणों को नहीं पहचाना, न इनका चिंतन किया।

यह हमारी बहुत बड़ी भूल थी पर अब पछताने से कोई कार्य सिद्ध होनेवाला नहीं है। दौलतराम कहते हैं कि सतगुरु ने जो उपदेश/वचन सुनाये हैं उनको सुनकर अभी से, आज से इन विषय-भोगों को छोड़ दे।



## हम तो कबहूँ न हित उपजाये



हम तो कबहूँ न हित उपजाये  
सुकुल-सुदेव-सुगुरु सुसंग हित, कारन पाय गमाये! ॥

ज्यों शिशु नाचत, आप न माचत, लखनहारा बौराये  
त्यों श्रुत वांचत आप न राचत, औरनको समुझाये ॥१॥

सुजस-लाहकी चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये  
विषय तजे न रजे निज पदमें, परपद अपद लुभाये ॥२॥

पापत्याग जिन-जाप न कीन्हौं, सुमनचाप-तप ताये  
चेतन तनको कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये ॥३॥

यह चिर भूल भई हमरी अब कहा होत पछताये  
'दौल' अजौं भवभोग रचौ मत, यौं गुरु वचन सुनाये ॥४॥

**अर्थ :** हमने कभी अपने हित का कार्य नहीं किया। हितकारी अच्छे कुल को पाया, श्रेष्ठ देव व गुरु का अच्छा साथ भी मिला पर ये सब पाकर खो दिये।

जैसे कोई बालक नाचता है, वह बालक स्वयं अपने नाच पर गर्व नहीं करता पर देखनेवाले उन्मत्त हो जाते हैं, वैसे ही हम शास्त्रों का वाचन करते हैं, पढ़ते हैं परन्तु उसके अनुरूप आचरण नहीं करते और केवल दूसरों को ही समझाते हैं, उपदेश देते हैं।

अपने सुयश की, लाभ की, अपनी बड़ाई की कामना-लालसा नहीं छोड़ते। सर्वत्र अपनी प्रशंसा और मान चाहते हैं। ऐसा होने पर प्रसन्न होते हैं। हम विषय-भोगों को नहीं छोड़ते न कभी अपने स्वरूप में लीन होते। स्वरूपचिंतवन नहीं करते और ग्रहण नहीं करने योग्य पर-पद में रीझते हैं, मोहित होते हैं।

कभी पाप-क्रियाओं का त्याग नहीं किया, जिनेन्द्र के गुणों का जाप नहीं किया, उनका स्मरण-मनन नहीं किया। बस, कामरूपी अग्नि की तपन में दहकते रहे हैं। कहने को तो कहते रहे हैं कि ये चेतन देह से भिन्न है, पर सदैव हृदय से - आचरण से देह पर ही ममल करते रहे हैं।

अनादिकाल से हमारी यही भूल हो रही है, अब पछताने से क्या लाभ! दौलतराम कहते हैं कि गुरु की वाणी सुनो और अब आगे भवभोगों में रत मत होओ।



## हे जिन तेरे मैं शरणै

हे जिन तेरे मैं शरणै आया ।  
तुम हो परमदयाल जगतगुरु, मैं भव भव दुःख पाया ॥टेक॥



मोह महा दुठ घेर रह्यौ मोहि, भवकानन भटकाया ।  
नित निज ज्ञान-चरननिधि विसर्यो, तन धनकर अपनाया ॥  
हे जिन तेरे मैं शरणै आया ॥1॥

निजानंद अनुभव पियूष तज, विषय हलाहल खाया ।  
मेरी भूल मूल दुखदाई, निमित मोहविधि थाया ॥  
हे जिन तेरे मैं शरणै आया ॥२॥

सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिग, और न हेतु लखाया ।  
शिव-स्वरूप शिवमग-दर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया ॥  
हे जिन तेरे मैं शरणै आया ॥३॥

तुम हो सहज निमित जग-हित के, मो उर निश्चय भाया ।  
भिन्न होहुँ विधितै सो कीजे, 'दौल' तुम्हें सिर नाया ॥  
हे जिन तेरे मैं शरणै आया ॥४॥

**अर्थ :** हे जिनदेव! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैंने जन्म-जन्मान्तरों में अनेक दुख पाए हैं। आप परम दयालु हैं, कृपालु हैं। मुझे अति दुष्ट मोह ने घेरकर इस संसार-समुद्र में बहुत भटकाया है, जिसके कारण मैं अपने ज्ञान और आचरणरूपी निधि-संपत्ति को भी भूल गया और तन - धन को ही महत्वपूर्ण मानकर इन्हें ही अपनाता रहा, उनमें ही रत रहा।

अपने आत्मा के आनन्द की अमृत-सरीखी अनुभूति को छोड़कर, हलाहलविष का सेवन करता रहा। मेरी यह भूल अत्यन्त दुःखमयी है, जिसके लिए मैंने मोहनीय कर्म को निमित्त ठहराया है।

वह दुष्ट आपके ही समीप शिथिल हुआ है, आपके अतिरिक्त अन्य कोई इसका आधार हेतु नहीं है। आप साक्षात् मोक्ष-स्वरूप को/मोक्षमार्ग को दिखानेवाले हैं, मुनिजन सदैव आपका यशगान करते हैं, स्तुति करते हैं, वंदनास्मरण करते हैं।

आप जगत के कल्याण के लिए सहज निमित्त कारण हो, यह मुझे निश्च हो गया हैं। दौलतराम शीश नभाकर (जमाते हुए) कहते हैं कि ऐसा कीजिए जिससे मैं कर्म-श्रृंखला से सर्वथा अलग हो सकूँ, छूट सकूँ ।





# हे जिन तेरो सुजस

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत हैं मुनिजन ज्ञानी ॥टेक ॥

दुर्जय मोह महाभट जाने, निजवश कीने जगप्रानी ।  
सो तुम ध्यानकृपान पानिगहि, ततछिन ताकी थिति भानी ॥१॥

सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निजसुधि विसरानी ।  
है सचेत तिन निजनिधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम वानी ॥२॥

मंगलमय तू जगमें उत्तम, तुहीं शरन शिवमगदानी ।  
तुवपद-सेवा परम औषधि, जन्मजरामृतगदहानी ॥३॥

तुमरे पंच कल्यानकमाहीं, त्रिभुवन मोददशा ठानी ।  
विष्णु विदम्बर, जिष्णु, दिगम्बर, बुध, शिव कह ध्यावत ध्यानी ॥४॥

सर्व दर्वगुनपरजयपरनति, तुम सुबोध में नहिं छानी ।  
तातैं 'दौल' दास उर आशा, प्रगट करो निजरससानी ॥५॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र ! आपका सुयश प्रकट हो रहा है, फैल रहा हैं; ज्ञानी व मुनिजन उसका गान करते हैं ।

यह सर्वप्रसिद्ध है, जगत जानता है कि आपने कठिनाई से जीते जानेवाले मोहरूपी महान योद्धा को, जिसने सारे -जगत को अपने वश में कर रखा है, अपनी ध्यानरूपी कृपाण-तलवार हाथ में लेकर उसकी वास्तविक खोखली स्थिति को भाँप लिया है, जान लिया है। | अनादि काल से अज्ञान की गहरी निद्रा में सोकर जो अपने आप को भूल गए हैं, जिन्हें अपनी सुधि नहीं रहीं है, उन्होंने अपने कानों से जब आपका उपदेश सुना तो सचेत होकर, जागकर, अपनी निज की निधि को पहचान लिया, पा लिया, सँभाल लिया।

तू ही जगत में मंगल हैं, उत्तम हैं और शरण है, तू ही मोक्षमार्ग को बतानेवाला दानी उपकारक हैं। तेरे चरणों की सेवा-भक्ति ही जन्म, मृत्यु, रोगविष को हरनेवाली, उनका निवारण करनेवाली परम औषधि हैं।

आपके पंचकल्याणकां के अवसर पर तीनों लोकों में साता की, आनन्द की लहर दौड़ जाती है। आप विष्णु हैं, ज्ञान के गगन हैं ... अनन्त और असीम; जिष्णु - अपने आपको, कर्मरूपी शत्रुओं को जीतनेवाले हैं, दिगम्बर हैं, बुद्धिमान हैं - ज्ञानी हैं और कल्याणकारी हैं, मंगले हैं, यह कहकर ध्यान करनेवाले / ध्यानी / ध्याता आपका ध्यान करते हैं।

सभी द्रव्य, गुण, पर्याय और उनकी परिणति आपके ज्ञान में स्पष्ट झलकते हैं, उन्हें आप युगपत (एकसाथ) सहज ही अपने ज्ञान में झलकता देखते हैं। आपसे कुछ भी अनजाना, छपा हुआ नहीं है। दौलतराम के मन में यह आशा है कि आप अपने समान मुझे भी आत्म-रससिक करो अर्थात् हमें भी अपने समान आत्म-रस से पूर्ण कर दो।



## हे जिन मेरी ऐसी बुधि

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजे ॥टेक ॥



राग-द्वेष दावानल तें बचि, समता रस में भीजै ॥1॥

पर को त्याग अपनपो निज में, लाग न कबहुँ छीजै ॥2॥

कर्म कर्मफल माँहि न राचै, ज्ञान सुधारस पीजै ॥3॥

मुझ कारज के तुम कारण वर, अरज 'दौल' की लीजै ॥4॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र देव ! मेरी ऐसी बुद्धि हो जिससे मै राग द्वेष रूपी अग्नि से बचकर समतारूपी रस में भीज जाऊं।

स्व से परे को पर हैं, अन्य हैं उसको छोड़कर मैं अपनी आत्मा में ही रमण करूं और वह आदत लाग मेरी कभी भी न छूटे, मेरी ऐसी बुद्धि हो।

कर्म और उसके फल की ओर मेरी कभी रुचि न हो और मैं सदैव ज्ञानरूपी अमृत का पान करता रहूँ अर्थात् अपने ज्ञानस्वरूप में सदा लीन रहूँ, मेरी ऐसी बुद्धि हो ।

निज रूप की, स्वरूप की पहचान के लिए मुझे सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान व सम्यकचारित्र की प्राप्ति हो । इसके लिए आप ही श्रेष्ठ कारण हो ; साधन हो अर्थात् आपका गुण चिंतवन मुझे अपने गुणों की प्रतीति कराता रहे । दौलतराम कहते हैं कि यह ही उनकी विनती है, अरज है, उसे स्वीकार कीजिए ।



## हे नर भ्रम नींद क्यों न



तर्ज़ : निरखत जिनचन्द्र वदन

हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छाँड़त दुखदाई ।  
सोवत चिरकाल सोंज अपनी ठगाई ॥टेक ॥

मूरख अधकर्म कहा, भेदैं नहिं मर्म लहा ।  
लागे दुखज्वाला की न देह कै तताई ॥  
हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छाँड़त दुखदाई ।

जम के रव बाजते, सुभैरव अति गाजते ।  
अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई ।  
हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छाँड़त दुखदाई ॥

परको अपनाय आप-रूप को भुलाय हाय ।  
करन-विषय-दारु जार, चाह दौं बढ़ाई ।  
हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छाँड़त दुखदाई ॥

# अब सुन जिन-वानि, रागद्वेष को जघानि । मोक्षरूप निज पिछान 'दौल', भज विरागताई । हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छोड़त दुखदाई । सोवत चिरकाल सोंज आपनी ठगाई ॥

**अर्थ :** अरे मानव, तुम भ्रम-नींद क्यों नहीं छोड़ते? यह तो दुःख देनेवाली है, और तुम्हें मालूम नहीं, चिरकाल से यह नींद लेते-लेते तुम्हारा सामर्थ्य हर लिया गया है! अरे मानव, तुम दुखदाई भ्रम-नींद क्यों नहीं छोड़ते? मूर्ख मानव पाप-कर्म और पुण्य-कर्म में न कोई भेद कर पाता है और न उसका मर्म ही उसकी समझ में आता है। परिणाम यह होता है कि इस अबोध मानव की पाप कर्म की ओर सदैव प्रवृत्ति बनी रहती है। और जब ये ही कर्म उदय में आकर उसे दुःख देते हैं और वह इन दुःखों की ज्वाला में झुलसता है तो इसे महान कष्ट होता है, इस पर भी इसकी भ्रम-नींद नहीं टूटती। कलाकार कहते हैं-रे मानव, इन दुःखों की ज्वाला से क्या तेरे शरीर में संताप नहीं होता, जो तू जरा भी अपनी निद्रा भंग नहीं कर रहा है? अरे मानव, तुम भ्रम-नींद क्यों नहीं छोड़ते? यह तो दुःख देनेवाली है। तुम्हें मालूम नहीं, चिरकाल से यह नींद लेते-लेते तुम्हारा कितना घाटा हुआ है?

यमराज के भयंकर बाजे बज रहे हैं। अनेक मनुष्य रोज-रोज मृत्यु के मुख में चले जा रहे हैं। अरे भाई, यह समाचार क्या तुझे सुनाई नहिं दे रहे हैं? जब तुम प्रतिदिन संसार की अनित्यता, अशरणता, अशुभता और दुःखशीलता के अनेकों उदाहरण देखते हो तो तुम्हें अब भी सावधान हो जाना चाहिए। अरे मानव, तुम भ्रम-नींद क्यों नहीं छोड़ते? यह तो दुःख देनेवाली है? तुम्हें मालूम नहीं, चिरकाल से यह नींद लेते-लेते तुम्हारा कितना घाटा हुआ है?

अरे मानव, तुमने अपना आत्म-रूप भुलाकर पर रूप से नाता जोड़ लिया और इतना ही नहीं, तुमने इन्द्रिय-विषयों का ईर्धन जलाकर चाह की अग्नि को बेहद बढ़ा लिया। इतने पर भी तुम अपने को सुखी समझ रहे हो? अरे मानव, तुम भ्रम-नींद क्यों नहीं छोड़ते? यह तो दुःख देनेवाली है! तुम्हें मालूम नहीं, चिरकाल से नींद लेते-लेते तुम्हारा कितना घाटा हुआ है? मानव, अब तुम्हारा कर्तव्य है कि यदि तुम पूर्ण सुखी होना चाहते हो तो जिन्होंने राग और द्वेष को जीत लिया है उन महान आत्मा जिन देव का उपदेश सुनो और अपने भीतर की कलुषित राग-द्वेष की कालिमा को स्वच्छ कर डालो। तुम अपनी आत्मा के स्वरूप को मोक्षमय, सम्पर्कदर्शन, सम्प्यग्नान और सम्प्यक् चारित्रमय समझो तथा वीतरागता की ओर ही अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति करो। मानव, यह प्रवृत्ति ही तुम्हारी भ्रमनींद दूर कर आत्मा को चिर-जाग्रत और प्रतिबुद्ध बना देगी। अरे मानव, तुम भ्रमनींद क्यों नहीं छोड़ते? यह तो दुःख देनेवाली है। तुम्हें मालूम नहीं, चिरकाल से नींद लेते लेते तुम्हारा कितना घाटा हुआ है? मानव प्रतिदिन अपने आर्थिक घाटा और मुनाफा पर विचार करता है घाटा होने पर उसे दुःख होता है और मुनाफा होने पर हर्ष पर वस्तुतः यह आर्थिक मुनाफा भी घाटा ही है और इस प्रकार का घाटा है, जिस पर कोई भी चैतन्यशील मानव हर्ष नहीं कर सकता। लेकिन यह बात सबकी समझ में नहीं आ सकती। इसे यथार्थ में वे ही समझ सकते हैं जो भ्रम-नींद से जाग्रत हो चुके हैं। इसे यथार्थ में वे ही समझ सकते हैं जो भ्रम-नींद से जाग्रत हो चुके हैं। भ्रम नींद में निमग्न हैं, उनकी समझ में यह बात बिल्कुल नहीं आ सकती और ऐसे व्यक्तियों को ही कलाकार पंडित दौलतराम का यह जागरण सन्देश सुनाने की आवश्यकता है कि

"हे नर, भ्रम-नींद क्यों न छाँड़त दुखदाई?"





# हे मन तेरी को कुटेव यह

हे मन तेरी को कुटेव यह, करनविषय में धावै है ॥टेक ॥

इनही के वश तू अनादितैं, निजस्वरूप न लखावै है ।  
पराधीन छिन छीन समाकुल, दुर्गति विपति चखावै है ॥१॥

फरस विषय के कारन बारन, गरत परत दुख पावै है ।  
रसना-इन्द्री वश झाष जल में, कंटक कंठ छिदावै है ॥२॥

गन्धलोल पंकज मुद्रित में, अलि निज प्रान खपावै है ।  
नयन-विषय वश दीप-शिखा में, अंग पतंग जरावै है ॥३॥

करन विषयवश हिरन अरनमें, खलकर प्रान लुनावै है ।  
'दौलत' तज इनको जिन को भज, यह गुरु सीख सुनावै है ॥४॥

**अर्थ :** अरे मन ! तेरी यह आदत खोटी है कि तू इंद्रिय-विषयों की ओर दौड़ता है।

तू अनादि से इन ही के वशीभूत होकर अपने स्वरूप को नहीं देख पा रहा है। पराधीन होकर, प्रत्येक क्षण क्षीण होकर आकुलता उत्पन्न करनेवाली खोटी गति का व विपत्तियों का स्वाद चखता है अर्थात् दुःखी होता है।

स्पर्श इंद्रिय के वशीभूत होकर हाथी गड्ढे में गिर कर दुःख पाता है और रसना इंद्रिय के वशीभूत होकर जल में मछली अपने कंठ को काँटे से छेद लेती है।

घ्राण के वशीभूत होकर भँवरा कमल में बंद होकर अपने प्राणों की बाजी लगाता है और नेत्रों के विषयवश पतंगा दीपक की लौ में पड़कर अपना शरीर जला देता है।

कानों में मधुर धनि सुनकर, उसमें मुग्ध होकर हरिण वन में अपने प्राण गँवा देता है । दौलतराम कहते हैं कि सत्गुरु यह हो सीख देते हैं कि इनको छोड़ कर जिनेन्द्र भगवान के भजन में लग जा।



# हे हितवांछक प्रानी रे

हे हितवांछक प्रानी रे ! कर यह रीति सयानी ।  
श्रीजिन चरन चितार धार गुन, परम विराग विज्ञानी ॥

हरन भयामय स्व-पर दयामय, सरधौ वृष सुखदानी ।  
दुविध उपाधि बाध शिवसाधक, सुगुरु भजौ गुणथानी ॥

मोह-तिमिर-हर मिहिर भजो श्रुत, स्यात्पद जास निशानी ।  
सप्त तत्त्व नव अर्थ विचारहु, जो बरनै जिनवानी ॥

निज पर भिन्न पिछान मान पुनि, होहु आप सरधानी ।  
जो इनको विशेष जाने सो, ज्ञायकता मुनि मानी ॥

फिर व्रत-समिति-गुपति सजि अरु तजि, प्रवृति शुभास्त्रव दानी ।  
शुद्ध स्वरूपाचरन लीन है, 'दौल' वरो शिवरानी ॥

**अर्थ :** हे अपना हित चाहनेवाले प्राणियो ! निम्नलिखित अच्छे कार्य करो -

परम वीतरागी एवं सर्वज्ञ श्री जिनेन्द्रदेव के चरणों का स्मरण करो, उनके गुणों को धारण करो, भयरूपी रोग को दूर करनेवाले एवं सुखदायक स्वपर-दयामयी धर्म का श्रद्धान करो, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित मोक्षमार्गी और महागुणी सद्गुरुओं की भक्ति करो, मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए जो सूर्य के समान है और 'स्यात्' पद ही जिसका चिह्न है - ऐसे शास्त्र की उपासना करो, जिनवाणी में वर्णित सप्ततत्त्वों एवं नवपदार्थों का विचार करो, स्व और पर को भिन्न-भिन्न पहचानो और फिर अपने आप का श्रद्धान करो। तथा यदि सप्ततत्त्वों एवं नवपदार्थों के विशेष भी जाने जाएँ तो वह भी ज्ञान करने के लिए ठीक है-ऐसा मुनियों ने कहा है।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे प्राणी ! इसके बाद तुम व्रत-समिति-गुप्ति से शोभायमान होओ; और फिर समस्त शुभास्वकारी प्रवृत्ति का भी त्याग करके शुद्ध स्वरूपाचरण में लीन होकर मुक्तिरानी का वरण करो।



## हो तुम त्रिभुवन तारी



हो तुम त्रिभुवन-तारी हो जिनजी, मो भव-जलधि क्यों न तारत हो ॥  
अंजन कियो निरंजन तातें, अधम-उधार विरद धारत हो ।  
हरि, वराह, मर्कट झट तारे, मेरी बार ढील पारत हो ॥  
यों बहु अधम उधारे तुम तौ, मैं कहा अधम न मोहि टारत हो ?  
तुमको करनो परत न कछु शिव-पथ लगाय भव्यनि तारत हो ॥  
तुम छवि निरखत सहज टरे अघ, गुणचिन्तत विधि-रज झारत हो ।  
'दौल' न और चहै मोहि दीजे, जैसी आप भावना रत हो ॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्रदेव ! आप तो तीनों लोकों को तारनेवाले हो, फिर मुझे इस संसार-सागर से क्यों नहीं तारते हो ?

आपने अंजन (चोर) को भी निरंजन (शुद्ध आत्मा) बना दिया था, अतः आप इस जगत में अधम-उद्धारक के यश को धारण करते हो। इसी प्रकार आपने सिंह, सुअर, बन्दर आदि को भी शीघ्र तार दिया था, तब फिर हे प्रभो ! आप मेरी बार ही क्यों देर कर रहे हो ? इसीप्रकार आपने अन्य भी बहुत से अधम जीवों का उद्धार किया है; तब क्या मैं अधम नहीं हूँ, जो आप मुझे टाल रहे हो ?

हे प्रभो ! भव्य जीवों का उद्धार करने के लिए आपको करना कुछ भी नहीं पड़ता है। आप तो केवल उनको मोक्षमार्ग में लगा देते हो, बस ।

हे प्रभो ! आपको देखने से पाप सहज ही दूर हो जाते हैं और आपके गुणों का चिन्तवन करने से कर्मरूपी रज स्वयमेव झड़ जाती है। कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव ! मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए, मुझे तो केवल एक यही दीजिए कि जिस प्रकार आप शुद्धभावना में लीन हैं, उसी प्रकार मैं भी शुद्धभावना में लीन हो जाऊँ ।



## हो तुम शठ अविचारी जियरा



हो तुम शठ अविचारी जियरा, जिनवृष पाय वृथा खोवत हो ॥टेक ॥  
पी अनादि मदमोहस्वगुननिधि, भूल अचेत नींद सोवत हो ।

स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यों न खोल उर-दग जोवत हो ।  
ज्ञान विसार विधयविष चाखत, सुरतरु जारि कनक बोवत हो ॥१॥

स्वारथ सगे सकल जनकारन, क्यों निज पापभार ढोवत हो ।  
नरभव सुकुल जैनवृष नौका, लहि निज क्यों भवजल डोवत हो ॥२॥

पुण्यपापफल वातव्याधिवश, छिनमें हँसत छिनक रोवत हो ।  
संयमसलिल लेय निजउर के, कलिमल क्यों न 'दौल' धौवत हो ॥३॥

**अर्थ :** अरे जियरा ! जो तुमने यह जैनधर्म पाया है, इस अवसर को दुष्ट व अविचारी अर्थात् विवेकहीन होकर तुम व्यर्थ ही खो रहे हो। अनादि काल से मोहरूपी वारुणी शराब पीकर मोहवश अपने निज स्वरूप को / गुण को भूलकर अचेत सोये पड़े हो। अपने हृदय की आँख खोलकर अर्थात् विवेकसहित क्यों नहीं देखते कि सत्त्वरु अपने ही हित का उपदेश दे रहे हैं ।

कल्पवृक्ष को जलाकर वहाँ धतूरा उगाने के समान तुम ज्ञान को भूलकर विषयरूपी विष को चख रहे हो। अपने-अपने स्वार्थ के कारण सब सगे हो जाते हैं; फिर तुम क्यों पाप का भार अपने ऊपर ढोते हो। यह मनुष्य जन्म, अच्छा कुल जैनधर्मरूपी नौका पाकर भी तुम अपने को क्यों इस भव-समुद्र में डुबा रहे हो ! पुण्य-पाप के फल से और वात के समान चंचल व्याधि के वशीभूत हो उनके वश होकर तुम कभी हँसते हो, कभी प्रसन्न होते हो और कभी दुःखी होकर रोते हो। अरे दौलतराम ! तुम संयमरूपी जल से हृदय के मैल को क्यों नहीं धोते हो ।



## ज्ञानी ऐसे होली मचाई



तर्ज : ऐसा योगी क्यों न अभ्यपद पाए

ज्ञानी ऐसे होली मचाई ॥टेक ॥

राग कियो विपरीत विपन-घर, कुमति कुसौति भगाई ।  
धर दिग्म्बर कीन्ह सुसंवर, निज-पर-भेद लखाई ।  
घात विषयन की बचाई ॥  
ज्ञानी ऐसे होली मचाई ॥१॥

कुमति सखा भज ध्यान भेद सज, तन में तान उड़ाई ।  
कुम्भक ताल मृदंग सो पूरक, रेचक बीन बजाई ।  
लगन अनुभव सों लगाई ॥  
ज्ञानी ऐसे होली मचाई ॥२॥

कर्म बलीता रूप नाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई ।  
दे तप-अग्नि भस्म करि तिनको, धूलि-अघाति उड़ाई ।  
करी शिवतिय सों मिलाई ॥  
ज्ञानी ऐसे होली मचाई ॥३॥

ज्ञान को फाग भागवश आवे, लाख करो चतुराई ।  
सो गुरु दीनदयाल कृपा करि, 'दौलत' तोहि बताई ।  
नहीं चित से विसराई ॥  
ज्ञानी ऐसे होली मचाई ॥४॥

**अर्थ :** अहो, ज्ञानी जीव ऐसी होली खेलते हैं ।

वे राग का त्याग करके वन में निवास करते हैं, कुबुद्धिरूपी बुरी सौतन को भगा देते हैं, दिग्म्बर मुद्रा धारण करके कर्मों

का भली प्रकार संवर करते हैं, स्व और पर का भेदविज्ञान करते हैं तथा अपने आपको विषयों के प्रहारों से बचाते हैं। वे अज्ञानरूपी मित्र को भगाते हैं, ध्यान के उत्तम भेदों को धारण करते हैं, अपने अन्तरंग को पूरी तरह उत्साह से भरते हैं, कुम्भकरूपी ताल, पूरकरूपी मृदंग एवं रेचकरूपी वीणा बजाते हैं और एक आत्मानुभव की ही लगन लगाये रहते हैं। वे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय-इन घाति कर्मों के ईंधन को तपरूपी अग्नि देकर भस्म कर देते हैं और फिर अधाति कर्मों को भी धूल के समान उड़ाकर मुक्तिरूपी स्त्री से मिलते हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि अहो, कोई कितना ही प्रयत्न कर ले, पर ऐसी ज्ञान की होली तो बड़े भाग्य से ही किसी के जीवन में आती है। यह तो, अब दयालु गुरु ने बड़ी कृपा करके मुझे ऐसी होली से परिचित करा दिया है, अतः अब मैं इसे कभी नहीं भूलूँगा।



## मेरो मन ऐसी खेलत



तर्ज : मेरो मनवा अति हर्षाए

मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥टेक ॥

मन मिरदंग साजि कर त्यारी, तन को तमूरा बनो री ।  
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोऊ कर जोरी ॥  
राग पांचो पद को री,  
मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥१॥

समकित रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी ।  
ज्ञानमई लेकर पिचकारी, दोउ कर मांहि सम्होरी ॥  
इन्द्रिय पांचों सखि बोरी,  
मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥२॥

चतुर दान को है गुलाल सो, भर-भर मूँठ चलो री ।

तप मेवा सों भर निज झोरी, यश को अबीर उड़ो री ॥  
रंग जिनधम मचो री,  
मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥३॥

'दौलत' बाल खेलें अस होरी, भव-भव दुःख टलो री ।  
शरना लै इक श्री जिन को री, जग में लाज रहे तोरी ॥  
मिलै फगुआ शिवगोरी,  
मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥४॥

**अर्थ :** अहो, मेरा मन ऐसी होली खेल रहा है ।

मैंने अपने मन को मृदंग के रूप में सजा रखा है, मेरे दोनों हाथ मंजीर बने हुये हैं और मेरा शरीर ही तानपूरा बना हुआ है। मैं इन बाजों के साथ सुबुद्धिरूपी सुन्दर सारंगी बजा रहा हूँ, दोनों हाथों को जोड़कर ताल दे रहा हूँ और पंच परमेष्ठी के राग का गायन कर रहा हूँ।

मेरे पास सम्यक्त्वरूपी जल से भरी हुई झारी है जिसमें करुणारूपी केशर घुली हुई है। मैंने अपने दोनों हाथों से ज्ञानमयी पिचकारी को सावधनी पूर्वक पकड़ रखा है और उससे पाँचों इन्द्रियरूपी सखियों को पूरी तरह डुबा दिया है, पराजित कर दिया है।

मेरे पास चार दानरूपी गुलाल है, जिसे मुट्ठी भर-भर कर चलाया जा रहा है। इसके पश्चात् तपरूपी मेवा से मैंने अपनी झोली भर ली है। चारों ओर यशरूपी अबीर उड़ रहा है। ऐसा यह होली का उत्सव जिनेन्द्रदेव के मन्दिर में मनाया जा रहा है।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव! मैं बालक एक आपकी ही शरण लेकर ऐसी होली खेल रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे मेरे जन्म-जन्म के दुःख दूर हो जाएँगे, आपका यश बच जाएगा और मुझे पफगुआ के रूप में मुक्तिरूपी स्त्री भी मिल जाएगी।





# अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि



तर्ज :- अपने घर को देख बारे

अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ॥टेक ॥

तीव्र कषाय उदय तैं भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने ।  
सो संक्लेशभाव फल नरकादिक, गति दुःख भोगत असहाने ॥  
अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ॥१॥

शुभ उपयोग कारनन में जो, रागकषाय मन्द उदयाने ।  
सो विशुद्ध तसु फल इन्द्रादिक, विभव-समाज सकल परमाने ॥  
अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ॥२॥

परकारन मोहादिक तै च्युत, दरसन-ज्ञान-चरन रस पाने ।  
सो है शुद्ध भाव तसु फल तै, पहुँचत परमानन्द ठिकाने ॥  
अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ॥३॥

इनमे जुगल बन्ध के कारन, परद्रव्याश्रित हेय प्रमाने ।  
'भागचन्द' स्वसमय निज हित लखि, तामे रम रहिये भ्रम हाने ॥  
अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ॥४॥



## अहो यह उपदेश माहीं

अहो यह उपदेश माहीं, खूब चित्त लगावना ।  
होयगा कलयान तेरा, सुख अनन्त बढ़ावना ॥टेक॥

रहित दूषन विश्वभूषन, देव जिनपति ध्यावना ।  
गगनवत निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीस नवावना ॥  
अहो यह उपदेश माहीं, खूब चित्त लगावना ॥१॥

धर्म अनुकम्पा प्रधान, न जीव कोई सतावना ।  
सप्ततत्त्व परीक्षा करि, हृदय श्रद्धा लावना ॥  
अहो यह उपदेश माहीं, खूब चित्त लगावना ॥२॥

पुद्गलादिक तैं पृथक, चैतन्य ब्रह्म लखावना ।  
या विधि विमल सम्यक्त्व धरि, शंकादि पंक बहावना ॥  
अहो यह उपदेश माहीं, खूब चित्त लगावना ॥३॥

रुचै भव्यन को वचन जे, शठन को न सुहावना ।  
चन्द्र लखि जिमि कमुद विकसै, उपल नहिं विकसावना ॥



अहो यह उपदेश मार्हीं, खूब चित्त लगावना ॥४॥

'भागचन्द' विभाव तजि, अनुभव स्वभावित भावना ।  
या शरण न अन्य जगतारन्य मे कहु पावना ॥५॥



## आकुल रहित होय इमि



तर्ज़ : प्यार में होता है क्या जादू

आकुल रहित होय इमि निशिदिन, कीजे तत्त्व विचारा हो ।  
को मैं कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो ॥टेक॥

को भव-कारण बन्ध कहा, को आस्रव रोकनहारा हो ।  
खिपत कर्म बन्धन काहे सों, थानक कौन हमारा हो ॥२॥

इमि अभ्यास किये पावत है, परमानन्द अपारा हो ।  
'भागचन्द' यह सार जान करि, कीजै, बारम्बारा हो ॥३॥



## आतम अनुभव आवै



आत्म अनुभव आवै जब निज, आत्म अनुभव आवै ।  
और कछु न सुहावै, जब निज आत्म अनुभव आवै ॥टेक॥

जिन आज्ञा अनुसार प्रथमही, तत्त्व प्रतीति अनावे  
वरणादिक रागादिक तैं निज, चिह्न भिन्न कर ध्यावे ॥१॥

मतिज्ञान फरसादि विषय तजि, आत्म सन्मुख ध्यावे  
नय प्रमाण निक्षेप सकल श्रुत, ज्ञान विकल्प नशावे ॥२॥

चिद्‌ऽहं शुद्धोऽहं ईत्यादिक, आप माहिं बुधि आवे  
तनपैं वज्रपात गिरतेहू नेक न चित्त डुलावे ॥३॥

स्व संवेद आनंद बढै अति वचन कह्यो नहिं जावे  
देखन जानन चरन तीन बिच, एक स्वरूप लहरावे ॥४॥

चित्त करता चित्त कर्म भाव चित्त, परिणति क्रिया कहावे  
साध्य साधक ध्यान ध्येयादिक, भेद कछु न दिखावे ॥५॥

आत्मप्रदेश अद्रष्ट तदपि, रसस्वाद प्रगट दरसावे  
जयों मिसरी दीसत न अंधको, सपरस मिष्ट चखावे ॥७॥

जिन जीवनीके संसृति, पारावार पार निकटावे  
भागचन्द ते सार अमोलक परम रतन वर पावे ॥८॥



## आवै न भोगन में तोहि

आवै न भोगन में तोहि गिलान ॥टेक ॥

तीरथनाथ भोग तजि दीनें, तिनतैं मन भय आन ।  
तू तिनतैं कहुँ डरपत नाहीं, दीसत अति बलवान ॥१॥

इन्द्रियतृप्ति काज तू भोगै, विषय महा अघखान ।  
सो जैसे घृतधारा डारै, पावकज्वाल बुझान ॥२॥

जे सुख तो तीक्ष्ण दुखदाई, ज्यों मधुलिप्त-कृपान ।  
तातें 'भागचन्द' इनको तजि आत्म स्वरूप पिछान ॥३॥

**अर्थ :** यह आश्चर्य है कि तुझे भोगों से ग्लानि नहीं हो रही है ।

जिन भोगों से तीर्थकर भी डरते हैं और जिन्होंने उनको तज दिया, तू उनसे डरता नहीं है सो बड़ा बलवान लगता है ।  
इन्द्रियों की तृप्ति के लिए तू पापों के घरस्वरूप पंचेद्रियों के विषयों को भोगना चाहता है लेकिन यह तो अग्नि बुझाने के  
लिए धी डालने जैसा हुआ ।

तू जिसे सुख मान रहा है वह तो शहद लपेटी हुई तलवार को चखने के समान है, अति तीक्ष्ण है और दुखदाई है इसलिए  
कवि भागचन्द जी कहते हैं कि इन भोगों को तजकर आत्म स्वरूप पहिचानो अथवा वह भाग्यशाली है जो इन भोगों को  
तजकर आत्मस्वरूप को पहिचान लेता है ।





# ऐसे जैनी मुनिमहाराज

ऐसे जैनी मुनिमहाराज, सदा उर मो बसो ॥टेक॥

तिन समस्त परद्रव्यनिमाहीं, अहंबुद्धि तजि दीनी ।  
गुन अनन्त ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी ॥१॥

जे निजबुद्धिपूर्व रागादिक, सकल विभाव निवारैं ।  
पुनि अबुद्धिपूर्वक नाशनको, अपने शक्ति सम्हारैं ॥२॥

कर्म शुभाशुभ बंध उदय में, हर्ष विषाद न राखैं ।  
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरनतप, भावसुधारस चाखैं ॥३॥

परकी इच्छा तजि निजबल सजि, पूरव कर्म खिरावैं ।  
सकल कर्मतैं भिन्न अवस्था सुखमय लखि चित चावैं ॥४॥

उदासीन शुद्धोपयोगरत सबके दृष्टा ज्ञाता ।  
बाहिजरूप नगन समताकर, 'भागचन्द' सुखदाता ॥५॥

**अर्थ :** ऐसे जैन मुनि अर्थात् दिग्म्बर जैन मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन मुनिराजों ने समस्त परद्रव्यों में अपनेपन की बुद्धि को छोड़ दिया है और अपने ज्ञान आदि अनन्त गुणों को पहचानकर अपनी आत्मा की अनुभूति की है - ऐसे दिग्म्बर मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन्होंने बुद्धिपूर्वक होने वाले रागादि समस्त विकारी भावों का तो निवारण कर दिया है और अबुद्धिपूर्वक होने वाले

विकारी परिणामों के नाश के लिये उद्यमवन्त हैं - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें ।

जो शुभ-अशुभ कर्म के बंध और उदय में हर्ष व शोक का परिणाम नहीं करते और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के तप द्वारा निज भावों के अमृतरस का भोग करते हैं - ऐसे तपस्ची मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो अपनी शक्ति के बल से परद्रव्यों की इच्छा को त्यागकर पूर्व में उपार्जित कर्मों को नष्ट करते हैं और समस्त कर्मों से भिन्न पूर्ण सुखमय अवस्था को ही प्राप्त करना चाहते हैं - ऐसे वीतरागी संत सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो बाह्य जगत से उदासीन होकर शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं और समस्त विश्व के ज्ञाता-दृष्टि हैं, तथा बाहर में तो नग्न हैं और अंतर में समता रस के धनी हैं, तथा जो सभी जीवों को आत्मिक सुख प्रदान करने वाले हैं उन मुनिराजों के लिये कवि भागचन्दजी कहते हैं कि - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।



## ऐसे विमल भाव जब पावै



ऐसे विमल भाव जब पावै, हमरो नरभव सुफल कहावै ॥टेक ॥

दरशबोधमय निज आत्म लखि, पर-द्रव्यनि को नहिं अपनावै ।  
मोह-राग-रुष अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ॥१॥

कर्म शुभाशुभ बंध-उदय मे, हर्ष-विषाद चित्त नहिं ल्यावै ।  
निज-हित-हेत विराग-ज्ञान लखि, तिनसौं अधिक प्रीति उपजावै ॥२॥

विषयचाह तजि आत्मवीर्य सजि, दुःखदायक विधिबन्ध खिरावै ।  
'भागचन्द' शिवसुख सब सुखमय, आकलता बिन लखि चित चावै ॥

३ ॥





राग : कलिंगद्वा

# ऐसे साधु सुगुरु कब

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं ॥टेक ॥

आप तरैं अरु पर को तारैं, निष्ठृही निर्मल हैं ॥१॥

तिल तुष मात्र संग नहिं जिनके, ज्ञान-ध्यान गुण बल हैं ॥२॥

शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दर तुल्य अचल हैं ॥३॥

'भागचन्द' तिनको नित चाहें, ज्यों कमलनि को अलि हैं ॥४॥



# करो रे भाई तत्त्वारथ



करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥टेक ॥

नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके, करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥

देखन जाननहार आप लखि, देहादिक पर मान ॥

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥१॥

मोह राग रुष अहित जान तजि, बंधु विधि दुःखदान  
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥२॥

निज स्वरूप में मगन होयकर, लगन विषय दो भान ॥  
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥३॥

'भागचन्द' साधक है साधो, साध्य स्वपद अमलान ॥  
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ॥४॥

**अर्थ :** हे भाई! तुमने दुर्लभ मनुष्य भव, उत्तम कुल और उत्तम क्षेत्र को प्राप्त किया है इसलिये आत्महित करने में प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के सम्पर्क अर्थ को पहचानो और उसकी ही श्रद्धा करो।

हे भाई ! स्वयं को जानने-देखने वाला अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो और शरीर आदि को पर-द्रव्य मानो तथा मोह-राग-द्वेष आदि आश्रव परिणामों को अहितकारी जानकर इनका त्याग करो, क्योंकि ये कर्म बंध के कारण होने से बहुत दुःख प्रदान करने वाले हैं।

हे जीव! अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर विषयों की रुचि का त्याग करो । भागचन्द कवि कहते हैं कि - वास्तविक साधक अर्थात् साधु वही है जो अपने निर्मल निज आत्मा को ही साधता है अतः है जीव! सर्व दुःखों से मुक्ति के लिये तत्त्वों का यर्थात् श्रद्धान-ज्ञान करो।



**चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी**



राग : सोरठ

चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥टेक ॥

जबै तुम गरभ माहिं आये, तबै सब सुरगन मिलि आए  
रतन नगरी में बरसाये...

ओ५५.... अमित अमोघ सुढार स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥१॥

जन्म प्रभु तुमने जब लीना, न्हवन मन्दिरपै हरि कीना  
भक्त करि शची सहित भीना...

ओ५५... बोले जयजयकार स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥२॥

अथिर जग तुमने जब जाना, स्तवन लौकांतिक सुर ठाना  
भये प्रभु जती नगन बाना....

ओ५५....त्यागराज को भार स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥३॥

घातिया प्रकृति जबै नासी, चराचर वस्तु सबै भासी  
धर्म की वृष्टि करी खासी...

ओ५५... केवल ज्ञान भंडार स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥४॥

अघातिया प्रकृति जो विघटाई, मुक्ति कांता तब ही पाई  
निराकुल आनंद सुखदाई...

ओ४५ ...तीन लोक सिरताज स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥५॥

पार गणधर हूं नहिं पावै, कहाँ लगि 'भागचन्द' गावे  
तुम्हारे चरनांबुज ध्यावै...

ओ४६...भवसागर सो तार स्वामी जी...तुम गुण अपरंपार ॥  
चन्द्रोज्वल अविकार स्वामी जी, तुम गुण अपरंपार ॥६॥



## जिन स्व पर हिताहित चीना



जिन स्व-पर हिताहित चीना, तिनका ही साचा जीना ॥टेक॥

जिन बुध-छैनी पैनी तैं, जड़ रूप निराला कीना ।  
पर तैं विरचि आपसे राचे, सकल विभाव विहीना ॥  
जिन स्व-पर हिताहित चीना, तिनका ही साचा जीना ॥१॥

पुन्य पाप विधि बंध उदय में, प्रमुदित होत न दीना ।  
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निज भाव सुधारस भीना ॥  
जिन स्व-पर हिताहित चीना, तिनका ही साचा जीना ॥२॥

विषयचाह तजि निज वीरज सजि करत पूर्वविधि छीना ।

'भागचन्द' साधक है साधन, साध्य स्वपद स्वाधीना ॥  
जिन स्व-पर हिताहित चीना, तिनका ही साचा जीना ॥३॥



## जीव! तू भ्रमत सदैव

जीव! तू भ्रमत सदैव अकेला  
संग साथी कोई नहिं तेरा ॥टेक ॥



अपना सुखदुख आप हि भुगतै, होत कुटुंब न भेला  
स्वार्थ भयै सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥१॥

रक्षक कोइ न पूरन है जब, आयु अंत की बेला  
फूटत पारि बँधत नहीं जैसे, दुद्धर जल को ठेला ॥२॥

तन धन जोवन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजाल का खेला  
भागचन्द इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला ॥३॥



## जीवन के परिनामनि की



जीवन के परिनामनि की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥टेक ॥

नित्य-निगोद माहितैं कढ़िकर, नर परजाय पाय सुखदानी ।  
समकित लहि अंतर्मुहूर्तमें, केवल पाय वरै शिवरानी ॥१॥

मुनि एकादश गुणथानक चढ़ि, गिरत तहांतैं चित्प्रभ्रम ठानी ।  
भ्रमत अर्ध-पुद्गल-परावर्तन, किंचित् ऊन काल परमानी ॥२॥

निज परिनामनि की सँभाल में, तातैं गाफिल मत है प्रानी ।  
बंध मोक्ष परिनामनि ही सों, कहत सदा श्री जिनवरवानी ॥३॥

सकल उपाधिनिमित भावनिसों, भिन्न सु निज परनतिको छानी ।  
ताहिं जानि रुचि ठानि हो हु थिर, 'भागचन्द' यह सीख सयानी ॥४॥



## जे दिन तुम विवेक बिन

जे दिन तुम, विवेक बिन खोये ॥टेक ॥



मोह वारुणी पी अनादि तें, पर पद में चिर सोये ।

सुख करंड चित् पिण्ड आप पद, गुण अनन्त नहीं जोये ॥  
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥१॥

होय बहिर्मुख अनि राग रुष, कर्म बीज बहु बोये ।  
तसु फल सुख दुःख सामिग्री लखि, चित् में हरसे रोये ।  
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥२॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूर तें, आस्रव मल नहिं घोये ।  
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।  
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥३॥

अब निज में निज जान, नियत तहाँ, निज परिणाम समोये ।  
यह शिव मारग, सम रस सागर, 'भागचन्द' हित तो ये ।  
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥४॥

**अर्थ :** हे जीव! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया है।

हे चेतन! अनादि काल से मोह की मदिरा का पान करके तुम बाहर के पदों में अर्थात् पर स्थान में सो रहे हो और तुमने सुख के सागर, चैतन्य पिंड ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा जो कि स्वास्थ्यान अर्थात् अपना पद है उसके अनन्त गुर्णों को नहीं जाना। और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे जीव! तुमने बहिर्मुख होकर रागादि विकारी भाव के कर्ता बनकर कर्म बंध के बीज ही बोये हैं और इन कर्मों के फल में मिलने वाली सुख-दुख की सामग्री को देखकर मन में सुखी-दुखी होते रहे हो । हे जीव ! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे चेतन! तुमने अपने निर्मल ध्यान रूपी जल से आस्रव रूपी मलिन भावों का परिहार नहीं किया, न ही पर्वव्य के संग्रह करने की इच्छा को वश में किया और अनेक प्रकार के परिग्रह को भी एकत्रित करते रहे और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

अतः कविवर भागचन्दजी यहां कहते हैं कि - हे चेतन! अब अपने में अपने स्वरूप को जानों, वहीं पर रमण करो और अपनी परिणामों की संभाल करो - क्योंकि यह मोक्षमार्ग ही समता रस का समुद्र है और इसमें ही तुम्हारा हित है। अतः अब इन कियाओं को त्यागो और बिना विवेक के जो तुमने समय गंवाया उसकी संभाल करो।



## ज्ञानी जीवनि के भय होय

ज्ञानी जीवनि के भय होय न या परकार ॥टेक॥



इहभव परभव अन्य न मेरो, ज्ञानलोक मम सार ।

मै वेदक इक ज्ञानभाव को, नहिं पर वेदनहार ॥

ज्ञानी जीवनि के भय होय न या परकार ॥१॥

निज सुभाव को नाश न तातै, चहिये नहि रखवार ।

परमगुप्त निजरूप सहज ही, पर का तहँ न संचार ॥

ज्ञानी जीवनि के भय होय न या परकार ॥२॥

चित स्वभाव निज प्रान तास को, कोई नहीं हरतार ।

मैं चितपिंड अखंड न तातै, अकस्मात भयभार ॥

ज्ञानी जीवनि के भय होय न या परकार ॥३॥

होय निःशंक स्वरूप अनुभव, जिनके यह निरधार ।

मै सो मै, पर सो मैं नाही, 'भागचन्द' भ्रम डार ॥  
ज्ञानी जीवनि के भय होय न या परकार ॥४॥



## तुम परम पावन देख जिन



तुम परम पावन देख जिन, अरि-४रज-रहस्य विनाशनं ।  
तुम ज्ञान-दृग-जलवीच त्रिभुवन ५कमलवत् ६प्रतिभासनं ॥  
आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतल परनये ।  
बल अतुल ७कलित स्वभावते नहिं, ८खलित गुन अमिलित थये ॥१॥

सब राग ९रुष १०हनि परम श्रवन, स्वभाव धन निर्मल दशा ।  
इच्छा रहित भवहित १२खिरत, वच सुनत ही भुमतम नशा ॥  
१३एकान्त-सहन-सुदहन स्यात्पद, बहन मय निजपर दया ।  
जाके प्रसाद विषाद बिन, मुनिजन १४सपदि शिवपद लया ॥२॥

भूजन वसन सुमनादिविन तन, ध्यानमय मुद्रा दियै ।  
नासाग्र नयन सुपलक हलयन, तेज लखि खगगन छिपै ॥  
पुनि वदन निरखत प्रशमजल, १५वरखत १६सुहरखत उर धरा ।  
वुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलि कलिल दुरखतजरा ॥३॥

इत्यादि वहिरंतर असाधरन, सुविभव निधान जी ।  
 इन्द्रादिविंद पदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी ॥  
 मैं चिर दुखी पर १७चाहतैं, तुम धर्म नियत न उर धरो ।  
 परदेव सेव करी बहुत, नहिं काज एक तहाँ १८सरो ॥४॥

अब 'भागचन्द्र' उदय भयो, मैं शरन आयो तुम १९तने ।  
 इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपद दायक वुध भने ॥  
 परमाहिं इष्ट, अनिष्ट-मति-तजि, मगन निज गुन में रहों ।  
 दग्जान-चर संपूर्ण पाऊं, भागचंद न पर चहों ॥५॥

४कर्म-धूलि ५कमल की तरह ६प्रतिभासित होता है

७सुंदर ८पतिल (दुष्ट) ९अलग हो गये १०द्वेष, ११नष्ट करके १२खिरते हुए

१३एकान्त सिद्धान्त को जलाने वाला स्याद्वाद १४शीघ्र १५बरसने से १६प्रसन्न होता है १७पर द्रव्यों की चाह से १८पूरा हुआ

१९पास



# धन धन जैनी साधु



धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥टेक ॥

दर्शन-बोधमयी निजमूरति, जिनकों अपनी भासी हो  
त्यागी अन्य समस्त वस्तुमें, अहंबुद्धि दुखदा-सी हो ॥  
धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥१॥

जिन अशुभोपयोग की परनति, सत्तासहित विनाशी हो  
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहँ भी रहत उदासी हो ॥  
धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥२॥

छेदत जे अनादि दुखदायक, दुविधि बंधकी फाँसी हो  
मोह क्षोभ रहित जिन परनति, विमल मयंककला-सी हो ॥  
धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥३॥

विषय-चाह-दव-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो  
'भागचन्द' ज्ञानानंदी पद, साधत सदा हुलासी हो ॥  
धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥४॥



धनि ते प्रानि जिनके



धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान् ॥टेक ॥

रहित सप्त भय तत्त्वारथ में, चित्त न संशय आन ।  
कर्म कर्मफल की नहिं इच्छा, पर में धरत न ग्लानि ॥  
धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान् ॥१॥

सकल भाव में मूढ़दृष्टि तजि, करत साम्यरस पान ।  
आतम धर्म बढ़ावैं वा, परदोष न उचरैं वान ॥  
धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान् ॥२॥

निज स्वभाव वा, जैनधर्म में, निज पर थिरता दान ।  
रत्नत्रय महिमा प्रगटावैं, प्रीति स्वरूप महान ॥  
धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान् ॥३॥

ये वसु अंग सहित निर्मल यह, समकित निज गुन जान ।  
'भागचन्द' शिवमहल चढ़न को, अचल प्रथम सोपान ॥  
धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान् ॥४॥





# धन्य धन्य है घड़ी आज

धन्य धन्य है घड़ी आज की, जिनध्वनि श्रवण परी ।  
तत्त्व प्रतीति भई अब मेरे, मिथ्या दृष्टि टरी ॥

जड़ तें भिन्न लखी चिन्मूरत, चेतन स्वरस भरी ।  
अहंकार ममकार बुद्धि प्रति, पर में सब परिहरी ॥1॥

पाप पुण्य विधि बंध अवस्था, भासी अति दुखभरी ।  
वीतराग विज्ञान ज्ञानमय, परिणति अति विस्तरी ॥2॥

चाह दाह विनसी बरसी, पुनि समता मेघ झरी ।  
बाढ़ी प्रीति निराकुल पद सों, 'भागचंद' हमरी ॥3॥



## परणति सब जीवन



तर्ज : सांची तो गंगा यह

परणति सब जीवन की, तीन भाँति वरनी ।  
एक पुण्य एक पाप, एक राग हरनी ॥

तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करें कर्म बन्ध ।

वीतराग परणति ही, भव समुद्र तरनी ॥१॥

जावत शुद्धोपयोग पावत नाहीं मनोग ।  
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ॥२॥

त्याग शुभ्र क्रिया-कलाप, करो मत कदापि पाप ।  
शुभ में न मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥३॥

ऊँच-ऊँच दशा धारि, चित प्रमाद को विडारि ।  
ऊँचली दशा तै मति गिरो, अधो धरनी ॥४॥

'भागचन्द' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार ।  
याके निरधारि, स्याद्वाद की उचरनी ॥५॥



## प्रभु पै यह वरदान

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ ।  
फिर जग कीच बीच नहीं आऊँ ॥टेक॥

जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक,



दीप धूप फल सुंदर लाऊँ ।  
आनंद जनक कनक भाजन धरि,  
अर्घ्य अनर्घ्य हेतु पद ध्याऊँ ॥१॥

आगम के अभ्यास माँहि पुनि,  
चित एकाग्र सदैव लगाऊँ ।  
संतनि की संगति तजि के मैं,  
अंत कहूँ इक छिन नहीं जाऊँ ॥२॥

दोष वाद में मौन रहूँ फिर,  
पुण्य-पुरुष गुण निश दिन गाऊँ ।  
राग-द्वेष सब ही को टारी,  
वीतराग निज भाव बढाऊँ ॥३॥

बाहिर दृष्टि खेंच के अंदर,  
परमानंद स्वरूप लखाऊँ ।  
'भागचंद' शिव प्राप्त न जौलौं,  
तौलों तुम चारणाम्बुज ध्याऊँ ॥४॥



महिमा है अगम



महिमा है, अगम जिनागम की ॥टेक ॥

जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की ॥१॥

रागादिक दुःख कारन जानै, त्याग दीनी बुद्धि भ्रम की ॥२॥

ज्ञान-ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शम-दम की ॥३॥

कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परम पराक्रम की ॥४॥

'भागचन्द' शिव-लालच लाग्यो, पहुँच नहीं है जहँ जम की ॥५॥



## मान न कीजिये हो



राग : मल्हार

मान न कीजिये हो परवीन ॥टेक ॥

जाय पलाय चंचला कमला, तिष्ठै दो दिन तीन ।  
धनजोवन क्षणभंगुर सब ही, होत सुछिन छिन छीन ॥१॥

भरत नरेन्द्र खंड-षट-नायक, तेहु भये मद हीन ।  
तेरी बात कहा है भाई, तू तो सहज ही दीन ॥२॥

'भागचन्द' मार्दव-रससागर, माहिं होहु लवलीन ।  
तातैं जगतजाल में फिर कहुँ, जनम न होय नवीन ॥३॥



## यह मोह उदय दुख पावै



राग दीपचन्दी

यह मोह उदय दुख पावै, जगजीव अज्ञानी ॥टेक॥

निज चेतनस्वरूप नहिं जाने, पर-पदार्थ अपनावै ।  
पर-परिनमन नहीं निज आश्रित, यह तहुँ अति अकुलावै ॥१॥

इष्ट जानि रागादिक सेवै, तै विधि-बंध बढ़ावै ।  
निजहित-हेत भाव चित सम्यकदर्शनादि नहिं ध्यावै ॥२॥

इन्द्रिय-तृप्ति करन के काजै, विषय अनेक मिलावै ।  
ते न मिलैं तब खेद खिन्न है समसुख हृदय न ल्यावै ॥३॥

सकल कर्मच्छय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहिं चावै ।  
'भागचन्द' ऐसे भ्रमसेती, काल अनन्त गमावै ॥४॥



## यही इक धर्ममूल है



तर्ज : दुविधा कब जै है या मन की

यही इक धर्ममूल है मीता! निज समकितसार सहीता ॥टेक॥

समकित सहित नरकपदवासा, खासा बुधजन गीता ।  
तहँतें निकसि होय तीर्थकर, सुरगन जजत सप्रीता ॥१॥

स्वर्गवास हू नीको नाहीं, बिन समकित अविनीता ।  
तहँतें चय एकेन्द्री उपजत, भ्रमत सदा भयभीता ॥२॥

खेत बहुत जोते हु बीज बिन, रहत धान्यसों रीता ।  
सिद्धि न लहत कोटि तपहूतें, वृथा कलेश सहीता ॥३॥

समकित अतुल अखंड सुधारस, जिन पुरुषन नें पीता ।  
'भागचन्द' ते अजर अमर भये, तिनहीनें जग जीता ॥४॥



# श्री मुनि राजत समता संग



राग : सारंग, रघुपति राघव राजाराम

श्री मुनि राजत समता संग, कायोत्सर्ग समाहित अंग ॥१॥

करतैं नहिं कछु कारज तातैं, आलम्बित भुज कीन अभंग  
गमन काज कछु है नहिं तातैं, गति तजि छाके निज रस रंग ॥  
श्री मुनि राजत समता संग, कायोत्सर्ग समाहित अंग ॥१॥

लोचन तैं लखिवो कछु नाहीं, तातैं नाशाद्वग अचलंग  
सुनिये जोग रह्यो कछु नाहीं, तातैं प्राप्त इकन्त-सुचंग ॥  
श्री मुनि राजत समता संग, कायोत्सर्ग समाहित अंग ॥२॥

तह मध्याह्न माहिं निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतंग  
कैधौं ज्ञान पवन बल प्रज्वलित, ध्यानानल सौं उछलि फुलिंग ॥  
श्री मुनि राजत समता संग, कायोत्सर्ग समाहित अंग ॥३॥

चित्त निराकुल अतुल उठत जहँ, परमानन्द पियूष तरंग  
'भागचन्द' ऐसे श्री गुरु-पद, वंदत मिलत स्वपद उत्तंग ॥  
श्री मुनि राजत समता संग, कायोत्सर्ग समाहित अंग ॥४॥



## सन्त निरन्तर चिन्तत

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसैं,  
आत्मरूप अबाधित ज्ञानी ॥

रोगादिक तो देहाश्रित हैं,  
इनतें होत न मेरी हानी ।  
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत,  
गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥१॥

वरणादिक विकार पुद्गलके,  
इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।  
यद्यपि एकक्षेत्र-अवगाही,  
तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥२॥

मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस,  
लवण खिल्लवत लीला ठानी ।  
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत,  
तावत परपरनति हित मानी ॥३॥

'भागचन्द' निरद्वन्द्व निरामय,  
मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।  
नित अकलंक अवंक शंक बिन,  
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥४॥



## सफल है धन्य धन्य वा



लावनी

सफल है धन्य धन्य वा घरी,  
जब ऐसी अति निर्मल होसी, परम दशा हमरी ॥टेक ॥

धारि दिगंबरदीक्षा सुंदर, त्याग परिग्रह अरी ।  
वनवासी कर-पात्र परीषह, सहि हों धीर धरी ॥१॥

दुर्धर तप निर्भर नित तप हों, मोह कुवृक्ष करी ।  
पंचाचारक्रिया आचरहों, सकल सार सुथरी ॥२॥

विभ्रमतापहरन झरसी निज, अनुभव मेघझरी ।  
परम शान्त भावनकी तातै, होसी वृद्धि खरी ॥३॥

त्रेसठिप्रकृति भंग जब होसी, जुत त्रिभंग सगरी ।

तब केवल दर्शन विबोध सुख, वीर्यकला पसरी ॥४॥

लखि हो सकल द्रव्यगुनपर्जय, परनति अति गहरी ।  
'भागचन्द' जब सहजहि मिल है, अचल मुकति नगरी ॥५॥



## सम आराम विहारी साधुजन



सम आराम विहारी साधुजन, सम आराम विहारी ॥टेक॥  
एक कल्पतरु पृष्ठन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ॥१॥

एक कण्ठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी ।  
राखत एक वृत्ति दोउन में, सब ही के उपगारी ॥२॥

व्याघ्रबाल करि सहित नन्दिनी, व्याल नकुल की नारी ।  
तिनके चरन-कमल आश्रय तैं, अरिता सकल निवारी ॥३॥

अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धाम अपारी ।  
काम धरा विच गढ़ी सो चिरतें, आत्मनिधि अविकारी ॥४॥

खनत ताहि लैकर कर में जे, तीक्ष्ण बुद्धि कुदारी ।

निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर-ममता न लगारी ॥५॥

निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी ।  
'भागचन्द' ऐसे श्रीपति प्रति, फिर-फिर ढोक हमारी ॥६॥



## सुमर सदा मन आत्मराम



राग : बिलावल, रघुपति राघव राजाराम

सुमर सदा मन आत्मराम,  
सुमर सदा मन आत्मराम ॥टेक ॥

स्वजन कुटुंबी जन तू पोषै,  
तिनको होय सदैव गुलाम ।  
सो तो हैं स्वारथ के साथी,  
अंतकाल नहिं आवत काम ॥  
सुमर सदा मन आत्मराम ॥१॥

जिमि मरीचिका में मृग भटकै,  
परत सो जब ग्रीष्म अति धाम ।  
तैसे तू भवमाहीं भटकै,

धरत न इक छिनहू विसराम ॥  
सुमर सदा मन आत्मराम ॥२॥

करत न ग्लानि अबै भोगन में,  
धरत न वीतराग परिनाम ।  
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी,  
जहाँ सुख लेश न आठौं जाम ॥  
सुमर सदा मन आत्मराम ॥३॥

तातैं आकुलता अब तजिकै,  
थिर है बैठो अपने धाम ।  
'भागचन्द' वसि ज्ञान नगर में,  
तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥  
सुमर सदा मन आत्मराम ॥४॥



## जे सहज होरी के

जे सहज होरी के खिलारी, तिन जीवन की बलिहारी ॥टेक॥



शांतभाव कुंकुम रस चन्दन, भर समता पिचकारी ।

उड़त गुलाल निर्जरा संवर, अंबर पहरैं भारी ॥१॥

सम्यकदर्शनादि सँग लेकै, परम सखा सुखकारी ।  
भींज रहे निज ध्यान रंगमें, सुमति सखी प्रियनारी ॥२॥

कर स्नान ज्ञान जलमें पुनि, विमल भये शिवचारी ।  
'भागचन्द' तिन प्रति नित वंदन, भावसमेत हमारी ॥३॥

**अर्थ :** जो सहज स्वभाव की होली को खेलते हैं, उन जीवों को मैं प्रणाम करता हूँ।

वे जीव शांत भाव रूपी कुंकुम-चन्दन का रस समता रूपी पिचकारी में भरते हैं और ज्ञान-वस्त्र पहनकर संवर-निर्जरा की गुलाल उड़ाते हैं।

उनके साथ सम्यगदर्शनादि सुखदायक सखा होते हैं और अपनी प्रिय सखी सुमति के साथ आत्मध्यान रूपी रंग में भीग जाते हैं।

जो जीव ज्ञानजल में स्नान करके मोक्षमार्ग अत्यन्त निर्मल हो गये हैं, कविवर भागचन्द कहते हैं कि मैं उन जीवों को भावसहित नित्य वन्दन करता हूँ।



## पं द्यानतराय कृत भजन



अब मोहे तार लेहु महावीर



अब मोहे तार लेहु महावीर !  
सिद्धारथ-नन्दन जग-वन्दन, पाप-निकन्दन धीर ॥

ज्ञानी ध्यानी दानी ज्ञानी, बानी गहन-गंभीर ।  
मोष के कारन दोष-निवारन, रोष-विदारन वीर ॥  
अब मोहे तार लेहु महावीर ॥१॥

समता-सूरत, आनंद पूरत, चूरत आपद पीर ।  
बालयती वृद्धव्रती समकिती, दुख-दावानल-नीर ॥  
अब मोहे तार लेहु महावीर ॥२॥

गुन अनन्त भगवन्त अन्त नहि, शशि कपूर हिम हीर ।  
'ध्यानत' एकहु गुण हम पाएँ, दूर करें भव-भीर ॥  
अब मोहे तार लेहु महावीर ॥३॥

**अर्थ :** हे महावीर ! अब मेरा भवसागर से उद्धार कर दीजिए। हे सिद्धार्थ के नन्दन ! जगद्वन्द्य पापनाशक ! हे धीर ! अब मुझे पार लगा दीजिए।

हे भगवन् ! आप केवलज्ञानी हैं, निर्विकल्प आत्मध्यानी हैं, अनुपम दानी हैं। आपकी दिव्यध्वनि गहन और गम्भीर है। आप मोक्ष के कारण हैं, दोषों का निवारण करने वाले हैं और रोष (क्रोध) के विदारण में वीर हैं।

आपकी वीतराग मुद्रा समता से शोभायमान है। वह आनन्द प्रदान करनेवाली तथा सर्व आपदाओं और पीड़ाओं को नष्ट करनेवाली है। आप बालयति हैं, व्रतों में वृद्ध हैं, सम्यग्वृष्टि हैं, तथा दुःखरूप दावानल को शमन करनेवाले नीर हैं।

हे भगवन् ! आपमें अनन्त गुण हैं, उनका अन्त नहीं है। आपके गुण चन्द्रमा, कर्पूर, हिम (बफ) और रक्तराशि के समान निर्मल हैं। कविवर 'ध्यानतराय' कहते हैं कि हे भगवन् ! आपके गुणसमुद्र में से हमें एक गुणबिन्दु भी प्राप्त हो जाए तो हम संसार-बाधा को दूर करने में समर्थ हो जाएँ।





राग : असावरी

# अब हम अमर भये

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥  
तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे ॥टेक ॥

उपजै मरै कालतें प्रानी, तातै काल हरेंगे ।  
राग-द्वेष जग-बंध करत हैं, इनको नाश करेंगे ॥  
अब हम अमर भये न मरेंगे ॥१॥

देह विनाशी मैं अविनाशी, भेदज्ञान पकरेंगे ।  
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरेंगे ॥  
अब हम अमर भये न मरेंगे ॥२॥

मरे अनन्ती बार बिन समुझौ, अब सब दुःख बिसरेंगे ।  
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन-सुमरे सुमरेंगे ॥  
अब हम अमर भये न मरेंगे ॥३॥

**अर्थ :** अपने आत्म स्वरूप का भान होने पर साधक जीव कहता है कि मैं तो अजर--अमर तत्त्व हूँ, मेश कभी विनाश नहीं होता क्योंकि जिस मिथ्यात्व के कारण यह संसार मिलता है मैंने उस मिथ्यात्व को ही नष्ट कर दिया है तो अब पुनः इस देह का संयोग मुझे कैसे होगा?

काल द्रव्य के परिणमन के कारण प्राणी जन्म-मरण का चक्र करता है। अब हम अपने निज शुद्ध स्वरूप में ठहरकर इस काल की पराधीनता से अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो जायेंगे तथा जो राग-द्वेष जगत में बंधन के कारण हैं, उनका हम नाश करेंगे।

यह देह तो नाशवान है और मैं अविनाशी तत्त्व हूँ -हम इस भेदज्ञान को समझकर ग्रहण करेंगे। यह देह तो नाशवान होने से नष्ट हो जायेगी और यह आतमा सदा काल रहने वाला है, अतः ऐसे भेदज्ञान में डूबकर हम निर्मल शुद्ध रूप में निखर जायेंगे।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि अभी तक हमने आत्म स्वरूप को समझे बिना अनन्त बार जन्म-मरण धारण किया अतः अब उन सब दुःखों को भूलकर केवल दो अक्षर 'सोहं' (मैं वह सिद्ध स्वरूप हूँ) का ही निरंतर सुमिरण करेंगे अर्थात् उस शाश्वत रूप की ही पहचान और प्रतीति करेंगे।



## अब हम आतम को पहिचान्यौ



तर्ज : अरे जिया जग धोखे

अब हम आतम को पहिचान्यौ ॥टेक ॥  
जब ही सेती मोह सुभट बल, छिनक एक में भान्यौ ॥१॥

राग विरोध विभाव भजे झर, ममता भाव पलान्यौ ।  
दरशन ज्ञान चरन में चेतन, भेद रहित परवान्यौ ॥  
अब हम आतम को पहिचान्यौ ॥२॥

जिहि देखैं हम अवर न देख्यो, देख्यो सो सरधान्यौ ।  
ताकौ कहो कहैं कैसे करि, जा जानै जिम जान्यौ ॥  
अब हम आतम को पहिचान्यौ ॥३॥

पूरब भाव सुपनवत देखे, अपनो अनुभव तान्यौ ।

'द्यानत' ता अनुभव स्वादत ही, जनम सफल करि मान्यौ ॥  
अब हम आत्म को पहिचान्यौ ॥४॥

**अर्थ :** अहो ! अब हमने आत्मा को पहिचान लिया है जब से हमने मोह नाम के प्रबल शत्रु को एक क्षण में जान लिया है।

राग-द्वेषरूपी विभावों को क्षयकर मोहरूपी भाव का हमने नाश कर दिया है और अब अपने चित्त में सम्यकदर्शन, ज्ञान और चारित्र द्वारा भेदरहित एकमात्र अपने चैतन्य स्वरूप को जान लिया है।

इसे देखने-जानने के बाद अब इसके अतिरिक्त हमने किसी को भी नहीं देखा और जो अपने इस चैतन्य स्वरूप को देखा-जाना-पहचाना, उसका ही श्रद्धाना। विश्वास किया है।

वह अवर्णनीय है, उसका कोई वर्णन नहीं किया जा सकता । जो उसे जानता है वह वहीं जानता है। अब तक रहे भाव सब स्वप्न के समान थे। अब मात्र अपनी आत्मा का अनुभव है। द्यानतराय कहते हैं कि उस अनुभव के स्वाद में, रस ही में शान्ति है, उसी में अपना जन्म सफल माना गया है।



## अब हम नेमिजी की शरन



अब हम नेमिजी की शरन ।  
और ठौर न मन लागत है, छांडि प्रभु के संग ॥टेक ॥

सकल भवि-अघ-दहन वारिद, विरद तारन तरन ।  
इन्द्र चन्द फनिन्द ध्वावै, पाय सुख दुख हरन ॥  
अब हम नेमिजी की शरन ॥1॥

भरम-तम-हर-तरनि, दीपति, करम गन खय करन ।  
गनधरादि सुरादि जाके, गुन सकत नहि वरन ॥  
अब हम नेमिजी की शरन ॥2॥

जा समान त्रिलोक में हम, सुन्धौं और न करन ।  
दास द्यानत दयानिधि प्रभु, क्यों तजैंगे परन ॥  
अब हम नेमिजी की शरन ॥३॥



## अरहंत सुमर मन बावरे



तर्ज़ : भगवंत भजन क्यों भूला रे

अरहंत सुमर मन बावरे...  
ख्याति लाभ पूजा तजि भाई, अन्तर प्रभु लौ लाव रे ॥

नरभव पाय अकारथ खोवै, विषय भोग जु बढ़ाव रे ।  
प्राण गये पछितैहै मनवा, छिन छिन छीजै आव रे ॥  
अरहंत सुमर मन बावरे ॥१॥

जुवती तन धन सुत मित परिजन, गज तुरंग रथ चाव रे ।  
यह संसार सुपनकी माया, आँख मीचि दिखराव रे ॥  
अरहंत सुमर मन बावरे ॥२॥

ध्याव ध्याव रे अब है दावरे, नाहीं मंगल गाव रे ।

'द्यानत' बहुत कहाँ लौं कहिये, फेर न कछू उपाव रे ॥  
अरहंत सुमर मन बावरे ॥३॥

**अर्थ :** ऐ मेरे बावरे मन ! अरे मेरे नादान मन ! तू अरहंत के गुणों का स्मरण कर। लाभ और सम्मान की भावना छोड़कर अरे भाई तू अपने अन्तर को / मन को प्रभु से जोड़ ले, अन्तर में प्रभु की लगन लगा ले, प्रभु की दीप्ति लौ से अपने को जोड़ ले, एक कर ले अर्थात् उस स्वरूप में रुचिपूर्वक लीन हो जा ।

तू यह मनुष्य जन्म पाकर भी इसे निरर्थक ही खोये जा रहा है, तू विषयभोग में अपने आपको लगाए हुए हैं, उनमें ही वृद्धिगत है । अपने को उस ओर ही बढ़ाये जा रहा है । आयु का एक -एक क्षण व्यतीत होता जा रहा है अर्थात् मृत्यु समीप आती जा रही है, तब प्राणान्त के समय फिर पछताना होगा ।

स्त्री, शरीर, धन, पुत्र, मित्र, परिवारजन, हाथी, घोड़े, रथ इन सबके प्रति तेरी रुचि है / यह संसार तो स्वप्नवत् है, अस्थिर है । आँख मींचने पर जिस प्रकार दिखाई देता है, वैसे ही यह काल्पनिक, आधारशून्य दिखाई देता है ।

अरे-अब तू इनको ध्याले । अभी अवसर है, ऐसा मंगल अवसर फिर प्राप्त नहीं होगा। द्यानतराय कहते हैं कि अधिक क्या कहा जाए! अरे फिर कोई उपाय शेष नहीं बचेगा ।



## अहो भवि प्रानी चेतिये हो



अहो भवि प्रानी चेतिये हो, छिन छिन छीजत आव ॥  
घड़ी घड़ी घड़ियाल रटत है, कर निज हित अब दाव ॥टेक ॥

जो छिन विषय भोगमें खोवत, सो छिन भजि जिन नाम ।  
वातैं नरकादिक दुख पैहै, यातैं सुख अभिराम ॥अहो...१॥

विषय भुजंगम के डसे हो, रुले बहुत संसार ।  
जिन्हैं विषय व्यापै नहीं हो, तिनको जीवन सार ॥अहो...२॥

चार गतिनिमें दुर्लभ नर भव, नर बिन मुक्ति न होय ।  
सो तैं पायो भाग उदय हों, विषयनि-सँग मति खोय ॥अहो...३॥

तन धन लाज कुटुँब के कारन, मूढ़ करत है पाप ।  
इन ठगियों से ठगायकै हो, पावै बहु दुख आप ॥अहो...४॥

जिनको तू अपने कहै हो, सो तो तेरे नाहिं ।  
कै तो तू इनकौं तजै हो, कै ये तुझे तज जाहिं ॥अहो...५॥

पलक एक की सुध नहीं हो, सिरपर गाजै काल ।  
तू निचिन्त क्यों बावरे हो, छांडि दे सब भ्रमजाल ॥अहो...६॥

भजि भगवन्त महन्त को हो, जीवन-प्राणअधार ।  
जो सुख चाहै आपको हो, 'द्यानत' कहै पुकार ॥अहो...७॥

**अर्थ :** हे भव्य प्राणी! तू अब चेत, जाग जा! एक-एक क्षण करके तेरी आयु बीती जा रही है और यह घड़ी हर क्षण टिक-टिक आवाज कर कह रही है कि अभी भी अवसर है अपने हित का कोई कार्य कर लो।

हे जीव! जो क्षण तू विषय-भोगों में खो रहा है उस क्षण को तू श्री जिनेन्द्र भगवान के नाम को भजने में लगा क्योंकि विषय-भोगों से तो नरकादिक दुःख मिलते हैं और जिन नाम के सुमिरन से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

विषय-भोगरूपी सर्प के डसने पर बहुत काल तक संसार में भटकना पड़ता है, अतः जिनके जीवन में विषय भोग नहीं है वास्तव में उनका जीवन ही सार स्वरूप है, प्रयोजनवान है।

चारों गतियों में अत्यंत दुर्लभता से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है और इसके बिना मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है। ऐसा मनुष्य जन्म तुमने पुण्य उदय से प्राप्त कर लिया है अतः अब विषय भोगों में लगाकर इसे बरबाद मत करो।

अज्ञानी मनुष्य इस देह, धन, इज्जत और कुटुम्ब के कारण पाप कार्य करता है और इन ठगों से ठगा जाकर वह स्वयं बहुत दुःख पाता है।

जिनको तू अपना कहता है, वे तो तेरे हैं नहीं क्योंकि आयु समाप्ति पर या तो तू उनको छोड़ देगा अन्यथा ये तुझको छोड़कर चले जायेंगे।

हे जीव! काल सदा सिर पर मंडरा रहा है और एक पल का भी विश्वास नहीं है, ऐसे समय में भी मूर्ख तू निश्चिन्त क्यों हो गया है? यह सब भ्रमजाल है इसको छोड़ दे।

द्यानतरायजी पुकार कर कहते हैं कि जो तू अपना सुख चाहता है तो जिनेन्द्र भगवान का भजन कर, यह ही वास्तव में तेरे जीवन का आधार है।



## आतम अनुभव करना रे भाई



राग : असादरी

आतम अनुभव करना रे भाई  
जब लौ भेद-ज्ञान नहीं उपजे, जनम मरण दुःख भरना रे ॥टेक ॥

आतम पढ़ नव तत्त्व बखाने, व्रत तप संजम धरना रे  
आतम ज्ञान बिना नहीं कारज, योनी संकट परना रे ॥१॥

सकल ग्रन्थ दीपक है भाई मिथ्यातम के हरना रे  
का करे ते अंग पुरुष को जिन्हें उपजना मरना रे ॥२॥

द्यानत जे भवि सुख चाहत है तिनको यह अनुसरना रे  
'सो वह' ये दो अक्षर जप भवजल पार उतरना रे ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई! अपनी आत्मा का स्मरण करो, उसके चिंतन में लीन रहो, उसकी अनुभूति करो। जब तक भेद-ज्ञान (जीव व पुद्गल के स्वरूप का भेदरूप ज्ञान) नहीं हो तब तक जन्म और मरण की श्रृंखला चलती ही रहेगी, उसके दुःख होते ही रहेंगे।

आत्म-चिन्तन के लिए नवतत्व (जीव- पुद्गल और उनका एक- दूसरे की ओर आकर्षण-विकर्षण, उसके कारण होनेवाली आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा की स्थितियाँ और तत्पश्चात् मोक्ष की स्थिति) - इन सबका विचार-चिन्तन करते हुए अणुव्रत, तप और संयम का पालन करो । आत्मज्ञान के बिना किया गया कोई कार्य मुक्ति की ओर अग्रसर नहीं करता। आत्मज्ञान के अभाव में भव-भव में चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण होता ही रहेगा।

सारे ग्रन्थ दीपक के समान प्रकाशक हैं। उनका स्वाध्याय ज्ञानार्जन का साधन है जिससे मिथ्यात्व का अंधकार दूर होता है, मिटता है । वे अन्धे हैं जो उन ग्रन्थों में निहित ज्ञान का उपयोग नहीं करते. वे नियम से जन्म-मरण करते ही रहेंगे।

द्यानतराय कहते हैं कि हे भव्य! यदि तुम सुख चाहते हो तो इस क्रम का अनुसरण करो। मैं जो हूँ - सो मैं हूँ, ऐसे 'सोइहं' नाम के दो अक्षरों का जाप करके, हृदय में उसकी अनुभूति करके अपने में स्थिर होना ही इस संसार-समुद्र के पार होना है, अर्थात् मुक्ति का यही एकमात्र मार्ग है।



## आत्म अनुभव कीजिये यह

आत्म अनुभव कीजिये यह संसार असार हो ॥टेक॥



जैसो मोती ओस का, जात न लागे वार हो ।  
जैसे सब वनिजौ विषै, पैसा उतपति सार हो ॥1॥

तैसे सब ग्रन्थन विषै अनुभव हित निरधार हो ।  
पंच महाव्रत जे गहे, सहै परीषह भार हो ॥2॥

आत्म ज्ञान लखें नहीं, वूडै काली धार हो ।  
बहुत अंग पूरव पढ्यो, अभव्यसेन गंवार हो ॥3॥

भेद विज्ञान भयो नहीं, रुल्यो सरव संसार हो ।  
बहु जिनवानी नहि पढ्यो, शिवभूति अनगार हो ॥4॥

घोष्यो तुष अरु माष को, पायो मुक्ति द्वार हो ।  
जे सीझे जे सीझे है, जे सीझे इहिवार हो ॥5॥

ते अनुभव परसाद तै, यो भाष्यो गणधार हो ।  
पारस चिन्तामणि सबे, सुरतरू आदि अपार हो ॥6॥

ये विषया सुख को करै, अनुभव सुख सिरदार हो ।  
'द्यानत' ज्ञान विराग ते, तद्भव मुक्ति मझार हो ॥7॥



## आतम अनुभव कीजै हो

आतम अनुभव कीजै हो  
जनम जरा अरु मरन नाशकै, अनंतकाल लौं जीजै हो ॥टेक॥



देव धरम गुरु की सरधा करि, कुगुरु आदि तज दीजै हो ।  
छहौं दरब नव तत्त्व परखकै, चेतन सार गहीजै हो ॥

आतम अनुभव कीजे हो ॥१॥

दरब करम नो करम भिन्न करि, सूक्ष्मदृष्टि धरीजे हो ।  
भाव करमतैं भिन्न जानिकै, बुधि विलास न करीजे हो ॥  
आतम अनुभव कीजे हो ॥२॥

आप आप जानै सो अनुभव, 'द्यानत' शिवका दीजे हो ।  
और उपाय वन्यो नहिं वनि है, करै सो दक्ष कहीजे हो ॥  
आतम अनुभव कीजे हो  
जनम जरा अरु मरन नाशकै, अनंतकाल लौं जीजे हो ॥३॥



## आतम अनुभव सार हो



आतम अनुभव सार हो, अब जिय सार हो, प्राणी ।  
विषय भोगफेणने तोहि काट्यो, मोह लहर चढ़ी भार हो ॥  
आतम...१॥

याको मंत्र ज्ञान है भाई, जप तप लहरिउतार हो ॥आतम...२॥  
जनमजरामृत रोग महा ये, तैं दुख सह्यो अपार हो ॥आतम...३॥  
'द्यानत' अनुभव-ओषध पीके, अमर होय भव पार हो ॥आतम...४॥

**अर्थ :** आत्मा का अनुभव होना सार है, महत्वपूर्ण है । इसलिए हे जीव! यह ही जीवन का सार है ।

विषय भोगरूपी सर्पों के फ़ूणों से काटे जाने के कारण तुझ पर मोह की गहल/नशा, एक लहर चढ़ रही है ।

इसका किस प्रकार निवारण किया जाए - इसके लिए एकमात्र सशक्त उपाय ज्ञान है, जिसके अनुरूप जप-तप से मोहरूपी / विषय-भोगरूपी सर्पदंश का जहर उतर जाता है ।

जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु - ये महान रोग हैं इनके कारण मैंने बहुत दुःख सहे हैं ।

द्यानतराय कहते हैं कि अनुभव-ज्ञानरूपी औषधि पीकर तू भवसागर के पार होकर अमर हो जा ।



## आतम काज सँवारिये



आतम काज सँवारिये, तजि विषय किलोलैं  
तुम तो चतुर सुजान हो, क्यों करत अलोलैं ॥टेक ॥

सुख दुख आपद सम्पदा, ये कर्म झकोलैं ।  
तुम तो रूप अनूप हो, चैतन्य अमोलैं ॥आतम...१॥

तन धनादि अपने कहो, यह नहिं तुम तोलैं ।  
तुम राजा तिहुँ लोकके, ये जात निठोलैं ॥आतम...२॥

चेत चेत 'द्यानत' अबै, इमि सद्गुरु बोलैं ।  
आतम निज पर-पर लखौ, अरु बात ढकोलैं ॥आतम...३॥

**अर्थ :** अरे भाई! तू इन्द्रिय-भोग और विषय-वासना की लहरों में अपनी आमोद प्रमोद की क्रिया को छोड़कर अपनी आत्मा को सँभालने-सँवारने के कार्य में रत होजा अर्थात् उस व्यवस्था को सुधार ले जिससे तेरी आत्मा का कल्याण हो। अरे, तुम तो चतुर हो, ज्ञानी हो, फिर क्योंकर जड़ के समान व्यवहार करते हो?

सुख दुख, आपदाएँ व सम्पत्तियाँ - ये सब तो झकोरे हैं (पेन्डुलम की भौति) एक दिशा से दूसरी और दूसरी से पहली के

बीच ही धक्कमपेल है पर तुम अनुपम रूप के धारी चैतन्य हो, जो अमूल्य है।

तुम जिस धन आदि वैभव को अपना कहते हो, उससे तुम्हारी कोई समानता नहीं है। तुम तीन लोक के राजा हो, स्वामी हो। ये सारी बातें तो अकार्य की, बेकार को, निरर्थक बातें हैं ये सब निठल्लापन की बातें हैं।

द्यानतराय कहते हैं कि अब सद्गुरु समझाते हैं कि अब तू चेत जा। आत्मा को आत्मा जान, निज को निज व पर को पर जान। इस भेदज्ञान के अलावा सब बातें व्यर्थ हैं।



## आत्म जान रे जान रे जान



राग : ख्याल

आत्म जान रे जान रे जान

जीवन की इच्छा करै, कबहुँ न मांगै काल । (प्राणी!)

सोई जान्यो जीव है, सुख चाहै दुख टाल ॥ आत्म...१ ॥

नैन बैन में कौन है, कौन सुनत है बात । (प्राणी!)

देखत क्यों नहिं आपमें, जाकी चेतन जात ॥ आत्म...२ ॥

बाहिर ढूँढ़ै दूर है, अंतर निपट नजीक । (प्राणी!)

ढूँढ़नवाला कौन है, सोई जानो ठीक ॥ आत्म...३ ॥

तीन भुवन में देखिया, आत्म सम नहिं कोय । (प्राणी!)

'द्यानत' जे अनुभव करैं, तिनकौं शिवसुख होय ॥ आत्म...४ ॥



## आत्म जानो रे भाई



आतम जानो रे भाई !

जैसी उज्जल आरसी रे, तैसी आतम जोत ।  
काया-करमनसों जुदी रे, सबको करै उदोत ॥१॥

शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलपरूप ।  
निरविकलप शुद्धात्मा रे, चिदानंद चिद्रूप ॥२॥

तन वचसेती भिन्न कर रे, मनसों निज लौं लाय ।  
आप आप जब अनुभवै रे, तहाँ न मन वच काय ॥३॥

छहौं दरब नव तत्त्वतैं रे, न्यारो आतमराम ।  
'ध्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिवधाम ॥४॥



## आतमरूप अनूपम है

आतमरूप अनूपम है, घटमाहिं विराजै हो  
जाके सुमरन जापसों, भव भव दुख भाजै हो ॥टेक॥

केवल दरसन ज्ञानमैं, थिरतापद छाजै हो ।



उपमाको तिहुँ लोकमें, कोऊ वस्तु न राजै हो ॥१॥

सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजै हो ।  
ज्ञान बिना शिव ना लहै, बहुकर्म उपाजै हो ॥२॥

तिहुँ लोक तिहुँ कालमें, नहिं और इलाजै हो ।  
'द्यानत' ताकों जानिये, निज स्वारथकाजै हो ॥३॥



## आत्मरूप सुहावना



आत्मरूप सुहावना, कोई जानै रे भाई ।  
जाके जानत पाइये, त्रिभुवन ठकुराई ॥

मन इन्द्री न्यारे करौ, मन और विचारौ ।  
विषय विकार सबै मिटैं, सहजैं सुख धारौ ॥१॥

वाहिरतैं मन रोककैं, जब अन्तर आया ।  
चित्त कमल सुलट्यो तहाँ, चिनमूरति पाया ॥२॥

पूरक कुंभक रेचतैं, पहिलैं मन साधा ।

ज्ञान पवन मन एकता, भई सिद्ध समाधा ॥३॥

जिनि इहि विध मन वश किया, तिन आतम देखा ।  
'द्यानत' मौनी क्है रहे, पाईं सुखरेखा ॥४॥



## भज श्रीआदिचरन



राग : असावरी

भज श्रीआदिचरन मन मेरे, दूर होयं भव भव दुख तेरे ।  
भगति बिना सुख रंच न होई, जो ढूँढै तिहुँ जग में कोई ॥टेक॥

प्रान-पयान-समय दुख भारी, कंठ विषैं कफकी अधिकारी ।  
तात मात सुत लोग घनेरा, ता दिन कौन सहाई तेरा ॥  
भज श्रीआदिचरन मन मेरे, दूर होयं भव भव दुख तेरे ॥१॥

तू बसि चरण चरण तुझमाहीं, एकमेक है दुविधा नाहीं ।  
तातैं जीवन सफल कहावै, जनम जरामृत पास न आवै ॥  
भज श्रीआदिचरन मन मेरे, दूर होयं भव भव दुख तेरे ॥२॥

अब ही अवसर फिर जम घेरैं, छोड़ि लरक-बुध सद्गुरु टेरैं ।

'ध्यानत' और जतन कोउ नाहीं, निरभय होय तिहुँ जगमाहीं ॥  
भज श्रीआदिचरन मन मेरे, दूर होेंय भव भव दुख तेरे ॥३ ॥

**अर्थ :** ऐ मेरे मन! तू भगवान आदिनाथ के चरणों का नित्य स्मरण-चिंतन व भजन कर, उससे ही तेरे जन्म-जन्मांतर के, भव-भव के दुःख दूर होंगे। ऐसी भक्ति, विश्वास व आस्था के बिना किसी को भी तीनों लोकों में ढूँढ़ने पर भी, प्रयत्न करने पर भी लेश मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

जब प्राण छूट रहे हों, मृत्यु-समय समीप हो, उस समय जो विकलता। दुःख व कष्ट होता है, कंठ कफ से अवरुद्ध हो जाते हैं, मल-विसर्जन की सारी क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं। उस कष्ट के समय माता, पुत्र व अन्य लोग कोई भी तेरा सहायक नहीं होता।

तू भगवान आदिनाथ के चरणों में चित्त लगा और चिन्तन कर कि उनके चरण तेरे हृदय-कमल पर आसीन रहें। ऐसी भक्ति की भावना में एकमेक होकर गुंथ जा, जिससे कोई दुविधा या संशय नहीं रहे और जीवन सफल हो जाए और जन्ममृत्यु-बुद्धापे के कोई कष्ट न हो अर्थात् जन्म, मरण और जरा से निवृत्ति का एक यही उपाय है, राह है।

अभी अवसर है, अन्यथा फिर समीप आती मृत्यु घेर लेगी। जब तक मृत्यु न आवे तब तक लड़कपन छोड़कर सदगुरु की शरण ग्रहण कर। ध्यानतराय कहते हैं कि संसार के दुःख दूर करने के लिए और कोई उपाय नहीं है। एक यह ही उपाय है, यत्न है, प्रक्रिया है जिससे तीन लोक के सब भय दूर होकर निर्भयता की प्राप्ति होती है।



## आपा प्रभु जाना मैं जाना



राग : काफी

आपा प्रभु जाना मैं जाना  
परमेसुर यह मैं इस सेवक, ऐसो भर्म पलाना ॥टेक ॥

जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मम सो भगवाना ।  
मरमी होय सोइ तो जानै, जानै नाहीं आना ॥  
आपा प्रभु जाना मैं जाना ॥१ ॥

जाकौ ध्यान धरत हैं मुनिगन, पावत हैं निरवाना ।

अर्हत सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आत्मरूप बखाना ॥  
आपा प्रभु जाना मैं जाना ॥२॥

जो निगोद में सो मुझ माहीं, सोई है शिवथाना ।  
'द्यानत' निहचै रञ्च फेर नहिं, जानै सो मतिवाना ॥  
आपा प्रभु जाना मैं जाना ॥३॥

**अर्थ :** मैंने अपने प्रभु आत्मा को जान लिया है, और आत्मा को जानकर मैंने यह जान लिया है कि कोई एक परमेश्वर हैं और मैं उनका सेवक हूँ - यह एक भ्रम है, इसे दूर करो/दूर करना है।

ये जो परमेश्वर हैं, वह तो मेरी स्वयं की मूर्ति ही है । जो मैं हूँ - वह ही परमेश्वर हैं । जो अनुभवी है वह ही इस सत्य को जानता है, जो यह जानता वह हो वास्तव में ज्ञानी हैं । जो इससे भिन्न अन्य जानता है वह वास्तव में कुछ नहीं जानता है।

जिसका (आत्मा का) ध्यान करके मुनिजन निर्वाण को प्राप्त करते हैं, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि ये सब आत्म-स्वरूप के ही वर्णन हैं, ये सब आत्मा के ही विभिन्न रूप हैं।

जैसी मेरी अपनी आत्मा है, वैसी ही आत्मा निगोद पर्याय के जीवों में है और वैसी ही सिद्धों में है। इस प्रकार परस्पर में भेद से परे, जिसे आत्मस्वरूप का निश्चय है, जो यह निःशंक रूप से जानता है, वह ही बुद्धिवान है, ज्ञानवान है।



## आरति कीजै श्रीमुनिराज की



आरति कीजै श्रीमुनिराज की, अधमउधारन आत्मकाज की ॥टेक ॥

जा लक्ष्मी के सब अभिलाखी, सो साधन करदम वत नाखी ॥१॥

सब जग जीत लियो जिन नारी, सो साधन नागनिवत छारी ॥२॥

विषयन सब जगजिय वश कीने, ते साधन विषवत तज दीने ॥३॥

भुवि को राज चहत सब प्रानी, जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥४॥

शत्रु मित्र दुखसुख सम मानै, लाभ अलाभ बराबर जानै ॥५॥

छहोंकाय पीहरव्रत धारें, सबको आप समान निहारें ॥६॥

इह आरती पढ़ै जो गावै, 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै ॥७॥

**अर्थ :** दिगम्बर मुनिराज की आरती की जाती है। उन मुनिराज की जो आत्मकल्याण की प्रक्रिया में रत हैं लगे हुए हैं और धर्म से विरत लोगों का उद्धार करनेवालों जिस भौतिक धन-सम्पदा को सब चाहते हैं उस सम्पदा को, भौतिक साधनों को हे मुनिराज आपने कीचड़वत कीचड़ के समान तुच्छ समझकर त्याग दिया है। मुनिराज की आरती की जाती है। जिस काम-वासना की भावना ने सारे जगत् को वश में किया हुआ है उस कामवासना की भावना को हे मुनिराज आपने नागिन के समान (जैसे नागिन को छोड़ देते हैं) छोड़ दिया है। दूर कर दिया है। मुनिराज की आरती की जाती है। जिन विषय-भोगों ने सारे जग को वश में किया हुआ है उन सारे इन्द्रिय विषय-भोगों को हे मुनिराज! आपने विष के समान जानकर तज दिया है। उन मुनिराज की आरती की जाती है।

जगत के सब प्राणी राजा बनाना चाहते हैं परन्तु हे मुनिराज ! आपने उसे (राज-काज को) तृणवत् (तिनके के समान) तुच्छ समझकर त्याग दिया है। मुनिराज की आरती की जाती है।

आप सुख और दुःख को, मित्र और शत्रु को समान समझते हैं, लाभ और अलाभ (हानि) को एक-सा मानते हैं। मुनिराज को आरती की जाती है।

हे मुनिराज ! आपने छहों काय के जीवों की पीड़ा को दूर करने का व्रत लिया है और आप छोटे-बड़े सभी जीवों को अपने समान ही जीव समझते हैं अर्थात् सबके प्रति करुणा और साम्यभाव रखते हैं, मुनिराज की आरती की जाती है।

द्यानतरायजी कहते हैं इस आरती को जो भी पढ़ता है, गाता है, समझता है और मन में जीवन में धारण करता है वह स्वर्ग और मोक्ष के सुख को पाता है।



करौं आरती वर्द्धमान



करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान थान की ॥टेक॥

राग-बिना सब जग जन तारे, द्वेष बिना सब करम विदारे ॥१॥

शील-धुरंधर शिव-तियभोगी, मनवचकायन कहिये योगी ॥२॥

रतनत्रय निधि परिगह-हारी, ज्ञानसुधा भोजनव्रतधारी ॥३॥

लोक अलोक व्यापै निजमांहीं, सुखमय इंद्रिय सुखदुख नाहीं ॥४॥

पंचकल्याणकपूज्य विरागी, विमल दिगंबर अबंर त्यागी ॥५॥

गुनमनि-भूषण भूषित स्वामी, जगतउदास जगंतरस्वामी ॥६॥

कहै कहां लौँ तुम सब जानौ, 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौ ॥७॥

**अर्थ :** मैं भगवान वर्द्धमान को / तीर्थकर महावीर की आरती करता हूँ जिनका निर्वाणस्थान पावापुर है। मैं उन भगवान वर्द्धमान की आरती करता हूँ जिन्होंने रागरहित / राग-शून्य होकर मैत्री भावना और करुणा से जगत के प्राणियों को संसार से भव-भ्रमण से छूटने का उपाय बताया जिन्होंने द्वेषरहित होकर सब कर्मों का नाश किया। मैं उन भगवान वर्द्धमान की आरती करता हूँ जिन्होंने ब्रह्मचर्या में रत होकर शील का वढ़ता से पालन किया, जिन्होंने मन-वचन और काय की एकाग्रता कर योग धारण किया, गुप्ति का पालन किया और मोक्षरूपी लक्ष्मी का वरण किया। जिन्होंने सब परिग्रह को छोड़कर रत्नत्रय निधि (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित) को धारण किया, जिन्होंने ज्ञानरूपी अमृत का भोजन किया अर्थात् सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। जिन्होंने सर्वज्ञ होकर लोक और अलोक को अपने में ही दर्पणवत् धारण किया है। जिन्होंने इन्द्रिय-विषयों के सुख-दुःखों को छोड़कर अनन्त सुख को धारण किया है। उनकी गर्भ-जन्म तप ज्ञान और मोक्ष - ये पाँचों घटनाएँ स्थितियाँ जगत के प्राणियों का कल्याण करनेवाली हैं, इसलिए पूज्य हैं / वे विरागी हैं, रागद्वेषरहित हैं। उन्होंने सब वस्त्र, वैभव आदि सब परिग्रह छोड़कर दिशाएँ ही जिनका वस्त्र है ऐसा नग्न-दिगम्बर वेश धारण किया। वे सब गुणोंरूपी मणियों और आभूषणों से भूषित हैं। वे समस्त जगत से उदासीन हैं किन्तु अपने अभ्यन्तर जगत के अपनी आत्मा के स्वामी हैं। हे

वद्धमान भगवान ! हम कहाँ तक कहें ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सब-कुछ जानते हैं । भक्त द्यानतराय कह रहे हैं कि हमारी भी आपके समान हो जाने की भावना है, अभिलाषा है ।



## मंगल आरती आत्मराम

मंगल आरती आत्मराम, तनमंदिर मन उत्तम ठान ।

समरस जलचंदन आनंद, तंदुल तत्त्वस्वरूप अमंद ॥१॥

समयसारफूलन की माल, अनुभव-सुख नेवज भरि थाल ॥२॥

दीपकशान ध्यानकी धूप, निरमलभाव महाफलरूप ॥३॥

सुगुण भविकजन इकरँगलीन, निहचै नवधा भक्ति प्रवीन ॥४॥

धुनि उतसाह सु अनहद गान, परम समाधिनिरत परधान ॥५॥

बाहिज आत्मभाव बहावै, अंतर है परमात्म ध्यावै ॥६॥

साहब सेवकभेद मिटाय, 'द्यानत' एकमेक हो जाय ॥७॥

**अर्थ :** शुद्ध आत्मा की, निज आत्मा की आरती मंगलकारी है/मंगलदायी है। (इस तन में) आत्मा के निवास करने के कारण यह तन एक मंदिर के समान (पूज्य है पवित्र) है, और मन उसके ठहरने का स्थान है। उसको (आत्मा की) पूजा के लिए समतारूपी भावना ही आनन्दकारी जल व चन्दन है। उसका तात्त्विक स्वरूप ही कभी भी मन्द न होनेवाला

अक्षत/तन्दुल है। आत्मगुणों में रति ही उसकी पूजा के लिए पुष्पों की माल है और आत्मगुणों के अनुभव से उत्पन्न सुख ही नैवेद्य भरे थाल हैं। उसकी पूजा के लिए ज्ञान ही दीपक है और मन-वचन-काय की एकाग्रतारूप ध्यान ही धूप है। भावों का निर्मल हो जाना ही उसकी पूजा का परिणाम है फल है। भव्यजन उस आत्मा के गुणगान के रंग में लीन हो जाते हैं, रंग जाते हैं और प्रवीण / कुशल / ज्ञानीजन निश्चय से उसकी नवधा भक्ति में लीन हो जाते हैं। वे अन्तर से निःसृत अनहद ध्वनि में उत्साहित होकर / निमग्न होकर परमसमाधि में लीन हो जाते हैं। फिर वे बाह्य जगत में करुणा से ओत-प्रोत होकर आत्मा के स्वभाव को प्रकाशित करते हैं, प्रसारित करते हैं (समझाते हैं) और अन्तःकरण में अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को परमात्मस्वरूप को ध्याते हैं। ऐसा चिन्तन पूज्य-पूजक भाव का मिटा देता है। द्यानतरायजी कहते हैं कि आत्मा के गुणों की वन्दना से आत्मा परमात्मा हो जाता है।



## मंगल आरती कीजे भोर



राग : भैरो, रघुपति राघव राजाराम

मंगल आरती कीजे भोर, विघ्नहरन सुखकरन किरोर ।  
अरहंत सिद्ध सूरि उवझाय, साधु नाम जपिये सुखदाय ॥टेक ॥

नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वासुपूज्य चम्पापुर धार ।  
पावापुर महावीर मुनीश, गिरि कैलास नमों आदीश ॥१॥

शिखर समेद जिनेश्वर बीस, बंदों सिद्धभूमि निशिदीस ।  
प्रतिमा स्वर्ग मर्त्य पाताल, पूजों कृत्य अकृत्य त्रिकाल ॥२॥

पंच कल्याणक काल नमामि, परम उदारिक तन गुणधाम ।  
केवलज्ञान आत्माराम, यह षटविधि मंगल अभिराम ॥३॥

मंगल तीर्थकर चौबीस, मंगल सीमंधर जिन बीस ।

मंगल श्रीजिनवचन स्साल, मंगल रत्नत्रय गुनमाल ॥४॥

मंगल दशलक्षण जिनधर्म, मंगल सोलहकारन पर्म ।  
मंगल बारहभावन सार, मंगल संघ चारि परकार ॥५॥

मंगल पूजा श्रीजिनराज, मंगल शास्त्र पढ़े हितकाज ।  
मंगल सतसंगति समुदाय, मंगल सामायिक मन लाय ॥६॥

मंगल दान शील तप भाव, मंगल मुक्ति वधू को चाव ।  
'द्यानत' मंगल आठौँ जाम, मंगल महा मुक्ति जिनस्वाम ॥७॥

**अर्थ :** हे भव्य ! प्रातःकाल सर्वमंगलकारी आरती कीजिए, वह सब विघ्नों को हरनेवाली है और करोड़ों सुख करनेवाली है। सदैव अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु का सुखकारी, सुख देनेवाले नाम का जाप कीजिए।

तीर्थकर नेमिनाथ गिरिनार पर्वत से, चम्पापुर से तीर्थकर वासुपूज्य, पावापुर से मुनिनाथ श्री महावीर और कैलाश पर्वत से भगवान आदीश्वर मोक्ष गये हैं अतः इन सिद्धक्षेत्रों को नमन करो।

सम्मेद शिखर से बीस जिनेश्वर मोक्ष गए हैं। इन सिद्धभूमियों की सदैव, दिन-रात वंदना करो। स्वर्ग, मध्यलोक-लोक व अधोलोक में जितनी भी कृतिक अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं उनकी तीनों काल अर्थात् सदैव पूजा करो।

तीर्थकरों के पाँचों कल्याणकों के समय को नमन करो। केवलज्ञानमय आत्मा को नमन करो-ये छहों मंगलकारी हैं, उद्धार करनेवाले हैं, गुणों के धाम हैं।

चौबीस तीर्थकर मंगल हैं। विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर आदि बीस तीर्थकर मंगल हैं। उनकी दिव्यध्वनि मंगल है। रत्नत्रय की गुणमाल मंगल है। दशलक्षणधर्म व सौलहकारण भावनाएँ मंगल हैं। बारह भावनाएँ व चार प्रकार के संघ मंगल हैं।

श्री जिनराज की पूजा मंगल है। शास्त्रों का स्वाध्याय मंगल है। सज्जन पुरुषों का समुदाय और उनकी संगति मंगल है। सामायिक में मन लगाना मंगल है।

दान, शील, तप की भावना मंगल है। मोक्ष की कामना मंगल है। द्यानतराय कहते हैं कि इनका आठों प्रहर स्मरण मंगलकारी है। महान, मुक्ति के स्वामी, मोक्ष के स्वामी जिनेन्द्र मंगलकारी हैं।





# आरती श्रीजिनराज तिहारी

आरति श्रीजिनराज तिहारी, करमदलन संतन हितकारी ॥१॥  
 सुर-नर-असुर करत तुम सेवा । तुम ही सब देवन के देवा ॥२॥  
 पंच-महाव्रत दुद्धर धारे । राग-रोष परिणाम विदारे ॥३॥  
 भव-भय भीत शरन जे आये । ते परमारथ-पंथ लगाये ॥४॥  
 जो तुम नाथ जपै मन माहीं । जनम-मरन भय ताको नाहीं ॥५॥  
 समवसरन संपूरन शोभा । जीते क्रोध-मान-छल-लोभा ॥६॥  
 तुम गुण हम कैसे करि गावैं । गणधर कहत पार नहिं पावै ॥७॥  
 करुणासागर करुणा कीजे । 'द्यानत' सेवक को सुख दीजे ॥८॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र ! हम आपकी आरती करते हैं। आपकी आरती हमारे कर्मों के समूह को घातनेवाली है नष्ट करनेवाली है, यह सज्जनों का हित करनेवाली है। सज्जनों के लिए हितकारी है।

हे जिनेन्द्र ! सुर-असुर-नर सब आपकी वन्दना करते हैं, आप सब देवों के देव हैं, सब देवों द्वारा पूज्य हैं।

हे जिनेन्द्र ! आपने पाँचों महाव्रतों को धारणकर, अत्यन्त दृढ़ता से उनका पालनकर, उनकी साधनाकर राग और द्वेष के परिणामों/भावों को भग्न कर दिया, छिन्न-भिन्न कर दिया।

हे जिनेन्द्र ! जो संसार के भव - भ्रमण से भयभीत होकर आपकी शरण में आये आपने उन्हें परमार्थ का मुक्ति का मार्ग बताकर उसकी ओर उन्मुख/अग्रसर किया।

हे जिनेन्द्र ! जो आपको अपने मन में जपता है/स्मरण करता है उसे फिर जन्म और मरण का भय नहीं होता। अर्थात् उनका जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है।

हे जिनेन्द्र ! आपका समवशरण सम्पूर्ण/अत्यन्त शोभायुक्त है। उस समवशरण में विराजित आपके दर्शनमात्र से क्रोध-मान-माया और लोभ आदि कषायों पर विजय प्राप्त होती है।

हे जिनेन्द्र ! हम आपके गुणों की स्तुति कैसे करके गावें? गणधर भी आपके गुणों का पार नहीं पा सके इसलिए हम तो आपका गुणगान, आपकी स्तुति करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

हे करुणासागर, अब हम पर भी करुणा कीजिए, मुझको सुख प्रदान कीजिए।



# ऐसो सुमिरन कर मेरे भाई

ऐसो सुमिरन कर मेरे भाई ।  
पवन थंभै मन कितहूँ न जाई ।  
परमेसुर सौं साँच रहीजै,  
लोक-रंजना को तज दीजै ॥टेक ॥

जप अरु नेम दोउ विधि धारै,  
आसन प्राणायाम सँभारै ।  
प्रत्याहार धारना कौजै,  
ध्यान समाधि महारस पीजै ॥एसो...१॥

सो तप तपो बहुरि नहिं तपना,  
सो जप जपो बहुरि नहिं जपना ।  
सो व्रत धरों बहुरि नहिं धरना,  
ऐसो मरो बहुरि नहिं मरना ॥एसो...२॥

पंच परावर्तन लखि लीजै,  
पाँचों इन्द्री को न पतीजै ।



'द्यानत' पाँचों लच्छि लहीजै,  
पंच-परम-गुरु शरन गहीजै ॥एसो...३॥



## कर कर आत्महित रे



तर्ज़ : मन तरपत हरि दर्शन

कर कर आत्महित रे प्रानी  
जिन परिनामनि बंध होत है,  
सो परनति तज दुखदानी ॥टेक ॥

कौन पुरुष तुम कहाँ रहत हौ,  
किहिकी संगति रति मानी ।  
ये परजाय प्रगट पुद्गलमय,  
ते तैं क्यों अपनी जानी ॥१॥

चेतनजोति झलक तुझमाहीं,  
अनुपम सो तैं विसरानी ।  
जाकी पटतर लगत आन नहिं,  
दीप रतन शशि सूरानी ॥२॥

आपमें आप लखो अपनो पद,  
'द्यानत' करि तन-मन-वानी ।  
परमेश्वरपद आप पाइये,  
यौं भाषैं केवलज्ञानी ॥३॥

**अर्थ :** अरे भले प्राणी, अपनी आत्मा का हित कर ले। जिन कषाययुक्त परिणामों के कारण संक्लेश होकर कर्मों का बंधन होता है वे सब दुःखदायी हैं, उनको छोड़ दो।

हे प्राणी ! जरा विचार करो - तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? किसकी संगति तुमको रुचिकर लग रही है? किसका साथ तुमको भा रहा है? ये पर्यायें जो प्रकट में हैं वे सब स्पष्टतः तो पुद्गलजन्य हैं, तू चेतन उन्हें क्योंकर अपना मान रहा है?

हे प्राणी ! तुझमें चैतन्य का अनुपम प्रकाश / झलक दिखाई देता है, उसे तूने विस्मृत कर दिया, भुला दिया। चन्द्र, सूर्य, रत्नदीप या अन्य कोई भी उस चेतन-प्रकाश की समता / तुलना करने में समर्थ नहीं।

द्यानतराय कहते हैं कि हे प्राणी! मन, वचन और काय से अपने आपका स्वरूप-चिन्तन करो तो तुमको भी कैवल्य की उपलब्धि हो जायेगी। ऐसा केवलज्ञानी देवों ने स्वयं ने बताया है, कथन किया है।



## कर मन निज आतम चिंतौन



कर मन! निज-आतम-चिंतौन ...  
जिहि बिनु जीव भम्रो जग-जौन ॥टेक ॥

आतममगन परम जे साधि, ते ही त्यागत करम उपाधि ॥१॥

गहि व्रत शील करत तन शोख, ज्ञान बिना नहिं पावत मोख ॥२॥

जिहिते पद अरहन्त नरेश, राम काम हरि इंद फणेश ॥३॥

मनवांछित फल जिहि होय, जिहिकी पटतर अवर न कोय ॥४॥

तिहुँ लोक तिहुँकाल-मँझार, वरन्यो आत्म अनुभव सार ॥५॥

देव धरम गुरु अनुभव ज्ञान, मुक्ति नीव पहिली सोपान ॥६॥

सो जानैं छिन है शिवराय, 'ध्यानत' सो गहि मन वच काय ॥७॥

**अर्थ :** ए मेरे मन ! तू अपनी आत्मा का चितवन कर, इसके बिना जीव सारे जगत की चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है।

जो आत्मस्वरूप के चिन्तन में मग्न रह कर परम साधना करते हैं, वे ही कर्मों की उपाधि को छोड़ पाते हैं।

जो व्रत-शील आदि का पालन करते हैं, वे इस देह को कृश कर देते हैं, सुखा देते हैं; परन्तु आत्म-ज्ञान के बिना उनको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

ज्ञान से ही राजपद, राम, कामदेव, विष्णु, इंद्र, धरणेद्र का पद पाता है। ज्ञान से ही अरहंत पद प्राप्त होता है।

इस ज्ञान से सब मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण होती हैं जिसकी समता कोई अन्य नहीं कर सकता।

तीनों लोक, तीनों काल में साररूप यदि कुछ है तो वह मात्र आत्मा का अनुभव ही है। देव, धर्म, गुरु के गुणों का अनुभव-ज्ञान ही मोक्ष की प्रथम सीढ़ी है।

ध्यानतराय कहते हैं कि मन, वचन और काय से जिसको आत्म-श्रद्धा हो अर्थात् जो आत्मा को जान गया वह ही मोक्ष पद पाता है।



कर मन वीतराग को ध्यान



कर मन! वीतराग को ध्यान ...  
जिन जिनराय जिनिंद जगतपति, जगतारन जगजान ॥टेक॥

परमात्म परमेस परमगुरु, परमानंद प्रधान।  
अलख अनादि अनन्त अनुपम, अजर अमर अमलान ॥  
कर मन! वीतराग को ध्यान ॥१॥

निरंकार अधिकार निरंजन, नित निरमल निरमान ।  
जती व्रती मुन ऋषी सुखी प्रभु, नाथ धनी गुन ज्ञान ॥  
कर मन! वीतराग को ध्यान ॥२॥

सिव सरवज्ञ सिरोमणि साहब, साँई सन्त सुजान ।  
'धानत' यह गुन नाममालिका, पहिर हिये सुखदान ॥  
कर मन! वीतराग को ध्यान ॥३॥

**अर्थ :** हे मेरे मन ! तू वीतराग प्रभु का ध्यान कर। अपने आप पर विजय पानेवाले जो जिन हैं, उनमें जो शिरोमणि हैं, जिनेन्द्र हैं, जगत के स्वामी हैं, उनको सारा जगत जानता है कि ये ही जग से तारनेवाले हैं।

वे वीतराग ही परम आत्मा हैं, परम ईश्वर हैं, परम गुरु हैं, परमानन्द के देनेवालों में प्रधान हैं, मुख्य हैं । वे अदृष्ट हैं, अनादि हैं, अनन्त हैं, उपमारहित. अनुपम हैं, कभी भी मलिन न होनेवाले प्रसन्नमूर्ति हैं ।

उनका कोई पुङ्गल आकार नहीं है, वे निराकार हैं, विकाररहित हैं, दोषरहित निरंजन हैं, मानरहित हैं । वे यति, व्रती, मुनि, ऋषि व आर्नंदितजनों के प्रभु हैं, ज्ञानगुण के धनी हैं, स्वामी हैं ।

वे वीतराग शिव (मोक्ष) हैं, सर्वज्ञ हैं, श्रेष्ठ स्वामी हैं, सन्तों द्वारा जाने गए हैं । द्यानतराय कहते हैं कि जो उनके नाम की, गुणों की यह माला हृदय में धारण करता है, उसे यह सुख प्रदान करती है ।





## कर रे तू आतम हित

कर रे ! कर रे ! कर रे ! तू आतम हित कर रे ।  
काल अनंत गयो जग भमतैं, भव भव के दुःख हर रे ॥टेक॥

लाख कोटि भव तपस्या करतैं, जीतो कर्म तेरी जर रे ।  
स्वास - उस्वास माहिं सो नासै, जब अनुभव चित धर रे ॥१॥

काहे कष्ट सहै वन माहीं, राग - दोष परिहर रे ।  
काज होय समभाव बिना नहिं, भावो पचि - पचि मर रे ॥२॥

लाख सीख की सीख एक यह, आतम-निज पर-पर रे ।  
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे ॥३॥



## कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी



राग : आसावरी जोगिया, कवै निर्ग्रथ स्वरूप धरूणा

कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी ।  
देव शास्त्र गुरु सम्यक सरधा, तीनों जिन तैं धारी ॥टेक॥

तीन बरस वसु मास पंद्र दिन, चौथा काल रहा था ।  
परम पूज्य महावीर स्वामी तब, शिवपुर राज लहा था ॥१॥

केवलि तीन, पाँच श्रुतकेवलि, पीछे गुरुनि विचारी ।  
अंग पूर्व अब न हैं, न रहेंगे, बात लिखी थिरकारी ॥२॥

भविहित कारन धर्म विचारन, आचारजों बनाये ।  
बहुतानि तिनकी टीका कीनी, अद्भुत अरथ समाये ॥३॥

केवलि-श्रुतकेवलि यहँ नाहीं, मुनिगन प्रगट न सूझे ।  
दोऊ केवलि आज यही हैं, इनही को मुनि बूझे ॥४॥

बुद्धि प्रगट करि आप बाँचिये, पूजा वंदन कीजे ।  
दरब खरचि लिखवाय सुधाय, सुपंडित जन को दीजे ॥५॥

पढ़ते सुनते चरचा करते, हैं संदेह जु कोई ।  
आगम माफिक ठीक करै है, देख्यो केवलि सोई ॥६॥

तुच्छ बुद्धि कछु अरथ जानिकैं, मनसों विंग उठाये ।  
अवैधिज्ञानी श्रुतज्ञानी मनो, सीमंधर मिलि आये ॥७॥

ये तो आचारज हैं साँचे, ये आचारज झूठे ।

तिनिके ग्रन्थ पढ़ें नित बन्दै, सरधा ग्रन्थ अपूर्ठे ॥८॥

साँच झूठ तुम क्यों कर जानो, झूठ जान क्यों पूजो ।  
खोट निकाल शुद्ध कर राखो, अवर बनाओ दूजो ॥९॥

कौन सहामी बात चलावै, पूछैं आनमती तो ।  
ग्रन्थ लिख्यो तुम क्यों नहिं मानो, जवाब कहा कहि जीतो ॥१०॥

जैनी जैनग्रन्थ के निंदक, हुंडासर्पिनी जोरा ।  
'द्यानत' आप जानि चुप रहिये, जग में जीवन थोरा ॥११॥

**अर्थ :** कलिकाल में अर्थात् इस पंचमकाल में ग्रंथ ही सब प्रकार से उपकार करनेवाले हैं। ये ग्रंथ देव, शास्त्र व गुरु में सम्यक् श्रद्धा धारण करानेवाले हैं।

चतुर्थ काल को समाप्ति में जब तीन वर्ष आठ माह और पंद्रह दिन शेष रहे थे तब भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था।

भगवान महावीर के बाद तीन केवली और पाँच श्रुत केवली हुए, उनके पश्चात् गरुओं के विचार में आया कि अब भगवान के उपदेश जो बारह अंगों और चौदह पूर्वों के रूप में हैं उन अंगों-पूर्वों का ज्ञान सुरक्षित नहीं रह पायेगा, यह बात निश्चित है।

तब भव्यजनों के लाभार्थ तथा धर्म के प्रसार व रक्षा के लिए आचार्यों ने ग्रन्थों की रचना की। बहुत से ग्रंथों की टीकाएँ भी की जिसमें विषय का अद्भुत विश्लेषण करते हुए सार का समावेश किया गया।

अब केवली व श्रुत केवली इस क्षेत्र में नहीं हैं तथा मुनियों के ज्ञान में स्पष्ट झलकना भी समाप्त होता जा रहा है, अब तो ये ग्रंथ और टीकाएँ ही केवलि व श्रुत केवलि हैं, मुनिजन भी इन्हीं को ज्ञान के आधार मानते हैं।

अब आप ही स्वयं अध्ययन कीजिए, पूजा व वंदना करिए। द्रव्य व्यय करके ग्रन्थों की अमृतरूप वाणी को लिखवाइए, प्रकाशित कीजिए। पण्डितजनों को अर्थात् विद्वानों को अध्ययन, मनन, विश्लेषण व वाचनार्थ दीजिए। पण्डितजनों का बहुमान कीजिए, सम्मान कीजिए। पढ़ते समय व उस पर चर्चा करते हुए यदि कोई शंका या संदेह हो तो उसे आगम के अनुसार जिस प्रकार केवली ने अपने ज्ञान से देखा है उसी प्रकार ठीक व सही कीजिए।

अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार सम्यक् व व्यवस्थित अर्थ लगाकर मन से गूढ अर्थों को समझने की, उनका निराकरण करने की चेष्टा करें। श्रुत का ज्ञान शंकासमाधान के लिए औषधि का ज्ञान होने के समान है। शंका-समाधान के लिए ही आचार्य कुंदकुंद सीमधर भगवान के समवशरण में जाकर आये थे।

कौन आचार्य सच्चे हैं और कौन मिथ्या हैं, तथा किनके ग्रन्थों को नित्य पढ़ना व आदर करना चाहिए और किनके ग्रंथ इसके सर्वथा विपरीत हैं व सम्यक्त्व का पोषण नहीं करते हैं / यह सत्य है और यह झूठ है, यदि तुम किसी प्रकार जान पाओ तो तुम झूठ का प्रतिपादन करनेवाले ग्रंथ को किसलिए पूजोगे? उन ग्रन्थों में जिन-जिन दोषों का, त्रुटियों का समावेश है उसे हटाकर, निकालकर शुद्ध करके रखो तथा उसी के अनुसार / अनुरूप अन्य ग्रन्थों का लेखन व प्रसारण करो।

कोई अन्यमती अपने मिथ्या कथन की पुष्टि करे या उसकी संपुष्टि हेतु चर्चा या तर्क करे तो उसे कहो कि ग्रंथ में जो लिखा है उसे क्यों नहीं माना जाए? अर्थात् ग्रंथ को आगम प्रमाण मानकर उसे समझाओ, प्रत्युत्तर दो व अपना पक्षसमर्थन करो।

इस हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से जैनों व उनके ग्रन्थों के निंदक बहुत लोग होंगे। यह जानकर द्यानतराय कहते हैं कि आप मौन रहिए, निरर्थक विवादों में मत पड़िए; क्योंकि यह जीवन सीमित व थोड़ा है, उसे विवाद में समाप्त मत कीजिए।



## कहत सुगुरु करि सुहित



राग : कल्याण

कहत सुगुरु करि सुहित भविकजन ! ॥टेक ॥  
पुद्गल अधरम धरम गगन जम,  
सब जड़ मम नहिं यह सुमरहु मन ॥

नर पशु नरक अमर पर पद लखि,  
दरब करम तन करम पृथक भन ।  
तुम पद अमल अचल विकलप बिन,  
अजर अमर शिव अभय अखय गन ॥१॥

त्रिभुवनपतिपद तुम पटतर नहीं,  
तुम पद अतुल न तुल रविशशिगन ।  
वचन कहन मन गहन शकति नहिं,

## सुरत गमन निज जिन गम परनन ॥२॥

इह विधि बँधत खुलत इह विधि जिय,  
इन विकलपमहिं, शिवपद सधत न ।  
निरविकलप अनुभव मन सिधि करि,  
करम सघन वनदहन दहन-कन ॥३॥

**अर्थ :** सत्तुरु भव्यजनों के हित के लिए उपदेश देते हैं, संबोधित करते हैं कि ए मेरे मन ! पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये सब अजीव हैं, जड़ हैं ! ये मेरे नहीं हैं क्योंकि मेरा आत्मा जड़ नहीं है, चैतन्य है, ऐसा सदैव स्मरण रखो।

देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यच ये चारों गतियाँ 'पर' रूप हैं, द्रव्यकर्म व नोकर्म शरीर से भिन्न यह आत्मा निर्मल, अचल, अजर, अमर, निर्विकल्प, शिव, अभय, अक्षय आदि गुणों का समूह है। आपके समान तीन लोक का नाथ अन्य कोई नहीं है ।

आपके तेज की समता सूर्य और चन्द्रमा के समूह भी नहीं कर सकते। आपका ध्यान आते ही निज में निज की जो परिणति होती है, उसे वचन से कहने व मन से ग्रहण करने की सामर्थ्य व शक्ति नहीं है।

संसार में इस प्रकार कर्म बंध होते हैं और इस प्रकार निर्जरा होती है, इस प्रकार कर्म झड़ते हैं - इन विकल्पों के रहते मोक्षमार्ग की साधना नहीं होती। इसलिए निर्विकल्प होकर आत्मचिंतन करने पर ही कर्मरूपी सघन वन के कणकण को दहनकर नष्ट किया जा सकता है।



## कहिवे को मन सूरमा



राग : बिलावल, मुझको अपने गले लगा तो

कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा ।  
विषय छुड़ावै औरपै, आपन अति माचा ॥टेक ॥

मिश्री मिश्री के कहैं, मुँह होय न मीठा ।  
नीम कहैं मुख कटु हुआ, कहुँ सुना न दीठा ॥  
कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा ॥१॥

कहनेवाले बहुत हैं, करने को कोई।  
कथनी लोक-रिज्ञावनी, करनी हित होई ॥  
कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा ॥२॥

कोड़ि जनम कथनी कथै, करनी बिनु दुखिया।  
कथनी बिनु करनी कर, 'द्यानत' सो सुखिया ॥  
कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा ॥३॥

**अर्थ :** अरे मन! तू कहने के लिए तो शूरवीर बनता है पर क्रिया करने के लिए अत्यन्त कमजोर है। अन्य लोगों को तो इन्द्रिय-विषय छोड़ने का उपदेश देता है, परन्तु तू स्वयं उनमें रच-पच रहा है, बहुत रत हो रहा है।

मिश्री-मिश्री कहनेभर से मुँह मीठा नहीं होता और न नीम-नीम कहने से मुँह कड़वा होता है। ऐसा होते हुए न कहीं सुना और न ही कहीं देखा।

कहनेवाले तो बहुत है, परन्तु करने के लिए कोई विरले ही होते हैं। कहना मात्र तो लोक को रिज्ञाने के लिए होता है, जबकि हित तो उसके करने से होता है।

करोड़ों जन्म तक कहता तो रहा, पर किया कुछ नहीं, इसलिए दुःखी हुआ। धानतराय कहते हैं कि जो शक्ति मात्र कहने में अर्थात् बातें करने में व्यय की जाती है उस शक्ति को जो कोई क्रिया करने में व्यय करता है वह ही सुख पाता है।



## काया तेरी दुख की ढेरी



भाई काया तेरी दुख की ढेरी, बिखरत सोच कहा है ।  
तेरे पास सासतौ तेरो, ज्ञानशरीर महा है ॥टेक ॥

ज्यों जल अति शीतल है काचौ, भाजन दाह दहा है ।  
त्यों ज्ञानी सुखशान्त काल का, दुख समभाव सहा है ॥  
तेरे पास सासतौ तेरो, ज्ञानशरीर महा है ॥१॥

बोदे उतरैं नये पहिरतैं, कौंने खेद गहा है ।  
जप तप फल परलोक लहैं जे, मरकै वीर कहा है ॥  
तेरे पास सासतौ तेरो, ज्ञानशरीर महा है ॥२॥

'द्यानत' अन्तसमाधि चहैं मुनि, भागौं दाव लहा है ।  
बहु तज मरण जनम दुख पावक, सुमरन धार बहा है ॥  
तेरे पास सासतौ तेरो, ज्ञानशरीर महा है ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई! यह काया तो दुख का ढेर है। इसके बिखरने का तू क्या विचार करता है, सोच करता है! तेरे पास तो तेरा शाश्वत ज्ञान-शरीर है जो महान है।

जो जल शीतल है, बहुत ठंडा है, वह भी बरतन के गरम होने पर उसमें पड़ा होने के कारण गरम हो जाता है, उबलता है। इसीप्रकार ज्ञानी सुख में शान्ति का अनुभव करता हुआ, दुःख में भी समभाव-परणति करता रहता है।

पुराने या खराब होने पर वे कपड़े उतारकर नए कपड़े पहने जाते हैं, उसमें खेद की, दुख की क्या बात है? जप-तप का फल परलोक में मिलता है। यहाँ तो मरकर वह वीर कहलाता है।

द्यानतराय कहते हैं कि जो मुनि अन्त समय में अपना समाधिमरण चाहता है, उसे भाग्य से यह एक अवसर मिला है। बहुत जन्म-मरण के दुःखों की अग्नि को छोड़कर, उसके यानी आत्मा के स्मरण को धारा में बहता चल, भक्ति में मगन हो जा।



# कारज एक ब्रह्महीसेती

कारज एक ब्रह्महीसेती...

अंग संग नहिं बहिरभूत सब, धन दारा सामग्री तेती ॥टेक॥

सोल सुरग नव ग्रैविक में दुख, सुखित सात में ततका वेती ।  
जा शिधकारन मुनिगन ध्यावे, सो तेरे घट आनँदखेती ॥  
कारज एक ब्रह्महीसेती... ॥१॥

दान शील जप तप व्रत पूजा, अफल ज्ञान बिन किरिया केती ।  
पंच दरब तोतैं नित न्यारे, न्यारी रागदोष विधि जेती ॥  
कारज एक ब्रह्महीसेती... ॥२॥

तू अविनाशी जगपरकासी, 'धानत' भासी सुकलावेती ।  
तजौ लाल! मन के विकलप सब, अनुभव-मग्न सुविद्या एती ॥  
कारज एक ब्रह्महीसेती... ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव! निज ब्रह्म में लीन रहना, मग्न रहना, यह ही तो एक करणीय है, कार्य है, परिणाम है । यह देह, धन, स्त्री और परिग्रह की सामग्री ये सब बाह्य हैं ।

सौलहवें स्वर्ग व नव ग्रैवियक में भी वह दुःखी है। सुखी तो सात तत्वों को जाननेवाला है, जिस सुख प्राप्ति के निमित्त मुनिगण भी जिसकी स्तुति-चिन्तन करते हैं वह आनन्द का क्षेत्र तेरे अपने अन्तर में ही हैं।

बिना ज्ञान के शील, जप, तप, व्रत, पूजा आदि की क्रियाएँ भी कोई फल देनेवाली नहीं हैं । पाँचों द्रव्य भी तुझसे भिन्न हैं और राग-द्वेष की विधि भी तुझ से अलग है ।

द्यानतराय कहते हैं कि तू अविनाशी हैं, जगत-प्रकाशी है, शुक्ल ध्यान में भाने योग्य है। इसलिए हे भव्य ! तू मन के सब विकल्प छोड़कर अपने आत्मा के अनुभव की सुविधा में मगन हो जा ।



## काहे को सोचत अति भारी



राग : मल्हार

काहेको सोचत अति भारी, रे मन!  
पूरब करमन की थित बाँधी, सो तो टरत न टारी ॥टेक॥

सब दरवनिकी तीन कालकी, विधि न्यारीकी न्यारी ।  
केवलज्ञान विषें प्रतिभासी, सो सो है है सारी ॥काहे १॥

सोच किये बहु बंध बढ़त है, उपजत है दुख ख्वारी ।  
चिंता चिता समान बखानी, बुद्धि करत है कारी ॥काहे २॥

रोग सोग उपजत चिंतातैं, कहौ कौन गुनवारी ।  
'द्यानत' अनुभव करि शिव पहुँचे, जिन चिंता सब जारी ॥काहे ३॥

**अर्थ :** अरे मन ! तू क्यों-किसलिए इतना सोचता है !

पूर्व में किए हुए कर्मों का स्थिति बंध हो चुका है, वह किसी भी प्रकार से टाला नहीं जा सकता अर्थात् वह सब तो भोगना ही है। तीनों काल भूत, भविष्यत, वर्तमान में सभी द्रव्यों की अपनी-अपनी अलग-अलग परिणति है। वे सब परिणतियाँ केवल ज्ञान में प्रत्यक्ष भासती हैं, दीखती हैं, वे सब वैसी ही होंगी।

जितना-जितना सोच विचार होता है, उतना संक्लेश बढ़ता है। उससे कर्मबंध होता है, तो दुःख ही बढ़ता है। चिन्ता चिता के

समान कही जाती है, उससे बुद्धि जल जाती हैं, नष्ट हो जाती है, काली हो जाती है।

चिन्ता के कारण रोग व शोक दोनों ही बढ़ते हैं। उनसे किसी भी प्रकार गुणों की वृद्धि नहीं होती। यानतराय कहते हैं कि जिसने इस प्रकार जान लिया, उन्होंने अनुभव किया और मोक्ष प्राप्त किया, उन्होंने चिन्ताओं को ही समूल नष्ट कर दिया।



## किसकी भगति किये हित



किसकी भगति किये हित होहि, झूठ बात ना भावै मोहि ॥टेक ॥

राम भजो दूजो जग नाहिं, आयो जोनीसंकटमाहिं ॥१॥

कृष्ण भजो किन तीनों काल, निरदै है मार्यो शिशुपाल ॥२॥

ब्रह्मा भजो सर्वजग-व्याप, खोई सृष्टि सह्यो दुख आप ॥३॥

रुद्र भजो सवतैं सिरदार, सब जीवनि को मारनहार ॥४॥

एक रूप को कीजे ध्यान, चिन्ता करै उसे हैरान ॥५॥

भजो गनेश सदा रे! भाय, सो गजमुख परगट पशुकाय ॥६॥

इन्द्र भजो निवसै सुरलोय, सो भी मरै अमर नहिं होय ॥७॥

देवी भजो भजैं सब लोग, बकरे मारैं महा अजोग ॥८॥

भजो शीतला थिर मन लाय, देखो! डॉयनि लड़के खाय ॥९॥

किनहिं न जान्यो अपरंपार, झूठे सरब भगत संसार ॥१०॥

'द्यानत' नाम भजो सुखमूल, सो प्रभु कहां किधौं नभ-फूल ॥११॥

**अर्थ :** अरे मन ! किसकी भक्ति करें कि जिससे हित होवे? झूठी बात मुझे अच्छी नहीं लगती।

कहते हैं कि राम के अलावा इस दुनिया में दूसरा कोई भजनीय नहीं है, पर उन्होंने तो स्वयं ने ही इस भव में संकट सहे हैं । भव-भ्रमण के संकट सहे हैं ।

कहते हैं कृष्ण को तीनों काल भजो, पर उनने भी निर्दयता से, दयाहीन होकर शिशुपाल का वध किया था।

यदि ब्रह्मा को भजते हैं जो सब जगह व्याप्त बताया जाता है, तो संसार को खोकर वह आप स्वयं दुःखी हो रहा है।

शिव को भजते हैं, जो सब में सर्वोपरि माना जाता है तो वह सब जीवों का सृष्टि का / संहार करनेवाला है ।

किस एक रूप का ध्यान करें, यह ही दुविधा-चिन्ता हैरान करती है।

गणेश को भजें तो वह हाथी का मुख लगाकर पशु काय में प्रगट है।

इन्द्र को भजते हैं जो सुरलोक में निवास करता है तो वह भी मृत्यु को प्राप्त होता है, वह भी अमर नहीं है ।

देवी को सब लोग भजते हैं, यदि उसको भजते हैं तो उसके बकरों की बलि चढ़ती है जो कि महा अयोग्य कृत्य है।

शीतला को मन से पूजते हैं तो वह तो पुत्रों को रोगप्रस्त कर मार डालती है।

इसप्रकार संसार जिनका भक्त है वह कोई भी पूर्ण/अपार/असीम नहीं पाया गया।

द्यानतराय कहते हैं कि केवल आत्मा को भजो जो कि सुख का आधार है / वह ही एक प्रभु है, बाकी सब आकाश-पुष्प की भाँति ही हैं।





# काहे क्रोध करे

रे जिय! काहे क्रोध करे ॥टेक॥  
देखु के अविवेक प्रानी, क्यों न विवेक धरै ॥१॥

जिसे जैसी उदय आवै, सो क्रिया आचरै ।  
सहज तू अपनो बिगारै, जाय दुर्गम परै ॥२॥

होय संगति गुन सधनि को, सरब जग छच्वरै ।  
तुम भले कर भले सबको, बुरे लखि मति जरै ॥३॥

वैद्य परविष हर सकत नहीं, आप भखि को मरै ।  
बह कषाय निगोद-वासा, 'द्यानत' क्षमा धरै ॥४॥

**अर्थ :** अरे जिया, तू क्रोध क्यों करता है? कोई यदि क्रोध करता है तो तू उस अविवेकी को देखकर भी स्वयं विवेक क्यों धारण नहीं करता ?

अरे भाई ! जिस कर्म का उदय आता है, उसी के अनुरूप उसकी क्रिया हो जाती है। कर्म प्रवाह में बहता हुआ सहजता से अपनी भी हानि कर लेता है और दुर्गति में जाकर पड़ता है।

गुणों की संगति सबको सुलभ हो, प्राप्त हो, सारा जगत यह ही चाहता है और कहता भी है। इसलिए तु स्वयं भला बन और सबका भला कर। दूसरे के बुरे कार्यों को देखकर जलन मत कर।

यदि कोई वैद्य दूसरे के जहर का हरण नहीं कर सकता तो वह स्वयं उसका सेवन करके अपना प्राणान्त क्यों करेगा? अरे कषाय-बहुलता के कारण यह जीव निगोद में जाकर जन्म लेता है। द्यानतरायजी कहते हैं कि क्षमा आदि गुणों धारण करो और तिर जाओ।





## क्रोध कषाय न मैं

क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ।  
गरमी व्यापै देह में, गुनसमूह जलि जाय हो ॥टेक॥

गारी दै मार्यो नहीं, मारि कियो नहिं दोय हो ।  
दो करि समता ना हरी, या सम मीत न कोय हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥१॥

नासै अपने पुन्य को, काटै मेरो पाप हो ।  
ता प्रीतमसों रूसिकै, कौन सहै सन्ताप हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥२॥

हम खोटे खोटे कहैं, सांचेसों न बिगार हो ।  
गुन लखि निन्दा जो करै, क्या लाबरसों रार हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥३॥

जो दुरजन दुख दै नहीं, छिमा न है परकास हो ।  
गुन परगट करि सुख करै, क्रोध न कीजे तास हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥४॥

क्रोध कियेसों कोपिये, हमें उसे क्या फेर हो ।

सज्जन दुरजन एकसे, मन थिर कीजे मेर हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥५॥

बहुत कालसों साधिया, जप तप संजम ध्यान हो ।  
तासु परीक्षा लैनको, आयो समझो ज्ञान हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥६॥

आप कमायो भोगिये, पर दुख दीनों झूठ हो ।  
'ध्यानत' परमानन्द मय, तू जगसों क्यों रूठ हो ॥  
क्रोध कषाय न मैं करौं, इह परभव दुखदाय हो ॥७॥

**अर्थ :** हे प्रभु ! मैं क्रोध कषाय कभी न करूँ, क्योंकि यह इस भव में व परभव में दोनों में दुःख देनेवाली है। क्रोध कषाय से सारे शरीर में (रक्तचाप बढ़ कर) गरमी - उष्णता बढ़ जाती है। आवेश के कारण सारे गुणों के समूह का नाश हो जाता है।

गाली देकर किसी को मारा नहीं क्योंकि गाली देने से कोई मरता नहीं। मारकर उसके दो टुकड़े भी नहीं किए। ये दोनों ही कार्य न करके समता भाव रखा तो इसके समान कोई प्रिय कार्य नहीं, मित्र नहीं।

क्रोध के कारण अपने पुण्य का नाश होता है। दूसरों के पापों का नाश होता है। क्रोध के कारण अपने प्रीतम से रुष्ट होने पर जो संताप होता है, उसको कौन सहे?

हम क्रोध के कारण किसी को खोटा-खोटा कहते रहें, पर जो सच्चा है, उसका इससे कुछ भी नहीं बिगड़ सकते। गुणों को देखकर भी जो निन्दा करे, उस झूठ से क्या लड़ाई करना !

यदि दुर्जन / दुष्ट हमें दुःख नहीं दे तो हममें क्षमा प्रकट नहीं हो सकती क्योंकि कोई गुस्सा करे और हम उसे क्षमा करें तभी तो हमारी क्षमा प्रकट होगी। वह हम पर क्रोध कर हमारे क्षमा-समता आदि गुणों को प्रकट कर सुख का अनुभव कराता है। अतः उस क्रोध करनेवाले पर क्रोध मत कीजिए।

जो क्रोध करनेवाले पर क्रोधित हो तब उसमें और हममें क्या भेद रह गया ? तब सज्जन व दुर्जन दोनों एकसमान हो जाते हैं। इसलिए मन को सुमेरु के समान दृढ़ / स्थिर रखो।

बहुत काल से जो जप, तप, संयम, ध्यान की साधना की है उसकी परीक्षा लेने के लिए यह अवसर आया है ऐसा समझो।

अपना कमाया हुआ ही भोगा जाता है । दूसरा कुछ दुःख देता है, दुःख करता है यह मिथ्या है। ध्यानतराय कहते हैं कि तू तो स्वयं परम आनन्दमय है । तू जगत से क्यों नाराज होता है?



## सबसों छिमा छिमा कर



राग गौरी, मान न कीजिए ओ परबीन

सबसों छिमा छिमा कर जीव !  
मन वच तनसों वैर भाव तज, भज समता जु सदीव ॥टेक॥

तपतरु उपशम जल चिर सींच्यो, तापस शिवफल हेत ।  
क्रोध अग्नि छिनमाहिं, जरावै, पावै नरक-निकेत ॥  
सबसों छिमा छिमा कर जीव ॥१॥

सब गुनसहित गहत रिस मनमें, गुन औगुन है जात ।  
जैसैं प्रानदान भोजन है, सविष भये तन घात ॥  
सबसों छिमा छिमा कर जीव ॥२॥

आप समान जान घट घटमें, धर्ममूल यह वीर ।  
'ध्यानत' भवदुखदाह बुझावै, ज्ञान सरोवर नीर ॥  
सबसों छिमा छिमा कर जीव ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव! तू सब प्राणियों के प्रति क्षमा-भाव रख । सबके प्रति मन, वचन और काय से बैरभाव छोड़कर सदा समताभाव ही में लीन रह ।

वह तपस्वी जो तपरूपी वृक्ष को, उपशमरूपी जल से सदा सींचता है वह मोक्षरूपी फल पाता है और जो क्रोध करता है उसे क्रोध की अग्नि में एक क्षण में ही नष्ट कर देती है, जला देती है और वह नरक का निवास पाता है।

सारे गुणों के होते हुए भी मन में केवल क्रोध के उत्पन्न होने पर सब गुण अवगुण हो जाते हैं । जैसे भोजन से प्राणदान मिलता है, परन्तु उसमें विषाणुओं के मिल जाने से वह ही प्राणलेवा बन जाता है।

सब जीवों को आप अपने समान जानो। अरे भाई! यही धर्म का मूल है, सार है। ध्यानतराय कहते हैं कि ऐसे ज्ञानरूपी सरोवर का जल भव-दुःखरूपी दाह को बुझाता है, शमन करता है, नष्ट करता है।



## गलता नमता कब आवैगा



गलता नमता कब आवैगा ।

राग - द्वेष परणति मिट जैहै, तब जियरा सुख पावैगा ॥टेक॥

मैं ही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मैं, तीनों भेद मिटावैगा ।

करता - किरिया - करम भेद मिटि, एक दरब लों लावैगा ॥१॥

निहचै अमल मलिन व्यौहारी, दोनों पक्ष नसावैगा ।

भेद गुण गुणी को नहिं है है, गुरु सिख कौन कहावैगा ॥२॥

'ध्यानत' साधक साधि एक करि, दुविधा दूर बहावैगा ।

वचन भेद कहवत सब मिटकै, ज्यों का त्यों ठहरावैगा ॥३॥





# गहु सन्तोष सदा मन

गहु सन्तोष सदा मन रे! जा सम और नहीं धन रे ॥टेक ॥

आसा कांसा भरा न कबहूं, भर देखा बहुजन रे ।  
धन संख्यात अनन्ती तिसना, यह बानक किमि बन रे ॥  
गहु सन्तोष सदा मन रे! जा सम और नहीं धन रे ॥१॥

जे धन ध्यावैं ते नहिं पावैं, छांडै लगत चरन रे ।  
यह ठगहारी साधुनि डारी, छरद अहारी निधन रे ॥  
गहु सन्तोष सदा मन रे! जा सम और नहीं धन रे ॥२॥

तरु की छाया नर की माया, घटै बढ़ै छन छन रे ।  
'द्यानत' अविनाशी धन लागैं, जागैं त्यागैं ते धन रे ॥  
गहु सन्तोष सदा मन रे! जा सम और नहीं धन रे ॥३॥

**अर्थ :** अरे जिया ! अपने मन में सदा सन्तोष ग्रहण करो। (इस) सन्तोष के समान और कोई धन नहीं है / बहुत लोगों ने तृष्णा - आशारूपी थाल को भरने का प्रयास कर देख लिया है पर यह थाल कभी भी नहीं भरा।

धन सम्पदा सीमित होती है, गिनती की होती है, तृष्णा अनन्त होती है, यह व्यापार किस प्रकार सफल होगा?

जो व्यक्ति धन की ही कामना / आराधना करते हैं, वे धन पाने के लिए अपने सहज आचरण को भी छोड़ देते हैं, फिर भी धन प्राप्त नहीं कर पाते ! यह ठगपने की क्रिया है, यह क्रिया साधु/सज्जन पुरुष को भी (अपनी गरिमा से) गिरा देती है जैसे कोई अस्वस्थ अवस्था में आहार करनेवाला व्यक्ति मरण को प्राप्त होता है।

पेड़ की छाया और मनुष्य की मायाचारी प्रतिक्षण घटती-बढ़ती रहती है। द्यानतराय कहते हैं कि जागते हुए ऐसे धन को

त्याग दो और उस अविनाशी धन की प्राप्ति के लिए, जिसका कभी नाश न हो, चेष्टा में लग जाओ।  
छरद (छर्दि) = अस्वस्थता; छरद अहारी - अस्वस्थता में आहार करनेवाला।



## गुरु समान दाता नहिं

गुरु समान दाता नहिं कोई ।  
भानु प्रकाश न नाशत जाको, सो अंधियारा डारै खोई ॥टेक ॥

मेघ समान सबन पै बरसै, कछु इच्छा जाके नहिं होई ।  
नरक पशु गति आग माहिं तैं, सुरग मुक्त सुख थापै सोई ॥  
गुरु समान दाता नहिं कोई ॥१॥

तीन लोक मन्दिर में जानौ, दीपकसम परकाशक लोई ।  
दीप तलैं अंधियार भरयो है, अन्तर बाहिर विमल है जोई ॥  
गुरु समान दाता नहिं कोई ॥२॥

तारन - तरन जिहाज सुगुरु हैं, सब कुटुम्ब डोवै जगतोई ।  
'द्यानत' निशिदिन निरमल मन में, राखो गुरु - पद पंकज दोई ॥  
गुरु समान दाता नहिं कोई ॥३॥

**अर्थ :** हे आत्मन् ! गुरु के समान दाता अर्थात् देनेवाला अन्य कोई नहीं है।

अपने भीतर की मलीनता को, अंधकार को जिसे सूर्य का प्रकाश भी नहीं भेद सकता अर्थात् मिटा नहीं सकता, उसको वह गुरु ज्ञान के आलोक से, प्रकाश से नष्ट कर देता है, खो देता है।

जैसे मेघ समानरूप से चारों तरफ बरसता है। इस प्रकार बरसने की उसकी स्वयं कोई इच्छा नहीं होती वह स्वतः ही बरसता है। वैसे ही गुरु जीवों को नरक व पशुगति की दाह से बाहर निकालकर स्वर्ग व मुक्ति के सुख में मात्र ज्ञान के द्वारा स्थापित करता है।

वह गुरु तीन लोक में चैत्य (मन्दिर) के समान पूज्य है अर्थात् श्रद्धा व विश्वास का केन्द्र है। दीपक स्वयं जलकर अपने चारों ओर प्रकाश करता है किन्तु उस लौकिक दीपक के तले तो अँधियारा होता है पर गुरु तप करता है और वह अन्तर तथा बाह्य सब ओर से प्रकाशक होता है।

गुरु ज्ञान के द्वारा संसार से उस पार उतारने के लिए जहाज के समान है, जबकि सारा कुटुम्ब तो संसार में डुबानेवाला है। ध्यानतराय कहते हैं कि अपने मन को निर्मल कर उसमें ऐसे गुरु के चरण-कमल को सदा आसीन रखो, उसे श्रद्धापूर्वक सदैव नमन करो।



## घटमें परमात्म ध्याइये



घटमें परमात्म ध्याइये हो, परम धरम धनहेत  
ममता बुद्धि निवारिये हो, टारिये भरम निकेत ॥टेक ॥

प्रथमहिं अशुचि निहारिये हो, सात धातुमय देह ।  
काल अनन्त सहे दुखजानैं, ताको तजो अब नेह ॥१॥

ज्ञानावरनादिक जमरूपी, निजतैं भिन्न निहार ।  
रागादिक परनति लख न्यारी, न्यारो सुबुध विचार ॥२॥

तहाँ शुद्ध आत्म निरविकलप, है करि तिसको ध्यान ।  
अलप काल में घाति नसत हैं, उपजत केवलज्ञान ॥३॥

चार अधाति नाशि शिव पहुँचे, विलसत सुख जु अनन्त ।  
सम्यकदरसन की यह महिमा, 'द्यानत' लह भव अन्त ॥४॥

**अर्थ :** हे जीव! परम धर्म अर्थात् पूर्ण सुख रूपी धन को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा में विराजमान परमात्म स्वरूप का ध्यान करो पर द्रव्यों के प्रति ममत्व परिणाम को दूर हटाकर इस अनादि के भ्रम को टालो ।

जिस देह में अपनेपन के कारण अनन्त काल तक दुःख सहन किये सर्वप्रथम सप्त कुधातु में अर्थात् मल-मूत्र आदि का भंडार उस देह को अशुचि जानो और इसके प्रति मोह का त्याग करो।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्म यम के समान हैं; इनसे अपने को भिन्न देखो और रागादि परिणामों को अपनी आत्मा से भिन्न अनुभव करो - यही ज्ञानियों का विचार है।

फिर निर्विकल्प शुद्ध आत्मा जो कि तेरा स्वरूप है उसका ध्यान करो जिसके ध्यान से अल्प काल में चार घाति कर्मों का नाश होता है और केवलज्ञान प्रगट होता है।

फिर चार अधाति कर्मों का नाश कर जीव मोक्ष पहुँच जाता है जहाँ अनन्त काल के लिये अनंत सुख का भोग ही होता है। ध्यानतरायजी कहते हैं कि यह सब सम्प्रदर्शन की ही महिमा है जिससे संसार के दुःखों का अन्त होता है।



## चेतन नागर हो तुम चेतो



चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥

प्रथम प्रणमु अरहन्त जिनेश्वर, अनंत चतुष्यधारी ।  
सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद बन्दों, पंच परम उपगारी ॥  
बन्दों शारद भवदधिपारद, कुमतिविनाशनहारी ।  
देहु सुबुद्धि मेरे घट अन्तर, कहों कथा हितकारी ॥  
चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥१॥

यह संसार अनादि अनन्त, अपार असार बतायो ।  
जीव अनादि कालसों ले करि, मिथ्यासों लपटायो ॥  
ता भ्रमत चहूँगति भीतर, सुख नहिं दुख बहु पायो ।  
जिनवानी सरधान बिना तैं, काल अनन्त गुमायो ॥  
चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥२॥

काम भोगकै सुख मानत है, विषय रोग की पीरा ।  
तासु विपाक अनन्त गुणा तोहि, नरकमाहिं है धीरा ॥  
पाप करमकरि सुख चाहत है, सुख नहिं है है वीरा ।  
बोये आक आम किमि खैहो, काँच न है है हीरा ॥  
चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥३॥

पाप करम करि दरब कमायो, पापहि हेत लगायो ।  
दोनों पाप कौन भोगैगो, सो कछु भेद न पायो ॥  
दुशमन पोषि हरष बहु मान्यो, मित्र न संग सुहायो ।  
नरभव पाय कहा कीनों, मानुष वृथा कहायो ॥  
चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥४॥

सात नरक के दुख भूले अरू गरभ जनम हू भूले ।  
काल दाढ़ विच कौन अशुचि तन, कहा जान जिय फूले ॥  
जान बूझ तुम भये बावरे, भरम हिंडोले झूले ।  
राई सम दुख सह न सकत हो, काम करत दुखमूले ॥

चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥५॥

साता होत कछुक सुख माने, होत असाता रोवै ।

ये दोनों हैं कर्म अवस्था, आप नहीं किन जोवै ॥

औरन सीख देत बहु नीकी, आप न आप सिखावै ।

सांच साच कछु झूठ रंच नहिं, याही दुख पावै ॥

चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥६॥

पाप करत बहु कष्ट होत है, धरम करत सुख भाई !

बाल गुपाल सबै इम भाषै, सो कहनावत आई !

दुहि में जो तोकौं हित लागै, सो कर मन-वच-काई !

तुमको बहुत सीख क्या दीजे, तुम त्रिभुवन के राई ॥

चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥७॥

बस पंचेन्द्री सेती मानुष, औसर फिर नहिं पै है ।

तन धन आदि सकल सामग्री देखत देखत जे है ॥

समझ समझ अब ही तू प्राणी! दुरगति में पछतैहै ।

भज अरहन्तचरण जुग 'धानत', बहुरि न जगमें ऐ है ॥

चेतन नागर हो तुम, चेतो चतुर सुजान, आपहित कीजिये हो ॥८॥

**अर्थ :** हे विवेकी सुजन ! तुम चैतन्य राजा हो, अब तो चेतो। अपना हित करो।

सर्वप्रथम अनन्त चतुष्य के धारी अरहंत देव को प्रणाम करो। फिर सिद्ध, आचार्य, गुरु अर्थात् उपाध्याय और मुनि के चरणों में नमन करो। ये पाँचों ही उपकार करनेवाले हैं। फिर सरस्वती जो इस भव-समुद्र से पार उतारनेवाली है और

कुमति का नाश करनेवाली है, का वंदन करो । वे मुझे मेरे अन्तर में सुबुद्धि दें। ऐसी हितकारी कथा कहें कि जिससे उनके गुणों की अनुभूतिरूप पहचान हो।

यह संसार अनादि व अनन्त है, इसका कोई पार नहीं है, किन्तु यह निस्सार (साररहित) है । अनादिकाल से मिथ्यात्व के कारण जीव इसमें लिपटा हुआ है, जिसके कारण चारों गतियों में भटककर सुख नहीं, बहुत दुःख पाये हैं । जिनेन्द्र वचन / जिनवाणी का श्रद्धान किए बिना अनन्तकाल व्यर्थ में व्यतीत हो गए, बिता दिए ।

काम और भोग को सुख मानकर जीव इन्द्रिय-विषयों की पीड़ा को सहन करता रहा । जिसके परिणाम-स्वरूप उससे भी अनन्तगुणा फल पाकर नरकगति में दुर्दशा को प्राप्त हुआ । पाप करके सुख की कामना करता रहा । हे भाई! उससे सुख नहीं होता । जरा सोच! आकड़ा बोकर आम किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? जैसे काँच कभी भी हीरा नहीं हो सकता ।

पाप क्रिया करके ध्यान अर्जित किया और उसे फिर पाप-कार्यों में ही लगा दिया । इन दोनों क्रियाओं के पाप का भागी - भोगनेवाला कौन होगा? इस भेद की बात को जीव समझ ही नहीं पाया । दुश्मन को पोषण देकर, उसे पाल-पोसकर हर्षित हुआ और कल्याणकारी व उपयोगी मित्रों का साथ मन को रुचिकर नहीं लगा । इस प्रकार नरभव पाकर तूने क्या किया? (कुछ भी भला नहीं किया।) तू तो नाहक ही मनुष्य कहलाया ।

जीव सातों नरकों के दुःखों को, गर्भकाल व जन्म के दुःखों को (जो उसने भोगे थे उन) सभी को भूल गया। इस अशुचि (मैल से भरे) तन को जो सदा नाशवान है, जो सदा मृत्यु की दाढ़ में रहता है, उसे पाकर जीव फूला हुआ रहता है, फूला जाता है, प्रसन्न होता है । हे जीव! तू जान-बूझकर भ्रम में पड़ा हिण्डोले की भाँति इधर-उधर झूल रहा है। यह जीव राई के समान थोड़ा सा दुःख भी सहन नहीं कर पाता, पर काम दुःख उपजाने के करता रहता है।

साता का (सुख का) थोड़ा-सा उदय होने पर सुख मानता है और असाता होने पर दुःखी होकर रोता है । ये दोनों अवस्थाएँ तो कर्म-जन्य हैं, कर्मों के कारण हैं, परन्तु जीव अपने आप की ओर नहीं देखता । दूसरों को तो भली प्रकार सीख व शिक्षा देता है, पर स्वयं उस पर आचरण नहीं करता । यह ही सत्य है । इसमें कुछ भी झूठ नहीं है । इस ही के कारण दुःख पाता है ।

हे जीव! पाप से पीड़ा व कष्ट होता है, धर्म से सुख होता है । सभी यह कहते हैं कि छोटे से लेकर बड़े तक सब इस बात को समझते हैं । इन दोनों (पाप और धर्म) में जो तुझे हितकर लगे उसे मन-वचन-काय सहित कर । तू स्वयं तीन-भुवनपति होने की क्षमता रखता है । इसलिए तुझको क्या सीख दी जावे?

त्रसकाय में पंचेन्द्री मनुष्य होने का अवसर फिर नहीं मिलेगा । देखते-देखते तन-धन आदि सब सामग्री चली जावेगी । हे प्राणी! तू अब तो समझ, वरना फिर दुर्गति में पड़कर पछताएगा । व्यानतराय कहते हैं कि तू अरहंत चरण का भजन कर, जिससे जगत में फिर से आगमन ही न हो ।



## चेतन प्राणी चेतिये हो



चेतन प्राणी चेतिये हो ॥टेक ॥

अहो भवि प्रानी चेतिये हो, छिन छिन छीजत आव ।  
घड़ी घड़ी घड़ियाल रटत है, कर निज हित अब दाव ॥चेतन ॥

जो छिन विषय भोग में खोवत, सो छिन भजि जिन नाम ।  
वातैं नरकादिक दुख पैहै, यातैं सुख अभिराम ॥चेतन...१ ॥

विषय भुजंगम के डसे हो, रुले बहुत संसार ।  
जिन्हैं विषय व्यापै नहीं हो, तिनको जीवन सार ॥चेतन...२ ॥

चार गतिनिमें दुर्लभ नर भव, नर बिन मुकति न होय ।  
सो तैं पायो भाग उदय हों, विषयनि-सँग मति खोय ॥चेतन...३ ॥

तन धन लाज कुटुँब के कारन, मूढ़ करत है पाप ।  
इन ठगियों से ठगायकै हो, पावै बहु दुख आप ॥चेतन...४ ॥

जिनको तू अपने कहै हो, सो तो तेरे नाहिं ।  
कै तो तू इनकौं तजै हो, कै ये तुझे तज जाहिं ॥चेतन...५ ॥

पलक एककी सुध नहीं हो, सिरपर गाजै काल ।  
तू निचिन्त क्यों बावरे हो, छांडि दे सब भ्रमजाल ॥चेतन...६ ॥

# भजि भगवन्त महन्तको हो, जीवन-प्राणअधार । जो सुख चाहै आपको हो, 'द्यानत' कहै पुकार ॥चेतन...७॥

**अर्थ :** हे चेतन ! हे प्राणी ! तू अब चेत! ओ भव्य! तू अब चेत । एक-एक क्षण आयु बीती जा रही है । घड़ी प्रतिक्षण/हर घड़ी/निरन्तर चलती ही रहती है, अब अपने हित के लिए कोई युक्ति कर ।

जो भी क्षण तू विषय-भोग में खो रहा है वह क्षण तू श्री जिन-नाम को भजने में लगा। विषय-भोग से नरकादिक दुःख मिलते हैं और जिन-नाम के सुमिरन से वांछित सुख की प्राप्ति होती है ।

विषय-भोगरूपी सर्प के डसने पर बहुत काल तक संसार-परिभ्रमण (चक्कर) होता ही रहता है। जिनके जीवन में विषय-भोग नहीं है उनका ही जीवन सार-स्वरूप है, प्रयोजनवान है ।

चारों गतियों में नर-भव दुर्लभ है, यह बड़ी कठिनाई से मिलता है । इसके बिना मुक्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष केवल मनुष्य गति से ही प्राप्त होता है । वह (मनुष्य जन्म) तुमने भाग्योदय से प्राप्त कर लिया है, अब विषयभोग में लगकर उसे मत खोओ ।

अज्ञानी मनुष्य इस देह, धन और कुटुम्ब की लाज के कारण पापार्जन करता है । इन ठगों से ठगा जाकर वह बहुत दुःख पाता है। जिनको तू अपना कहता है, वे तेरे नहीं हैं । या तो तू उनको छोड़ दे, अन्यथा ये तो तुझे छोड़कर जायेंगे ही ।

एक पल का भी विश्वास नहीं है, काल सदा सिर पर मँडरा रहा है। तू फिर निश्चिन्त क्यों हो रहा है? यह भ्रम-जाल हैं, इसको छोड़ दे। द्यानतराय पुकारकर कहते हैं कि जो तू अपना सुख चाहता हैं तो भगवान का भजन कर, यह ही जीवन का आधार है ।



## जग में प्रभु पूजा सुखदाई



हमारो कारज कैसे होय

जग में प्रभु पूजा सुखदाई ॥टेका॥

दादुर कमल पांखुरी लेकर प्रभु पूजा को जाई ।  
श्रेणिक नृप गज के पग से दबि प्राण तजे सुर जाई ॥

जग में प्रभु पूजा सुखदाई ॥१॥

द्विज पुत्री ने गिर कैलासे पूजा आन रचाई ।  
लिंग छेद देव पद लीनो अन्त मोक्ष पद पाई ॥  
जग में प्रभु पूजा सुखदाई ॥२॥

समोसरण विपुलाचल ऊपर आये त्रिभुवन राई ।  
श्रेणिक वसु विधि पूजा कीनी तीर्थकर गोत्र बंधाई ॥  
जग में प्रभु पूजा सुखदाई ॥३॥

'द्यानत' नरभव सुफल जगत में जिन पूजा रुचि आई ।  
देव लोक ताके घर आंगन अनुक्रम शिवपुर जाई ॥  
जग में प्रभु पूजा सुखदाई ॥४॥



## जगत में सम्यक उत्तम



राग : मल्हार

जगत में सम्यक उत्तम भाई  
सम्यकसहित प्रधान नरक में, धिक शठ सुरगति पाई ॥टेक ॥

श्रावक-व्रत मुनिव्रत जे पालैं, जिन आतम लवलाई ।  
तिनतैं अधिक असंजमचारी, ममता बुधि अधिकाई ॥१॥

पंच-परावर्तन तैं कीनें, बहुत बार दुखदाई ।  
लख चौरासी स्वांग धरि नाच्यौ, ज्ञानकला नहिं आई ॥२॥

सम्यक बिन तिहुँ जग दुखदाई, जहुँ भावै तहुँ जाई ।  
'द्यानत' सम्यक आतम अनुभव, सद्गुरु सीख बताई ॥३॥

**अर्थ :** हे साधो ! जगत में सम्यक्त्व ही सर्वोत्तम है। सम्यक्त्वधारी नरक में भी हो तो भी ठीक और मूर्ख (मिथ्यादृष्टि) का देव बन जाना भी धिक्कार है।

जिन्हें आत्मा के प्रति रुचि रहती है, होती है वे तो श्रावक के व्रतों व मुनि व्रतों का (अणुव्रत व महाव्रत का) पालन करते हैं; उनसे अधिक असंयम-सम्यक्त्वी हैं और उनसे विशेष अधिक वे हैं जो मोह और ममता से ग्रस्त हैं।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व भव के परावर्तन पूरे करते हुए बहुतबार दुःख सहन किए हैं। चौरासी लाख योनियों में भाँति-भाँति के रूप-भव धारण किए हैं, फिर भी ज्ञान की कला नहीं समझ सके।

सम्यक्त्व बिना सारा जगत दुःख देनेवाला है। सम्यक्त्व और संसार में तुम्हें जो भावे वहाँ ही जाओ अर्थात् वैसा ही स्वीकार करो। द्यानतराय कहते हैं कि सम्यक्त्व आत्मा का अनुभव हैं; सगुरु ऐसी ही सीख देते हैं।



## जब बानी खिरी महावीर

जब बानी खिरी महावीर की तब, आनंद भयो अपार ।  
सब प्रानी मन ऊपजी हो, धिक धिक यह संसार ॥टेक॥



बहुतनि समकित आदी हो, श्रावक भरें अनेक ।  
घर तजकैं बहु बन गये हो, हिरदै धर्यो विवेक ॥  
जब बानी खिरी महावीर की तब, आनंद भयो अपार ॥१॥

केर्इ भाव भावना हो, केर्इ गहँ तप घोर ।  
केर्इ जमैं प्रभु नामको ज्यों, भाजें कर्म कठोर ॥  
जब बानी खिरी महावीर की तब, आनंद भयो अपार ॥२॥

बहुतक तप करि शिव गये हो, बहुत गये सुरलोक ।  
'द्यानत' सो वानी सदा ही, जयवन्ती जग होय ॥  
जब बानी खिरी महावीर की तब, आनंद भयो अपार ॥३॥

**अर्थ :** जब समवसरण में भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि खिरी (झरी) तब सर्वत्र अपार आनन्द की लहर दौड़ गई। उसे सुनकर सब के मन में यह बोध हुआ कि यह संसार धिक्कारने योग्य है।

उसे सुनकर बहुत से लोगों ने समता व सम्यक्त्व का आदर किया अर्थात् बोध को सम्यकप में अंगीकार किया, आदर किया और बहुत से लोग चारित्र से श्रावक हो गए। बहुत से घरबार छोड़कर वन में साधना हेतु चले गए और हृदय से विवेकपूर्ण व्यवहार करने लगे।

कई (बारह भावनाएँ, सोलहकारण भावनाएँ आदि) अनेक प्रकार की भावनाएँ भाते रहे / अनेक ने घोर तपश्चरण किया। अनेक जनों ने प्रभु नाम का स्मरण-जाप किया जिससे कर्म-बंधन की कठोरता मिटे और बंध ढीले हों, शिथिल हों।

बहुत से लोग तप करके मुक्त हुए, मोक्षगामी हुए। बहुत से स्वर्ग गए। द्यानतराय कहते हैं कि भगवान की दिव्यध्वनि लोक में सदा ही जयवन्त हो।



## जानत क्यों नहिं रे



जानत क्यों नहिं रे, हे नर आत्मज्ञानी  
रागद्वेष पुद्गल की संगति, निहचै शुद्धनिशानी ॥टेक ॥

जाय नरक पशु नर सुर गतिमें, ये परजाय विरानी ।  
सिद्ध-स्वरूप सदा अविनाशी, जानत विरला प्रानी ॥१॥

कियो न काहू हरै न कोई, गुरु सिख कौन कहानी ।  
जनम-मरन-मल-रहित अमल है, कीच बिना ज्यों पानी ॥२॥

सार पदारथ है तिहुँ जगमें, नहिं क्रोधी नहिं मानी ।  
'ध्यानत' सो घटमाहिं विराजै, लख हूजै शिवथानी ॥३॥

**अर्थ :** हे ज्ञानी-आत्मा, हे नर! तू यह क्यों नहीं जानता है कि राग-द्वेष दोनों ही पुद्गल-जनित हैं। इन दोनों से पुदगल का बोध होता है। तु चैतन्य है और निश्चय से, राग-द्वेष से रहित है, भिन्न है, शुद्धरूप में आत्मस्वरूप है।

तू नरक, पशु, मनुष्य और देवगति में भ्रमण करता है, परन्तु ये पर्यायिं तेरी नहीं हैं, ये तो पुद्गल की हैं। तू सिद्ध-स्वरूपी है, अविनाशी है। यह तथ्य कोई एक बिरला ही जानता है।

द्रव्यदृष्टि से कोई किसी का कुछ नहीं कर सकता। कोई किसी पर-वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता। ये गुरु हैं, ज्ञानी हैं; और ये शिष्य हैं, इसने इसको ज्ञान दिया ऐसा कहने का क्या महत्व है? जैसे कीचड़हित जल निर्मल है, वैसे ही सब उपाधि से मुक्त, जन्म-मरण से रहित यह आत्मा सर्व मल-रहित है, शुद्ध है।

वह सर्वमलरहित आत्मा ही, क्रोध और मानरहित आत्मा ही तीन लोक में सारवान है, क्रोध और मान सारवान नहीं है। ऐसा क्रोध व मान से रहित निर्मल आत्मा जो अपने अन्तर में आसीन है, व्याप्त है उसी का ध्यान व चिन्तन कर जिससे शिव अर्थात् शान्ति का स्थान मोक्ष प्राप्त हो।





राग : करिखा

# जानो धन्य सो धन्य सो धीर

जानो धन्य सो धन्य सो धीर वीरा ।  
मदन सौ सुभट जिन, चटक दे पट कियो ॥  
धन्य सो धन्य सो धीर वीरा ॥टेक॥

पांच-इन्द्रि-कटक झटक सब वश कर्ये ।  
पटक मन भूप कीनो अँजीरा ॥  
धन्य सो धन्य सो धीर वीरा ॥१॥

आस रंचन नहीं पास कंचन नहीं ।  
आप सुख सुखी गुन गन गंभीरा ॥  
धन्य सो धन्य सो धीर वीरा ॥२॥

कहत 'द्यानत' सही, तरन तारन वही ।  
सुमर लै संत भव उदधि तीरा ॥  
धन्य सो धन्य सो धीर वीरा ॥३॥

**अर्थ :** जिसने उस धन्य (वह जो अपना लक्ष्य पा चुका) को जाना वह ही धन्य है अर्थात् पुण्यशाली हुआ। वह ही धीर हैं, वह ही वीर है।

जिसने कामदेव जैसे पराक्रमी को क्षणभर में चित्त कर दिया, धराशायी कर दिया अर्थात् कामनाओं को हरा दिया और उसका नाश कर दिया, वह ही धन्य है।

जिसने पाँचों इन्द्रियों की सेना को पलभर में, एक झटके में, त्वरित वश में कर लिया और मनरूपी राजा को जंजीरों से

अर्थात् संयम से वश में कर लिया अर्थात् स्थिर व नियंत्रितकर वश में कर लिया, वह ही धन्य है ।

जिसके कोई आशा नहीं है, पास में धन नहीं है और फिर भी गंभीर होकर, सबसे सुखी हो रहा है।

द्यानतराय कहते हैं कि यह सही है कि ऐसा जो है वह स्वयं भी तिर जाता हैं और वह ही दूसरों को तिरानेवाला है। वह संत (साधु) ही इस भव-समुद्र के तीर पर लगानेवाला है। उसका ही स्मरण कर।



## जानौं पूरा ज्ञाता सोई

जानौं पूरा ज्ञाता सोई ॥टेक ॥  
रागी नाहीं रोषी नाहीं, मोही नाहीं होई ॥

क्रोधी नाहीं मानी नाहीं, लोभी धी ना ताकी ।  
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, बानी मीठी जाकी ॥  
जानौं पूरा ज्ञाता सोई ॥१॥

साँई सेती सच्चा दीसै, लोगों का प्यारा ।  
काहू जीका दोषी नाहीं, नीका पैंडा धारा ॥  
जानौं पूरा ज्ञाता सोई ॥२॥

काया सेती माया सेती, जो न्यारा है भाई ।  
'द्यानत' ताको देखै जाने, ताहीसों लौ लाई ॥  
जानौं पूरा ज्ञाता सोई ॥३॥

**अर्थ :** हे प्राणी, उसे ही पूर्ण ज्ञानी जानी जो रागी नहीं है, द्वेषी नहीं है, जो मोही नहीं है ।

जिसके क्रोध नहीं है, मान नहीं है, लोभ की बुद्धि नहीं है । जो ज्ञानी है, ध्यानी है, दानी है (अभयदान करनेवाला है) और जिसकी सबको प्रिय लगनेवाली और सबका कल्याण करनेवाली मीठी वाणी है ।

जो परमात्मा के जितना / जैसा सच्चा / निर्मल दिखाई दे, जो सब लोगों को प्यारा लगे । जो किसी जीव की विराधना का दोषी नहीं है, उसे ही पूर्ण ज्ञानी जानो, उनका पदानुगमन / अनुसरण ही उचित है ।

जो काया से और माया से, सबसे न्यारा है, चैतन्य रूप है । ध्यानतराय कहते हैं कि उसको देखो, उसको जानो, उसके गुणों को जानो, उससे लौ लगाओ, उसका हो अनुसरण करो, उसके प्रति भक्ति से समर्पित होवो ।



## जिन नाम सुमर मन बावरे



राग : बिलावल, मुझको अपने गले लगा लो

जिन नाम सुमर मन! बावरे! कहा इत उत भटकै ।  
विषय प्रगट विष-बेल हैं, इनमें जिन अटकै ॥टेक॥

दुर्लभ नरभव पायकै, नगसों मत पटकै ।  
फिर पीछैं पछतायगो, औसर जब सटकै ॥  
जिन नाम सुमर मन! बावरे! कहा इत उत भटकै ॥१॥

एक घरी है सफल जो, प्रभु-गुन-रस गटकै ।  
कोटि वरष जीयो वृथा, जो थोथा फटकै ॥  
जिन नाम सुमर मन! बावरे! कहा इत उत भटकै ॥२॥

'ध्यानत' उत्तम भजन है, लीजै मन रटकै ।

भव भव के पातक सबै, जै हैं तो कटकै ॥  
जिन नाम सुमर मन! बावरे! कहा इत उत भटकै ॥३॥

**अर्थ :** अरे बावरे मन! तू श्री जिन के नाम का स्मरण कर, व्यर्थ ही तू क्यों इधरउधर भटक रहा है? अरे जिन विषयों में तू अटक रहा है, जिनकी ओर ललचा रहा है वे तो प्रत्यक्ष में, स्पष्टता ही विष की बेल हैं।

यह मनुष्य भव अत्यन्त दुर्लभ है, जो तुझको प्राप्त हुआ है। तू इस रत्न को पर्वत से नीचे मत पटके (व्यर्थ मत खो), वरना यह अवसर जब निकल जायेगा तब तु फिर पछताता रहेगा।

अरे वह ही एक घड़ी, एक क्षण सफल है जिस क्षण तू प्रभु नाम के रस को पीता है (प्रभु-नाम के रस का आस्वादन करता है)। अन्यथा चाहे तू करोड़ों वर्षों तक बिना किसी अर्थ के जीवन जी, सब बेकार है, निष्फल है।

द्यानतराय कहते हैं कि सबसे उत्तम तो जिनेन्द्र का भजन है, जिनेन्द्र का गुणस्तवन है, उसे मन लगाकर कंठस्थ कर लो तो भव-भवान्तर के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं, झङ जाते हैं।



## जिनके हिरदै प्रभुनाम नहीं



जिनके हिरदै प्रभुनाम नहीं तिन, नर अवतार लिया न लिया ॥टेक ॥  
दान बिना घर-वास वासकै, लोभ-मलीन धिया न धिया ॥

मदिरापान कियो घट अन्तर, जल मल सोधि पिया न पिया ।  
आन प्रान के मांस भखेतैं, करुनाभाव हिया न हिया ॥१॥

रूपवान गुनखान वानि शुभ, शीलविहान तिया न तिया ।  
कीरतवंत मृतक जीवत हैं, अपजसवंत जिया न जिया ॥२॥

**धाममाहिं कछु दाम न आये, बहु व्योपार किया न किया ।  
'द्यानत' एक विवेक किये बिन, दान अनेक दिया न दिया ॥३॥**

**अर्थ :** हे नर ! जिसके हृदय में प्रभु का स्मरण नहीं है, प्रभु के नाम-उच्चारण की लगन नहीं है तो उसने जो यह नर भव पाया है वह पाकर भी नहीं पाए हुए के बराबर है अर्थात् उसके नरभव का कोई उपयोग नहीं हो रहा है । दान बिना गृहस्थ का जीवन जीवन नहीं है, लोभ से मलीन बुद्धि बुद्धि नहीं है, अर्थात् दोनों ही व्यर्थ हैं।

अरे मनुष्य ! तू यदि अपने अन्तर में मद से भरा हुआ घट है अर्थात् निरन्तर मद-पान में रत हैं, तो बाह्य में जल छानकर पिया तो उसका कोई प्रयोजन शेष नहीं रह जाता वह भी न पिये के समान है। अन्य प्राणियों के मांस को यदि तू खाता है, और तेरे हृदय में कोई करुणा का भाव है तो वह करुणाभाव भी निष्फल है, निस्सार है, करुणाविहीन के समान है।

यदि कोई स्त्री रूपवान है, अत्यन्त गुणी है, बोलने में विनयवान है पर यदि चारित्र से च्युत हो तो उसका रूपवान, गुणवान होना न होने के बराबर है। कीर्तिवान व्यक्ति मरकर भी जीवित के समान है किन्तु अपयशवाला व्यक्ति जीवित होते हुए भी जीवनविहीन के समान है।

जिस व्यापार से घर में कमाई न हो तो ऐसा व्यापार करना नहीं करने के बराबर है । द्यानतराय कहते हैं कि यदि विवेक नहीं है तो विवेक के बिना ऐसा दिया गया दान भी न दिये के समान है ।



## **जिनवरमूरत तेरी शोभा**



तर्ज़ : धुँधरू की तरह, बजता ही रहा

**जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥टेक ॥**

**रोम रोम लखि हरष होत है, आनंद उर न समाय ।**

**जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥१॥**

**शांतरूप शिवराह बतावै, आसन ध्यान उपाय ।**

**जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥२॥**

इंद फनिंद नरिंद विभौ सब, दीसत है दुखदाय ।  
जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥३॥

'ध्यानत' पूजै ध्यावै गावै, मन वच काय लगाय ।  
जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥४॥

**अर्थ :** हे जिनेन्द्र! आपके बिम्ब की, मूर्ति की शोभा वचनों द्वारा नहीं कही जा सकती, वह अर्वर्णनीय है।

आपकी प्रतिमा को देखकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता है। इतना आनन्द होता है कि मन में नहीं समाता।

हृदय पात्र से आनन्द छलकने लगता है। आपका प्रशान्त रूप मोक्षमार्ग की बता रहा है और आपकी मुद्रा उसका उपाय बता रही है, और बता रही है कि ध्यान की मुद्रा यह ही है।

इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदि सभी के वैभव दुःखकारी (दुःख देनेवाले हैं) यह स्पष्ट दिख रहा है।

ध्यानतराय कहते हैं कि मन, वचन और काय से एकाग्र होकर इनकी पूजा करो, ध्यान करो, गुणगान करो।



## जीव तैं मूढ़पना कित पायो

जीव! तैं मूढ़पना कित पायो ।  
सब जग स्वारथ को चाहत है, स्वारथ तोहि न भायो ॥टेक॥



अशुचि अचेत दुष्ट तनमांही, कहा जान विरमायो ।  
परम अतिन्द्री निजसुख हरिकै, विषय रोग लपटायो ॥  
जीव! तैं मूढ़पना कित पायो ॥१॥

चेतन नाम भयो जड़ काहे, अपनो नाम गमायो ।  
 तीन लोकको राज छांडिके, भीख मांग न लजायो ॥  
 जीव! तै मूढ़पना कित पायो ॥२॥

मूढ़पना मिथ्या जब छूटै, तब तू संत कहायो ।  
 'द्यानत' सुख अनन्त शिव विलसो, यों सद्गुरु बतलायो ॥  
 जीव! तै मूढ़पना कित पायो ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव ! हे ज्ञानी ! तूने यह मूढ़पना कहाँ से पाया?

सारा जगत स्वार्थ को चाहता है, परन्तु तुझे स्व अर्थ (स्व के लिए, स्व का भला) रुचिकर नहीं हुआ। यह पुद्धल देह है, यह अचेतन है, जड़ है, अपवित्र है, अशुचि से दूषित है। क्या जानकर तू इसमें ठहरा हुआ है? तेरी अपनी आत्मा तो अपने ही अतीन्द्रिय सुख से पूरित होकर सर्वश्रेष्ठ है। तूने उसे छोड़कर अपने को इन्द्रिय विषयरूपी रोगों से लिपटा रखा है! तू चेतन स्वभाववाला है, फिर तू जड़ क्यों हो रहा है? क्यों अपने स्वरूप को भूला जा रहा है। तू त्रिलोक का स्वामी है, सर्वज्ञ है। अपना ऐसा स्वरूप भूलकर तुझे अन्यत्र भीख माँगते तनिक भी लज्जा नहीं आती? मूर्खतावश हुए इस विपरीत श्रद्धान अर्थात् मिथ्यात्व को जब तू छोड़े, तब तू संत कहलाये। द्यानतराय कहते हैं कि सद्गुरु ग्रह उपदेश देते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति होने पर यह आत्मा अनन्त सुख का भोक्ता होता है।



## जो तै आतमहित नहिं कीना



राग : विहागरा

जो तै आतमहित नहिं कीना ...  
 रामा रामा धन धन कीना, नरभव फल नहिं लीना ॥टेक ॥

जप तप करके लोक रिझाये, प्रभुता के रस भीना ।

अंतर्गत परिनाम न सोधे, एको गरज सरी ना ॥  
जो तैं आतमहित नहिं कीना ॥१॥

बैठि सभा में बहु उपदेशो, आप भये परवीना ।  
ममता डोरी तोरी नाहीं, उत्तम भये हीना ॥  
जो तैं आतमहित नहिं कीना ॥२॥

'द्यानत' मन वच काय लायके, जिन अनुभव चित दीना ।  
अनुभव धारा ध्यान विचारा, मंदर कलश नवीना ॥  
जो तैं आतमहित नहिं कीना ॥३॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! अरे, तैंने अपनी आत्मा का हित नहीं किया । तू स्त्री और धन में ही रमा रहा । मनुष्य जन्म पाने का यथार्थ प्रयोजन फलरूप में तूने प्राप्त नहीं किया ।

जप-तप करके भी लोक को रिझाया, उनको हर्षित किया और अपने आपको बड़ा मानने के मान में, बड़ाप्पन प्राप्त करने में मग्न हो गया । अपने अन्तर के परिणामों को शुद्ध नहीं किया और किसी भी लक्ष्य अर्थात् एक भी लक्ष्य को सिद्धि न हो सकी ।

सभा में बैठकर बहुत उपदेश दिए मानो स्वयं उसमें पारंगत व प्रवीण हो गए । पर मोह-ममता की डोरी नहीं टूटी, जिसके कारण जितने श्रेष्ठ हो सकते थे उतने ही हीन हो गए ।

द्यानतराय कहते हैं कि जिनने मन, वचन और काय से अपने अनुभव में, अपने चित्त को लगाया, उस आत्मा के अनुभव में, उसके ध्यान में उसने नएनए क्षितिज देखे, उन्होंने चैतन्य भावों के नित नए कलश चढ़ाकर आत्म वैभवरूपी मन्दिर की सुन्दरता की वृद्धि में अपना योग दिया ।



ज्ञान का राह दुहेला रे



भाई! ज्ञान का राह दुहेला रे ...  
मैं ही भगत बड़ा तपधारी, ममता गृह झकझेला रे ॥टेक ॥

मैं कविता सब कवि सिर ऊपर, बानी पुद्धल मेला रे ।  
मैं सब दानी माँगै सिर द्यौ, मिथ्याभाव सकेला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह दुहेला रे ॥१॥

मृतक देह बस फिर तन आऊँ, मार जिवाऊँ छेला रे ।  
आप जलाऊँ फेर दिखाऊँ, क्रोध लोभतै खेला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह दुहेला रे ॥२॥

वचन सिद्ध भाषै सोई है, प्रभुता वेलन वेला रे ।  
'द्यानत' चंचल चित पारा थिर, करै सुगुरु का चेला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह दुहेला रे ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई ! ज्ञान की राह / ज्ञान का मार्ग अत्यन्त कठिन लगता है कठिन होता है । कभी मैं भक्त बनता हूँ, कभी बहत तप करके तपस्वी बनता हूँ, फिर भी मोह-ममता-गृहस्थी के धक्के खाता रहता हूँ।

अपने को ज्ञानी बताने के लिए सब कवियों का सिरमौर / सरदार बनकर कविता करने लगता हूँ, पुद्धल शब्दों का मेला लगा लेता हूँ । जो-जो जैसा-जैसा माँगता है उसे वैसा-वैसा देकर मैं अपने को दानी समझता हूँ, इस प्रकार सब मिथ्याभाव करता हूँ ।

मरणशील देह में बसता हूँ / रहता हूँ और मरता हूँ और फिर किसी अन्य देह में पुनः आ जाता हूँ । अन्त तक (ज्ञानप्राप्ति तक) इसी प्रकार देह का मारना-जिलाना चलता रहता है । क्रोध-लोभ आदि कषायों में स्वयं जलता हूँ और सबको उन कषायों के खेल परिणाम दिखाता रहता हूँ ।

द्यानतरायजी कहते हैं कि हे जीव ! ज्ञानसिद्ध (जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है वह) जो वचन कहता है वह (ही) सत्य है । तू

भी ऐसी प्रभुता (ऐसा ज्ञान) पाने में देर मत कर । ज्ञान प्राप्ति के लिए तू पारे के समान चंचल अपने चित्त को स्थिर कर और सुगुरु (सत्गुरु) का चेला (शिष्य) बन जा ।



## ज्ञान का राह सुहेला रे

भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे  
दरब न चहिये देह न दहिये, जोग भोग न नवेला रे ॥टेक॥

लड़ना नाहीं मरना नाहीं, करना बेला तेला रे ।  
पढ़ना नाहीं गढ़ना नाहीं, नाच न गावन मेला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे ॥१॥

न्हानां नाहीं खाना नाहीं, नाहिं कमाना धेला रे ।  
चलना नाहीं जलना नाहीं, गलना नाहीं देला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे ॥२॥

जो चित चाहे सो नित दाहै, चाह दूर करि खेला रे ।  
'द्यानत' यामें कौन कठिनता, वे परवाह अकेला रे ॥  
भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई ! ज्ञान की राह सबसे सरल है, सुगम है, सीधी है । इसके लिए न किसी द्रव्य की आवश्यकता है, न देह को जलाने की, कष्ट देने की आवश्यकता है और न किसी नए योग या भोग की आवश्यकता है ।

इसके लिए किसी से लड़ना नहीं है, इसके लिए मरना नहीं है । न कोई बेला या तेला अर्थात् दो-दो व तीन-तीन दिन का उपवास करना है । न पढ़ना है, न कोई किसी वस्तु का निर्माण करना है, न नाचना, न गाना और न कोई मेला (लोगों को

इकट्ठा) करना है ।

ज्ञान पाने के लिए न नहाने की आवश्यकता है, न खाने की आवश्यकता है, न द्रव्य उपार्जन की आवश्यकता है। न कहीं चलना है, न जलना है, न नष्ट होना है अर्थात् न तन को क्षीण करना है ।

यह चित्त कुछ-न कुछ 'चाह' करता है, इच्छा करता है, बस वह चाह ही नित्य दाह उत्पन्न करती है अर्थात् वह चाह ही दुःख का कारण है अतः तू मात्र 'चाह' का खेल समाप्त कर, बस ज्ञान की राह मिल जायेगी। धानतराय कहते हैं कि बता इसमें कौन-सी कठिन बात है? तू बिना किसी प्रकार की चाह के अकेला-निसंग-चिन्तारहित हो जा ।



## ज्ञान को पंथ कठिन है



सुनो! जैनी लोगों, ज्ञान को पंथ कठिन है ॥टेक ॥  
सब जग चाहत है विषयनिको, ज्ञानविषैं अनबन है ॥

राज काज जग घोर तपत है, जूझ मरैं जहा रन है ।  
सो तो राज हेय करि जानैं, जो कौड़ी गाँठ न है ॥१॥

कुवचन बात तनकसी ताको, सह न सकै जग जन है ।  
सिर पर आन चलावैं आरे, दोष न करना मन है ॥२॥

ऊपर की सब थोधी बातें, भाव की बातें कम है ।  
'द्यानत' शुद्ध भाव है जाके, सो त्रिभुवन में धन है ॥  
सुनो! जैनी लोगों, ज्ञान को पंथ कठिन है ॥३॥

अर्थ : अरे जैन साधर्मी बन्धुओं? ज्ञान का मार्ग कठिन है ।

सारा जगत विषय-भोग को चाहता है, उसमें रत होकर मस्ती से खोया-सा रहता है। ज्ञान की जागृति से उसका विरोध है,

अनबन है ।

राजकार्यों में जहाँ पद व धन के लोभ में भारी तपन है, कष्ट है, उसके लिए युद्ध में जूझता है, प्राणों की आहुतियाँ देता है । वह राज्य तो हेय है - ऐसा जान लो । एक भी कौड़ी तुम्हारी अपनी सम्पत्ति नहीं है, स्थिर नहीं है ।

कोई जरा-सी खोटी बात कह दे, तो जगत में कोई भी व्यक्ति उसे साधारणतः सहन नहीं करता । तत्काल सिर पर आरी के समान घात करता है और उसको मन से दोष नहीं मानता, अर्थात् बात का तो बुरा मानता है पर घात को बुरा नहीं मानता ।

ये सब ऊपरी थोथी-खोखली बातें हैं । इसमें भाव अर्थात् मर्म की कोई बात नहीं हैं । द्यानतराय कहते हैं कि जिसके भाव शुद्ध है, उसके पास तीन लोक की संपदा है ।



## ज्ञान ज्ञेयमाहिं नाहि ज्ञेय



राग जैजेवती

ज्ञान ज्ञेयमाहिं नाहि, ज्ञेय हू न ज्ञानमाहिं,  
ज्ञान ज्ञेय आन आन, ज्यों मुकर घट है ॥टेक ॥

ज्ञान रहै ज्ञानीमाहिं, ज्ञान बिना ज्ञानी नाहिं,  
दोऊ एकमेक ऐसे, जैसे श्वेत पट है ॥१॥

ध्रुव उतपाद नास, परजाय नैन भास,  
दरवित एक भेद, भाव को न ठट है ॥२॥

'द्यानत' दरब परजाय विकलप जाय,  
तब सुख पाय जब, आप आप रट है ॥३॥

**अर्थ :** ज्ञान ज्ञेय में नहीं जाता, इस ही भौति ज्ञेय ज्ञान में नहीं आता । ज्ञान और ज्ञेय दोनों अलग-अलग हैं । जैसे घट व दर्पण दोनों अलग-अलग हैं । जैसे दर्पण में घट का प्रतिबिम्ब झलकता है, घट उस दर्पण में नहीं होता, दर्पण और घट अलग-अलग हैं, उसी प्रकार ज्ञान में ज्ञेय झलकता है, ज्ञेय ज्ञान में नहीं जाता ।

ज्ञानी अलग है और ज्ञेय अलग है । ज्ञान ज्ञानी में रहता है । बिना ज्ञान के ज्ञानी नहीं होता । दोनों ऐसे एकमेक हैं जैसे कोई श्वेत उज्ज्वल वस्त्र होता है, वस्त्र और उसका श्वेतपना एकमेक होता है ।

उत्पाद, व्यय और धौव्य, ये पर्याय आँखों से दिखाई देती हैं । ये द्रव्य के हो भेद हैं, भावों की रचना नहीं है । द्यानतराय कहते हैं कि द्रव्य और उसकी पर्याय का विकल्प छूट जाए अर्थात् दोनों समग्र दीखें तब सुख का अनुभव होता है और स्व मात्र स्व रह जाता है ।



## ज्ञान बिना दुख पाया रे



ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ।

भौ दस आठउ श्वास सास मैं, साधारन लपटाया रे ॥टेक ॥

काल अनन्त यहां तोहि बीते, जब भई मंद कषाया रे ।  
तब तू निकसि निगोद सिंधु तैं, थावर होय न सारा रे ॥

ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥१॥

क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रय, सो दुख जात न गाया रे ।  
भूख प्यास परवस सही पशुगति, बार अनेक बिकाया रे ॥  
ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥२॥

नरक माहिं छेदन भेदन बहु, पुतरी अगनि जलाया रे ।  
सीत तपत दुरगंध रोग दुख, जानै श्री जिनराया रे ॥

ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥३॥

भ्रमत भ्रमत संसार महावन, कबहुँ देव कहाया रे ।  
लखि पर विभव सह्यौ दुख भारी, मरन समै बिललाया रे ॥  
ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥४॥

पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि, काल अनन्त गमाया रे ।  
पाप पुन्य जब भए बराबर, तब कहुँ नर भौ जाया रे ॥  
ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥५॥

नीच भयौ फिरि गरभ पडयौ, फिरि जनमत काल सताया रे ।  
तरुन पनौ तू धरम न चेतौ, तन धन सुत लौ लाया रे ॥  
ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥६॥

दरव लिंग धरि धरि मरि तू, फिर फिर जग भज आया रे ।  
'द्यानत' सरधा जु गहि मुनिव्रत, अमर होय तजि काया रे ॥  
ज्ञान बिना दुख पाया रे, भाई ॥७॥

**अर्थ :** अरे भाई ! ज्ञान के बिना इस जीव ने बहुत दुःख पाए हैं ।

निगोदकाय में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण तक इसने किया है। इसप्रकार निगोद में अनन्तकाल बीत जाने पर, जब कषायों में मंदता आई तब जीव निगोदकाय के समुद्र से बाहर होकर निकलकर स्थावर पर्याय में उत्पन्न हुआ। फिर क्रम से वहाँ से निकल कर दो, तीन, चार इन्द्रिय अर्थात् विकलेन्द्रिय हुआ और बहुत दुःख पाए, वे दुःख बताये नहीं जा सकते। कभी भूख व प्यास के दुःखोंवाली पराधीन और पीड़ित पशुगति पाई जिसमें अनेक बार बेचा गया। नरक में छेदन-भेदन के बहुत दुःख भुगते। आँखों की कोमल पुतलियाँ अग्नि से जलाई गईं। शीत व ताप, दुर्गंध, रोग आदि के दुःख भोगे, जिसे सर्वज्ञदेव श्री जिनवर ही जानते हैं। इस संसाररूपी वन में भ्रमण करते-करते कभी देवगति पाई और देव कहलाया। वहाँ भी दूसरों के वैभव को देख-देखकर

ईर्ष्यावश दुःखी होता रहा और मृत्यु का समय निकट आने पर दुःखी हुआ।

इस प्रकार पाप के कारण नरक गति व तिर्यच गति में तथा पुण्य के कारण देव बनकर अनन्तकाल बिता दिया। जब पाप और पुण्य बराबर हुए तब कहीं मनुष्य देह पाई, उसमें भी कभी नीच प्रवृत्तिवाला हुआ, कभी गर्भपात आदि द्वारा अल्प आयुवाला हुआ, कभी जन्म होते ही सताया गया। जवानी में धर्म के प्रति रुचि नहीं हुई, उस समय तन, धन, पुत्र आदि में रमकर सुख मानने लगा।

हे भाई! इस प्रकार कभी स्त्री, पुरुष, नपुंसक होकर तू सारा जगत घूम चुका, भ्रमण कर चुका। द्यानतराय कहते हैं कि तू श्रद्धासहित मुनिव्रत ग्रहणकर, उसका पालन कर जिससे देह से छूटकर तू अमर हो जाए, जन्म-मरण से छुटकारा पा जाए।



## ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै



राग : आसावरी जोगिया, दिल एक मंदिर है

ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ...  
राज सम्पदा भोग भोगवै, बंदीखाना धारै ॥टेक ॥

धन जोवन परिवार आपतैं, ओछी ओर निहारै ।  
दान शील तप भाव आपतैं, ऊँचेमाहिं चितारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥१॥

दुख आये धीरज धर मनमें, सुख वैराग सँभारै ।  
आतम दोष देखि नित झूरै, गुन लखि गरब बिडारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥२॥

आप बड़ाई परकी निन्दा, मुखतैं नाहिं उचारै ।  
आप दोष परगुन मुख भाषै, मनतैं शल्य निवारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥३॥

परमारथ विधि तीन जोगसौं, हिरदै हरष विथारै ।  
और काम न करै जु करै तो, जोग एक दो हारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥४॥

गई वस्तुको सोचै नाहीं, आगमचिन्ता जारै ।  
वर्तमान वर्तै विवेकसौं, ममता बुद्धि विसारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥५॥

बालपने विद्या अभ्यासै, जोवन तप विस्तारै ।  
वृद्धपने सन्यास लेयकै, आत्म काज सँभारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥६॥

छहों दरब नव तत्त्वमाहिंतैं, चेतन सार निकारै ।  
'ध्यानत' मगन सदा तिसमाहीं, आप तरै पर तारै ॥  
ज्ञानी ऐसो ज्ञान विचारै ॥७॥

**अर्थ :** ज्ञानी इसप्रकार विचार कर अपने ज्ञान में विचरण करता है। वह राज, वह सम्पदा आदि के भोग भोगता है, पर इस स्थिति को वह मात्र कारागृह समझता है।

उसे ये धन, योवन, परिवार - ये सब अपनी स्थिति से विपरीत नीचे की ओर दिखाई देते हैं। दान, शील, तप - इन भावों की ओर देखना, उनका चिन्तन, ऊपर की ओर दृष्टि होती है, ऊपर की ओर दिखाई देते हैं।

दुःख की घड़ियों में वह अपने मन में धैर्य धारण करता है और सुख की घड़ियों में विरति लाग्य भावना भाजा है। अपने यात्म-स्वभाव में लगे दोषों को, विकारों को देखकर, उनसे सदैव खिन्न होकर दूर रहने का प्रयत्न करता है और आत्म-गुणों को देखकर गर्व नहीं करता। वह (ज्ञानी) अपनी प्रशंसा और अन्य की निन्दा अपने मुख से कभी नहीं करता। सदैव अपने दोषों का वर्णन और दूसरों के गुणों की प्रशंसा अपने मुख से करता है तथा अपने मन की शल्य को बाहर निकालता है।

मन, वचन, काय से परमार्थ के काम में लगकर अपने हर्ष का हृदय में विस्तार करता है / संतोषी होकर सुखी होता है। परमार्थ के अतिरिक्त कोई काम नहीं करता। यदि करता भी है तो तुरन्त ही, थोड़ी देर बाद ही, उससे मुंह मोड़ लेता है, छोड़ देता है।

जो वस्तु चली गई, उसका विचार नहीं करता और वह आगे मिलेगी या नहीं, इसको चिन्ता नहीं करता। वर्तमान में अपने विवेक से आचरण करता है / ममताआसक्ति को छोड़ता है।

बचपन विद्याभ्यास में बिताता है। यौवन में शक्ति रहती है तभी तप करता है और बुढ़ापे में संन्यास लेकर अपनी आत्मसाधना करता है।

द्यानतराय कहते हैं कि सदैव छह द्रव्य, नौ तत्व का चिन्तन करता हुआ अपनी आत्मस्थिति को पहचानता व सँभालता हुआ - उसी में मगन होकर, आप स्वयं भी इस जगत से पार होता है और औरों को भी पार कराता है।



## ज्ञानी जीव दया नित पालैं



तर्ज : ज्ञानी जीव निवार भरमतम

ज्ञानी जीव-दया नित पालैं ।  
आरंभ परघात होत है, क्रोध पात निज टालैं ॥टेक ॥

हिंसा त्यागि दयाल कहावै, जलै कषाय बदनमें ।  
बाहिर त्यागी अन्तर दागी, पहुँचै नरक सदन में ॥  
ज्ञानी जीव-दया नित पालैं ॥१॥

करै दया कर आलस भावी, ताको कहिये पापी ।  
शांत सुभाव प्रमाद न जाकै, सो परमारथव्यापी ॥  
ज्ञानी जीव-दया नित पालैं ॥२॥

शिथिलाचार निरुद्धम रहना, सहना बहु दुख भ्राता ।  
'द्यानत' बोलन डोलन जीमन, करें जतनसों ज्ञाता ॥  
ज्ञानी जीव-दया नित पालै ॥३॥

**अर्थ :** ज्ञानी जीव सदैव दयालु होते हैं । आरम्भ (क्रिया) करने से परजीवों का घात होता है और क्रोध से स्वयं का घात होता है ।

ज्ञानी उन दोनों अवस्थाओं को टालते हैं, उनसे अपने को बचाते हैं (वे निजघात व परघात दोनों को टालते हैं)।

बाह्य में हिंसा छोड़ने पर दयालु कहे जाते हैं, परन्तु कषायों के कारण अंतरंग में वे जल रहे हैं। ऐसे बाहर से त्यागी दिखाई देनेवाले, अंतरंग में सब परिग्रहों को ढो रहे जीव नरकगामी होते हैं ।

दया करने में जिन्हें आलस्य आता है, उन्हें पापी कहा जाता है। परन्तु जो शांत स्वभावी हैं, अप्रमादी-प्रमादरहित हैं, सावधान हैं वे परमार्थ में लीन रहते हैं ।

अरे भाई ! शिथिलाचार और पुरुषार्थीन बने रहना तो बहुत दुःखों का कारण है। द्यानतरायजी कहते हैं कि बोलने में, चलने में, भोजन में जो यत्नपूर्वक व्यवहार करता है, वह ही ज्ञानी है।



## तुम प्रभु कहियत दीनदयाल



तर्ज : आवे ना भोगन में तोहि  
सजनवा बैरी हो गये हमार

तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ॥टेक ॥  
आपन आय मुकतमैं बैठे, हम जु रुलत जगजाल ॥

तुमरो नाम जपैं हम नीके, मन वच तीनौं काल ।  
तुम तो हमको कछू देत नहिं, हमसे कौन हवाल ॥  
आपन आय मुकतमैं बैठे, हम जु रुलत जगजाल ॥  
तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ॥१॥

बुरे भले हम भगत-तिहारे, जानत हो हम बाल ।  
 और कछू नहिं यह चाहत हैं, राग दोषकौं टाल ॥  
 आपन आय मुकतमैं बैठे, हम जु रुलत जगजाल ॥  
 तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ॥२॥

हमसौं चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपाविशाल ।  
 'द्यानत' एक बार प्रभु जगते, हमको लेहु निकाल ॥  
 आपन आय मुकतमैं बैठे, हम जु रुलत जगजाल ॥  
 तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ॥३॥

**अर्थ :** हे प्रभु! आप दीन-निर्धनों पर करुणा करनेवाले अर्थात् दीनदयाल कहे जाते हो। आप तो मुक्त होकर मोक्षगामी हुए और वहाँ स्थित हो गए और हम इस जगतरूपी जाल में ही रुलते जा रहे हैं, भटकते जा रहे हैं।

हम मन-वचन से सुबह-दोपहर-शाम तीनों काल सदा आपका गुणगान करते हैं, नाम जपते हैं। पर तुम तो हमको कुछ देते नहीं हो, तो बताओ कि फिर हमारा रक्षक कौन है?

हम भले हों अथवा बुरे, हम तो आपके भक्त हैं। आप हमारा आचरण-चाल, रंग-ढंग जानते व समझते हैं। हम आपसे कुछ भी याचना नहीं करते। मात्र इतना ही चाहते हैं कि आप हमें राग व द्वेष से मुक्त कीजिए, उनसे बचाइए।

हमारी जो भी कोई भूल-चूक हुई हो, आप उसे क्षमा करें। आप तो दया के सागर हैं, महादयालु हैं। धानतराय कहते हैं कि हमको मात्र एकबार आप इस जगत से बाहर निकाल दें।



## तुमको कैसे सुख है मीत



राग : गौरी, कबै निर्व्विध स्वरूप धरुंगा  
 सजनवा बैरी हो गये हमार

तुमको कैसे सुख है मीत !  
जिन विषयनि सँग बहु दुख पायो, तिनहीसों अति प्रीति ॥टेक ॥

उद्यमवान बाग चलने को, तीरथ सों भयभीत ।  
धरम कथा कथने को मूरख, चतुर मृषा-रस-रीत ॥  
जिन विषयनि सँग बहु दुख पायो, तिनहीसों अति प्रीति ।  
तुमको कैसे सुख है मीत ! ॥१॥

नाट विलोकन में बहु समझौ, रंच न दरस-प्रतीत ।  
परमागम सुन ऊँधन लागौ, जागौ विकथा गीत ॥  
जिन विषयनि सँग बहु दुख पायो, तिनहीसों अति प्रीति ।  
तुमको कैसे सुख है मीत ! ॥२॥

खान पान सुन के मन हरषै, संजम सुन है ईत ।  
'द्यानत' तापर चाहत होगे, शिवपद सुखित निचीत ॥  
जिन विषयनि सँग बहु दुख पायो, तिनहीसों अति प्रीति ।  
तुमको कैसे सुख है मीत ! ॥३॥

**अर्थ :** हे प्रिय! तुमको सुख कैसे हो सकता है। मिल सकता है? जिन इन्द्रिय-विषयों के कारण तुमको अत्यन्त दुःख मिले हैं, उन्हीं के प्रति तुम्हारी प्रीति है, आकर्षण है!

बाग-बगीचों में सैर करने के लिए तो तुम परिश्रम करने को भी तैयार हो, परन्तु तीर्थयात्रा से तुम्हें भय लगने लगता है ! धर्मकथा कहने में तो तुम मूर्ख (अज्ञानी) बन जाते हो पर इूठे न मिथ्या कथा-कहानी-किस्से कहने में बहुत चतुर हो, उनमें रस लेते हो, रुचि प्रगट करते हो ?

नाटक (सिनेमा) आदि देखने में तो रुचि लेते हो, उनको बहुत अच्छी तरह समझते हो, पर भगवान की मुद्रा के दर्शन के

प्रति कोई लगन नहीं रखते ! धर्म की / आगम की बात सुनकर ऊँधने लगते हो और विकथा सुनने के लिए पूर्ण जाग्रत हो जाते हो! खाने-पीने आदि की बातों में, भोजन-कथा आदि से मन हर्षित होता है।

संयम की बात सुनकर कष्ट होता है ! द्यानतराय कहते हैं कि ऐसा करनेवाले इस पर भी इस बात की चाहना करते हैं कि उन्हें मोक्ष-सुख की प्राप्ति हो जाए और वे निश्चिन्त हो जाएँ !



## तू जिनवर स्वामी मेरा



राग : काफी, छलिया मेरा नाम

तू जिनवर स्वामी मेरा, मैं सेवक प्रभु हों तेरा ॥टेक॥

तुम सुमरन बिन मैं बहु कीना, नाना जोनि बसेरा ।  
भाग उदय तुम दरसन पायो, पाप भज्यो तजि खेरा ॥१॥

तुम देवाधिदेव परमेसुर, दीजै दान सबेरा ।  
जो तुम मोख देत नहिं हमको, कहाँ जाएँ किहिं डेरा ॥२॥

मात तात तूही बड़ भ्राता, तोसौं प्रेम घनेरा ।  
'द्यानत' तार निकार जगततैं, फेर न है भवफेरा ॥  
तू जिनवर स्वामी मेरा, मैं सेवक प्रभु हों तेरा ॥३॥

**अर्थ :** हे जिन श्रेष्ठ! आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ।

आपका स्मरण नहीं करने के कारण मैंने अनेक स्थानों पर अनेक योनियों में अपना बसेरा किया, घर बनाकर ठहरा अर्थात् अनेक भव धारण करता रहा। अब भाग्य-उदय से मुझे आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसमें पाप अपना स्थान

छोड़कर पलायमान हो रहे, भाग रहे हैं।

आप देवों के देव हैं, परमेश्वर हैं आप ज्ञान (के प्रकाश) का दान दीजिए। हम याचकों को यदि आप मुक्ति-लाभ प्रदान नहीं करते, तो हम कहाँ जायें, हमारे लिए अन्यत्र कहाँ स्थान है?

हे देव ! तू ही मेरा माता-पिता, बड़ा भाई, हितैषी है । अब तू मुझे इस संसार से बाहर निकाल दे, तिरा दे ताकि फिर संसार में आना बन्द हो जावे, मिट जावे, भव-भ्रमण की क्रिया सदा के लिए समाप्त हो जावे ।



## तू तो समझ समझ रे



राग : असावरी, आतम अनुभव करना रे भाई

तू तो समझ समझ रे भाई !  
निशिदिन विषय भोग लपटाना, धरम वचन न सुहाई ॥टेक॥

कर मनका लै आसन माझ्यो, वाहिज लोक रिझाई ।  
कहा भयो बक-ध्यान धरेतैं, जो मन थिर न रहाई ॥  
तू तो समझ समझ रे भाई ॥१॥

मास मास उपवास किये तैं, काया बहुत सुखाई ।  
क्रोध मान छल लोभ न जीत्या, कारज कौन सराई ॥  
तू तो समझ समझ रे भाई ॥२॥

मन वच काय जोग थिर करकैं, त्यागो विषयकषाई ।

# 'द्यानत' सुरग मोख सुखदाई, सद्गुरु सीख बताई ॥ तू तो समझ समझ रे भाई ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई ! तू अब तो समझ, विवेकपूर्वक विचार कर । दिन-रात तू विषयभोग में उलझ रहा है, लिपट रहा है, तुझे धर्म का उपदेश, धर्म के वचन तनिक भी नहीं सुहाते - अच्छे नहीं लगते।

तू लोक-दिखाने के लिए, माला की मणि को हाथ में थामकर आसन लगाकर बैठता है और लोगों को रिझाता है, तू अपने आपको धर्मात्मा के रूप में दिखाता है। अरे जब तेरा मन चंचल होकर भटक रहा है तो बगुले की भाँति ध्यान लगाने से क्या लाभ है?

तूने एक-एक मास के उपवास करके काया को अत्यन्त कमजोर/ शिथिल कर लिया, सुखा लिया । इस काया को कृश कर दिया लेकिन क्रोधमान-माया और लोभ, इन कषायों को नहीं जीता, वश में नहीं किया, तो तेरा कौनसा कार्य सिद्ध होगा?

मन, वचन, काय इन तीनों योगों को थिर करके, विषय वासना, कषायों को छोड़। ध्यानतराय कहते हैं कि यह ही सद्गुरु का उपदेश है। इससे ही स्वर्ग व मोक्ष की, लौकिक व पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है।



## दरसन तेरा मन भाये



तर्ज : हम तो कबहुँ न निज घर आए  
नेनों में बदरा छाए

दरसन तेरा मन भाये ॥टेक ॥  
तुमकौं देखि त्रिपति नहिं सुरपति, नैन हजार बनावै ॥

समोसरन में निरखै सचिपति, जीभ सहस गुन गावै ।  
कोड़ कामको रूप छिपत है, तेरो दरस सुहावै ॥१॥

आँख लगै अंतर है तो भी, आनंद उर न समावै ।

ना जानों कितनों सुख हरिको, जो नहिं पलक लगावै ॥२॥

पाप नासकी कौन बात है, 'ध्यानत' सम्यक पावै ।  
आसन ध्यान अनुपम स्वामी, देखें ही बन आवै ॥  
दरसन तेरा मन भाये ॥३॥

**अर्थ :** हे प्रभु! आपका दर्शन मनभावन है, मन को भानेवाला है, मन को अच्छ। लगनेवाला हैं। आपके दर्शनों से देवताओं का राजा इन्द्र भी तृप्त नहीं हो पाया तब जीभर के आपके दर्शन करने के लिए उसने विक्रिया से हजार नयन बनाकर दर्शन किये।

समवशरण में वह इन्द्र आपके दर्शन करके आपके सहज गुणों की वचनस्तुति करता है। आपकी सुन्दरता करोड़ों कामदेव के रूप को अपने में समेटे हुए है। ऐसे सुन्दर दर्शन मुझे अत्यन्त प्रिय लगते हैं, अच्छे लगते हैं।

आपके दर्शनों के लिए अन्तर की / मन की आँखें तत्पर हैं तो भी हृदय में आनन्द नहीं समा रहा है अर्थात् उमड़कर बाहर फैल रहा है। उस इन्द्र को न जाने कितना (अवर्णनीय) सुख मिलता है जो निरन्तर निर्निमेष (बिना पलक झपकाये) आपके दर्शन करता रहता है।

ध्यानतराय कहते हैं आपके दर्शनों से पापों का नाश होना तो कोई बड़ी बात ही नहीं है, सम्यक्त्व की प्राप्ति भी हो जाती है। आपको ऐसी ध्यानासीन मुद्रा की अन्य कोई उपमा नहीं है। वह छवि देखते ही बनती है अर्थात् उसे देखने से मन नहीं भरता, उसे सदैव देखते रहने का मन करता है।



## देखे जिनराज आज राजऋद्धि



राग : प्रभाती, निरखत जिन चन्द्र वदन

देखे जिनराज आज, राजऋद्धि पाई ॥टेक॥

पहुपवृष्टि महा इष्ट, देवदुंदुभी सुभिष्ट,  
शोक करै भृष्ट सो, अशोकतरु बड़ाई ॥

देखे जिनराज आज, राजऋद्धि पाई ॥१॥

सिंहासन झलमलात, तीन छत्र चित सुहात,  
चमर फरहरात मनो, भगति अति बढ़ाई ॥  
देखे जिनराज आज, राजऋद्धि पाई ॥२॥

'द्यानत' भामण्डल में, दीसैं परजाय सात,  
बानी तिहुँकाल झरै, सुरशिवसुखदाई ॥  
देखे जिनराज आज, राजऋद्धि पाई ॥३॥

**अर्थ :** (इस भजन में समवशरण का वर्णन है।)

मैंने आज समवशरण में विराजित श्री जिनराज के दर्शन किए हैं। उसे देखकर लगता है कि मानो मुझे राज-ऋद्धि मिली है।

उस समवशरण में हो रही पुष्पवृष्टि महाइष्टकारी है, कानों को मधुर लगनेवाली देवदुन्दुभि का नाद प्रियकर है। सारे शोक-संताप को दूर करनेवाला है अशोक वृक्ष। ये सब यश-वृद्धि के परिचायक हैं।

सिंहासन प्रकाश में झिलमिला रहा है, तीन छत्र मन को भा रहे हैं, चमर ढोरे जा रहे हैं जिससे स्वामी के प्रति भक्ति व बहुमान प्रगट हो रहा है।

द्यानतरायजी कहते हैं -- उनके प्रभा-मण्डल में सात भव की घटनाएँ दिखाई देती हैं और तीनों संक्रांति काल में प्रभु की दिव्य ध्वनि खिरती है जो स्वर्ग व मोक्ष का सुख प्रदान करनेवाली है।



## देखे सुखी सम्यकवान



तर्ज़ : दूटे ना दिल दूटे ना

देखे सुखी सम्यकवान  
सुख दुख को दुखरूप विचारै, धारै अनुभवज्ञान ॥टेक ॥

नरक सात में के दुख भोगैं, इन्द्र लखें तिन-मान ।  
भीख मांग कै उदर भरें, न करें चक्री को ध्यान ॥  
देखे सुखी सम्यकवान ॥१॥

तीर्थकर पदकों नहिं चावै, जदपि उदय अप्रमान ।  
कुष्ट आदि बहु व्याधि दहत न, चहत मकरध्वज थान ॥  
देखे सुखी सम्यकवान ॥२॥

आधि व्याधि निरबाध अनाकुल, चेतनजोति पुमान ।  
'द्यानत' मगन सदा तिहिमाहीं, नाहीं खेद निदान ॥  
देखे सुखी सम्यकवान ॥३॥

**अर्थ :** इस संसार में सम्यक्त्वी पुरुष ही सुखी देखे जाते हैं जो सांसारिक सुख व दुःख दोनों को दुःख रूप ही समझते हैं, विचारते हैं जो मात्र अनुभवज्ञान को केवलज्ञान को धारण करते हैं।

जो सातवें नरक के दुःखों को भोगते समय दुःखी नहीं होते। इन्द्र के वैभव को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं, भिक्षा माँगकर पेट भरना हो तब भी चक्रवर्ती के सुखों का ध्यान/वांछा नहीं करते अर्थात् दोनों स्थितियों को महत्व नहीं देते। सब स्थितियों में समानभाव/समताभाव रखते हैं, ऐसे सम्यक्त्वी पुरुष ही इस संसार में सुखी देखे जाते हैं।

जो तीर्थकर पद की कामना नहीं करते, यद्यपि (अभी) कर्मों का उदय अप्रमाण/असीम है। न कुष्ट आदि व्याधियों की पीड़ा से अपने को दुःखी करते, न वे मकरध्वज (कामदेव) की जैसी सुन्दर की कामना करते। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुष ही इस संसार में सुखी देखे जाते हैं।

आधि-व्याधि से परे, बाधारहित निराकुलता ही उस चैतन्य पुरुष की ज्योति है, तेज है, ऊर्जा है, बल है। द्यानतराय कहते हैं कि वह उसमें ही सदा मगन रहता है, उसे किसी प्रकार का कोई खेद नहीं और न किसी प्रकार की कोई कामना या निदान हो। ऐसा सम्यक्त्वी पुरुष ही इस संसार में सुखी देखा जाता है।





# देखो भाई आत्मराम

देखो भाई! आत्मराम विराजै  
छहों दरब नव तत्त्व ज्ञेय हैं, आप सुज्ञायक छाजै ॥टेक ॥

अर्हत् सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पाचौं पद जिहिमाहीं ।  
दरसन ज्ञान चरन तप जिहिमें, पटतर कोऊ नाहीं ॥१॥

ज्ञान चेतना कहिये जाकी, बाकी पुद्गलकेरी ।  
केवलज्ञान विभूति जासुकै, आन विभौ भ्रमचेरी ॥२॥

एकेन्द्री पंचेन्द्री पुद्गल, जीव अतिन्द्री ज्ञाता ।  
'द्यानत' ताही शुद्ध दरबको जानपनो सुखदाता ॥३॥

**अर्थ :** हे साधक ! ज्ञाता-दृष्टा होकर अपने स्वरूप को देखो, देखो आत्मा किस प्रकार विराजित है ! यह सबका ज्ञायक है, सबको जाननेवाला है। छह द्रव्य व नौ तत्त्व सब इसके ज्ञेय हैं।

अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु - ये पाँच पद आत्मा में ही हैं इनमें दर्शन, ज्ञान, आचरण व सप की उल्कृष्ट स्थिति होती हैं। ये अतुल (तुलनारहित) हैं इनका कोई दूसरा प्रतिरूप नहीं है।

इस आत्मा में तो केवल ज्ञान-चेतना ही है, जो इसकी संपदा है। इसके अतिरिक्त शेष सब तो पुद्गल है, पुद्गलजन्य है। इन्हीं के चरणों में केवलज्ञान रूपी संपदा लोटती है। यह विधा अन्य जनों में नहीं है अर्थात् अन्य जनों में तो इसका भ्रामक रूप ही है अर्थात् इसकी समझ ही भ्रमपूर्ण है।

चाहे एकेन्द्री से पंचेन्द्री तक हों, चाहे पुद्गल हो, इन सबका ज्ञाता तो केवल जीव ही है, जो अतीन्द्रिय ज्ञान का ज्ञाता है। द्यानतराय कहते हैं कि ऐसे ही शुद्ध जीवद्रव्य के स्वरूप को जानो / उसका बोध ही सब सुखों का दाता है, सुख प्रदान करनेवाला है।





राग : गौरी, कवै निर्ग्रथ स्वरूप धर्मगा

# देखो भाई श्रीजिनराज विराजैं

देखो! भाई श्रीजिनराज विराजैं ॥टेक ॥  
कंचनमनिमय सिंहपीठ पर, अन्तरीछ प्रभु छाजै ॥

तीन छत्र त्रिभुवन जस जपैं, चौंसठि चमर समाजैं ।  
बानी जोजन घोर मोर सुनि, डर अहि पातक भाजैं ॥  
देखो! भाई श्रीजिनराज विराजैं ॥१॥

साढे -बारह कोड़ दुंदुभी, आदिक बाजे बाजैं ।  
वृक्ष अशोक दिपत भामण्डल, कोड़ि सूर शशि लाजैं ॥  
देखो! भाई श्रीजिनराज विराजैं ॥२॥

पहुपवृष्टि जलकन मंद पवन, इंद्र सेव नित साजैं ।  
प्रभु न बुलावै 'द्यानत' जावैं, सुरनर पशु निज काजैं ॥  
देखो! भाई श्रीजिनराज विराजैं ॥३॥

**अर्थ :** (इस भजन में समवशरण का वर्णन है।)

अरे भाई देखो, दर्शन करो ! श्री जिनराज विराजमान हैं । स्वर्ण के रत्नजड़ित सिंहासन से ऊपर आकाश में अधर आसीन होकर शोभायमान हैं । तीन छत्र -- तीन लोकों में व्याप्त आपके यश के प्रतीक हैं । ये आपके यश का बखान कर रहे हैं । चौंसठ देवगण मिलकर चंवर ढोर रहे हैं ।

योजन की दूरी तक आपकी वाणी सुनकर पाप इस प्रकार पलायित हो जाते हैं, हट जाते हैं जैसे मोर की धनि सुनकर सर्प डरकर भाग जाता है । दुंदुभि आदि साढे बारह करोड़ वाद्य बज उठते हैं । अशोक वृक्ष के नीचे विराजित आपका दिव्यगात और चारों ओर प्रकाशमान आभा-मंडल मनोहारी है, जिसके तेज व कांति के समक्ष करोड़ों सूर्य व चन्द्र का उजाला भी फीका लगता है ।

मंद बयार और पुष्पवृष्टि वातावरण को सुवासमय / सुगन्धित कर मुग्ध कर रही है। इन्द्र प्रतिदिन आपकी पूजा करता है। प्रभु वीतरागी हैं वे किसी को भी नहीं बुलाते हैं! द्यानतराय कहते हैं कि देव, मनुष्य, पशु सब अपनी कार्यसिद्धि के लिए स्वयं ही वहाँ समवशरण में खिंचे चले जाते हैं।



## देख्या मैंने नेमिजी प्यारा



देख्या मैंने नेमिजी प्यारा ॥टेक॥

मूरति ऊपर करों निछावर, तन धन जीवन जीवन सारा ॥

जाके नख की शोभा आगैं, कोटि काम छवि डारौं वारा ।  
कोटि संख्य रवि चन्द छिपत हैं, वपु की दयुति है अपरंपारा ॥१॥

जिनके वचन सुनें जिन भविजन, तजि गृह मुनिवर को व्रत धारा ।  
जाको जस इन्द्रादिक गावैं, पावैं सुख नासैं दुख भारा ॥२॥

जाके केवलज्ञान बिराजत, लोकालोक प्रकाशन हारा ।  
चरन गहेकी लाज निवाहो, प्रभुजी 'द्यानत' भगत तुम्हारा ॥३॥

**अर्थ :** अहो! मैंने भगवान नेमिनाथ के दर्शन किए। उस मुद्रा पर मेरा तन, धन, यौवन, जीवन सब न्यौछावर है, अर्पित है, समर्पित है।

जिनके चरणनखों से निसृत (निकलनेवाले) तेज की शोभा पर करोड़ों कामदेव की शोभा वारी जाये। उनके शरीर का तेज अपरंपार है, जिसका पार न पाया जा सके ऐसे उनके शरीर के तेज व आभा के समक्ष करोड़ों सूर्य और चन्द्र की ज्योति भी फीकी लगती हैं, वे उनके के प्रकाश में खो गए-से, छिप गए-से लगते हैं।

जिनके वचन सुनकर भव्यजन घरबार छोड़कर मुनि होकर महाव्रत धारण करते हैं। जिनका यश इन्द्रादिक देव गाते हैं, भक्ति में मग्न हो जाते हैं और उस सुख में अपने तीन दुःख के, पीड़ा के वेदना के भार को नष्ट कर देते हैं।

जो अरहन्त स्वरूप में केवलज्ञान सहित विराजते हैं व लोक-अलोक को प्रकाशित करते हैं, आलोकित करते हैं, देखते हैं, जानते हैं। ध्यानतराय विनती करते हैं कि मैं आपका भक्त हूँ, मैंने आपके चरणों की शरण ली है, आप मेरी लाज रखिए - मेरा निर्वाह कीजिए, मुझे निबाहिए अर्थात् मुझे भी भवसागर से पार लगाइये।



## धनि ते साधु रहत वनमाहीं



धनि ते साधु रहत वनमाहीं ।

शत्रु-मित्र सुख-दुःख सम जानैं, दिरसन देखत पाप पलाहीं ॥टेक ॥

अट्टाईस मूलगुण धारै, मन वच काय चपलता नाहीं ।

ग्रीष्म शैल शिखा हिम तटिनी, पावस बरखा अधिक सहाहीं ॥

धनि ते साधु रहत वनमाहीं ॥१॥

क्रोध मान छल लोभ न जानैं, राग-दोष नाहीं उनपाहीं ।

अमल अखंडित चिद्गुण मंडित, ब्रह्मज्ञान में लीन रहाहीं ॥

धनि ते साधु रहत वनमाहीं ॥२॥

तई साधु लहैं केवल पद, आठ काठ दह शिवपुरी जाहीं ।

'द्यानत' भवि तिनके गुण गावैं, पावैं शिवसुख दुःख नसाहीं ॥

धनि ते साधु रहत वनमाहीं ॥३॥

**अर्थ :** वे साधु धन्य हैं जो निर्जन-(एकान्त) वन में रहते हैं। उनके लिए शत्रुमित्र, सुख-दुख सब समान हैं। उनके (ऐसे गुरु के) दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं।

वे मुनि 28 मूल गुणों को धारण करते हैं, पालन करते हैं। उनके मन-वचन-काय की चंचलता नहीं होती। गर्मी की तपन में वे पहाड़ की छोटी पर, सर्दी में नदी के किनारे और वर्षाक्रितु में वृक्ष तले तपस्या करते हैं और सब परिषह सहन करते हैं।

वे क्रोध, मान, छल (माया) और लोभ इन चार कषायों को छोड़ चुके हैं, इससे उनके राग और द्वेष नहीं होता। वे अपने निर्मल चैतन्य स्वरूप में, अखंड आत्मस्वरूप के ज्ञान में लीन रहते हैं, मगन रहते हैं।

वे ही साधु केवलज्ञान की स्थिति को प्राप्त करते हैं। आठ प्रकार के कर्मरूपी ईधन को जलाकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। द्यानतराय कहते हैं कि जो भव्यजन उनके गुणों का स्मरण करते हैं वे दुःखों का नाश करके मोक्ष-सुख की प्राप्ति करते हैं।



## धनि धनि ते मुनि गिरी



धनि - धनि ते मुनि गिरी वनवासी ।

मार - मार जग जार जार तें, द्वादस व्रत तप अभ्यासी ॥टेक॥

कौड़ी लाल पास नहिं जाके, जिन छेदी आसापासी ।

आत्म - आत्म पर - पर जानै, द्वादश तीन प्रकृति नासी ॥१॥

जा दुःख देख दुःखी सब जग है, सो दुःख लख सुख है तासी ।

जाकों सब जग सुख मानत है, सो सुख जान्यो दुःखरासी ॥२॥

बाहिज भेष कहत अन्तर गुण, सत्य मधुर हित मित भासी ।  
'द्यानत' ते शिवपंथ पथिक हैं, पांव परत पातक जासी ॥३॥

**अर्थ :** अहो। वे मुनिराज जो पहाड़ों पर रहते हैं, वन में रहते हैं, धन्य हैं / जो बारह व्रत व तप की साधना करते हैं, उनका पालन कर, जगत को जलानेवाली काम की मार को नष्ट करते हैं।

जिनके पास एक कौड़ी भी नहीं है, जो सर्वांग रूप से, सब प्रकार सब ओर से आत्मा व पुद्गल के भेदज्ञान द्वारा पंद्रह प्रकार के प्रमाद को जीतते हैं, वश में करते हैं अर्थात् आत्मा को आत्मा व पुद्गल को जड़ जानकर आचरण करते हैं, उस

भेदस्थिति का ध्यान करते हैं वे मुनिराज धन्य हैं ।

जिन दुःखों को देखकर सारा जगत दुखी है, वे उन्हीं दुःखों को सुख का (निमित्त) कारण मानते हैं, ऐसे पौद्धलिक सुख को, जिसे सारा जगत सुख का कारण मानता है, वे दुःख के कारण हैं जिन्होंने यह जान लिया है वे मुनिराज धन्य हैं।

बाह्य के भेष से आंतरिक गुणों का अनुमान-ज्ञान होता है। जो सत्य, मीठे तथा हितकारी वचन बोलते हैं, ऐसे मुनिजन मोक्षमार्ग के पथिक हैं, राही हैं। जिधर से वे विचरण करते हैं उनके चरणों के प्रभाव से पापों का नाश होता है। उनके चरण वंदनीय हैं, पापनाशक हैं।



## धिक धिक जीवन

धिक! धिक! जीवन समकित बिना  
दान शील तप व्रत श्रुतपूजा,  
आतम हेत न एक गिना ॥

ज्यों बिनु कन्त कामिनी शोभा,  
अंबुज बिनु सरवर ज्यों सुना ।  
जैसे बिना एकड़े बिन्दी,  
ल्यों समकित बिन सरब गुना ॥१॥

जैसे भूप बिना सब सेना,  
नीव बिना मन्दिर चुनना ।  
जैसे चन्द बिहूनी रजनी,  
इन्हैं आदि जानो निपुना ॥२॥

देव जिनेन्द्र, साधु गुरु, करुना,  
धर्मराग व्योहार भना ।  
निहचै देव धरम गुरु आत्म,  
'द्यानत' गहि मन वचन तना ॥३॥

**अर्थ :** जिसके जीवन में सम्प्रकृत्व जागृत नहीं हुआ उसका जीवन को धिक्कार है। जिसके बिना दान, शील, तप, व्रत, श्रुतपूजा -- ये सब कार्यकारी नहीं होते।

जैसे बिना पति के स्त्री की शोभा नहीं होती, जैसे कमल दल के बिना सरोवर की शोभा नहीं होती; यह ठीक वैसा ही है कि जैसे किसी अंक के बिना शून्य (बिन्दी) का कोई महत्व नहीं होता। उसी प्रकार सम्प्रकृत्व के बिना, दूसरे सभी गुणों का कोई महत्व नहीं होता।

हे ज्ञानी! इसे ऐसे ही जानो कि जैसे राजा के बिना सेना, नींव के बिना किसी मन्दिर का निर्माण, जैसे चन्द्रमा बिना रात्रि सुशोभित नहीं होती।

व्यवहार से जिनेन्द्रदेव, साधुगण, करुणा, धार्मिक अभिरुचि को धर्म कहा गया है। द्यानतराय कहते हैं कि निश्चय से अपनी आत्मा ही देव है, धर्मगुरु है, उसकी ही मन-वचन-काय से विवेकपूर्वक आराधना कर।



## परम गुरु बरसत ज्ञान झरी



राग : मल्हार

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी ।  
हरषि-हरषि बहु गरजि-गरजि के मिथ्या तपन हरी ॥टेक॥

सरधा भूमि सुहावनि लागी संयम बेल हरी ।  
भविजन मन सरवर भरि उमड़े समुझि पवन सियरी ॥१॥

स्याद्वाद नय बिजली चमके परमत शिखर परी ।  
चातक मोर साधु श्रावक के हृदय सु भक्ति भरी ॥२॥

जप तप परमानन्द बढ्यो है, सुखमय नींव धरी ।  
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी ॥३॥

**अर्थ :** हे अर्हत् ! ध्यान-मुद्रा में आसीन व निमग्न आपके उपयोग में ज्ञान को वर्षा हो रही है, निरन्तर ज्ञानोपयोग की झङ्गी लग रही है। जिस प्रकार मेघों की गर्जन और वर्षा से तपन दूर होती है उस ही प्रकार दिव्यधनिरूपी ज्ञान की अजस्र धारा से मिथ्यात्व की तपन दूर हो रही है जिससे बहुत हर्ष हो रहा है।

श्रद्धा-भूमि सुहावनी है क्योंकि यही वह आधार है जिस पर संशयरूपी बेल का हरण हो जाता है अर्थात् संशयरूपी बेल नष्ट हो जाती है। जल से प्लावित होकर सरोवर के ऊँचे आ रहे जल स्तर की भाँति भव्यजनों के मन भक्ति से उमड़ रहे हैं, जैसे जल को छूकर बहते हुए पवन में शीतलता/ठंडक आ जाती है उसी प्रकार ज्ञानरूपी पवन में भी शीतलता आ रही है। स्याद्वाद एवं नय सिद्धान्तों की बिजली की कौंधाचमक अन्य मतों के मस्तक पर गिरकर उनकी धारणाओं को चूर-चूर कर देती है, ध्वस्त कर देती हैं। मेघ ऋतु में प्रसन्न होनेवाले पक्षी चातक और मोर की भाँति साधुजन के हृदय भक्ति से उल्लसित हो जाते हैं, भर जाते हैं।

जप, तप से परम आनन्द में निरन्तर वृद्धि हो रही है और ज्ञान का सदृढ़ आधार उस शुभ घड़ी में निर्मित होता है, तैयार हो रहा है। द्यानतराय कहते हैं कि समवसरण का पावन सान्निध्य वर्षा की भाँति है, जिससे समस्त संशयरूपी मैल धुलकर निर्मल ज्ञान में स्थिरता होती है। इस भजन में समवसरण में विराजित अहेत् की दिव्यधनि का वर्णन किया गया है।



## प्रभु तेरी महिमा किहि



तर्ज : सजनवा बैरी हो गये हमार

प्रभु तेरी महिमा किहि मुख गावैं  
गरभ छमास अगाउ कनक नग सुरपति नगर बनावैं ॥टेक॥

क्षीर उदधि जल मेरु सिंहासन, मल मल इन्द्र न्हुलावैं ।  
दीक्षा समय पालकी बैठो, इन्द्र कहार कहावैं ॥  
प्रभु तेरी महिमा किहि मुख गावैं ॥१॥

समोसरन रिध ज्ञान महातम, किहिविधि सरब बतावैं ।  
आपन जातबात कहा शिव, बात सुनैं भवि जावैं ॥  
प्रभु तेरी महिमा किहि मुख गावैं ॥२॥

पंच कल्यानक थानक स्वामी, जे तुम मन वच ध्यावैं ।  
'ध्यानत' तिनकी कौन कथा है, हम देखैं सुख पावैं ॥  
प्रभु तेरी महिमा किहि मुख गावैं ॥३॥

**अर्थ :** हे भगवान ! हम किस मुँह से आपकी महिमा का गुणगान करें! आपके गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही इन्द्र के द्वारा रत्न व स्वर्ण से जड़ित नगर की रचना की जाती है।

जन्म के समय इन्द्र मेरू पर्वत पर ले जाकर क्षीरसागर के जल से महा-- प्रक्षालन करता है और दीक्षा के समय इन्द्र स्वयं कहार बनकर आपको पालकी में बैठा कर ले जाता है।

समवशरण की ऋद्धि अनुपम होती है। उसकी ऋद्धि और आपके ज्ञान के महात्म्य को किस विधि से बताया जाए? दिव्यध्वनि से ज्ञान का उद्घाटन होता है। केवल अपने ही चैतन्य स्वरूप की बात करके, सुन करके भव्य पुरुष मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

हे स्वामी ! आपके पाँच कल्याणक होते हैं (पाँच कल्याणकारी घटनाएँ होती हैं) उनका जो मन-वचन से ध्यान-चिंतन करते हैं, यानतराय कहते हैं कि उनकी तो बात भी निराली है / हम तो उन कल्याणकों की बातों को देख सुनकर ही सुखी/ आनन्दित हो जाते हैं।

नग = पर्वत; महातम=महात्म्य, महिमा



## प्राणी आत्मरूप अनूप है

प्राणी! आत्मरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल  
यह सब कर्म उपाधि है, राग दोष भ्रम जाल ॥टेक ॥



कहा भयो काई लगी, आतम दरपनमाहिं ।  
ऊपरली ऊपर रहै, अंतर पैठी नाहिं ॥  
प्राणी! आतमरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥१॥

भूलि जेवरी अहि, मुन्यो, ढूँठ लख्यो नररूप ।  
त्यों ही पर निज मानिया, वह जड़ तू चिद्रूप ॥  
प्राणी! आतमरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥२॥

जीव-कनक तन मैलके, भिन्न भिन्न परदेश ।  
माहैं, माहैं संध है, मिलैं नहीं लव लेश ॥  
प्राणी! आतमरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥३॥

घन करमनि आच्छादियो, ज्ञानभानपरकाश ।  
है ज्योंका त्यों शास्वता, रंचक होय न नाश ॥  
प्राणी! आतमरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥४॥

लाली झलकै फेटक में, फेटक न लाली होय ।  
परसंगति परभाव है, शुद्धस्वरूप न कोय ॥  
प्राणी! आतमरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥५॥

त्रस थावर नर नारकी, देव आदि बहु भेद ।

निहचै एक स्वरूप हैं, ज्यों पट सहज सफेद ॥  
प्राणी! आत्मरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥६॥

गुण ज्ञानादि अनन्त हैं, परजय सकति अनन्त ।  
'द्यानत' अनुभव कीजिये, याको यह सिद्धन्त ॥  
प्राणी! आत्मरूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥७॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! इस आत्मा का स्वरूप अद्भुत है, अनुपम है । यह सदैव तीनों काल में पर से भिन्न है । राग-द्वेष का जाल भ्रम पैदा करनेवाला है और यह सब कर्मजन्य है ।

क्या हुआ यदि आत्मा के स्वच्छ दर्पण पर काई लग गई? यह काई ऊपर ही लगी हुई है । उस काई का दर्पण के अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है ।

जैसे जेवड़ी (रस्सी) को भूल से साँप समझ लिया और ढूँठ (लकड़ी) को मनुष्य के समझ लिया उसी प्रकार पर को अपना मान लिया । जब भी तू यह बात समझ लेगा कि देह ढूँठ है - जड़ है और तू उससे भिन्न है, चैतन्य है तो तू पर से भिन्न आत्मा को जान जायेगा ।

जैसे स्वर्ण व मैल परस्पर भिन्न हैं उसी प्रकार यह जीव भी पर से भिन्न है, भिन्न प्रदेशवाला है । दोनों मिले हुए हैं, साथ-साथ हैं, फिर भी दोनों एक-दूसरेरूप नहीं होते, परस्पर में किंचित् भी नहीं मिलते ।

ज्ञानरूपी सूर्य पर कर्मरूपी बादल घने रूप से छा रहे हैं परन्तु बादल से ढँक जाने पर भी सूर्य सदैव प्रकाशवान ही रहता है । वह ज्यों का त्यों रहता है । उसका कभी भी किंचित् भी नाश नहीं होता ।

लाल रंग के सम्पर्क से स्फटिक में लाल प्रकाश झलक जाता है, परन्तु इससे स्फटिक लाल रंग का नहीं हो जाता । इसी प्रकार पर की संगति पर-रूप की है - वह अपने-रूप, स्व-रूप की कभी नहीं होती ।

जीव के त्रस, स्थावर, मनुष्य, नारकी और देव इस प्रकार अनेक भेद हैं । पर इन सबमें मूलस्वरूप निश्चय से एक ही है । जैसे कपड़ा अपने मूलरूप में सफेद - स्वच्छ होता है, पर भिन्न भिन्न रंगों को संगत से वह भिन्न-भिन्न रंग का दिखाई देता है ।

ज्ञान आदि गुण अनन्त हैं, पर्यायों की शक्ति भी अनन्त है । पर को जय / जीतने की शक्ति भी अनन्त है । द्यानतराय कहते हैं कि इस सिद्धान्त को समझकर इसका अनुभव करो ।





# प्राणी लाल छांडो मन चपलाई

प्राणी लाल! छांडो मन चपलाई...

देखो तन्दुलमच्छ जु भनौं, लहै नरक दुखदाई ॥टेक॥

धारै मैन दया जिनपूजा, काया बहुत तपाईं ।

मन को शल्य गयो नहिं जब लों, करनी सकल गंवाई ॥१॥

बाहूबल मुनि ज्ञान न उपज्यो, मन की खुटक न जाई ।  
सुनते मान तज्यो मन को तब, केवलजोति जगाई ॥२॥

प्रसनचंद रिषि नरक जु जाते, मन फेरत शिव पाई ।  
'तन वचन वचन' मन को, पाप कह्यो अधिकाई ॥३॥

देंहिं दान गहि शील फिरै बन, परनिन्दा न सुहाई ।  
वेद पढ़ें निरग्रंथ रहें जिय, ध्यान बिना न बड़ाई ॥४॥

त्याग फरस रस गंध वरण सुर, मन इनसों लौ लाई ।  
घर ही कोस पचास भ्रमत ज्यों, तेली को वृष भाई ॥५॥

मन कारण है सब कारज को, विकलप बंध बढ़ाई ।  
निरविकलप मन मोक्ष करत है, सूधी बात बताई ॥६॥

**'द्यानत' जे निज मन वश करि हैं, तिनको शिवसुख थाई ।  
बार बार कहुं चेत सवेरो, फिर पाई पछताई ॥७॥**

**अर्थ :** हे प्राणी! हे प्रिय ! तुम मन की चंचलता को छोड़ो। देखो, तंदुलमच्छ ने मन की चपलता के कारण नरक के दुखदायी कष्ट पाए।

अरे, मौन धारण किया, दया भी की, जिनपूजा भी को और काया को बहुत साधा भी, पर जब तक मन का शल्य न निकला, तब तक सब क्रियाएँ व्यर्थ ही गई।

मन में शल्य होने पर बाहुबली को केवलज्ञान नहीं हो सका। मन की शल्य बनी ही रहीं और जैसे ही बात सुनकर मान छूटा, तत्काल केवलज्ञान दीप का प्रकाश जगमगा उठा।

कुछ ऋषि तपस्वी जो नरक में जाते, उनका मन बदलते ही, चिन्तन की दिशा बदलते ही वे मोक्षगामी हुए। अरे, तन से अधिक वचन से और वचन से अधिक मन से पाप होता है।

दान दिया, शील ग्रहण किया, परनिन्दा भी नहीं की। वेद पढ़े, ज्ञानी हुए, सब परिग्रह छोड़ दिया, परन्तु ध्यान के बिना ये सब महत्त्व न पा सके।

स्पर्श, रस, गंध-वर्ण, स्वर अर्थात् पाँचों इन्द्रियों के विषयों को छोड़। जो भी इसमें मन लगाते हैं वे कोल्हू के बैल जो पचास कोस का चक्कर लगाने पर भी वहीं का वहीं रहता है, जैसी दशा को प्राप्त होते हैं।

सब कार्यों के लिए मन ही कारण है। मन से ही विकल्प होते हैं और बंध बढ़ते हैं। निर्विकल्प मन ही मोक्ष को प्राप्त करता है - सीधी बात यह बताई गई है।

द्यानतराय कहते हैं कि जो मन को वश में करते हैं वे मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं। अरे, तुझे बार-बार समझाते हैं। जब समझ आती है तभी जागृति होती है, सवेरा होता है। अन्यथा पीछे पछताना पड़ेगा।



## **प्रानी ये संसार असार है**

**प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ।  
जे जे उपजैं भूमिपै, जमसौं छूटैं नाहिं ॥टेक ॥**



इन्द्र महा जोधा बली, जीत्यो रावनराय ।  
रावन लछमनने हत्यो, जम गयो लछमन खाय ॥  
प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥१॥

कंस जरासंध सूरमा, मारे कृष्ण गुपाल ।  
ताको जरदकुमार ने, मार्यो सोउ काल ॥  
प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥२॥

कई बार छत्री हते, परशुराम वल साज ।  
मार्यो सोउ सुभूमिने, ताहि हन्यो जमराज ॥  
प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥३॥

सुर नर खग सब वश करे, भरत नाम चक्रेश ।  
बाहूबलपै हारकै, मान रह्यो नहिं लेश ॥  
प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥४॥

जिनकी भौहैं फरकतैं, डरते इन्द्र फनिंद ।  
पाँयनि परवत फोरते, खाये काल-मृगिंद ॥  
प्रानी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥५॥

नारी संकलसारखी, सुत फाँसी अनिवार ।  
घर बंदीखाना कहा, लोभ सु चौकीदार ॥

**प्राणी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥६॥**

**अन्तर अनुभव कीजिये, बाहिर करुणाभाव ।  
दो वातनिकरि हुजिये, 'द्यानत' शिवपुरराव ॥  
प्राणी! ये संसार असार है, गर्व न कर मनमाहिं ॥७॥**

**अर्थ :** हे प्राणी ! यह संसार अपार है, साररहित है। इसके विषय में तू अपने मन में गर्व / मान मत कर । जो-जो भी इस पृथ्वी पर जन्मे हैं, वे कोई भी यम से बचे नहीं है अर्थात् जो जन्मता है वह मरता है।

इन्द्र जैसे महान बली योद्धा को रावण ने जीत लिया। महाबली रावण को वीर लक्ष्मण ने मारा और उस वीर लक्ष्मण को भी यम ने खा लिया।

गउँ पालनेवाले श्रीकृष्ण ने कंस और जरासंध जैसे वीर पुरुषों को मारा, उस श्रीकृष्ण को जरदकुमार ने मार डाला, उस जरदकुमार को भी काल ने मार डाला।

बलपूर्वक परशुराम ने कई बार क्षत्रियों का नाश किया, उनको सुभूमि ने मारा, यम ने उसको भी मार डाला।

भरत चक्रवर्ती ने देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि को वश में किया पर वे बाहुबली से हार गए और उनका तनिक भी मान नहीं रहा अर्थात् उनका मान खण्डित हो गया।

जिनकी भौंहें फड़कते ही, भृकुटि तनते ही इन्द्र नागेन्द्र भयाकुल हो जाते थे, अपने पाँवों से जो पर्वत को भी तोड़ देते, उनको भी कालरूपी सिंह ने खा लिया।

नारी साँकल के समान तथा सुत - बेटा उस फाँसी के समान है जिसका निवारण करना कठिन है । घर एक कारागार के समान है और लोभ चौकीदार है।

अरे, अपने अन्तर में अनुभव करो और बाहर करुणाभाव रखो। द्यानतराय कहते हैं कि ये दोनों बातें जिसमें होती हैं वह मोक्षपुरी का राजा होता है ।



**भजि मन प्रभु श्रीनेमि को**



भजि मन प्रभु श्रीनेमि को, तजी राजुल नारी ॥टेक॥  
जाके दरसन देखतें, भाजै दुख भारी ॥

ज्ञान भयो जिनदेव को, इन्द्र अवधि विचारी ।  
धनपति ने समोसरन की, कीनी विधि सारी ॥१॥

तीन कोट चहुं थंभश्री, देखैं दुखहारी ।  
द्वादश कोठे बीच में, वेदी विस्तारी ॥२॥

तामैं सोहैं नेमिजी, छयालिस गुणधारी ।  
जाकी पूजा इन्द्र ने, करी अष्ट प्रकारी ॥३॥

सकल देव नर जिहिं भजैं, बानी उच्चारी ।  
जाको जस जम्पत मिले, सम्पत्त अविकारी ॥४॥

जाकी वानी सुनि भये, केवल दुतिकारी ।  
गनधर मुनि श्रावक सुधी, ममतावुधि डारी ॥५॥

राग-दोष मद मोह भय, जिन तिस्ता टारी ।  
लोक-अलोक त्रिकाल की, परजाय निहारी ॥६॥

# ताको मन वच काय सों, वन्दना हमारी । 'द्यानत' ऐसे स्वामि की, जइये बलिहारी ॥७॥

**अर्थ :** हे मन! तू श्री नेमिनाथ की भजन बंदना कर, उन्होंने अपनी होनेवाली पत्नी स्त्री का नेह छोड़ दिया। उनके दर्शन मात्र से ही कठिन दुःख भी दूर हो जाते हैं।

उन नेमिनाथ जिनदेव को केवलज्ञान हुआ। तब इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से यह जाना और कुबेर ने आकर समवसरण की रचना की और सारे नियोगों (निर्धारित कर्तव्यों) का निर्वाह किया।

तीन कोट बनाए, उनमें चारों ओर स्तंभ (खंभे) लगाए, जिन्हें देखने मात्र से ही प्रसन्नता होतीगैरा का दूर हो जाता है कि सरह हो जनाए और बीच में गंधकुटी/वेदी बनाई।

उस गंधकुटी में अर्हत के छियालीस गुणों के धारी भगवान नेमिनाथ विराजमान हैं। इन्द्र ने उन नेमिनाथ की अष्टद्रव्य से पूजा की।

सब देव व मनुष्य जिसका गुणगान करते हैं वह दिव्यध्वनि खिरी (प्रकट हुई)। जिसका यश गाने से, जिसका ध्यान-चिन्तन करने से ही दोषरहित/निर्दोष सम्पत्ति (शुद्ध आत्मोपलब्धि रूपी सम्पत्ति) की प्राप्ति होती है।

उस वाणी को सुन करके गणधर प्रकाशवान केवलज्ञान के धारी हो जाते हैं, केवली हो जाते हैं ; मुनि, श्रावक आदि सब ज्ञान में निमग्न होकर ममता को त्याग देते हैं, छोड़ देते हैं / उस वाणी को सुनने से राग-द्वेष-मोह, भय-तृष्णा आदि सब मिट जाते हैं तथा लोक- अलोक के सभी द्रव्यों की त्रिकाल की पर्यायं युगपत (एकसाथ) दीखने लगती हैं ।

ऐसे भगवान नेमिनाथ की हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं । द्यानतराय कहते हैं कि ऐसे प्रभु के चरणों में मैं समर्पित होता हूँ।



## भाई अब मैं ऐसा जाना



भाई! अब मैं ऐसा जाना ...  
पुद्गल दरब अचेत भिन्न है, मेरा चेतन वाना ॥टेक॥

कलप अनन्त सहत दुख बीते, दुख कौं सुख कर माना ।

सुख दुख दोऊ कर्म अवस्था, मैं कर्मनतैं आना ॥  
भाई! अब मैं ऐसा जाना ... ॥१॥

जहाँ भोर था तहाँ भई निशि, निशि की ठौर बिहाना ।  
भूल मिटी निजपद पहिचाना, परमानन्द-निधाना ॥  
भाई! अब मैं ऐसा जाना ... ॥२॥

गूँगे का गुड़ खाँय कहैं किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना ।  
'द्यानत' जिन देख्या ते जानें, मेंढक हंसपखाणा ॥  
भाई! अब मैं ऐसा जाना ... ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई ! मैंने अब यह जान लिया है कि पुद्गला चेतनारहित है, अचेतन है । मेरा आत्मा चेतन है । आत्मा व पुद्गल दोनों भिन्न हैं ।

अनन्त कल्प दुःख सहन करते हुए बीत गए। मैंने दुःख को ही सुख मान लिया । सुख और दुःख दोनों कर्मों की अवस्थाएँ हैं । मैं तो कर्मों से अन्य हूँ, अलग हूँ, भिन्न हूँ ।

जहाँ सुबह (भोर) थी वहाँ रात हो गई । रात के बाद फिर सुबह होगी, इस प्रकार सुख-दुख, पुण्य-पाप का क्रम चलता रहता है । पर ये भी अलग-अलग, भिन्न-भिन्न नहीं हैं, ये तो कर्म ही हैं । जब यह भूल मिट गई, श्री जिनेन्द्र के चरण - कमलों का आश्रय लिया और निज को पहचाना तब परमानन्द की प्राप्ति हुई ।

गूँगा यद्यपि गुड़ खाकर उसका स्वाद जानता है, पर उसे व्यक्त करने में, कहने में असमर्थ होता है । उसी भाँति मैंने चेतनरूप को जाना, पहचाना, अनुभव किया पर उस अनुभूति को वचनों द्वारा कहा नहीं जा सकता । द्यानतरायजी कहते हैं कि लोक में प्रसिद्ध उक्ति है कि हंस और मेंढक दोनों जल में ही रहते हैं पर दोनों में बहुत अन्तर है, भेद है, इनका भेद (मेंढक और हंस) जिसने देखा है, अनुभव किया है, वह ही वास्तविकता जानता है । उसी प्रकार जिसने आत्मा व जड़ के भेद को जान लिया, अनुभव कर लिया वह ही आत्मा को जानता है ।



**भाई कहा देख गरवाना रे**



भाई! कहा देख गरवाना रे ॥  
 गहि अनन्त भव तैं दुख पायो, सो नहिं जात बखाना रे ॥टेक ॥

माता रुधिर पिता के वीरज, तातैं तू उपजाना रे ।  
 गरभ वास नवमास सहे दुख, तल सिर पांव उचाना रे ॥  
 भाई! कहा देख गरवाना रे ॥१॥

मात अहार चिगल मुख निगल्यो, सो तू असन गहाना रे ।  
 जंती तार सुनार निकालै, सो दुख जनम सहाना रे ॥  
 भाई! कहा देख गरवाना रे ॥२॥

आठ पहर तन मलि-मलि धोयो, पोष्यो रैन बिहाना रे ।  
 सो शरीर तेरे संग चल्यो नहिं, खिनमें खाक समाना रे ॥  
 भाई! कहा देख गरवाना रे ॥३॥

जनमत नारी, बाढ़त भोजन, समरथ दरब नसाना रे ।  
 सो सुत तू अपनो कर जाने, अन्त जलावै प्राना रे ॥  
 भाई! कहा देख गरवाना रे ॥४॥

देखत चित्त मिलाप हरै धन, मैथुन प्राण पलाना रे ।  
 सो नारी तेरी है कैसे, मूर्वें प्रेत प्रमाना रे ॥

# भाई! कहा देख गरवाना रे ॥५॥

पांच चोर तेरे अन्दर पैठे, ते ठाना मित्राना रे ।  
खाय पीय धन ज्ञान लूटके, दोष तेरे सिर ठाना रे ॥६॥

देव धरम गुरु रतन अमोलक, कर अन्तर सरधाना रे ।  
'द्यानत' ब्रह्मज्ञान अनुभव करि, जो चाहै कल्याना रे ॥७॥

**अर्थ :** अरे भाई ! क्या देखकर तुम इतना गर्व कर रहे हो! अनन्त भव धारणकर तुमने जो दुख पाया है, उन दुखों का वर्णन किया जाना संभव नहीं है।

माता के रज, पिता के वीर्य से तेरी उत्पत्ति हुई, गर्भ में नौ महीने दुःख पाए, जहाँ सिर नीचे तथा पाँव ऊपर किये रहे।

गर्भवास में माता ने मुँह से चबाकर जो आहार निगला वह भोजन ही तुझे खाने को मिला। जैसे सुनार जंत्री में तार खींचता है, जन्म के समय उसी प्रकार गर्भ से बाहर निकला और दुःख भोगे।

आठों पहर इस शरीर को स्वच्छता के लिए बार-बार तन धोता रहता है, नहाता रहता है और दिन और रात इसके पोषण में लगा रहता है। वह शरीर तेरे साथ नहीं चलता और क्षणमात्र में खाक में मिल जाता है।

यह देह स्त्री के द्वारा उत्पन्न की जाती है, भोजन के द्वारा यह बढ़ती है, बड़ी होती है। तू जिस पुत्र को अपना जानता है वही तुझे, तेरी इस देह को अन्त में जला देता है।

स्त्री जो देखते ही चित्त का हरण कर लेती है, उससे मिलाप होता है तो धन हर लेती है और मैथुन में शक्ति का हरण कर होती है। मरते ही जो तुझे प्रेत समान मानने लगती है वह नारी तेरी कैसे है?

पाँच चोर (इन्द्रियाँ) तेरे भीतर बैठे हैं उनसे तूने मित्रता कर रखी है। वे खा-पीकर के, तेरे ज्ञान-धन का नाश करके, सारा दोष तेरे ही सिर मँढ़ देंगे ।

अरे! देव, धर्म, गुरु ये अनमोल रत्न हैं। इनमें अंतरंग से श्रद्धा कर। द्यानतराय कहते हैं कि जो तू अपना कल्याण चाहता है तो ब्रह्मज्ञान का, अपनी आत्मा का अनुभव कर।





# भाई कौन कहै घर मेरा

राग : आसावरी जोगिया, मोहे भूल गए साँवरिया

भाई कौन कहै घर मेरा...

जे जे अपना, मान रहे थे, तिन सबने निरवेरा ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा...

प्रात समय नृप मन्दिर ऊपर, नाना शोभा देखी ।  
पहर चढ़े दिन काल चालतैं, ताकी धूल न पेखी ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥१॥

राज कलश अभिषेक लच्छमा, पहर चढ़ें दिन पाई ।  
भई दुपहर चिता तिस चलती, मीतों ठोक जलाई ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥२॥

पहर तीसरे नाचैं गावै, दान बहुत जन दीजे ।  
सांझ भई सब रोवन लागे, हाहाकार करीजे ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥३॥

जो प्यारी नारी को चाहै, नारी नर को चाहै ।  
वे नर और किसी को चाहैं, कामानल तन दाहै ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥४॥

जो प्रीतम लखि पुत्र निहोरै, सो निज सुत को लोरै ।  
सो सुत निज सुतसों हित जोरै, आवत कहत न ओरै ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥५॥

कोड़ाकोड़ि दरब जो पाया, सागरसीम दुहाई ।  
राज किया मन अब जम आवै, विषकी खिचड़ी खाई ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥६॥

तू नित पोखै वह नित सोखै, तू हरै वह जीते ।  
'द्यानत' जु कछु भजन बन आवै, सोई तेरो मीतै ॥  
भाई कौन कहै घर मेरा... ॥७॥

**अर्थ :** अरे भाई ! कौन कहता है कह सकता है कि यह घर मेरा है ! जो-जो इसको अपना मान रहे थे उन सभी ने इसको छोड़ दिया है । सुबह के समय राजा ने मन्दिर / महल के ऊपर कई प्रकार के शोभारूप देखे, पर एक पहर दिन चढ़ने पर उसकी धूल भी नहीं देख पाये ।

एक पहर दिन चढ़ने पर राज्याभिषेक हुआ, लक्ष्मी की प्राप्ति हुई । दोपहर बीतते-बीतते उसको चिता जलने लगी और मित्रगण उसके ठोके देकर जलाने लगे ।

कभी कहीं तीसरे प्रहर कोई शुभ कार्य हुआ तो खूब नाच-गान हुए, बहुत सा दान दिया गया और सौँझ के समय फिर कोई अशुभ घटना हो गई और फिर सब रोने लगे, हाहाकार हो गया ।

कोई पुरुष अपनी स्त्री को बहुत चाहता है और स्त्री पुरुष को चाहती है, तो वह ही पुरुष काम के वशीभूत होकर उसमें जलता हुआ फिर दूसरी स्त्री को चाहने लगता है ।

प्रियतम को देखकर पुत्र से अनुगृहीत होती है और अपने पुत्र को लोरियाँ सुनाती है । वह लड़का बड़ा होकर अपने लड़के से राग करने लगता है फिर वह अपने माता-पिता के कहने पर भी उनकी ओर नहीं आता ।

कोड़ा-कोड़ि द्रव्य / धन पाया, जिसकी तुलना सागर से की जाती है, उस पर शासन किया, आधिपत्य रखा पर मृत्यु आई तो कड़ी खीचड़ी खाई । मृत्यु के दिन जो भोजन किया जाता है वह विष समान कड़ा प्रतीत होता है ।

जिस शरीर का तू नित्य पोषण करता है वह निरन्तर सूखता जाता है । तू हार जाता है और वह जीत जाता है । द्यानतराय

कहते हैं कि ओ मित्र! ऐसे में जो कुछ भजन, आत्म-चिंतन तेरे द्वारा किया जा सके वह ही तेरा है, अन्य कुछ भी तेरा नहीं है।



तर्ज़ : भविजन, ध्याओ आत्मराम

## भाई कौन धरम हम पालें

भाई! कौन धरम हम पालें ...  
एक कहैं जिहि कुलमें आये, ठाकुर को कुल गा लैं ॥  
भाई! कौन धरम हम पालें ... ॥१॥

शिवमत बौध सु वेद नयायक, मीमांसक अरु जैना ।  
आप सराहैं आत्म गाहैं, काकी सरधा ऐना ॥  
भाई! कौन धरम हम पालें ... ॥२॥

परमेसुरपै हो आया हो, ताकी बात सुनी जै ।  
पूछैं बहुत न बोलैं कोई, बड़ी फिकर क्या कीजै ॥  
भाई! कौन धरम हम पालें ... ॥२॥

जिन सब मत के मत संचय करि, मारग एक बताया ।  
'द्यानत' सो गुरु पूरा पाया, भाग हमारा आया ॥  
भाई! कौन धरम हम पालें ... ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई! हम किस धर्म के अनुयायी बनें? किस धर्म का पालन करें? एक कहता है कि जिस कुल में जन्म लिया, उस कुल के धर्म को क्यों छोड़ें!

शैव, बुद्ध, वैदिक, नैयायिक, मीमांसक और जैन सब अपने-अपने को सर्वोपरि व सच्चा बताते हैं, तब किस की श्रद्धा करें?

जिसने परमात्म पद प्राप्त कर लिया है, उसकी बात सुनो / सबको पूछो - बोलो कुछ मत। फिर किसको चिन्ता करना।

जिनेन्द्र / तीर्थकर ने सबके मत की समीक्षाकर साररूप में एक ही मार्ग बताया हैं। द्यानतराय कहते हैं कि अतः उन्हें ही पूर्ण (जिसमें कोई कमी न हो) गुरु पाया। यह हमारा सौभाग्य है कि हमने ऐसा गुरु पा लिया।



## भाई जानो पुद्गल न्यारा रे



राग : काढी

भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ...  
क्षीर नीर जड़ चेतन जानो, धातु परखान विचारा रे ॥टेक॥

जीव करम को एक जाननो, भाख्यो श्रीगणधारा रे ।  
इस संसार दुःखसागर में, तोहि भ्रमावनहारा रे  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥१॥

ग्यारह अंग पढ़े सब पूरब, भेद-ज्ञान न चितारा रे ।  
कहा भयो सुवटाकी नाई, रामरूप न निहारा रे ॥  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥२॥

भवि उपदेश मुक्त धर्म पहुँचाये, आप रहे संसारा रे ।  
ज्यों मलाह पर पार उतारै, आप बारका वारा रे ॥

भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥३॥

जिनके वचन ज्ञान परगासैं, हिरदै मोह अपारा रे ।  
ज्यों मशालची और दिखावै, आप जात अँधियारा रे ॥  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥४॥

बात सुनैं पातक मन नासै, अपना मैल न झारा रे ।  
बांदी परपद मलि मलि धोवै, अपनी सुधि न संभारा रे ॥  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥५॥

ताको कहा इलाज कीजिये, बूड़ा अम्बुधि धारा रे ।  
जाप जप्यो बहु ताप तप्यो पर, कारज एक न सारा रे ॥  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥६॥

तेरे घट अन्तर चिनमूरति, चेतन पद उजियारा रे ।  
ताहि लखै तासौं बनि आवै, 'द्यानत' लहि भव पारा रे ॥  
भाई! जानो पुद्गल न्यारा रे ... ॥७॥

**अर्थ :** अरे भाई ! इस पुद्गल को अपने से (आत्मा से) भिन्न अर्थात् न्यारा जानो । जैसे दूध व पानी और धातु व पाषाण भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही जड़ व चेतन भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा विचार करो ।

श्री गणधरदेव ने कहा है कि जो जीव आत्मा व कर्म को एक रूप जानता है वह इस संसार के दुःखों के सागर में भ्रमता ही रहता है, भटकता ही रहता है ।

ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ लिए, उन्हें तोते की भाँति रट लिए, परन्तु देह और आत्मा के बीच भेद-ज्ञान नहीं किया, नहीं जाना तो उसने अपने शिव-स्वरूप को नहीं देखा, उसकी झलक भी नहीं पाई ।

ऐसा व्यक्ति दूसरों को उपदेश देता रहता है, उसका उपदेश सुनकर प्राणी मुक्त हो जाते हैं, परन्तु वह स्वयं इस संसार में ही रह जाता है। जैसे मल्लाह दूसरे को तो किनारे पर उतार देता है, पर नैया को नहीं छोड़ने के कारण आप स्वयं वहीं रुक जाता है।

जिसके वचन दूसरों के लिए ज्ञान का प्रकाश करते हैं, पर उसके स्वयं के हृदय में मोह-राग है, जिसकी कोई थाह नहीं है, तो उसकी दशा उस मशालची की तरह है जो औरों को तो प्रकाशित करता है और स्वयं अंधकार में ही रहता है।

जिसकी चर्चा सुनकर दूसरों के पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु चर्चा करनेवाला अपना मैल नहीं धोता है। उसकी दशा उस दासी की-सी है जो औरों को मलमलकर नहलाती है और स्वयं अपनी सुधि नहीं रखती।

उसका क्या इलाज किया जावे, क्या उपाय किया जावे, जो समुद्र की गहरी धारा में झूब रहा हो। बहुत जाप जपे, बहुत तप किए, पर उनसे एक भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

अरे ! तेरे स्वयं के भीतर यह चैतन्य आत्मा है वह ज्ञानवान है, उज्ज्वल है। द्यानतराय कहते हैं कि उसको जिसने देखा, वह सफल होकर भव- समुद्र के पार हो जाता है।



## भाई ज्ञान बिना दुख पाया रे



राग : काफी, इक योगी असन बनावे

भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥टेक ॥  
भव दश आठ उस्वास स्वास में, साधारन लपटाया रे ॥

काल अनन्त यहां तोहि बीते, जब भई मंद कषाया रे ।  
तब तू तिस निगोद सिंधूतैं, थावर होय निसारा रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥१॥

क्रम क्रम निकस भयो विकलत्रय, सो दुख जात न गाया रे ।  
भूख प्यास परवश सहि पशुगति, वार अनेक विकाया रे ॥

भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥२॥

नरकमाहिं छेदन भेदन बहु, पुतरी अग्न जलाया रे ।  
सीत तपत दुरगंध रोग दुख. जानैं श्रीजिनराया रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥३॥

भ्रमत भ्रमत संसार महावन, कबहुँ देव कहाया रे ।  
लखि परविभौ सह्यौ दुख भारी, मरन समय बिललाया रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥४॥

पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि, काल अनन्त गमाया रे ।  
पाप पुन्य जब भये बराबर, तब कहुँ नरभव पाया रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥५॥

नीच भयो फिर गरभ खयो फिर, जन्मत काल सताया रे ।  
तरुणपनै तू धरम न चेते, तन-धन-सुत लौ लाया रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥६॥

दरबलिंग धरि धरि बहु मरि तू, फिरि फिरि जग भमि आया रे ।  
'धनत' सरधाजुत गहि मुनिव्रत, अमर होय तजि काया रे ॥  
भाई! ज्ञान बिना दुख पाया रे ॥७॥

**अर्थ :** अरे भाई ! ज्ञान के बिना इस जीव ने बहुत दुःख पाए हैं । निगोदकाय में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण तक इसने किया है ।

इसप्रकार निगोद में अनन्तकाल बीत जाने पर जब कषायों में मंदता आई तब जीव निगोदकाय के समुद्र से बाहर होकर निकलकर स्थावर पर्याय में उत्पन्न हुआ ।

फिर क्रम से वहाँ से निकल कर दो, तीन, चार इन्द्रिय अर्थात् विकलेन्द्रिय हुआ और बहुत दुःख पाए, वे दुःख बताये नहीं जा सकते । कभी भूख व प्यास के दुःखोंवाली पराधीन और पीड़ित पशुगति पाई जिसमें अनेक बार बेचा गया ।

नरक में छेदन-भेदन के बहुत दुःख भुगते । आँखों की कोमल पुतलियाँ अग्नि से जलाई गईं । शीत व ताप, दुर्गाध, रोग आदि के दुःख भोगे, जिसे सर्वज्ञदेव श्री जिनवर ही जानते हैं ।

इस संसाररूपी वन में भ्रमण करते-करते कभी देवगति पाई और देव कहलाया । वहाँ भी दूसरों के वैभव को देख-देखकर ईर्ष्यावश दुःखी होता रहा और मृत्यु का समय निकट आने पर दुःखी हुआ ।

इस प्रकार पाप के कारण नरक गति व तिर्यच गति में तथा पुण्य के कारण देव बनकर अनन्तकाल बिता दिया । जब पाप और पुण्य बराबर हुए तब कहीं मनुष्य देह पाई ।

उसमें भी कभी नीच प्रवृत्तिवाला हुआ, कभी गर्भपात आदि द्वारा अल्प आयुवाला हुआ, कभी जन्म होते ही सताया गया । जवानी में धर्म के प्रति रुचि नहीं हुई, उस समय तन, धन, पुत्र आदि में रमकर सुख मानने लगा ।

हे भाई! द्रवलिंग धारण करके बहुत बार मरा और सारा जगत घूम चुका, भ्रमण कर चुका । ध्यानतराय कहते हैं कि तू श्रद्धासहित मुनिव्रत ग्रहणकर, उसका पालन कर जिससे देह से छुटकर तू अमर हो जाए, जन्म-मरण से छुटकारा पा जाए ।



## भाई ज्ञानी सोई कहिये



राग : आसावरी, इक योगी असन बनावे

भाई! ज्ञानी सोई कहिये ॥टेक ॥  
करम उदय सुख दुख भोगतैं, राग विरोध न लहिये ॥

कोई ज्ञान क्रियातैं कोऊ, शिवमारग बतलावै ।  
नय निहचै विवहार साधिकै, दोऊ चित्त रिझावै ॥

भाई! ज्ञानी सोई कहिये ॥१॥

कोई कहै जीव छिनभंगुर, कोई नित्य बखाने ।  
परजय दरवित नय परमानै, दोऊ समता आनै ॥  
भाई! ज्ञानी सोई कहिये ॥२॥

कोई कहै उदय है सोई, कोई उद्यम बोले ।  
'द्यानत' स्यादवाद सुतुला में, दोनों वस्तैं तोलै ॥  
भाई! ज्ञानी सोई कहिये ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई ! ज्ञानी उसे ही कहते हैं जो कर्मोदय के कारण होनेवाले सुख-दुःख को समता से अर्थात् बिना राग-द्वेष के सहन करता है ।

कोई ज्ञानार्जन के द्वारा, कोई क्रिया के द्वारा मोक्ष-मार्ग बतलाता है पर जो निश्चय और व्यवहारनय के अभ्यास से निश्चय और व्यवहार दोनों ही दृष्टि से चित्त में प्रसन्न रहता है वही ज्ञानी है ।

कोई व्यवहार से जीव को क्षणभंगुर कहता है तो कोई निश्चय से उसे नित्य कहता है । पर जो पर्याय और द्रव्य दोनों को नय प्रमाण से जानकर समता धारण करता है वही ज्ञानी है ।

कोई कर्माधीन उदय को प्रमुख मानता है तो कोई पुरुषार्थ को प्रमुख मानता है । द्यानतराय कहते हैं कि जो स्याद्वादरूपी तराजू में दोनों को तोलता है वही ज्ञानी है ।



## भाई ब्रह्म विराजै कैसा



राग : आसादरी जोगिया, इक योगी असन बानवे

भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥टेक ॥  
जाको जान परमपद लीजे, ठीक करीजे जैसा ॥

एक कहे यह पवन रूप है, पवन देह को लागै ।  
जब नारी के उदर समावै, क्यों नहिं नारी जागै ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥१॥

एक कहै यह बोलै सो ही, वैन कानतें सुनिये ।  
कान जीव को जानै नाहीं, यह तो बात न मुनिये ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥२॥

एक कहै यह फूल-वासना, बास नाक सब जाने ।  
नाक ब्रह्म को वेदै नाहीं, यह भी बात न माने ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥३॥

भूमि आग जल पवन व्योम मिलि, एक कहै यह हूवा ।  
नैनादिक तत्त्वनि को देखें, लखें न जीया मूवा ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥४॥

धूप चाँदनी दीप जोतसौं, ये तो परगट सूझै ।  
एक कहै है लोहू में सो, मृतक भरो नहिं बूझै ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥५॥

एक कहै किनहूँ नहिं जाना, ब्रह्मादिक बहु खोजा ।

जानौ जीव कह्यौ क्यों तिनने, भाषै जान्यो होजा ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥६॥

इत्यादिक मतकल्पित बातैं, तो बोलैं सो विघटै ।  
'द्यानत' देखनहारो चेतन, गुरुकिरपातै प्रगटै ॥  
भाई! ब्रह्म विराजै कैसा? ॥७॥

**अर्थ :** हे भाई! ब्रह्म (आत्मा) कैसा शोभित होता है, उसका स्वरूप कैसा है? जिसके वास्तविक स्वरूप को जानकर उसके स्वभाव के अनुरूप आचरण करने पर परमपद अर्थात् श्रेष्ठपद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

कोई कहता है कि वह पवन के समान है, तो वह पवन तो देह को छूती है और स्पर्श से उसका अनुभव होता है। जब जीव गर्भ में जाता है तब जीव का उस गर्भवती नारी से स्पर्श होना चाहिए तब उस नारी को उस जीव के स्वरूप का ज्ञान / भान क्यों नहीं होता ?

कोई कहता है कि जो बोलता है वह ही आत्मा है, उसके वचन कान में पड़ते हैं पर कान तो उस जीव को नहीं जानता । इसलिए यह बात भी समझ नहीं आती ।

कोई कहता है कि वह ब्रह्म / आत्मा पुष्पों की गंध के समान है जिसकी गंध (नाक में आने पर) सब जान जाते हैं पर नाक से भी ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता इसलिए यह बात भी समझ नहीं आती ।

कोई कहता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश सब मिलकर एक हो जाते हैं, इनका योग ही आत्मा है पर ये सभी तत्त्व नेत्रों द्वारा देखे जाते हैं पर यह आत्मा जीते हुए या मरते हुए कैसे भी नैनों से दिखाई नहीं देती अतः यह बात भी समझ में नहीं आती ।

कोई आत्मा को धूप (सूर्य की ज्योति), कोई चाँद या दीपक की ज्योति जैसा बताते हैं, ये सब तो स्पष्ट दिखाई देते हैं पर आत्मा तो दिखाई नहीं देती ।

कोई कहता है कि आत्मा रक्त (खून) में है, तो भाई ! मृत शरीर में भी रक्त तो भरा होता है पर वहाँ आत्मा नहीं होती !

कोई कहता है कि बहुत खोज की उस ब्रह्म की फिर भी उसे कोई नहीं जानता, फिर क्यों कहा जाता है कि जीव को जानो? जो ऐसा कहता है कि ब्रह्म को जानो, आत्मा को जानो बस वह ही उसे जानता है क्योंकि वह स्वयं ही तो आत्मा है ।

इस प्रकार ये सब मत-मतान्तर की, कल्पना की दौड़ है। जो बोला जाता है वह भी नष्ट हो जाता है। द्यानतराय कहते हैं - अरे ! जो देखनेवाला है, जो जाननेवाला है, जो चेतन है वह ही ब्रह्म है, वह ही आत्मा है, उसका ज्ञान तो गुरु की कृपा होने पर ही होता है ।





राग : आसावरी, इक योगी असन बनावे

# भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे

भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥टेक ॥  
सब संसार दुःख सागर में, जामन मरन कराना रे ॥

तीन लोक के सब पुदगल तैं, निगल निगल उगलाना रे ।  
छर्दि डार के फिर तू चाखै, उपजै तोहि न ग्लाना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥१॥

आठ प्रदेश बिना तिहुँ जग में, रहा न कोई ठिकाना रे ।  
उपजा मरा जहां तू नाहीं, सो जानै भगवाना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥२॥

भव-भव के नख केस नाल का, कीजे जो इक ठाना रे ।  
होंय अधिक ते गिरी सुमेरुतें, भाखा वेद पुराना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥३॥

जननी थन-पय जनम जनम को, जो तैं कीना पाना रे ।  
सो तो अधिक सकल सागरतें, अजहूं नाहि अघाना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥४॥

तोहि मरण जे माता रोई, आँसू जुल सगलाना रे ।  
अधिक होय सब सागरसेती, अजहूँ त्रास न आना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥५॥

गरभ जनम दुख बाल बिरध दुख, वार अनन्त सहाना रे ।  
दरवलिंग धरि जे तन त्यागे, तिनको नाहिं प्रमाना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥६॥

बिन समभाव सहे दुख एते, अजहूँ चेत अयाना रे ।  
ज्ञान-सुधारस पी लहि 'द्यानत', अजर अमरपद थाना रे ॥  
भाई ब्रह्मज्ञान नहिं जाना रे ॥७॥

**अर्थ :** हे भाई! तूने आत्मज्ञान को नहीं जाना । यह सारा संसार दुःख का सागर है, इसमें जन्म-मृत्यु का क्रम चलता रहता है ।

तीन लोक में अनन्त पुद्गल हैं भव-भव में उन्हें ही निगलता (भोगता) है और फिर उन्हें ही उगलता (त्याग) है । इस प्रकार वमन करके तू फिर उसी को खा जाता है और तुझे ग्लानि नहीं होती?

इस लोक में केवल आत्मा के आठ प्रदेश स्थिर रहते हैं, उसके अलावा कहीं स्थिरता नहीं है । तूने किस स्थान पर जन्म नहीं लिया और किस स्थान पर मरण नहीं किया -- ऐसा स्थान तो केवलज्ञानी ही जानते हैं ।

जितने भव तूने अब तक धारण किए हैं उनके नख-केश एकत्रित किए जाएँ तो वे सुमेरु पर्वत से भी ऊँचे हो जायें ।

प्रत्येक जन्म में अपनी माता के स्तनों का जितना दूध पिया है उसका परिमाण किया जाए तो वह सब भी वह समुद्र से कहीं अधिक हो जाये ! तो भी तेरा चित्त उससे अभी थका नहीं है?

जब-जब तू मरा तो तेरे मरण पर तेरी माता आदि रोई, उनके अश्रुओं को एकत्र किया जाए तो उसका परिमाण क्षीर-समुद्र से भी अधिक हो जाए । फिर भी तुझे भय नहीं हुआ?

गर्भ में आना, वहाँ पनपना (बढ़ना), फिर जन्म लेना, बचपन के दुःख ये सब तूने अनन्त बार भोगे हैं, सहे हैं । यह चेतन,

अनेक बार द्रव्य-लिंग धारण करके, शरीर से मुनि होकर देह को छोड़ चुका है, उसका कोई प्रमाण / माप ही नहीं है ।

बिना समताभाव के तूने ये सब दुःख भोगे हैं। अब तो सयाने तू चेत । द्यानतराय कहते हैं कि ज्ञानामृत पीकर तू अजर, अमर, कभी न क्षय होनेवाला व कभी न मरनेवाला पद / स्थान पा ले ।



## भैया सो आतम जानो रे

भैया! सो आतम जानो रे! ॥टेक॥



जाके बसते बसत है रे, पाँचों इन्द्री गाँव ।  
जास बिना छिन एकमें रे, गाँव न नाँव न ठाँव ॥  
भैया! सो आतम जानो रे! ॥१॥

आप चलै अरु ले चलै रे, पीछैं सौ मन भार ।  
ता बिन गज हल ना सके रे, तन खींचै संसार ॥  
भैया! सो आतम जानो रे! ॥२॥

जाको जारैं मारतैं रे, जरै मरै नहिं कोय ।  
जो देखै सब लोककों रे, लोक न देखै सोय ॥  
भैया! सो आतम जानो रे! ॥३॥

घटघटव्यापी देखिये रे, कुंथू गजसम रूप ।

जानै मानै अनुभवै रे, 'द्यानत' सो चिद्रूप ॥  
भैया! सो आतम जानो रे! ॥४॥

अर्थ : भैया! अपनी आत्मा को जानो

जिसके बसने से पाँच इन्द्रियोंवाला गाँव (देह) बस जाता है, सक्रिय हो जाता है। जिसके अभाव में एक ही क्षण में न वह गाँव (देह) रहता है और न उसका नाम रहता है और न कोई ठिकाना ही रहता है, उस आत्मा को जानो।

जब तक शरीर में आत्मा रहती है तब तक यह शरीर अपने आप चलता है और अपने साथ सौ-मन का भार भी लिये चलता है। इसके बिना (आत्मा के बिना) शरीर एक गज भी नहीं हिल सकता फिर तो उस शरीर को संसार के लोग खींचते हैं।

इस तन को जलाने से, मारने से वह आत्मा न जलता है और न मरता है, वह सारे लोक को देखता है, पर वह लोक को दिखाई नहीं देता, उस आत्मा को जानो।

यह आत्मा घट-घट में, प्रत्येक शरीर में है। चाहे वह कुंधु-सी छोटी देह हो या हाथी के समान बड़ा रूप-आकार हो। द्यानतराय कहते हैं कि जो उस आत्मा को जानता व मानता है और अनुभव करता है, वह ही चिद्रूप है।



## भोर भयो भज श्रीजिनराज



राग : बिलावल, रघुपति राघव राजाराम

भोर भयो भज श्रीजिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥टेक ॥  
धन सम्पत मनवांछित भोग, सब विधि आन बनै संजोग ॥

कल्पवृच्छ ताके घर रहै, कामधेनु नित सेवा बहै ।  
पारस चिन्तामनि समुदाय, हितसौं आय मिलैं सुखदाय ॥  
भोर भयो भज श्रीजिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥१॥

दुर्लभतैं सुलभ्य है जाय, रोग सोग दुख दूर पलाय ।

सेवा देव करै मन लाय, विघ्न उलट मंगल ठहराय ॥  
भोर भयो भज श्रीजिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥२॥

डायन भूत पिशाच न छलै, राज चोर को जोर न चले ।  
जस आदर सौभाग्य प्रकास, 'ध्यानत' सुरग मुक्तिपदवास ॥  
भोर भयो भज श्रीजिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥३॥

**अर्थ :** हे भव्य ! भोर (प्रभात) हो गई है, अब तू श्री जिनराज का भजन कर, उनका स्मरण कर, जिससे तेरे सारे कार्य सुलझ जाएँगे, सफल हो जाएँगे। जिनराज के भजन से धन, सम्पत्ति, सुख-साता की वांछित वस्तुएँ और उन्हें भोगने का अवसर सभी के संयोग जुट जाते हैं, बन जाते हैं।

जो जिनराज का भजन करता है उसके घर पर मानो कल्पवृक्ष ही लग जाता है, मानो कामधेनु की सेवा जैसा सुख-सौभाग्य प्राप्त हो जाता है अर्थात् मनवांछित वस्तुएँ आसानी से सुलभ हो जाती हैं। पारसनाथरूपी चिंतामणि रत्न का सुलभ होना ही सब वस्तु समूह के हितकारी होने का कारण है।

उन जिनराज के भजन से दुर्लभ भी सुलभ हो जाते हैं, रोग--शोक, दुःख दूर भाग जाते हैं। जो भव्य मन लगाकर ऐसे देव की सेवा करते हैं उनके सभी विघ्न भी मंगलकारी सुख-रूप में पलट जाते हैं, संक्रमण कर जाते हैं।

जो जिनराज का भजन करते हैं उनको भूत, पिशाच, डायन आदि के प्रकोप का भय नहीं रहता। राजा व चोर का भय नहीं होता। उन्हें यश और सम्मान की प्राप्ति होती है, सौभाग्य प्रकट होता है। धानतराय कहते हैं कि इससे ही स्वर्ग और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है।



## भ्रम्यो जी भ्रम्यो संसार महावन



राग : पंचम

भ्रम्यो जी भ्रम्यो, संसार महावन, सुख तो कबहुँ न पायो जी,  
पुद्गल जीव एक करि जान्यो, भेद-ज्ञान न सुहायोजी ॥टेक॥

मनवचकाय जीव संहारे, झूठो वचन बनायो जी ।  
चोरी करके हरष बढ़ायो, विषयभोग गरवायो जी ॥  
भ्रम्यो जी भ्रम्यो, संसार महावन, सुख तो कबहुँ न पायो जी ॥१॥

नरकमाहिं छेदन भेदन बहु, साधारण वसि आयो जी ।  
गरभ जनम नरभव दुख देखे, देव मरत बिललायो जी ॥  
भ्रम्यो जी भ्रम्यो, संसार महावन, सुख तो कबहुँ न पायो जी ॥२॥

'द्यानत' अब जिनवचन सुनै मैं, भवमल पाप बहायो जी ।  
आदिनाथ अरहन्त आदि गुरु, चरनकमल चित लायो जी ॥  
भ्रम्यो जी भ्रम्यो, संसार महावन, सुख तो कबहुँ न पायो जी ॥३॥

**अर्थ :** मैं इस संगाररूपी महावन में भटकता रहा हूँ । इसमें मुझे सुख कहीं भी नहीं मिला ।

मेरी भ्रान्ति यह ही रही कि मैंने जीव व पुद्धल दोनों को एक-अभिन्न (मिला हुआ) जाना, जिसके कारण मुझे इनके भिन्न-भिन्न अस्तित्व का भेदज्ञान ही नहीं हुआ, न ऐसा भेद करना मुझे रुचा ।

मन, वचन और काय से अनेक जीवों का घात किया, झूठ वचन बोला और उनका सहारा लिया । दूसरों की वस्तुओं को चुराकर प्रसन्न हुआ और इन्द्रिय-विषयों में रत रहा । उन्हें भोगकर घमण्ड से फूला रहा इसलिए कभी सुख नहीं पाया ।

बहुत बार नरक गति में छेदन-भेदन के दुःख भोगे व अनेक बार साधारण शरीर में जन्म लिया । अनेक बार गर्भ व जन्म की वेदनाएँ भोगी । मनुष्य गति पाकर भी दुःख भोगे और फिर देवगति में मरण को समीप जानकर, देखकर भयातुर दयनीय दशा हो गई और दुःख से बिलबिलाने लगा ।

द्यानतराय कहते हैं कि मैंने अब श्री जिनेन्द्र के वचन सुने, उन पर श्रद्धान किया, उनकी ओर ध्यान केन्द्रित किया, तब बहुत से भवों में उपार्जित पापसमूह को मैंने नष्ट कर दिया, दूर किया । भगवान आदिनाथ, अरहन्त आदि देव व गुरु के चरण-कमल में अपना चित्त लगाया ।





# मगन रहु रे शुद्धातम में

मगन रहु रे! शुद्धातम में मगन रहु रे ॥टेक॥

रागदोष पर की उतपात, निहचै शुद्ध चेतनाजात ॥  
मगन रहु रे! शुद्धातम में ॥१॥

विधि निषेध को खेद निवारि, आप आपमें आप निहारि ॥  
मगन रहु रे! शुद्धातम में ॥२॥

बंध मोक्ष विकल्प करि दूर, आनंदकन्द चिदातम सूर ॥  
मगन रहु रे! शुद्धातम में ॥३॥

दरसन ज्ञान चरन समुदाय, 'धानत' ये ही मोक्ष उपाय ॥  
मगन रहु रे! शुद्धातम में ॥४॥

**अर्थ :** हे भव्य! अपने शुद्ध आत्म-स्वभाव में, उसके स्वरूप चिन्तन में तुम मगन रहो।

ये राग-द्वेष तो परद्रव्य के विकार हैं, उपद्रव हैं। निश्चय में तो तुम्हारी जाति चेतन ही है।

अस्ति-नास्ति के विकल्प को दूर करके, समस्त दुःखों का निवारण कर। अपने आप में केवल अपने आत्म-स्वरूप का चिन्तन करो, उसे ही निरखो, देखो और जानो-पहचानो।

कर्मबंध और मोक्ष, दोनों का विकल्प छोड़ दो। तब सभी विकल्प से पर यह अपना चिदात्म आनन्द का पुंज, सूर्य के समान अनुभव में आएगा।

द्यानतराय कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र का सम्यक होना और उनका एकत्र होना ही मोक्ष का उपाय है।



# मन मेरे राग भाव निवार



राग सौरथा

मन! मेरे राग भाव निवार ॥टेक ॥  
राग चिक्कनत लगत है, कर्मधूलि अपार ॥

राग आस्रव मूल है, वैराग्य संवर धार ।  
जिन न जान्यो भेद यह, वह गयो नरभव हार ॥  
मन! मेरे राग भाव निवार ॥१॥

दान पूजा शील जप तप, भाव विविध प्रकार ।  
राग बिन शिव सुख करत हैं, रागतैं संसार ॥  
मन! मेरे राग भाव निवार ॥२॥

वीतराग कहा कियो, यह बात प्रगट निहार ।  
सोइ कर सुखहेत 'द्यानत', शुद्ध अनुभव सार ॥  
मन! मेरे राग भाव निवार ॥३॥

**अर्थ :** ए मेरे मन ! तू राग भावों को छोड़ दे, उनसे निवृति पा ले । संगरूपी विकनाई के कारण अपार कर्मरूप धूलि के कण आकर जम जाते हैं ।

आस्रव (कर्मों के आने) का मूल कारण राग ही है और जिसे वैराग्य (राग का अभाव) होता है उसके संवर होता है इसलिए राग छोड़कर वैराग्य धारणकर । जिसने राग और वैराग्य के इस भेद को, इस तथ्य को नहीं जाना वह अपने इस मनुष्य जन्म में हार गया है अर्थात् उसका यह मनुष्य जन्म निर्धक हो चला है ।

दान, पूजा, शील, जप और तप अनेक प्रकार से भावों को सँजोने की क्रियाएँ की जाती है। परन्तु मोक्ष का सुख तो राग के बिना ही प्राप्त होता है, राग से तो संसार परिभ्रमण ही होता है।

जिनके राग नहीं रहा, राग उन्होंने क्या किया? इस बात को तू स्पष्टतः देख और समझ ले। ध्यानतराय कहते हैं वह ही तू कर यह ही सारे अनुभवों का सार है।



## महावीर जीवाजीव छीर नीर



महावीर महावीर जीवाजीव छीर-नीर,  
पाप ताप-नीर-तीर धरम की धर है।  
आस्रव स्रवत नाँहि बँधत न बन्ध माँहि,  
निष्ठ्रजरा निर्जरत संवर के घर है ॥

तेरमो है गुनथान सोहत सुकल ध्यान,  
प्रगटो अनन्त ज्ञान मुक्त के वर है।  
सूरज तपत करै जड़ता कूँ चन्द धरै,  
'ध्यानत' भजो जिनेश कोऊ दोष न रहै ॥

**अर्थ :** भगवान महावीर ने जीव और अजीव का भेद दूध और पानी के समान अलग-अलग करके बता दिया है। उनका नाम संसार के पाप एवं ताप रूपी सरिता से पार होने के लिये नाव के समान है तथा धर्म की धरा है—आधार है। जीव और अजीव का भेदविज्ञान होने के पश्चात कर्मों का आस्रव और बन्ध नहीं होता। जो कर्म सत्ता में हैं उनकी भी निर्जरा हो जाती है। नवीन कर्मों का संवर (निरोध) हो जाता है। ऐसे भेदविज्ञानी मुनि ही क्षपक श्रेणी में आरोहण करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और संसार से पार होकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। कविवर ध्यानतराय कहते हैं कि सूर्य में तो ताप है और चन्द्रमा में जड़ता है, परन्तु भगवान महावीर का भजन करने से मनुष्य सभी दोषों से मुक्त हो जाता है।





# मानुषभव पानी दियो जिन

मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ।  
पाए अनेक उपायकै, गयो नरक, निदाना ॥टेक॥

पुन्य उदय सम्पत मिली, फूल्या न समाना ।  
पाप उदय जब खिर गई, हा! हा! बिललाना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥१॥

तीरथ बहुतेरे फिरे, अरचे पाषाना ।  
राम कहूँ नहिं पाइयो, हूए हैराना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥२॥

राम मिलनके कारनैं, दीए बहु दाना ।  
आठ पहर शुक ज्यों रटे, नहिं रूप पिछाना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥३॥

तलैं कहै ऊपर कहै, पावै न ठिकाना ।  
देखै जाने कौन है, यह ज्ञान न आना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥४॥

वेद पढ़े कई तप तपैं, कोई जाप जपाना ।  
रैन दिना खोटी घड़ैं, चाहे कल्याना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥५॥

राम सबै घट-घट बसै, कहिं दूर न जाना ।  
ज्यों चकमक में आग है, त्यों तन भगवाना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥६॥

तिनका ओट पहार है, जानै न अयाना ।  
'द्यानत' निपट नजीक है, लख चेतनवाना ॥  
मानुषभव पानी दियो, जिन राम न जाना ॥७॥

**अर्थ :** हे मानव! जिसने आत्मा को नहीं जाना, उसका यह मनुष्य भव पानी के समान ही बह गया, नष्ट हो गया। बहुत पाप करके नरक का निदान किया है अर्थात् उपार्जन किया है।

यदि पुण्य उदय से कुछ संपदा मिल गई तो मानव फूलकर अपने में नहीं समाता और पाप-उदय होने पर विकल होकर बिलबिलाने लगता है।

बहुत तीर्थ किए, बहुत पथरों को पूजा, पर राम कहीं न मिलते, यह सबसे बड़ी हैरानी है।

राम से मिलने के लिए बहुत-सा दान किया। आठ पहर अर्थात् दिन-रात तोते की तरह उनका नाम रटता रहा, पर उसका स्वरूप नहीं पहचान सका।

कोई कहे राम (आत्मा/भगवान) नीचे है, कोई कहे ऊपर है, पर उसका कहीं कोई ठिकाना नहीं मिला। यह सब देखने-जाननेवाला कौन है? वहीं तो आत्मा है, राम है यह समझ नहीं पाया।

वेद आदि सांसारिक ग्रन्थ पढे, कई प्रकार के तप किए, जाप जपे-जपाए, रात-दिन कुचेष्टाएँ करता रहा और फिर भी अपना कल्याण चाह रहा है!

अरे, राम तो घट-घट में, हर प्राणिदेह में व्याप्त है, कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे चकमक में आग उत्पन्न होने की योग्यता छिपी रहती है, ऐसे ही इस देह में भगवान छिपा है।

आँख के आगे एक छोटे-से तिनके के आ जाने से, उसकी ओट में पहाड़ दिखाई नहीं देता है। उसी प्रकार ध्यानतराय कहते हैं कि अपना चैतन्यस्वरूपी आत्मा तेरे अत्यन्त निकट है, तेरे अपने पास ही है फिर भी वह दिखाई नहीं देता, उसे ही लख-देख।



## मेरे घट ज्ञान घनागम



राग : गौरी, अब मेरे समक्षित सावन

री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो  
शुद्ध भाव बादल मिल आये, सूरज मोह छिपायो ॥टेक॥

अनहद घोर घोर गरजत है, भ्रम आताप मिटायो ।  
समता चपला चमकनि लागी, अनुभौ-सुख झर लायो ॥  
री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो ॥१॥

सत्ता भूमि बीज समकितको, शिवपद खेत उपायो ।  
उद्धृत भाव सरोवर दीसै, मोर सुमन हरषायो ॥  
री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो ॥२॥

भव-प्रदेशतैं बहु दिन पीछैं, चेतन पिय घर आयो ।  
'ध्यानत' सुमति कहै सखियनसों, यह पावस मोहि भायो ॥  
री! मेरे घट ज्ञान घनागम छायो ॥३॥

**अर्थ :** हे सखी ! मेरे अन्तर में ज्ञानरूपी बादल बहुत घनरूप में छा रहे हैं। शुद्ध भावरूपी बादलों का समूह इस प्रकार धुमड़कर घना हो रहा है कि उसने मोहरूपी सूर्य को ढँक दिया है।

अनहद की धनि गुंजायमान हो रही हैं, भ्रम-संशय का ताप कम हो गया है। समतारूपी बिजलियाँ कौंधने लगी हैं और स्वानुभव के कारण सुख की झड़ी लग गयी है अर्थात् खूब आनन्द की अनुभूति हो रही है।

सत्ता (अस्तित्व)-रूपी भूमि में, सम्यक्त्वरूपी बीज बोकर मोक्षरूपो क्षेत्र को उपार्जित किया है। भावों का समुद्र अपने पूर्ण उफान पर है। मनरूपी मयूर हर्षित हो रहा है।

भव-भव में भटकने के पश्चात् बहुत समय बाद चेतन अपने स्व स्थान पर आया है अर्थात् अपने/स्व के ध्यान में मग्न, तल्लीन हो रहा है। द्यानतराय कहते हैं कि सुमति अपनी सखियों से कह रही है कि यह (ज्ञान की) पावस ऋतु - वर्षाकाल मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रही है।



## मेरे मन कब है है बैराग



राग : सारंग

मेरे मन कब है है बैराग ॥टेक॥

राज समाज अकाज विचारौं, छारौं विषय कारे नाग ॥१॥

मन्दिर वास उदास होय कैं, जाय बसौं बन बाग ॥२॥

कब यह आसा कांसा फूटै, लोभ भाव जाय भाग ॥३॥

आप समान सबै जिय जानौं, राग दोष कों त्याग ॥४॥

'द्यानत' यह विधि जब बनि आवै, सोई घड़ी बड़भाग ॥५॥

मेरे मन कब है है बैराग ॥

**अर्थ :** मेरे मन में कब विरक्तता होकर वैराग्य की भावना होगी?

राजकार्य, सामाजिक कार्य इन सबको निरर्थक जानकर इन्द्रिय-विषयरूप काले नागों से कब छुटकारा होगा ?

मन्दिर व घर से उदासीन होकर बन में, बगीचे में जाकर प्रकृति की गोद में कब निवास करूँगा?

कब आशा का पात्र नष्ट हो और हृदय से लोभ भी निकल जाए अर्थात् कामनाएँ - तृष्णा समाप्त हो ।

कब ऐसा होगा कि सभी जीवों को अपने समान जानूँ ! उनसे सभी प्रकार का राग-द्वेष का भाव त्यागूँ ।

द्यानतराय कहते हैं कि जब इस प्रकार सब घटनाएँ घटित हों वह घड़ी ही अत्यन्त भाग्यशाली होगी।





## मैं निज आत्म कब

मैं निज आत्म कब ध्याऊँगा  
रागादिक परिनाम त्यागकै,  
समतासौं लौ लाऊँगा ॥

मन वच काय जोग थिर करकै,  
ज्ञान समाधि लगाऊँगा ।  
कब हौं क्षिपकश्रेणि चढ़ि ध्याऊँ,  
चारित मोह नशाऊँगा ॥१॥

चारों करम घातिया क्षय करि,  
परमात्म पद पाऊँगा ।  
ज्ञान दरश सुख बल भंडारा,  
चार अघाति बहाऊँगा ॥२॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्धपद,  
परमानंद कहाऊँगा ।  
'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊँ,  
बहुरि न जग में आऊँगा ॥३॥

**अर्थ :** हे प्रभु! मैं कब अपनी आत्मा का ध्यान करूँगा! अर्थात् वह शुभ घड़ी कब आएगी, जब मैं अपनी आत्मा का ध्यान करूँगा! कब राग-द्वेष आदि भावों का त्याग करके मैं समता में रुचि लाऊँगा!

हे भगवन् ! कब मैं मन, वचन और काय, इन तीनों के योग को स्थिर करके, ज्ञान की समाधि में लीन होऊँगा। और कब मैं कर्मों को क्षयकर क्षणेक श्रेणी चढ़कर चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का नाश कर सकूँगा।

चारों घातिया कर्म नष्ट करके कत्र परम आत्मपद अर्थात् अरहंत अवस्था प्राप्तकर अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख व बल की स्थिति में शेष रहे चार अघातिया कर्मों का नाश करुँगा ।

कब वह शुभ समय आयेगा जब परम अर्थात् सर्व दोषरहित शुद्ध सिद्ध पद को प्राप्त कर परमानन्द की स्थिति में स्थित होऊँगा। द्यानतराय कहते हैं कि वह अवस्था प्राप्त होने पर मैं आवागमन से मुक्त हो जाऊँगा अर्थात् भव-भव के परिभ्रमण से छूट जाऊँगा।



## मोहि कब ऐसा दिन आय



राग : सारंग

मोहि कब ऐसा दिन आय है  
सकल विभाव अभाव होंहिंगे, विकलपता मिट जाय है ॥टेक ॥

यह परमात्म यह मम आत्म, भेद-बुद्धि न रहाय है ।  
ओरनिकी का बात चलावै, भेद-विज्ञान पलाय है ॥  
मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥१॥

जानैं आप आपमें आपा, सो व्यवहार विलाय है ।  
नय-परमान-निक्षेपन-माहीं, एक न औसर पाय है ॥  
मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥२॥

दरसन ज्ञान चरनके विकलप, कहो कहाँ ठहराय है ।

'द्यानत' चेतन चेतन है, पुदगल पुदगल थाय है ॥  
मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥३॥

**अर्थ :** हे भगवन् ! मेरा ऐसा दिन कब आयेगा जब मेरे सारे विभाव समाप्त होकर मेरे सारे विकल्प मिट जायेंगे - समाप्त हो जायेंगे ।

मेरा यह आत्मा ही परमात्मा बन जाये । इसमें कोई भेद या अन्तर न रह जावे । पर अन्य क्या बात करें जब तनिक भी भेद-ज्ञान नहीं है ।

एकमात्र मैं स्वयं अपने आपको सबसे अलग जानूँ । वहाँ ज्ञाता-ज्ञेय का भेद व्यवहार भी विलीन हो जाए अर्थात् ज्ञानरूप अनुभूति ही शेष रह जाए । नय, प्रमाण, निष्केप के भेद का एक अवसर भी शेष न रहे । ऐसा दिन कब आयेगा ?

मुझे दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूपी विकल्प भी न रहे अर्थात् तीनों रत्नत्रय एकरूप ही हो जाएँ । द्यानतराय कहते हैं चेतन चेतन होकर रहे और पुदगलपुदगल रूप ही रहे । वह दिन कब आयेगा ।



## राम भरतसों कहैं सुभाइ



राग : गौरी, रघुपति राघव राजा राम

राम भरतसों कहैं सुभाइ, राज भोगवो थिर मन लाइ ॥टेक॥

सीता लीनी रावन घात, हम आये देखन को भ्रात ॥१॥

माता को कछु दुख मति देहु, घर में धरम करो धरि नेह ॥२॥

'द्यानत' दीच्छा लैंगे साथ, तात वचन पालो नरनाथ ॥३॥

राम भरतसों कहैं सुभाइ, राज भोगवो थिर मन लाइ ॥

कहैं भरतजी सुन हो राम! राज भोगसों मोहि न काम ॥

तब मैं पिता साथ मन किया, तात मात तुम करन न दिया ॥१॥

अब लौं बरस वृथा सब गये, मन के चिन्ते काज न भये ॥२॥

चिन्तै थे कब दीक्षा बनै, धनि तुम आये करने मनै ॥३॥

आप कहा था सब मैं करा, पिता करेकौं अब मन धरा ॥४॥  
 यों कहि दृढ़ वैराग्य प्रधान, उठ्यो भरत ज्यों भरत सुजान ॥५॥  
 दीक्षा लई सहस नृप साथ, करी पहुपवरषा सुरनाथ ॥६॥  
 तप कर मुक्त भयो वर वीर, 'द्यानत' सेवक सुखकर धीर ॥७॥

**अर्थ :** श्रीराम अपने छोटे भाई भरत से कहते हैं कि हे भाई! अपना चित्त स्थिर करके इस राज्य का भोग करो। हम तो भाई को (लक्ष्मण को) देखने को आए थे और रावण ने घात लगाकर सीताजो का हरण कर लिया। माता को कुछ भी, किसी प्रकार का दुःख न हो, उन्हें कष्ट न पहुँचे इसलिए तुम धैर्यपूर्वक घर में ही प्रेम से रहो। द्यानतराय कहते हैं कि राम ने भाई भरत को आश्वासन दिया कि हे राजन! हे भरत ! हम दीक्षा साथ लेंगे। इसलिए तुम अभी राज सम्हालो और माता के वचन का पालन करो।

दशरथ-पुत्र भारत अपने बड़े भाई श्रीराम से कहते हैं कि हे भाई! मुझे इस राज के भोगने से कोई वास्ता नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। पहले भी जब पिता ने और मैंने एक साथ संन्यास धारण करने का मन बना लिया था तब पिताजी ने, आपने व माँ ने संन्यास धारण नहीं करने दिया। अब तक की बीती उम्र सब वृथा गई, जो मन में विचार किया उसे पूर्ण नहीं कर सके। सोचते थे कि कब दीक्षा की साध पूरी हो तो तुम उसे मना करने आ गए हो। आपने जो कहा था कि संन्यास धारण न करके राज्य करो, वह ही मैंने सब किया। अब मैंने पिताजी ने जो किया वह करने का (संन्यास धारण करने का) मन बनाया है। इस प्रकार यह कहते हुए वैराग्य में दृढ़ होकर भरत उठ खड़े हुए। अनेक राजाओं के साथ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की, उस समय इन्द्र ने उन पर पुष्पवृष्टि की थी। तपस्या करके वे श्रेष्ठ वीर भरत मुक्त हुए, मोक्षगामी हुए। द्यानतराय कहते हैं कि ऐसे धैर्यवान भरत के सेवक होना सुखकारी है।



## राम सीता संवाद



ए रे वीर रामजीसों कहियो बात ॥टेक॥  
 लोक निंदतैं हमकों छांडी, धरम न तजियो भ्रात ॥१॥  
 आप कमायो हम दुख पायो, तुम सुख हो दिनरात ॥२॥  
 'द्यानत' सीता थिर मन कीना, मंत्र जपै अवदात ॥३॥  
 ए रे वीर रामजीसों कहियो बात ॥

(राग : वसन्त, रघुपति राघव राजाराम)

कहै राघौ सीता, चलहु गेह, नैननि में आय रह्यो सनेह ॥टेक ॥  
हमऊपर तो तुम ही उदास, किन देखों सुतमुख चन्द्रमास ॥१॥  
लछमन भामण्डल हनू आय, सब विनती करि लगि रहे पाय ॥२॥  
'द्यानत' कछु दिन घर करो बास, पीछे तप लीज्यो मोह नास ॥४॥

कहै सीताजी सुनो रामचन्द्र, संसार महादुख-वृच्छकन्द ॥टेक ॥

पंचेन्द्री भोग भुजंग जानि, यह देह अपावन रोगखानि ॥१॥

यह राज रजमयी पापमूल, परिगृह आरंभ में खिन न भूल ॥२॥

आपद सम्पद घर बंधु गेह, सुत संकल फाँसी नारि नेह ॥३॥

जिय रुल्यो निगोद अनन्त काल, बिनु जागै ऊर्ध्व मधि पाताल ॥४॥

तुम जानत करत न आप काज, अरु मोहि निषेधो क्यों न लाज ॥५॥

तब केश उपारि सबै खिमाय, दीक्षा धरि कीन्हों तप सुभाय ॥६॥

'द्यानत' ठारै दिन ले सन्यास, भयो इन्द्र सोलहैं सुरग बास ॥७॥

**अर्थ :** रावण के घर रहने के कारण सीता को लोक-निंदावश घर से निर्वासित कर दिया गया। सारथि राम के आदेश के अनुसार सीता को जंगल में छोड़कर वापस आने लगा तो सीता ने उसके साथ अपने पति श्रीराम के लिए संदेश भिजवाया कि ओ भाई! श्रीराम से इतनी-सी बात कह देना कि तुमने लोक निन्दा के भय से हमको छोड़ दिया, परन्तु ऐसे ही किसी के भी कहने से घबराकर कभी धर्म को मत छोड़ देना! हमने जो कमाया, कर्म किया वह ही हमने भोगा, उपभोग किया अर्थात् दुःख उपजाये तो दुःख पाए। पर आप दिन-रात सुखी रहें, ऐसी भावना है। द्यानतराय कहते हैं कि इस प्रकार सीता ने अपने मन को स्थिर किया और पवित्र / निर्मल मंत्रों के जपन में लग गई।

रघुपति रामचन्द्र सीताजी कहते हैं कि अब घर चलो ! यह कहते समय उनके नेत्रों में सीताजी के प्रति अगाध प्रेम झलक रहा है। तुम हमारी ओर तो उदास हो, हमसे रुष्ट हो। किन्तु चन्द्रमा के समान कान्तिवान अपने पुत्रों की ओर तो देखो ! उनका ख्याल करके ही घर चली चलो! देखो! लक्ष्मण, हनुमान और तुम्हारा भाई भामण्डल आदि सभी आकर तुम्हारे पाँव लगकर विनती करते हैं। द्यानतराय कहते हैं कि राजा राम का अनुरोध है कि कुछ दिन घर में रहकर गृहस्थ का जीवन व्यतीत करो तत्पश्चात् मोह का नाश करने के लिए तप कर लेना। (आचार्य रविषेण के 'पद्मपुराण' के कथानक के अनुसार रावण के घर में रहने के कारण लोकनिन्दा व लांछनवश सीता को निर्वासित कर दिया गया। निर्वासन के पश्चात् भी अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए सीता को अग्निपरीक्षा देनी पड़ी। परीक्षा में निर्दोष सिद्ध होने के बाद श्रीराम सीता से घर

चलने के लिए कहते हैं पर सीता अब घर चलने से अस्वीकार कर देती है और संन्यास धारण कर लेती है। प्रस्तुत भजन में राम द्वारा सीता को घर चलने का आग्रह करने का ही वर्णन है।)

सीताजी श्री रामचन्द्रजी से कहती हैं कि हे रामचन्द्र! सुनो, यह संसार अत्यन्त दुःखों का समूह है, पिंड है, वृक्ष है। पाँचों इन्द्रियों के भोग सर्प के समान विषयुक्त हैं। यह देह रोगों की खान है, अपवित्र है। यह राज्य मोह का, पाप का कारण (हेतु) है। इसके लिए किये जानेवाले आरम्भ में और परिग्रह में एक क्षण भी अपने आप को मत भूल। संपत्ति, घर, बंधु-बांधव आदि सब आपदा हैं, कष्ट देनेवाले हैं। पुत्र का प्रेम साँकल के समान बाँधनेवाला है और नारी का नेह फाँसी के समान है। यह जीव ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक व पाताललोक का ज्ञान न होने के कारण अनंतकाल तक निगोद में रुलता रहा। तुम जानते हुए भी अपने करने योग्य कार्य नहीं करते हो! और मुझे अपने योग्य कार्य करने से रोकने में भी लजाते क्यों नहीं हो? यह कहकर सबसे क्षमा माँगकर, केश-लुंचन करके सीताजी ने दीक्षा धारण की और तप किया। द्यानतराय कहते हैं कि इस प्रकार सांताजी ने संन्यास ले लिया और फिर सौलहवें स्वर्ग में जाकर इन्द्र पद प्राप्त किया। श्रीराम सीता से घर चलने का आग्रह करते हैं तो सीता प्रत्युत्तर में जो कहती है उसी का वर्णन है इस भजन में।



## रे जिय क्रोध काहे करै



राग : केदारो

रे जिय! क्रोध काहे करै ।  
देखकै अविवेकि प्रानी, क्यों विवेक न धरै ॥टेक॥

जिसे जैसी उदय आवै, सो क्रिया आचरै ।  
सहज तू अपनो बिगारै, जाय दुर्गति परै ॥  
रे जिय! क्रोध काहे करै ॥१॥

होय संगति-गुन सबनिकों, सरव जग उच्वरै ।  
तुम भले कर भले सबको, बुरे लखि मति जरै ॥  
रे जिय! क्रोध काहे करै ॥२॥

वैद्य परविष हर सकत नहिं, आप भखि को मरै ।  
बहु कषाय निगोद-वासा, छिमा 'द्यानत' तरै ॥  
रे जिय! क्रोध काहे करै ॥३॥



## रे जिय जनम लाहो लेह



राग : केदार

रे जिय! जनम लाहो लेह  
चरन ते जिन भवन पहुँचैं, दान दैं कर जेह ॥टेक॥

उर सोई जामैं दया है, अरु रुधिरको गेह ।  
जीभ सो जिन नाम गावै, सांचसौं करै नेह ॥  
रे जिय! जनम लाहो लेह ॥१॥

आंख ते जिनराज देखैं, और आँखैं खेह ।  
श्रवन ते जिनवचन सुनि शुभ, तप तपै सो देह ॥  
रे जिय! जनम लाहो लेह ॥२॥

सफल तन इह भाँति है है, और भाँति न केह ।

है सुखी मन राम ध्यावो, कहैं सदगुरु येह ॥  
रे जिय! जनम लाहो लेह ॥३॥

**अर्थ :** अरे जिया! तुम इस दुर्लभ उपयोगी मनुष्य जीवन का सुरुचिपूर्वक, भक्तिपूर्वक लाभ प्राप्त करो। अपने हाथों से दान दो व स्वयं अपने पाँवों से चलकर जिन मन्दिर में पहुँचो प्रवेश करो।

वह ही हृदय सार्थक है जिसमें करुणा होती है अन्यथा तो यह मात्र रुधिर/ रक्त का घर है। जीभ से जिन-नाम का स्मरण करो और सत्य से सदा अनुराग करो।

नेत्रों से जिनराज के दर्शन करने से ही उनकी सार्थकता है अन्यथा तो ये आँखें धूल के समान निरर्थक हैं। कानों से जिनराज के वचन सुनें तो ही कान सार्थक हैं और देह से शुभ तप तपें तो ही देह सार्थक हैं।

इस प्रकार की क्रियाओं से ही यह देह, यह तन सार्थक है, सफल है, इस प्रकार यह जनम सफल होता है, अन्य किसी प्रकार से सफल नहीं होता। सदगुरु उपदेश देते हैं कि प्रमुदित होकर अपने मन में, अपने इष्ट का ध्यान करो। इस प्रकार इस जन्म का लाभ प्राप्त करो।



## रे जिय भजो आतमदेव

भजो आतमदेव,  
रे जिय! भजो आतमदेव, लहो शिवपद एव ॥टेक॥

असंख्यात प्रदेश जाके, ज्ञान दरस अनन्त ।  
सुख अनन्त अनन्त वीरज, शुद्ध सिद्ध महन्त ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥१॥

अमल अचलातुल अनाकुल, अमन अवच अदेह ।  
अजर अमर अखय अभय प्रभु, रहित-विकलप नेह ॥



रे जिय! भजो आतमदेव ॥२॥

क्रोध मद बल लोभ न्यारो, बंध मोख विहीन ।  
राग दोष विमोह नाहीं, चेतना गुणलीन ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥३॥

वरण रस सुर गंध सपरस, नाहिं जामें होय ।  
लिंग मारगना नहीं, गुणथान नाहीं कोय ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥४॥

ज्ञान दर्शन चरनरूपी, भेद सो व्योहार ।  
करम करना क्रिया निहचै, सो अभेद विचार ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥५॥

आप जाने आप करके, आपमाहीं आप ।  
यही व्योरा मिट गया तब, कहा पुन्यरु पाप ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥६॥

है कहै है नहीं नाहीं, स्यादवाद प्रमान ।  
शुद्ध अनुभव समय 'द्यानत', करौ अमृतपान ॥  
रे जिय! भजो आतमदेव ॥७॥

**अर्थ :** अरे जिया। अपनी आत्मा का भजन करो। ऐसा करने से मोक्ष पद प्राप्त होवेगा।

उस आत्मा को भजो जो लोक की भाँति असंख्यात प्रदेशी है। जिसके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख व अनन्त बल प्रगट हैं, जो सिद्ध-स्वरूप महान है।

जो मल-रहित है, अचल (स्थिर) है, अतुल (तुलनारहित) है, आकुलता-रहित है, जिनके मन, वचन व काय नहीं है। जो रोग-रहित, मृत्यु-रहित, क्षय-रहित, भय-रहित तथा सभी विकल्पों से रहित है।

उस आत्मा को भजो जो क्रोध, मान, माया, लोभ से न्यारा है, जिसके बंध-मोक्ष भी नहीं है। जिसके राग-द्वेष-मोह नहीं है, जो शुद्ध-चैतन्य है, जो अपने ही स्वाभाविक गुणों में लीन है, मगन है।

उस आत्मा को भजो जिसके स्पर्श, रस, गंध, शब्द, वर्ण का स्पर्श भी नहीं है, न लिंग-भेद है, न मार्गणा है और न ही कोई गुणस्थान है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद सब व्यवहार मात्र हैं, जो कुछ क्रिया है वह ही कर्म है, निश्चय से इनमें अभेद है इसका विचार कर।

जब अपने आप में आप स्वयं ही कर्ता हो, स्वयं ही ज्ञाता हो, स्वयं को ही जाने। जब सब भेद समाप्त हो जाए तो पुण्य व पाप का पद कहाँ ठहरेगा?

तब वस्तु कथंचित् (किसी अपेक्षा विशेष से) है और कथंचित् (किसी अपेक्षा विशेष से) नहीं है, ऐसे स्याद्वाद का प्रमाण भी उसके लिए आवश्यक नहीं रहता। धानतराय कहते हैं कि अपनी शुद्ध-आत्मा का अनुभव ही शुद्ध है, उसी का अमृतपान कसे इसी में रत रहो।



## रे भाई करुना जान रे



राग : धमाल

रे भाई! करुना जान रे ॥टेक॥

सब जिय आप समान हैं रे, घाट बाध नहिं कोय ।  
जाकी हिंसा तू करै रे, तेरी हिंसा होय ॥  
रे भाई! करुना जान रे ॥१॥

छह दरसनवाले कहैं रे, जीवदया सरदार ।  
पालै कोई एक है रे, कथनी कथै हजार ॥  
रे भाई! करुना जान रे ॥२॥

आधे दोहे में कहा रे, कोटि ग्रंथ को सार ।  
परपीड़ा सो पाप है रे, पुन्य सु परउपगार ॥  
रे भाई! करुना जान रे ॥३॥

सो तू परको मति कहै रे, बुरी जु लागै तोय ।  
लाख बात की बात है रे, 'द्यानत' ज्यों सुख होय ॥  
रे भाई! करुना जान रे ॥४॥

**अर्थ :** अरे भाई! तू करुणाभाव, दयाभाव को जान ।

सारे जीव तेरे ही समान हैं, ऐसा समझ, ऐसा मान । उन जीवों में तुझसे कोई कमी अथवा बढ़ती नहीं है। जिनकी तू हिंसा करता है, उससे तेरे ही अपने सद्धावों की हिंसा होती है ।

\*छहों दर्शन कहते हैं कि जीवदया ही सर्वोपरि है। हजारों लोग यही कहते हैं पर इसका पालन कोई बिरला ही / एक ही करता है ।

इस आधे दोहे में ही कि 'दूसरों को पीड़ा पहुँचाना पाप है'- करोड़ों ग्रंथों का सार कहा गया है। दूसरे के उपकार की भावना करना ही पुण्य है ।

जो बात तुझे स्वयं को बुरी लगती है, वह तू दूसरे को मत कह । द्यानतराय कहते हैं कि लाख बातों में मुख्य बात एक यह ही है जिससे सुख होता है ।

\* सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त । इनके प्रणेता कपिल, पतंजलि, गौतम, कणाद, जैमिनि और बादरायण थे ।





राग : आसावरी, मोहे भूल गए साँवरिया

# रे भाई मोह महा दुखदाता

रे भाई! मोह महा दुखदाता ॥टेक ॥  
वसत विरानी अपनी मानै, विनसत होत असाता ॥

जास मास जिस दिन छिन विरियाँ, जाको होसी घाता ।  
ताको राखन सकै न कोई, सुर नर नाग विख्याता ॥  
रे भाई! मोह महा दुखदाता ॥१॥

सब जग मरत जात नित प्रति नहिं, राग बिना बिललाता ।  
बालक मरैं करै दुख धाय न, रुदन करै बहु माता ॥  
रे भाई! मोह महा दुखदाता ॥२॥

मूसे हनें बिलाव दुखी नहिं, मुरग हनैं रिस खाता ।  
'द्यानत' मोह-मूल ममता को, नास करै सो ज्ञाता ॥  
रे भाई! मोह महा दुखदाता ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई! यह मोह महादुःख देनेवाला है । पर वस्तु को अपनी मानता है और उसके नष्ट होने पर दुःखी होता है ।

जिस क्षण, जिस बेला में, जिस दिन, जिस मास में वह पर-वस्तु नष्ट होगी, उसे ख्याति प्राप्त देव, मनुष्य, नाग आदि भी बचाने में, रखने में समर्थ नहीं होते ।

सारा जगत नित्य प्रति मर रहा है, प्रतिक्षण कोई न कोई क्षय हो रहा है, मृत्यु को प्राप्त हो रहा है । परन्तु उनके प्रति राग / मोह नहीं होने से कष्ट अनुभव नहीं करता ।

जैसे बालक के मरने पर धाय (वेतन लेकर बच्चा पालनेवाली) को दुःख नहीं होता, परन्तु माता बहुत रुदन करती है । चूहे को मारने पर बिलाव दुःखी नहीं होता, न मुर्गे को मारने पर नाराज होता है । ध्यानतराय कहते हैं कि ममत्व का कारण है मोह, जो उस मोह को मूल से नष्ट करता है वह ही वास्तव में ज्ञाता है, ज्ञानी है ।



राग : असावरी, आतम अनुभव करना रे भाई

## रे मन भज भज दीन दयाल

रे मन भज भज दीन दयाल ।  
जाके नाम लेत इक खिन में, कटै कोटि अघ जाल ॥टेक ॥

पार ब्रह्म परमेश्वर स्वामी, देखत होत निहाल ।  
सुमरण करत परम सुख पावत, सेवत भाजै काल ॥  
रे मन भज भज दीन दयाल ॥२॥

इन्द्र फणिंद्र चक्रधर गावैं, जाकौ नाम रसाल ।  
जाके नाम ज्ञान प्रकासै, नासै मिथ्या चाल ॥  
रे मन भज भज दीन दयाल ॥३॥

जाके नाम समान नहीं कछु, ऊरध मध्य पताल ।  
सोई नाम जपै नित 'ध्यानत', छांडि विषै विकराल ॥  
रे मन भज भज दीन दयाल ॥४॥

**अर्थ :** ऐ मेरे मन ! तु उस दीनदयाल का सदा स्मरण कर। उसका भजन कर, जिसका नाम लेते ही क्षणभर में करोड़ों कर्मों के समूह का, पापों के जाल का नाश हो जाता है।

वे ऐसे परम ब्रह्म, परम ईश्वर, स्वामी हैं जिनको देखने से, जिनके दर्शन से जीवन कृतकृत्य हो जाता है, धन्य हो जाता है। उनके गुण-स्मरण से मन में सुखानुभूति होती है। उनकी पूजा व भक्ति आदि से मृत्यु का भय, संकट भी टल जाता है। इन्द्र, नगेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भक्तिपूर्वक उनका सरस गुणगान करते हैं। उनके नाम-स्मरण से ही ज्ञान का उजास हो जाता है। उनके गुण-स्मरण से मिथ्यात्व का जाल छिन्न-छिन्न हो जाता है। जिनके नाम की, गुणों की समता करनेवाला ऊर्ध्व, मध्य और पाताल अर्थात् तीन लोकों में कोई भी नहीं है। ध्यानतराय कहते हैं कि इन्द्रिय-विषयों को, जिनका परिणाम दारूण दुःखदायी, विकराल व भयावना है, छोड़कर एकपात्र उसके ही नाम का, गुणों का नित्य निरन्तर जाप करो।



## लागा आत्मराम सों नेहरा



राग ख्याल

लागा आत्मरामसों (मारो) नेहरा ॥टेक॥

शानसहित मरना भला रे, छूट जाय संसार ।  
धिक्क! परौ यह जीवना रे, मरना बारंबार ।  
लागा आत्मरामसों नेहरा ॥१॥

साहिब साहिब मुंहतैं कहते, जानैं नाहीं कोई ।  
जो साहिबकी जाति पिछानैं, साहिब कहिये सोई ।  
लागा आत्मरामसों नेहरा ॥२॥

जो जो देखौ नैनोंसेती, सो सो विनसै जाई ।  
देखनहारा मैं अविनाशी, परमानन्द सुभाई ।  
लागा आत्मरामसों नेहरा ॥३॥

जाकी चाह करैं सब प्रानी, सो पायो घटमाहीं ।  
'द्यानत' चिन्तामनि के आये, चाह रही कछु नाहीं ।  
लागा आतमरामसों नेहरा ॥४॥

**अर्थ :** अब मुझे अपनी आत्मा से प्रीति लग गई है ।

भेद विज्ञान प्राप्त करके मरण भी हो जाये तो भी कोई चिंता की बात नहीं है क्योंकि इससे संसार से मुक्ति मिलती है। लेकिन अज्ञान सहित जीवन यह तो धितकार करने योग्य है, जिससे बार-बार मरण प्राप्त होता है।

सभी लोग साहिब अर्थात् आत्मा आत्मा कहते हैं परन्तु उसका स्वरूप कोई नहीं जानता और जो आत्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करता है वह स्वयं आत्मानुभवी बन जाता है।

हे जीव ! तुझे आंखों से जो पंचन्दरिय के विषय दिख रहे हैं वे सभी विनाश को प्राप्त होने वाले हैं। और इन्हें जानने देखने वाला कभी नाश को प्राप्त न होने वाला अविनाशी परमानन्द स्वभावी ही मैं हूँ।

कविवर पण्डित द्यानतरायजी कहते हैं कि सभी प्राणी जिसकी चाह करते हैं वह सुख स्वयं के ही भीतर ही मौजूद है। अतः जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न के मिलने पर अन्य किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती, वैसा ही आत्मस्वभाव रूपी चिंतामणि मैंने प्राप्त कर लिया है।



## वे कोई निपट अनारी



राग : ख्याल

वे कोई निपट अनारी, देख्या आतमराम ॥टेक॥

जिनसों मिलना फेरि बिछुरना, तिनसों कैसी यारी ।  
जिन कामों में दुख पावै है, तिनसों प्रीति करारी ॥  
वे कोई निपट अनारी, देख्या आतमराम ॥१॥

बाहिर चतुर मूढ़ता घर में, लाज सबै परिहारी ।  
ठगसों नेह वैर साधुनिसों, ये बातें विस्तारी ॥२॥  
वे कोई निपट अनारी, देख्या आतमराम ॥२॥

सिंह दाढ़ भीतर सुख मानै, अक्कल सबै बिसारी ।  
जा तरु आग लगी चारौं दिश, वैठि रह्यो तिहँ डारी ॥३॥  
वे कोई निपट अनारी, देख्या आतमराम ॥३॥

हाड़ मांस लोहू की थैली, तामें चेतनधारी ।  
'द्यानत' तीनलोक को ठाकुर, क्यों हो रह्यो भिखारी ॥४॥  
वे कोई निपट अनारी, देख्या आतमराम ॥४॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! देख, कैसे-कैसे अज्ञानी, बिल्कुल अनाड़ी जीव हैं ! जिनमें सदा मिलना और बिछुड़ना ही होता रहता है, ऐसे पुद्गल से प्रीति, प्रेम, मित्रता कैसे होगी! अरे, फिर भी जिन कार्यों से स्पष्टः दुःख मिलता है, उनसे यह प्रीति करता है।

बाहर दुनियादारी के काम में चतुराई दिखाता है और अपने ही घर में यह अनजान - अज्ञानी हो रहा है अर्थात् पुद्गल के साथ चतुराई की बातें करता है, पर अपने ही आत्मवैभव के बारे में सर्वथा अज्ञानी है, अनजाना हो रहा है।

जो बाह्य आकर्षण उसे ठग रहे हैं, भुलावा भ्रम दे रहे हैं उनसे वह प्रेम करता है और जो साधुवृत्ति उसके लिए कल्याणकारी है, उसे वह शत्रुवत समझता है। ये सारी बातें फैला रखी हैं।

संसारी सुखरूपी सिंह की दाढ़ में बैठकर वह निश्चित होकर अपने को सुखी मान रहा है, कैसी मूर्खता की बात है ! अरे वहाँ एक पल की भी सुरक्षा नहीं है। जिस पेड़ के चारों ओर आग लगी है वह उसी पेड़ की डाल पर बैठा हुआ है।

यह देह रक्त, हाड़, मांस की थैली है, इसी में यह आत्मा ठहरा हुआ है। द्यानतराय कहते हैं कि अरे तू तो तीन-लोक का स्वामी है, तू क्यों अज्ञानी होकर भिखारी हो रहा है, क्यों तु दुसरे पर आश्रित हो रहा है?





# जियको लोभ महा

जियको लोभ महा दुखदाई, जाकी शोभा वरनी न जाई ।  
लोभ करै मूरख संसारी, छांडै पण्डित शिव अधिकारी ॥टेक ॥

तजि घरवास फिरै वनमाहीं, कनक कामिनी छांडै नाहीं ।  
लोक रिझावनको व्रत लीना, व्रत न होय ठगई सा कीना ॥  
जियको लोभ महा दुखदाई, जाकी शोभा वरनी न जाई ॥१॥

लोभवशात जीव हत डारै, झूठ बोल चोरी चित धारै ।  
नारि गहै परिग्रह विसतारै, पाँच पाप कर नरक सिधारै ॥  
जियको लोभ महा दुखदाई, जाकी शोभा वरनी न जाई ॥२॥

जोगी जती गृही वनवासी, बैरागी दरवेश सन्यासी ।  
अजस खान जसकी नहिं रेखा, 'धानत' जिनकै लोभ विशेखा ॥  
जियको लोभ महा दुखदाई, जाकी शोभा वरनी न जाई ॥३॥

**अर्थ :** अरे यह लोभ इस जीव को बहुत दुःख का दाता है, बहुत दुःखदायी है। इसके कारण उत्पन्ना दुःख-स्थिति का कथन नहीं किया जा सकता। इस जगत में जो लोभ करते हैं वे सभी अज्ञानी हैं। जो लोभ को छोड़ देते हैं वे ही पण्डित व ज्ञानी हैं। वे ही मोक्ष पाने के अधिकारी होते हैं।

जो घरबार छोड़कर वन में जाकर तो रहते हैं पर स्त्री व धन को नहीं छोड़ते अर्थात् स्त्री व धन साथ रखते हैं, तो उनके द्वारा ग्रहण किए गए व्रत मात्र दिखावा हैं। वे व्रत नहीं हैं, परन्तु ठगने के लिए ठग के समान लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए की जा रही क्रियाएँ हैं।

प्राणी लोभ के कारण जीवों का घात करता है, उन्हें कष्ट पहुँचाता है, झूठ बोलता है, पर-धन को हरने के लिए चोरी करता है, चोरी का विचार करता है, स्त्री को साथ लेकर परिग्रह जुटाता है और इन सबके कारण उसे नरक जाना पड़ता है।

द्यानतराय कहते हैं कि चाहे कोई योगी हो, जती (यति) हो, घर में रहनेवाला हो या बन में रहनेवाला हो, वैरागी हो या दरवेश हो अथवा संन्यासी हो, जिनके विशेष लोभ होता है उनको सबको अयश की खान (बहुत मात्रा में अपयश) की ही प्राप्ति होती है अर्थात् उन्हें यश की रेखा (तनिक भी सुयश) की प्राप्ति नहीं होती।



## श्रीजिनधर्म सदा जयवन्त



राग : असावरी

श्रीजिनधर्म सदा जयवन्त

तीन लोक तिहुँ कालनिमाहीं, जाको नाहीं आदि न अन्त ॥श्री॥

सुगुन छियालिस दोष निवारैं, तारन तरन देव अरहंत  
गुरु निरग्रंथ धरम करुनामय, उपजैं त्रेसठ पुरुष महंत ॥श्री॥

रतनत्रय दशलच्छन सोलह-कारन साध श्रावक सन्त  
छहौं दरब नव तत्व सरधकै, सुरग मुकति के सुख विलसन्त ॥श्री॥

नरक निगोद भ्रम्यो बहु प्रानी, जान्यो नाहिं धरम-विरतंत  
'द्यानत' भेदज्ञान सरधातैं, पायो दरव अनादि अनन्त ॥श्री॥



## सँभाल जगजाल में काल दरहाल



रे भाई! सँभाल जगजाल में काल दरहाल रे ॥टेक॥

कोड़ जोधा को जीतै छिनमें, एकलो एक हि सूर ।  
कोड़ सूर अस धूर कर डारै, जमकी भौंह करूर ॥  
रे भाई! सँभाल जगजाल में काल दरहाल रे ॥१॥

लोहमें कोट सौ कोट बनाओ, सिंह रखो चहुंओर ।  
इंद, फनिंद, नरिंद चौकि दैं, नहिं छोडै, मृतु जोर ॥  
रे भाई! सँभाल जगजाल में काल दरहाल रे ॥२॥

शैल जलै जस आग वलै सो, क्यों छोडै तिन सोय ।  
देव सबै इक काल भखै है, नरमें क्या बल होय ॥  
रे भाई! सँभाल जगजाल में काल दरहाल रे ॥३॥

देहधारी भये भूपर जे जे, ते खाये सब मौत ।  
'द्यानतराय' धर्म को धार चलो शिव, मौत को करके फौत ॥  
रे भाई! सँभाल जगजाल में काल दरहाल रे ॥४॥

**अर्थ :** अरे भाई ! इस जगत के जाल में तू अपने को सँभाल । काल अर्थात् मृत्यु सदैव तेरे दरवाजे पर खड़ी है ।

कोई एक अकेला ही इतना वीर है कि करोड़ों योद्धाओं को जीत लेता है, करोड़ों को धूलि-मिट्टी कर देता है किन्तु उसको भी यम की क्रूर दृष्टि नष्ट कर देती है ।

लोहे के सौ-सौ परकोटे बनाओ और उनकी रक्षा के लिए चारों ओर रक्षक योद्धा रखो; चाहे इन्द्र हो, फणीन्द्र हो या नृप

आदि चौकीदारी करें तो भी मृत्यु किसी को छोड़ती नहीं है। उस मृत्यु पर किसी का जोर नहीं चलता।

जैसे अग्नि की पहाड़-सी ऊँची उठती भयानक लपटों में कुछ भी नहीं बचता उसी प्रकार यह काल सबको खा जाता है, लील जाता है उसके सामने इस मनुष्य में कितना-सा बल है।

इस पृथ्वी पर जितने भी प्राणी हैं वे सब देह धारण किए हुए हैं, सदेह हैं, उन सभी को यह मौत खा जाती है। ध्यानतराय कहते हैं कि तुम मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म की राह पर चलो जिससे मृत्यु-श्रृंखला का अंत कर सको।



## सब जग को प्यारा



सब जग को प्यारा, चेतनरूप निहारा  
दरव भाव नो करम न मेरे, पुद्गल दरव पसारा ॥टेक ॥

चार कषाय चार गति संज्ञा, बंध चार परकारा ।  
पंच वरन रस पंच देह अरु, पंच भेद संसारा ॥१॥

छहों दरब छह काल छहलेश्या, छहमत भेदतैं पारा ।  
परिग्रह मारगना गुन-थानक, जीवथानसों न्यारा ॥२॥

दरसन ज्ञान चरन गुनमण्डित, ज्ञायक चिह्न हमारा ।  
सोहं सोहं और सु औरे, 'ध्यानत' निहचै धारा ॥३॥

**अर्थ :** अपने चैतन्यरूप को निहारा, देखना ही सारे जगत को प्रिय है। द्रव्य कर्म व नो कर्म, ये मुझ चैतन्य के नहीं हैं। ये तो सब पुद्गल का ही विस्तार है, प्रसार है।

चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ); चार गति (देव, नारक, मनुष्य और तिर्यच); चार संज्ञा (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह); चार प्रकार के बंध (प्राकृतिक, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग); पाँच वर्ण (हरा, नीला, काला, पीला और सफेद); पाँच रस (खट्टा, मीठा, चरपरा, करायला और कडुआ); पाँच देह (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, कार्माण और तेजस) व पंच परावर्तन रूप स्थितियाँ (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव) संसार ही हैं।

यह चेतन द्रव्य अन्य पॉचों द्रव्यों (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल), छह काल (सुखमा-सुखमा, सुखमा-दुखमा, दुखमा-सुषमा, दुखमा, दुखमा-दुखमा), छह लेश्या और छह प्रकार के मतों से परे हैं तथा सब परिग्रहों, चौदह मार्गणा, चौदह गुणस्थान, चौदह जीवस्थान इन सबसे न्यारा है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र के गणों से भरा हआ, यह जानने वाला /ज्ञायक होना ही हमारा चिह्न है। सोऽहं, सोऽहं अर्थात् मैं वह (सिद्ध/शुद्धरूप) हूँ, इसी को ध्यावे व चिन्तन में लावे, यह ही निश्चय का मार्ग है, प्रवाह है।



## सबको एक ही धरम सहाय



राग : गौरी, कबै निर्ग्रथ स्वरूप धर्मगा

सबको एक ही धरम सहाय ॥टेक ॥  
सुर नर नारक तिरयक् गति में, पाप महा दुखदाय ॥

गज हरि दह अहि रण गद वारिधि, भूपति भीर पलाय ।  
विधन उलटि आनन्द प्रगट है, दुलभ सुलभ ठहराय ॥  
सबको एक ही धरम सहाय ॥१॥

शुभतैं दूर बसत ढिग आवै, अघतैं करतैं जाय ।  
दुखिया धर्म करत दुख नासै, सुखिया सुख अधिकाय ॥२॥  
सबको एक ही धरम सहाय ॥२॥

ताड़न तापन छेदन कसना, कनक परीच्छा भाय ।  
'द्यानत' देव धरम गुरु आगम, परखि गहो मनलाय ॥३॥  
सबको एक ही धरम सहाय ॥३॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! एकमात्र धर्म ही सबका सहारा है । देव, तिर्यंच, नारकी व मनुष्य, इन चारों गतियों में पाप कर्म ही दुःख का, महादुःख का कारण है ।

धर्म से ही हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, युद्ध, रोग, समुद्र और राजा आदि सभी के कष्टों का निवारण होता है और आनन्द प्रकट होता है; जो दुर्लभ था वह भी सुलभ हो जाता है ।

शुभ अर्थात् पुण्य जो दूर रहता था वह भी समीप आ जाता है और पापवृत्ति छूटती जाती है । इस प्रकार धर्म को अपनाकर दुखिया अपने दुःख का नाश करता है और सुखी के सुख की वृद्धि होती जाती है ।

स्वर्ण को ताड़ना, तपाना, छेदा जाना, बाँधा जाना तथा कसौटी पर परखे जाने की भाँति सब प्रकार की परीक्षा करते हुए ध्यानतराय कहते हैं कि देव, शास्त्र व गुरु को भी परखकर उनका निश्चय करो और फिर श्रद्धा से मन में धारण करो ।



## सबमें हम हममें सब ज्ञान



राग विलावल, हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम

सबमें हम हममें सब ज्ञान, लखि बैठे दृढ़ आसन तान ॥१॥

भूमिमाहिं हम हममें भूमि, क्यों करि खोदैं धामाधूम ॥२॥

नीर-माहिं हम हममें नीर, क्यों कर पीवैं एक शरीर ॥३॥

आगमाहिं हम हममें आगि, क्यों करि जालैं हिंसा लागि ॥४॥

पौन माहिं हम हममें पौन, पंखा लेय विराधै कौन ॥५॥

रूखमाहिं हम हममें रूख, क्योंकरि तोड़ें लागैं भूख ॥६॥

लट चैंटी माखी हम एक, कौन सतावै धारि विवेक ॥७॥

खग मृग मीन सबै हम जात, सबमें चेतन एक विख्यात ॥८॥

सुर नर नारक हैं हम रूप, सबमें दीसै है चिद्रूप ॥९॥

बालक वृद्ध तरुन तनमाहिं, षंढ नारि नर धोखा नाहिं ॥१०॥

सोवन बैठन वचन विहार, जतन लिये आहार निहार ॥११॥

आयो लैंहिं न न्यौते जाहिं, परघर फासू भोजन खाहि ॥११॥  
 पर संगतिसों दुखित अनाद, अब एकाकी अमृत स्वाद ॥१२॥  
 जीव न दीसै है जड़ अंग, राग दोष कीजै किहि संग ॥१३॥  
 निरमल तीरथ आतमदेव, 'द्यानत' ताको निशिदिन सेव ॥१४॥  
 सबमें हम हममें सब ज्ञान, लखि बैठे दृढ़ आसन तान ॥

**अर्थ :** (यह भजन मुनि के चिन्तवन से सम्बन्धित है। मुनि चिन्तवन करते हुए कभी विचार करते हैं कि --)

हम चैतन्यस्वरूप हैं, दृष्टि और ज्ञाता हैं। दृष्टि होकर हम सब (पदार्थों/ज्ञेयों) में व्याप्त हैं और ज्ञाता होकर हम उन सबको जानते हैं। दृढ़ आसन धारणकर ध्यान/चिन्तवन करते हुए हमें स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि पुद्गल पर हैं और वह चैतन्य से भिन्न है। जगत में जितने भी जीव हैं वे सब चेतन हैं, वे हमारे जैसे ही हैं, स्वरूप की दृष्टि से हम और वे समान हैं, पर प्रत्येक जीव अपने में स्वतंत्र (इकाई) है।

यह भूमि एकेन्द्रिय जीव है, चेतन द्रव्य है और हम भी चेतन हैं अर्थात् उसमें भी हमारे समान चेतना है। तब हम धमाधम करते हुए पृथ्वी को क्यों खोदें?

जल भी एकेन्द्रिय जीव है और हम भी जीव हैं; स्वरूप की दृष्टि से दोनों समानरूप हैं तब वह समानरूप जल कैसे पीया जावे?

ज्ञान में अग्नि का स्वरूप प्रत्यक्ष है, वह भी एकेन्द्रिय है, उसमें भी चेतन तत्व है फिर अग्नि जलाकर हिंसा का दोष क्यों लगाया जाए?

पवन में भी जीव है, हमें यह ज्ञान है कि तब पंखा झलकर पवनकायिक जीवों की विराधना क्यों करें?

वृक्ष में भी जीव होता है फिर भूख लगने पर उन्हें तोड़कर क्यों खावें?

लट, चींटी, मक्खी सब प्राणधारी हैं यह विवेक धारण करने पर इनको कौन सता सकता है?

पशु-पक्षी, जलचर सब हमारे जैसे ही हैं, सबमें जीव है, सब चेतन हैं।

इसी भाँति देवों में, मनुष्यों में, नारकियों में सभी में समानरूप चैतन्य है।

बालक में, बूढ़े में, युवक में, नपुंसक-स्त्री-पुरुष इन सभी देहों में एक-सा चेतन तत्त्व है, इसमें किसी प्रकार की शंका / धोखा नहीं है।

इस प्रकार चिन्तवन करनेवाले मुनि / भव्यजीव सोना-उठना-बैठना-चलना बोलना, आहार-निहार आदि सब यत्पूर्वक करते हैं अर्थात् ये क्रियाएँ करते समय सावधान रहते हैं कि इन जीवों की विराधना न हो जाये।

वे (मुनि) न तो अपने निमित्त कहीं से आया हुआ आहार (भोजन) करते हैं न किसी के निमन्त्रण पर आहार हेतु आम है, बिना पूध-निश्चित किये हुए ही दूसरे के घर में प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं।

यह जीव 'पर' की संगति में दुःख हो पाता है और जब एकाकी / अकेला अपने स्वरूप में रमण करता है तो आनन्दित होता है, सुखी होता है।

वह चिन्तवन करता है कि देह पुद्गल है, रूपी है वह ही दिखाई देती है जीव तो अदृश्य है, वह तो दिखाई देता नहीं।

फिर राग-द्वेष किससे किया जाए? केवल आत्मा ही निर्मल किनारा है, स्थान है, तीर्थ है / धानतराय कहते हैं कि दिन-रात इसी की सेवा करो।





# समझत क्यों नहिं वानी

समझत क्यों नहिं वानी, अज्ञानी जन  
स्याद्वाद अंकित सुखदायक, भाषी केवलज्ञानी ॥टेक॥

जास लखें निरमल पद पावै, कुमति कुगतिकी हानी ।  
उदय भया जिहिमें परगासी, तिहि जानी सरधानी ॥१॥

जामें देव धरम गुरु वरने, तीनौं मुकतिनिसानी ।  
निश्चय देव धरम गुरु आतम, जानत विरला प्रानी ॥२॥

या जगमांहि तुझे तारनको, कारन नाव बखानी ।  
'द्यानत' सो गहिये निहचैसों, हूजे ज्यों शिवथानी ॥३॥

**अर्थ :** अरे अज्ञानी पुरुष! तू दिव्यधनि (जिनवाणी) को क्यों नहीं समझता है? वह जिनवाणी स्याद्वाद-सिद्धान्त से चिह्नित है (स्याद्वाद द्वारा पहचानी जाती है), सुखदायक है और केवलज्ञानी के द्वारा कही हुई है।

उस जिनवाणी को देख-समझकर प्राणी निर्मल पद को प्राप्त करता है और कुमति व कुगति दोनों को ही नष्ट करता है। जिसके अन्तःकरण में ज्ञानरूप प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है, उदय होता है उसके हृदय में श्रद्धान्, आस्था दृढ़ होती है।

मुक्ति का मार्ग दिखाने व बतलानेवाले देव, शास्त्र व गुरु की महिमा जिस वाणी में कही गई है ऐसे देव, शास्त्र व गुरु के स्वरूप को कोई बिरला प्राणी ही अपनी आत्मा में अनुभव करता है, जानता है।

इस भवसागर से पार उतारने हेतु यह जिनवाणी नाव के समान साधन है। द्यानतराय कहते हैं कि जो उस दिव्यधनि को निश्चय से अपनी आत्मा में ग्रहण करते हैं वे शिवसुख को पाते हैं, सिद्धशिला पर अपना स्थान पाते हैं।





राग : धमाल

# साधो छांडो विषय विकारी

साधो! छांडो विषय विकारी, जातैं तोहि महा दुखकारी  
जो जैनधर्म को ध्यावै, सो आत्मीक सुख पावै ॥टेक ॥

गज फरस विषैं दुख पाया, रस मीन गंध अलि गाया ।  
लखि दीप शलभ हित कीना, मृग नाद सुनत जिय दीना ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥१॥

ये एक एक दुखदाई, तू पंच रमत है भाई ।  
यह कौनें, सीख बताई, तुमरे मन कैसैं आई ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥२॥

इनमाहिं लोभ अधिकाई, यह लोभ कुगतिको भाई ।  
सो कुगति माहिं दुख भारी, तू त्याग विषय मतिधारी ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥३॥

ये सेवत सुखसे लागैं, फिर अन्त प्राणको त्यागैं ।  
तातैं ये विषफल कहिये, तिनको कैसे कर गहिये ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥४॥

तबलौं विषया रस भावै, जबलौं अनुभव नहिं आवै ।  
जिन अमृत पान ना कीना, तिन और रसन चित दीना ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥५॥

अब बहुत कहां लौं कहिए, कारज कहि चुप है रहिये ।  
ये लाख बातकी एक, मत गहो विषय की टेक ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥६॥

जो तजै विषयकी आसा, 'द्यानत' पावै शिववासा ।  
यह सतगुरु सीख बताई, काहू बिरले जिय आई ॥  
साधो! छांडो विषय विकारी ॥७॥

**अर्थ :** हे सज्जन पुरुष! जिन विकारी विषयों के सेवन से तुमको महादुःख प्राप्त होता है उनका त्याग करो। जो जैनधर्म को ध्याता है अर्थात् उसके मार्ग अनुसरण करता है वह आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

जैसे-हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय लोभ में गड़े में गिरकर, मछली रसना इन्द्रिय के विषय लोभ में कांटे में फंसकर, भंवरा सुगन्ध के लोभ में फूल में बंद होकर, पतंगा चक्षु इन्द्रिय के विषय के लोभ में अग्नि में जलकर और मृग कर्ण-इन्द्रिय के विषय के लोभ में शिकारी के चंगुल में फंसकर अपने प्राण गंवा देते हैं ॥

ये तो एक-एक इन्द्रिय के लोभ के वश अपने प्राण गंवाते हैं और तुम तो पाँचों इन्द्रियों के विषयों में रमण कर रहे हो - हे जीव ! यह तुम्हें किसने सिखाया और इनको भोगने की बुद्धि तुमने कहाँ से प्राप्त की ? अतः इन विषय विकार का त्याग करो।

पाँच इन्द्रियों के विषयों में लोभ की अधिकता है और लोभ की वासना ही दुर्गति का मूल कारण है और इन गतियों में महादुख सहन करने पड़ते हैं इसलिये हे ज्ञानीजीव ! तुम इनका त्याग करो ।

ये पाँच इन्द्रियां सेवन के समय तो सुख रूप प्रतीत होती है परन्तु इनके सेवन से अंत में अपनी ही हानि है इसलिये इन्हें विषफल ही कहा है । अतः है जीव ! इन विषफलों का तुम कैसे सेवन कर सकते हो ?

तथा जब तक इन विषय कषाय का रस आता है तब तक आत्मा का अनुभव भी नहीं हो सकता । और जिनने अपनी आत्मा के अमृत रस का पान नहीं किया है उनका चित्त सदैव विषय-कषायों के रस में ही रमता हैं।

अब इनकी बात कितनी कहें, इन विषयों का फल कहकर मौन हो जाना चाहिये और विषय - भोगों की आशा नहीं करना चाहिये - यही लाख बात की एक बात अर्थात् सार है।

द्यानतरायजी कहते हैं कि जो जीव विषयों की परवष्टा का त्याग करता है उसे मोक्ष का सुख प्राप्त होता है। दिग्म्बर मुनिराजों ने भी यही शिक्षा दी है जो विरले जीवों को ही सुहाती है।



## सील सदा दिढ़ राखि हिये



रागा रामकली

रे जिया! सील सदा दिढ़ राखि हिये ॥टेक ॥  
जाप जपत तप तपत विविध विधि, सील बिना धिक्कार जिये ॥

सील सहित दिन एक जीवनो, सेव करैं सुर अरघ दिये ।  
कोटि पूर्व थिति सील विहीना, नारकी दैं दुख वज्र लिये ॥  
रे जिया! सील सदा दिढ़ राखि हिये ॥१॥

ले व्रत भंग करत जे प्रानी, अभिमानी मदपान पिये ।  
आपद पावै विघ्न बढ़ावैं, उर नहिं कछु लेखान किये ॥  
रे जिया! सील सदा दिढ़ राखि हिये ॥२॥

सील समान न को हित जगमें, अहित न मैथुन सम गिनिये ।  
'द्यानत' रतन जतनसों गहिये, भवदुख दारिद-गन दहिये ॥  
रे जिया! सील सदा दिढ़ राखि हिये ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव! तू हमेशा अपने हृदय में दृढ़ता से शील को धारण कर। भाँतिभाँति के जप और तप भी शील के बिना धिक्कारने योग्य है।

जो जीव शीलसहित अल्प समय भी जीता है उस जीव की सब सेवा करते हैं, देवता भी उसको पूजा करते हैं, अर्घ चढ़ाते हैं। इसके विपरीत करोड़ों पूर्वों की स्थितिवाली आयु हो और वह शील रहित हो तो वह नरक पर्याय में वज्र धारण किए हुए नारकी की भाँति दारुण दुखदायी है।

जो अभिमानी मान के मद में चूर होकर व्रत भंग करता है वह आपदा पाता है, कष्ट बढ़ाता है। अपने मन में वह उसका तनिक भी लेखा-जोखा अर्थात् विचार नहीं करता।

जगत में शील के समान कोई हितकारी नहीं है। मैथुन के समान दूसरा नाश करनेवाला नहीं है। ध्यानतराय कहते हैं कि यह शील एक रत्न है। इसे बहुत सावधानीपूर्वक सँभालकर ग्रहण करो, जिससे भव-भव के दुख-दारिद्र का नाश हो जाए - दहन हो जाए।



## सुन चेतन इक बात हमारी



सुन चेतन इक बात हमारी, तीन भुवन के राजा ।  
रंक भये बिललात फिरत हो, विषयनि सुख के काजा ॥१॥

चेतन तुम तो चतुर सयाने, कहाँ गई चतुराई ।  
रंचक विषयनि के सुखकारण, अविचल ऋद्धि गमाई ॥२॥

विषयनि सेवत सुख नहिं राई, दुःख है मेरु समाना ।  
कौन सयानप कीनी भोंदू, विषयनि सों लपटाना ॥३॥

इस जग में थिर रहेना नाहीं, तैं रहेना क्यों माना ।  
सूझत नाहि कि भांग खाई है, दीसे परगट जाना ॥४॥

तुमको काल अनन्त गये हैं, दुःख सहते जगमांही ।  
विषय कषाय महारिपु तेरे, अजहूँ चेतत नाहीं ॥५॥

ख्याति लाभ पूजा के काजैं, बाहिज भेष बनाया ।  
परमतत्त्व का भेद न जाना, वादि अनादि गँवाया ॥६॥

अति दुर्लभ तैं नर भव लहेकैं, कारण कौन समारा ।  
रामा रामा धन धन साँटैं, धर्म अमोलक हारा ॥७॥

घट-घट साई मैंनू दीसे, मूरख मरम न पावे ।  
अपनी नाभि सुवास लखे बिन, ज्यों मृग चहुँ दिशि धावे ॥८॥

घट-घट साई घट सा नाई, घटसों घट में न्यारो ।  
घूँघट का पट खोल निहारो, जो निजरूप निहारो ॥९॥

ये दश माझ सुनैं जो गावै, निरमल मन सा कर के ।  
'द्यानत' सो शिव सम्पति पावै, भवदधि पार उतर के ॥१०॥

**अर्थ :** हे चेतन प्राणी! हमारी एक बात को ध्यान से सुन! अरे तुम तो तीन-लोक के स्वामी हो और फिर भी तुम इन्द्रिय विषय भोगों में लुब्ध होकर दरिद्री बनकर दुखी हो रहे हो।

अरे चेतन! तुम तो बहुत चतुर हो, सयाने हो, वह तुम्हारी चतुराई कहाँ गई? थोड़े से इन्द्रिय-विषयों के सुख के कारण, शाश्वत रहने वाली ऋद्धि को तुमने गवाँ दिया है।

इन्द्रिय-विषयों के सेवन में राई जितना भी सुख नहीं है। उल्टा इनके सेवन करने में मेरु-पर्वत के समान महादुःख है। अरे मूर्ख! तब भी तू इन विषयों से लिपटा हुआ है, यह तूने कैसा सायानापन किया है।

इस अस्थिर जगत में कुछ भी स्थिर नहीं रहता है तो तू सदा काल रहेगा तूने ऐसा क्यों मान लिया? प्रकट में संयोगों को जाता देखकर भी तुझे ख्याल नहीं आता, लगता है कि तूने भाँग खा रखी है जिससे तेरी सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो गई है।

इस जगत में दुःख सहते-सहते तुम्हें अनन्तकाल व्यतीत हो गये तब भी तुझे भान नहीं हुआ कि ये इन्द्रिय विषय और कषाय ही तेरे महान शत्रु हैं।

जगत में यश, लाभ और पूजा (मान) के लिये तूने अपना यह बाहर का वेश बना रखा है। तूने परमतत्त्व को अर्थात् वस्तु स्वरूप को तो समझा नहीं और व्यर्थ में ही अनादिकाल से समय गँवाता जा रहा है।

यह दुर्लभ नर देह को पाकर तुमने क्या कार्य सम्पन्न किया? स्त्री-पुत्र और धन-सम्पदा के लिये तूने अमूल्य जिन धर्म को गँवा दिया।

ज्ञानी जीवों को घट-घट में, प्रत्येक देह में अनन्त शक्तिशाली आत्मा दिखाई देती है पर मूर्ख उसे समझ नहीं पाते। जैसे अपनी नाभि में रखी कस्तूरी की सुगंध से अनजान मृग उसके लिये सभी दिशाओं में दौड़ता फिरता है।

घट-घट में आत्मा विद्यमान होने पर भी उसका स्वरूप घट से अलग है तथा वह घट में रहकर भी घट से भिन्न है। जिस प्रकार घूंघट को हटाने के बाद स्त्री का सुंदर मुख दिखाई देता है वैसे ही जब यह जीव इस घट अर्थात् देह से भिन्न आत्म तत्त्व को दृष्टिगत करता है तब उसको निज आत्मस्वरूप के दर्शन होते हैं।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि जो अपने मन को निर्मलकर इन दस पदों को सुनते और घारण करते हैं वे संसार समुद्र से पार होकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।



## सुन चेतन लाड़ले यह चतुराई

सुन सुन चेतन! लाड़ले, यह चतुराई कौन हो ॥टेक ॥  
आतम हित तुम परिहर्यो, करत विषय-चिंतौन हो ॥



गहरी नीव खुदाइकै हो, मकां किया मजबूत ।  
एक घरी रहि ना सकै हो, जब आवै जमदूत हो ॥१॥

स्वारथ सब जगवल्लहा हो, विनु स्वारथ नहिं कोय ।  
बच्छा त्यागै गायको रे, दूध बिना जो होय ॥२॥

और फिकर सब छांडि दे हो, दो अक्षर लिख लेह ।  
'द्यानत' भज भगवन्त को हो, अर भूखे को देह हो ॥३॥

**अर्थ :** हे चेतन! सुनो, यह कैसी चतुराई है ! तुमने अपनी आत्मा के हित का विचार छोड़ दिया है और इन्द्रिय-विषयों की चिन्ता करते हो ?

गहरी नींव खुदा करके तो तुमने अपने भवन के आधार का, मजबूती का ध्यान रखा । पर यह नहीं सोचा कि जब यमदूत आएँगे तो तुम एक घड़ी भी उसमें नहीं रह सकोगे, रुक नहीं सकोगे ।

जगत में सबको स्वार्थ ही प्रिय है, स्वार्थ के कारण वस्तु प्रिय लगती है । बिना स्वार्थ के कोई अच्छा नहीं लगता । बछड़ा भी उस गाय को छोड़ देता है जिसके स्तनों में दूध शेष न रहा हो ।

द्यानतराय कहते हैं, अरे तू सारी चिन्ता-फिक्र छोड़कर (सोहं) ये दो अक्षर मन में लिख ले और भगवान का भजन कर ले । यह उतना ही आवश्यक है कि जैसे देह को भूख लगती है ।



## सोई ज्ञान सुधारस पीवै

सोई ज्ञान सुधारस पीवै ॥टेक ॥  
जीवन दशा मृतक करि जाने, मृतक दशा में जीवै ॥



सैनदशा जाग्रत करि जानै, जागत नाहीं सोवै ।  
मीतौं को दुशमन करि जाने, रिपु को प्रीतम जोवै ॥  
सोई ज्ञान सुधारस पीवै ॥१॥

भोजनमाहिं वरत करि बूझै, व्रत में होत अहारी ।  
 कपड़े पहिरै नगन कहावै, नागा अंबरधारी ॥  
 सोई ज्ञान सुधारस पीवै ॥२॥

बस्ती को ऊजर कर देखै, ऊजर बस्ती सारी ।  
 'द्यानत' उलट चाल में सुलटा, चेतन-जोति निहारी ॥  
 सोई ज्ञान सुधारस पीवै ॥३॥

**अर्थ :** वह भव्य ही ज्ञानरूपी अमृत के रस का पान करता है, पीता है जो जीवन को और मृत्यु को जानकर, संसार के प्रति तटस्थ होकर मृत्युदशा में जीता है अर्थात् जो सदैव मृत्यु के प्रति सावधान रहता है ।

सोता हुआ भी जो अपने लक्ष्य के प्रति जागता हुआ रहता है तथा जाग्रत अवस्था में कभी बेसुध-अचेत नहीं होता तथा मित्रों को आसक्ति के कारण शत्रु समान समझता है तथा जो विमुख है उनके प्रति प्रीति जताता है ।

भोजन के समय व्रतों की बात करता है, समझता है और व्रत में आहार ग्रहण करता है । वस्त धारण करके जो वैराग्य की भावना करता है और वस्त छोड़कर आकाश का वस्त धारण करता है ।

सारी बसी हुई बस्ती को एकान्त रूप / उजाड़ रूप में देखता है और उजाड़ में अपनी बस्ती बसाता है अर्थात् रहता है । द्यानतराय कहते हैं कि इस प्रकार संसार के प्रति उल्टी चाल में वह सुलटी हुई दशा देखता है और अपने चैतन्य स्वरूप को सदैव निहारता रहता है, उसके ध्यान में लगा रहता है वह भव्य ही ज्ञानरूपी अमृत के रस का पान करता है ।



## सोग न कीजे बावरे मरें



राग आसावरी

सोग न कीजे बावरे! मरें पीतम लोग  
 जगत जीव जलबुदबुदा, नदि नाव संजोग ॥टेक॥

आदि अन्त को संग नहिं, यह मिलन वियोग ।  
कई बार सबसों भयो, सनबंध मनोग ॥  
सोग न कीजे बावरे! मरें पीतम लोग ॥१॥

कोट वरष लौं रोइये, न मिलै वह जोग ।  
देखैं जानैं सब सुनैं, यह तन जमभोग ॥  
सोग न कीजे बावरे! मरें पीतम लोग ॥२॥

हरिहर ब्रह्मा से खये, तू किनमें टोग ।  
'द्यानत' भज भगवन्त जो, विनसै यह रोग ॥  
सोग न कीजे बावरे! मरें पीतम लोग ॥३॥

**अर्थ :** अरे बावले! अपने प्रियजनों की मृत्यु पर तू शोक न कर। इस जगत का जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणिक है।

आत्मा का इस देह से संयोग नदी में नाव के समान अल्पकालीन है। इस आत्मा का यह देह-संयोग अर्थात् मिलन और वियोग शुरू से अन्त तक साथ रहनेवाला नहीं है। इस प्रकार का मनोहर सम्बन्ध अनेक बार सभी प्रकार की देहों से बन चुका है।

एक बार पाकर नष्ट हुआ संयोग / सम्बन्ध करोड़ों वर्षों तक रोने पर भी पुनः नहीं मिलता । सब इसे देखते, जानते व सुनते हैं कि यह देह तो यम का भोग / भोजन है अर्थात् यम का ग्रास है ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसों का भी क्षय होता है तो तेरी क्या बिसात है, क्या हस्ती है? द्यानतराय कहते हैं कि तू भगवान का भजन कर जिससे यह मृत्युरोग ही नष्ट हो जाए ।





# हम न किसीके कोई न हमारा

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा  
तन-सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ॥

पुन्य उदय सुख का बढ़वारा, पाप उदय दुख होत अपारा ।  
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ॥  
हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा ॥१॥

मैं तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला, पर संजोग भया बहु मेला ।  
थिति पूरी करि खिर खिर जाहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ॥  
हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा ॥२॥

राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं ।  
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतनपदमाहीं ॥  
हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा ॥३॥

**अर्थ :** हे प्राणी ! न तो हम किसी के हैं और न कोई हमारा है। जग में जो अपनेपन का व्यवहार प्रचलित है, वह नितान्त झूठा है, मिथ्या है।

यह सब परिवार इस शरीर से सम्बन्धित है; परन्तु हम जानते हैं कि यह तन भी हमसे न्यारा है, अलग है। पुण्योदय होता है तो सुख की वृद्धि होती है। पाप का उदय होता है तो अपार (जिसका कोई पार नहीं होता) दुःख उत्पन्न होता है। पाप और पुण्य ये दोनों ही क्रियाएँ संसार की हैं, मैं तो इन सबका दृष्टा मात्र हूँ, देखनेवाला हूँ।

मैं तीन लोक में, तीन काल में सदा अकेला हूँ। पर के संयोग के कारण यह (पारिवारिक) मेला-सा जुट गया है। जैसे-जैसे इसकी स्थिति पूरी होती जाती है, ये सब संयोग विघटते जाते हैं, खिर जाते हैं, खत्म होते जाते हैं इसलिए इन संयोगों के प्रति

मेरे न कोई हृषि है और न मेरे कोई शोक है, न विषाद है।

राग-भाव के कारण अपनापन होता है, जिसके कारण प्राणी अपना समझा व कहा जाता है, सज्जन व भला आदमी समझा व जाना जाता है। और वैरभाव के कारण वह दुष्ट गिना जाता है। परन्तु न तो यह राग-भाव मेरा है और न यह द्वेष-भाव ही मेरा है। धानतराय कहते हैं कि मेरा तो यह चेतनपद है, जो इन दोनों (राग-द्वेष) से भिन्न है - वह ही मेरा अपना है।



## हम लागे आत्मराम सों



राग : सारंग

हम लागे आत्मराम सों ।  
विनाशीक पुद्गल की छाया, को न रमै धनवान सों ॥टेक ॥

समता सुख घट में परगास्यो, कौन काज है काम सों ।  
दुविधा - भाव जालंजुली दीनौं, मेल भयो निज आत्म सों ॥१॥

भेदज्ञान करि निज परि देख्यौ, कौन बिलोकै चाम सों ।  
उरै परै की बात न भावै, लौ लाई गुणग्राम सों ॥२॥

विकलपभाव रंक सब भाजे, झरि चेतन अभिराम सों .  
'ध्यानत' आत्म अनुभव करिके, छूटै भव दुःखधाम सों ॥३॥

**अर्थ :** अब हमारी अपनी आत्मा से लगन लग रही है। जगत में जो कुछ दृश्य है वह सब पुद्गल द्रव्य है और वह सब विनाशी स्वभाववाला, विनाश होनेवाला है, हम सर्वगुण संपन्न हैं, धनी हैं, तब क्यों पर पर्यायों में, नष्ट होनेवाले पुद्गल की छाया में, रमण करें?

हमारे अपने अन्तर में सुख है, यह तथ्य, यह सत्य प्रगट है। फिर काम से, तृष्णा से हमें क्या प्रयोजन है? जब से हमारा

मिलन अपनी आत्मा से हुआ है, तब से संशय और दुविधा की स्थिति से छुटकारा हो गया है।

स्व और पर के भेदज्ञान से सबकुछ स्पष्ट हो गया है, फिर इस देह को, चाम को क्या महत्व दें? इस भेद-ज्ञान के कारण इधर-उधर की कोई बात हमें रुचिकर नहीं लगती, क्योंकि हमारी रुचि तो अपने ही गुणों में है; उनकी अनुरक्षित ही भली लगती है।

सारे विकल्प थोथे प्रतीत होते हैं, ये सब चेतन की मनोहारी झङ्गी में धुल जाते हैं, हट जाते हैं। ध्यानतराय कहते हैं कि जब आत्मा की अनुभूति होती है तो भव-भव के सारे दुःख छूट जाते हैं, उसके आनन्द में विस्मृत होकर मिट जाते हैं।



## हमको कैसैं शिवसुख होई



राग : गौरी, कबै निर्ग्रथ स्वरूप धृँगा

हमको कैसैं शिवसुख होई ॥टेक ॥  
जे जे मुकत जान के कारण, तिनमें को नहि कोई ॥

मुनिवर को हम दान न दीना, नहिं पूज्यो जिनराई ।  
पंच परम पद बन्दे नाहीं, तपविधि वन नहिं आई ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥१॥

आरत रुद्र कुध्यान न त्यागे, धरम शुकल नहिं ध्याई ।  
आसन मार करी आसा दिढ़, ऐसे काम कमाई ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥२॥

विषय-कषाय विनाश न हूआ, मनको काबु न कीना ।  
मन वच काय जोग थिर करकैं, आत्मतत्त्व न चीना ॥

हमको कैसैं शिवसुख होई ॥३॥

मुनि श्रावकको धरम न धार्यो, समता मन नहिं आनी ।  
शुभ करनी करि फल अभिलाष्यो, ममता-बुध अधिकानी ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥४॥

रामा रामा धन धन कारन, पाप अनेक उपायो ।  
तब हू तिसना भई न पूरन, जिनवानी यों गायो ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥५॥

राग दोष परनाम न जीते, करुना मन नहिं आई ।  
झूठ अदत्त कुशील गह्यो दिढ़, परिगृहसों लौ लाई ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥६॥

सातौं विसन गहे मद धार्यो, सुपरभेद नहिं पाई ।  
'द्यानत' जिनमारग जाने बिन, काल अनन्त गमाई ॥  
हमको कैसैं शिवसुख होई ॥७॥

**अर्थ :** हे आत्मन् ! हमको मोक्षसुख की प्राप्ति कैसे हो ? क्योंकि जो-जो भी मुक्ति के कारण कहे जाते हैं उनमें से तो एक भी हममें नहीं है।

हमने कभी मुनियों को दान नहीं दिया अर्थात् आहारदान नहीं दिया। न श्री जिनराज की पूजा की। पंचपरमेष्ठियों की कभी वन्दना नहीं की और न कोई तप-साधना ही हमसे बन पड़ी।

आर्त-रौद्र कुध्यान हैं, इनको भी हमने कभी नहीं छोड़ा। हमने कभी धर्म व शुक्ल ध्यान नहीं साधा। आसन लगा कर अर्थात् हमने अपने सब प्रकार के प्रमो-क्रिया से अपनी शाशाओं को ही किया, निदान व तृष्णा में ही लगे रहे-कुशील में लगे रहे।

इन्द्रिय विषय और कषाय का विनाश नहीं किया और मन को स्थिर नहीं किया, वह चंचल ही बना रहा। मन-वचन और काय को स्थिर न कर कभी अपनी आत्मा की ओर नहीं देखा अर्थात् आत्म तत्त्व को नहीं जाना।

न मुनि धर्म साधा और न श्रावक धर्म का पालन किया। मन में समता नहीं रही, राग-द्वेष में ही रत रहा। पुण्य कार्य के परिणाम की अभिलाषा-इच्छा ही करता रहा और रागभाव में ही झूबा रहा।

स्त्री व धन के कारण अनेक पाप कर्म किए। फिर भी तृष्णा शान्त नहीं हुई, तृप्त नहीं हुई।

राग-द्वेष और उसके फल, इन पर विजय प्राप्त नहीं की ओर न कभी करुणा मन में आई। झूठ, चोरी, कुशील की क्रियाओं में ही लगा रहा और परिग्रह जुटाता रहा, उसी में लगा रहा।

सप्त व्यसनों में मैं लिप्त रहा; उसी के नशे में मैं झूबा रहा, स्व-पर का भेद नहीं जाना। धानतराय कहते हैं कि जिन-मार्ग को, धर्म को जाने बिना अनन्त काल बिता दिए, गँवा दिए, ऐसे में शिवसुख कैसे हो?



## हमारो कारज ऐसे होय



राग : गौरी, कबै निर्गंथ स्वरूप धर्मगा  
सजनवा बैरी हुई गए हमार

हमारो कारज ऐसे होय  
आत्म आत्म पर पर जानैं, तीनौं संशय खोय ॥टेक ॥

अंत समाधिमरन करि तन तजि, होय शक्र सुरलोय ।  
विविध भोग उपभोग भोगवै, धरमतनों फल सोय ॥  
हमारो कारज ऐसे होय ॥१॥

पूरी आयु विदेह भूप है, राज सम्पदा भोय ।  
कारण पंच लहै गहै दुद्धर, पंच महाव्रत जोय ॥  
हमारो कारज ऐसे होय ॥२॥

तीन जोग थिर सह परीसह, आठ करम मल धोय ।  
 'द्यानत' सुख अनन्त शिव विलसै, जनमैं मरै न कोय ॥  
 हमारो कारज ऐसे होय ॥३॥

**अर्थ :** हे साधक ! हमारा कार्य इस प्रकार सिद्ध हो सकता है कि हम अपनी आत्मा को आत्मा जानें। इस आत्मा से भिन्न जो भी है वह दूसरा है, वह पर है, उसे पर जानें। उसमें संशय, विमोह व विभ्रम तनिक भी न करें अर्थात् स्व को 'स्व' और पर को 'पर' जानें।

अंत समय समाधिमरण करते हुए इस देह को छोड़ें और देवलोक में जाकर देवरूप में, इन्द्ररूप में अगला जन्म धारण करें जहाँ अनेक प्रकार के भोग व उपभोग उपलब्ध हैं उन्हें धर्म के फल रूप में भोग करें।

पंच महाव्रत के पालन व दुर्द्वर तप के फलरूप में, धर्म के फलरूप में ही विदेह क्षेत्र में राजा होकर राज-सम्पदा, भोग-सामग्री प्राप्त होती है। इन पंच महाव्रत व दुर्द्वर तप से मोक्ष के कारणरूप पाँच लक्ष्मीयाँ प्राप्त होती हैं।

मन, वचन, काय की चंचलता को रोककर स्थिर होवें तथा जो भी अन्य बाह्य परीषह आवें उनको समता व दृढ़तापूर्वक सहन करें; इस प्रकार अष्ट कर्मरूपी मैल को धोवें। द्यानतराय कहते हैं कि ऐसी ही क्रिया से कर्म-मल नष्ट होकर मोक्ष में अननपुगत रूप लक्ष्मी की प्राप्ति होती है अर्थात् जन्म-मरण नहीं होता।



## हमारो कारज कैसें होय



राग : गौरी, कबै निर्ग्रथ स्वरूप धूँगा  
 सजनवा बैरी हुई गए हमार

हमारो कारज कैसें होय  
 कारण पंच मुक्ति मारग के, जिनमें के हैं दोय ॥टेक ॥

हीन संहनन लघु आयूषा, अल्प मनीषा जोय ।  
 कच्चे भाव न सच्चे साथी, सब जग देख्यो टोय ॥१॥

इन्द्री पंच सुविषयनि दौरैं, मानैं कह्या न कोय ।  
साधारन चिरकाल वस्यो मैं, धरम बिना फिर सोय ॥२॥

चिन्ता बड़ी न कछु बनि आवै, अब सब चिन्ता खोय ।  
'धानत' एक शुद्ध निजपद लखि, आपमें आप समोय ॥३॥

**अर्थ :** हे प्रभु! हमारा कार्य कैसे सिद्ध हो? कैसे सम्पन्न हो? मुक्तिमार्ग के कारण पंच परमेष्ठी हैं, जिनमें से कार्यरूप तो केवल अरहंत और सिद्ध, ये दो ही हैं।

हमारा संहनन (शक्ति) हीन अर्थात् कमजोर है। आयु भी थोड़ी है, तथा बुद्धि भी थोड़ी ही है। इस प्रकार के कच्चे (बिना पके) भाव हमारे सच्चे साथी नहीं हो सकते। यह भाव-जगत में हमने देख लिया है।

हमारी पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर दौड़ रही हैं। वे किसी का कहना सुनती ही नहीं हैं अर्थात् मन इन्द्रिय-विषयों में ही लुब्ध रहता है, उनमें ही राचता है, मुग्ध होता है। बहुत काल तक मैं साधारण वनस्पति रूप में एकेन्द्रिय बनकर निगोद राशि में भटकता रहा, जहाँ धर्म की प्रतीति ही नहीं ।

हाँ, यह चिन्ता तो बहुत है पर इसका निराकरण कैसे हो - यह दिखाई नहीं देता। धानतराय कहते हैं कि अब चिन्ता को छोड़कर अपने आप में अपने आप को ही देखो और उसी में स्वयं लीन हो जाओ।



## हो भविजन ज्ञान सरोवर सोई

हो भविजन ज्ञान सरोवर सोई ।  
भूमि छिमा करुना मरजादा, समरस जल जहं होई ॥टेक॥



परनति लहर हरख जलचर बहु, नय पंकति परकारी ।  
सम्यक कमल अष्टदल गुण हैं, सुमन भंवर अधिकारी ॥१॥

संजम शील आदि पल्लव हैं, कमला सुमति निवासी ।  
सुजस सुवास कमल परिचयतैं, परसत भ्रम तम नासी ॥२॥

भवमल जात न्हात भविजन को, होत परमसुख साता ।  
'द्यानत' यह सर और न जानैं, जानैं बिरला ज्ञाता ॥३॥

**अर्थ :** हे भव्य पुरुष! देखो ज्ञानरूपी सरोवर शोभायमान है। यह सरोवर वहीं है जहाँ क्षमारूपी भूमि (आधार) है, करुणारूपी सीमाएँ (मर्यादाएँ) हैं और उसमें चंचलतारहित समतारूपी जल विद्यमान है।

ऐसे सरोवर में शुभ परिणामों की लहरों में हर्षरूपी जलचर होते हैं और विभिन्न नयों के कमल सुशोभित हैं। उस ज्ञान-सरोवर में अनेक प्रकार के पंकज (कमल) सुशोभित हो रहे हैं। आठ पाँखुड़ी (गुणों) के सम्यक्त्वरूपी कमल प्रफुल्लित हैं, जिन पर (अच्छे मनवाले) भविकजन (भ्रमर) लुब्ध होकर अधिकारपूर्वक स्वच्छंद मँडरा रहे हैं।

ऐसे कमल दल के संयम और शीलरूप पल्लव है, पते हैं। वहाँ सुमति अर्थात् विवेक-लक्ष्मी का आवास है। ऐसे कमलों की सुगंध दूर-दूर तक फैलकर सुयश बढ़ा रही है। उनका कोमल स्पर्श संशय अर्थात् भ्रमरूपी तपन को नष्ट कर रहा है।

उस सरोवर में सान करने से भवरूपी मल से छुटकारा होकर परमशांति की प्राप्ति होती है। धनतराय कहते हैं कि ऐसे ज्ञानरूपी सरोवर की थाह कोई बिरला ही ले पाता है, बिरला ही जान पाता है।



## हो भैया मोरे कहु कैसे सुख



तर्ज : अज्ञानी पाप धतुरा

हो भैया मोरे! कहु कैसे सुख होय ॥टेक ॥  
लीन कषाय अधीन विषय के, धरम करै नहिं कोय ॥

पाप उदय लखि रोवत भोंदू!, पाप तजै नहिं सोय ।  
स्वान-वान ज्यों पाइन सूंधै, सिंह हनै रिपु जोय ॥

हो भैया मोरे! कहु कैसे सुख होय ॥१॥

धरम करत सुख दुख अघसेती, जानत हैं सब लोय ।  
कर दीपक लै कूप परत है, दुख पैहै भव दोय ॥  
हो भैया मोरे! कहु कैसे सुख होय ॥२॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म भुलायो, देव धरम गुरु खोय ।  
उलट चाल तजि अब सुलटै जो, 'द्यानत' तिरै जग-तोय ॥  
हो भैया मोरे! कहु कैसे सुख होय ॥३॥

**अर्थ :** ओ मेरे भाई ? बता, सुख किस प्रकार हो ! कषायों से ग्रस्त व इन्द्रिय-विषयों में आसक्त जीव कोई धर्म-साधन नहीं करता तब उसे सुख किस प्रकार हो सकता है?

अरे भोंदू (नासमझ) ! जब पापोदय होता है, तब तू रोता है, परन्तु पाप को छोड़ता नहीं है । तेरी आदत तो उस कुत्ते की भाँति हैं जो पहले शत्रु के पाँव को सूंघता रहता है, जबकि सिंह की आदत तो शत्रु को देखते ही उसे नष्ट करने की होती है।

धर्म-साधन से सुख होते हैं और पाप से दुःख होता है, यह सब लोग जानते हैं । अरे हाथ में दीपक लेकर भी यदि कोई कुएं में गिरे तो वह इस भव व परभव दोनों में दुःख का भागी होता है ।

सच्चे देव, शास्त्र व गुरु का साथ छोड़कर कुगुरु, कुदेव, कुधर्म में तू अपने आपको भुला रहा है । द्यानतराय कहते हैं कि इस उल्टी चाल को छोड़कर अब यदि तू सीधी चाल चले, सम्यक् राह पर चले तो तू इस जग से पार हो सकेगा, तिर जावेगा ।



## आयो सहज बसन्त खेलैं

आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥टेक ॥  
उत बुधि दया छिमा बहु ठाढ़ीं, इत जिय रतन सजै गुन जोरा ।



ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं, अनहद शब्द होत घनघोरा ।  
धरम सुराग गुलाल उड़त है, समता रंग दुहूंने घोरा ॥  
आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥१॥

परसन उत्तर भरि पिचकारी, छोरत दोनों करि करि जोरा ।  
इतः कहैं नारि तुम काकी, उत कहैं कौन को छोरा ॥  
आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥२॥

आठ काठ अनुभव पावक में, जल बुझ शांत भई सब ओरा ।  
'द्यानत' शिव आनन्दचन्द छबि, देखें सज्जन नैन चकोरा ॥  
आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥३॥

**अर्थ :** इस परिणमनशील संसार में, बंसत के सहज आगमन पर सब (ज्ञानीजन) होली खेलते हैं, प्रफुल्लित होते हैं। एक (उस) तरफ बुद्धि, दया, क्षमा आदि खड़ी है और दूसरी तरफ (इस तरफ) जीव / आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्ररूपी रतन-गुणों से सुसज्जित होकर खड़े हैं। बुद्धिपूर्वक दया व क्षमा को धारणकर, सम्यकदर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नों से सजकर अपने गुणों को जोड़ते हैं अर्थात् गुणों में एकाग्र होते हैं।

ज्ञान और ध्यानरूपी डफ एक ताल व एक लय में बजते हैं। उससे फैल रही अनहद ध्वनि की गूंज की लहरें व्याप्त हो रही हैं, फैल रही हैं। धर्मरूपी शुभराग की गुलाल उड़ रही है और सब तरफ, चारों ओर समता रंग घुल रहा है, फैल रहा है।

प्रश्न और उनके उत्तर के रूप में दोनों ओर से पिचकारियाँ भर-भरकर बड़े वेग से छोड़ी जा रही हैं। एक ओर तो दया, क्षमा आदि से पूछा जा रहा है कि तुम किसकी स्त्री हो ? तो दूसरी ओर वे पूछती हैं कि तू किसका छोरा है ?

अनुभूति की आग में अष्टकर्म जल-बुझकर सब ओर से शांत हो गए हैं। द्यानतराय कहते हैं कि मुक्तिरूपी चन्द्रमा की उज्ज्वल छवि को सज्जन पुरुषों के नयन चकोर की भाँति अति हर्षित होकर देखते हैं।





# खेलौंगी होरी आये

खेलौंगी होरी, आये चेतनराय ॥टेक ॥

दरसन वसन ज्ञान रँग भीने, चरन गुलाल लगाय ॥खेलौं...१॥

आनंद अतर सुनय पिचकारी, अनहद बीन बजाय ॥खेलौं...२॥

रीझौं आप रिझावौं पियको, प्रीतम लौं गुन गाय ॥खेलौं...३॥

'द्यानत' सुमति सुखी लखि सुखिया, सखी भई बहु भाय ॥खेलौं...४॥

**अर्थ :** हम आज होली खेलेंगी; क्योंकि हमारे स्वामी चिदानन्द घर आये हुए हैं।

सुमति सोचती है-- अब मिथ्यात्वरूपी शिशिर चली गयी है और काल-लब्धि रूपी वसन्त का आगमन हो गया है। मैं आज होली खेलूँगी; क्योंकि हमारे स्वामी चिदानन्द आज घर आये हुए हैं।

सखियों, हम लोग अपने प्रियतम के साथ होली खेलने के लिए न जाने किसने दिनों से तरस रही थीं। आज हमारे सौभाग्य-सूर्य का उदय हुआ है जो हमारे चिर-विरह का अन्त हुआ और हम अपने प्रियतम के साथ होली खेलने के लिए अपने को तैयार पा रही हैं।

सखियों, हम लोग तुरन्त ही श्रद्धा-गगरी में रुचिरूपी केसर घोल दें, जिसमें आनन्द-नीर भरा हुआ हो और इस रंजित नीर को उमंग-पिचकारी में भरकर खूब ही प्रियतम के ऊपर छोडें।

आज कुमतिरूपी सौत का विछोह है और सुमति के मन में इसीलिए उल्लास और प्रसन्नता का पारावार हिलोरें ले रहा है। वह सोचती है-- धन्य है आज का यह दिन। कितनी दीर्घ प्रतीक्षा के बाद मिला है यह दिन!



## चेतन खेलौंगी होरी



चेतन खेलै होरी ।  
सत्ता भूमि छिमा वसन्त में, समता प्रान प्रिया संग गोरी ॥टेक॥

मन को कलश प्रेम को पानी, तामें करूना केसर घोरी ।  
ज्ञान-ध्यान पिचकारी भरि भरि, आपमें छारै होरा होरी ॥१॥

गुरु के वचन मृदंग बजत हैं, नय दोनों डफ ताल टकोरी ।  
संजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरै भर झोरी ॥२॥

धरम मिठाई तप बहु मेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी ।  
'द्यानत' सुमति कहै सखियन सों, चिरजीवो यह जुग-जुग जोरी ॥३॥

**अर्थ :** आत्मा इस प्रकार होली खेलता है।

सत्ता रूपी भूमि है, क्षमा रूपी वसन्त है और समता रूपी प्राणप्रिया गोरी का साथ है।

मन का कलश है और प्रेम का पानी है, जिसमें करुणारूपी केशर घोली गई है। ज्ञान-ध्यान की पिचकारी भर-भरकर आत्मा छोड़ रहा है और होली हो रही है।

गुरु के वचन रूपी मृदंग बज रहे हैं, दोनों नयों की डफताल बज रही है, संयम रूपी इत्रा है, निर्मल व्रतों का चोबा है और अच्छे भावों की गुलाल से झोली भरी है।

धर्म रूपी मिठाई है जिसमें तप रूपी बहुत मेवा है। समता रूपी आनन्द रस की कटोरी भरी है। कवि द्यानतराय कहते हैं कि सुमति अपनी सखियों से कहती है कि ऐसी यह होली जुग-जुग जीओ।





## अध्यात्म के शिखर पर



तर्ज़ : आए हो मेरी जिदी में  
इसाफ की डगर पे बच्चों

अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढ़के ।  
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढ़के ॥टेक॥

जड से लगा के प्रीति, अब तक करी अनीति ।  
अपने को आप देखो, आतम से जोड़ो रीति ॥  
भव-भ्रमण से बचोगे, सन्मार्ग को पकड़ के ॥१॥

भव-भोग रोग घर है, पद-पद पे इसमे डर है ।  
रागादि भाव तज दो, नरकों के ये भंवर है ।  
ऊँचे तुम्हे है उठना, माया से युद्ध लड़के ॥२॥

ज्यों अंजुली का पानी, ढलती है जिन्दगानी ।  
मश्किल है हाथ लगना, ऐसी घड़ी सुहानी ।  
'सौभाग्य' सज ले माला, रत्नत्रय की घड़ के ॥३॥





# अय नाथ ना बिसराना आये

(तर्ज़ : अय चांद ना इतराना - मन की जीत)

अय नाथ ना बिसराना, आये हैं तेरी शरण, शरण,  
आये हैं तेरी शरण, चरण में अपनाना ॥टेक॥

जो भी आया शरण, मेटा जामन मरण,  
यश येही है गाता जमाना ।

कौन कारण से भूल बैठे जिनवर हैं आप ?  
बिरद अब तो पड़ेगा निभाना ॥

अय नाथ ना बिसराना, आये हैं तेरी शरण, शरण ॥१॥

जब अंजन अज्ञानी, कीचक से मानी  
हित में न तूं ढील लाया ।

अब जीवन में हमको यह अवसर मिला,  
जो चरणों में, चित्त को लगाया

इन नैनों में तूं, और दिल में लगन, भक्ति में शक्ति को पाया ॥  
अय नाथ ना बिसराना, आये हैं तेरी शरण, शरण ॥२॥

लो भव से अब हमको भी सत्वर बचा,  
दो युक्ति में निज पद सुवाया बस यही है मांग,

सुन्दर सर्वांग, प्रभू सुन्दर सर्वांग, सुख 'सौभाग्य' पाये जमाना ॥  
अय नाथ ना बिसराना, आये हैं तेरी शरण, शरण ॥३॥



## आज सी सुहानी



आज सी सुहानी सु घड़ी इतनी,  
कल ना मिलेगी ढूँढ़ो चाहे जितनी ॥टेक॥

आया कहाँ से है जाना कहाँ, सोचो तुम्हारा ठिकाना कहाँ ।  
लाये थे क्या है कमाया यहाँ, ले जाना तुमको है क्या-क्या वहाँ ॥

धारे अनेकों है तूने जनम, गिनावें कहाँ लो है आती शरम ।  
नरदेह पाकर अहो पुण्य धन, भोगों में जीवन क्यों करते खतम ॥

प्रभू के चरण में लगा लो लगन, वही एक सच्चे हैं तारणतरण ।  
छूटेगा भव दुःख जामन मरण, 'सौभाग्य' पावोगे मुक्ति रमण ॥



## काहे पाप करे काहे छल



काहे पाप करे काहे छल, जरा चेत ओ मानव करनी से....  
तेरी आयु घटे पल पल ॥टेक॥

तेरा तुझको न बोध विचार है, मानमाया का छाया अपार है  
कैसे भोंदू बना है संभल, जरा चेत ओ मानव करनी से...  
तेरी आयु घटे पल पल, काहे पाप करे काहे छल ॥१॥

तेरा ज्ञाता व दृष्टा स्वभाव है, काहे जड़ से यूँ इतना लगाव है  
दुनियां ठगनी पे अब ना मचल, जरा चेत ओ मानव करनी से...  
तेरी आयु घटे पल पल, काहे पाप करे काहे छल ॥२॥

शुद्ध चिद्रूप चेतन स्वरूप तू, मोक्ष लक्ष्मी का 'सौभाग्य' भूप तूं  
बन सकता है यह बल प्रबल, जरा चेत ओ मानव करनी से...  
तेरी आयु घटे पल पल, काहे पाप करे काहे छल ॥३॥



## चार दिनां को जीवन मेलो



तर्ज़ : प्राणा सू भी प्यारी लागे

चार दिनां को जीवन मेलो, मत कर छीना झपटी रे,

कपट कषाय महा दुःखदायी, मत बण छलियो कपटी रे ॥टेक ॥

देख हरी सीता न रावण, कपटी साधु सो होकर,  
अरे पलक में उठ्यो जगत सूं सोना सी लंका खोकर,  
अमर हो गया नाम धरम सूं कदै न सीता रपटी रे  
कपट कषाय महा दुःखदायी, मत बण छलियो कपटी रे ॥१॥

सेठ सुदर्शन ने राणीजी, अपणां महला कपट बुला,  
भोग लालसा पूरण खातिर, दरसाया मनभाव खुला,  
सूली भी सिंहासन बण गयो, सेठ भावना डपटी रे ॥  
कपट कषाय महा दुःखदायी, मत बण छलियो कपटी रे ॥२॥

कपट भाव सूं धवल गिरायो, श्रीपाल न सागर में,  
रैन मंजूषा पर ललचायो, काम अंध विष आगर में,  
करी शील की सुरपति रक्षा, घणो लजायो खपटी रे  
कपट कषाय महा दुःखदायी, मत बण छलियो कपटी रे ॥३॥

छोड़ विकट वन भविष्यदत्त न, कपटी वधु निकल भाग्यो,  
मिल्यो पाप फल वधुदत्त न, भविष्यदत्त को शुभ जाग्यो,  
वीतराग 'सौभाग्य' शरण ले, जो अक्षय सुख लपटी रे  
कपट कषाय महा दुःखदायी, मत बण छलियो कपटी रे  
चार दिनां को जीवन मेलो, मत कर छीना झपटी रे ॥४॥



# ओ वीर जिन जी तुम्हें हम



तर्ज़ : सो साल पहले जब प्यार किसी से होता है

ओ वीर जिन जी, तुम्हें हम पुकारते,  
तुम्हें हम पुकारते,  
शरण में है आये, हम शरण में रहेंगे।  
गतियों में रूलते डुलते, थके आज हार के,  
थके आज हार के,  
शरण में हैं आये, हम शरण में रहेंगे ॥टेक ॥

हम भूले थे तुमको, हमे जी वो याद याद आती है,  
लख ध्यानासन तुमको, परम शीतलता आती है,  
मिटे दुख सारे ओ जिनवर, छवि को निहारके,  
छवि को निहार के,  
शरण में हैं आये, हम शरण में रहेंगे ॥ओ...1 ॥

विमल वैराग्य की ज्योति, पतित पावन तुम्हीं से है,  
स्व पर का बोध हितकारक, झलकता बस तुम्हीं से है,

बनें आपसे हो जिनवर, तेरे गुण चितार के,  
तेरे गुण चितार के,  
शरण में हैं आये, हम शरण में रहेंगे ॥ओ...२॥

अब मन के मंदिर में, प्रभु जी तुमको बिठाया है,  
मोक्ष 'सौभाग्य' पाने का, तुम्हें जी साधन जुटाया है,  
सुनी साख तुम हो जिनवर, भव से उबारते,  
भव से उबारते,  
शरण में हैं आये, हम शरण में रहेंगे ॥ओ...३॥



## कबधौं सर पर धर डोलेगा



तर्ज : नगरी नगरी द्वारे द्वारे

कबधौं सर पर धर डोलेगा, पापों की गठरिया,  
करले करले हल्का बोझा, लम्बी है डगरिया ॥टेक॥

यह संसार बिहड़ बन पंछी, कुल तरुवर सम जान ले  
आयु रैन बसेरा करके, उड़ जाना है मान ले ॥  
फ़िर भोगों में तड़फ़ू रहा क्यों, जल बिन ज्यों मछलिया ॥  
कबधौं सर पर धर डोलेगा, पापों की गठरिया ॥१॥

चिंतामणि सम मनुष जनम पा, निज स्वभाव क्यों भूला है  
अक्षय आतम द्रव्य छोड़कर, नश्वर पर क्यों फूला है  
क्षण भंगुर है तन धन यौवन, जिमि सावन बदरिया ॥  
कबधौं सर पर धर डोलेगा, पापों की गठरिया ॥२॥

परिग्रह पोट उतार सयाने, रत्नत्रय उर धार ले  
पंचम गति सौभाग्य मिलेगी, वीतराग पथ सार ले  
प्रभु भक्ति बिन बीत ना जाये, तेरी प्रिय उमरिया ॥  
कबधौं सर पर धर डोलेगा, पापों की गठरिया ॥३॥



## कलश देखने आया जी



तर्ज : मैं तेरे ठिग आया रे

कलश देखने आया जी, मैं कलश देखने आया,  
उमग उमग जब सुर नर आते,  
मैं भी मन ललचाया,  
हाँ मैं भी मन ललचाया रे, कलश देखने आया ॥

क्षीर सिंधु से कलशे भरकर,  
सुरपति लाया सुरपति लाया,  
सुरपति लाया हरष हरष कर,  
जय जय जय के मधुर नाद से,  
यह ब्रह्माण्ड गुंजाया,  
हाँ यह ब्रह्माण्ड गुंजाया रे, कलश देखने आया ॥मैं कलश...१॥

इन्द्र शची मिल तांडव करते,  
मंगल मुखिया मंगल मुखिया,  
मंगल मुखिया स्वर लय भरती,  
धन्य धन्य 'सौभाग्य' कलश का,  
बड़े भाग्य से पाया,  
हाँ बड़े भाग्य से पाया रे, कलश देखने आया ॥मैं कलश...२॥



## कहा मानले ओ मेरे भैया



तर्ज : ज़रा सामने तो आओ

कहा मानले ओ मेरे भैया, भव भव डुलने में क्या सार है  
तू बनजा बने तो परमात्मा, तेरी आत्मा की शक्ति अपार है ॥

भोग बुरे हैं त्याग सजन ये, विपद करें और नरक धरें  
ध्यान ही है एक नाव सजन जो, इधर तिरें और उधर वरें  
झूँठी प्रीति में तेरी ही हार है, वाणी गणधर की ये हितकार है ॥  
तू बनजा बने तो परमात्मा, तेरी आत्मा की शक्ति अपार है ॥१॥

लोभ पाप का बाप सजन क्यों राग करे दुःखभार भरे  
ज्ञान कसौटी परख सजन मत छलियों का विश्वास करे  
ठग आठों की यहाँ भरमार है, इन्हें जीते तो बेड़ा पार है ॥  
तू बनजा बने तो परमात्मा, तेरी आत्मा की शक्ति अपार है ॥२॥

नरतन का 'सौभाग्य' सजन ये हाथ लगे ना हाथ लगे  
कर आत्मरस पान सजन जो जन्म भगे और मरण भगे  
मोक्ष-महल का ये ही द्वार है, वीतरागी ही बनना सार है ॥  
तू बनजा बने तो परमात्मा, तेरी आत्मा की शक्ति अपार है ॥३॥



## किये भव भव भव में फेरे



तर्ज : उड़े जब जब जुल्फे तेरी - नया दौर

किये भव भव भव में फेरे,

विलासी होके नित मैंने, प्रभु मेरे हो ।

हुवा रत मैं इनमें ऐसा, (2)  
कि तुझे विसरा मैंने, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥१॥

तजी आगम हित की वाणी, (2)  
कि योगियों का संग छोड़ा, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥२॥

ओ ... मिले साथी अधम अधर्मी (2),  
कि भोग रोग अंग दौड़ा, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥३॥

है आज घड़ी शुभ आई, (2)  
कि दर्शन प्राप्त हुये, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥४॥

ओ .. घट ज्ञान रवि चमका है (2),  
कि तिमिर समाप्त हुये, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥५॥

ओ .. जुड़ी आत्म हित की कड़ियाँ (2),  
कि जड़ से प्रीत उठी, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥६॥

'सौभाग्य' शज सुख पाऊँ (2),  
कि तुझसे प्रीत जुड़ी, प्रभु मेरे हो ।  
किये भव भव भव में फेरे ॥७॥



## कोई जब साथ न आये



तर्जः कोई जब राह न पाये - दोस्ती

कोई जब साथ न आये, ना संग में जाये ।  
तो फिर क्यों प्रीत बढ़ाये, झूठी ममता में पड़ यार ॥टेक॥

तू तेरा ले रूप पिछान, तन तेरा नहीं है नादान ।  
काया है पुद्गल, तू चेतन है, मान ।  
ज्ञाता-दृष्टा कहलाये, क्यों बोध भुलाये ॥  
तो फिर क्यों प्रीत बढ़ाये, झूठी ममता में पड़ यार ॥१॥

अब भी समय है प्यारे मान, पुण्य घड़ी मत बिसर अजान ।

आतम निधि यह, शिव सुख खान ।  
जीवन सार कमाले 'सौभाग्य' पद पाले ॥  
तो फिर क्यों प्रीत बढ़ाये, झूठी ममता में पड़ यार ।  
कोई जब साथ न आये, ना संग में जाये ॥२॥



## करल्यो क्षमा धरम न धारण



करल्यो क्षमा धरम न धारण, प्राणी जो चाहो कल्याण ।

क्षमा अहिंसा की जननी है, दया उसी की गुण धरणी है,  
क्षमा शील समता सन्मति की, भगिनी समझ महान ॥करल्यो...॥

स्व स्वरूप की क्षमा लली है, परम तोष की गोद पली है,  
वीतराग पथ विमल चली है, देती करुणा दान ॥करल्यो...१॥

क्रोध कषाय कुटिलता नाशक, प्रेम संगठन प्रीति प्रकाशक,  
विश्व धर्म की गरिमा रक्षक, क्षमा राष्ट्र का प्राण ॥करल्यो...२॥

जप तप संयम दान जातरा, क्षमा बिना मन शून्य पातरा,  
शल्य समझ ले दुखद ना तेरा, क्षमा मूल उत्थान ॥करल्यो...३॥

जब तक जीवन में है जीवन, मत विसरौ 'सौभाग्य' क्षमा धन,  
तज विभाव दुरभाव सकल जन, उतम क्षमा लो ठान ॥करल्यो...४॥



## जहाँ रागद्वेष से रहित



तर्ज़ : जहाँ डाल-डाल पर सोने

जहाँ रागद्वेष से रहित निराकुल, आत्म सुख का डेरा  
वो विश्व धर्म है मेरा, वो जैन धर्म है मेरा  
जहाँ पद-पद पर है परम अहिंसा करती क्षमा बसेरा  
वो विश्व धर्म है मेरा, वो जैनधर्म है मेरा ॥टेर॥

जहाँ गूंजा करते, सत संयम के गीत सुहाने पावन ।  
जहाँ ज्ञान सुधा की बहती निशिदिन धारा पाप नशावन ।  
जहाँ काम क्रोध, ममता, माया का कहीं नहीं है घेरा ॥  
वो विश्व धर्म है मेरा, वो जैन धर्म है मेरा ॥१॥

जहाँ समता समदृष्टि प्यारी, सद्ग्राव शांति के भारी ।  
जहाँ सकल परिग्रह भार शून्य है, मन अदोष अविकारी ।  
जहाँ ज्ञानानंत दरश सुख बल का, रहता सदा सवेरा ॥

वो विश्व धर्म है मेरा, वो जैन धर्म है मेरा ॥२॥

जहाँ वीतराग विज्ञान कला, निज पर का बोध कराये ।  
जो जन्म मरण से रहित, निरापद मोक्ष महल पधराये ।  
वह जगतपूज्य 'सौभाग्य' परमपद, हो आलोकित मेरा ॥  
वो विश्व धर्म है मेरा, वो जैन धर्म है मेरा ॥३॥



## जो आज दिन है वो



तर्ज : सौ साल पहले, मुझे तुमसे

जो आज दिन है वो, कल ना रहेगा, कल ना रहेगा,  
घड़ी ना रहेगी ये पल ना रहेगा  
समझ सीख गुरु की वाणी, फिरको कहेगा, फिरको कहेगा,  
घड़ी ना रहेगी ये पल ना रहेगा ॥टेक ॥

जग भोगों के पीछे, अनन्तों काल बीते हैं  
इस आशा तृष्णा के अभी भी सपने रीते हैं  
बना मूढ़ कबलों मन पर, चलता रहेगा-२  
घड़ी ना रहेगी ये पल ना रहेगा ।  
जो आज दिन है वो, कल ना रहेगा, कल ना रहेगा ॥१॥

अरे इस माटी के तन पे, वृथा अभिमान है तेरा  
पड़ा रह जायगा वैभव, उठेगा छोड़ जब डेरा  
नहीं साथ आया न जाते, कोई संग रहेगा-२  
घड़ी ना रहेगी ये पल ना रहेगा ।

जो आज दिन है वो, कल ना रहेगा, कल ना रहेगा ॥२॥

ज्ञानदृग खोलकर चेतन, भेदविज्ञान घट भर ले  
सहज 'सौभाग्य' सुख साधन, मुक्ति रमणी सखा वर ले  
यही एक पद है प्रियवर, अमर जो रहेगा-२  
घड़ी ना रहेगी ये पल ना रहेगा ।

जो आज दिन है वो, कल ना रहेगा, कल ना रहेगा ॥३॥



## ज्यों सरवर में रमै माछली



तर्ज : मैं लड़का को बाप

ज्यों सरवर में रमै माछली, त्यों भव सागर में प्राणी,  
काल अनन्त गमायो रमता, अब तो सुध ले सैलानी ॥टेक ॥

क्रोध मान माया ममता का लोभी अजगर धूम रह्या,

पाप भंवर में तने फँसावा खातर पद-पद झूम रह्या,  
सप्त व्यसन की सुरा सुन्दरी, तनै रिझा रही अज्ञानी ॥  
काल अनन्त गमायो रमता, अब तो सुध ले सैलानी ॥१॥

राग द्वेष की मोटी लहरों अरे तने झकझोर रही,  
चार गति में डुला डुला कर दिखा प्रेम की ठोर रही,  
नरक वेदना सूँडर प्यारा अब तो तज दे मनमानी ॥  
काल अनन्त गमायो रमता, अब तो सुध ले सैलानी ॥२॥

तू चेतन चिद्रूप स्वयंभू ज्ञाता दृष्टा अजर अमर,  
रूप गंध रस वरण आदि सब हैं, अनित्य जड़ पुद्गल पर,  
निज स्वरूप में तमन्य होकर, हृदय धार ले जिनवानी ॥  
काल अनन्त गमायो रमता, अब तो सुध ले सैलानी ॥३॥

वीतराग सा दर्शन पावन, जन्म जरा मृत्यु नाशक,  
मंगल उत्तम शरण गही जग, दोनो संयम शिव साधन,  
रत्नत्रय 'सौभाग्य' धारकर अब तो तरजा बैतरणी ॥  
काल अनन्त गमायो रमता, अब तो सुध ले सैलानी ॥४॥





# तप बिन नीर न बरसे

तप बिन नीर न बरसे बादल खेत पके नहीं धान रे,  
वन उपवन तरु लता फूल फल पके न पीलो पान रे ॥

तप बिन नेक पचे नहीं भोजन शुद्ध न कंचन हो पावे,  
शुद्ध रसायन बणै न तप बिन रोग नाश जो बल ल्यावे,  
बणै पात्र आभूषण आदिक तप सूँ पावै मान रे ॥  
वन उपवन तरु लता फूल फल पके न पीलो पान रे ॥१॥

पूरब तप ले दो मुठी भर तू मानुष भव में आयो,  
भोग लालसा रीझ हाय तू अरे मान में बिसरायो,  
और हिताहित जरा न सोच्यो कियाँ हुयो नादान रे ॥  
वन उपवन तरु लता फूल फल पके न पीलो पान रे ॥२॥

राग द्वेष पर परणति मल सूँ आज घिर्यो है मन थारो,  
मिथ्या दर्शन ज्ञान चरण में गँवा दियो जीवन सारो,  
वीतराग बण सम्यक वृष्टि उतम तप मन ठान रे ।  
वन उपवन तरु लता फूल फल पके न पीलो पान रे ॥३॥

परिग्रह पोट समझ भव कारण दुद्धर तप है मोक्ष निदान,  
अक्षय सुख 'सौभाग्य' सम्पदा एक मात्र ही आत्म ध्यान,

त्याग सकल जंजाल समय है जिनवाणी दे ध्यान रे  
वन उपवन तरु लता फूल फल पके न पीलो पान रे ॥४॥



## तेरी कहाँ गई मतिमारी



तर्ज़ : मूँजी धरी रहेली पूजी

तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ।

तू चेतन चिद्रूप यशस्वी, ज्ञाता दृष्टा परम तपस्वी,  
निज स्वरूप को भूल अभागे, कैसे बण्यो निचीत ॥  
तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ॥१॥

नक्षर काँच खिलौना काया, इन्द्र धनुष सम वैभव माया,  
मात तात दारा सुत जग सब है स्वारथ के मीत ॥  
तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ॥२॥

जल से भिन्न कमलवत् प्यारा, देह गेहवासी तू न्यारा,  
मृग तृष्णा में भटक रहा क्यों, तज अन्तर परतीत ॥  
तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ॥३॥

बचपन खोया सरस जवानी, वृद्ध हुआ झुकि कमर कबाणी,

धरम साधना कर ले पलटी, कुटिल काल की नीत ॥  
तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ॥४॥

उत्तम कुल नर-देह निरोगी, पंचेन्द्रिय ज्ञान उपयोगी,  
मिला श्रेष्ठ 'सौभाग्य' जोड़ ले, निज आत्म गुणरीत ॥  
तेरी कहाँ गई मतिमारी, जड़ से लगा रह्यो है प्रीत ॥५॥



## तेरे दर्शन को मन

तेरे दर्शन को मन दौड़ा ॥



कोटि-कोटि मुँह से जो तेरी महिमा सुनते आया ।  
इससे भी तू है बढ़ा-चढ़ा है यह दर्शन कर पाया ॥  
इस पृथ्वी पर बड़ा कठिन है, तुमसा पाना जोड़ा ।  
तेरे दर्शन को मन दौड़ा ॥१॥

कर पर कर धर नाशा दृष्टि आसन अटल जमाया ।  
परदोष रोष अम्बर आडम्बर रहित तुम्हारी काया ।  
वीतराग विज्ञान कला से, जगबन्धन को तोड़ा ।  
तेरे दर्शन को मन दौड़ा ॥२॥

पुण्य पाप व्यवहार जगत के हैं सब भव के कारण ।  
शुद्ध चिदानन्द चेतन दर्शन निश्चय पार उतारण ॥  
निजपद का 'सौभाग्य' श्रेष्ठ पा, कैसे जाये छोड़ा ।  
तेरे दर्शन को मन दौड़ा ॥३॥



## तेरे दर्शन से मेरा



तेरे दर्शन से मेरा दिल खिल गया ।  
मुक्ति के महल का सुराज्य मिल गया ।  
आतम के सुज्ञान का सुभान हो गया,  
भव का विनाशी तत्त्वज्ञान हो गया ॥टेर॥

तेरी सच्ची प्रीत की यही है निशानी ।  
भोगों से छूट बने आतम सुध्यानी ।  
कर्मों की जीत का सुसाज मिल गया ॥मुक्ति के॥

तेरी परतीत हरे व्याधियाँ पुरानी ।  
जामन मरण हर दे शिवरानी ।  
प्रभो सुख शान्ति सुमन आज खिल गया ॥मुक्ति के॥

ज्ञानानन्द अतुल धन राशी ।  
सिद्ध समान वर्ण अविनाशी ।  
यही 'सौभाग्य' शिवराज मिल गया ॥मुक्ति के ॥



## तोड़ विषयों से मन



तर्ज - छोड़ बाबुल का घर : बाबुल

तोड़ विषयों से मन जोड़ प्रभु से लगन,  
आज अवसर मिला ॥टेर ॥

रंग दुनियां के अब तक न समझा है तू  
भूल निज को हा! पर मैं यों रीझा है तू  
अब तो मुँह खोल चख, स्वाद आत्म का लख,  
शिव पयोधर मिला ॥१॥

हाथ आने की फिर ये सु-घड़ियाँ नहीं  
प्रीति जड़ से लगाना है अच्छा नहीं  
देख पुद्धल का घर, नहीं रहता अमर,  
जग चराचर मिला ॥२॥

ज्ञान ज्योति हृदय में अब तो जगा  
देख 'सौभाग्य' जग में न कोई सगा  
तजदे मिथ्या भरम, तुझे सच्चे धरम का,  
है अवसर मिला ॥३॥



## तोरी पल पल

तोरी पल पल निरखें मूरतियाँ,  
आतम रस भीनी यह सूरतियाँ ॥टेर॥



घोर मिथ्यात्व रत हो तुम्हें छोड़कर,  
भोग भोगे हैं जड़ से लगन जोड़कर ।  
चारों गति में भ्रमण, कर कर जामन मरण,  
लखि अपनी न सच्ची सूरतियाँ ॥१॥

तेरे दर्शन से ज्योति जगी ज्ञान की,  
पथ पकड़ी है हमने स्वकल्प्याण की ।  
पद तुझसा महान, लगा आतम का ध्यान,  
पावे 'सौभाग्य' पावन शिव गतियाँ ॥२॥



## त्याग बिना जीवन की गाड़ी



त्याग बिना जीवन की गाड़ी, कियाँ लगै ली पार रे,  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ॥

अंतहीन भव विकट बण्यो है, पाँच खड़ा ढुंगर आड़ा,  
भार भरी है जीवन गाड़ी, चौ-तरफा उंडा खाड़ा,  
लाख चौरासी चौर लुटेरा, थारी लाग्या लार रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ॥१॥

नैन लुभावन रंग-बिरंगा, देख फूल फल मत रीझे,  
ऊपर मीठा जहर भर्या तल, भोग लालसा मत भीजे,  
त्याग धर्म बिन मिटे न सारो, मिथ्या नरक बिहार रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा सोच समझ पथ धार रे ॥२॥

काया माया साथ न जासी कह रही माता जिनवाणी,  
अरे लोभ में ही मदमातो तजी नहीं कौड़ी काणी ,  
याचक बनकर ले दहेज यूँ बण रह्यो साहूकार रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ॥३॥

छुपा सत्य व्यापार आंकड़ा, दिखा टैक्स हित दूजा जाय,  
राजकोष में बाधा डाली, मन में फूल्यों द्रव्य बचाय,  
जातिमान मार्यादा रक्षक, तज दे मायाचार रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ॥४॥

परिग्रह त्याग कर्या बिन गाड़ी, नहीं सुपथ पर चाले ली,  
संयम जूँड़ो जोत रास कस, त्याग धर्म दुख टाले ली,  
सम्यक दरशन ज्ञान चरण, की उठा हाथ में आर रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ॥५॥

इन्द्र धनुष सी चंचल माया, दान चार परकार दे,  
अक्षय सुख 'सौभाग्य' सम्पदा, निजानंद भंडार ले,  
मोक्ष लक्ष्मी पद पूजेगी, समझ बने भरतार रे ।  
दो रस्ता है बैल पुराणा, सोच समझ पथ धार रे ।  
त्याग बिना जीवन की गाड़ी, कियाँ लगे ली पार रे ॥६॥



## त्रिशला के नन्द तुम्हें



त्रिशला के नन्द तुम्हें वंदना हमारी है ॥

दुनिया के जीव सारे तुम को निहार रहे ।  
पल पल पुकार रहे, हितकर चितार रहे ॥

कोई कहे वीर प्रभु कोई वर्द्धमान कहे ।  
सनमति पुकार कहे तूं ही उपकारी है ॥१॥

मंगल उपदेश तेरा, कर्मों का काटे घेरा ।  
भव भव का मेटे फेरा, शिवपुर में डाले डेरा ॥

आत्म सुबोध करें, रत्नत्रय चित्त धरें ।  
शिव तिय 'सौभाग्य' करें ये ही दिल धारी हैं ॥२॥



## दया कर दो मेरे स्वामी तेरे



तर्ज़ : बहारो फूल बरसाओ सूरज

दया कर दो मेरे स्वामी तेरे दरबार आया हूँ,  
चढ़ाने फूल श्रद्धा के तुम्हारे द्वार लाया हूँ ॥

सताया अष्ट कर्मों ने शिकायत क्या करूँ उनकी,  
बढ़ाई प्रीत मैंने खुद खता इसमें है क्या इनकी,  
मदद करके बचा लीजे मैं बाजी हार आया हूँ ॥  
दया कर दो मेरे स्वामी तेरे दरबार आया हूँ ॥१॥

इन्ही कर्मों ने सीता को कहाँ से कहाँ पहुचाया,  
सती थी अंजना उसको भी वन-वन खूब भटकाया,  
मिटाया उनका संकट मैं भी कर एतबार आया हूँ ॥  
दया कर दो मेरे स्वामी तेरे दरबार आया हूँ ॥२॥

मैं हूँ नादाँ हठी स्वामी मेरी गलती पे मत जाओ,  
महर करके किसी दिन तो मेरे ख्वाबों में आ जाओ,  
बड़ी उम्मीद से पाने को मैं दीदार आया हूँ ॥  
दया कर दो मेरे स्वामी तेरे दरबार आया हूँ ॥३॥

सुना है पापियों को तुम किनारे पर लगा देते,  
करिश्मा तो हो जब मुझ जैसे पापी को तिरा देते,  
फिरा मैं दर बदर 'पंकज', हुआ लाचार आया हूँ ॥  
दया कर दो मेरे स्वामी तेरे दरबार आया हूँ ॥४॥





# धन्य धन्य आज घड़ी

धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है ।  
सिद्धों का दरबार है ये सिद्धों का दरबार है ॥

खुशियाँ अपार आज हर दिल में छाई हैं  
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है  
चारों ओर देख लो भीड़ बेशुमार है ॥१॥

भक्ति से नृत्य-गान कोई है कर रहे  
आतम सुबोध कर पापों से डर रहे  
पल-पल पुण्य का भरे भण्डार है ॥२॥

जय-जय के नाद से गूँजा आकाश है  
छूटेंगे पाप सब निश्चय यह आज है  
देख लो 'सौभाग्य' खुला आज मुक्ति द्वार है ॥३॥



## धोली हो गई रे काली कामली



धोली हो गई रे काली कामली माथा की थारी  
धोली हो गई रे काली कामली,  
सुरज्जानी चेतो, धोली हो गई रे काली कामली ॥टेर॥

वदन गठीलो कंचन काया, लाल बूँद रंग थारो  
हुयो अपूरव फेर फार सब, ढांचो बदल्यो सारो ॥१...सुरज्जानी॥

नाक कान आँख्या की किरिया सुस्त पड़ गई सारी  
काजू और अखरोट चबे नहिं दाँता बिना सुपारी ॥२...सुरज्जानी॥

हालण लागी नाड़ कमर भी झुक कर बणी कबाणी  
मुंडो देख आरसी सोचो ढल गई क्यां जवानी ॥३...सुरज्जानी॥

न्याय नीति ने तजकर जोड़ी भोग संपदा सारी  
बात-बात में झूठ कपट छल, कीनी मायाचारी ॥४...सुरज्जानी॥

बैठ हताई तास चोपड़ा खेल्यो और खिलाया  
लडा परस्पर भोला भाई फूल्या नहीं समाया ॥५...सुरज्जानी॥

प्रभु भक्ति में रूचि न लीनी नहीं करूणा चितधारी  
वीतराग दर्शन नहीं रुचियो उमर खोईदी सारी ॥६...सुरज्जानी॥

पुन्य योग 'सौभाग्य' मिल्यो है नरकुल उत्तम प्यारो  
निजानंद समता रस पील्यो होसी भव निस्तारो  
सुरज्जानी चेतो, धोली हो गई रे काली कामली, माथा की थारी  
धोली हो गई रे काली कामली माथा की थारी ॥७॥



## ध्यान धर ले प्रभू को

ध्यान धर ले प्रभू को ध्यान धर ले  
आ माथे ऊबी मौत भाया ज्ञान करले ॥टेक॥



फूल गुलाबी कोमल काया, या पल में मुरझासी,  
जोबन जोर जवानी थारी, सन्ध्या सी ढल जासी ॥  
प्रभू को ध्यान धर ले... ध्यान धर ले ॥१॥

हाड़ मांस का पींजरा पर, या रूपाली चाम,  
देख रिझायो बावला, क्युं जड़ को बण्यो गुलाम ॥  
प्रभू को ध्यान धर ले... ध्यान धर ले ॥२॥

लाम्बो चौड़ो मांड पसारो, कीयां रह्यो है फूल,  
हाट हवेली काम न आसी, या सोना की झूल ॥

प्रभू को ध्यान धर ले... ध्यान धर ले ॥३॥

भाई बन्धु कुटुम्ब कबीलो, है मतलब को सारो,  
आपा पर को भेद समझले जद होसी निस्तारो ॥  
प्रभू को ध्यान धर ले... ध्यान धर ले ॥४॥

मोक्ष महल को सांचो मारग, यो छै जरा समझले,  
उत्तम कुल सौभाग्य मिल्यो है, आत्मराम सुमरले  
प्रभू को ध्यान धर ले... ध्यान धर ले ।  
आ माथे ऊबी मौत भाया ज्ञान करले ॥५॥



## नचा मन मोर ठौर



तर्ज ... घटा घन घोर घोर- फिल्म : तानसेन

नचा मन मोर - 2, ठौर न पाई और,  
तोरे भुवन आया आया तोरे भुवन आया ॥

एक गांव का जो है स्वामी, वह दुखिया दुख खोवे,  
तीन लोकपति दुख हरे नहीं, अनहोनी कब होवे  
बड़ा ललचायाजी, बड़ा ललचायाजी,  
कर्मों ने लाला नया दर्श दिखलाया ॥१॥

दीनानाथ दया के सागर झोली पलक पसारें,  
दर्शन को 'सौभाग्य' खड़ा है कब से तोरे द्वारे ।  
जरा अपना ओजी जरा अपना ओं जी,  
तेरे पे आश धरें हिये उमगाया ॥२॥



## नमन तुमको करते हैं महावीर



तर्ज़ : बहुत प्यार करते हैं - साजन

नमन तुमको करते हैं महावीर हम,  
किया धर्म का तुमने मार्ग सुगम ॥टेक॥

अनेकों सुअवसर मिले पूर्व भव में,  
मगर भ्रम के वश नहीं लिया अनुभव में,  
मिटे पक्षपात तो सूझे धरम ॥  
नमन तुमको करते हैं महावीर हम ॥१॥

मिटा दो हमारी अज्ञानता को,  
बने हम विवेकी हटा दासता को,  
बढ़े शांति पथ पर हमारे कदम ॥

नमन तुमको करते हैं महावीर हम ॥२॥

न अपराधी जीवन जिये कोई जग में,  
नहीं पाप की माया जायेगी संग में,  
मिटे तृष्णा जी की तो काहे का गम ॥  
नमन तुमको करते हैं महावीर हम ॥३॥

तजे निज का स्वारथ सरलता को धारें,  
दुखी प्राणियों पर करुणा विचारें,  
यहीं वीर का 'पंकज' धरम का मरम ॥  
नमन तुमको करते हैं महावीर हम ।  
किया धर्म का तुमने मार्ग सुगम ॥४॥



## नमें मात वामा के पारस



तर्ज़ : यशोमति मैच्छा – सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

नमें मात वामा के पारस दुलारे,  
छोड़ राज वैभव मुक्ति जो सिधारे ॥टेक॥

लखे स्वप्न सोलह, माँ ने सुहाने,  
गई भोर पति पे फल, ता सूँ पाने,  
है तीर्थ करता हो॥५॥ (2),  
गरभ में तुम्हारे, पूज्य वो हमारे ॥नमें...१॥

जिनके जन्म से पहले, पन्द्रह महीने,  
धनद से कराई विरखा, रतन की हरी ने,  
इन्द्र जिन न्हवन को लेकर हो॥६॥ (2),  
मेरूपधारे, पूज्य वो हमारे ॥नमें...२॥

चले बाल क्रीड़ा को, गजारूढ़ हो जब,  
मूढ़ तापसी की जलती, देख अग्न तब,  
महामंत्र देकर जिनने हो॥७॥ (2),  
युगल नाग तारे, पूज्य वो हमारे ॥नमें...३॥

बने देव देवी, युगल नाग नागिन,  
बने दास पारस के, चरण बैठ निशदिन,  
सदा चाहते हैं जो वे हो॥८॥ (2),  
सम्यक्त्व धारें, पूज्य वो हमारे ॥नमें...४॥

अथिर जान वैभव, जगत भोग सारे,  
बने वीतराणी जिन, तपाचार धारे,

वे सिद्ध 'सौभाग्य' होSS (2),  
शिखर पूज्य सारे, पूज्य वो हमारे ॥नमें...५॥



## नित उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ



नित उठ ध्याऊँ, गुण गाऊँ, परम दिगम्बर साधु  
महाव्रतधारी धारी...धारी महाव्रत धारी ॥टेक ॥

राग-द्वेष नहिं लेश जिन्हों के मन में है..तन में है  
कनक-कामिनी मोह-काम नहिं तन में है...मन में है ॥  
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी वा ध्यानी तपसी  
नमो हितकारी...कारी, नमो हितकारी ॥१॥

शीतकाल सरिता के तट पर, जो रहते..जो रहते  
ग्रीष्म ऋतु गिरिराज शिखर चढ़, अघ दहते...अघ दहते ॥  
तरु-तल रहकर वर्षा में, विचलित न होते लख भय  
वन अँधियारी...भारी, वन अँधियारी ॥२॥

कंचन-काँच मसान-महल-सम, जिनके हैं...जिनके हैं  
अरि अपमान मान मित्र-सम, जिनके हैं..जिनके हैं ॥

समदर्शी समता धारी, नग्न दिगम्बर मुनिवर  
भव जल तारी...तारी, भव जल तारी ॥३॥

ऐसे परम तपोनिधि जहाँ-जहाँ, जाते हैं...जाते हैं  
परम शांति सुख लाभ जीव सब, पाते हैं...पाते हैं ॥  
भव-भव में सौभाग्य मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याउँ  
वर्ण शिवनारी... नारी, वर्ण शिवनारी ॥४॥



## निरखी निरखी मनहर



निरखी निरखी मनहर मूरत तोरी हो जिनन्दा,  
खोई खोई आतम निधि निज पाई हो जिनन्दा ॥

ना समझी से अबलो मैंने पर को अपना मान के,  
पर को अपना मान के ।  
माया की ममता में डोला, तुमको नहीं पिछान के,  
तुमको नहीं पिछान के  
अब भूलों पर रोता यह मन, मोरा हो जिनन्दा ॥१॥

भोग रोग का घर है मैंने, आज चराचर देखा है,

आज चराचर देखा है ।  
आतम धन के आगे जग का झूँठा सारा लेखा है,  
झूँठा सारा लेखा है  
मैं अपने में घुल मिल जाऊँ, वर पावूँ जिनन्दा ॥२॥

तू भवनाशी मैं भववासी, भव से पार उतरना है,  
भव से पार उतरना है ।  
शुद्ध स्वरूपी होकर तुमसा, शिवरमणी को वरना है,  
शिवरमणी को वरना है  
ज्ञानज्योति 'सौभाग्य' जगे घट, मोरे हो जिनन्दा ॥३॥



## नेमी जिनेश्वरजी काहे कसूर



तर्ज : बाबू दरोगाजी – तकदीर

नेमी जिनेश्वरजी, काहे कसूर पे चल दिये रथ का मोर ।  
काहे को दुल्हा का रूप बनाया, काहे बरातिन को जोर,  
काहे को तोरण पै ले संग आयौ, खैंची क्यो रथ की डोर ॥टेक ॥

क्या है किसी ने बड़ा बोल बोला, क्या गूढ बातें हैं और,  
पशुओं ने ऐसा किया कौन जादू, रूठे जो सुनकर शोर ॥नेमि...१॥

नव भव की साथिन हूँ प्यारे साँवरिया, फिर क्यों हो, ऐसे कठोर,  
काहे को मुनि पद धारा दिगम्बर, डारे क्यों भूषण तोर ॥नेमी...२॥

भव-भव यही एक 'सौभाग्य' चाहूँ, दीजे चरण में सुठोर,  
आवागमन से मिले शीघ्र मुक्ति, ये ही अरज कर जोर ॥नेमी...३॥



## पर्वराज पर्युषण आया



तर्ज : चांदी की दीवार न तोड़ी

पर्वराज पर्युषण आया दस धर्मों की ले माला ।  
मिथ्यातम में दबी आत्मनिधि अब तो चेत परख लाला ॥टेक॥

तू अखंड अविनाशी चेतन ज्ञाता दृष्टा सिद्ध समान ।  
रागद्वेष परपरणति कारण स्व सरूप को कर्यो न भान ॥  
मोहजाल की भूल भुलैया समझ नरक सी है ज्वाला ।  
मिथ्यातम में दबी आत्मनिधि अब तो चेत परख लाला ॥१॥

परम अहिंसक क्षमा भाव भर, तज दे मिथ्या मान गुमान ।  
कपट कटारी दूर फेंक दे जो चाहे अपनो कल्याण ॥

सत्य शौच संयम तप अनुपम है अमृत भर पी प्याला ।  
मिथ्यातम में दबी आत्मनिधि अब तो चेत परख लाला ॥२॥

परिग्रह त्याग ब्रह्म में रमजा वीतराग दर्शन गायो ।  
चिंतामणी से काग उड़ा मत नरकुल उत्तम तू पायो ॥  
शिवरमणी 'सौभाग्य' दिखा रही तुझ अनश्वर सुखशाला ।  
मिथ्यातम में दबी आत्मनिधि अब तो चेत परख लाला ॥३॥



## पल पल बीते उमरिया

(तर्ज : मनहर तेरी मूरतिया)



पल पल बीते उमरिया रूप जवानी जाती, प्रभु गुण गाले,  
गाले प्रभु गुण गाले ॥

पूरब पुण्य उदय से नर तन तुझे मिला, तुझे मिला ।  
उत्तम कुल सागर मैं आ तू कमल खिला, कमल खिला ॥  
अब क्यों गर्व गुमानी हो धर्म भुलाया अपना,  
पड़ा पाप पाले पाले ॥१॥

नक्षर धन यौवन पर इतना मत फूले, मत फूले ।  
पर सम्पत्ति को देख ईर्षा मत झूले, मत झूले ॥  
निज कर्तव्य विचार कर, पर उपकारी होकर  
पुण्य कमाले, कमाले ॥२॥

देवादिक भी मनुष जनम को तरस रहे, तरस रहे ।  
मूढ़! विषय भोगों में, सौ सौ बरस रहे, बरस रहे ॥  
चिंतामणि को पाकर रे कीमत नहीं जानी तूने,  
गिरा कीच नाले नाले ॥३॥

बीती बात बिसार चेत तू, सुरज्ञानी, सुरज्ञानी ।  
लगा प्रभु से ध्यान सफल हो, जिंदगानी, जिंदगानी ॥  
धन वैभव 'सौभाग्य' बढ़े आदर हो जग में तेरा,  
खुले मोक्ष ताले ताले ॥४॥



## प्राणां सूं भी प्यारी लागे



प्राणां सूं भी प्यारी लागे, वाणी श्री भगवान की ।  
शासन नायक महावीर प्रभु मंगल रूप महान की ॥टेक ॥

वस्तु स्वरूप प्रकाशक दिनकर, मिथ्या मोह अज्ञान हर ।  
भ्रमतम नाशी, हितमित भाषी, समतासागर पावन तर ॥  
प्राणां सूं भी प्यारी लागे, वाणी श्री भगवान की ॥१॥

राग रोधनी स्वपर बोधनी, आत्म शोधनी जिनवानी ।  
श्रावण की पहली एकम ने, खिरी वीर की कल्याणी ॥  
प्राणां सूं भी प्यारी लागे, वाणी श्री भगवान की ॥२॥

विपुलाचल की धन्य धरा पर, इन्द्रभूति गणधर झेली ।  
कुंदकुंद आचार्य लिपि सूं, आज विश्व में जो फैली ॥  
प्राणां सूं भी प्यारी लागे, वाणी श्री भगवान की ॥३॥

आओ ईने कंठ धार कर नर जीवन ने सफल करां ।  
दूर हटा अज्ञान विश्व सूं, ज्ञान सुखद 'सौभाग्य' वरां ॥  
प्राणां सूं भी प्यारी लागे, वाणी श्री भगवान की ॥४॥



## बधाई आज मिल गाओ



तर्ज : बहारो पूल बरसाओ - सुरज

बधाई आज मिल गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं,

गुंजा दो गीत मंगलमय, यहाँ मुनिराज आये हैं ॥टेक ॥

बिछा दे चाँदनी चंदा, सितारो नाचने आओ,  
सुनहला थाल पर ऊषा, प्रभाकर आरती लाओ,  
सुस्वागत साज सजवाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं  
बधाई आज मिल गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं ॥१॥

लताएँ तुम बलैया लो, हृदय के फूल हारों से,  
तितलियाँ रंग बरसाओ,, बहारों की बहारो से,  
मुबारकबाद अलि गाओ , यहाँ मुनिराज आये है  
बधाई आज मिल गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं ॥२॥

दौड़कर गंग जमुना तुम, चरण प्रक्षाल कर जाओ,  
कि धरती तू उगल सोना, धनद सम कोष भर जावो,  
इन्द्र आनन्द धन छाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं  
बधाई आज मिल गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं ॥३॥

सफल हो आगमन इनका, हमें 'सौभाग्य' स्वागत का,  
सुखद जिनराज के दर्शन, इष्ट साधर्मी आगत का,  
यह मंगलाचार नित गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं  
बधाई आज मिल गाओ, यहाँ मुनिराज आये हैं ।  
गुंजा दो गीत मंगलमय, यहाँ मुनिराज आये हैं ॥४॥



# बिन ज्ञान जिया तो जीना



तर्ज : जब प्यार किया तो - मुगले आजम

संसार महा अघ सागर में, वह मूढ़ महा दुख भरता है,  
जड़ नश्वर भोग समझ अपने, जो पर में ममता करता है ।

बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या,  
पुण्य उदय नर जन्म मिला शुभ,  
व्यर्थ गवाँ फल जीना क्या,  
बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ॥टेक ॥

कष्ट पड़ा है जो जो उठाना, लाख चौरासी में गोते खाना,  
भूल गया तू किस मस्ती में, उस दिन था प्रण कीना क्या ॥  
बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ॥१॥

बचपन बीता बीती जवानी, सर पर छाई मौत डरानी,  
ये कंचन सी काया खोकर, बांधा है गाँठ नगीना क्या ॥  
बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ॥२॥

दिखते जो जग भोग रंगीले, उपर मीठे हैं जहरीले,  
भव भय कारण नक्कि निशानी, है तूने चित दीना क्या ॥  
बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ॥३॥

अंतर आतम अनुभव करले, भेद विज्ञान सुधा घट भरले,  
अक्षय पद 'सौभाग्य' मिलेगा, पुनि-पुनि मरना-जीना क्या ॥  
बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ॥४॥



## क्षमाशील सो धर्म



तर्ज : चाँदी की दीवार - विश्वास

क्षमाशील सो धर्म नहीं है, उत्तम या संसार में,  
जीव मात्र न अरे सता मत, रमें मती परनार में ॥टेक ॥

जी का घट में क्षमा सुमन की महक रही है फूलवारी,  
सरस सुखद संतोष सुधा की सरिता सींचे आ क्यारी,  
निश्चय सम्यक दृष्टि वो ही, है जग का व्यवहार में,  
जीव मात्र न अरे सता मत, रमें मती परनार में ॥क्षमाशील...१॥

क्षमा दया की जननी है प्रिय, पाप पंख नहीं उड़बा दे,  
राग द्वेष दारूण दुख दाता, पद न कुपथ में बढ़वा दे,  
निज स्वरूप को भान करा, भवि को तारे मँझधार में,  
जीव मात्र न अरे सता मत, रमें मती परनार में ॥क्षमाशील...२॥

पल पल में पुद्धल की परणति अपना रंग बदलती है,  
अरे सूर्य की देख अवस्था उगती तपती ढलती है,  
तू 'सौभाग्य' चिदानंद चेत, समझ समय का सार में,  
जीव मात्र न अरे सता मत, रमें मती परनार में ॥क्षमाशील...३॥



## भव भव रुले हैं



तर्ज : चुप चुप खड़े हो जरूर

भव भव रुले हैं, न पाया कोई पार है ।  
तेरा ही आधार है तेरा ही आधार है ॥

जीवन की नाव यह कर्मों के मार से,  
उलझी है बीच बीच गतियों की मार से,  
रही सही पतिका तू ही पतवार है ।  
तेरा ही आधार है तेरा ही आधार है ॥१॥

सीता के शील को तुने दिपाया है,  
सूली से सेठ को आसन बिठाया है,  
खिली खिली कलि सा किया नाग हार है ।  
तेरा ही आधार है तेरा ही आधार है ॥२॥

महिमा का पार जब सुर नर ना पा सके,  
'सौभाग्य' प्रभु गुण तेरे क्या गा सके,  
बार बार आपको सादर नमस्कार है ।  
तेरा ही आधार है तेरा ही आधार है ॥३॥



## भाया थारी बावली जवानी



ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे ।  
भगवान भजन तूं कद करसी थारी गरदन हाली रे ॥टेक॥

लाख चोरासी जीवाजून में मुश्किल नरतन पायो रे  
तूं जीवन ने खेल समझकर बिरथा कीयां गमायो रे  
आयो मूठी बाँध पसारयां जासी हाथा खाली रे ॥  
ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे ॥१॥

झूँठ कपट कर जोड़-जोड़ धन कोठा भरी तिजोरी रे  
धर्म कमाई करी न दमड़ी कोरी मूँछ मरोड़ी रे  
है मिथ्या अभिमान आँख की थोथी थारी लाली रे ॥  
ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे ॥२॥

कंचन काया काम न आसी थारा गोती नाती रे  
आतमराम अकेलो जासी कोई न संगी साथी रे  
जन्तर मन्त्र धन लश्कर से मोत टले नहीं टाली रे ॥  
ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे ॥३॥

आपा पर को भेद समझले खोल हिया की आँख रे  
वीतराग जिन दर्शन तजकर अठी उठी मत झाँक रे  
पद पूजा 'सौभाग्य' करेली ले शिव रमणी थाली रे ॥  
ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे ॥४॥



## मन महल में दो

मन महल में दो दो भाव जगे, इक स्वभाव है, इक विभाव है  
अपने-अपने अधिकार मिले, इक स्वभाव है, इक विभाव है ॥



बहिरंग के भाव तो पर के हैं, अंतर के स्वभाव सो अपने हैं  
यही भेद समझले पहले जरा, तू कौन है तेरा कौन यहाँ  
तू कौन है तेरा कौन यहाँ ॥१॥

तन तेल फुलेल इतर भी मले, नित नवला भूषण अंग सजे  
रस भेद विज्ञान न कंठ धरा नहीं सम्यक् श्रद्धा साज सजे  
नहीं सम्यक् श्रद्धा साज सजे ॥२॥

मिथ्यात्व तिमिर के हरने को, अक्षय आतम आलोक जगा  
हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तब दर्शन मन 'सौभाग्य' पगा  
तब दर्शन मन 'सौभाग्य' पगा ॥३॥



## दुःख मेटो वीर



तर्ज : उठ सजनी खोल किवारे तेरे - औरत

दुःख मेटो वीर हमारे, हम आये द्वार तुम्हारे,  
नहीं और कोई चित भाता, तुम ही हो स्वामी हमारे ॥टेक॥

तुम महावीर कहलाये, तज राजपाट वन धाये ।  
हिंसा को मिटाने वाले, लाखों जीवों को तारे ॥

दुःख मेटो वीर हमारे, हम आये द्वार तुम्हारे ॥1॥

श्रीपाल को तुमने उबारा, मैना के दुःख को टारा ।  
हे सती चंदना के प्रण को, तुमही हो पूरण हारे ॥  
दुःख मेटो वीर हमारे, हम आये द्वार तुम्हारे ॥2॥

दरबार मे तेरे आकर, खाली नही जाता चाकर ।  
'पंकज' की झोली भर दे, मैं पूजूँ चरण तिहारे ॥  
दुःख मेटो वीर हमारे, हम आये द्वार तुम्हारे ॥3॥



## मानी थारा मान

मानी थारा मान किला पर बोले कालो काग रे,  
बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे ।

मात-पिता का रज वीरज सूँ बनी है या तन झोंपड़ी,  
गरभ कोष में बन्द सह्या दुख, लटक्यो उल्टी खोपड़ी,  
फिरयो ढोर सो चाल गडोल्या, बचपन खोयो भाग रे ॥  
बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे ॥मानी...१॥

लाल गुलाबी उगी रवाँली, तरुण जवानी गरणाई,  
गृहस्थ धर्म की रक्षा खातिर, पिता बीनणी परणाई,  
धर्म कर्म उपकार भूल तू, रच्यो भोग को फाग रे ॥

बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे ॥मानी...२॥

थारा सूं मद मातो मानी, देख बुढ़ापो है छायो,  
बदन सूखकर हुयो छुवारो, सत नहीं थारे मन भायो,  
अब भी बण जा सरल स्वभावी, मान महा विष नागरे ॥

बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे ॥मानी...३॥

हुआ अनंता ज्ञानी ध्यानी, शूरवीर योद्धा बलवान्,  
तप्या सूर्य सा मान शिखर चढ़, रह्यो न रावण तक को मान,  
थारी काँई अरे गूदड़ी लगा मान के आग रे ॥

बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे ॥मानी...४॥

मान कषाय परिग्रह तज तूं, वीतराग दर्शन धर ले,  
केवल ज्ञान दशा प्रकटा कर, तू 'सौभाग्य' शिखर चढ़ले,  
पी संतोष सुधारस आतम निश्चय शिव पथ लाग रे ॥  
बीती रात पहर को तड़को, मान नींद तज जाग रे,  
मानी थारा मान किला पर बोले कालो काग रे ॥५॥





# मेरे भगवन यह क्या हो गया

मेरे भगवन यह क्या हो गया,  
मेरा मन विषयों में कैसे खो गया ॥टेक ॥

क्षण भर के इन्द्रिय सुख को सुख, मान विषय भोगों में उलझा,  
जैसे मृग तृष्णा वश डोले, पर उसको नहीं मिलता मेघा,  
ऐसे ही यह जीव सदा, कभी भोगों से न तृप्त भया ॥मेरे...१॥

राग द्वेष मोह के बंधन ने, ज्ञान शक्ति पै परदा डारा,  
निज स्वरूप को भूल गाया मैं और वीतरागमय धर्म बिसारा,  
संशय विभ्रम में मैं पड़ा, सत्यमार्ग से भटक गया ॥मेरे...२॥

सतगुरु कहे संसार कार्य से हो विरक्त तुम व्रत को धारो,  
तज मिथ्यात्व परिग्रह पहले अपना जीवन आप सुधारो,  
सप्त व्यसन से बचो सदा, 'पंकज' पालो सब ही दया ॥मेरे...३॥



# मेरे मन मन्दिर में आन



मेरे मन मन्दिर में आन, बिराजो पार्श्वनाथ भगवान ।  
बिराजो पार्श्वनाथ भगवान, बिराजो पार्श्वनाथ भगवान  
मेरे मन मन्दिर में आन, बिराजो पार्श्वनाथ भगवान ॥टेक ॥

अतुल ज्ञान बल रूप दिवाकर, शांति सुधा समता सुख सागर,  
निज स्वरूप के पुण्य प्रभाकर, कोटि सूर्य दयुतिमान ॥मेरे...१ ॥

राज ताज तज विश्वाडम्बर, जन्म जात हो परम दिगम्बर,  
रागादिक पुद्गल पर मारी आत्म ज्ञान कृपाण ॥मेरे...२ ॥

कामधेनु से तुम हो प्रभुवर, जगत ज्योति चिंतामणि दिनकर,  
तुम कुबेर तुम कल्पवृक्ष हो, विश्व विभूति महान ॥मेरे...३ ॥

वामदेव हो काम सुभट को, मन मतंग चंचल नटखट को,  
रत्नत्रय से जीत लिया, 'सौभाग्य' परम निर्वाण ॥मेरे...४ ॥



## मैं हूँ आत्मराम



मैं हूँ आत्मराम, मैं हूँ आत्मराम,  
सहज स्वभावी ज्ञाता दृष्टा चेतन मेरा नाम ॥टेर॥

कुमति कुटिल ने अब तक मुझको निज फंदे में डाला  
मोहराज ने दिव्य ज्ञान पर, डाला परदा काला  
डुला कुगति अविराम, खोया काल तमाम ॥१॥

जिन दर्शन से बोध हुआ है मुझको मेरा आज  
पर द्रव्यों से प्रीति बढ़ा निज, कैसे करूँ अकाज  
दूर हटो जग काम, रागादिक परिणाम ॥२॥

आओ अंतर ज्ञान सितारो, आत्म बल प्रगटा दो  
पंचम-गति 'सौभाग्य' मिले प्रिय आवागमन छुड़ा दो  
पाऊँ सुख ललाम, शिवस्वरूप शिवधाम ॥३॥



## म्हानै पतो बताद्यो थाँसू



तर्ज : लावणी

म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥टेक॥

तीन लोक पति आप चराचर, तीन काल की जाणो,  
थाँनै छोड़ शरण ल्युँ कुण री, या तो जरा बताद्यो ॥  
म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥१॥

मिल्या अनन्ता कामी क्रोधी, भोग रोग भव वासी,  
वीतराग निर्दोष न भेंट्यो, देखी मथुरा काशी ॥  
म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥२॥

वात पित्त कफ तन पीड़ा हर, वन वन औषध ऊभी,  
जन्म जरा मृत्यु भय नाशक, मिली न थाँसी खूबी ॥  
म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥३॥

उत्तम मंगल शरण आपकी, दर्शन आनन्दकारी,  
निज पर ज्ञान कला सरसावे, निश्चय सुख फुलवारी ॥  
म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥४॥

इन्द्र संपदा चक्रीपद की, नहीं याचना थाँसू  
आतम बल 'सौभाग्य' दिपास्यूँ, मिलै मोक्ष पद जासूँ ॥  
म्हानै पतो बताद्यो, थाँसू दुनिया में दूजो और कुण ॥५॥



# म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर



म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,  
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो  
बार-बार आना मुश्किल है, भाव भक्ति उर भर लो,  
हाँ, भाव भक्ति उर भर लो ॥टेक ॥

हाथ कमंडलु काठ को, पीछी पंख मयूर  
विषय-वास आरम्भ सब, परिग्रह से हैं दूर  
श्री वीतराग-विज्ञानी का कोई, ज्ञान हिया विच धर लो, हाँ  
म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,  
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो ॥१॥

एक बार कर पात्र में, अन्तराय अघ टाल  
अल्प-अशन लें हो खड़े, नीरस-सरस सम्हाल  
ऐसे मुनि महाव्रत धारी, तिनके चरण पकड़ लो, हाँ  
म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,  
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो ॥२॥

चार गति दुःख से टरी, आत्मस्वरूप को ध्याय  
पुण्य-पाप से दूर हो, ज्ञान गुफा में आय

'सौभाग्य' तरण तारण मुनिवर के, तारण चरण पकड़ लो, हाँ  
म्हारा परम दिग्म्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,  
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो ॥३॥



## लहराएगा लहराएगा झंडा



लहराएगा लहराएगा झंडा श्री महावीर का ।  
फहराएगा-फहराएगा झंडा श्री महावीर का ॥

अखिल विश्व का जो है प्यारा,  
जैन जाति का चमकित तारा ।  
हम युवकों का पूर्ण सहारा, झंडा श्री महावीर का ॥

सत्य अहिंसा का है नायक,  
शांति सुधारस का है दायक ।  
दीनजनों का सदा सहायक, झंडा श्री महावीर का ॥

साम्यभाव दर्शने वाला,  
प्रेमक्षीर बरसाने वाला ।  
जीवमात्र हर्षने वाला, झंडा श्री महावीर का ॥

भारत का 'सौभाग्य' बढ़ाता,  
स्वावलंब का पाठ पढ़ाता ।  
वन्दे वीरम् नाद गुंजाता, झंडा श्री महावीर का ॥



## लिया प्रभू अवतार जयजयकार



लिया प्रभू अवतार जयजयकार जयजयकार जयजयकार ।  
त्रिशला नंद कुमार जयजयकार जयजयकार जयजयकार ॥

आज खुशी है आज खुशी है, तुम्हें खुशी है हमें खुशी है ।  
खुशियां अपरम्पार ॥ जयजयकार... ॥

पुष्प और रत्नों की वर्षा, सुरपति करते हर्षा हर्षा ।  
बजा दुंदुभि सार ॥ जयजयकार... ॥

उमग उमग नरनारी आते, नृत्य भजन संगीत सुनाते ।  
इंद्र शची ले लार ॥ जयजयकार... ॥

प्रभू का अनुपम रूप सुहाया, निरख निरख छवि हरि ललचाया ।

कीने नेत्र हजार ॥ जयजयकार... ॥

जन्मोत्सव की शोभा भारी, देखो प्रभू की लगी सवारी।  
जुड़ रही भीड़ अपार ॥ जयजयकार... ॥

आओ हम सब प्रभु गुण गावें, सत्य अहिंसा ध्वज लहरायें।  
जो जग मंगलाचार ॥ जयजयकार... ॥

पुण्य योग सौभाग्य हमारा, सफल हुआ है जीवन सारा।  
मिले मोक्ष दातार ॥ जयजयकार... ॥



## मूंजी धरी रहेली



तर्ज : लावणी

मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली,  
पाई साथ न जावेली ओ पाई साथ न जावेली,  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥टेक॥

खोल हाट बणकर व्यापारी, करी रात दिन मायाचारी,  
भरी तिजोर्या तलघर थैल्याँ, काम न आवेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥१॥

हाथी घोड़ा मोटर गाड़ी, रतन जड़ाऊ अम्बाबाड़ी,  
बैठ फिर्यो पी माया मदिरा, तनै भ्रमावेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥२॥

ए सत खंड्या महल अटारी, पुत्र पौत्र, दासी घरवाली,  
स्वार्थ भरी है रिश्तेदारी, तनै भुलावेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥३॥

धन के खातिर हो हो भेला, लोक दिखाऊ देसी हेला,  
दान पुण्य ही शुभ करणी है, साथे जावेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥४॥

अन्तर बाहिर शुद्धि कर ले, भोग लालसा मन सूँ हरले,  
शौच धरम ही जग में पावन, तनै बणावेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली ॥५॥

परिग्रह का परिमाण धार ले, वीतरागता हृदय सार ले,  
समझ श्रेष्ठ 'सौभाग्य' वरण शिव लक्ष्मी आवेली ।  
मूंजी धरी रहेली पूंजी, पाई साथ न जावेली  
पाई साथ न जावेली ओ पाई साथ न जावेली ॥६॥



# संसार महा अघसागर



संसार महा अघसागर में, वह मूढ़ महा दुःख भरता है ।  
 जड़ नश्वर भोग समझ अपने, जो पर में ममता करता है ।  
 बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या, बिन ज्ञान जिया तो जीना क्या ।  
 पुण्य उदय नर जन्म मिला शुभ, व्यर्थ गमों फल लीना क्या ॥

कष्ट पड़ा है जो जो उठाना, लाख चौरासी में गोते खाना ।  
 भूल गया तूं किस मस्ती में उस दिन था प्रण कीना क्या ॥

बचपन बीता बीती जवानी, सर पर छाई मौत डरानी ॥  
 ये कंचन सी काया खोकर, बांधा है गाँठ नगीना क्या ॥

दिखते जो जग भोग रंगीले, ऊपर मीठे हैं जहरीले ।  
 भव भय कारण नर्क निशानी, है तूने चित दीना क्या ॥

अंतर आतम अनुभव करले, भेद विज्ञान सुधा घट भरले ।  
 अक्षय पद 'सौभाग्य' मिलेगा, पुनि पुनि मरना जीना क्या ॥





# आओ सत्य धरम

तर्ज : मूँजी धरी रहे ली पूँजी - रसिया

आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥टेक॥

पद पद पर सुन्दर है क्यारी, एक दूसरी सूँ सब न्यारी,  
कली कली घूंघट पट खोल्यो, म्हानै रही पुकार ॥  
आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥१॥

पौध लता तरु भिन्न भिन्न है, धरा एक नहीं कोई खिन्न है,  
रूप रंग रस पृथक-पृथक, त्यों निज पर करो विचार ॥  
आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥२॥

झूठ कपट तज मायाचारी, सत्य सुधा आत्म हितकारी,  
राग द्वेष तज हित मित भाषी, त्याग झूठ संसार ॥  
आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥३॥

उत्तम क्षमा की जननी गाई, दया अहिंसा है माँ जाई,  
इस मंगल प्रद सत्य धर्म की, विश्व करे जयकार ॥  
आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥४॥

भवदधि पङ्घो सरसों को दाणों, बङ्घो कठिन है पाछो आणो,

नरभव को 'सौभाग्य' समझ ले, मिले न बारम्बार ॥  
आओ सत्य धरम उपवन में, हिल मिल रमल्याँ थोड़ी वार ॥५॥



## लागे सत्य सुमन



तर्ज : मूँजी धरी रहे ली पूँजी - रसियां

लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ।

झूठ कपट छल आक धतूरा, काम थोर काँटा सू पूरा,  
फूल्या घेर घुमेर चाह बिन मन धरसी थारी ॥  
लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ॥१॥

लाल बोराँ की झाड़ी ऊपर कोमल अन्तर भारी,  
फूल तो काँटा छिद जावे पोर आंगल्या सारी ॥  
लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ॥२॥

स्व स्वरूप की परख सत्य है, जड़ अनित्य चैतन नित्य है,  
गंध हीन टेसू सू प्यारा, मत कर तू यारी ॥  
लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ॥३॥

झूठन से भी झूठ बुरी है, मिथ्या दरसन पाप धुरी है,  
वीतराग सत सुमन संजोले अक्षय फुलवारी ॥  
लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ॥४॥

बार-बार मानव कुल धरणी, देह निरोगी उत्तम करणी,  
कठिन श्रेष्ठ 'सौभाग्य' मिलन है, आगम हितकारी ॥  
लागे सत्य सुमन बिन खारी, सारी जीवन की क्यारी ॥५॥



## साँवरे बनवासी काहे छोड



तर्ज : आजा रे परदेशी - मधुमती

साँवरे! बनवासी! काहे छोड चले गिरनार,  
मैं हारी पल पल बाट निहार ॥टेक॥

प्रीत पुरानी नव भव केरी, क्यों बिसरादी साजन मेरी,  
व्याकुल है यह चरनन चेरी हो ...  
साँवरे! बनवासी! काहे छोड़ चले गिरनार,  
मैं हारी पल पल बाट निहार ॥१॥

ओ करुणा के पावन सागर, मेरी क्यों है खाली गागर,

आशा पूरो हे गुण आगर हो...  
साँवरे! बनवासी! काहे छोड़ चले गिरनार,  
मैं हारी पल पल बाट निहार ॥२॥

तुम बिन जीवन की हरियाली, विरह वेदना जल भईकारी,  
रो रो अँखियाँ हो गई खाली हो...  
साँवरे! बनवासी! काहे छोड़ चले गिरनार,  
मैं हारी पल पल बाट निहार ॥३॥

प्राणों की पतवार संभालो, माँझी बन 'सौभाग्य' उबारो,  
तारण तरण है विरद् तुम्हारो हो...  
साँवरे! बनवासी! काहे छोड़ चले गिरनार,  
मैं हारी पल पल बाट निहार ॥४॥



## स्वामी तेरा मुखड़ा

स्वामी तेरा मुखड़ा है मन को लुभाना,  
स्वामी तेरा गौरव है मन को डुलाना  
देखा ना ऐसा सुहाना-२ ॥स्वामी॥



ये छवि ये तप त्याग जगत का, भाव जगाता आत्म बल का  
हरता है नरकों का जाना-२ ॥स्वामी॥

जो पथ तूने है अपनाया, वो मन मेरे भी अति भाया  
पाऊँ मैं तुम पद लुभाना-२ ॥स्वामी॥

पंचम गति का मैं वर चाहूँ, जीवन का “सौभाग्य” दिपाऊँ  
गूँजे हैं अंतर तराना-२ ॥स्वामी॥



## हे परम दिग्म्बर यति



हे परम दिग्म्बर यति, महागुण व्रती, करो निस्तारा ।  
नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥टेक॥

तुम बीस आठ गुणधारी हो, जग जीवमात्र हितकारी हो ।  
बाईस परीषह जीत धरम रखवारा  
नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥१॥

तुम आत्मज्ञानी ध्यानी हो, शुचि स्वपर भेद-विज्ञानी हो ।  
है रत्नत्रय गुणमंडित हृदय तुम्हारा

नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥२॥

तुम क्षमाशील समता-सागर, हो विश्व पूज्य वर रत्नाकर ।  
है हित मित सत उपदेश तुम्हारा प्यारा  
नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥३॥

तुम धर्ममूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी ।  
है निर्विकार निर्देष स्वरूप तुम्हारा  
नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥४॥

है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार ।  
'सौभाग्य' आप-सा बाना होय हमारा  
नहिं तुम बिन हितू हमारा  
हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रती, करो निस्तारा ।  
नहिं तुम बिन हितू हमारा ॥५॥



पं भूधरदास कृत भजन



# अजित जिन विनती



अजित जिन विनती हमारी मान जी, तुम लागे मेरे प्रान जी ।  
तुम त्रिभुवन में कल्प तरुवर, आस भरो भगवानजी ॥

वादि अनादि गयो भव भ्रमतै, भयो बहुत कुल कानजी ।  
भाग संयोग मिले अब दीजे, मनवांछित वरदान जी ॥१॥

ना हम मांगे हाथी-घोड़ा, ना कछु संपति आनजी ।  
'भूधर' के उर बसो जगत-गुरु, जबलौं पद निरवान जी ॥२॥

**अर्थ :** हे अजितनाथ भगवान! हमारी विनती स्वीकार करो। मेरे प्राण ! मेरा जीवन तुम्हारे साथ लग गया, तुम्हारी शरण में आ गया है। आप तीन लोक में कल्पवृक्ष हैं अतः हे भगवान ! मेरी भी आशा पूरी करो।

अनादिकाल से ही मैं भव-भव में वृथा भ्रमण कर रहा हूँ। अनेक भवों को मर्यादा में सीमित रहा हूँ। अब भाव भी हुए हैं और संयोग भी मिला है, मुझे अब मनवांछित वर प्रदान करो।

हम आपसे हथी-घोड़े की माँग नहीं करते और न कोई अन्य प्रकार की संपत्ति ही चाहते हैं। भूधरदास कहते हैं कि आप हमारे हृदय में तब तक रहो, जब तक हमें मुक्ति की, निर्वाण की प्राप्ति न हो।



## अजित जिनेश्वर



अजित जिनेश्वर अघहरणं, अघहरणं अशरन-शरणं ॥  
निरखत नयन तनक नहिं त्रिपते, आनंदजनक कनक-वरणं ॥

करुणा भीजे वायक जिनके, गणनायक उर आभरणं ।  
मोह महारिपु घायक सायक, सुखदायक, दुखछय करणं ॥१॥

परमात्म प्रभु पतित-उधारन, वारण-लच्छन-पगधरणं ।  
मनमथमारण, विपति विदारण, शिवकारण तारणतरणं ॥२॥

भव-आताप-निकंदन-चंदन, जगवंदन बांछा भरणं ।  
जय जिनराज जगत वंदत जिहँ, जन 'भूधर' वंदत चरणं ॥३॥

**अर्थ :** हे अजित जिनेश्वर! आप पापों को हरनेवाले हैं, पापों का नाश करनेवाले हैं। जिनको कोई शरण देनेवाला नहीं है, आप उनको शरण देनेवाले हैं। आपके दर्शन करते हुए नेत्रों को तृप्ति नहीं होती अर्थात् दर्शन करते हुए मन नहीं भरता। आप ऐसे आनंद के जनक हैं जनमदाता हैं, आपका गात (शरीर) सुवर्ण-सा है।

आपका दिव्योपदेश पूर्ण करुणा से भीगा हुआ है, वह ही गणधर के हृदय का आभूषण है। (वह उपदेश) मोहरूपी महान शत्रु को नाश करनेवाले तीर के समान है, सुख देनेवाला है, दुःख का नाश करनेवाला है।

हे परमात्मा, हे प्रभु! आप (आचरण से) गिरे हुए जनों का उद्धार करनेवाले हैं, आपके चरणों में हाथी का लांछन है (चिह्न है)। आप कामदेव का नाश करनेवाले हैं, विपत्तियों को दूर करनेवाले हैं, मोक्ष के कारण हैं, भवसागर से पार उतारनेवाले हैं।

भवभ्रमण के ताप को मेटने के लिए आप चंदन के समान शीतल हैं, आप जगत के द्वारा पूज्य हैं और कामनाओं की पूर्ति करनेवाले हैं। जैसे सारा जगत बंदना करता है वैसे ही समवसरण में आसीन आपके ऐसे चरणों की भूधरदास वंदना करता है।

<sup>१</sup>वायक - वचन।

रेघायक - नाश करना।

रेसायक- बाण।

४वारण लांछन-हाथी का चिह।

५मनमथमारण -कामदेव का नाश करनेवाले।



## अज्ञानी पाप धतूरा



राग : सोरठ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ।  
फल चाखन की बार भरै दृग, मर है मूरख रोय ॥टेक॥

किंचित विषयनि के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ।  
ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, इस नींदड़ी मत सोय ॥  
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥१॥

इस विरियां में धर्म-कल्प-तरु, सींचत स्थाने लोय ।  
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागो न कोय ॥  
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥२॥

जे जग में दुःखदायक बेरस, इस ही के फल सोय ।  
यों मन 'भूधर' जानिकै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥  
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥३॥

**अर्थ :** अरे अज्ञानी, पापरूपी धतूरा न बो।

रे मूढ़ मानव, पापरूपी धतूरा को बोते समय तो तुझे कुछ नहीं होगा, परन्तु फल चखने के समय तू फूट-फूटकर रोएगा और जान तक खो देगा।

इन क्षणिक सुख देनेवाली विषय-वासनाओं के पीछे तू दुर्लभ मानव-पर्याय क्यों व्यर्थ खोये दे रहा है ? इस मनुष्य पर्याय की प्राप्ति का अवसर फिर तुझे कभी नहीं मिलनेवाला है। अरे अज्ञानी, पापरूपी धतूरा न बो।

अरे मूढ़, यह वह समय है जब सभी विवेकशील मानव धर्म-कल्पतरु का सिंचन करते हैं और अपने अजरामर पद की प्राप्ति के लिए दृढ़ता के साथ यत्नशील रहते हैं। और मानव, इस ही पुण्य-वेला में तू विष-बीज बो रहा है! सोच, तुझ-जैसा अभागा भी कोई संसार में होगा?

अरे अज्ञानी, संसार में प्राणियों की दुखद और रसहीन जितनी प्रवृत्तियाँ हैं वे सब इसी पापरूपी विष-बीज के परिणाम हैं। रे मानव, यह सब जानकर भी तू क्यों अनजान बन रहा है?



## अन्तर उज्जल करना रे



राग सोरठ, आतम अनुभव करना रे भाई

अन्तर उज्जल करना रे भाई! ॥टेक ॥  
कपट कृपान तजै नहिं तबलौ, करनी काज न सरना रे ॥

जप-तप-तीरथ-यज्ञ-व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे ।  
विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि-पचि मरना रे ॥  
अन्तर उज्जल करना रे भाई! ॥१॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसों, कीये पार उतरना रे ।  
नाहीं है सब लोक-रंजना, ऐसे वेदन वरना रे ॥  
अन्तर उज्जल करना रे भाई! ॥२॥

# कामादिक मनसौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे । 'भूधर' नील वसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे ॥ अन्तर उज्जल करना रे भाई! ॥३॥

**अर्थ :** अरे भाई, अपना मन स्वच्छ रखो।

जब तक तुम कपटरूपी कृपाण नहीं छोड़ोगे, अपने मन से मायाचार का बहिष्कार नहीं करोगे, तुम्हारा कोई कार्य सफल नहीं हो सकता। सफलता माया और धोखे में नहीं है। उसका मार्ग सत्याग्रह है।

अरे भाई, यदि तुमने अपने अन्तस् से वासना और कषायों का कीचड़ साफ नहीं किया-- क्रोध, अहंकार, माया और लोभ को बराबर पकड़े रहे तो तुम्हारा समस्त जप, तप, तीर्थ-गमन, यज्ञ, व्रताचरण और शास्त्रोपदेश एकदम निष्फल है और ऐसी स्थिति में अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। तुम इन्हीं बासनाओं और कषायों के दलदल में फंसे रहो और मरते जाओ। इस संकट से उन्मुक्त होने का मार्ग तो अन्तःशुद्धि ही है।

अरे भाई, अपना मन स्वच्छ रखो।

अरे भाई, तुम जितनी बाह्य-क्रियाओं का आचरण करते हो और उच्चतम वेषों को अंगीकार करते हो -- इस सबकी सफलता तुम्हारी मानसिक शुद्धि पर अवलम्बित है। अपनी मनःशुद्धि के बल पर ही तुम अपना चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकते हो। यदि तुमने अपना मन साफ नहीं किया, उसमें स्वार्थ और वासनाओं को बराबर आश्रय दिये रहे तो विश्वास रखो, तुम्हारा बाह्य आचार और वेष-परिधान लोक-रंजना के सिवाय और कुछ न होगा। महान शास्त्रों का भी यही मथितार्थ है।

अरे भाई, अपना मन स्वच्छ रखो।

अरे भाई, जब तेरा झूदय काम आदिक वासनाओं से रंगा हुआ है-- वीभत्स है; तो तू कितना ही भजन कर, उससे तेरा क्या लाभ? कदाचित् तेरी धारणा हो कि मैं इन वासनाओं का पुजारी होकर भी भगवान का पुजारी हो सकता हूँ तो याद रख, न तेरी यह सच्ची पूजा है और न इसका तुझे किंचित् भी सुफल मिल सकता है। जरा सोच, नीले वस्त्र पर कभी केसरिया रंग चढ़ा भी है?

अरे भाई, अपना मन स्वच्छ रखो।



## अब नित नेमि नाम भजौ



राज भावना

अब नित नेमि नाम भजौ ॥टेक ॥

सच्चा साहिब यह निज जानौ, और अदेव तजौ ॥१॥  
 चंचल चित्त चरन थिर राखो, विषयन वरजौ ॥२॥  
 आनन” गुन गाय निरन्तर, पानन पांय जजौ ॥३॥  
 ‘भूधर’ जो भवसागर तिरना, भक्ति जहाज सजौ ॥४॥

**अर्थ :** हे जीव ! अब सदा नेमिनाथ का नाम जप, उनका भजन कर। ये ही सच्चे साहिब (पूज्य) हैं, ऐसा मन में जानो। जो देव नहीं हैं उनकी मान्यता को छोड़ो। अपने चंचल चित्त को प्रभु के चरणों में स्थिर रखकर इन्द्रिय-विषयों को छोड़ो, उनसे बचो। अपने मुंह से सदैव प्रभु के गुण गावो और दोनों हाथों से उनके चरणों की पूजा करो, उनमें नत हो जाओ, उनमें नमन करो। भूधरदास कहते हैं कि जो भवसागर से तिरना चाहते हो तो भक्तिरूपी नैया। नौका को सशोभित करो, उसे सजाओ।



## अब पूरी कर नींदड़ी

अब पूरी कर नींदड़ी, सुन जीया रे! चिरकाल तू सोया ॥  
 माया मैली रातमें, केता काल विगोया ॥टेक ॥



धर्म न भूल अयान रे! विषयोंवश वाला ।  
 सार सुधारस छोड़के, पीवै जहर पियाला ॥१ अब...॥

मानुष भवकी पैठमैं, जग विणजी आया ।  
 चतुर कमाई कर चले, मूढँौं मूल गुमाया ॥२ अब...॥

तिसना तज तप जिन किया, तिन बहु हित जोया ।

भोगमगन शठ जे रहे, तिन सरवस खोया ॥३ अब...॥

काम विथा पीड़ित जिया, भोगहि भले जानैं ।  
खाज खुजावत अंगमें, रोगी सुख मानैं ॥४ अब...॥

राग उरगनी जोरतैं, जग डसिया भाई !  
सब जिय गाफिल हो रहे, मोह लहर चढ़ाई ॥५ अब...॥

गुरु उपगारी गारुड़ी, दुख देख निवारैं ।  
हित उपदेश सुमंत्रसों, पढ़ि जहर उतारैं ॥६ अब...॥

गुरु माता गुरु ही पिता, गुरु सज्जन भाई ।  
'भूधर' या संसार में, गुरु शरनसहाई ॥७ अब...॥

**अर्थ :** हे जीव! अब तो तू इस नींद को (अज्ञान को) समाप्त कर, जिसमें चिरकाल से तू सोया ही चला आ रहा है। इन मायावी उलझनों, चिन्ता, सोच विचार की रात में तूने अपना कितना समय खो दिया! हे अज्ञानी ! विषयों को वश में करनेवाले धर्म को तू भूल मत । यह (धर्म) ही तो सारे अमृत रस का सार है, मूल है, आधार है और तू इसे छोड़कर जहर का प्याला पीता चला आ रहा है ।

तूने मनुष्य भव पाया है, ऐसी साख लेकर तू इस संसार में व्यापार हेतु आया है । जो चतुर व्यक्ति हैं, वे तो अपने साथ शुद्धि अथवा शुभ कर्म की कर्माई करके चले गए, परन्तु जो मूर्ख हैं, वे जो कुछ लाए थे वह भी गँवा गये । जिन्होंने तृष्णा को त्याग करके तप किया, उन्होंने अपना हित देखा और पाया। परन्तु जो अज्ञानी भोगों में ही मग्न रहे, उन्होंने अपना सर्वस्व/ सबकुछ खो दिया ।

काम की पीड़ा से व्यथित यह जीव भोगों को उसी प्रकार भला जान रहा है जैसे खुजली का रोगी खुजाने में ही आनन्द की अनुभूति करता है किन्तु परिणाम में लहु-लुहान होकर दुःखी होता है ।

रागरूपी नागिन ने पूरे बल से इस जगत को डस लिया है और सारे ही जीव उस विष-मोह की लहर के प्रभाव से बेसुध हो गए हैं; गुरु उपकारी हैं, वे दुःख को देखकर जहर को दूर करने के लिए उपदेश देते हैं, मंत्र-पाठ करते हैं ।

गुरु ही माता है, गुरु ही पिता है, गुरु ही भाई व साथी हैं। भूधरदास जी कहते हैं कि इस संसार में गुरु ही एकमात्र शरण हैं, वे ही सहायक हैं।



## अब मेरे समकित सावन



राग : मल्हार; तर्ज : आज मैं परम पदारथ

अब मेरे समकित सावन आयो ॥टेक ॥  
बीति कुरीति मिथ्या मति ग्रीष्म, पावस सहज सुहायो ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो  
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिनि भायो ॥  
अब मेरे समकित सावन आयो ॥१॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो  
साधक भाव अंकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥  
अब मेरे समकित सावन आयो ॥२॥

भूल धूल कहिं भूल न सूझत, समरस जल झर लायो  
'भूधर' को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥  
अब मेरे समकित सावन आयो ॥३॥

**अर्थ :** अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आ गया है। धार्मिक कुरीति मिथ्यामतिरूपी ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और सहज सुख-शान्तिदायक सम्यक्त्व सुरीतिरूप वर्षा ऋतु आ गई है।

आत्मा के अनुभवरूप बिजली चमकले लगी है, आत्म-स्मृतिरूप मेघों की घनीभूत घटा छा गई है, निर्मल विवेक रूपी पपीहा बोलने लगा है और सुमति रूपी सुहागिन (सौभाग्यवती नारी), प्रसन्न हो गई है; इसप्रकार अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावणमास आ गया है।

जिसप्रकार मेघों की गर्जना सुनकर मयूर प्रमुदित हो उठते हैं, नाचने लगते हैं; उसीप्रकार सद्गुरु की गर्जना सुनकर मेरा मन रूपी मोर प्रसन्न हो उठा है, आनन्दित हो उठा है और उसमें साधकभाव के बहुत से अंकुर फूट पड़े हैं तथा यत्र-तत्र सर्वत्र हर्ष छा गया है। इसप्रकार अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आ गया है।

प्रयोजनभूत तत्त्वों सम्बन्धी भूलरूपी धूल मूल से समाप्त हो गई है, अतः कहीं भी दिखाई नहीं देती तथा समतारूपी जल सर्वत्र ही भर गया है; जीवन में समता आ गई है। कविवर भूधरदासजी कहते हैं कि जब मैंने इसप्रकार का निरचू (जिसमें पानी नहीं रिसता) घर प्राप्त कर लिया है तो अब मैं इस निरचू घर से बाहर क्यों निकलूँ? अब तो मैं सदा इस निरचू घर में ही रहूँगा; क्योंकि अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी सावन आ गया है।



## अरे हाँ चेतो रे भाई



राम ख्याल

अरे! हाँ चेतो रे भाई ॥टेक ॥

मानुष देह लही दुलही, सुघरी उघरी सतसंगति पाई ॥१॥  
जे करनी वरनी करनी नहिं, ते समझी करनी समझाई ॥२॥  
यों शुभ थान जग्यो उर ज्ञान, विषै विषपान तृषा न बुझाई ॥३॥  
पारस पाय सुधारस 'भूधर', भीखके मांहि सु लाज न आई ॥४॥

**अर्थ :** अरे भाई! संभलो और चेत करो। मनुष्य को दुर्लभ देह तुम्हें मिली है, और अच्छी घड़ी (समय) प्रकट हुई है कि तुम्हें सत्संगति का अवसर मिला है।

(इस मनुष्य देह से) जैसी करनी (करने योग्य कार्य) कही गई है वैसी करनी तो तुम करते नहीं समझते नहीं। इसलिए (बार-बार) करनी समझाई जाती है।

अब इस शुभ स्थान (मनुष्य जीवन) में अन्तर में ज्ञान जगा है कि विषयरूपी विष का पान करने से प्यास नहीं बुझती, तृष्णा नहीं मिटती।

अब भगवान पारसनाथ के अमृतसम दर्शन हुए हैं, भूधरदास कहते हैं कि उनसे याचना करने में मुझको कोई लाज नहीं है।



राग : पंचम

# आज गिरिराज के

आज गिरिराज के शिखर सुन्दर सखी  
होत है अतुल कौतुक महा मनहरन ॥  
नाभि के नंद को, जगत के चंद को,  
लेगये इंद्र मिलि, जन्ममंगल करन ॥टेक ॥

हाथ-हाथन धरे, सुरन-कंचन घरे,  
छीरसागर भरे, नीर निरमल बरन ।  
सहस अरु आठ गिन, एकही बार जिन,  
सीस सुर ईशके, करन लागे ढरन ॥१॥

नचत गीत सुरसुंदरी, रहस रससों भरी,  
गीत गावैं अरी, देहि ताली करन ।  
देव-दुंदुभि बजैं, वीन वंशी सजैं,  
एकसी परत, आनंदघन की भरन ॥२॥

इंद्र हर्षित हिये, नेत्र अंजुलि किए,  
तृपति होत न पिये, रूप अमृत झरन ।

दास 'भूधर' भनै, सुदिन देखे बनै,  
कहि थके लोक लख, जीभ न सके वरन ॥३॥



## आदिपुरुष मेरी आस



आदिपुरुष मेरी आस भरो जी, अवगुन मेरे माफ करो जी ।  
दीनदयाल विरद विसरो जी, कै बिनती गोरी श्रवण धरों जी ॥टेक ॥

काल अनादि वस्यो जगमाँही, तुमसे जगपति जाने नाही ।  
पाय न पूजे अंतरजामी, यह अपराध क्षमाकर स्वामी ॥आदि.१॥

भक्तिप्रसाद परम पद है है, बंधी बंधदशा मिटि जैहै ।  
तब न करो तेरी फिर पूजा, यह अपराध छमा प्रभु दूजा ॥आदि.२॥

'भूधर' दोष किया बखावै, अरु आगैको लारें लावे ।  
देखो सेवक की ढिठवाई, गरुवे साहिबसौं बनियाई ॥आदि.३॥

**अर्थ :** हे आदिपुरुष ! मेरी आशा पूर्ति करो, मेरे अवगुणों की ओर ध्यान न दो, उन्हें क्षमा कर दो। हे दीनदयाल ! दोनों पर दया करनेवाले ! यह आपका गुण है, विशेषता है। या तो मेरी विनती सुनो या अपने इस विरद (विशेषता) को, गुण को भूल जाओ, छोड़ दो।

अनादिकाल से इस जगत में भ्रमण करता चला आ रहा हूँ पर आप-जैसे जगत्पति को मैं अब तक नहीं जान सका । हे सर्वज्ञ ! इसलिए मैंने कभी आपकी वन्दना-स्तुति नहीं की। यह मेरा अपराध हुआ। हे प्रभु ! इसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करें ।

आपकी भक्ति के परिणामस्वरूप (फलरूप) परम पद मिलता है, मुक्ति की प्राप्ति होती है और कर्म-बन्ध की दशा (जो कर्म बंधे हुए हैं) भी मिट जाती है। जब भविष्य में मेरे सब कर्म मिट जायेंगे तो मैं फिर आपकी पूजा नहीं करूँगा क्योंकि मैं भी तो मुक्त हो जाऊँगा, तब वह मेरा दूसरा अपराध होगा ।

भूधरदास जी प्रार्थना करते हैं कि पूर्व में मेरे द्वारा किये गये दोषों को, गल्तियों को बछादो, माफ कर दो (अर्थात् मेरे अतीत को भूल जाएँ) और भविष्य को साथ लें अर्थात् भविष्य पर ध्यान करें। देखिए स्वामी - मुझ सेवक का यह कैसा ढोठपना है कि आप सरीखे महान स्वामी से भी मैं यह बनियागिरी की बात कर रहा हूँ ।



## मेरी जीभ आठौं



राग बिलावल, रघुपति राघव राजाराम

मेरी जीभ आठौं जाम, जपि-जपि ऋषभजिनिंदजी का नाम ॥टेक॥

नगर अजुध्या उत्तम ठाम, जनमैं नाभि नृपति के धाम ॥१॥

सहस अठोत्तर अति अभिराम, लसत सुलच्छन लाजत काम ॥२॥

करि थुति गान थके हरि राम, गनि न सके गणधर गुन ग्राम ॥३॥

'भूधर' सार भजन परिनाम, अर सब खेल खेल के खांम ॥४॥

**अर्थ :** ओ मेरी जिह्वा (जीभ) ! तू आठों प्रहर अर्थात् दिन-रात सदैव श्री ऋषभ जिनेन्द्र के नाम का ही जपा कर।

शुभ अयोध्या नगरी में नाभिराजा के यहाँ उनका जन्म हुआ। एक सौ आठ सुलक्षणों से वे सुशोभित हैं, जिनको देखकर कामदेव भी लजाता है।

इन्द्र आदि भी जिनकी स्तुति करते थक गये पर स्तुति नहीं कर सके। गणधर भी उनके गुणों का पार नहीं पा सके, गुणों को गणना नहीं कर सके।

भूधर दास जी कहते हैं कि उनका भजन, उनका स्मरण ही सारयुक्त है, फलदायक है। इसके अलावा सभी क्रियाएँ (खेल हैं) व्यर्थ हैं, निरर्थक - निरूपयोगी हैं।



## रटि रसना मेरी



राग बिलावल, रघुपति राघव राजाराम

रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द, सुर नर जच्छ चकोरन चन्द ॥टेक ॥

नामी नाभि नृपति के बाल, मरुदेवी के कुंवर कृपाल ॥रटि...१॥

पूज्य प्रजापति पुरुष पुरान, केवल-किरन धरैं जगभान ॥रटि...२॥

नरकनिवारन विरद विख्यात, तारन-तरन जगत के तात ॥रटि...३॥

'भूधर' भजन दिने निरवाह, श्रीमद् पद्म भंवर हो जाह ॥रटि...४॥

**अर्थ :** हे मेरी रसना, तू सुर-नर-यक्षरूपी चकोर की भाँति, ऋषभ जिनेन्द्रूपी चन्द्र को निरन्तर स्मरण कर, जप।

कृपानिधान (ऋपभ) राजा नाभिकुमार और माता मरुदेवी के बालक हैं, पुत्र हैं।

वे पुराणपुरुष पूज्य हैं, प्रजा के पालक हैं और जगत को प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के धारक हैं।

नरक से निवारण करना, अचाना आप की विशेषता है, गुण है। हे पूज्य! इस संसार समुद्र से आप ही तारनेवाले हैं।

भूधरदास कहते हैं कि भगवान के चरण-कमल मेरे ध्यान के केन्द्र बन जायें अर्थात् उनके चरण कमलों पर भ्रमर के समान (जैसा भ्रमर का कमल के प्रति अनुराग होता है) अनुराग हो जाये। उनके भजन स्मरण करने से अपना निर्वाह हो सकेगा।



## लगी लौ नाभिनंदन



राग : सोरठ

लगी लो नाभिनंदन सों ।  
जपत जेम चकोर चकई, चन्द भरता को ॥

जाउ तन-धन जाउ जोवन, प्रान जाउ न क्यों ।  
एक प्रभु की भक्ति मेरे, रहो ज्यों की त्यों ॥१॥

और देव अनेक सेवे, कछु न पायो हौं ।  
ज्ञान खोयो गाँठिको, धन करत कुवनिज ज्यों ॥२॥

पुत्र-मित्र कलत्र ये सब, सगे अपनी गों ।  
नरक कूप उद्धरन श्रीजिन, समझ 'भूधर' यों ॥३॥

**अर्थ :** हे नाभिनन्दन ! जिस प्रकार वियोगी चकवा- चकवी सर्य के आगमन के प्रति आशान्वित होकर मिलन की घड़ियों की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार (ऊर्ध्वस्वभावी लौ की भाँति) मैं भी आपके गुणों के प्रति आकर्षित हो रहा हूँ।

हे आदीश्वर ! मेरा तन, धन, यौवन व प्राण सभी भले ही चले जाएँ पर यही चार है कि आपके प्रति मेरी भक्ति यथावत अक्षुण्ण बनी रहे।

हे आदिदेव ! मैंने अनेक देवताओं की सेवा-भक्ति की, परन्तु मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ बल्कि जैसे खोटा व्यापार करने से धन की हानि होती है, वैसे ही मैंने अपने सम्यक् ज्ञान धन की हानि की है। हे श्री जिन ! पुत्र, मित्र, स्त्री, सब अपने-अपने स्वार्थवश सगे हैं। भूधरदास समझाते हैं कि इस संसार के नरक-कूप से उद्धार का एकमात्र साधन आपके प्रति को गई भक्ति ही है।



## आयो रे बुढ़ापो मानी



राग बंगला

आयो रे बुढ़ापो मानी, सुधि बुधि बिसरानी ॥टेक॥

श्रवन की शक्ति घटी, चाल चालै अटपटी,  
देह लटी, भूख घटी, लोचन झरत पानी ॥१ आया रे...॥

दांतन की पंक्ति टूटी, हाड़न की संधि छूटी,  
काया की नगरि लूटी, जात नहिं पहिचानी ॥२ आया रे...॥

बालों ने वरन फेरा, रोगों ने शरीर घेरा,  
पुत्रहू न आवे नेरा, औरों की कहा कहानी ॥३ आया रे...॥

'भूधर' समुद्धि अब, स्वहित करैगो कब,  
यह गति है है जब, तब पिछतै हैं प्राणी ॥४ आया रे...॥

**अर्थ :** अरे मानी मानव, बुढ़ापा आ गया है और समस्त सुधि-बुधि बिसर गयी है!

श्रवणेन्द्रिय की शक्ति क्षीण हो गयी है। कानों से ठीक सुनाई नहीं पड़ता है और चलने को गति भी अटपटी हो गयो है-- एक पैर कहीं पड़ता है तो दूसरा कहीं। शरीर शिराजाल से उभर पड़ा है-- कृश हो गया है और पाचनशक्त दुर्बल होने से भूख

भी घट गयी है। इसके सिवाय नेत्रों से पानी भी बहने लगा है।

दाँतों की पंक्ति टूट गयी है और अस्थियों को संधि-जोड़ खुल गयी है। शरीर की नगरी-माया लुट गयी है और व्यक्ति पहचानने तक में नहीं आता है। अरे मानी, बुढ़ापा आ गया है और समस्त सुधि-बुधि बिसर गयी है।

सिर के बाल सफेद हो गये हैं और शरीर को अनेक प्रकार के रोगों ने आ घेरा है। शरीर की इतनी करुण और वीभत्स अवस्था हो गयी है कि और को तो बात हो दूर, पुत्र तक पास में नहीं आता है।

यह बुढ़ापे का यथार्थ चित्र है। पर समझ में नहीं आता कि यह मानव अपना हित कब करेगा? यदि बाल्य और युवावस्था में इसे आत्म-हित साधन का खयाल नहीं तो इस बुढ़ापे में, जब वह इस प्रकार से दुखित और पराधीन, असहाय और निर्बल रहेगा तब कहाँ तक स्वहित साधन कर सकता है? उस समय पश्चात्ताप को ज्वाला में जलने के सिवाय और इसकी क्या गति हो सकती है। उस समय वह अपने कर्म को हाथ लगाकर रोएगा-- हाय मैं कुछ नहीं कर सका ? अरे मानी, बुढ़ापा आ गया है और सम्पूर्ण सुधि-बुधि बिसर गयी है।



## ऐसी समझ के सिर धूल



तर्ज : तुमको कैसे सुख है मीत

ऐसी समझ के सिर धूल ।  
धरम उपजन हेत हिंसा, आचरैं अघमूल ॥टेक॥

छके मत-मद पान पीके, रहे मन में फूल ।  
आम चाखन चहैं भोंदू, बोय पेड़ बबूल ॥१॥

देव रागी लालची गुरु, सेय सुखहित भूल ।  
धर्म नग की परख नाहीं, भ्रम हिंडोले झूल ॥२॥

लाभ कारन रतन विराजै, परख को नहिं सूल ।  
करत इहि विधि वणिज 'भूधर', विनस जै है मूल ॥३॥

**अर्थ :** जो कोई धर्म-कार्य हेतु हिंसा का आचरण करता है, जिसने ऐसा किया है, तथा जो इसे उचित समझता है ऐसा आचरण, ऐसी समझ तिरस्कार करने योग्य है, यह तो पाप का मूलकारण है।

मदिरा (शराब) पीकर जो अपने मन में फूले नहीं समा रहे हैं, मदोन्मत हो रहे हैं, उनके परिणाम भले कैसे होंगे? जो आम खाना चाहे और पेड़ बबूल का बोये तो उसको आम कहाँ / कैसे मिलेंगे ? राग-द्वेष से युक्त देवों की, लोभ और लालच से भरे गुरुओं की (अर्थात् जो देव राग-द्वेषसहित हो, जो गुरु लालच और लोभ से भरा हो, उनको) अपने भले के लिए सेवा करना भूल है । इससे स्पष्ट है कि उसे धर्मरूपी रत्न की पहचान नहीं है और भ्रम के झूले में इधर-उधर डोल रहा है। भूधरदासजी कहते हैं धन-लाभ के लिए रत्नों का व्यापार/वाणिज्य किया जाता है, पर जिसे रत्नों की पहचान नहीं है यदि वह व्यापार करेगा तो उसका तो मूल से ही नाश होना निश्चित है । अर्थात् धर्म के सिद्धान्तों को न जानकर विवेकहीन क्रियाओं को धार्मिक क्रिया मानकर करने से हानि ही होगी लाभ नहीं।



## ऐसो श्रावक कुल तुम



ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ॥टेक ॥

कठिन-कठिन कर नरभव भाई, तुम लेखी आसान ।  
धर्म विसारि विषय में राचौ, मानी न गुरु की आन ॥१॥

चक्री एक मतंग जु पायो, तापर ईंधन ढोयो ।  
बिना विवेक बिना मति ही को, पाय सुधा पग धोयो ॥२॥

काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय ।  
बायस देखि उदधि में फैंकयो, फिर पीछे पछताय ॥३॥

सात व्यसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो ।

तीन रतन हिरदे में धारो, आवागमन निवारो ॥४॥

'भूधरदास' कहत भविजन सों, चेतन अब तो सम्हारो ।  
प्रभु को नाम तरन-तारन जपि, कर्म फन्द निरवारो ॥५॥

**अर्थ :** हे श्रावक ! तुमको ऐसा उत्तम श्रावक कुल मिला है, उसे तुम क्यों बेकार। निष्प्रयोजन ही खो रहे हो? यह नरभव पाना अत्यन्त कठिन है, तुम इसे (पाना) इतना सहज समझ बैठे हो! गुरु की शिक्षा को नहीं मान रहे और धर्म को छोड़कर विषयों में रुचि लगा रहे हो! चक्रवर्ती होकर हाथी तो पाया, परन्तु उसका उपयोग ईर्धन ढोने में किया। इसी प्रकार बुद्धिहीन को अमृत मिला, उसने बिना विवेक, बिना बुद्धि के उसका उपयोग पग धोने में किया अर्थात् जो कुछ मिला उसका समुचित उपयोग नहीं किया।

जैसे किसी मूर्ख को चिन्तामणि रत्न मिला, परन्तु उसका महत्त्व नहीं जाना और कौवे को देखकर, उसे उड़ाने हेतु वह रत्न फेंक दिया, वह रत्न समुद्र में जा गिरा तो फिर पछताने लगा।

हे श्रावक ! सात व्यसन और आठ मद का त्याग करो / हृदय में करुणाभाव धारण करो। रत्नत्रय को हृदय में धारण करो अर्थात् रत्नत्रय का भावसहित निर्वाह कर जन्म-मरण से मुक्त हो।

भूधरदास भव्यजनों से कहते हैं कि अरे चेतन ! अब तो अपने को संभालो। प्रभु का नाम ही इस संसार समुद्र से तिराकर उद्धार करनेवाला है, उसको जपकर कर्म-जंजाल से मुक्त होवो।



## और सब थोथी बातें भज



राग : ख्याल

और सब थोथी बातें, भज ले श्रीभगवान ॥टेक ॥  
प्रभु बिन पालक कोइ न तेरा, स्वारथमीत जहान ॥

परवनिता जननी सम गिननी, परधन जान पखान ।  
इन अमलों परमेसुर राजी, भाषैं वेद पुरान ॥  
और सब थोथी बातें, भज ले श्रीभगवान ॥१॥

जिस उर अन्तर बसत निरंतर, नारी औगुन खान ।  
 तहां कहां साहिबका बासा, दो खांडे इक म्यान ॥  
 और सब थोथी बातैं, भज ले श्रीभगवान ॥२॥

यह मत सतगुरु का उर धरना, करना कहिं न गुमान ।  
 'भूधर' भजन न पलक विसरना, मरना मित्र निदान ॥  
 और सब थोथी बातैं, भज ले श्रीभगवान ॥३॥

**अर्थ :** है आत्मन् ! तू भगवान का भजन कर, इसके अतिरिक्त सारे क्रिया-कलाप, सारी बातें सारहीन हैं, निस्सार हैं। इस जगत में प्रभु के अलावा कोई भी तेरा अपना हितकारी मित्र, तेरा निर्वाह करनेवाला, पालनेवाला नहीं है। तू परस्ती को अपनी माता के समान और पराये धन को पाषाण के समान जान। काम और परिग्रह के त्याग के आचरण से परमात्मा की-सी चर्या होती है, ऐसा धर्मग्रन्थों, आगमों, पुराणों में कहा गया है। जिसके हृदय में निरन्तर कामवासना रहती है वह हृदय ही सब दुर्गुणों की खान है अर्थात् कामवासना अवगुणों की खान है। जिसके हृदय में कामवासना रहती है, उसके हृदय में प्रभु का स्मरण नहीं होता। प्रभु की आराधना और कामवासना ये दोनों एकसाथ एक स्थान पर नहीं रह सकते जैसे कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह पातीं।

श्री सतगुरु का यह उपदेश अपने हृदय में धारण कर और उसका कहीं भी, कभी भी अभिमान मत करना। भूधरदास कहते हैं कि मृत्यु तो एक दिन अवश्य आयेगी हो, तू एक पल के लिए भी प्रभु के स्मरण-भजन से च्युत न होना अर्थात् प्रभु विस्मरण मत करना।



## करम गति टारी नाहिं टरे



तर्ज : मूँजी धरी रहे ली पूँजी - रसियां  
 परमगुरु बरसात जान झारी

करम गति टारी नाहिं टरे, करो कोई लाखों उपाया,  
 जंत्र मंत्र तंत्र नहीं लागे, भूलो हि खेद करे।

सेठ सुदर्शन प्रतमा धारी सूली जाहि धरे,

श्रीपाल से शुद्ध समदृष्टि, सागर माँहि परे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥१॥

रावण राय महा अभिमानी, मरत हि नरक पड़े,  
छप्पन कोटि परिवार कृष्ण का, वन में जाय मरे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥२॥

रामचन्द्र तो शिव के गामी, वन वन भ्रमत फिरे,  
सीता नारि सतीन में शिरोमणि, जलती अग्नि परे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥३॥

भरत बाहुबली दोनों भ्राता, कैसे युद्ध करे,  
हनुमान की माता अंजनी, वन में दुख सहे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥३॥

पाण्डव पुत्र अर्जुन की त्रिया, जाको चीर हरे,  
कृष्ण रुक्मणि का सुत प्रदयुम्न, जन्मत देव हरे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥४॥

कित फंदा कित रहत पार धी, कितहुँ मृग चरे,  
कहा जमी को घाटो पड़ गयो, फंद में पाव धरे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥५॥

कहाँ लग साख दीजिये, इनकी लिखत हि ग्रन्थ भरे,  
'भूधर' प्रभु से अरज करतु है, आवा गमन हरे ॥  
करम गति टारी नाहिं टरे ॥६॥



## करुणाष्टक



करुणा ल्यो जिनराज हमारी, करुणा ल्यो ॥टेक॥

अहो जगतगुरु जगपती, परमानंदनिधान ।  
किं कर पर कीजे दया, दीजे अविचल थान ॥१॥

भवदुखसों भयभीत हौं, शिवपदवांछा सार ।  
करो दया मुझ दीनपै, भवबंधन निरवार ॥२॥

पर्यो विषम भवकूप में, हे प्रभु! काढ़ो मोहि ।  
पतितउधारण हो तुम्हीं, फिर-फिर विनऊं तोहि ॥३॥

तुम प्रभु परमदयाल हो, अशरण के आधार ।  
मोहि दुष्ट दुख देत हैं, तुमसों करहुं पुकार ॥४॥

दुःखित देखि दया करै, गाँवपती इक होय ।  
तुम त्रिभुवनपति कर्मतैं, क्यों न छुड़ावो मोय ॥५॥

भव-आताप तबै भुजैं, जब राखो उर धोय ।  
दया-सुधा करि सीयरा, तुम पदपंकज दोय ॥६॥

येहि एक मुझ वीनती, स्वामी! हर संसार ।  
बहुत धज्यो हूँ त्रासतैं, विलख्यो बारंबार ॥७॥

पदमनंदिको अर्थ लैं, अरज करी हितकाज ।  
शरणागत 'भूधर'-तणी, राखौ जगपति लाज ॥८॥

**अर्थ :** हे प्रभु! हमारी ओर करुणा लीजिए अर्थात् हम पर करुणा कीजिए ।

मेरी आकृतता का निवारण हो, आप जगत्पति हैं, जगत के परम गुरु हैं, परम आनंद के आधार हैं । मुझ दास पर कृपाकर मुझे मोक्ष में स्थिति दीजिए।

संसार के दुःखों से भयभीत हूँ, इससे मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न हुई है। मुझ दुखिया पर दया करके मुझे संसार के बंधन से मुक्त कीजिए। मैं इस संसार के कठिन व गहरे कूप में पड़ा हुआ हूँ, मुझे बाहर निकालो।

आप ही पापियों का उद्धार करनेवाले हैं, इसलिए मैं बार-बार आपकी स्तुति करता हूँ, आपका स्मरण करता हूँ । आप परम दयालु हैं । आप अशरण (जिसको कोई शरण नहीं है) उसके लिए भी सहारा हैं, आधार हैं ।

ये दुष्ट कर्म मुझे दुःख दे रहे हैं, इसलिए मैं आपसे पुकार कर रहा हूँ । एक गाँव का स्वामी / राजा भी अपने किसी प्रजाजन की दुःखी देखकर दया करता है तो आप तो त्रिलोक (तीनलोक) के स्वामी हैं, आप मुझे कर्मबंधन से छुटकारा क्यों नहीं दिला सकते?

हृदय से संसार का ताप तब ही मिटेगा जब अन्तर को शीतल, दयारूपी अमृत से धोकर/शुद्धकर उस शान्त पवित्र हृदय में आपको आसीन करूँ, विराजमान करूँ, आपके दोनों चरणकमलों को विराजित करूँ।

आपसे यही विनती है कि मेरे संसार का निवारण करो, मैं दुःखों से त्रस्त हूँ, दग्ध हूँ, दुःखी हूँ, आचार्य पद्मनंदि के करुणाष्टक का आश्रय लेकर मैं अपने लाभ के लिए आपसे अर्ज करता हूँ । मैं भूधरदास आपकी शरण में आया हूँ, हे जगत्पति ! अब मेरी लाज रखिए, मुझ पर करुणा कीजिए।





# काया गागरि जोजरी तुम

राग : श्रीगौरी, ओ री सखी – विरह

काया गागरि, जोझरी, तुम देखो चतुर विचार हो ।  
जैसे कुल्हिया कांचकी, जाके विनसत नाहीं वार हो ॥टेक॥

मांसमयी माटी लई अरु, सानी रुधिर लगाय हो ।  
कीन्हीं करम कुम्हारने, जासों काहूकी न वसाय हो ॥  
काया गागरि, जोझरी, तुम देखो चतुर विचार हो ॥१॥

और कथा याकी सुनौं, यामैं अध उरध दश ठेह हो ।  
जीव सलिल तहाँ थंभ रह्यौ भाई, अद्भुत अचरज येह हो ॥  
काया गागरि, जोझरी, तुम देखो चतुर विचार हो ॥२॥

यासौं ममत निवारकैं, नित रहिये प्रभु अनुकूल हो ।  
'भूधर' ऐसे ख्याल का भाई, पलक भरोसा भूल हो ॥  
काया गागरि, जोझरी, तुम देखो चतुर विचार हो ॥३॥

**अर्थ :** हे चतुर ! जरा विचार करो और देखो यह कायारूपी गागर जर्जित हो रही है, इसकी स्थिति काँच के पात्र को-सी है जिसे नष्ट होने में जरा भी देर नहीं लगती। मांसमयी मिट्टी को रक्त से सानकर कर्मरूपी कुम्हार ने इसे बनाया है जिसमें किसी का भी स्थिर निवास नहीं होता। इसकी एक कथा और सुनो, इसमें ऊपरनीचे दश द्वार हैं जिसमें जीव-जल ठहरा हुआ है, यह एक विचित्र आश्वर्य है ! इससे (काया से) ममता छोड़कर, प्रभु से अनुरूपता करो, उससे मेल करो, उसका चितवन करो। भूधरदास कहते हैं कि शीघ्र ही ऐसा ख्याल (विचार / चिंतन) करो, क्योंकि तनिक सा भी भरोसा करना भूल हो सकती है। अर्थात् शरीर पर भरोसा मत करो।



# गरव नहिं कीजै रे

गरव नहिं कीजै रे, ऐ नर निपट गंवार ॥टेक ॥

झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजै रे ॥१ गरव... ॥

कै छिन सांझ सुहागरु जोबन, कै दिन जगमें जीजै रे ॥२ गरव... ॥

बेगा चेत विलम्ब तजो नर, बंध बढ़े थिति छीजै रे ॥३ गरव... ॥

'भूधर' पलपल हो है भारी, ज्यों ज्यों कमरी भीजै रे ॥४ गरव... ॥

**अर्थ :** मूर्ख मानव, तू अभिमान न कर!

शरीर का अहंकार और ऐश्वर्य का गर्व बिलकुल झूठा है। जिस प्रकार छाया का रूप सुन्दर होकर भी वह झूठा है-- कभी भी स्थिर रहनेवाला नहीं है, उसी प्रकार ऐश्वर्य भी चिर-संगी नहीं है।

ओरे मूर्ख, यह तेरा सौभाग्य और यौवन कितने क्षणों और सन्ध्याओं तक रहनेवाला है? और तू भी कितने दिन तक संसार में जीवित रहेगा? अरे अज्ञानी मानव, अभिमान मत कर!

रे मानव, जब जीवन, यौवन और सौभाग्य कुछ दिनों तक ही स्थिर रहनेवाला है तो तू इनके गर्व में चूर होकर क्यों कर्तव्य भुला रहा है? अरे, अब आलस्य छोड़ दे और तुरन्त ही सावधान हो जा। तू कर्तव्य पालन में जितनी देर करेगा, तेरा संसार उतना ही बढ़ता जाएगा और वर्तमान आयु हीन होती जाएगी। अरे अज्ञानी मानव, अहंकार मत कर!

रे मानव, जिस प्रकार कम्बल ज्यों-ज्यों भीगता जाता है, प्रत्येक क्षण उत्तरोत्तर रूप से भारी होता जाता है, उसी प्रकार तुम अपने कर्तव्य-पालन में जितना हो विलम्ब करोगे तुम्हारे कर्मों का बोझ प्रत्येक क्षण उतना ही दुर्वह होता जाएगा। इसलिए तू अब इस क्षण से हो कर्तव्यनिष्ठ बन जा और एक पल को भी देर न कर। रे अबोधतम मानव, अहंकार मत कर!



# गाफिल हुवा कहाँ तू डोले



राग : भैरवी

गाफिल हुवा कहाँ तू डोले, दिन जाते तेरे भरती में ॥टेक ॥

चोकस करत रहत है नाहीं, ज्यों अंजुलि जल झरती में ।  
तैसे तेरी आयु घटत है, बचै न बिरिया मरती में ॥१॥

कंठ दबै तब नाहिं बनेगो, काज बनाले सरती में ।  
फिर पछताये कुछ नहिं होवै, कूप खुदै नहीं जरती में ॥२॥

मानुष भव तेरा श्रावक कुल, यह कठिन मिला इस धरती में ।  
'भूधर' भवदधि चढ़ नर उतरो, समकित नवका तरती में ॥३॥

**अर्थ :** हे मानव! त बेसुध होकर कहाँ भटक रहा है? तेरी आय के दिन बीतते जाते हैं, चुकते जाते हैं। जैसे अंगुलि में भरा जल यल करने पर भी छिद्रों में से झरता जाता है, ठहरता नहीं है वैसे तेरी आयु भी घटती जाती है और चुक जाती है तो मरण समय आ जाता है, ऐसा विचारकर तू सावधान क्यों नहीं होता!

जब मृत्यु समीप आयेगी तब तू कुछ भी नहीं कर सकेगा। इसलिए समय रहते चेत, अपना कार्य सिद्ध कर। जब आग लग जाय, उस समय कुआँ खोदने से प्रयोजन नहीं सधता। उस समय पछताने से कुछ नहीं बनता।

भूधरदास कहते हैं कि इस पृथ्वी पर, इस कर्मभूमि में तुझे यह दुर्लभ मनुष्यभव और उत्तम श्रावक कुल की प्राप्ति हुई है, अतः सम्यक्त्वरूपी नौका में बैठकर इस संसार-सागर से पार उतरने का यह ही सुअवसर है।



## चरखा चलता नाहीं रे



राग आसावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (रे) ॥

पग खूंटे दो हालन लागे, उर मदरा खखराना ।  
छीदी हुई पांखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना ॥१॥

रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसै खूटै ।  
शब्द-सूत सूधा नहिं निकसे, घड़ी-घड़ी पल-पल टूटै ॥२॥

आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे ।  
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद्य बढ़ई हारे ॥३॥

नया चरखला रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै ।  
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै ॥४॥

मोटा मही कातकर भाई!, कर अपना सुरझेरा ।  
अंत आग में इंर्धन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा ॥५॥

**अर्थ :** इस भजन में कवि ने वृद्धावस्था का वर्णन किया है। इस शरीर को चरखे की उपमा दी गयी है। प्रथम अन्तरे में पग खूंटे अर्थात् 2 पैरों के बारे में लिखा है। जीभ अति लोलुप हो गई है, उसपर कैसे लगाम लगाई जाय; इससे अच्छे शब्द नियलना बंद हो गए हैं, धीरे धीरे यह अपना काम करना बंद कर रही है। अब इसके चलने का कोई भरोसा नहीं रह गया है। इसे वैद्य-हकीमों के द्वारा मरम्मत की प्रतिदिन ज़रूरत पड़ने लगी है। जब ये नया था तब सभी को अच्छा लगता था, सबका मन प्रसन्न करता था। अब यह सबको बुरा लगने लगा है। स्वयं के लिए अधिक समय निकाल कर अपना काम बना लो क्योंकि अंत समय में तो यह आग में ही झोंका जाना है।



# चादर हो गई बहुत

चादर हो गई बहुत पुरानी,  
अब तो सोच समझ अज्ञानी ॥टेक ॥

अजब जुलाहा चादर बुनि है, सूत करम को तानी ।  
पांचों मिलकर रेज़ा कीनों, तब सबके मन आनी ॥१॥

मैले दाग लगे पापन के, विषयन में लिपटानी ।  
ज्ञान दीप का लिए सोधरा, व्रत-तप का ले पानी ॥२॥

भई खराब गई अब सारी, लोभ मोह में सानी ।  
ऐसी ओढ़त उमर गमाई, भली बुरी नहीं जानी ॥३॥

संशय छोड़ जान मन अपने, ये है वस्तु बिरानी ।  
'भूधर' कहिए राख जतन से, फेर ये हाथ ना आनी ॥४॥



# चित्त चेतन की यह विरियां



चित्त! चेतन की यह विरियां रे ॥टेक॥  
उत्तम जन्म सुतन तर्हनापै, सुकृत बेल फल फरियां रे ॥

लहि सत-संगतिसौं सब समझी, करनी खोटी खरियां रे ।  
सुहित संभाल शिथिलता तजिदैं, जाहैं बेली झरियां रे ॥१॥

दल बल चहल महल रूपेका, अर कंचनकी कलियां रे ।  
ऐसी विभव बढ़ी कै बढ़ि है, तेरी गरज क्या सरियां रे ॥२॥

खोय न वीर विषय खल साटैं, ये क्रोड की घरियां रे ।  
तोरि न तनक तगा हित 'भूधर' मुकताफलकी लरियां रे ॥३॥

**अर्थ :** हे चेतन ! जरा चिंतवन करो, यह मनुष्य जन्म एक सुअवसर है, समय है। सुनो, उत्तम जन्म पाया है, यौवन पाया है, जिसमें कुलीनवंश की सन्ततिरूप फल-फूल खिल रहे हैं। जब सयोग से सत्संगति मिली तब ही अपने किए के अच्छे-बुरे की समझ हुई। अपने हित के लिए गोष्ठी, प्रमाद व ढिलाई को तजते ही आत्मीयता के निर्झर फूटने लगते हैं। समाज, बल, आनंद, महल, सम्पत्ति, रूपया, सोने की कलियाँ आदि सभी वैभव निरंतर बढ़ते जावें तो उससे तेरे किस प्रयोजन की सिद्धि होगी! हे वीर पुरुष! तू विषयरूपी खल के बदले करोड़ों रूपये के मूल्य का समय - अनमोल समय मनुष्य-जन्म मत खो अर्थात् दुष्ट विषयों के लिए अपने अनमोल बहुमूल्य समय को मत खो। भूधरदास कहते हैं कि तू धागे के लिए (धागा पाने के लिए) मोती की माला को मत तोड़।



जग में जीवन थोरा रे



जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥टेक ॥

जनम ताड़ तरुतैं पड़ै, फल संसारी जीव ।  
मौत महीमैं आय हैं, और न ठौर सदीव ॥  
जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥१॥

गिर-सिर दिवला जोइया, चहुंदिशि बाजै पौन ।  
बलत अचंभा मानिया, बुझत अचंभा कौन ॥  
जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥२॥

जो छिन जाय सो आयुमैं, निशि दिन ढूकै काल ।  
बाँधि सकै तो है भला, पानी पहिली पाल ॥  
जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥३॥

मनुष देह दुर्लभ्य है, मति चूकै यह दाव ।  
'भूधर' राजुल कंतकी, शरण सिताबी आव ॥  
जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥४॥

**अर्थ :** ओ अज्ञानी ! तू चेत, जाग। इस जगत में यह जीवन बहुत थोड़ा है। यह तेरा जीवन ऊँचे ताड़वृक्ष से गिरे हुए फल की भाँति हैं, मृत्यु होने पर यह मिट्टी में मिल जाता है, इसको अन्यत्र कहीं स्थान नहीं है। जैसे कोई ऊँचे पहाड़ की चोटी पर जहाँ चारों ओर से पवन के झोंके आ रहे हैं, दीपक जलावे और ऐसे में वह दीपक जल रहा हो, यह तो आश्वर्य है, उसके बुझ जाने पर क्या आश्वर्य? इस आयु में जो क्षण बीत जाय, वह ही जीवन है, क्योंकि मृत्यु तो दिन-रात आई खड़ी है। जैसे बरसात के जल-प्लावन (बाढ़ आने) से पूर्व पाल बाँधकर बचाव करते हैं तो ही भला होता है (वैसे ही तुझे मृत्यु आने से

पूर्व अपने बचाव के लिए कुछ करना है तो करले)। यह मनुष्य देह पाना अत्यन्त दुर्लभ है, यह अवसर मत चूक और राजुल के कंत भगवान नेमिनाथ की शरण में शीघ्र ही आ जा।



## जग में श्रद्धानी जीव

जग में श्रद्धानी जीव 'जीवन मुक्त' हैंगे ॥टेक ॥

देव गुरु सांचे मानैं, सांचो धर्म हिये आनैं ।  
ग्रन्थ ते ही सांचे जानैं, जे जिन उक्त हैंगे ॥१॥

जीवन की दया पालैं, झूठ तजि चोरी टालैं ।  
पर-नारी भालैं नैन, जिनके लुक्त हैंगे ॥२॥

जीय मैं सन्तोष धारैं, हियैं समता विचारैं ।  
आगे को न बन्ध पारैं, पाछेसों चुक्त हैंगे ॥३॥

बाहिज क्रिया आराधैं, अन्दर सरूप साधैं ।  
'भूधर' ते मुक्त लाधैं, कहूँ न रुक्त हैंगे ॥  
जग में श्रद्धानी जीव 'जीवन मुक्त' हैंगे ॥४॥

**अर्थ :** इस जगत में जो सम्यकदृष्टि जीव हैं वे निश्चित रूप से जीवन से अर्थात् संसार से मुक्त होंगे; वे मोक्षगामी हैं, भव्य हैं।

जो सच्चे देव, सच्चे गुरु को माने, जो सच्चे धर्म को हृदय में धारण करे, उनको ही सत्य माने व जाने, वे ही उक्त प्रकार के 'जिन' (मोक्षगामी) होंगे।

जो जीवों के प्रति दयाभाव रखे व उसका पालन करे, असत्य-झूठ का त्याग करें, चोरी को टाले अर्थात् उससे दूर रहे,

जिनके नैन पर- नारी पर कुदृष्टि नहीं रखते, जो ऐसा करने से बचते हैं वे ही मोक्षगामी होंगे।  
जो जीवन में संतोष-वृत्ति को धारण करते हैं, हृदय में समताभाव रखते हैं, वे आस्रव को रोककर, संवर धारणकर नवीन कर्मों का बंध नहीं करेंगे तथा पिछले कर्मों की निर्जरा करेंगे वे ही मोक्षगामी होंगे।  
जो बाहिर में निश्चल क्रिया का साधनकर, अंतरंग में अपने स्वरूप का साधन करते हैं, भूधरदास कहते हैं कि वे संसार-समुद्र को अवश्य लाँधुगे, कहीं न रुकेंगे अर्थात् निश्चय से मुक्त होंगे।



## जगत जन जूवा हारि चले



राग : विहाग, धर्म बिन कोई नहीं अपना

जगत जन जूवा हारि चले ॥टेक ॥  
काम कुटिल संग बाजी मांडी उनकरि कपट छले ॥१॥

चार कषायमयी जहँ चौपरि पांसे जोग रले ।  
इतसरबस उत कामिनी कौंडी, इह विधि झटक चले ॥२॥

कूर खिलार विचार न कीन्हों है ख्वार भले ।  
बिना विवेक मनोरथ करके, 'भूधर' सफल फले ॥३॥

**अर्थ :** जगत के लोग जूवा हारकर चले गये ।

काम (कामनाओं) व कुटिलता के साथ बाजी खेली, उनके द्वारा छले गये और बाजी हार गये। नौपाड़ की गार पट्टियाँ कार के समान हैं, पासे योग के समान हैं।

एक ओर तो सर्वस्व है दूसरी ओर कामिनीरूपी कौड़ी है, उस कोड़ी से झटके गये अर्थात् छले गये। ये झूठे खेल खेलते समय तो विचार नहीं करते, अपनी बरबादी कर लेते हैं और फिर दुःखी होते हैं।

भूधरदास कहते हैं कि बिना विवेक किये गये कार्य से किसका मनोरथ सफल हुआ है? अर्थात् किसी का नहीं हुआ। योग - मन-वचन और काय की प्रवृत्ति ! यह प्रवृत्ति बदलती रहती है जैसे चौपड़ के पासे लुकते हुए बदलते रहते हैं।





राग : सारङ्ग

# जपि माला जिनवर

जपि माला जिनवर नाम की ।  
भजन सुधारससों नहिं धोई, सो रसना किस काम की ॥टेक ॥

सुमरन सार और सब मिथ्या, पटतर धूंवा नाम की ।  
विषम कमान समान विषय सुख, काय कोथली चाम की ॥१॥

जैसे चित्र-नाग के मांथै, थिर मूरति चित्राम की ।  
चित आरूढ़ करो प्रभु ऐसे, खोय गुंडी परिनाम की ॥२॥

कर्म बैरि अहनिशि छल जोवैं, सुधि न परत पल जाम की ।  
'भूधर' कैसैं बनत विसारैं, रटना पूरन राम की ॥३॥

**अर्थ :** (हे भव्य!) श्री जिनवर की माला जपो । जिनेन्द्र की भक्ति-स्तवन से जिसने अपनी रसना (जीभ-जिह्वा) को नहीं धोया वह रसना (जीभ) अन्य किस मतलब की है?

जिनेन्द्र का स्मरण ही सारयुक्त है, उनकी तुलना में और सब झूठ है, नाममात्र का है, थोथा है। यह देह चमड़े की थैली है और विषयों के सुखाभास कठोर बाण के समान पीड़ादायक हैं, कष्टदायक हैं।

भित्तिचित्र में चित्रित नाग के सिर पर विराजित भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रशान्त और स्थिर है, उस स्थिर मुद्रा को फल की इच्छा /चिन्तारहित होकर अपने चित्त में आरूढ़ करो और अपना चित्त भी उनके समान स्थिर करो ।

ये कर्म-शत्रु दिन-रात इतना छल रहे हैं कि एक क्षण भी उनका (भगवान पार्श्वनाथ का) स्मरण नहीं होता। भूधरदास कहते हैं कि उसके स्मरण के बिना तेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा अर्थात् उनके जप-स्मरण से ही तेरी सिद्धि होगी।



# जिनराज चरन मन मति बिसरै



राग नट

जिनराज चरन मन मति बिसरै ॥टेक ॥  
को जानै किहिंवार कालकी, धार अचानक आनि परै ॥

देखत दुख भजि जाहिं दशौं दिश पूजन पातकपुंज गिरै ।  
इस संसार क्षारसागरसौं, और न कोई पार करै ॥१॥

इक चित ध्यावत वांछित पावत, आवत मंगल विघ्न टरै ।  
मोहनि धूलि परी माँथे चिर, सिर नावत ततकाल झरै ॥२॥

तबलौं भजन संवार सयानै, जबलौं कफ नहिं कंठ अरै ।  
अगनि प्रवेश भयो घर 'भूधर', खोदत कूप न काज सरै ॥३॥

**अर्थ :** रे मन, तू कभी भी जिनेन्द्र भगवान के चरणों को मत भूल ।  
रे मन किसे मालूम है, कब काल गरजता हुआ आ पहुँचेगा और अचानक ही हमें अपना ग्रास बना लेगा ।

जिनराज के चरण सामान्य चरण नहीं हैं । उनके दर्शन मात्र से समस्त दुःख दसों दिशाओं में भाग जाते हैं और पूजा करने से समस्त पाप-समूह खिर जाते हैं । और कोई ऐसा देव नहीं है, जो प्राणियों को इस संसार-सागर से पार होने का कोई हितकर मार्ग दिखला सके ।

भगवान के चरणों का तन्मयता के साथ ध्यान करने से जो शुभ उपयोग रहता है उससे मन-चिन्तित वस्तु की प्राप्ति होती है, मंगल और आनन्द के प्रसंग आते हैं और समस्त विघ्न-बाधाएँ विलीन हो जाती हैं । इतना ही नहीं, मस्तक पर जो मोह-रज विद्यमान रहती है, वह भी भगवान के चरणों में सिर झुकाते ही तत्काल झर जाती है ।

अरे चतुर जन, जब तक कण्ठ में कफ नहीं अटकता है, बुढ़ापा आकर नहीं धेरता है, तब तक जिनराज की भक्ति के लिए-उनके आदर्श को अपने जीवन में मूर्तमन्त करने के लिए तुझे कटिबद्ध रहना चाहिए । यह विश्वास रख, बुढ़ापे की दयनीय दशा में इतना उत्साह और बल नहीं रहता है कि किसी एक नूतन और कठिन आदर्श को अपनी श्रद्धा, निष्ठा और

व्यवहार का विषय बनाया जा सके। फिर कदाचित् इस ओर प्रवृत्ति की भी जाती है तो उससे लक्ष्य में पूर्ण सफलता नहीं मिल

पाती और इस अवस्था की यह प्रवृत्ति प्रायः इसी प्रकार असफल रहती है जिस प्रकार किसी के घर में आग लगने पर वह कुआँ खोदकर उसे बुझाने का प्रयत्न करे। उस समय न कुआँ ही खुद पाता है, न आग ही बुझ पाती है और न चिर-संचित गृहस्थी की सामग्री ही बच पाती है। यही हाल बुढ़ापे में प्रारम्भ की गयी जिन-भक्ति का है। इस अवस्था में असंस्कृत होने से न वह भक्ति की साधना तक पहुँच पाता है, न उसे शान्ति और निराकुलता मिल पाती है और फलतः जीवन भी यों हो अन्धकार में टटोलते-भटकते निकल जाता है। अतः मन, भक्ति और साधना का अवसर कदापि हाथ से नहीं खोना चाहिए।

रे मन, तू कभी भी भगवान जिनेन्द्र के चरणों को न भूल। किसे मालूम है, काल कब गरजता हुआ आ पहुँचेगा और अचानक ही हमें अपना ग्रास बना लेगा।



## जिनराज ना विसारो मति



राग पंचम

जिनराज ना विसारो, मति जन्म वादि हारो ।  
नर भौ आसान नाहिं, देखो सोच समझ वारो ॥१ टेक ॥

सुत मात तात तरुनी, इनसौं ममत निवारो ।  
सबहीं सगे गरजके, दुखसीर नहिं निहारो ॥२ जिन... ॥

जे खायं लाभ सब मिलि, दुर्गति में तुम सिधारो ।  
नट का कुटंब जैसा यह खेल यों विचारो ॥३ जिन... ॥

नाहक पराये काजै, आपा नरक में पारो ।  
'भूधर' न भूल जगमैं, जाहिर दगा है यारो ॥४ जिन... ॥

**अर्थ :** हे जीव! श्री जिनराज को कभी न भूलो।

अपने जन्म को वृथा / निरर्थक न करो। यह नरभव आसान नहीं है, इसका विवेकपूर्वक उपयोग करो। पुत्र, माता, पिता, स्त्री इनसे ममल्ल छोड़ो। ये सब अपने स्वार्थ के साथी हैं। आपके दुःख व पीड़ा में ये साथी नहीं होते, सहयोगी भी नहीं होते। लाभ के समय सब मिल जाते हैं और दुर्गति में, दुःख में तुम अकेले होते हो। यह कुटुंब नट का-सा खेल है। इस तथ्य पर तनिक विचार करो। व्यर्थ ही दूसरों के कार्यवश स्वयं को नरकगति में डालते हो। भूधरदास कहते हैं कि यह जगत् सरासर/प्रत्यक्षतः एक धोखा है, इस सत्य को तनिक भी मत भूलो।



## जीवदया व्रत तरु बड़ो



जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥टेक॥

कीड़ी कुंजर कुंथुवा, जेते जग-जन्त ।  
आप सरीखे देखिये, करिये नहिं भन्त ॥1॥

जैसे अपने हीयडे, प्यारे निज प्रान ।  
त्यों सबही को लाड़ितो, लिहौ साद जान ॥  
जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥2॥

फांस चुभै टुक देहम, कछु नाहिं सुहाय ।  
त्यों परदुख की वेदना, समझो मन लाय ॥३॥

मन वचसौं अर कायसौं, करिये परकाज ।  
किसहीकों न सताइये, सिखवै रिखिराज ॥

जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥४॥

करुना जग की मायड़ी, धीजै सब कोय ।  
धिग! धिग! निरदय भावना, कंपैं जिय जोय ॥५॥

सब दंसण सब लोय में, सब कालमँझार ।  
यह करनी बहु शंसिये, ऐसो गुणसार ॥  
जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥६॥

निरदै नर भी संस्तुवै, निंदै कोइ नाहिं ।  
पालैं विरले साहसी, धनि वे जगमांहि ॥७॥

पर सुखसौं सुख होय, पर-पीड़ासौं पीर ।  
'भूधर' जो चित्त चाहिये, सोई कर वीर! ॥  
जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥८॥

**अर्थ :** हे भाग्यवान, पुण्यवान जीवो ! जीवों के प्रति दया करना एक विशाल वृक्ष की भाँति है, उसका पालन करना ।

चींटी, हाथी, कुंथु आदि जगत के जितने भी प्राणी हैं, उन्हें आप अपने जैसा प्राणी ही जानिए, उनमें भेद-अन्तर मत कीजिए। जैसे आपको अपने प्राण प्यारे लगते हैं वैसे ही सबको अपने प्राण प्यारे हैं-ऐसा तू निश्चय से जान। तनिक-सी फाँस-काँटा यदि शरीर के किसी भी अंग में चुभ जाय, तो वह असुहावना लगता है। इसीप्रकार दूसरों के, पर के दुःख की वेदना भी अपने मन में समझो, अनुभव करो।

श्री गुरुराज यही शिक्षा देते हैं कि किसी भी जीव को मत सत्ताओ और मन-वचन-काय से अपने से भिन्न अन्यजनों के प्रति दया-भाव रखिए, परोपकार कीजिए, उनके दुःख-निवारण में सहयोगी बनिये। करुणा जगत की माता है, जिस पर सबका भरोसा है। धिक्कार है उस निर्दय भावना को जिसे देखकर जीव सिहर उठता है, कॉप जाता है। सब लोकों में, सभी कालों में और इस संसार के सभी दर्शनों में करुणा के प्रशंसक सराहे जाते हैं। यह गुणों का सार है। निर्दयी पुरुष भी करुणा की स्तुति करते हैं। उसकी निंदा कोई नहीं करता। परन्तु वे बिरले साहसी पुरुष हैं जो इसका

पालन करते हैं, वे जगत में धन्य हैं । भूधरदास कहते हैं कि दूसरे के सुख में सुखी होता है वैसे ही दूसरे के दुःख में पीड़ा का अनुभव करा हे वीर ! तू अपने मन के अनुकूल कार्य कर।



## जै जगपूज परमगुरु नामी

जै जगपूज परमगुरु नामी, पतित उधारन अंतरजामी ।  
दास दुखी, तुम अति उपगारी, सुनिये प्रभु! अरदास हमारी ॥१॥

यह भव घोर समुद्र महा है, भूधर भ्रम-जल-पूर रहा है ।  
अंतर दुख दुःसह बहुतेरे, ते बड़वानल साहिब मेरे ॥२॥

जनम जरा गद मरन जहां है, ये ही प्रबल तरंग तहां है ।  
आवत विपति नदीगन जामें, मोह महान मगर इक तामें ॥३॥

तिस मुख जीव पर्यो दुख पावै, हे जिन! तुम बिन कौन छुड़ावै ।  
अशरन-शरन अनुग्रह कीजे, यह दुख मेटि मुक्ति मुझ दीजे ॥४॥

दीरघ काल गयो विललावै, अब ये सूल सहे नहिं जावै ।  
सुनियत यों जिनशासनमाहीं, पंचम काल परमपद नाहीं ॥५॥

कारन पांच मिलैं जब सारे, तब शिव सेवक जाहिं तुम्हारे ।  
तातैं यह विनती अब मेरी, स्वामी! शरण लई हम तेरी ॥६॥

प्रभु आगैं चितचाह प्रकासौं, भव भव श्रावक-कुल अभिलासौं ।  
भव भव जिन आगम अवगाहौं, भव भव शक्ति शरण की चाहौं ॥७॥

भव भव में सतसंगति पाऊं, भव भव साधन के गुन गाऊं ।  
परनिंदा मुख भूलि न भाखूं, मैत्रीभाव सबन सों राखूं ॥८॥

भव भव अनुभव आत्मकेरा, होहु समाधिमरण नित मेरा ।  
जबलौं जनम जगत में लाधौं, काललबधि बल लहि शिव साधौं ॥९॥

तबलौं ये प्रापति मुझ हूजौ, भक्ति प्रताप मनोरथ पूजौ ।  
प्रभु सब समरथ हम यह लोरैं, 'भूधर' अरज करत कर जोरै ॥१०॥

**अर्थ :** हे परमगुरु ! आप जगत के द्वारा पूज्य हैं, आपका यश चारों ओर फैल रहा है। आप गिरे हुओं का, पतितों का उद्धार करनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, घट-घट के ज्ञाता हैं ।

हम आपके दास बहुत दुखी हैं, आप उपकार करनेवाले हो इसलिए हे प्रभु! अब हमारी अरज सुनिये। यह संसार अत्यन्त विकट समुद्र है, इसमें अनन्तकाल से भव-भ्रमण हो रहा है। मैं इसमें डूब रहा हूँ, इसमें बहुत असहनीय दुःख हैं, वे समुद्र में अग्नि के समान अर्थात् बड़वानल के समान मेरे अन्तर में दहक रहे हैं ।

इस संसाररूपी समुद्र में जन्म, मृत्यु, रोग और बुढ़ापेरूपी ऊँची-ऊँची तरंगें उठ रही हैं, इसमें विपत्तियों की अनेक नदियाँ आकर मिल जाती हैं, उनमें मोहरूपी एक विकराल मगर निवास कर रहा है । उस मगर के मुँह में पड़नेवाला जीव दुःख पाता है, उसे आपके बिना कौन छुड़ा सकता है ?

हे अशरणों के शरण ! जिनमो कोई शरण देनेवाला नहीं मिले, शाता आप ही हैं। मुझ पर कृपा कीजिए और मेरे इस दुख का निवारण कर मुझे मुक्त कराइए। मुझे दुःख से विलाप करते हुए बहुत समय बीत गया, अब यह दुःख, यह पीड़ा सही नहीं जाती।

सुनते हैं कि जैन शासन में इस पंचम काल में यहाँ से मुक्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं होता। वस्तु-स्वभाव, दैव (निमित्त), पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्य .. ये पाँचों कारण मिलें तब आपके सेवक को मुक्ति प्राप्त हो । इसलिए हे स्वामी! अब मेरी आपसे विनती है, हम तेरी शरण में आए हैं।

हे प्रभु! मुझे अब प्रकाश मिला है और मैं चाहता हूँ कि मुझे आगामी भवों में भी श्रावक कुल की ही प्राप्ति हो। जिन-आगम का अध्ययन कर उसकी गहनता की थाह लेता रहूँ और भव-भव में मुझे आपकी शरण मिले।

भव-भव में अच्छी संगति पाऊं और रक्त्रय-साधना करूँ अर्थात् गुणों की महिमा गाऊं, उन्हें अंगीकार करूँ। कभी मेरे मुख से किसी अन्य की निन्दा न हो, मैं सभी जीवों से मैत्री-भाव रखूँ।

जब तक मेरा यह भवचक्र चले मैं भव-भव में निरन्तर अपनी आत्मा का ध्यान करूँ, मेरा सदैव समाधिमरण हो और काललब्धि का योग पाकर, बल पाकर मोक्षमार्ग पर बढ़ता रहूँ अर्थात् साधना में लगा रहूँ । हे प्रभु! जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक मुझे आपकी भक्ति करने का - पूजा करने का मनोरथ प्राप्त हो। भूधरदास हाथ जोड़कर अर्ज करते हैं कि हम सदैव आप समर्थवान का गुणगान गाते रहें।



## तुम जिनवर का गुण गावो



तुम जिनवर का गुण गावो, यह औसर फेर न पावो ।  
मानुष भव जन्म दुहेला, दुर्लभ सत्संगति मेला ॥टेक ॥

यह बात भली बनि आई, भगवान भजो मेरे भाई ।  
पहिले चित चीर सम्हारो, कामादिक कीच उतारो ॥१॥

फिर प्रीत फिटकड़ी दीजे, तब सुमरन रंग रंगीजे ।  
धन जोड भरा जो कूवा, परिवार बढ़े क्या हुआ ॥२॥

हस्ती चढ क्या कर लीना, प्रभु भज्ज बिना घिक् जीना ।  
'भूधर' पैड़ी पग धरिये, तब चढने की सुध करिये ॥३॥



## तुम तरनतारन भवनिवारन



तुम तरनतारन भवनिवारन, भविक-मनआनन्दनो ।  
श्रीनाभिनन्दन जगतवन्दन, आदिनाथ जिनिन्दनो ।  
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पद पूजा करों ।  
कैलाशगिरिपर ऋषभ जिनवर, चरणकमल हृदय धरों ॥१॥

तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली ।  
यह जानकर तुम शरण आयो, कृपा कीजे नाथ जी ।  
तुम चन्द्रवदन सुचन्द्रलक्षण, चन्द्रपुरिपरमेशजू ।  
महासेननन्दन जगतवंदन, चंद्रनाथ जिनेशजू ॥२॥

तुम बालबोधविवेकसागर, भव्यकमलप्रकाशनो ।  
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ।  
तुम तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी ।  
चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवसुन्दरि वरी ॥३॥

इन्द्रादि जन्मस्थान जिनके, करन कनकाचल चढ़े ।  
गंधर्व देवन सुयश गाये, अपसरा मंगल पढ़े ॥  
इहि विधि सुरासर निज नियोगी, सकल सेवाविधि ठही ।  
ते पार्श्व प्रभु मो आस पूरो, चरनसेवक हों सही ॥४॥

तुम ज्ञान रवि अज्ञानतमहर, सेवकन सुख देत हो ।  
मम कुमतिहारन सुमतिकारन, दुरित सब हर लेत हो ।

तुम मोक्षदाता कर्मधाता, दीन जानि दया करो ।  
सिद्धार्थनन्दन जगतवन्दन, महावीर जिनेश्वरो ॥५॥

चौबीस तीर्थकर सुजिनको, नमत सुरनर आयके ।  
मैं शरण आयो हर्ष पायो, जोर कर सिर नायके ॥  
तुम तरनतारन हो प्रभूजी, मोहि पार उतारियो ।  
मैं हीन दीन दयालु प्रभुजी, काज मेरो सारियो ॥६॥

यह अतुलमहिमा सिन्धु साहब, शक्र पार न पावही ।  
तजि हासभय तुम दास 'भूधर', भक्तिवश यश गावही ॥७॥

**अर्थ :** हे जगतवंद्य जिनेन्द्र ! श्री नाभिराय के सुपुत्र श्री आदिनाथ भगवान! आप भवसागर से पार उतारनेवाले, भव -भ्रमण को मिटानेवाले, भव्यजनों के मन को आनंदित करनेवाले हो। हे आदिनाथ ! आपकी सदैव वन्दना करूँ, आपके चरणकमलों की पूजा करूँ ।

कैलाशगिरि पर ऋषभजिनेन्द्र के स्थापित चरण-कमल को मैं अपने हृदयासन पर आसीन करूँ । हे अजितनाथ ! जो जीते न जा सकें ऐसे महाबलशाली आठ कर्मों को आपने जीत लिया - यह जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ । हे स्वामी मुझ पर कृपा कीजिए।

हे चन्द्रप्रभ ! चन्द्रमा के समान शोभित, चन्द्रमा शुभ लांछन है जिनके ऐसे चन्द्रपुरी के नरेश महासेन के सुपुत्र चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! आप जगत के द्वारा वंदनीय हैं ।

हे नेमिनाथ ! आप पापरूपी अंधकार का नाश करने के लिए पवित्र सूर्य हैं, आप अज्ञानियों को बोध कराने के लिए विवेक के सागर हैं और भव्यजनरूपी कमलदल के प्रकाशक हैं । आपने राजकुमारी राजुल (से विवाह) को छोड़कर, कामदेव की सेना को अपने वश में कर लिया और चारित्ररूपी रथ पर चढ़कर दूल्हा बन मोक्षरूपी सुन्दरी का वरण किया।

हे भगवान पार्श्वनाथ ! इन्द्रादि देव जिनेन्द्र के जन्म स्थान से जन्मोत्सव मनाने हेतु सुवर्ण के समान शोभित कनकाचल (सुमेरु पर्वत) पर चढ़े, गंधर्व देवों ने यश-गान किया और अस्राओं ने मंगल-गान किया। इस प्रकार सुर असुर सभी ने मिलकर नियोगवश अपने-अपने योग्य कार्य संपत्र किये। हे पार्श्वनाथ ! मैं तो आपका चरण-सेवक हूँ, मेरी आशा पूरी करो।

हे जगतवंद्य सिद्धार्थसुत श्रीमहावीर जिनेश्वर ! आप अज्ञानरूपी अंधकार को नाश करनेवाले ज्ञानरूपी सूर्य हो, सेवकों को सुख देनेवाले हो, मेरी दुर्मति का नाश करनेवाले हो और सुमति के आधार हो, मुझे दीन जानकर ही मुझ पर दया करो। हे चौबीसों जिनेश ! आपको मनुष्य, देव आदि सभी आकर शीश झुकाते हैं। मैं भी आपकी शरण में आया हूँ । हाथ जोड़कर शीश नमाता हूँ । तुम तारनेवाले हो, मुझे भी इस भवसागर से पार उतारो। मैं शक्तिहीन हूँ, निर्धन हूँ, दीन हूँ । आप दयालु हैं, मेरे सर्व कार्य सिद्ध कीजिए।

हे भगवन् ! आप अतुल महिमा सागर हैं, महिमाधारी हैं। आपकी महिमा-गुणावली का पार इन्द्र भी नहीं पा सकते, तब मेरी सामर्थ्य कहाँ! भूधरदास कहते हैं, मैं लोक-हास्य का भय तजकर, भक्तिवश ही आपका यशगान करने को प्रेरित हुआ हूँ।



# तुम सुनियो साधो मनुवा

तुम सुनियो साधो! मनुवा मेरा ज्ञानी ॥टेक ॥

सत्गुरु भैंटा संसय मैटा, यह नीकै करि जानी ।  
चेतनरूप अनूप हमारा, और उपाधि विरानी ॥१॥

पुदगल भांडा आतम खांडा, यह हिरदै ठहरानी ।  
छीजौ भीजौ कृत्रिम काया, मैं निरभय निरवानी ॥२॥

मैं ही देखौं मैं ही जानौं, मेरी होय निशानी ।  
शबद फरस रस गंध न धारौं, ये बातें विज्ञानी ॥३॥

जो हम चीन्हांसो थिर कीन्हां, हुए सुदृढ़ सरधानी ।  
'भूधर' अब कैसे उतरैया, खड़ग चढ़ा जो पानी ॥४॥

**अर्थ :** हे साधक! सुनो, मेरा मनुआ (आत्मा) ज्ञानवान है। सत्गुरु से भेंट होने के पश्चात् हमारा संशय मिट गया है और हमने यह भली प्रकार से जान लिया है कि हमारा तो मात्र एक चैतन्य स्वरूप है जो निराला है, शेष सभी उपाधियाँ बिरानी हैं, अर्थात् परायी हैं, हमारी नहीं हैं, हमसे भिन्न व अलग हैं।

इस पुद्गल देह में आत्मा 'म्यान में तलवार' की भाँति है, जैसे तलवार व म्यान पृथक्-पृथक् हैं वैसे ही आत्मा व देह पृथक्-पृथक् हैं, ऐसी प्रतीति हृदय में धारण करो।

देह तो कृत्रिम है, बनावटी है, नश्वर है, नष्ट होनेवाली है इसलिए यह देह चाहे नष्ट हो, चाहे भीगे मेरा कुछ नहीं जिंगड़ेगा, मैं पूर्णतः निर्भय हूँ और निर्वाण पाने की क्षमतावाला हूँ।

मैं (आत्मा) ही जानता हूँ, मैं ही देखता हूँ। यह जानना-देखना ही मेरी निशानी है, लक्षण है। ये शब्द-रस-गंध-स्पर्श मेरे (लक्षण, गुण) नहीं हैं; आत्मा इन्हें धारण नहीं करता-यह ज्ञान ही विशिष्ट ज्ञान है, विज्ञान है।

पुद्गल से भिन्न हमने जो वास्तविक रूप में आत्म-परिचय किया है, उसी में एकाग्र होकर, स्थिर होकर, उस ही की दृढ़ श्रद्धा करो। भूधरदास कहते हैं कि जिस प्रकार तलवार पर चढ़ी धार नहीं उतरती उसी प्रकार आत्मा के प्रति श्रद्धा का जो भाव चढ़ा है, दृढ़ हुआ है वह भी नहीं उतरेगा।



## ते गुरु मेरे मन बसो

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज ।  
आप तिरहिं पर तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज ।

मोह महारिपु जानिकैं, छोड्यों सब घर बार ।  
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥१॥

रोग उरग - बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान ।  
कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥२॥

रत्नत्रय निधि उर धरैं, अरु निर्गन्धि त्रिकाल ।  
मार्यो कामखवीस को, स्वामी परम दयाल ॥३॥

पंच महाव्रत आदरें, पांचों समिति समेत ।  
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पद हेत ॥४॥

धर्म धरैं दशलाछनी, भावैं भावन सार ।

सहैं परिषह बीस द्वै, चारित - रतन - भण्डार ॥५॥

जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर ।  
शैल - शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥६॥

पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार ।  
तरुतल निवसै तब यती, बाजै झंझा ब्यार ॥७॥

शीत पड़ै कपि - मद गलैं, दाहै सब वनराय ।  
तालतरंगनी के तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय ॥८॥

इहिं विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों काल मँझार ।  
लागे सहज सरूप मैं, तनसों ममत निवार ॥९॥

पूरब भोग न चिंतवैं, आगम बांछैं नाहिं ।  
चहुँगति के दुःखसों डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं ॥१०॥

रंग महल में पौढ़ते, कोमल सेज विछाय ।  
ते पच्छिम निशि भूमि में, सोवें सँवरि काय ॥११॥

गजचढ़ि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरंग ।  
निरखि - निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ॥१२॥

# वे गुरु चरण जहाँ धैरें, जग में तीरथ जेह । सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' माँगें एह ॥१३॥

**अर्थ :** जो भव्यजनों को इस संसार-समुद्र से पार उतारने के लिए जहाज के समान हैं, उपदेशक हैं, जो स्वयं भी संसार-समुद्र से पार होते हैं व अन्य जनों को भी पार लगाते हैं, ऐसे श्री ऋषिराज मेरे मन में बसें, निवास करें, अर्थात् मेरे ध्यान के केन्द्र बनें।

जिन्होंने मोहरूपी शत्रु को जीतकर, सब घर-बार छोड़ दिया और जो अपने शुद्ध आत्मा का विचार करने हेतु नग्न दिग्म्बर होकर वन में निवास करते हैं ऐसे श्री ऋषिराज मेरे मन में बसें।

यह देह रोगरूपी सर्प की बांबी के समान हैं और विषयभोग भुजंग/भयंकर सर्प के समान हैं। संसार केले के वृक्ष/तने की भाँति निस्सार है, यह जानकर जिन्होंने इन सबको त्याग दिया है, वे गुरु मेरे मन में बसें। (रोगउरगबिल = रोगरूपी सर्प का बिल)

दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन रक्तों को जो हृदय में धारण करने हैं और जो सदैव स्वयं हृदय से निप्रथ्य अर्थात् ग्रंथिविहीन हैं जो अन्तः-बाह्य सब परिग्रहों से दूर हैं, जिनने कामवासना को जीत लिया है और जो परमदयालु हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें। (काम खवीस = काम रूपी राक्षस)

जो अजर, अमर पद यानी मोक्ष की प्राप्ति हेतु पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का सदा पालन करते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो धर्म के दस लक्षणों को धारण करते हैं और बारह भावनाओं को साररूप में अनुभव करते हैं, बाईस परीषहों के त्रास को सहन करते हैं, जो चारित्र के उल्कृष्ट भंडार हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

ज्येष्ठ मास सूर्य की प्रखरता से तप्त होता है, उस समय जलाशयों का जल सूख जाता है, ऐसे समय पर्वत की ऊँची शिखाओं पर जो तप-साधना करते हैं, जिनकी नग्न काया तपन से तप्त होती है, वे गुरु मेरे मन में बसें।

वर्षा ऋतु की सायं-सायं करती डरावनी रातें और तेज बरसात में, जबकि तेज तूफानी हवाएँ चल रही हों, तब पेड़ के नीचे साहसपूर्वक जो निश्चल विराजित रहते हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

शीत के मौसम में जब वानर की चंचलता भी सहम जाती है, कम हो जाती है, वन के सारे वृक्ष ठंड से - पाले से झुलस जाते हैं, उस समय तालाब अथवा नदी के किनारे खड़े रहकर ध्यान में जो लीन होते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो सर्दी, गर्मी, बरसात, तीनों काल में इस प्रकार दुर्द्धर (कठिनाई से धारण किया जानेवाला) तप करते हैं और इस देह से ममता त्यागकर अपने ज्ञानानन्द स्वरूप के चिंतवन में लीन रहते हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

अतीत में भोगे गए भोगों के विषय में जो कभी चिंतन नहीं करते, उन्हें स्मरण नहीं करते, न भविष्य के लिए कोई आकांक्षाएँ संजोते हैं; चारों गतियों के दुखों से जो सदा भयभीत हैं और मोक्ष रूपी लक्ष्मी से जिनको लौ/लगन लगी है, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो कभी राजमहलों की कोमल शैय्या पर सोते थे और अब रात्रि के अंतिम प्रहर में भूमि पर काय (शरीर) को साधकर सोते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो कभी चतुरंगिनी सेनासहित गर्व से हाथी पर चढ़कर चलते थे, वे ईर्या समिति का पालन करते हुए, अपने पाँव देख-भालकर-उठाकर रखते हैं और समस्त जीवों के प्रति करुणा रखते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

वे गुरु जहाँ-जहाँ अपने चरण रखते हैं वे सभी स्थान इस जगत में तीर्थ बन जाते हैं । भूधरदास यही कामना करते हैं कि इन चरणों की धूलि मेरे मस्तक पर चढ़े अर्थात् उन चरणों की रज मेरे मस्तक को लगाऊँ ।



## थांकी कथनी म्हानै प्यारी



राज खाल

थांकी कथनी म्हानै प्यारी लगै जी, प्यारी लगै म्हारी भूल भगै जी ।  
तुम हित हांक बिना हो श्रीगुरु, सूतो जियरो कांई जगै जी ॥

मोहनिधूलि मेलि म्हारे मांथै, तीन रतन म्हारा मोह ठगै जी ।  
तुम पद ढोकत सीस झरी रज, अब ठगको कर नाहिं वगै जी ॥१॥

टूट्यो चिर मिथ्यात महाज्वर, भागां मिल गया वैद्य मगै जी ।  
अन्तर अरुचि मिटी मम आतम, अब अपने निजदर्व पगै जी ॥२॥

भव वन भ्रमत बढ़ी तिसना तिस, क्योंहि बुझै नहिं हियरा दगै जी ।  
'भूधर' गुरु उपदेशामृतरस, शान्तमई आनंद उमगै जी ॥३॥

**अर्थ :** हे भगवन ! आपकी दिव्य-ध्वनि हमको प्रिय लगती है। वह इसलिए प्रिय भी लगती है कि उसको सुनकर हमारी भूल दूर हो जाती है।

तुम्हारे सचेत करनेवाले संबोधन के बिना हे भगवन ! मेरा यह सुप्त ज्ञान कैसे जागृत हो? मेरे मस्तक पर मोह की धूलि (भस्म) डालकर यह मोहनीय कर्म मेरे रत्नत्रय की हानि करता है।

जैसे ही आपके चरणों में नमन करने हेतु शीश झुका कि वह धूल झङ्कर नीचे गिर जाती है और फिर ठग द्वारा लूटने की कोई क्रिया कारगर नहीं हो पाती अथवा अब ठग का हाथ मुझे पकड़ नहीं पाता ।

भाग्य से मझे राह में ही ऐसे चिकित्सक से भेंट हो गई है, जिसके कारण मेरा चिरकाल से चला आ रहा मिथ्यात्व (दृष्टि दोष) का ज्वर मिट गया है। अपने आत्मा की ओर बरती जा रही उपेक्षा, अरुचि अब मिट गई है और अपने निज आत्मद्रव्य में तल्लीनता, एकाग्रता होने लगी है।

भूधरदास कहते हैं कि इस भव-बन में भटकते हुए हृदय तृष्णा (प्यास) से शुष्क हो रहा है वह तृष्णा (प्यास) गुरु-उपदेशरूपी अमृतरस से शान्ति और आनन्द की वृद्धि होने पर शान्त हो जाती है, मिट जाती है।



## देखे देखे जगत के देव



देखे देखे जगत के देव, राग-रिससौं भरे ॥  
काहू के संग कामिनि कोऊ, आयुधवान खरे ॥टेक ॥

अपने औगुन आप ही हो, प्रकट करैं उघरे ।  
तऊ अबूझ न बूझहिं देखो, जन मृग भोर परे ॥१॥

आप भिखारी हैं कि नहीं हो, काके दलिद हरे ।  
चढ़ि पाथरकी नावपै कोई, सुनिये नाहिं तरे ॥२॥

गुन अनन्त जा देवमें औ, ठारह दोष टरे ।  
'भूधर' ता प्रति भावसौं दोऊ, कर निज सीस धरे ॥३॥

**अर्थ :** मैंने जगत के अनेक देव देखे हैं जो राग-द्वेषसहित हैं, किसी के साथ स्त्री है तो कोई शास्त्र धारण किए हुए है। उनके दुर्गुण अपने आप ही प्रकट व प्रकाशित हैं, स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, वे अबूझ हैं अर्थात् पूछने योग्य नहीं, ये बातें

तो सर्वविदित हैं / मृग- समान भोले प्राणी, भोलेपन के कारण उनके चक्कर में पड़ जाते हैं पर भोर होते ही, ज्ञान होते ही सब प्रकट हो जाता है, दिखाई दे जाता हैं। जो स्वयं याचक है, दूसरों से माँगते हैं वे दूसरों के किसी दिव्य के दुःख को कैसे दूर कर सकते हैं? पत्थर की नाव पर बैठकर कोई तैर सका है - यह आज तक नहीं सुना। जिस देव में अनन्त गुण हैं और जो अठारह दोषरहित हैं भूधरदास उन्हें भावसहित हाथ जोड़कर शिरोनति करते हैं, उन्हें मस्तक पर धारण करते हैं।



## देखो भाई आत्मदेव



राग : गौरी

देखो भाई! आत्मदेव बिराजै ॥टेक ॥  
इसही हूठ हाथ देवलमैं, केवलरूपी राजै ॥

अमल उजास जोतिमय जाकी, मुद्रा मंजुल छाजै ।  
मुनिजनपूज अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै ॥१॥

परसंजोग समल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै ।  
जैसे फटिक पखान हेतसों, श्याम अरुन दुति साजै ॥२॥

'सोऽहं' पद समतासो ध्यावत, घटहीमैं प्रभु पाजै ।  
'भूधर' निकट निवास जासुको, गुरु बिन भरम न भाजै ॥३॥

**अर्थ :** हे भाई! आत्मारूपी देव विराज रहे हैं, उन्हें देखो। इस साढ़े तीन हाथ के कायारूपी मन्दिर में कैवल्यरूप धारण करनेवाली शुद्धात्मा सुशोभित है।

सर्वमलरहित, उज्ज्वल ज्योति से प्रकाशित उसकी सुन्दर छवि सुशोभित है। वह अचल और अविनाशी आत्मा मुनिजनों द्वारा पूजनीय है, उसके गुणों का वर्णन करते हुए यह बुद्धि भी लज्जित हो जाती है, हार जाती है। क्योंकि उसके गुण अपार हैं इसलिए उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पारदर्शी स्फटिक पाषाण काले और लाल रंग की आभा के कारण उस रूप ही (काला और लाल) दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार पुद्गल के संयोग से यह निर्मल आत्मा मलसहित दिखाई पड़ता है। परन्तु मूल में उस की शुद्धता नष्ट नहीं होती।

सोऽहं - 'वह मैं हूँ' इस पद का जो समतापूर्वक ध्यान करता है, वह अपने ही भीतर निजात्मा का दर्शन करता है । भूधरदास कहते हैं कि जो अपने में ही, अपने ही निकट रह रहा है, उसकी (उस आत्मा की) पहचान, उसके प्रति भ्रम-निवारण गुरु के उपदेश से ही हो सकता है अन्यथा नहीं।



## अहो बनवासी पिया



राग : काफी होरी

अहो बनवासी पिया तुम क्यों छारी अरज करै राजुल नारी ।  
तुम तो परम दयाल सबन के, सबहिन के हितकारी ॥  
अरज करै राजुल नारी ॥टेक ॥

मो कठिन क्यों भये सजना, कहीये चूक हमारी ।  
तुम बिन एक पलक पिया, मेरे जाय पहर सम भारी ।  
क्यों करि निस दिन भर नेमजी, तुम तौ ममता डारी ॥  
अरज करै राजुल नारी ॥१॥

जैसे रैनि वियोगज चकई तौ बिलपै निस सारी ।  
आसि बांधि अपनी जिय राखै प्रात मिलयो या प्यारी ।  
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुख्यारी ॥  
अरज करै राजुल नारी ॥२॥

अब ही भोग जोग हो बालम देखौ चित्त विचारी ।  
आगै रिषभ देव भी व्याही कच्छ-सुकच्छ कुमारी ।

सोही पंथ गहो पीया पाछै होज्यो संजम धारी ॥  
अरज करै राजुल नारी ॥३॥

जैसे बिरहै नदी मैं व्याकुल उग्रसैन की बारी ।  
धनि धनि समुद्रबिजै के नंदन बूढत पार उतारी ।  
सो ही किरपा करौ हम उपरि 'भूधर' सरण तिहारी ॥  
अरज करै राजुल नारी ॥४॥

**अर्थ :** हे भगवान नेमिनाथ! हे वनवासी पिया, तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया? राजुल (नामकी नारी) आपसे यह अरज करती हैं।

आप तो सभी जीवों के प्रति अत्यन्त दयालु हो, सबका हित करनेवाले हो फिर मेरी ओर हो इतने कठोर क्यों हो गए? कहिए .. क्या हमारी कोई चूक/गलती हो गई है? हे प्रिय ! तुम्हारे बिना एकएक पल का समय भी एक-एक प्रहर के समान भारी/बड़ा लग रहा है, जैसेतैसे सत-दिन बीत रहे हैं।

हे प्रियतम नेमिनाथ ! आपने तो सारी ममता छोड़ दी। चकवी अपने प्रिय के वियोग के कारण रातभर विलाप करती है और आशावान होकर अपने को ढाढ़स देती है कि सुबह होते ही उसका प्यारा चकवा उससे मिल जावेगा। राजुल जी कहती हैं - किन्तु मैं दुखियारी, निराश (जिसे मिलन की आशा नहीं दिखती), बिना सहारे, बिना प्रेम के किस प्रकार जीवनयापन करूँ? हे प्रियतम ! भोग के स्थान पर आपने अभी ही योग धारण कर लिया! जरा चित्त में विचार तो कीजिए ! पूर्व में भगवान ऋषभदेव ने कच्छ व सुकच्छ की कुमारियों के साथ विवाह किया था और उसके पश्चात् ही संयमा धारणकर उस पंथ पर आरूढ़ हुए थे, चले थे।

हे प्रियतम ! आप भी वही मार्ग अपनाते। पहले विवाह करते फिर बाद में संयम धारण करते ! मैं उग्रसैन की पुत्री विरह की नदी में अत्यन्त व्याकुल हूँ।

आप, राजा समुद्रविजय के पुत्र, धन्य हैं, जो दूबते हुए जीवों को भवसागर के पार उतारते हैं। हमारे साथ भी कृपा करो। भूधरदास कहते हैं कि हम आपकी ही शरण में हैं।



## त्रिभुवनगुरु स्वामी

त्रिभुवनगुरु स्वामी जी, करुणानिधि नामी जी ।  
सुनि अंतरजामी, मेरी वीनतीजी ॥१॥



मैं दास तुम्हारा जी, दुखिया बहु भारा जी ।  
दुख मेटनहारा, तुम जादोंपती जी ॥२॥

भरम्यो संसारा जी, चिर विपति-भंडारा जी ।  
कहिं सार न सारे, चहुँगति डोलियो जी ॥३॥

दुख मेरु समाना जी, सुख सरसों दाना जी ।  
अब जान धरि ज्ञान, तराजू तोलिया जी ॥४॥

थावर तन पाया जी, त्रस नाम धराया जी ।  
कृमि कुंथु कहाया, मरि भँवरा हुवा जी ॥५॥

पशुकाया सारी जी, नाना विधि धारी जी ।  
जलचारी थलचारी, उड़न पखेरु हुवा जी ॥६॥

नरकनके माहीं जी, दुख ओर न काहीं जी ।  
अति घोर जहाँ है, सरिता खार की जी ॥७॥

पुनि असुर संघारै जी, निज वैर विचारैं जी ।  
मिलि बांधैं अर मारैं, निरदय नारकी जी ॥८॥

मानुष अवतारै जी, रह्यो गरभमँझारै जी ।  
रटि रोयो जैनमत, वारैं मैं घनों जी ॥९॥

जोवन तन रोगी जी, कै विरह वियोगी जी ।  
फिर भोगी बहुविधि, विरधपनाकी वेदना जी ॥१०॥

सुरपदवी पाई जी, रंभा उर लाई जी ।  
तहाँ देखि पराई, संपति झूरियो जी ॥११॥

माला मुरझानी जी, तब आरति ठानी जी ।  
तिथि पूरन जानी, मरत विसूरियो जी ॥१२॥

यों दुख भवकेरा जी, भुगतो बहुतेरा जी ।  
प्रभु! मेरे कहतै, पार न है कहीं जी ॥१३॥

मिथ्यामदमाता जी, चाही नित साता जी ।  
सुखदाता जगत्राता, तुम जाने नहीं जी ॥१४॥

प्रभु भागनि पाये जी, गुन श्रवन सुहाये जी ।  
तकि आयो अब सेवक की, विपदा हरो जी ॥१५॥

भववास बसेरा जी, फिरि होय न मेरा जी ।

सुख पावै जन तेरा, स्वामी! सो करो जी ॥१६॥

तुम शरनसहाई जी, तुम सज्जनभाई जी ।  
तुम माई तुम्हीं बाप, दया मुझ लीजिये जी ॥१७॥

'भूधर' कर जोरे जी, ठाड़ो प्रभु औरे जी ।  
निजदास निहारो, निरभय कीजिये जी ॥१८॥

**अर्थ :** हे स्वामी ! आप तीन लोक के गुरु हैं, करुणा के सागर हैं, ऐसा आपका यश है। हे सर्वज्ञ ! मेरी विनती सुनो। हे यदुपति भगवान नेमिनाथ ! मैं आपका दास हूँ। मुझ पर दुःखों का बहुत भार है / आप ही दुःख मेटनेवाले हो। यह संसार विपत्तियों का भंडार है, जिसमें मैं भटक रहा हूँ। चारों गतियों में मैं धूम चुका हूँ पर इसमें कहीं भी कोई सार नहीं है। इसमें दुःख सुमेरु पर्वत के समान दीर्घ हैं और सुख सरसों के दाने के समान (लघु/छोटा)। यह अब ज्ञान के द्वारा माप-तौलकर जान लिया है। कभी स्थावर तन पाया और कभी उस कहलाया। कभी कीड़ा, कुंथु (कनखजूरा) कहलाया और कभी मरकर भँवरा हुआ। सब प्रकार के पशु तन अनेक बार धारण किए। मैं कभी जलचर, कभी थलचर और कभी नभचर हुआ। नरक में दुःखों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, वहाँ खार की नदी यानी तीक्ष्ण नदी बहती है। फिर असुर-नारकी अपना वैर विचारकर संहार करते हैं। निर्दय नारकी मिलकर बाँधकर भौति भाँति की यातनाएँ देते हैं। फिर मनुष्य जन्म पाया तत्र माता के गर्भ में रहा। जन्म होते ही मैं बार-बार बहुत रोया। यौवन में विरह व वियोग की अनुभूति व पीड़ा हुई? अनेक प्रकार के भोग-साधन किए पर, फिर वृद्धपने की वेदना भोगनी पड़ी। फिर देव हुआ, देवांगनाओं में रमता रहा और पराई संपत्ति-वैभव को देखकर ईर्ष्यावश दुःखी होता रहा। फिर माला मुरझा गई यानी मृत्युकाल समीप आ गया। शह लानका मन में दुःखी हुआ पर आयु पूरी हो गई और दःखी होकर मरा। इस प्रकार भवभ्रमण के बहुतेरे दुःख भोगे, जिनको कहा नहीं जा सकता, वे अपार हैं / मिथ्यात्व के मद में डूब मैं नित ही सुख की कामना करता रहा। पर सुख के दाता और जगत को दुख से मुक्त करानेवाले आपको मैंने नहीं जाना, नहीं पहचाना। प्रभु! अत्र भाग्य से आपको पाया है, आपके विरदगान (गुणगान) कानों को सुहाने लगे हैं / यह देखकर आपकी शरण में आए हुए इस सेवक की विपदाएँ दूर कीजिए। संसार में मैं कभी पुनः निवास न करूँ, आवागमन न करूँ, ऐसा सुख मिले, ऐसा हो कीजिए। आप शरणागत के शरणदाता हैं, सहायक हैं, सहदय भाई, माता-पिता सब आप हैं, मेरी ओर भी कृपा-दृष्टि कीजिए। भूधरदास हाथ जोड़कर इस ओर खड़ा हुआ है, अपने दास की ओर देखकर, उसे निर्भय कीजिए।



देखो गरब गहेली



देखो गरब-गहेली री हेली ! जादोंपति की नारी ॥टेक॥

कहाँ नेमि नायक निज मुखसौँ, टहल कहै बड़भागी ।  
तहाँ गुमान कियो मतिहीनी, सुनि उर दौसी लागी ॥  
देखो गरब-गहेली री हेली ! जादोंपति की नारी ॥१॥

जाकी चरण धूलि को तरसैं, इन्द्रादिक अनुरागी ।  
ता प्रभुको तन-वसन न पीड़े, हा! हा! परम अभागी ॥  
देखो गरब-गहेली री हेली ! जादोंपति की नारी ॥२॥

कोटि जनम अघभंजन जाके, नामतनी बलि जइये ।  
श्री हरिवंशतिलक तिस सेवा, भाग्य बिना क्यों पइये ॥  
देखो गरब-गहेली री हेली ! जादोंपति की नारी ॥३॥

धनि वह देश धन्य वह धरनी, जग में तीरथ सोई ।  
'भूधर' के प्रभु नेमि नवल निज, चरन धरे जहाँ दोई ॥  
देखो गरब-गहेली री हेली ! जादोंपति की नारी ॥४॥

**अर्थ :** हे सहेली! यदुपति (नेमिनाथ) को नारी की गर्वन्मत्तता को देखो। कहाँ तो उस बुद्धिहीना को यह गर्व था - मैं इतनी भाग्यशाली हूँ कि नेमिनाथ अपने मुख से मुझे सेवा हेतु कहेंगे। पर जब नेमिकुमार का हाल सुना तो उसका हृदय आग सा झुलस उठा।  
उनके तन पर कपड़ों को भी पीड़ा नहीं है अर्थात् वे नग्न दिग्म्बर हो गए। इन्द्रादिक सरीखे भक्त भी जिसकी चरणधूलि के लिए तरसते हैं। हा हा, वह राजुल कितनी अभागिन है।  
हरिवंश-तिलक, श्रेष्ठ, भगवान नेमिनाथ की सेवा-भक्ति का अवसर बिना भाग्य के प्राप्त नहीं होता। ऐसे पापों का नाश करनेवाले के नाम पर करोड़ों जन्मों की बलिहारी है।

भूधरदास कहते हैं कि सुन्दर नेमिकुमार जहाँ अपने दोनों चरण धरते हैं वह देश धन्य है, वह धरती धन्य है, वह स्थान जगत में तीर्थरूप में सुशोभित है।



## नैननि को वान परी



राग : ख्याल

नैननि को वान परी, दरसन की ।  
जिन मुखचन्द चकोर चित मुझ, ऐसी प्रीति करी ॥टेक ॥

और अदेवन के चितवनको अब चित चाह टरी ।  
ज्यों सब धूलि दबै दिशि दिशिकी, लागत मेघझरी ॥१॥

छबि समाय रही लोचनमें, विसरत नाहिं घरी ।  
'भूधर' कह यह टेव रहो थिर, जनम जनम हमरी ॥२॥

**अर्थ :** हे प्रभु! इन नयनों को आपके दर्शन करने की आदत पड़ गई हैं। जैसे चकोर पक्षी चन्द्रमा को देखकर आह्वादित होता है, उसी प्रकार मेरा चित्त आपके दर्शन पाकर मग्न हो जाता है, आपसे ऐसी प्रीति, ऐसा लगाव हो गया है। चित्त में अब अन्य देवों को देखने की, उनके दर्शन को कोई चाह नहीं रह गई है। वह चाह वैसे ही मिट गई, जैसे - चारों ओर उड़ रहे धूल के कण वर्षा होने पर भीगकर दब जाते हैं, नीचे आ जाते हैं। मेरे नयनों में आपकी ही मद्रासमा रही है, भा रही है, एक क्षण के लिए भी उसे भुलाया नहीं जाता। भूधरदास कहते हैं कि हमारी यह आदत जन्म-जन्म तक ऐसी ही स्थिर अर्थात् स्थायी बनी रहे, यही भावना है।



## पारस प्रभु को नाऊँ



पारस प्रभु को नाऊँ, सार सुधारस जगत में ।  
मैं वाकी बलि जाऊँ, अजर अमर पद मूल यह ॥

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै ।  
प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानों मन हरै ।  
तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥१॥

निज मरन देखि अनंग डरप्पो, सरन ढुंढत जग फिर्यो ।  
कोई न राखे चोर प्रभु को, आय पुनि पायनि गिर्यो ।  
यौं हार निज हथियार डारे, पुहुपर्वष्मि स भनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥२॥

प्रभु अंग नील उत्तंग गिरितैं, वानि शुचि सरिता ढली ।  
सो भेदि भ्रमगजदंत पर्वत, ज्ञान सागर मैं रली ।  
नय सप्तभंग तरंग मंडित, पाप-ताप विघ्वंसनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥३॥

चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृंद सुहावने ।  
ढोलै निरन्तर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बनै ।  
यह नीलगिरि के शिखर मानों, मेघझरी लागी घनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥४॥

हीरा जवाहिर खचित्त बहुविधि, हेम आसन राजये ।  
तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन, नील वरन विराजये ।  
यह जटिल वारिज मध्य मानौं, नील-मणिकलिका बनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥५॥

जगजीत मोह महान जोधा, जगत में पटहा दियो।  
सो शुकल ध्यान-कृपानबल जिन, निकट वैरी वश कियो।  
ये बजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचै प्रभु तनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥६॥

छद्मस्थ पद मैं प्रथम दर्शन, ज्ञान चरित आदरे ।  
अब तीन तेई छत्र छलसौं, करत छाया छवि भरे ।  
अति धवल रूप अनूप उन्नत, सोमबिंब प्रभा-हनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥७॥

दुति देखि जाकी चन्द सरमै, तेजसों रवि लाजई ।  
तव प्रभा-मण्डल जोग जग मै, कौन उपमा छाजई ।  
इत्यादि अतुल विभूति मण्डित, सोहिये त्रिभुवन धनी ।  
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥८॥

या अगम महिमा सिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं ।

तजि हासमय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं ।  
 अब होउ भव-भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौ ।  
 कर जोरि यह वरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ।  
 सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥९॥

**अर्थ :** मैं पार्श्व प्रभु को नमन करता हूँ, जो इस जगत में अमृत रस के सार हैं। यह ही जन्म-जरारहित, अमरपद अर्थात् मोक्षपद प्राप्ति का मूल साधन है, इसलिए मैं उनको बलि जाता हूँ अर्थात् उनके प्रति समर्पित हूँ।

**अशोक -** ऊँचा अशोक वृक्ष, पवन के झकोरों के कारण झूमता हुआ सुशोभित हो रहा है मानो प्रभु का सामीप्य पाकर वह प्रमुदित हो रहा है। उसके फूलों के गच्छों पर भ्रमर झूम रहे हैं और गुंजन कर रहे हैं, उनका गुंजन मानो कह रहा है कि ऐसे पापनाशक जगतश्रेष्ठ श्री पावं जिनेन्द्र की जय हो, वे सदा जयवंत रहें।

**पुष्प -** कामदेव अपनी मृत्यु के भय से सारे जगत में शरण के लिए भागता फिरा, परन्तु वह प्रभु की दृष्टि में चोर था इसलिए उसे कहीं शरण नहीं मिली और अन्त में वह अपनी हार स्वीकार कर प्रभु के, आपके चरणों में आ गिरा है। उसने अपने हथियार 'पुष्पशर' प्रभु के चरणों में डाल दिए। यह पुष्प-वृष्टि मानो उसी का प्रतीक है।

**दिव्यधनि -** प्रभु का नीलवर्ण गात ऊँचे पर्वत के समान है जिससे वाणीरूपी पवित्र नदी बह निकली है, जो दंतरूपी पर्वत-खंडों से निकल कर, अशानरूपी हाथी का भेदन-नाश करती हुई ज्ञान के समुद्र में आकर समा जाती है। ऐसे सप्तभंगी तरंगों से शोभित वह वाणी पापरूपी तपन का नाश करनेवाली है।

**चंवर -** चंचल चन्द्र-समूह द्वारा वंदित आपकी सुंदर छवि पर चंवर, जिन्हें 64 यक्षगण निरंतर ढोर रहे हैं, अनुपम है अर्थात् उसकी कोई अन्य उपमा नहीं दी जा सकती, वे ऐसे सुहावने लग रहे हैं मानों नीले पर्वत के शिखर पर सघन मेघ की झरी-निझर प्रपातरूप में बह रही हो।

**सिंहासन -** सुवर्ण के रत्नजड़ित सिंहासन पर जगत-जन के मन को हरनेवाले प्रभु की नील (हरित)-वर्ण देह आसीन है, जो ऐसी सुशोभित हो रही है मानो घने दुरुह बादलों के बीच नीलमणि का एक भाग ही हो।

**दुंदुभि -** मोहरूपी महान योद्धा ने सारे जगत को अपने वश में कर लोक . में अपनी विजय का डंका/नगाड़ा बजा रखा है, सो आपने अपनी शुक्ल ध्यानरूपी खद्ग (तलवार) से उस विकट व समीप रहनेवाले वैरी को सहज ही वश में कर लिया। इसी विजय की सूचना का प्रतीक यह दुंदुभि-वादन है।

**तीन छत्र -** छग्रस्थ अवस्था में ज्ञान और चारित्र के श्रेष्ठ साधन के फलस्वरूप जो केवलज्ञान होते ही तीन छन्त-छाया के प्रयोजन से प्रकट हुए हैं, वे श्वेत सुन्दर व चन्द्रमा की कांति को भी पराजित करनेवाले हैं। **प्रभामण्डल -** सरोवर में पड़ रही आपकी परछाई के समक्ष चन्द्रमा की दयुति (कांति) और सूर्य का तेज भी फीका है, उस प्रभामण्डल के योग्य जगत में कोई अन्य उपमा ही नहीं है। इस प्रकार अनेक अपरिमित विभूतियों से त्रिभुवनधनी, आप सुशोभित हैं।

हे सागरतुल्य स्वामी ! शक्र (इन्द्र) भी आपके गुणों का पार पाने में असमर्थ है। उपहास होने का भय छोड़कर आपका यह दास भक्तिवश आपका यशगान कर रहा है। मैं भूधरदास आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आप भव-भव में मेरे स्वामी रहें और मैं आपका सेवक। प्रस्तुत भजन में तीर्थकर पार्श्वनाथ के अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन किया गया है।



## पुलकन्त नयन चकोर पक्षी



पुलकन्त नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इन्दीवरो ।  
दुर्बुद्धि चकवी बिलख बिछुरी, निविड़ मिथ्यातम हरो ॥  
आनन्द अम्बुज उमगि उछर्यो, अखिल आतम निरदले ।  
जिनवदन पूरनचन्द्र निरखत, सकल मनवांछित फले ॥१॥

मुझ आज आतम भयो पावन, आज विघ्न विनाशियो ।  
संसार सागर नीर निवट्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशियो ॥  
अब भई कमला किंकरी मुझ, उभय भव निर्मल ठये ।  
दुःख जरो दुर्गति वास निवरो, आज नव मंगल भये ॥२॥

मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये ।  
मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष और न पाइये ॥  
कल्याणकाल प्रतक्ष प्रभुको, लखें जो सुर नर घने ।  
तिस समय की आनन्द महिमा, कहत क्यों मुखसों बने ॥३॥

भर नयन निरखे नाथ तुमको, और बांछा ना रही ।  
मन ठठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही ॥  
अब होय, भव-भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये ।  
कर जोर 'भूधरदास' बिनवै, यही वर मोहि दीजिये ॥४॥

**अर्थ :** चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर पक्षी के नेत्र आनन्द से पुलकित हो उठते हैं, उसीप्रकार जिनेन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र को निरखकर सर्वांग आत्मा से प्रस्फुटित आनन्दरूपी कमल खिल उठा है। जैसे चकवे से दुर्बुद्धिरूपी चकवी

अलग हो जाती है, बिछुड़ जाती है, वैसे ही मानो मेरा मिथ्यात्वरूपी गहन अंधकार दूर हो गया है। अब मेरे सब मन-वांछित पूर्ण होंगे।

मेरी आत्मा आज पवित्र हो गयी है, मेरे सब विद्मों का विनाश हो गया है। तत्वों के ज्ञान की अनुभूति होने के कारण संसाररूपी समुद्र का जल चुक गया है, सूख गया है। लक्ष्मी अब दासी हो गई है और इह भव और पर भव निर्मल हुए। दुःख जल गये हैं, नष्ट हो गये हैं और दुर्गति में रहने का अन्त आ गया है। आज नये मंगल हो रहे हैं।

प्रभु की मनोहारी, निरुपम प्रतिमा के दर्शन पाकर रोम-रोम हुलसित हो गया है, मेरे आनन्द का कोई पार नहीं है। जिन मनुष्यों व देवों को प्रभु का कल्याणक प्रत्यक्ष में देखने का सौभाग्य मिला है उनके उस आनन्द का कोई वर्णन नहीं कर सकता।

हे नाथ ! आपके जी भरकर, नैन भरकर दर्शन करने से अब मेरे मन में कोई वांछा शेष नहीं रही। मन के सभी मनोरथ पूर्ण हो गए। मानो दरिद्र को लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई हो। भूधरदास हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे भगवन ! मुझे आपको भक्ति करने का सुयोग जन्म-जन्मातर में (मोक्ष की प्राप्ति तक) मिलता ही रहे। यह ही वर मुझे प्रदान कीजिए।



## प्रभु गुन गाय रै यह



राग ख्याल

प्रभु गुन गाय रै, यह औसर फेर न पाय रे ॥टेक॥

मानुष भव जोग दुहेला, दुर्लभ सतसंगति मेला ।  
सब बात भली बन आई, अरहन्त भजौ रे भाई ॥१॥

पहले चित-चीर संभारो कामादिक मैल उतारो ।  
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रंगीजे ॥२॥

धन जोर भरा जो कूवा, परिवार बढ़ै क्या हूवा ।  
हाथी चढ़ि क्या कर लीया, प्रभु नाम बिना धिक जीया ॥३॥

यह शिक्षा है व्यवहारी, निहचै की साधनहारी ।  
'भूधर' पैड़ी पग धरिये, तब चढ़ने को चित करिये ॥४॥

**अर्थ :** हे मनुष्य! प्रभु के गुण गाओ। मनुष्य भव का यह जो अवसर मिला है यह फिर नहीं मिलेगा। इस मनुष्य भव का मिलना बड़ा दुर्लभ योग है और फिर इसमें सत्संगति का मेल होना तो और भी दुर्लभ है। तुम्हें मनुष्य भव मिला, उत्तम संयोग व सत्संगति मिली, ये सब बातें अच्छी बन गई। अब तुम अरहंत के गुणों का चितवन करो, अरहंत का भजन करो। हे भाई! सबसे पहले अपने चित्तरूपी कपड़े को संभारो, वश में करो; उस पर कामादिक विषयों के जो रंग चढ़ रहे हैं, विषयों की रुचि हो रही है, उसे दूर करो फिर श्रद्धा-भक्तिरूपी फिटकरी से समस्त मैल हटाकर (चित्तरूपी कपड़े को) स्वच्छकर अरहंत के गुण-स्मरण के रंग से रंग दो, भिंगो दो। यदि धन से कुओं भर गया, परिवार की वृद्धि हो गई, तो उससे क्या प्राप्ति हुई? प्रतिष्ठा मिली, हाथी पर चढ़ लिया तो क्या कर लिया? प्रभु का स्मरण नहीं किया, उनका गुण-चिंतवन नहीं किया तो जीवन ही धिक्कार है, हेय है। यह व्यावहारिक उपदेश है परन्तु निश्चय धर्म की साधना में सहायक है। भूधरदास कहते हैं कि निश्चय धर्म की ओर चढ़ने को जी करे तो इस पैड़ी पर पग धरिए अर्थात् इस व्यवहार का, प्रभु-गुणगान का पालन कीजिए।



## बीरा थारी बान परी रे



राग : सोरठ

बीरा! थारी बान परी रे, वरज्यो मानत नाहिं ॥टेक॥

विषय-विनोद महा बुरे रे, दुख दाता सरवंग ।  
तू हटसौं ऐसै रमै रे, दीवे पड़त पतंग ॥  
बीरा! थारी बान परी रे, वरज्यो मानत नाहिं ॥१॥

ये सुख है दिन दोयके रे, फिर दुख की सन्तान ।  
करै कुहाड़ी लेइकै रे, मति मारै पग जानि ॥  
बीरा! थारी बान परी रे, वरज्यो मानत नाहिं ॥२॥

तनक न संकट सहि सके रे! छिनमें होय अधीर ।  
 नरक विपति बहु दोहली रे, कैसे भरि है वीर ॥  
 बीरा! थारी बान परी रे, वरज्यो मानत नाहिं ॥३॥

भव सुपना हो जायेगा रे, करनी रहेगी निदान ।  
 'भूधर' फिर पछतायगा रे, अबही समुझि अजान ॥  
 बीरा! थारी बान परी रे, वरज्यो मानत नाहिं ॥४॥

**अर्थ :** भाई! तेरी आदत बुरी हो गई हैं, तू मना करने पर भी मानता नहीं है। ये विषयों के खेल बहुत बुरे हैं, ये सब तरह से दुःख देनेवाले हैं और तू इनमें ऐसे मस्त हो गया है जैसे दीये (दीपक) को देखकर पतंगा मस्त हो जाता है और उसमें आकर पड़ जाता है, जल जाता है, मर जाता है। ये विषय-सुख दो दिन के हैं, फिर इनका जो परिणाम होगा वह दुःख ही होगा। जरा समझ और अपने ही हाथ में कुल्हाड़ी लेकर अपने पाँव पर ही मत मार। दुःख, वेदना तो तू तनिक भी सहन नहीं कर पाता, क्षणभर में ही विचलित हो जाता है, धैर्यहीन हो जाता है। हे भाई! नरक के दुःख अत्यन्त कठिन, दुःसाध्य, दुःखदायी हैं। उन्हें कैसे सहन करेगा? यह अवसर बीत जाने पर मनुष्य-जीवन एक स्वप्न के समान हो जायेगा और कुछ किए जाने की अभिलाषा ही शेष रह जायगी। भूधरदास कहते हैं कि अरे अज्ञानी, अब भी समझ अन्यथा तुझे पछताना पड़ेगा।



## भगवंत भजन क्यों

भगवंत भजन क्यों भूला रे ।  
 यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि बबूला रे ॥टेक॥



इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण पूला रे ।  
 काल कुदार लिए सिर ठाड़ा, क्या समुझै मन फूला रे ॥

भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥१॥

स्वारथ साधै पांच पांव तू, परमारथ को लूला रे ।  
कहूं कैसे सुख पावे प्राणी, काम करे दुख मूला रे ॥  
भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥२॥

मोह-पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर-कंधवसूला रे ।  
भज श्री राजमतीवर 'भूधर', दो दुर्मति सिर धूला रे ॥  
भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव! भगवान के भजन गाना, गुणगान-स्मरण करना क्यों भूल गया रे?

यह संसार रात्रि के स्वप्न की भाँति (अस्पिर) है, और तन व धन पानी में उठे बबूले की भाँति (क्षणिक) हैं। इस जीवन का क्या भरोसा है, इसका अस्तित्व अग्नि में पड़े तिनकों के ढेर के समान है। मृत्यु सदैव मस्तक ऊँचा किए समुख खड़ी हुई है। (ऐसे में) तू क्या समझकर अपने मन ही मन में फूल रहा है?

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए तू पाँच पाँव चलता है अर्थात् उद्यम करता है। किन्तु परमार्थ (स्वभाव-चिंतन) के लिए अपने को असमर्थ / पंगु मान रहा है। हे प्राणी! तू काम तो दुःख उपजाने के करता है तो तुझे सुख की प्राप्ति कैसे हो?

मोहरूपी पिशाच कंधे पर वसूला (बद्रई का एक औजार) रखकर तेरी मति भ्रष्ट कर रहा है, तुझे छल रहा है अर्थात् तू मोहवश पथभ्रष्ट हो रहा है। भूधरदास ! तू राजुल के पति भगवान श्री नेमिनाथ का स्मरण कर, उनका भजन कर और दुर्मति के सिर पर धूल मार अर्थात् अविवेकी मति को छोड़।



**भलो चेत्यो वीर नर**



राज गौरव

भलो चेत्यो वीर नर तू, भलो चेत्यो वीर ।

समुद्दिष्ट प्रभुके शरण आयो, मिल्यो ज्ञान वजीर ॥टेक ॥

जगतमें यह जन्म हीरा, फिर कहाँ थो धीर ।  
भलीवार विचार छांड्यो, कुमति कामिनी सीर ॥१॥

धन्य धन्य दयाल श्रीगुरु सुमरि गुणगंभीर ।  
नरक परतैं राखि लीनों, बहुत कीनी भीर ॥२॥

भक्ति नौका लही भागनि, कितक भवदधि नीर ।  
ढील अब क्यों करत 'भूधर', पहुँच पैली तीर ॥३॥

**अर्थ :** हे वीर पुरुष ! तू चेत गया है, यह उचित ही हैं। तू सोच-समझकर स्थिर चित्त से प्रभु की शरण आया है, जहाँ तुझे ज्ञानरूपी मंत्री (प्रमुख सलाहकार व सहायक) मिला है। यह मनुष्य जन्म इस जगत में हीरा के समान है, हीरा-तुल्य है, यह जानकर फिर कोई धैर्य कैसे रखे? इस प्रकार सम्यक विचार आते ही कुमतिरूपी स्त्री से संबंध ढीले हो गए हैं/ छोड़ दिये हैं।

अब श्री गुरु के गहन गुणों का स्मरण करके धन्य हो गया। बहुत कष्टों को सहन करने के पश्चात् पर-रूप नरक से अलग स्वात्मबोधि को प्राप्त हुआ अर्थात् तुझे भेद-ज्ञान हुआ है। भाग्यवश यह भक्ति नौका प्राप्त हुई है, तो संसार-समुद्र कितना गहरा है? अन्न इसका क्या विचार ! अब इससे क्या प्रयोजन ! अर्थात् अब संसार-समुद्र अधिक गहरा नहीं रह गया है। भूधरदास कहते हैं कि अब देर मत कर, प्रमाद मत कर और इस साधन से भवसागर के उस पार पहुँच जा।



## भवि देखि छबी भगवान



राग सारङ्ग

भवि देखि छबी भगवान की ।  
सुन्दर सहज सोम आनन्दमय, दाता परम कल्यान की ॥टेक ॥

नासादृष्टि मुदित मुखवारिज, सीमा सब उपमान की ।  
अंग अडोल अचल आसन दिढ़, वही दशा निज ध्यान की ॥  
भवि देखि छबी भगवान की ॥१॥

इस जोगासन जोगरीतिसौं, सिद्धि भई शिवथान की ।  
ऐसें प्रगट दिखावै मारग, मुद्रा धात पखान की ॥  
भवि देखि छबी भगवान की ॥२॥

जिस देखें देखन अभिलाषा, रहत न रंचक आन की ।  
तृप्त होत 'भूधर' जो अब ये, अंजुलि अम्रतपान की ॥  
भवि देखि छबी भगवान की ॥३॥

**अर्थ :** ओह ! (आज) भगवान की भव्य छवि के दर्शन किए जो सुन्दर है, सहज है, सौम्य व आनन्दमय है तथा जो परम कल्याण की दाता (देनेवाली) है ।

भगवान की वह छवि प्रसत्र मुद्रायुक्त है, मुखकमल प्रफुल्लित है, नासा-दृष्टि है, वह सब उपमानों से अधिक श्रेष्ठ है उपमानों की चरम स्थिति है । वह छवि अडोल, स्थिर, अचल व दृढ़ आसन है यह ही तो निज-मग्न होने की स्थिति होती है ।

इसी प्रकार के आसन से, योग-पद्धति से मोक्ष की उपलब्धि होती है । धातु और पाषाण की मूर्तियाँ उस मुद्रा (उस मार्ग) को प्रत्यक्ष बता रही हैं, दिखा रही हैं ।

जिसको देखने के पश्चात् किसी अन्य को देखने की अभिलाषा शेष नहीं रहती । भूधरदास कहते हैं कि ऐसे अमृत को अंजुलिपान करने से (दर्शन करने से) परम-तृप्ति का अनुभव होता है ।



मन मूरख पंथी उस मारग



मन मूरख पंथी, उस मारग मति जाय रे ॥टेक ॥  
कामिनि तन कांतार जहाँ है, कुच परवत दुखदाय रे ॥

काम किरात बसै तिह थानक, सरवस लेत छिनाय रे ।  
खाय खता कीचक से बैठे, अरु रावनसे राय रे ॥  
मन मूरख पंथी, उस मारग मति जाय रे ॥१॥

और अनेक लुटे इस पैँडे, वरनैं कौन बढ़ाय रे ।  
वरजत हों वरज्यौ रह भाई, जानि दगा मति खाय रे ॥  
मन मूरख पंथी, उस मारग मति जाय रे ॥२॥

सुगुरु दयाल दया करि 'भूधर', सीख कहत समझाय रे ।  
आगै जो भावै करि सोई, दीनी बात जताय रे ॥  
मन मूरख पंथी, उस मारग मति जाय रे ॥३॥

**अर्थ :** ओ मन! ओ कुमार्ग पर चलनेवाले मूर्ख, तू कामवासना के पथ पर मत जा।

नारी-शरीररूपी जंगल में नारी-शरीर का सौन्दर्य (स्तन) पर्वत के समान महान दुःखदायी है ! अर्थात् शारीरिक सौन्दर्यरूपी जंगल में पर्वतरूपी अनेक कष्ट हैं। कामरूपी किरात (भील) राक्षस जिसके हृदय में बसता है, वह उसका सर्वस्व छीन लेता है।

कीचक और रावण राजा होते हुए भी ऐसी गलती कर बैठे और फिर उसका दुखद परिणाम भुगते और भी अनेक जन इस वन में कैसे अपना सर्वस्व लुटा बैठे उसका वर्णन कौन करे? तू उससे बच रहा है अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है तो बचा हुआ ही रह, जान-बूझकर तू धोखा मत खाना।

भूधरदास कहते हैं कि दयालु सुगुरु दया करके यह सीख दे रहे हैं, समझा रहे हैं। आगे तेरी समझ में आवे जो कर, तुझे जो बात बतानी थी वह बता दी है कि तू उस पथ पर मत जा।





राग : कामळी

# मन हंस हमारी लै शिक्षा

मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ।  
श्री भगवान चरन पिंजरे वसि, तजि विषयनि की यारी ॥टेक ॥

कुमति कागली सौं मति राचो, ना वह जात तिहारी ।  
कीजै प्रीत सुमति हंसी सौं, बुध हंसन की घ्यारी ॥  
मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ॥१॥

काहे को सोवत भव झीलर, दुःखजल पूरित खारी ।  
निजबल पंख पसारि उड़ो किन, हो शिव सरकर चारी ॥  
मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ॥२॥

गुरु के वचन विमल मोती चुन, क्यों निजवान विसारी ।  
है है सुखी सीख सधी राखें, 'भूधर' भूलैं ख्वारी ॥  
मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ॥३॥

**अर्थ :** हे हंसरूपी मन, हे हंस के समान मन, हमारी हितकारी शिक्षा ले। तू विषय-कषाय की रुचि छोड़ दे और प्रभु के चरणकमलरूपी पिंजरे में अपना निवास कर, अर्थात् भगवान के श्रीचरणों में मन लगा, उन्हीं में रम जा। जैसे पक्षी पिंजरे से बाहर नहीं आता, उसी प्रकार तू चरण कमल के अलावा अन्यत्र अपना ध्यान न लगा।  
हे हंस ! कुमति - कौवे की भाँति हैं, वह तेरी जाति की नहीं है, उसमें अपना मन मत लगा। तू सुमतिरूपी हंसिनी से प्रीति कर जो ज्ञानो हंसों के मन को भाती है, घ्यारी लगती है। तू इस भवरूपी झील में, जो दुःखरूपी खारे जल से भरी है, क्यों पड़ा है? तू तो मुक्तिरूपी सरोवर का निवासी हैं, तू अपने पंख पसारकर अपने पुरुषार्थ से उड़कर वहाँ क्यों नहीं जाता ?  
हे हंस ! तू सदगुरु के पवित्र उपदेश के वचनरूपी मोती चुन / उन्हें न चुनकर तू अपना मोती चुगने का स्वभाव क्यों छोड़

रहा है। (मोती चुगना हंस का स्वभाव है)। भूधरदास कहते हैं - तू इस सीख को ध्यान में रखे तो तेरे सारे दुख मिट जायेंगे, समाप्त हो जायेंगे।



## मेरे चारौं शरन सहाई

मेरे चारौं शरन सहाई ॥टेक ॥

जैसे जलधि परत वायसकौं, बोहिथ एक उपाई ॥टेक ॥

प्रथम शरन अरहन्त चरनकी, सुरनर पूजत पाई ।  
दुतिय शरन श्रीसिद्धनकेरी, लोक-तिलक-पुर राई ॥  
मेरे चारौं शरन सहाई ॥१॥

तीजे सरन सर्व साधुनिकी, नगन दिगम्बर-काई ।  
चौथे धर्म, अहिंसा रूपी, सुरग मुकति सुखदाई ॥  
मेरे चारौं शरन सहाई ॥२॥

दुरगति परत सुजन परिजनपै, जीव न राख्यो जाई ।  
'भूधर' सत्य भरोसो इनको, ये ही लेहिं बचाई ॥  
मेरे चारौं शरन सहाई ॥३॥

**अर्थ :** (जगत में) ये चार ही मेरे सहायक हैं, उपकारी हैं, मुझे इनकी ही शरण है। जैसे समुद्र के मध्य उड़ते हुए पक्षी के लिए जहाज के अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं होता, वैसे ही इस संसार-समुद्र में इन चारों के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई सहायक नहीं है जिनकी मैं शरण जा सकूँ ।

पहली शरण मुझे अरहंत के चरणों में है, जिनकी पूजा देव व मनुष्य करते हैं। दूसरी शरण मुझे सिद्ध प्रभु की है, जो लोक के उन्नत भाल पर अर्थात् लोकाग्र में तिलक के समान स्थित सिद्धशिला पर राजा को भौति आसीन हैं।

तीसरी शरण मुझे उन सर्व साधुजनों की है, जो नग्न-दिगम्बररूप में सशोभित हैं। चौथी शरण मझे उस अहिंसा-धर्म की है जो स्वर्ग व मुक्ति के सुख का दाता है।

दुर्गति / कष्ट आ पड़ने पर स्वजन- परिजन कोई भी जीव को नहीं रखता। उस समय ये चारों हो उसके लिए शरण होते हैं। भूधरदास कहते हैं कि सचमुच ऐसे क्षणों में मुझे इन्हों चारों का भरोसा है। ये ही मुझे इस भवसागर से बचाने में समर्थ हैं।



## मेरे मन सूवा जिनपद



राग सौरठ

मेरे मन सूवा, जिनपद पिंजरे वसि, यार लाव न बार रे ॥टेक॥

संसार सेमलवृक्ष सेवत, गयो काल अपार रे ।  
विषय फल तिस तोड़ि चाखे, कहा देख्यौ सार रे ॥१॥

तू क्यों निचिन्तो सदा तोकों, तकत काल मंजार रे ।  
दाबै अचानक आन तब तुझे, कौन लेय उबार रे ॥२॥

तू फंस्यो कर्म कुफन्द भाई, छूटै कौन प्रकार रे ।  
तैं मोह-पंछी-वधक-विद्या, लखी नाहिं गंवार रे ॥३॥

है अजौं एक उपाय 'भूधर', छूटै जो नर धार रे ।  
रटि नाम राजुल-रमन को, पशुबंध छोड़न हार रे ॥४॥

**अर्थ :** तोते के समान चंचल ऐ मेरे मन! तू जिनेन्द्र के चरणकमलरूपी पिंजरे में हो निवास कर, उससे बाहर मत आ। बाहर तो इस संसाररूपी सेमल वृक्ष की सेवा -संभाल करते-करते बहुत काल व्यतीत कर दिया, जिसके

विषयरूपी फलों को तोड़कर चखने पर उसमें कुछ भी रस-सार नहीं दीखा।

काल (मृत्यु) की दृष्टि सदैव तुझ पर है, उसके बीच तू क्यों व कैसे निश्चित हो रहा है? वह अचानक ही आकर जब तुझे दबोचेगा, तो कोई भी तुझे उससे छुटकारा नहीं दिला सकेगा।

तू मोहवश निरर्थक व छोटे कर्मों के जाल में उस मूर्ख-नादान पंछी की भाँति फँस रहा है, तुझको कालरूपी शिकारी की चाल व मारक विद्या का बोध ही नहीं है, तब तू कैसे उससे छूटेगा?

हे नर! संसाररूपी जाल से छूटने का एक ही उपाय है। भूधरदास उसे बतलाते हुए कह रहे हैं कि राजुलरमन भगवान नेमिनाथ के नाम का स्मरण कर, जो बंध से जकड़े पशुओं का भी उद्धार करनेवाले हैं।



## म्हें तो थांकी आज महिमा



राग : ख्याल बरवा

म्हें तो थांकी आज महिमा जानी, अब लों नहिं उर आनी ॥टेक॥

काहे को भर बामें अमो, क्यों होतो दुखदानी ॥१॥

नाम-प्रताप तिरे अंजन से, कीचक से अभिमानी ॥२॥

ऐसी साख बहुत सुनियत है, जैनपुराण बखानी ॥३॥

'भूधर' को सेवा वर दीजै, मैं जाचक तुम दानी ॥४॥

**अर्थ :** हे भगवन ! हमने आज आपकी महिमा (विशेषता, विरुद्धावली) जानी, अब तक ये बात (महिमा) हमारे हृदय में नहीं आई थी। यदि आपकी महिमा / विशेषता / गुणों को पहले जान लेते तो हम क्यों अब तक भव- भ्रमण करते? क्यों संसार में रुलते और क्यों दुःखी होते? आपके नाम-स्मरण से अंजन चोर व कीचक जैसे अभिमानी भी तिर गए। आपकी ऐसी साख जैन पुराणों में बहुत वर्णित है, बहुत कही गई है, वह हमने भी बहुत सुनी है। भूधरदास कहते हैं कि मैं याचक हूँ और आप हैं दानी अतः मुझको आपकी सेवा करने का वर अवसर दीजिए।



## यह तन जंगम रूखड़ा



चाल : गोपीचन्द

यह तन जंगम रूखड़ा, सुनियो भवि प्रानी ।

एक बूँद इस बीच है, कछु बात न छानी ॥टेक॥

गरभ खेत में मास नौ, निजरूप दुराया ।  
बाल अंकुरा बढ़ गया, तब नजरों आया ॥१॥

अस्थिरसा भीतर भया, जानै सब कोई ।  
चाम त्वचा ऊपर चढ़ी, देखो सब लोई ॥२॥

अधो अंग जिस पेड़ है, लख लेहु सयाना ।  
भुज शाखा दल आँगुरी, दृग फूल रवाँना ॥३॥

वनिता वेलि सुहावनी, आलिंगन कीया ।  
पुत्रादिक पंछी तहां, उड़ि वासा लिया ॥४॥

निरख विरख बहु सोहना, सबके मनमाना ।  
स्वजन लोग छाया तकी, निज स्वारथ जाना ॥५॥

काम भोग फलसों फला, मन देखि लुभाया ।  
चाखत के मीठे लगे, पीछें पछताया ॥६॥

जरादि बलसों छवि घटी, किसही न सुहाया ।  
काल अगनि जब लहलही, तब खोज न पाया ॥७॥

यह मानुष द्रुमकी दशा, हिरदै धरि लीजे ।  
ज्यों हूवा त्यों जाय है, कछु जतन करीजे ॥८॥

धर्म सलिलसों सींचिकै, तप धूप दिखइये ।  
सुरग मोक्ष फल तब लगैं, 'भूधर' सुख पइये ॥९॥

**अर्थ :** हे भव्यजनो! सुनो, यह देह एक अस्थायी वृक्ष है, इस देह में एक आत्मा निवास करती है, यह बात किसी से भी छिपी हुई नहीं है।

माता के गर्भाशय में नौ महीने रहा और अपने स्वरूप को छिपाया। बालक अंकुर जब बढ़ने लगा, तब लोगों की दृष्टि में आया।

भीतर में सब कुछ अस्थिर-सा था, ये सब कोई जानते थे, जब ऊपर चमड़ी बनी तब फिर सबने देखी। ये अंग वृक्ष के समान हैं।

हे सयाने ! तू देख - हाथ दोनों शाखाएँ हैं, अंगुलियाँ पत्तों के समान हैं और आँखें पुष्प सी रमणीय हैं। स्त्री बेल के समान सुहावनी लगती है, उसका आलिंगन किया जाता है और जिनने गर्भ में आकर जन्म लिया है वे पुत्रादिक पक्षीरूप हैं। जब उस वृक्ष को देखा तो सुहावना लगा, सबके मन को अच्छा लगा। स्वजन अपने स्वार्थ के कारण उसकी छाया में आते हैं।

काम-भोगरूपी फलों के बीच बढ़ते हुए, मन उसी में लुब्ध हो गया। उसके फल चखने में मीठे लगे, परन्तु पीछे पछताना पड़ा।

रोगादि से बल घटा, रूप बिगड़ा, फिर वह (देहावृक्ष) किसी को भी अच्छा नहीं लगने लगा और तभी मृत्यु की आग दहक उठी और वह उसमें समा गया, उसका पता भी शेष न रहा।

इस मनुष्यरूपी वृक्ष की यह ही दशा है, इस बात को हृदय में धारण कर लीजिए, समझ लीजिए। जो हो चुका वह हो चुका, अब आगे के लिए कुछ यत्न कर लीजिए।

धर्मरूपी जल से सींचकर संयम की, तप की धूप दिखाइए अर्थात् उनका पालन कीजिए। भूधरदास कहते हैं कि स्वर्ग और मोक्षरूपी फल मिलें तब ही सुख की प्राप्ति होगी।



## वीर हिमाचल तें निकसी



मत्स्यांद स्वैया

वीर-हिमाचल तें निकसी, गुरु-गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है ।

मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है ॥१॥

ज्ञान-पयोनिधि माँहि रली, बहुभंग-तरंगनि सौं उछरी है ।  
ता शुचि-शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजलि करि शीश धरी है ॥२॥

या जग-मन्दिर में अनिवार, अज्ञान-अंधेर छ्यौ अति भारी ।  
श्रीजिन की धुनि दीपशिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥३॥

तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते? रहते अविचारी ।  
या विधि सन्त कहैं धनि हैं, धनि हैं, जिन-बैन बड़े उपकारी ॥४॥

**अर्थ :** जो भगवान महावीररूपी हिमालय पर्वत से निकली है, गौतम गणधर के मुखरूपी कुण्ड में ढली है, मोहरूपी विशाल पर्वतों का भेदन करती चल रही है, जगत् की अज्ञानरूपी गर्भों को दूर कर रही है, ज्ञानसमुद्र में मिल गई है और जिसमें भंगों रूपी बहुत तरंगें उछल रही हैं; उस जिनवाणीरूपी पवित्र गंगा नदी को मैं हाथ जोड़कर और शीश झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि अहो ! इस संसाररूपी भवन में अज्ञानरूपी अत्यधिक घना अन्धकार छाया हुआ है । उसमें यदि यह प्रकाश करने वाली जिनवाणीरूपी दीपशिखा नहीं होती तो हम वस्तु का स्वरूप किस प्रकार समझते, भेदज्ञान कैसे प्राप्त करते ? तथा इसके बिना तो हम अविचारी -- अज्ञानी ही रह जाते । अहो ! धन्य है !! धन्य है !! जिनवचन परम उपकारक है ।



## वे कोई अजब तमासा



तर्ज : वे सब तो सोणिया

वे कोई अजब तमासा देख्या बीच जहान वे  
जोर तमासा सुपने का सा ॥टेक ॥

एकौ के घर मंगल गावै, पूर्णी मन की आसा ।  
एक वियोग मरे बहु रोवें, भरि-भरि नैन निरासा ॥  
वे कोई अजब तमासा देख्या बीच जहान वे ॥१॥

तेज तुरंगनि पै चढ़ि चलते, पहिरे मलमल खासा ।  
एक भये नागे अति डोलैं ना कोई देय दिलासा ॥  
वे कोई अजब तमासा देख्या बीच जहान वे ॥२॥

तरकैं राजतखत पर बैठा, या खुशवक्तर खुलासा ।  
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीनो बासा ॥  
वे कोई अजब तमासा देख्या बीच जहान वे ॥३॥

तन धन अथिर निहायत, जगमें पानी माहिं पतासा ।  
'भूधर' इनका गरव करें जे धिक तिनका जनमासा ॥  
वे कोई अजब तमासा देख्या बीच जहान वे ॥४॥

**अर्थ :** अरे, इस संसार में एक अजब तमाशा देखा, जो सपने की भाँति हैं ।

एक के घर मनोवांछा पूर्ण होती है, मंगल गीत गाए जाते हैं और दूसरे के घर वियोग होता है तो रुदन होता है, उनकी आँखों में निराशा दिखाई देती है।

एक (व्यक्ति) तेज धोड़े पर, अच्छी मखमली पोशाक पहिने चलता है, तो दूसरा निर्धन होकर नग्र चूमता है, उसको कोई किसी प्रकार की सांत्वना, सहारा या ढाढ़स नहीं देता।

एक व्यक्ति प्रातःकाल राजसिंहासन पर आसीन था, उस समय अत्यन्त खुश था । दोपहर होते ही वह घड़ी आ गई कि उसको सब वैभव छोड़कर जंगल में रहने को विवश होना पड़ा।

इस जगत में तन- धन आदि सब जल में बतासे की भाँति है, इन पर जो कोई गर्व करता है, उसका जन्म धिक्कार है, तिरस्कृत हैं।



# वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी



राग : मलार

वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी  
साधु दिग्म्बर, नग्न निरम्बर, संवर भूषण धारी ॥टेक ॥

कंचन-काँच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ।  
महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ॥  
वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी ॥१॥

सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी ।  
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥  
वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी ॥२॥

जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी ।  
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ॥  
वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी ॥३॥

**अर्थ :** वे मुनिवर जो उपकार करनेवाले हैं वे मिलें, उनके दर्शन हों - ऐसा सुयोग कब होगा! वे साधु जो निर्वस्त्र हैं, नग्न हैं, दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, जो शुद्ध ध्यान में लीन, समस्त आस्त्रों से विरत होकर कर्मों के आगमन को रोकने की क्रिया संवरा को धारण किए हुए हैं ।  
वे साधु जो शत्रु व मित्र, स्वर्ण व काँच, महल व मसान (श्मसान), जीवन व मृत्यु, सम्मान व गाली सभी में समताभाव रखते हैं, जिनके समक्ष ये सभी बराबर हैं, वे मिलें, ऐसा सुयोग कब होगा ?

वे साधु जो सम्यकज्ञान के पवन झकोरों से प्रोत्साहित तप की अग्नि में समस्त परभावों की आहुति देते हैं। कायरूपी कालिमा से अपने को अलग रखकर सुवर्ण के समान अपने शुद्ध स्वभाव में रत रहते हैं, उनके दर्शनों का सुयोग कब होगा ?

भूधरदास दोनों हाथ जोड़कर विनयावनत उनके चरण-कमलों में नत हैं। भाग्योदय से जिस दिन ऐसे साधु के दर्शन का सौभाग्य मिले, उस दिन की बलिहारी है, उस पर सब-कुछ निछावर है, उत्सर्ग है क्योंकि वह दिन मेरे जीवन में पूज्य होगा।



## सब विधि करन उतावला



राग : बिलावल

सब विधि करन उतावला, सुमरनकौं सीरा ।  
सुख चाहै संसार में, यों होय न नीरा ॥टेक॥

जैसे कर्म कमावे है, सो ही फल वीरा ।  
आम न लागै आकके, नग होय न हीरा ॥१॥

जैसा विषयनिकों चहै न रहै छिन धीरा ।  
त्यों 'भूधर' प्रभुकों जपै, पहुँचे भव तीरा ॥२॥

**अर्थ :** हे मनुष्य! तू और सब कार्य करने के लिए तो अत्यन्त उतावला व अधीर रहता है, परन्तु प्रभु स्मरण के लिए आलसी अर्थात् ढीला व सुस्त रहता है।

यदि संसार में सुख चाहता है तो तू इस प्रकार अज्ञानी / अविवेकी मत बन।। तू जैसे कार्य करेगा, उसके अनुसार ही तुझे फल प्राप्त होंगे। आकड़े के पेड़ में आम के फल कभी नहीं लगते और न सभी नग (पत्थर) हीरा होते हैं। तू जिसप्रकार विषयों को चाहता है और उनके लिए एक क्षण भी धैर्य धारण नहीं करता, यदि उसीप्रकार उतनी ही उत्सुकता से तू प्रभु का नाम जपे तो शीघ्र ही इस भवसागर के पार पहुँच जाय ।





राग : सोरठ

# वा पुर के वारैँ

वा पुर के वारणैं जाऊं ॥टेक॥

जम्बूद्वीप विदेह में, पूरव दिशि सोहै हो ।  
पुंडरीकिनी नाम है, नर सुर मन मोहै हो ॥१...वा पुर॥

सीमंधर शिव के धनी, जहं आप विराजै हो ।  
बारह गण बिच पीठपै, शोभानिधि छाजे हो ॥२...वा पुर॥

तीन छत्र माथैं दिपैं, वर चामर वीजै हो ।  
कोटिक रतिपति रूपपै, न्यौछावर कीजै हो ॥३...वा पुर॥

निरखत विरख अशोक को, शोकावलि भाजै हो ।  
वाणी वरसै अमृत सी, जलधर ज्यों गाजै हो ॥४...वा पुर॥

बरसैं सुमन सुहावने, सुर दुन्दभि गाजै हो ।  
प्रभु तन तेज समूहसौं, शशि सूरज लाजै हो ॥५...वा पुर॥

समोसरन विधि वरनतैं, बुधि वरन न पावै हो ।  
सब लोकोत्तर लच्छमी, देखैं बनि आवै हो ॥६...वा पुर॥

सुरनर मिलि आवैं सदा, सेवा अनुरागी हो ।  
प्रकट निहारैं नाथकों, धनि वे बड़भागी हो ॥७...वा पुर॥

'भूधर' विधिसौं भावसौं, दीनी त्रय फेरी हो ।  
जैवंती वरतो सदा, नगरी जिन केरी हो ॥८...वा पुर॥

**अर्थ :** (मेरी इच्छा है कि) मैं उस नगरी के द्वार पर जाऊँ जो जंबू द्वीप के विदेह क्षेत्र में पूर्व दिशा की ओर, मनुष्य और देवों के मन को मोहनेवाली पुंडरीकनी नगरी के नाम से सुशोभित हो रही है ।

जहाँ बारह गणधरों के बीच उच्च आसन पर समस्त शोभासहित, मुक्तिवधू के कंत सीमंधर भगवान आसीन हैं। उनके मस्तक (शिर) पर तीन छत्र चमक रहे हैं, श्रेष्ठ चैवर दुराए जा रहे हैं, उस सुन्दर छवि पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर हैं। (वहाँ स्थित) अशोक वृक्ष को देखते ही सब शोक दूर हो जाते हैं, बादलों की गरज-सी दिव्य - भवनि से अमृत-वचन झर रहे हैं ।

जहाँ सुन्दर सुगच्छित फूलों की वृष्टि हो रही है, दुंदुभिनाद से गुंजित उस वातावरण में सूर्य को प्रखरता व चन्द्र काति को लजानेवाला प्रभु का अत्यन्त तेजयुत दिव्य-गात (शरीर) सुशोभित है। उस समवशरण को निराली छटा व व्यवस्था का वर्णन यह बुद्धि नहीं कर पाती क्योंकि सब ही दैविक (अलौकिक) लक्षण हैं जो देखते ही बनते हैं ।

देव और मनुष्य सब मिलकर उनकी पूजा हेतु सदा आते हैं और उनको भक्तिपूर्वक निहारते हैं / वे लोग धन्य हैं, बड़े भाग्यशाली हैं । भूधरदास कहते हैं कि मैं उस नगरी को भाव-प्रदक्षिणा देता हूँ । वह जिनेन्द्र को नगरी (समवसरण) सदा जयवंत हो ।



## सीमंधर स्वामी



तर्ज .. जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियां

सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा ॥टेक ॥  
इस संसार असार में कोई, और न रक्षक मेरा ॥  
सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा ॥ 1 ॥

लख चौरासी जोनी में मैं, फ़िरि फ़िरि कीनों फेरा  
तुम महिमा जानी नहीं प्रभु, देख्या दुःख घनेरा ॥  
सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा ॥2॥

भाग उदयतैं पाइया अब, कीजे नाथ निवेरा  
बेगी दया करी दीजिये मुझे, अविचल थन-बसेरा ॥  
सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा ॥3॥

नाम लिये अघ ना रहै ज्यों, ऊगें भान अंधेरा  
'भूधर' चिंता क्या रही ऐसी, समरथ साहिब तेरा ॥  
सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा ॥4॥

**अर्थ :** हे सीमंधर स्वामी ! मैं आपके चरणों का दास हूँ, सेवक हूँ, भक्त हूँ।

इस नश्वर, सारहीन संसार में मेरी रक्षा करनेवाला रक्षक और कोई भी नहीं है। चौरासी लाख योनियों में बार-बार जन्म लेकर फिरता रहा हूँ पर आपकी महिमा को नहीं जाना, इस कारण तीव्र दुःखों को भोगना पड़ा है।  
अब मेरा भाग्योदय हुआ है कि आपके प्रति भक्ति जागृत हुई है। हे नाथ! अब मेरा निबटारा कर दीजिए। शीघ्र ही कृपाकर अविचल स्थान सिद्ध-शिला पर मुझे अक्षय निवास प्रदान कीजिए।  
जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार मिट जाता है, उसी प्रकार आपका नाम स्मरण करने से पाप नहीं ठहरते, वे नष्ट हो जाते हैं। भूधरदास कहते हैं कि जिसके स्वामी की ऐसी सामर्थ्य है उसको फिर कौनसी चिन्ता शेष रह सकती है ?



## सुन ज्ञानी प्राणी श्रीगुरु



सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख सयानी ।  
नरभव पाय विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवानी ॥टेक ॥

यह भव कुल यह तेरी महिमा, फिर समझी जिनवाणी ।  
इस अवसर में यह चपलाई, कौन समझ उर आनी ॥१॥

चन्दन काठ कनक के भाजन, भरि गंगा का पानी ।  
तिल खलि रांधत मंदमति जो, तुझ क्या रीस बिरानी ॥२॥

'भूधर' जो कथनी सो करनी, यह बुधि है सुखदानी ।  
ज्यों मशालची आप न देखै, सो मति करै कहानी ॥३॥

**अर्थ :** हे ज्ञानी जीव! श्री गुरु की विवेकपूर्ण सीख को सुन। यह मनुष्य-जन्म पाकर विषयों में लिप्त मत हो, क्योंकि यह ही आगे होनेवाली दुर्गति का बीज है, कारण है।

तेरा यह मनुष्य भव, यह कुल, तेरी प्रतिष्ठा और जिनवाणी का बोध - इन सबका एकसाथ मिलना एक दुर्लभ अवसर है। इस सुअवसर में स्थिर न होकर चंचल होना यह तेरी कैसी समझदारी है?

चंदन की लकड़ी जलाकर सोने के बासन (बर्तन) में गंगा का पवित्र जल लेकर उसमें तिलहन की खल को कोई पकाने लगे, तो उस पराये मंदमति व्यक्ति पर क्रोधित होने से क्या होगा?

भूधरदास कहते हैं कि जिसके कहने व करने में अन्तर नहीं हो वह ही समझ सुखदायी है। कोई मशालची मशाल जलाकर भी स्वयं को न देख सके, तू भी अपनी वैसी ही स्थिति मत कर।



## सुनि सुजान पांचों रिपु



राग : कल्याण

सुनि सुजान! पांचों रिपु वश करि, सुहित करन असमर्थ अवश करि

जैसै जड़ खखार का कीड़ा, सुहित सम्हाल सकें नहिं फंस करि ।

पांचन को मुखिया मन चंचल, पहले ताहि पकर, रस कस करि ।  
समझ देखि नायक के जीतै, जै है भाजि सहज सब लशकरि ॥१॥

इंद्रियलीन जनम सब खोयो, बाकी चल्यो जात है खस करि ।  
'भूधर' सीख मान सतगुरु की, इनसों प्रीति तोरि अब वश करि ॥२॥

**अर्थ :** हे ज्ञानी सुनो ! अपना हित करने के लिए पाँचों इन्द्रियरूपी शत्रुओं को शक्तिहीन-बलहीन कर अपने वश में करो। जैसे खखार अर्थात् थूके गए कफ में फंसा हुआ कीड़ा अपने को असहाय पाता है, अपने हित को नहीं संभाल पाता वैसे ही इन इन्द्रिय-विषयों में फंसे होने के कारण जीव अपना हित करने में असमर्थ होता है, बेबस हो जाता है।

इन पाँचों इंद्रियों का मुखिया यह चंचल मन है। सबसे पहले उसे पकड़, वश में कर फिर रस अर्थात् स्वाद को/जीभ को कस (वश में कर)। अपने नायक को जीत लिया (हारा हुआ) जानकर इसकी सारी सेना सहज ही हार स्वीकार कर लेगी, कमज़ोर पड़ जायेगी, भाग जायेगी।

इन्द्रियों के वशीभूत होकर सास जन्म वृथा हो खो दिया, और शेष जीवन भी इस ही भाँति सरकता जा रहा है, बीतता जा रहा है। भूधरदास कहते हैं तू सत्गुरु की सीख को मान और इन इन्द्रिय-विषयों से प्रीति तोड़कर इनको अपने वश में करले।



## सुनी ठगनी माया तैं सब



राग : सोरठ

सुनी ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया ।  
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया ॥टेक॥

आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढमति ललचाया ।

करि मद अंध धर्म हर लीनौं, अंत नरक पहुँचाया ॥१॥

केते कंत किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया ।  
किस ही सौं नहिं प्रीति निबाही, वही तजि और लुभाया ॥२॥

'भूधर' छलत फिरै यह सबकों, भोंदू करि जग पाया ।  
जो इस ठगनी कों ठग बैठे, मैं तिनको सिर नाया ॥३॥

**अर्थ :** हे मानव, सुनो, यह माया (धन) ठगनी है, इसने सारे जगत को ठग लिया है। जिस किसी ने भी इस पर विश्वास किया, वह मूरख बनकर पछताया है।

बिजली-सी चमक को देखकर जो मूर्ख लालच में आ गया, उसको मदांध कर इसने धर्मच्युत कर दिया और फिर अन्त में उसे नरक में पहुँचा दिया ।

इस माया ने कितने लोगों को अपना स्वामी बनाया किन्तु फिर भी इसका मन नहीं भरा; इसने किसी से भी अपनी प्रीति नहीं निभाई, यह सदैव एक को छोड़कर दूसरे को लुभाती रही है।

भूधरदास कहते हैं कि माया सबको छलती-फिरती है, जिसने इस पर विश्वास किया, उसी को यह ठगती रही है, सारे जगत को भोंदू (मूर्ख) बना रही है। जिसने इस ठगिनी माया को जीत लिया है, मैं उसे नमन करता हूँ।



## सो गुरुदेव हमारा है



सो गुरुदेव हमारा है साधो ॥टेक ॥  
जोग-अगनि मैं जो थिर राखैं, यह चित्त चंचल पारा है ॥

करन-कुरंग खरे मदमाते, जप-तप खेत उजारा है।

संज्म-डोर-जोर वश कीने, ऐसा जान-विचारा है ॥सो...१॥

जा लक्ष्मी को सब जग चाहै, दास हुआ जग सारा है ।  
सो प्रभु के चरनन की चेरी, देखो अचरज भारा है ॥सो...२॥

लोभ-सरप के कहर जहर की, लहरि गई दुख टारा है।  
'भूधर' ता रिखि का शिख हूजे, तब कछु होय सुधारा है ॥सो...३॥

**अर्थ :** हे साधक, हमारा गुरु तो वह हो है जो पारे के समान चंचल चित्त को भी योग की अग्नि में स्थिर रखता है।

मदोन्मत्त (मद से उन्मत्त), इंद्रियरूपी चंचल हरिणों ने हमारे जप-तपरूपी खेत को उजाड़ दिया है। पर जिसने संयमरूपी डोर से बाँधकर उन्हें वश में किया है, ऐसा ज्ञान जिसे हुआ है, वह ज्ञानधारी ही हमारा गुरु है।

सारा जगत जिस लक्ष्मी को चाहता है, जिस लक्ष्मी का दास हुआ है वह लक्ष्मी भी उस प्रभु के चरणों की दासी है, यह बड़ा आश्वर्य है!

लोभरूपी सर्प के विष की घातक लहरों के दुःखों को जिसने टाल दिया है, नाश कर दिया है ऐसे गुरु का शिष्य होने पर ही कुछ सुधार होना, कल्याण होना, उद्धार होना संभव है।



## सो मत सांचो है मन मेरे



राग : धनसारी

सो मत सांचो है मन मेरे ।  
जो अनादि सर्वज्ञ प्ररूपित, रागादिक बिन जे रे ॥टेक॥

पुरुष प्रमान प्रमान वचन तिस, कल्पित जान अने रे ।

राग दोष दूषित तिन बायक, सांचे हैं हित तेरे ॥  
सो मत सांचो है मन मेरे ॥१॥

देव अदोष धर्म हिंसा बिन, लोभ बिना गुरु वे रे ।  
आदि अन्त अविरोधी आगम, चार रतन जहँ ये रे ॥  
सो मत सांचो है मन मेरे ॥२॥

जगत भर्यो पाखंड परख बिन, खाइ खता बहुतेरे ।  
'भूधर' करि निज सुबुद्धि कसौटी, धर्म कनक कसि ले रे ॥  
सो मत सांचो है मन मेरे ॥३॥

**अर्थ :** मेरे मन में वह ही मत (धर्म) सच्चा है जो राग-द्वेष रहित है, जो अनादि से चला आ रहा है और सर्वज्ञ-भाषित है ।

हे प्राणी! प्रमाण पुरुष के वचन ही हितकारी व सत्य हैं अन्य कथन जो राग-द्वेष से दूषित हैं वे मात्र कल्पना हैं, ऐसा जानो।

राग-द्वेषरहित देव, हिंसारहित अहिंसा का प्रतिपादन करनेवाला धर्मशास्त्र, लोभरहित गुरु और आदि से अन्त तक विरोधरहित आगम शास्त्र - ये चार रत्न धर्म के आधार हैं।

यह जगत पाखंडों से भरा हुआ है, इसकी परख जिसने नहीं की उसने बहुत धोखा खाया है। भूधरदास कहते हैं कि हे प्राणी ! विवेक की कसौटी पर धर्मरूपी स्वर्ण को परखकर, कसकर, उसी यथार्थता को जानो।



## स्वामीजी सांची सरन



राग : सोरठ

स्वामीजी सांची सरन तुम्हारी ॥टेक ॥

समरथ शांत सकल गुनपूरे, भयो भरोसो भारी ॥

जनम-जरा जग बैरी जीते, टेव मरनकी टारी ।  
हमहूँकों अजरामर करियो, भरियो आस हमारी ॥१॥

जनमैं मरै धरैं तन फिरि-फिरि, सो साहिब संसारी ।  
'भूधर' पर दालिद क्यों दलि है, जो है आप भिखारी ॥२॥

**अर्थ :** हे प्रभु, हे स्वामी : हारी की शरण सत्य है। समर्थ हैं, शांत हैं, सर्वगुणसंपन्ना हैं, हमें आप पर पूर्ण भरोसा है। आपका ही आधार है।

आपने जन्म और बुढ़ापा जो सारे जगत के बैरी हैं, उनको जीत लिया है और मृत्यु की परम्परा को भी हमेशा के लिए छोड़ दिया है, अर्थात् मृत्यु से भी मुक्त हो गए हैं। हमें भी आपकी भाँति अजर (जो कभी रोग-ग्रस्त न हो, वृद्ध न हो)-अमर (जिसका कभी मरण न हो) स्थिति दो, अजर-अमर स्थान दो, आपसे हमारी यही एक आशा है, इसे पूर्ण कीजिए। भूधरदासजी कहते हैं कि जो संसार में जन्म-मरण धारणकर बार-बार आवागमन करते हैं ऐसे देव संसारी हैं। वे स्वयं याचक हैं, पराधीन हैं, वे मेरी (भूधरदास की) दरिद्रता का नाश कैसे करेंगे!



## होरी खेलूंगी घर आए



राग : धमाल सारंग

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद कन्त ।  
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि वसंत ॥टेक॥

पीय संग खेलनि कौं, हम सइये तरसी काल अनंत ।  
भाग जग्यो अब फाग रचानौ, आयौ विरह को अंत ॥१॥

सरधा गागरि में रूचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त ।  
आनन्द नीर उमंग पिचकारी, छोड़ुंगी नीकी भंत ॥२॥

आज वियोग कुमति सौतनि कौ, मेरे हरष अनंत ।  
'भूधर' धनि एही दिन दुर्लभ, सुमति राखी विहसंत ॥३॥

**अर्थ :** सुमति रूपी नारी कहती है कि आज मैं सचमुच होली खेलूंगी, क्योंकि आज मेरे स्वामी चिदानंद मेरे घर आ गये हैं और काललब्धिरूपी वसंत ऋतु भी आ गई है।

हे सखियो! मैं अनंत काल से अपने स्वामी के साथ खेलने के लिए तरस रही थी, परंतु अब मेरा भाग्य उदय हुआ है कि विरह का अंत आ गया और मैं फाग रचा रही हूँ।

मैंने श्रद्धारूपी गागर में रुचि रूपी केसर घोली, आनंदरूपी जल मिलाया और उत्साह रूपी पिचकारी अच्छी तरह चलाई है। आज मेरी कुमति रूपी सौतनौं को स्वामी का वियोग हुआ है।

भूधरदास कवि कहते हैं कि आज का दिन अत्यंत दुर्लभ है। आज सुमति रूपी नारी बहुत प्रसन्न है। बड़ा ही धन्य अवसर है आज।



## अहो दोऊ रंग भरे



राग : सोरठ

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी, अलख अमूरति की जोरी ॥टेक॥

इतमैं आतम राम रंगीले, उतमैं सुबुद्धि किसोरी ।  
या कै ज्ञान सखा संग सुन्दर, बाकै संग समता गोरी ॥१॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि, उदै कलस में घोरी ।

सुधी समझि सरल पिचकारि, सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ॥२॥

सत-गुरु सीख तान धुरपद की, गावत होरा होरी ।  
पूरव बंध अबीर उड़ावत, दान गुलाल भर झोरी ॥३॥

'भूधर' आजि बड़े भागिन, सुमति सुहागिन मोरी ।  
सो ही नारि सुलछिनी जग में, जासौं पतिनै रति जोरी ॥३॥

**अर्थ :** अहो, देखो आत्मा व सुमति दोनों रंग भर- भरकर होली खेलते हैं । यह अलख-अद्वय, न दिखाइ देनेवाली की और अमृत की जोड़ी है।

एक ओर तो ज्ञानरंगों से रंगीले आत्माराम हैं और दूसरी परिपक्ता की ओर अग्रसर सुबुद्धि सुमतिरूपी किशोरी है। एक के (आत्मा के) साथ मित्ररूप में ज्ञान है तो दूसरे के (सुमति के) साथ समता-रूपी सहेली।

आत्मा देहरूपी कलश में, जल के समान शुद्ध मन में करुणारस की दया की केशर पोलकर विवेकसहित सरल भावों की पिचकारी भर-भरकर सखियों पर छोड़ रही है, अर्थात् करुणाभाव सर्वांग से मुखरित है।

जैसे होली के अवसर पर गाई जानेवाली धुपद में काफी थाट की धुन-बंदिश अत्यन्त मधुर होती है, वैसे ही सत्तुरु का सद्गुपदेश अत्यन्त मनमोहक व सुग्राहय होता है, जिसे हृदयंगम करने पर आत्मानुभूति से बंधी कर्म-शृंखला उदय में आकर निर्जरित होती है, अबीर की भाँति उड़ती जाती है।

भूधरदास जी कहते हैं कि बड़े भाग्य से आज यह सुमति सुहागिन मेरी हुई है अर्थात् मुझे विवेक जागृत हुआ। आत्मारूपी वर के लिए सुमति (सम्यकज्ञान) ही एकमात्र योग्य सुलक्षणा वधू है, इसके साथ की गई प्रीति ही फलदायक है।



पं बुधजन कृत भजन



# अब तू जान रे चेतन जान



राग : मालकोस, कर कर आतम हित

अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नितहान ।

रथ बाजि करी असवारी, नाना विधि भोग तयारी ।  
सुंदर तिय सेज सँवारी, तन रोग भयो या ख्वारी ॥  
अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नितहान ॥१॥

ऊँचे गढ़ महल बनाये, बहु तोप सुभट रखवाये ।  
जहाँ रुपया मुहर धराये, सब छौड़ि चले जम आये ॥  
अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नितहान ॥२॥

भूखा है खानो लागै, छाया पदभूषण पागै ।  
सत भये सहस लखि मांगै या तिसना नांही भागै ॥  
अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नितहान ॥३॥

ये अधिर सौंज परिवारौ, थिर चेतन क्यों न सम्हारौ ।  
'बुधजन' ममता सब टारौ, सब आपा आप सुधारौ ॥  
अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नितहान ॥४॥



## अब थे क्यों दुख पावो

अब थे क्यों दुख पावो रे जियरा, जिनमत समकित धारौ ॥टेक ॥



निलज नारि सुत व्यसनी मूरख, किंकर करत विगारो ।  
सा नूम अब देखत भैया, केसे करत गुजारौ ॥१॥

वाय पित्त कफ खांसी तन दृग, दीसत नाहिं उजारौ ।  
करजदार अह वेरुजगारी, कोऊ नाहिं सहारौ ॥२॥

इत्यादिक दुख सहज जानियो, सुनियौ अब विस्तारौ ।  
लख चौरासी अनंत भवनलौं, जनम मरन दुख भारैं ॥३॥

दोषरहित जिनवर पद पूजौ गुरु निरग्रंथ विचारौ ।  
'बुधजन' धर्म दया उर धारौ, ह-ह जैकारो ॥४॥

निलज=निर्लज; दृग=आंख; दीसत=दिखाई देना; वेरुजगारी=बेगारी; भवनलौं=भवों तक; ह-ह=होगा





# आगैं कहा करसी भैया

तर्जः बाजे छै बधाई राजा  
नगरी-नगरी द्वारे द्वारे – नागिन

आगैं कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ।  
ह्याँ तौ तैनैं पोल मचाई, क्हां तौ होय संभाल रे ॥टेक ॥

झूठ कपट करि जीव सताये, हर्या पराया माल रे ।  
सम्पति सेती धाप्या नाहीं, तकी विरानी बाल रे ॥  
आगैं कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ॥१॥

सदा भोग मैं मगन रह्या तू, लख्या नहीं निज हाल रे ।  
सुमरन दान किया नहिं भाई, हो जासी पैमाल रे ॥  
आगैं कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ॥२॥

जोबन में जुबती संग भूल्या, भूल्या जब था बाल रे ।  
अब हूँ धारो 'बुधजन' समता, सदा रहहु खुशहाल रे ॥  
आगैं कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ॥३॥



## आज मनरी बनी छै जिनराज



राग - कालिंगडो, मोहे भूल गए साँवरिया

आज मनरी बनी छै जिनराज  
थांको ही सुमरन, थांको ही पूजन, थांको तत्व विचार ॥

थांके बिछुड़े अति दुख पायौ, मोपै कह्यो न जाय ।  
अब सनमुख तुम नयनौं निरखे, धन्य मनुष परजाय ॥  
आज मनरी बनी छै जिनराज ॥१॥

आजहिं पातक नास्यौ मेरौ, ऊतरस्यौ भवपार ।  
यह प्रतीत 'बुधजन' उर आई, लेस्यौं शिवसुखसार ॥  
आज मनरी बनी छै जिनराज ॥२॥



## उत्तम नरभव पायकै



तर्ज : मेघा छाए आधी रात

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥टेक ॥

कीट पशु का तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा ।  
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजे प्रभु नामा ॥१॥

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नरजामा ।  
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत बिनकामा ॥२॥

धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखि भामा ।  
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा ॥३॥

अपने स्वामी के पदपंकज, करो हिये विसरामा ।  
मैंटि कपट भ्रम अपना 'बुधजन' ज्यौं पावो शिवधामा ॥४॥



## और ठौर क्यों हेरत प्यारा



राग : छटाल तिताला  
काल अचानक ही ले जायेगा

और ठौर क्यों हेरत प्यारा, तेरे हि घट में जाननहारा ।  
चलन हलन थल वास एकता, जात्यान्तर तैं न्यारा न्यारा ॥टेक॥

मोह उदय रागी-द्वेषी है, क्रोधादिक का सरजन हारा ।  
भ्रमत फिरत चारों गति भीतर, जनम-मरन भोगत दुख भारा ॥  
और ठौर क्यों हेरत प्यारा, तेरे हि घट में जाननहारा ॥२॥

गुरु उपदेश लखैं पद आपा, तबहिं विभाव करै परिहारा ।

है एकाकी 'बुधजन' निश्चल, पावै शिवपुर सुखद अपारा ॥  
और ठौर क्यों हेरत प्यारा, तेरे हि घट में जाननहारा ॥३॥



## काल अचानक ही ले



राग : बद्रिताल

काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या ।  
छिन हू तोकूं नाहिं बचावे तौ सुभटन का रखना क्या (रे) ॥टेक॥

रंच स्वाद करन के काजै, नर्कन में दुःख भरना क्या ।  
कुलजन पथिकनि के हित काजै जगत जाल में परना क्या ॥  
काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या ॥१॥

इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोक का शरणा क्या (रे) ।  
निश्चय हुआ जगत में मरना, कष्ट परे तब डरना क्या (रे) ॥  
काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या ॥२॥

अपना ध्यान करत खिर जावै, तौ करमनि का हरना क्या (रे) ।  
अब हित करि आरत तजि 'बुधजन', जन्म-जन्म में जरना क्या रे ॥  
काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या ॥३॥

**अर्थ :** हे जीव ! यह काल अर्थात् मृत्यु अचानक ही तुझे ले जायेगी इसलिये इस संसार में बेहौश होकर मत रहो।

हे प्राणी मृत्यु के आने पर ! जो एक क्षण भी तुझे नहीं बचा सकते ऐसे योद्धाओं को अपने पास क्यों रखना ? अर्थात् उनको रखने से क्या फायदा ।

हे जीव ! लौकिक के जरा से वाद-विवाद के कारण नरक गति के दुःखों को क्यों सहते हो और परिवार - कुटम्बीजनों के हित के लिये स्वयं संसार जाल में फँसना उचित नहीं है।

हे चेतन! जब इन्द्र जैसे बलशाली व्यक्ति भी तुझे नहीं बचा सकते तो जगत के अन्य लोगों से तो शरण की क्या आशा रखना ? इस जगत में मरना ही है तो कष्ट के आने पर या रोगादि-मृत्यु आदि आने पर उनसे घबराने से क्या फायदा ।

हे जीव ! जो कर्म निज आत्म ध्यान से तुरंत ही नष्ट हो जते हैं तो ऐसे कर्मों की नष्ट करने की चिन्ता क्यों करना । बुधजन कृवि तो कहते हैं कि आर्त-रौद्र, राग-द्वेष के परिणामों का त्यागकर अपना हित करो तो जन्म-जन्म के दुःखों को सहन नहीं करना पड़ेगा।



## किंकर अरज करत जिन



राग : प्रभाती

किंकर अरज करत जिन साहिब, मेरी ओर निहारो ॥टेक॥

पतितउधारक दीनदयानिधि, सुन्यौ तोहि उपगारो ।  
मेरे औगुनपै मति जावो, अपनो सुजस विचारो ॥  
किंकर अरज करत जिन साहिब, मेरी ओर निहारो ॥१॥

अब ज्ञानी दीसत हैं तिनमै, पक्षपात उरझारो ।  
नाहीं मिलत महाव्रतधारी, कैसें है निरवारो ॥  
किंकर अरज करत जिन साहिब, मेरी ओर निहारो ॥२॥

छवी रावरी नैननि निरखी, आगम सुन्यौ तिहारो ।  
जात नहीं भ्रम क्यौं अब मेरो, या दूषन को टारो ॥  
किंकर अरज करत जिन साहिब, मेरी ओर निहारो ॥३॥

कोटि बात की बात कहत हूं, यो ही मतलब म्हारो ।  
जौलौं भव तोलौं 'बुधजन' को, दीज्ये सरन सहारो ॥  
किंकर अरज करत जिन साहिब, मेरी ओर निहारो ॥४॥



## गुरु दयाल तेरा दुःख



गुरु दयाल तेरा दुःख लखिकैं, सुनलै जो फरमावै है ॥टेक ॥  
तो में तेरा जतन बताबै, लोभ कछु नहि चावै है ॥१॥

पर स्वभाव को मोर्या चाहै, अपना उसा बनावै है ।  
सो कबहूं हुवा न होसी, नाहक रोग लगावै है ॥२॥

खोटी खरी जस करी कमाई, तैसी तेरे आवै है ।  
चिन्ता आगि उठाय हिया मैं नाहक जान जलावै है ॥३॥

पर अपनावै सो दुख पावै, 'बुधजन' ऐसे गावै है ।  
पर को त्यागि आप थिर तिष्ठै, सो अविचल सुख पावै है ॥4॥



## थे म्हारे मन भायाजी



तर्ज़ : परमगुरु बरसात ज्ञान झारी

थे म्हारे मन भायाजी चंद जिनंदा,  
बहुत दिनामैं पाया छौ जी ॥टेक ॥

सब आताप गया ततखिन ही, उपज्या हरष अमंदा ॥  
थे म्हारे मन भायाजी चंद जिनंदा ॥1॥

जे मिलिया तिन ही दुख भरिया, भई हमारी निंदा ।  
तुम निरखत ही भरम गुमाया, पाया सुख का कंदा ॥  
थे म्हारे मन भायाजी चंद जिनंदा ॥2॥

गुन अनन्त मुखतैं किम गाऊं, हारे फनिंद मुनिंदा ।  
भक्ति तिहारी अति हितकारी, जाँचत 'बुधजन' वंदा ॥  
थे म्हारे मन भायाजी चंद जिनंदा ॥3॥





राग : आसादरी

# जगत में होनहार सो होवै

जगत में होनहार सो होवै, सुर नृप नाहि मिटावै ॥टेक ॥

आदिनाथ से कौ भोजन में, अन्तराय उपजावै ।  
पारसप्रभु कौं ध्यान लीन लखि कमठ मेघ बरसावै ॥  
जगत में होनहार सो होवै, सुर नृप नाहि मिटावै ॥१॥

लक्ष्मन से सग भ्राता जाके, सीता राम गमावै ।  
प्रतिनारायण रावण से की, हनुमत लंक जरावै ॥  
जगत में होनहार सो होवै, सुर नृप नाहि मिटावै ॥२॥

जैसो कमावै तैसो ही पावै, यो 'बुधजन' समझावै ।  
आप आपकौ आप कमावो, क्यो परद्रव्य कमावै ॥  
जगत में होनहार सो होवै, सुर नृप नाहि मिटावै ॥३॥



## जिनवाणी की सुनै सो



जिनवाणी के सुनै सो मिथ्यात मिटै, मिथ्यात मिटै समकित प्रगटै।  
जैसे प्रात होत रवि ऊगत, रैन तिमिर सब तुरत फ़टै॥

अनादिकाल की भूल मिटावै, अपनी निधि घट घट मैं उघटै।  
त्याग विभाव सुभाव सुधारै, अनुभव करतां करम कटै॥

और काम तजि सेवो वाकौं, या बिन नाहिं अज्ञान घटै।  
बुधजन या भव परभव मांहि, बाकी हुंडी तुरत पटै॥

**अर्थ :** हे जीव! जिनेद्र भगवान की वाणी अर्थात् जिनवाणी के श्रवण करने से मिथ्या मान्यता का विनाश होकर सम्यक्त्व की प्रगटता होती है तथा जैसे प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर रात्रिकालीन अन्धकार तुरन्त विलय को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व रूपी सूर्य के उदय होते ही मिथ्यात्व का नाश हो जाता है।

जिनवाणी माता जीव की अनादि काल की भूल मिटकर स्वआत्मनिधि को पूर्ण रूप में प्रगट कराती है। विभावी भावों का त्याग करके स्वभाव का ग्रहण कराती है और उस आत्मा के अनुभव के द्वारा ही कर्मों का नाश होना बताती है।

अतः हे जीव! बाकी के सभी बाह्य कार्यों को त्यागकर जिनवाणी की ही सेवा करो क्योंकि इसके सुने बिना समझे बिना अज्ञान का नाश नहीं होता। बुधजन कवि कहते हैं कि जिनवाणी के श्रवण करने वालों के इस भव के व पूर्व भवों के कर्ज तुरंत पट जाते हैं अर्थात् पुराने कर्म तुरन्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं व सद्गति की प्राप्ति होती है।



## ज्ञानी थारी रीति रौ अचंभौ

ज्ञानी ! थारी रीति रौ अचंभौ मोनैं आवै ।  
भूलि सकति निज-परवश है क्यौं, जनम-जनम दुख पावै ॥टेक॥



क्रोध लोभ मद माया करि करि, आपै आप फ़ँसावे ।

फल भोगन की बेर होय तब, भोगत क्यौं पिछतावै ॥१॥

पाप काज करि धन कौं चाहे, धर्म विषे में बतावै ।  
'बुधजन' नीति अनीति बनाई, साँचौ सौ बतरावै ॥२॥



## तेरो करिलै काज बखत

तेरो करिलै काज बखत फिर ना ।  
नर भव तेरे वश चालत है, फिर पर भव परवश परना ॥टेक॥



आन अचानक कंठ दवैगो, तब तोकों नहीं शरना ।  
यातैं विलम न ल्याय बावरे, अबही कर जो है करना ॥१॥

जग जीवन की दया धार उर, दान सूपात्रनि कर धरना ।  
जिनवर पूजि शास्त्र सुनि नितप्रति, 'बुधजन' संवर आचरना ॥२॥



## तैं क्या किया नादान तैं



तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ॥टेक ॥

लख चौरासी जौनी माहिं तैं, श्रावक कुल में आया ।  
अब तजि तीन लोक के साहिब, नवग्रह पूजन धाया ॥  
तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ॥१॥

वीतराग के दरसन ही तैं, उदासीनता आवै ।  
त तौ जिनके सनमुख ठाड़ा, सत को ख्याल खिलावै ॥  
तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ॥२॥

सुरग सम्पदा सहजै पावै, निश्चय मुक्ति मिलावै ।  
ऐसी जिनवर पूजन सेती, जगत कामना चावै ॥  
तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ॥३॥

'बुधजन' मिलें सलाह कहैं तब, तू वापै खिजि जावे ।  
जथा जोग कौं अजथा माने, जनम-जनम दुख पावै ॥  
तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ॥४॥



देखा मैंने आत्मरामा



देखा आत्मरामा, मैंने देखा आत्मरामा ॥टेक॥

रूप फरस रस गंध तें न्यारा, दरस-ज्ञान-गुनधामा ।  
नित्य निरंजन जाकै नाहीं, क्रोध लोभ मद कामा ॥  
देखा आत्मरामा, मैंने देखा आत्मरामा ॥१॥

भूख प्यास सुख दुःख नहिं जाकै, नाहि बन पुर गामा ।  
नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ॥  
देखा आत्मरामा, मैंने देखा आत्मरामा ॥२॥

भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गल का जामा ।  
'बुधजन' संगति जिनगुरु की तैं, मैं पाया मुझ ठामा ॥  
देखा आत्मरामा, मैंने देखा आत्मरामा ॥३॥

**अर्थ :** ज्ञानी जीव ऐसा कहते हैं कि मैंने आत्मराम को देख लिया अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

कैसा है वह आत्मा - स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित दर्शन, ज्ञान आदि गुणों का धाम हैं और क्रोध, लोभ, मान और माया आदि कषाय परिणामों की कालिमा से रहित होने से सदा पवित्र ही है।

और जिसको भूख-प्यास, सुख-दुःख आदि की व्याधि नहीं है तथा न ही उसके पास वन, नगर और गाँव रूपी परिग्रह हैं। मेरी आत्मा का कोई स्वामी नहीं, कोई नौकर नहीं और न ही पिता या मामा जैसे कोई सम्बन्धी हैं।

बुधजन कवि कहते हैं कि अनादि काल से इस पुद्गल द्रव्य की प्रीति के कारण संसार में भटकते हुये अब मैं थक गया हूँ। अतः अब, जब मैंने वीतरागी भगवन्तों और श्री मुनिगज की संगति की तो मुझे मेरा आत्मा अर्थात् मेरा निज स्थान मिल गया।





# धनि सरधानी जग में

धनि सरधानी जग में, ज्यों जल कमल निवास ॥टेक ॥  
मिथ्या तिमिर फट्यो प्रगट्यो शशि, चिदानंद परकास ॥१ ॥

पूरव कर्म उदय सुख पावें भोगत ताहि उदास ।  
जो दुख में न विलाप करें निखैर सहै तन त्रास ॥  
धनि सरधानी जग में, ज्यों जल कमल निवास ॥२ ॥

उदय मोह चारित परवशि है, ब्रत नहि करत प्रकास  
जो किरिया करि हैं निरवांछक, करैं नहीं फल आस ॥  
धनि सरधानी जग में, ज्यों जल कमल निवास ॥३ ॥

दोष रहित प्रभु धर्म दयाजुत परिग्रह विन गुरु तास ।  
तत्वारथ रुचि है जा के घर 'बुधजन' तिनका दास ॥  
धनि सरधानी जग में, ज्यों जल कमल निवास ॥४ ॥

सरधानी=श्रद्धानी; तिमिर फट्यो=अंधकार हटा; निखैर=बैर-रहित;



## धरम बिन कोई नहीं



धर्म बिन कोई नहीं अपना  
सब सम्पत्ति धन थिर नहिं जग में, जिसा रैन सपना ॥टेक॥

आगैं किया सो पाया भाई, याही है निरना ।  
अब जो करैगा सो पावैगा, तातैं धर्म करना ॥  
धर्म बिन कोई नहीं अपना ॥१॥

ऐसै सब संसार कहत है, धर्म कियैं तिरना ।  
परपीड़ा बिसनादिक सेवैं, नरकविषैं परना ॥  
धर्म बिन कोई नहीं अपना ॥२॥

नृपके घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना ।  
अरु दारिद्रीकैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ॥  
धर्म बिन कोई नहीं अपना ॥३॥

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना ।  
वन गिरि सरिता अगनि युद्धमैं, धर्महि का सरना ॥  
धर्म बिन कोई नहीं अपना ॥४॥

चित 'बुधजन' सन्तोष धारना, पर चिन्ता हरना ।  
विपति पड़े तो समता रखना, परमात्म जपना ॥  
धर्म बिन कोई नहीं अपना ॥५॥

**अर्थ :** धर्म के बिना अपना कोई नहीं है।

जिसको हम अपनी सम्पत्ति मानते हैं, वह इस जगत में स्थिर नहीं रहती। रात को देखे स्वप्नवत् नष्ट हो जाती है।

पहले जैसा किया उन्हीं कर्मों का फल आज भोग रहे हैं, यह स्पष्ट है। आज जो करेंगे उसका फल आगे भोगेंगे। इसलिए धर्म करना। धर्म के बिना अपना कोई नहीं है।

समस्त संसार इस बात का समर्थन करता है कि यह जीव धर्म के द्वारा ही संसार सागर से पार होता है। इसके विपरीत जो दूसरों को कष्ट पहुंचाता है या व्यसन आदि का सेवन करता है, उसका फल नरक है। धर्म के बिना अपना कोई नहीं है।

राजा भी इस संसार में सुखी नहीं है और दरिद्र भी सुखी नहीं है। राजा तृष्णा के ज्वर से दुखी है और दरिद्र पाप के उदय के कारण अभाव में दुखी है। धर्म के बिना अपना कोई नहीं है।

आत्मन! तेरे जितने भी सम्बन्धीजन हैं, जिन्हें तू अपना बतलाता है, सब स्वार्थ के साथी हैं -- अपना काम निकल जाने पर तुम्हारा कोई भी साथ देनेवाला नहीं है। विपत्तियों का बोझ तुझे अकेले ही उठाना होगा। वन में, पहाड़ों पर, नदी और अग्निकाण्डों में तथा युद्ध-जैसे अवसरों पर केवल धर्म ही तुम्हारी शरण हो सकता है। जगत में धर्म के सिवाय कोई अपना नहीं है।

आत्मन! चित्त में सदैव सन्तोष धारण करना, दूसरों को आकुलता को दूर करना, विपत्ति-काल में व्याकुल न होकर समता धारण करना और निरन्तर परमात्मा का पुण्य स्मरण करना-- यही धर्म है। जगत में धर्म के सिवाय कोई अपना नहीं है।



## नरभव पाय फेरि दुख



राग बिलावल धीमा तेतालो

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो ॥टेक॥  
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं, करम जाल क्यौं परना हो ॥१॥

यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी, तिल तुष ज्यौं गुरु वरना हो ।  
राग दोष तजि भजि समताकौं, कर्म साथके हरना हो ॥२॥

यो भव पाय विषय-सुख सेना, गज चढ़ि इंर्धन ढोना हो ।  
'बुधजन' समुद्दि सेय जिनवर पद, ज्यौं भवसागर तरना हो ॥३॥



## पतितउधारक पतित



राग : घट्टाल तितालो

पतितउधारक पतित रटत है, सुनिये अरज हमारी हो ।  
तुमसो देव न आन जगतमैं, जासौं करिये पुकारी हो ॥टेक॥

साथ अविद्या लगि अनादिकी, रागदोष विस्तारी हो ।  
याहीतैं सन्तति करमनिकी, जनममरनदुखकारी हो ॥  
पतितउधारक पतित रटत है, सुनिये अरज हमारी हो ॥२॥

मिलै जगत जन जो भरमावै, कहै हेत संसारी हो ।  
तुम विनकारन शिवमगदायक, निजसुभावदातारी हो ॥  
पतितउधारक पतित रटत है, सुनिये अरज हमारी हो ॥३॥

तुम जाने बिन काल अनन्ता, गति-गति के भव धारी हो ।  
अब सनमुख 'बुधजन' जांचत है, भवदधि पार उतारी हो ॥  
पतितउधारक पतित रटत है, सुनिये अरज हमारी हो ॥४॥



## परम जननी धरम कथनी

परम जननी धरम कथनी, भवार्णव पार कौ तरनी ।  
अनक्षरि घोष आपत की, अक्षरजुत गनधरौं वरनी ॥१॥

निरवेयौ नयनु जोगन ते, भविन कौं तत्व अनुसरनी ।  
विथरनी शुद्ध दरसन की, मिथ्यातम मोह की हरनी ॥२॥

मुकति मन्दिर के चढ़ने को, सुगम-सी सरल निसरनी ।  
अंधेरे कूप में परतां, जगत उद्धार की करनी ॥३॥

तृषा के ताप मेटन कौ, करत अमृत वचन झरनी ।  
कथंचित वाद आदरनी, अवर एकान्त परिहरनी ॥४॥

तेरा अनुभौ करत मोकौं, बनत आनन्द उर भरनी ।  
फिर पौ संसार दुखिया हूँ, गही अब आनि तुम सरनी ॥५॥

अरज 'बुधजन' की सुन जननी, हरौ मेरी जनम मरनी ।  
नमूं कर जोरि मन वचतैं, लगा के सीस कौं धरनी ॥६॥





राग : भैरो-प्रभाती

# प्रात भयो सब भविजन

प्रात भयो सब भविजन मिलिकै, जिनवर पूजन आवो ।  
अशुभ मिटावो पुन्य बढावो, नैननि नींद गमावो ॥टेक ॥

तनको धोय धारि उजरे पट, सुभग जलादिक ल्यावो ।  
वीतरागछवि हरखि निरखिकै, आगमोक्त गुन गावो ॥  
प्रात भयो सब भविजन मिलिकै, जिनवर पूजन आवो ॥2॥

शास्तर सुनो भनो जिनवानी, तप संजम उपजावो ।  
धरि सरधान देव गुरु आगम, सात तत्त्व रुचि लावो ॥  
प्रात भयो सब भविजन मिलिकै, जिनवर पूजन आवो ॥3॥

दुःखित जनकी दया ल्याय उर, दान चारिविधि द्यावो ।  
राग दोष तजि भजि निज पदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥  
प्रात भयो सब भविजन मिलिकै, जिनवर पूजन आवो ।  
अशुभ मिटावो पुन्य बढावो, नैननि नींद गमावो ॥4॥





# बाबा मैं न काहू का

बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ।  
सुर नर नारक तिरयक गति में, मोकों करमन घेरा रे ॥टेक॥

मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उरझेरा रे ।  
तन धन वसन भवन जड़ न्यारे, हूँ चिन्मूरति न्यारा रे ॥  
बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥१॥

मुझ विभाव जड़कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे ।  
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा, अब आनंदघन हेरा रे ॥  
बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥२॥

खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानंद तेरा रे ।  
जप तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे ॥  
बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥३॥

**अर्थ :** हे भाई! इस जगत में मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, न तो मैं किसी का हूँ और न ही कोई मेरा है।

मुझे तो स्वर्ग, नरक, तिर्यन्व और मनुष्य इन चार गतियों में कर्मों ने मेरी स्वयं की भूल से बाँध रखा है।

माता-पिता, पुत-पली, कुल-परिवारजन ये सब मोह के कारण होने से मुझे उलझाने वाले हैं तथा तन, धन, वस्त्र, भवन आदि ये जड़-पदार्थ तो मुझसे अत्यंत भिन्न हैं और मैं तो इनसे पृथक चैतन्यमूर्ति न्यारा तत्त्व हूँ।

मेरे मैं उत्पन्न होने वाले विकारी भाव पुदुगल कर्मों द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, उन कर्मों ने हमें परेशान कर दिया है, अतः अब मैंने विभावी भावों के चक्र का त्यागकर अपने स्वभाव को धारण कर लिया है, तथा अब मैंने आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

अतः बुधजन कवि कहते हैं कि जब से मैंने अपने चैतन्य आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है तब से मैं किंचित भी दुःख का अनुभव नहीं करता हूँ। समस्त जप, तप, व्रत और जिनागम का भी यही सार है, अतः हे जीव! अब तुझे आत्मकल्याण में देर नहीं करनी चाहिये।



## भज जिन चतुर्विंशति नाम



तर्ज : कवै निर्ग्रथ रवरूप

भज जिन चतुर्विंशति नाम ॥  
जे भजे ते उतरि भवदधि, लयौ शिवसुख धाम ॥टेक ॥

ऋषभ अजित संभव, अभिनंदन अभिराम ।  
सुमति पदम सुपास चंद्रा, पुष्पदंत प्रनाम ॥  
भज जिन चतुर्विंशति नाम ॥१॥

शीत श्रेयान् बासु पूजा, विमल नन्त सुठाम ।  
धर्म शांति जु कुन्थु अरहा, मल्लि राखें माम ॥  
भज जिन चतुर्विंशति नाम ॥२॥

मुनिसुव्रत नमि नेमिनाथा, पास सन्मति स्वाम  
राखि निश्चयजपौ 'बुधजन', पुरै सबकी काम ॥  
भज जिन चतुर्विंशति नाम ॥३॥



# भजन बिन योंही जनम गमायो



भजन बिन यौं ही जनम गमायो ।  
पानी पैल्यां पाल न बांधी, फिर पीछे पछतायो ॥टेक ॥

रामा-मोह भये दिन खोवत, आशा-पाश बंधायो ।  
जप तप संजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो ॥  
भजन बिन यौं ही जनम गमायो ॥१॥

देह सीस जब कांपन लागी, दसन चलाचल थायो ।  
लागी आगि भुजावन कारन, चाहत कूप खुदायो ॥  
भजन बिन यौं ही जनम गमायो ॥२॥

काल अनादि गमायो भ्रमतां, कबहुँ न थिर चित ल्यायो ।  
हरी विषयसुख भरम भूलानो, मृग तिसना-वश धायो ॥  
भजन बिन यौं ही जनम गमायो ॥३॥



## भवदधि तारक नवका जगमाहीं



भवदधि-तारक नवका जगमाहीं जिनवान ॥टेक॥  
नय प्रमान पतवारी जाके, खेवट आत्म ध्यान ॥१॥

मन वच तन सुध जे भवि धारत, ते पहुंचत शिवथान ।  
परत अथाह मिथ्यात भँवर ते, जे नहि गहत अजान ॥२॥

बिन अक्षर जिनमुख तैं निकसी, परी वरनजुत कान ।  
हितदायक 'बुधजन' कों गनधर, गूंथे ग्रन्थ महान ॥३॥



## मति भोगन राचौ जी



राग : उद्घाज जीर्णी रासा  
नित पीज्यो धीधारी

मति भोगन राचौ जी, भव-भव में दुख देत घना ॥टेक॥

इनके कारन गति गति मांही नाहक नाचौ जी ।  
झूठे सुख के काज धरम में पाड़ौ खांचौं जी ॥१॥

पूरब कर्म उदय सुख आया, राजौ माचौ जी ।  
पाप उदय पीड़ा भोगन में, क्यौं मन काचौ जी ॥२॥

सुख अनंत के धारक तुम ही, पर क्यौं जांचौं जी ।  
'बुधजन' गुरु का वचन हिया में, जानौ सांचौ जी ॥३॥



## मुनि बन आये जी बना



तर्ज़ : परमगुरु बरसात ज्ञान झरी

मुनि बन आये जी बना ।  
शिव बनरी व्याहन कौं उमगे, मोहित भविक जना ॥टेक ॥

रत्नत्रय सिर सेहरा बांधे, सजि संवर बसना ।  
संग बराती द्वादश भावन, अरू दश धर्म पना ॥  
मुनि बन आये जी बना ॥१॥

सुमति नारी मिलि मंगल गावत, अजपा गीत घना ।  
राग-दोष की अतिशबाजी, छुट्ट अगनि-कना ॥  
मुनि बन आये जी बना ॥२॥

दुविधि कर्म का दान बटत है, तोषित लोकमना ।  
शुक्लध्यान की अगनि जला करि, होमैं कर्मघना ॥  
मुनि बन आये जी बना ॥३॥

शुभ बेल्यां शिव बनरि बरी मुनि, अद्भुत हरष बना ।  
निज मंदिर में निश्चल राजत, 'बुधजन' त्याग घना ॥  
मुनि बन आये जी बना ॥४॥



## मेरा साँई तौ मोमैं नाहीं



मेरा साँई तौ मोमैं नाहीं न्यारा, जानैं सो जाननहारा ॥टेक ॥  
पहले खेद सह्यौ बिन जानैं, अब सुख अपरंपारा ।

अनंत-चतुष्य धारक ज्ञायक, गुन परजै द्रव सारा ।  
जैसा राजत गंधकुटी में, तैसा मुझमें म्हारा ॥१॥

हित अनहित मम पर विकलप तैं, करम बंध भये भारा ।  
ताहि उदय गति गति सुख-दुख में, भाव किये दुखकारा ॥२॥

काल लब्धि जिन आगम सेती, संशय भरम विदारा ।  
'बुधजन' जान करावन करता, हौँहि एक हमारा ॥३॥





# मेरी अरज कहानी सुनीए

मेरी अरज कहानी सुनीए केवलज्ञानी ।  
चेतन के संग जड़-पुद्गल मिलि, सारी बुधि बौरानी ॥टेक ॥

भव वन माहीं फेरत मोकौं, लख चौरासी ठानी ।  
कबलौं वरनौ तुम सब जानो, जनम मरन दुखखानी ॥  
मेरी अरज कहानी सुनीए केवलज्ञानी ॥1॥

भाग भले तें मिले 'बुधजन' को, तुम जिनवर सुखदानी ।  
मोह फांसि को काटि प्रभुजी, कीजे केवलज्ञानी ॥  
मेरी अरज कहानी सुनीए केवलज्ञानी ॥2॥



## मेरो मनवा अति हर्षय

मेरो मनवा अति हर्षय,  
तोरे दरसन सो मनवा अति हर्षय ।  
शांत छवि लखि शांत भाव है,  
आकुलता मिट जाय ॥टेक ॥



जब लौ चरण निकट नहीं आया, तब आकुलता थाय ।  
अब आवत ही निज निधि पाया, नित नव मंगल पाय ॥  
मेरो मनवा अति हष्य, तोरे दरसन सो अति हष्य ॥१॥

बुधजन अरज करे कर जोरे, सुनिए श्री जिनराय ।  
जब लौ मोख होय नहीं तब लौ, भक्ति करूँ गुणगाय ॥  
मेरो मनवा अति हष्य, तोरे दरसन सो अति हष्य ॥२॥



## या नित चितवो उठिकै



राग : रामकली, जलद तितातो  
तर्ज : सजनवा बैरी हो गए हमार

या नित चितवो उठिकै भोर ।  
मैं हूँ कौन, कहां तैं आयो, कौन हमारी ठौर ॥टेक॥

दीसत कौन, कौन यह चितवत, कौन करत है शोर ।  
ईश्वर कौन, कौन है सेवक, कौन करे झकझोर ॥  
या नित चितवो उठिकै भोर ॥१॥

उपजत कौन मरै को भाई, कौन डरे लखि घोर ।  
गया नहीं आवत कछु नाहीं, परिपूरन सब ओर ॥

या नित चितवो उठिकै भोर ॥२॥

और और मैं और रूप है, परनतिकरि लइ और ।  
स्वांग धरैं डोलौ याही तैं, तेरी 'बुधजन' भोर ॥  
या नित चितवो उठिकै भोर ॥३॥



## सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम



सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम अकारथ जाय ॥टेक॥

अपने सुख में मगन रहत नहिं, पर की लेत बलाय ।  
सीख सुगुरु की एक न मानै, भवभव मैं दुख पाय ॥१॥

ज्यौं कपि आप काठ लीला करि, प्रान तजै बिललाय ।  
ज्यौं निज मुख कर जाल मकरिया, आप मरै उलझाय ॥२॥

कठिन कमायो सब धन ज्वारी, छिन में देत गमाय ।  
जैसे रतन पाय के भोंदू, बिलखे आप गमाय ॥३॥

देव-शास्त्र-गुरु को निहचै करि, मिथ्यामत मति ध्याय ।  
सुरपति बांछा राखत याकी, ऐसी नर परजाय ॥४॥



## सारद तुम परसाद तैं



तर्ज़ : अपनी सुधी भूल आप

सारद ! तुम परसाद तैं, आनन्द उर आया ।  
ज्यौं तिरसातुर जीव कौं, अमृत जल पाया ॥टेक॥

नय परमान निखेप तैं, तत्वार्थ बताया ।  
भाजी भूलि मिथ्यात की, निज निधि दरसाया ॥१॥

विधिना मोहि अनादि तैं, चहुंगति भरमाया ।  
ता हरिवै की विधि सबै, मुझ माहिं बताया ॥२॥

गुन अनन्त मति अलप तैं, मोपै जात न गाया ।  
प्रचुर कृपा लखि रावरी, 'बुधजन' हरषाया ॥३॥



## सुणिल्यो जीव सुजान



सुणिल्यो जीव सुजान, सीख सुगुरु हित की कही  
रुल्यौ अनन्ती बार, गति-गति साता ना लही ॥टेक ॥

कोइक पुन्य संजोग, श्रावक कल नरगति लही ।  
मिले देव निरदोष, वाणी भी जिनकी कही ॥१॥

चरचा को परसग, अरु सरध्या मैं बैठिवो ।  
ऐसा अवसर फेरि, कोटि- जनम नहिं भेंटिवो ॥२॥

झूठी आशा छोड़ि, तत्त्वारथ रुचि धारिल्यो ।  
या मैं कछू न बिगार, आपो आप सुधारिल्यो ॥३॥

तन को आतम मानि, भोग विषय कारज करो ।  
यों ही करत अकाज, भव भव क्यों कूवे परो ॥४॥

कोटि ग्रन्थ कौ सार, जो भाई 'बुधजन' करौ ।  
राग-दोष परिहार, याही भव सौं उद्धरो ॥५॥



सुनकर वाणी जिनवर



सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे हर्ष हिये ना समाय जी ॥

काल अनादि की तपन बुझानी, निज निधि मिली अथाह जी  
सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे हर्ष हिये ना समाय जी ॥

संशय भ्रम और विपर्यय नाशा, सम्यक बुद्धि उपजाय जी  
सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे हर्ष हिये ना समाय जी ॥

नरभव सफल भयो अब मेरो, बुधजन भेंट पाय जी  
सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे हर्ष हिये ना समाय जी ॥



## हम शरन गह्यो जिन चरन



राग - सारंग, हम बैठे अपनी मौन सों

हम शरन गह्यो जिन चरन को ॥टेक ॥  
अब औरन की मान न मेरे, डरहु रह्यो नहि मरन को ॥

भरम विनाशन तत्त्व प्रकाशन, भवदीधि तारन तरन को ।  
सुरपति नरपति ध्यान धरत वर, करि निश्चय दुख हरन को ॥  
हम शरन गह्यो जिन चरन को ॥१॥

या प्रसाद ज्ञायक निज मान्यौ, जान्यौ तन जड़ परन को ।  
निश्चय सिध सो पै कषायतै, पात्र भयो दुख भरन को ॥  
हम शरन गह्यो जिन चरन को ॥२॥

प्रभु बिन और नहीं या जगमैं, मेरे हित के करन को ।  
बुधजन की अरदास यही है, हर संकट भव फिरन को ॥  
हम शरन गह्यो जिन चरन को ॥३॥



## हमकौ कछू भय ना



हमकौ कछू भय ना रे, जान लियौ संसार ॥टेक ॥

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार ।  
निश्चय भेद कछू भी नाहीं भेद गिनैं संसार ॥  
हमकौ कछू भय ना रे, जान लियौ संसार ॥१॥

परवश है आपा विसारि के, राग द्वेष कौं धार ।  
जीवत मरत अनादि कालते, यौंही है उरझार ॥  
हमकौ कछू भय ना रे, जान लियौ संसार ॥२॥

जाकरि जैसैं जाहि समयमें, जो होवत जा द्वार ।  
 सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार ॥  
 हमकौ कछु भय ना रे, जान लियौ संसार ॥३॥

अग्नि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार ।  
 सो पुद्गल रूपी मैं बुधजन, सबकौ जाननहार ॥  
 हमकौ कछु भय ना रे, जान लियौ संसार ॥४॥

**अर्थ :** कवि कहते हैं कि मुझे अब किसी भी प्रकार का डर या भय नहीं है क्योंकि अब मैंने संसार के स्वरूप को जान लिया है।

जैसा मैं निगोद की अवस्था में था वैसा ही अभी हूँ तथा वैसा ही मोक्ष में रहने वाला हूँ। निश्चय दृष्टि से देखें तो निगोद और मोक्ष की अवस्था में कोई अन्तर नहीं है, और जो इनमें भेद गिनते हैं वह सब व्यवहार दृष्टि वाले संसारी हैं।

हे जीव ! तू पर द्रव्यों के वशीभूत होकर आत्मा को भूलकर राग-द्वेष के परिणाम ही करता आ रहा है । जिसके कारण तू अनादि काल से जन्म - मरण के महादुःख पीड़ा को भोग रहा है।

जिस द्रव्य का जिस विधि से, जिस प्रकार से, जिस समय में जो होना सुनिश्चित है, वह होकर ही रहेगा और इसमें कुछ भी परिवर्तन संभव नहीं है - ऐसा मुझे आज निर्णय हो चुका है ।

बुधजन कवि कहते हैं कि जैसे अग्नि का स्वरूप जलाने का और पानी का स्वरूप डुबोने का है उसी प्रकार इस पुदगल शरीर का प्रभाव बिछुड़ने और मिलने का है और मैं तो इन सबको जानने वाला आत्मराम हूँ।



## हे आत्मा देखी दुति तोरी



राग : आसावरी जोगिया जल्द तेतालो  
 थे काहे जावो गिरनारी

हे आत्मा! देखी दुति तोरी रे ॥टेक ॥

निज को ज्ञात लोक को ज्ञाता, शक्ति नहीं थोरी रे ॥१॥

जैसी जोति सिद्ध जिनवरमै, तैसी ही मोरी रे ॥२॥

जड़ नहिं हुवो फिरै जड़के वसि, कै जड़की जोरी रे ॥३॥  
जगके काजि करन जग टहलै, 'बुधजन' मति भोरी रे ॥४॥



## हो जिनवाणी जू तुम



हो जिनवाणी जू तुम मोकों तारोगी ॥टेक॥

आदि अन्त अविरुद्ध बचन तें, संशय भ्रम निरवारोगी ।  
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी ॥1॥

ज्यों प्रतिपालित गाय वत्स कौ, त्यों ही मुझको पालोगी ।  
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी ॥2॥

सन्मुख काल बाघ जब आवै, तब तत्काल उबारोगी ।  
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी ॥3॥

'बुधजन' दास विनवै माता, या विनती उर धारोगी ।  
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी ॥4॥

उलझी रहो हूँ मोह जाल में, ताकों तुम सुरझारोगी ।  
जिनवाणी माता, तुम मोकों तारोगी ॥5॥



## अब घर आये चेतनराज



अब घर आये चेतनराज, सजनी खेलौंगी मैं होरी ॥टेक ॥  
आरस सोच कानि कुल हरिकै, धरि धीरज वरजोरी ॥1॥

बुरी कुमति की बात न बूझै, चितवत है मो ओरी ।  
वा गुरुजन की बलि ले जाऊं, दूरि करी मति भोरी ॥2॥

निज सुभाव जल हौज भराऊं, घोर्ण निजरँग रोरी ।  
निज ल्यौं ल्याय शुद्ध पिचकारी, छिरकन निज मति दोरी ॥3॥

गाय रिझाय आप वश करिकै, जावन धौं नहि पोरी ।  
'बुधजन' रचि पचि रहूं निरंतर, शक्ति अपूरव मोरी ॥4॥

**अर्थ :** हे सखी, चेतन राजा घर आ गये हैं, मैं होली खेलूंगी। दुःख शोक, शर्म, लाज सब छोड़कर धैर्य धारण करूँगी।

मेरे पति अब कुमति की बात नहीं मानते हैं और मेरी ही ओर देखते हैं। मैं अपने गुरुदेव की आभारी हूँ कि उन्होंने उसकी अज्ञान बुद्धि दूर कर दी।

अब मैं अपने स्वभाव जल का कुंड भराऊंगी और उसमें आत्मरंग की रोली घोलूंगी। आत्मलग्न की शुद्ध पिचकारी दौड़कर छिड़केंगी।

अब मैं उसे गाकर, रिझाकर अपने ही वश में रखूँगी, दूसरे के घर नहीं जाने दूँगी । बुधजन कवि कहते हैं कि सदा उसी में गहराई से लीन रहूँगी। मूँझ में अपूर्व शक्ति है।



## और सब मिलि होरि

और सब मिलि होरि रचावैं, हूँ काके संग खेलौंगी होरी ॥टेक ॥



कुमति हरामिनि ज्ञानी पिया पै, लोभ मोह की डारी ठगौरी ।  
भेरै झूठ मिठाई खवाई खोंसि लये गुन करि बरजोरी ॥१॥

आप हि तीन लोक के साहिब, कौन करै इनकै सम जोरी ।  
अपनी सुधि कबहूं नहिं लेते, दास भये डोलैं पर पौरी ॥२॥

गुरु 'बुधजन' तैं सुमति कहत हैं, सुनिये अरज दयाल सु मोरी ।  
हा हा करत हूँ पांय परत हूँ, चेतन पिय कीजे मो ओरी ॥३॥



## खेलूंगी होरी श्रीजिनवर

श्री जिनवर दरबार, खेलूंगी होरी ॥टेक ॥



पर विभाव का भेष उतारूं, शुद्ध स्वरूप बनाय ॥१॥

कुमति नारिकौं संग न राखूं सुमति नारि बुलवाय ॥२॥

मिथ्या भसमी दूर भगाउफं, समकित रंग चुवाय ॥३॥

निजरस छाक छक्यौ 'बुधजन' अब, आनँद हरष बढाय ॥४॥

**अर्थ :** अहो, अब मैं श्री जिनेन्द्र के दरबार में होली खेलूँगी।

पर-विभाव का भेष उतारकर शुद्ध स्वरूप बनाऊँगी।

अब मैं कुमति रूपी स्त्री को अपने साथ नहीं रखूँगी और सुमतिरूपी स्त्री को बुला लूँगी।

मिथ्यात्व रूपी भस्म को दूर हटाकर सम्यक्त्व रूपी रंग लगाऊँगी।

बुधजन कवि कहते हैं कि मैं अब अपने ही रस में छककर अपना आनन्द हर्ष बढ़ाऊँगी।



## चेतन खेल सुमति संग



तर्ज : ये काहे जावो गिरनारी  
राग : आसावरी जोगिया जलद तेतालो

चेतन ! खेल सुमति संग होरी ।  
तोरि आन की प्रीति सयाने, भली बनी या जौरी ॥टेक॥

डगर डगर डोले है यौं ही, आव आपनी पौरी ।  
निज रस फगुवा क्यौं नहिं बांटो, नातर ख्वारी तोरी ॥  
चेतन ! खेल सुमति संग होरी ॥१॥

छार कषाय त्यागी या गहि लै, समकित केशर घोरी ।  
मिथ्या पाथर डारि धारि लै, निज गुलाल की झोरी ॥  
चेतन ! खेल सुमति संग होरी ॥२॥

खोटे भेष धैरै डोलत है, दुख पावै बुधि भोरी ।  
'बुधजन' अपना भेष सुधारो, ज्यौं विलसो शिवगोरी ॥  
चेतन ! खेल सुमति संग होरी ॥३॥

होरी - होली, तोरि - तोड़कर, जौरी - जोड़ी, डगर - गली, पौरी - ऊँदी, फगुआ - फाग, नातर - अन्यथा, ख्वारी - बरबादी, छार - छोड़कर, गहिलै - ग्रहण करले, पाथर -

पत्थर, डारि - डाल कर / फेंककर, धारण कर ले, भोरी - भोली, शिवगोरी - मोक्ष



## चेतन तोसौं आज होरी



चेतन तोसौं आज होरी खेलौंगी रे ॥टेक ॥  
अनँत दिवस क्यौं अनतहि डोल्यौ, ताकौ बदला अब ल्यौंगी रे ॥१॥

जो तैं करी सो भंडुवा गवाऊं, संजमतैं कर बाँधौगी रे ।  
त्रास परीषह लगौगी तेरै, तब सुधताई आवैगी रे ॥२॥

जिन तोकौं दुख दै भरमायौ, ता दुरमतिकौं भगावौंगी रे ।

खोटे भेष धरे लंगर तैं, अब शुभ भेष बना घौँगी रे ॥३॥

समकित दरस गुलाल लगाऊ, ज्ञान सुधारस छिरकौंगी रे ।  
चारित चोबा चरचौं सब तन, दया मिठाई खबावौंगी रे ॥४॥

'बुधजन' यौं तन सफल करौंगी, विधि-विपदा सब चूरौंगी रे ।  
हिलमिल रहुँ बिछुरौं नहिं कबहूं, मन की आशा पूरौंगी रे ॥५॥

**अर्थ :** हे चेतन! आज मैं तुझसे होली खेलूंगी । तू अनन्त काल से अन्यत्र ही डोलता रहा है, अब उसका बदला लूंगी। तूने बहुत उपद्रव किये हैं, पर अब संयम से तेरे हाथ बाँधूंगी । तुझे दुःख लगेंगे, तभी तुझे सुध आएगी। जिसने तुझे दुःख देकर भटकाया है, उस दुर्मति को दूर भगाऊँगी। तूने खोटे वेश धारण किए हैं, परन्तु अब मैं तेरा शुभ रूप बना दूंगी। सम्यग्दर्शन रूपी गुलाल लगाऊँगी, ज्ञाने रूप अमृत रस छिड़कूंगी, चारित्र रूपी चोबा शरीर पर मलूंगी और दया रूपी मिठाई खिलाऊँगी।

बुधजन कवि कहते हैं कि यह तन सफल करके कर्म रूपी दुःखों को नष्ट करूंगी। हम हिलमिल कर रहें, कभी नहीं बिछुड़ें ऐसी मन की आशा पूर्ण करूँगी ।



## निजपुर में आज मची



निजपुर में आज मची रे होरी ॥टेक ॥  
उमगी चिदानंद जी इत आये, इत आई सुमति गोरी ॥

लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी  
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिचुकी छोरी ॥

गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झारसौं वरस्यो री  
देखन आये बुधजन भीगे, निरख्यौ ख्याल अनोखो री ॥

**अर्थ :** अहो, आज निजपुर (आत्मनगर) में होली मची हुई है। देखो, इधर चिदानन्दजी उमंग कर आ रहे हैं और उधर से सुमति गोरी आ रही है। इन्होंने लोकलाज, कुलमर्यादा छोड़कर ज्ञानगुलाल की झोली भर ली है। सम्यक्त्वरूपी केसर का रंग भरकर चारित्र की पिचकारी छोड़ रहे हैं। अजपा गान सुन्दर गा रहे हैं, अनहद नाद बरस रहा है। देखनेवाले ज्ञानी लोग भी इस अनुपम होली को देख कर इसमें भीग गये हैं।



## पं मंगतराय कृत भजन



अरे उड़ चला हंस सैलानी

अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥टेक ॥



मानसरोवर सूना छोड़ा, छोड़ा दाना पानी ।  
जिसको अपना मान रहा था, सब हो गए बेगानी ॥  
अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥१॥

राज-पाट सब तज गए राजा, कुछ न ले गई रानी ।  
बैरागी से रह गए अकेले, रह गई लिखी कहानी ॥

अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥२॥

पतझड़ हुए फूल कुम्लाहे, फल की नाहीं निशानी ।  
बैठा पंछी हुआ हैराना, हो गई आनाकानी ॥  
अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥३॥

माता बाप सुता सुत रोवे, रोवे नार निशानी ।  
जग के नाते रह गए जग में, काल ने एक ना मानी ॥  
अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥४॥

जिसने बोया उसने काटा, जग की रीति पुरानी ।  
चिड़िया चुग गई खेत हे प्यारे, क्या पछताए प्राणी ॥  
अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥५॥

मंगत ल्याग मोह की निद्रा, सोया चादर ताने ।  
अब सुन ले गुरुदेव सुनाए, दुर्लभ श्री जिनवाणी ॥  
अरे उड़ चला हंस सैलानी ॥६॥



धर्म के दशलक्षण



अब छोड़ अनादि भूल, विषय सुख तूल, जगत दुःखमूल,  
कर्म भ्रमभारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम क्षमा)

तन क्रोध घटा घनघोर, उठी चहुँ ओर, शक्ति का मोर,  
जो शोर मचावे, तब हिंसा अंकुर भावभूमि जम जावे ।  
नहीं गिने सबल-बलहीन, अनाथ अरु दीन, करे नित क्षीण,  
रात अरु दिन में, सब भूल जाए उपकार हाय इक छिन में ॥

द्वीपायन क्रोध उपाया, द्वारावती नगर जलाया  
मन समता भाव न आया, हो मुनि नरक पद पाया ॥

तप ऋद्धि सिद्धि भरपूर, क्रोध कर दूर, भाव मुनि सूर,  
वे शुधउपयोगी, सब मारन ताड़न सहैं, जैन के योगी ।  
मुनि उत्तम क्षमा विचार, सहें दुःख भार, क्रोध को मार,  
दया आचारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम मार्दव)

यह जाति लाभ कुल रूप, ज्ञान तप भूप, जो शक्ति अनूप,  
आठ मद मानो, कुछ पर आश्रित कुछ छिनक रूप पहिचानो ।  
है पर्वत सम मद मान, चढे अनजान, लघु जिय जान,  
जीव को हेरे, वह इनको देखे क्षुद्र तभी मुँह फेरे ॥

इक इन्द्री सुर हो जावे, उत्तम नीचा कुल पावे ।  
राजा हो रंक कहावे, क्यों मद में चित भरमावे ॥

तज शयन सेज गज - बाज, जगत का राज, करें निज काज,  
भूमि पर सोते, मुनि पाव पयादा चलें मानमद खोते ।  
सो उत्तम मार्दव जान, विनय सम्मान, तजो अभिमान,  
धर्म परिहारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम आर्जव)

है कपट निपट दुःख भार, बढ़े संसार, कुगति दातार,  
विचारो मन में, नहीं चढे काठ की हंडी फेर अगन में ।  
नहीं मिले कपट धन-माल, यह नटखट चाल, खुले भ्रम जाल,  
अनेक जतन की, जो रूप धरो सो लखे रीति दर्पण की ॥

नहीं छुपे अंत खुल जावे, जो कपटी बात बनावे ।  
फिर कोई नहीं पतियावे, क्यों माया मन भरमावे ॥

मन-वचन-काय त्रिकयोग, शुद्ध उपयोग, धार तज भोग,  
मुनि बड़भागी, सो उत्तम आर्जव धर्म धरें वैरागी ।  
जो मन में करो विचार, वही उच्चार, वही व्यवहार,  
करो परचारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

### (उत्तम सत्य)

नित बोलो वचन संभार, झूठ को टार, निंद परिहार,  
कठोर कराला, जो देखो जानो वही कहो तत्काला ।  
जिस सच में हो जियघात, उठे उत्पात, झूठ सम भ्रात,  
जान विसरावो, नहीं राग-द्वेष से बात से बात मिलावो ॥

वसु राजा नरक सिधारा, पर्वत का वचन सुधारा ।  
नारद गया स्वर्ग मँझारा, है बात विदित संसारा ॥

पशु-पक्षी वचन विहीन, कर्म आधीन, मनुष्य परवीन,  
जन्म का लाहा, तिन लिया जिन्होंने जग में सत्य निवाहा ।  
हो जगत विषै परतीति, करैं सब प्रीति, सत्य की रीति,  
गहो नर-नारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

### (उत्तम शौच)

है लोभ बड़ा इक पाप, देत संताप, सहे दुःख आप,  
जो मन में धारे, घरबार छोड़ रणभूमि मरे अरु मारे ।  
जा बसे अनारज देश, धरे बहु भेष, धर्म का लेश,  
न मन में लावे, जल झूबे वन गिरि भ्रमतैं जान गँवावे ॥

आशा की गले में फाँसी, क्या हुआ भये वनवासी ।

विष रहा काँचुली नाशी, मन रागरु भये उदासी ॥

क्या गंग- जमुन स्नान, तीर्थ जलपान, मैल की खान,  
देह ज्यों धोवे, बिन किये तपस्या दोष दूर नहीं होवे ।  
पर द्रव्य की ममता त्याग, सहित वैराग, शौच में लाग,  
स्व पर हितकारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम संयम)

मन मृग का तन वनवास, इन्द्रियाँ जास, मृगीगण पास,  
केलि नित करते, तेरे धर्म खेत को फिरे रात दिन चरते ।  
रे! जीवरूप किस्सान, तू चादर तान, नींद अज्ञान,  
पड़ा क्यों सोवे, जब उजड़ गया सब खेत बैठ कर रोवे ॥

मन इन्द्रिय विषयन पागे, ते कभी न हित सों लागे ।  
भामण्डलवत् अनुरागे, उत्पात में प्राण वे त्यागे ॥

ले मन इन्द्रिय को जीत, जगत भयभीत, जो संयम प्रीति,  
करो ग्रह शिक्षा, त्रस थावर रक्षा करो धारके दीक्षा ।  
मुनि मन- इन्द्रिय निरोध, जो संयम शोध, धरें चित बोध,  
प्रमाद विसारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम तप)

अनशन अवमौदर्य करो, परिसंख्यान वरो, सुरस परिहरो,  
कसो निजकाया, संन्यास सुधारो षट्तप बाह्य बताया ।  
प्रायश्चित्त स्वाध्याय विचार, वैय्यावृत धार, समाधि संभार,  
छोड़ तन ममता, नित कीजै उत्तम ध्यान जो आवे समता ॥

इच्छा की पवन थमावे, मन का जल अचल बनावे ।  
तब ज्ञान झलक दरसावे, निर्वाण तुरत पद पावे ॥

जस लाभ ख्याति की आस, सकल को नाश,  
करो तप वीरा, दो पंच इन्द्रिन को दण्ड सहो तन पीरा ।  
है यही मनुष गति सार, जगत उद्धार, लहै तप भार,  
मुनि भवतारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

### (उत्तम त्याग)

त्रस थावर हिंसा टार, ज्ञान उपकार, दान विधि चार,  
त्याग के माँहि, सो बिना मुनिव्रत पूरण सधते नाहीं ।  
औषध-श्रुत-अभ्य-आहार, जो चार प्रकार, दो पात्र विचार,  
होय निस्तारा, समदृष्टि श्रावक - मुनि पुरुष या दारा ॥

जिनमत निन्दक नर नारी, द्रोही कलुषित आचारी ।  
ये हैं कुपात्र दुःखकारी, नहीं कहे दान अधिकारी ॥

रथ गऊ रजत गज बाज, देह तुल साज, तिया घर राज,  
लोह कंचन को, है व्युत्पात संक्रांति दान दुर्जन को ।  
बिन परख दया का दान, दुःखी पहचान, सबै सम जान,  
देत आगारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम आकिंचन्य)

चपला सम चपल निहार, लक्ष्मी संसार, है कुलटा नार,  
नहीं कहीं जमती, यह छोड़ सुकुल भरतार नीच सों रमती ।  
हैं छाया माया एक, पकड़ कर टेक, जो गए अनेक,  
छाँव सम ढलती, पर यह न किसी के साथ पैंड भर चलती ॥

इसने जो लोग विसारे, वह जग में भ्रमते सारे ।  
जो इससे हुए किनारे, तज भव भ्रम मुक्ति सिधारे ॥

जीरण तृण सम धनमाल, छोड़ तत्काल, आस जग टाल,  
चले गए वन को, आकिंचन धर्म संभाल शुद्ध कर मन को ।  
मुनि छोड़ जगत का वास, त्याग सब आस, गहे संन्यास,  
मोक्ष अधिकारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

(उत्तम ब्रह्मचर्य)

लख तिया पुरुष सम तात, सुता सुत मात, बहन अरु भ्रात,  
जो नाता गिनते, सो नर नारी निज सुगति महल को चिनते ।

हो उनका यश विख्यात, कलंक नश जात, पाप को घात,  
लहें जगभूषण, हुआ सीता का उपसर्ग शील का दूषण ॥

लख अगनि कुण्ड में धाई, सीता ने टेर लगाई ।  
हो शील विषै चपलाई, तो देह अभी हो छाई ॥

जब कूदी अगनि मंझार, वो लई संभार, अग्नि हुई वारि,  
कमल खिल आए, रच रत्न सिंहासन पूजन को सुर धाये ।  
'मंगत' यह शील विचार, ब्रह्मचर्य सार, मोक्ष दातार,  
को धोक हमारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ॥

पोष वदी तिथी अष्टमी, उगणिस सन पंथास ।  
जैनी वरणी धर्मदास, उर धर परम हुलास ॥



## पं न्यामतराय कृत भजन





राग : सौरठ

# अपने निजपद को मत खोय

अपने निजपद को मत खोय, चेतन में समझाऊं तोय ॥टेक ॥

विकट पंथ जाना है तुझको, मारग में मत सोय ।  
ज्ञान गठरिया लुट जावेगी, तू गाफिल मत होय ॥  
अपने निजपद को मत खोय, चेतन में समझाऊं तोय ॥१॥

मत ना विषय भोग में राचे, मत परनारी जोय ।  
आप बड़ाई पर निंदा मत कर, जो चातुर होय ॥  
अपने निजपद को मत खोय, चेतन में समझाऊं तोय ॥२॥

धरम कलप तरु शिव फल दायक, मत काटे मत खोय ।  
पछतावेगा मूरख चेतन, पाप बबूल न बोय ॥  
अपने निजपद को मत खोय, चेतन में समझाऊं तोय ॥३॥

पर परणति को तजदे 'न्यामत', सब अतर रज धोय ।  
विषय कषाय हलाहल तजकर, पी निज आनंद तोय ॥  
अपने निजपद को मत खोय, चेतन में समझाऊं तोय ॥४॥





# अमोलक मनुष जनम प्यारे

अमोलक मनुष जनम प्यारे, भूल विषयन में मत हारे ॥टेक ॥

चौरासी लख योनि में प्यारे, भ्रमत फिरा चहुं ओर ।  
नरक स्वर्ग तिर्यंच में प्यारे, पाए दुख अति घोर ॥  
कहीं नहीं सुख पायो प्यारे, भूल विषयन में मत हारे ॥१॥

धन दे तन को रखिये प्यारे, तन दे रखिये लाज ।  
धनदे तनद लाज दे प्यारे, एक धरम के काज ॥  
योंही मुनिजन कह गए सारे, भूल विषयन में मत हारे ॥२॥

यही धर्म का सार है प्यारे, कर नित पर उपकार ।  
तज स्वारथ परमार्थ को प्यारे, भजले बारंबार ॥  
'न्यामत' हो भवदधि पारे, भूल विषयन में मत हारे  
अमोलक मनुष जनम प्यारे, भूल विषयन में मत हारे ॥३॥



## अरे यह क्या किया नादान

अरे यह क्या किया नादान, तेरी क्या समझपे पड़ गई धूल ॥टेक ॥



आंब हेत ते बाग लगायो, बो दिये पेड़ बम्बूल ।  
अरे फल चाखेगा रोकेगा, क्या रहा है मन में फूल ॥  
अरे यह क्या किया नादान, तेरी क्या समझपे पड़ गई धूल ॥१॥

हाथ सुमरनी बाँह कतरनी निज पद को गया भूल ।  
मिथ्यादर्शन ज्ञान लिया रहा, समकित से प्रतिकूल ॥  
अरे यह क्या किया नादान, तेरी क्या समझपे पड़ गई धूल ॥२॥

कंचन भाजन कीच उठाया, भरी रजाई शूल ।  
'न्यामत' सौदा ऐसा किया जामें, ब्याज रहा नहीं मूल ॥  
अरे यह क्या किया नादान, तेरी क्या समझपे पड़ गई धूल ॥३॥



## कर सकल विभाव अभाव

कर सकल विभाव अभाव, मिटा दो बिकलपता मन की ॥टेक ॥



आप लखे आपमें आपा गत ब्योहारन की ।  
तर्क वितर्क तजो इसकी और भेद बिज्ञानन की ॥  
कर सकल विभाव अभाव, मिटा दो बिकलपता मन की ॥१॥

यह परमात्म यह मम आत्म, बात बिभावन की ।  
हरो हरो बुधनय प्रमाण की और निक्षेपन की ॥  
कर सकल विभाव अभाव, मिटा दो बिकलपता मन की ॥२॥

ज्ञान चरण की बिकलप छोड़ो छोड़ो दर्शन की ।  
'न्यामत' पुद्गल हो पुद्गल चेतन शक्ती चेतन की ॥  
कर सकल विभाव अभाव, मिटा दो बिकलपता मन की ॥३॥



## क्यों परमादी रे चेतनवा



तर्ज़ : कांटा लागो रे ... बसंत

क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ।  
धरम करो ना जाय, प्रभु का कर्म करो ना जाय ॥टेक॥

निस दिन विषय भोग में राचा, क्रोध लोभ माया मद माचा ।  
पाप करे मन लाय, तोसे धर्म करो ना जाय ।  
क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ॥१॥

खेल तमाशों में निश खोवे, सारी रात खड़ा मुख जोवे ।  
धर्म सुने सो जाय, तोसे धर्म करो ना जाय ।

क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ॥२॥

पाप करम कर द्रव्य कमावे, पाप हेत पर लाख लुटावे ।

दान करत दुख पाय, तोसे धर्म करो ना जाय ।

क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ॥३॥

परबस भूख मरे दुख पावे, कष्ट सहे कुछ पार न जावे ।

ध्यान धरो ना जाय, तोसे धर्म करो ना जाय ।

क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ॥४॥

'न्यामत' सुन घ्योरे जिन बानी, भव-भव मे होवे सुखदानी ।

अन्त मुक्ति ले जाय, तोसे धर्म करो ना जाय ।

क्यों परमादी रे चेतनवा, तोसे धर्म करो ना जाय ॥५॥



## घर आवो सुमति वरनार



तर्जः : तू जाग रे चेतन देव

घर आवो सुमति वरनार तेरी सूरत मन भाती है ॥टेक॥

कुमति दुहाग दिया तुझ कारण जो तू चाहती है ।

पूनम चन्द्र तेरा मुख है क्यों नहीं दिखलाती है ॥  
घर आवो सुमति वरनार तेरी सूरत मन भाती है ॥१॥

मुनि जन इन्द्रबली नारायण सब मन भाती है ।  
स्वर्ग चन्द्र सूरज तू अंत को शिव ले जाती है ॥  
घर आवो सुमति वरनार तेरी सूरत मन भाती है ॥२॥

तुझको पाकर परमाद मोह की थिति घट जाती है ।  
'न्यामत' प्रीति करी तेरे से अब नहीं जाती है ॥  
घर आवो सुमति वरनार तेरी सूरत मन भाती है ॥३॥



## चेतो चेतोरे चेतनवा



तर्ज : कांटा लागो रे -- बसंत

चेतो चेतोरे चेतनवा, मानुष जनम रतन मत खोय ।  
जनम रतन मत खोय, मग में कांटे शूल न बोय ॥टेक ॥

मत ना रागी देव मनावे, मत मिथ्या बाणी मन लावे ।  
विष अमृत ना होय - २  
चेतो चेतोरे चेतनवा, मानुष जनम रतन मत खोय ॥१॥

सुन चेतन जिनमत की बाणी, हितकारी शिवपद की दानी ।  
पाप करम मल धोय -२  
चेतो चेतोरे चेतनवा, मानुष जनम रतन मत खोय ॥२॥

छिन छिनमें आयु घट जावे, वक्त गया फिर हाथ न आवे ।  
जाग पड़ा मत सोय - २  
चेतो चेतोरे चेतनवा, मानुष जनम रतन मत खोय ॥३॥

'न्यामत' सुनले सीख सियानी, जो भाषी जिन केवलज्ञानी ।  
भव भव में सुख होय - २  
चेतो चेतोरे चेतनवा, मानुष जनम रतन मत खोय ॥४॥



## तन मन सारो जी सांवरिया

तन मन सारो जी सांवरिया तुम पर वारना जी



बालापन में कमठ उबारो, अग्नि जलते नाग निवारो  
बैरी करमन मारो नाथ तुमने बैरी करमन मारो  
तप वन धारना जी तुम पर वारना जी

तन मन सारो जी सांवरिया तुम पर वारना जी ॥१॥

जीवाजीव द्रव्य बताये सब जीवन के भरम मिटाये  
शिव मारग दरशाए प्रभु जी तुमने शिव मारग दरशाए  
सत को धारना जी तुम परवार ना जी  
तन मन सारो जी सांवरिया तुम पर वारना जी ॥२॥

स्याद्वाद सप्त भंग बताये, नय प्रमाण निश्चय करवाए  
झूठे मत किए खंडन, हाँ झूठे मत किए खंडन  
सत को धारना जी तुम पर वारना जी  
तन मन सारो जी सांवरिया तुम पर वारना जी ॥३॥

'न्यामत' जिन पारस गुण गाये, पुनि-पुनि चरणन शीश नवाए  
वीतराग सर्वज्ञ तुहीं हितकारना जी,  
हाँ वीतराग सर्वज्ञ तुहीं हितकारना जी  
तन मन सारो जी सांवरिया तुम पर वारना जी ॥४॥



**तुम्हारे दर्श बिन स्वामी**



तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ।  
छवि वैराग्य तेरी सामने आँखों के फिरती है ॥टेक॥

निराभूषण विगतदूशन, परम आसन, मधुर भाषण ।  
नजर नैंनो की आशा की अनी पर से गुजरती है ॥  
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ॥१॥

नहीं कर्मों का डर हमको, कि जब लगे ध्यान चरनन में ।  
तेरे दर्शन से सुनते है करम रेखा बदलती है ॥  
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ॥२॥

मिले गर स्वर्ग की संपत्ति, अचंभा कौन सा इसमें ।  
तुम्हें जो नयन भर देखें, गति दुर्गति ही टलती है ॥  
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ॥३॥

हजारों मूर्तियाँ हमने बहुत सी अन्य मत देखी ।  
शांति मूरत तुम्हारी सी नहीं नजरों में चढ़ती है ॥  
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ॥४॥

जगत सिरताज हो जिनराज 'न्यामत' को दरश दीजे ।  
तुम्हारा क्या बिगड़ता है मेरी बिगड़ी सुधरती है ॥  
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है ॥५॥



## दया दिल में धारो प्यारे



दया दिल में धारो प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥टेक॥

दया धरम का मूल है प्यारे, कहते वेद पुराण ।  
कहीं जीव का मारना नहीं, आता बीच कुरान ॥  
किसी को पढ़ देखो प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥1॥

सुबुकतगी को रहम था एक, हरनी पे आया ।  
रहमदिली से राज जाय गढ़, गजनी का पाया ॥  
दया का फल देखो प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥2॥

दान शील तप भावना प्यारे, संज्ञम ज्ञान बिचार ।  
एक दया बिन जानियो प्यारे, हैं निर्फल बेकार ॥  
नीर बिन ज्यों सरवर प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥3॥

प्राण सबों के जानियो प्यारे, अपने प्राण समान ।  
प्राण हतेगा और के प्यारे, होगी तेरी हान ॥  
सहेगा दुख लाखों प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥4॥

दया करत संसार सुख प्यारे, दया देत निर्वाण ।  
'न्यामत' दया न छोड़ियो चाहे, छूट जांय सब प्राण ॥  
दया दुख सागर से तारे, दया बिन बृथा जतन सारे  
दया दिल में धारो प्यारे, दया बिन बृथा जतन सारे ॥5॥



## भगवन मरुदेवी के लाल



भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ।  
राह बताने वाले सबका, भ्रम मिटाने वाले ॥टेक॥

लीना अवधपुरी अवतार, छा गयो जग में आनन्दकार ।  
बोले सुरनर जय जयकार, सारे जिन गुण गाने वाले ॥  
भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ॥1॥

जग में था अज्ञान महान, तुमने दिया सबों को ज्ञान ।  
करके मिथ्यामत को भान, केवल ज्ञान उपाने वाले ॥  
भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ॥2॥

तुमने दिया धरम उपदेश, जामें राग द्वेष नहीं लेश ।

तुम सतब्रह्मा विष्णु महेश, शिव मारग दर्शने वाले ॥  
भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ॥३॥

जग जीवन पे करुणाधार, तुमने दिया मंत्र नवकार ।  
जिससे हो गये भवदधि पार, लाखों निश्चय लाने वाले ॥  
भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ॥४॥

बैरी कर्म बड़े बल बीर, देते सब जीवों को पीर ।  
'न्यामत' हो रहा अधम अधीर, तुमहीं धीर बँधाने वाले ॥  
भगवन मरुदेवी के लाल, मुक्ति की राह बताने वाले ॥५॥



## मत तोरे मेरे शील का सिंगार



सीता रावण प्रकरण

मत तोरे तोरे मेरे शील का सिंगार ।  
शील का सिंगार मेरा धर्म का सिंगार ॥टेक॥

राजा तेरे रानी कहिये, आषादश हजार ।  
जिस पर तू परतिरया लोभी, जीवन धिक्कार ॥  
मत तोरे तोरे मेरे शील का सिंगार ॥१॥

लाया क्यों नहीं जीत स्वयम्बर खुले दरबार ।  
दण्डक वन से लाया मुझको करके मायाचार ॥  
मत तोरे तोरे मेरे शील का सिंगार ॥२॥

मत ना हाथ लगाना मुझको पापी दुराचार ।  
मैं राखूँगी शील शिरोमणि नातर मर्ण इसबार ॥  
मत तोरे तोरे मेरे शील का सिंगार ॥३॥

'न्यामत' शील जगत में कहिये परम हितकार ।  
अरे जो कोई याको त्यागे पड़े नरक मंज्ञार ॥  
मत तोरे तोरे मेरे शील का सिंगार ॥४॥



## विषय भोग में तूने ऐ जिया



विषय भोग में तूने ऐ जिया, क्यों दिल को अपने लगा दिया ।  
तेरा ज्ञान सूर्य समान है, उसे बादलों में छुपा दिया ॥टेक..

तेरा ज्ञानानन्द स्वरूप है, तेरा ब्रह्मानन्द स्वरूप है ।  
जड़-रूप भोग विलास में, तूने अपने को है भुला दिया ॥  
विषय भोग में तूने ऐ जिया, क्यों दिल को अपने लगा दिया ।

तेरा ज्ञान सूर्य समान है उसे बादलों में छुपा दिया ॥१॥

यह भोग शत्रु समान है, होशियार बन के तू देख ले ।

तेरा यार बन करके तुझे, चारों गति में रुला दिया ॥

तेरा ज्ञान सूर्य समान है उसे बादलों में छुपा दिया ।

विषय भोग में तूने ऐ जिया, क्यों दिल को अपने लगा दिया ॥२॥

तू दिया है ऐसा जहान में, कि जला तो है, नहीं रौशनी ।

तू जला है मोह की ओट में, क्यों ज्ञान अपना डूबा दिया ॥

तेरा ज्ञान सूर्य समान है उसे बादलों में छुपा दिया ।

विषय भोग में तूने ऐ जिया, क्यों दिल को अपने लगा दिया ॥

कुमति ने ऐ 'न्यामत' तुझे, जगजाल में है फँसा दिया ।

दामन सुमति सी नार का, तेरे कर से है छुड़ा दिया ॥

तेरा ज्ञान सूर्य समान है उसे बादलों में छुपा दिया ।

विषय भोग में तूने ऐ जिया, क्यों दिल को अपने लगा दिया ॥



विषय सेवन में कोई



विषय सेवन में कोई भलाई नहीं  
इन सातों में एक सुखदाई नहीं ॥टेक ॥

देखो रावण का हाल, करके सीता से चाल,  
मरा होके बेहाल, पड़ा नरकों के जाल,  
जहां कोई किसी का सहाई नहीं ॥1॥

पांचों पाण्डव कुमार, करके जुआँ व्यवहार,  
दिया द्रौपदी को हार, दुःशासन बदकार,  
हरा द्रोपद का चीर लाज आई नहीं ॥2॥

बक राजा ने मांस खाया करके हुलास  
पड़ी विपदा की फांस रोया ले ले के श्वास  
कोई आकरके धीर बंधाई नहीं ॥3॥

देखो यादव सूजान करके मदिरा का पान  
हुए ऐसे अयान, खोई जल करके जान  
कोई तदबीर उनकी बन आई नहीं ॥4॥

चारुदत्त प्रवीण हुआ, गणिका में लीन  
ब्रह्मदत्त सुरराय मृग मारे वन जाय  
शिवदत्त अजब किया चोरी का ढब,

ऐसे सातों सुवीर सही विषयों की पीर,  
हुई 'न्यामत' किसी की रिहाई नहीं ॥५॥



## भ्रात ऐसी खेलिये



तर्ज़ : मुझको अपने गले लगा तो  
श्याम मौसे खेलो ना होरी

भ्रात ऐसी खेलिये होरी, जामें हो हित तोरी ॥टेक॥

प्रेम गुलाल मलो मुख ऊपर, सुमता से फाग रचोरी ।  
क्रोध लोभ मद काष्ट जला कर, फूँक देओ जैसी होरी ॥  
भ्रात ऐसी खेलिये होरी, जामें हो हित तोरी ॥१॥

झूठ कपट तज होरी खेली, निज कल्याण करोजी ।  
कुंकुम संयम सील बनावो, डारो भर-भर झोरी ॥  
भ्रात ऐसी खेलिये होरी, जामें हो हित तोरी ॥२॥

'न्यामत' ऐसी होरी खेलो, आतम ध्यान धरोजी ।  
राग द्वेष मन दूर करो सब, छोडो निठुर जोरा जोरी ॥  
भ्रात ऐसी खेलिये होरी, जामें हो हित तोरी ॥३॥



# पं बनारसीदास कृत भजन



## ऐसैं क्यों प्रभु पाइये



ऐसे क्यों प्रभु पाइए, सुन मूरख प्रानी ।  
जैसे निरख मरीचिका, मृग मानत पानी ॥

माटी भूमि पहार की, तुहि संपत्ति सूझै ।  
प्रगट पहेली मोह की, तू तऊ न वूझै ॥

ज्यों मृग नाभि सुवाससों, ढुँढत वन दौरे ।  
त्यों तुझ में तेरा धनी, तू खोजत औरे ॥

**अर्थ :** हे मूर्ख प्राणी ! इस तरह ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जैसे मृग माया मरीचिका को देखकर पानी समझता है। और उसके लिए दौड़ता है उसी तरह पहाड़ की मट्टी तुझे संपत्ति सी मालूम पड़ती है। अरे! इस मोह की पहेली को तू नहीं जानता है। जिस तरह कस्तूरिया मृग अपनी नाभि में कस्तूरी रखता है और उसे ढूढ़ने के लिए जंगल में दौड़ता है उसी तरह तेरा स्वामी तुझमें ही छिपा है परन्तु हे मूर्ख ! तू उसे कहीं और जगह ही खोजता फिरता है । तुझे वह कहाँ मिलेगा ?





# ऐसैं यों प्रभु पाइये

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी ।  
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेल मथानी ॥टेक॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै ।  
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै ॥१॥

जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै ।  
तैसे पंडित पिंड की, रचना निरवारै ॥२॥

पिंड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।  
जाने माने रवि रहै, घट व्यापक सोई ॥३॥

चेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया ।  
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया ॥४॥

लच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै ।  
सत्त-सरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै ॥५॥

ज्यों रज सोधै न्यारिया, धन सौ मनकीलै ।  
त्यों मुनिकर्म विपाक में, अपने रस झीलै ॥६॥

आप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै ।  
सेवक साहिब एक हैं, तब को किहि भेंटे ॥७॥

**अर्थ :** हे ज्ञानी पंडित ! ईश्वर की प्राप्ति इस तरह होती है जैसे दही में मथानी डालकर उसको मथकर मक्खन निकाला जाता है ।

जैसे रस में मग्न हुया रसायनी रस की आराधना करता हुआ रसायन को पाता है। उसी तरह ईश्वर को प्राप्त करनेवाला भव्य जीव अपने घट में अपनी ही साधना करता है। और जिस समय आप में अपने आपका निरीक्षण करता है उसी समय वह खुद ही ईश्वर बन जाता है ॥१॥

मन की दुविधा नष्ट हो जाती है और साहिब और सेवक एक हो जाते हैं तब कौन किसकी भेंट करें। हे मूर्ख ! ईश्वर की प्राप्ति इस तरह नहीं होती है। अरे! तू कहाँ भटक रहा है ॥७॥



## कित गये पंच किसान

कित गये पंच किसान हमारे ॥टेक ॥



बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे ।  
कपटी लोगों से साझा कर कर हुये आप विचारे ॥  
कित गये पंच किसान हमारे ॥१॥

आप दिवाना गह गह बैठो, लिख लिख कागद डारे ।  
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचों हो गये न्यारे ॥  
कित गये पंच किसान हमारे ॥२॥

रुक गयो शबद नहिं निकसत, हा हा कर्म सों हारे ।

'बनारसि' या नगर न बसिये, चल गये सीचन हारे ॥  
कित गये पंच किसान हमारे ॥३॥



## चेतन उलटी चाल चले



तर्ज़ : परमगुरु बरसत ज्ञान झारी

चेतन उलटी चाल चले ।  
जड संगत तैं जडता व्यापी निज गुन सकल टले ॥टेक॥

हित सों विरचि ठगनि सों रचि, मोह पिशाच छले ।  
हंसि हंसि फंद सवारि आप ही, मेलत आप गले ॥  
चेतन उलटी चाल चले ॥१॥

आये निकसि निगोद सिंधु तें, फिर तिह पंथ चले ।  
कैसे परगट होय आग जो, दबी पहार तले ॥  
चेतन उलटी चाल चले ॥२॥

भूले भव भ्रम बीचि, 'बनारसी' तुम सुरज्ञान भले ।  
धर शुभ ध्यान ज्ञान नौका चढ़ि, बैठें तें निकले ॥  
चेतन उलटी चाल चले ॥३॥

**अर्थ :** मानव, तुमने बिलकुल विपरीत दिशा में प्रयाण किया ।

जड़वस्तु-कर्म-समूह की संगति से तुम्हारे अन्दर भी जड़ता समा गई और तुम्हारे सहज गुण न मालुम कहाँ विलीन हो गये । आत्मन्, तुम अपनी विपरीत परिणति तो देखो ! तुम अपने हितकर भावों से तो उदास रहे और जो तुम्हारे अहितकर राग-द्वेष आदि वंचक भाव थे उनसे तुमने नेह किया । इतना ही नहीं, मोह-पिशाच ने तुम्हें खूब छला और तुमने बन्धन की रस्सी को खूब संभाल-संभालकर खुशी-खशी अपने हाथों ही अपने गले में फँसाया ।

आत्मन्, तुमने बिलकुल विपरीत दिशा में प्रयाण किया ।

आत्मन्, तुमने निगोद-सागर से निकलकर तो यह दुर्लभ नर-तन पाया और अब अपनी करनी से फिर उसी मार्ग पर जा रहे हो । भला, सोचो तो जो भाग पहाड़ के नीचे दबी हुई है वह क्या आसानी से बाहर आ सकती है । उसके लिये तो पहाड़ फोड़कर ही बाहर लाना होगा । इसी प्रकार जो आत्म-शक्ति चिरकाल से कर्म-बन्धन से निस्तेज पड़ी है उसे जाग्रत और सतेज बनाने के लिए भी महान् प्रयत्न वाञ्छनीय है ।

आत्मन्, तुमने बिलकुल विपरीत दिशा में प्रयाण किया ।

आत्मन्, तुम संसार में भ्रमवश दिव्य ज्ञान भूल रहे हो । इस संसार-सागर से वे ही पार हुए हैं जो शुभ ध्यान का संकल्प लेकर ज्ञान रूपी नौका पर आरूढ़ हुए ।

आत्मन्, तुमने बिलकुल विपरीत दिशा में प्रयाण किया ।



## चेतन तूँ तिहुँ काल अकेला



राग : असावरी

चेतन तूँ तिहुँ काल अकेला ,  
नदी नाव संजोग मिले ज्यों, ज्यों कुटुम्ब का मेला ॥

यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला ।  
सुख सम्पत्ति शरीर जल बुद बुद, विनशत नाहीं बेला ॥

मोही मगन आतम गुन भूलत, पूरी तोही गल जेला ।  
मै-मै करत चहुंगति डोलत, बोलत जैसे छैला ॥

कहत बनारसि मिथ्यामत तज, होय सुगुरु का चेला ।  
तास वचन परतीत आन जिय, होई सहज सुर झेला ॥

**अर्थ :** हे आत्मन् ! तू तीनों काल में अकेला है -- अपने स्वरूप को छोड़कर तेरा पर-वस्तु से किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है, न हुआ है और न होगा । कुटुम्ब का सम्बन्ध तो नदी-नाव के संयोग की तरह है । न वह शास्त्र है और न उसमे अपनापन है ।

जिस प्रकार पटबीजने की क्रीड़ा असार और अनित्य है उसी प्रकार संसार का रूप भी अनित्य और असार है । संसार का सुख, वैभव और शरीर उसी प्रकार नाशवान हैं, जिस प्रकार जल का बबूला आँखों के देखते-देखते ही विलीन हो जाता है । आत्मन् ! तेरी इन वस्तुओं से तनिक भी आत्मीयता नहीं है । हे आत्मन् ! तू तीनों काल में अकेला है ।

हे आत्मन् ! तुम मोह में मस्त होकर आत्म-गुणों को भूल रहे हो -- पर-वस्तुओं को अपनाकर उनमें तीव्रानुराग और आत्म-भाव कर रहे हो । इस भूल के कारण जो तुम भव-कारागृह में बन्दी हो, तुम्हें इसका तनिक भी बोध नहीं है । मोह के कारण आत्मन् ! तुम इसी प्रकार मैं-मैं करते हुए चतुर्गीति के दुख उठा रहे हो, जिस प्रकार बकरा मैं-मैं करता हुआ मिमियाता रहता है । हे आत्मन् ! तू तीनों काल में अकेला है ।

हे आत्मन् ! तुम मिथ्या-बुद्धि छोड़ दो और सद्गुरु की शरण में पहुँचो । अन्तस् में सुगुरु की वाणी पर ही प्रतीति करो । यही एक मार्ग है, जिसका अनुसरण कर सरलता पूर्वक भव-बाधा से मुक्ति मिल सकती है । हे आत्मन् ! तू तीनों काल में अकेला है ।



## चेतन तोहि न नेक संभार



राग : धनाश्री, सजनवा बैरी हो गए हमार

चेतन, तोहि न नेक संभार ।  
नख सिख लों दिढबन्धन बैढे, कौन करे निरबार ॥टेक ॥

जैसे आग पषान काठ में, लखिय न परत लगार ।

मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार ॥

चेतन, तोहि न नेक संभार ॥१॥

ज्यों गजराज पखार आप तन, आपहि डारत छार ।  
 आपहि उगल पाट कौ कोरा, तनहिं लपेटत तार ॥  
 चेतन, तोहि न नेक संभार ॥२॥

सहज कबूतर लोटन को सो, खुले न पेच अपार ।  
 और उपाय न बने 'बनारसि', सुमरन भजन अधार ॥  
 चेतन, तोहि न नेक संभार ॥३॥

**अर्थ :** आत्मन् ! तुम्हें तनिक भी विवेक नहीं है। तुम नख से लेकर शिखातक किस ग्रकार दृढ़ बन्धनसे वेष्टित हो, इसकी तुम्हें किंचित् भी जानकारी नहीं है। आत्मन् ! पता नहीं, इस अविवेकपूर्ण अवस्था में पड़े हुए तुम्हारा कैसे उद्धार होगा ? आत्मन् ! तुम्हें तनिक भी विवेक नहीं है।

आत्मन् ! जिस प्रकार आग, पथर और काठ को जलान में कुछ भी विवेक नहीं करती तथा मदिरा पीनवाला भी उन्मत्त अवस्था में उचित-अनुचित एवं कर्तव्य-अकर्तव्य का तनिक भी विवेक नहीं रखता, उसी भाँति आत्मन्, अज्ञानावस्था में तुम्हारी प्रवृत्ति की दशा है। आत्मन् ! तुम्हें तनिक भी विवेक नहीं है।

आत्मन् ! जिस प्रकार हाथी स्नान करने पर भी अपने शरीर पर धूल डाल लेता है। यह नहीं सोचता कि स्नान करन के बाद धूल डालने से स्नान करना निरर्थक हो जाता है और जिस प्रकार रेशम का कीड़ा तन्तुओं को उगलकर स्वयं उनके बन्धन में बंधता है, उसी प्रकार आत्मन् ! तुम्हारी अविवेकमय प्रवृत्तियाँ ही तुम्हें बन्धन में डालती हैं। आत्मन् ! तुम्हें तनिक भी विवेक नहीं है।

आत्मन् ! जिस प्रकार अदूरदर्शी कपोत विश्वाम करने के लिए पिजड़े के अद्दर चला जाता है और पुनः कीली बन्द होते ही उसमें से निकलना कठिन हो जाता है। उस समय उसके उद्धार का मार्ग केवल एक यही शेष रहता है कि वह भगवान् के मांगलिक गुणों का स्मरण कर अपने अशुभ कर्मों को उपशान्त करे और इस प्रकार दुखद बन्धन से मुक्ति प्राप्त करे। उसी भाँति आत्मन् ! जब अपनी अविवेकपूर्ण प्रवृत्तियों से तुम कर्म-बन्धन से आबद्ध हो तब तुम्हारा उससे मुक्त होने का केवल एक ही उपाय है कि तुम निष्कलंक भगवान् के गुणों का स्मरण और भजन करो और इस प्रकार बन्धन-मुक्त होकर शास्वत् सुख प्राप्त करो। आत्मन् ! तुम्हें तनिक भी विवेक नहीं है।



## चेतन रूप अनुप अमूरत



चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो ॥टेक॥

मोह महातम आतम अंग कियो, परसंग महातम-घेरो ॥१॥

ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहुँ गुण नाटक आगम केरो ॥२॥

जासु प्रसाद सधे शिव मारग, वेगि मिटे भववास बसेरो ॥३॥



## जगत में सो देवन



तर्ज : अब हम अमर भये

जगत में सो देवन को देव ।  
जासु चरन परसै इन्द्रादिक, होय मुक्ति स्वयमेव ॥टेक॥

जो न छुधित, न तृषित, न भयाकुल, इंद्री विषय न बेव ।  
जनम न होय, जरा नहिं व्यापै, मिटी मरन की टेव ॥  
जगत में सो देवन को देव ॥१॥

जाकै नहिं विषाद, नहिं बिस्मय, नहिं आठों अहमेव ।  
राग विरोध मोह नहिं जाके, नहिं निद्रा परसेव ॥  
जगत में सो देवन को देव ॥२॥

नहिं तन रोग, न श्रम, नहिं चिंता, दोष अठारह भेव ।  
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ॥  
जगत में सो देवन को देव ॥३॥



## दुविधा कब जैहै या



राग : गौरी, तर्ज : सजनवा बैरी हुई गए हमार

दुविधा कब जैहै या मन की ॥टेक ॥  
कब निजनाथ निरंजन सुमिरों, तज सेवा जन-जन की ॥१॥

कब रुचि सौ पीवौं दृग चातक, बूँद अखयपद धन की ।  
कब शुभ ध्यान धरौ समता गहि, करूँ न ममता तन की ॥  
दुविधा कब जैहै या मन की ॥२॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दढ़ता सुगुरु वचन की ।  
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥  
दुविधा कब जैहै या मन की ॥३॥

कब घर छाँडि होहूं एकाकी, लिये लालसा वन की ।

# ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि-बलि वा छिन की ॥ दुविधा कब जैहै या मन की ॥४॥

**अर्थ :** न मालूम, हमारे मन की यह दुविधा कब दूर होगी ? वह अवसर कब आवेगा, जब में इन पामर मनुष्यों की गुलामी से छुटकारा प्राप्त करूँगा और अपने निर्विकार आत्माराम की अलख जगाऊँगा ?

न जाने कब हमारे नेत्र-चातक\* घनीभूत अक्षय पद की सरस बिन्दुओं का रुचि के साथ पान करेंगे - वह समय कब आवेगा जब हमारा मन निराकुल मोक्ष-पद की प्राप्ति के लिए ही अहनिश चिन्ताशील रहेगा और वह शुभ घड़ी, न जाने जीवन में कब आवेगी जब हमारे परिणामों में समता भाव की जागृति होगी और हमारा चिन्तन आत्म-विशुद्धि की ओर अग्रसर होगा । इसके अतिरिक्त वह अवस्था भी प्राप्त होगी जब हमारे मन में अपने शरीर के प्रति भी ममत्व-बुद्धि शेष न रहेगी ? न जानें, हमारे मन की यह दुविधा कब दूर होगी ?

न जाने, आत्मा के अन्दर सुगुरु के वचनों के प्रति एकरस दृढ़ता कब जागृत होगी और न जाने वह समय कब आवेगा जब आत्मा के भीतर वास्तविक भेद-विज्ञान की उज्ज्वल ज्योति जलेगी और वास्तविक सुख की प्राप्ति होगी । इसके सिवाय वह क्षण भी, न जाने, कब आवेगा जब धन के प्रति लेश भी ममत्व-भाव न रहेगा ? न मालूम हमारे मन की यह दुविधा कब दूर होगी ?

न मालूम, जीवन में वह क्षण कब आवेगा जब मैं घर छोड़कर बिलकुल एकाकी होकर वनवासी बनूँगा । पता नहीं यह सुयोग मुझे कब मिलेगा । मैं उसकी चिर प्रतीक्षा में हूँ। उस सौभाग्यपूर्ण क्षण पर मैं सौ बार निछावर हूँ ।

\*चातक पक्षी स्वाती नक्षत्र में बरसने वाले जल को बिना पृथ्वी में गिरे ही ग्रहण करता है, इसलिए उसकी प्रतीक्षा में आसमान की ओर टकटकी लगाए रहता है। वह प्यासा रह जाता है। लेकिन ताल तलैया का जल ग्रहण नहीं करता।



## देखो भाई महाविकल



तर्ज़ : अरे जिया जग धोखे की टाटी

देखो भाई महाविकल संसारी ।  
दुखित अनादि मोह के कारन, राग द्वेष भ्रम भारी ॥टेक॥

हिंसारंभ करत सुख समझै, मृषा बोलि चतुराई ।  
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढ़त बड़ाई ॥

देखो भाई महाविकल संसारी ॥१॥

वचन राख काया वढ़ राखै, मिटे न मन चपलाई ।  
यातै होत और की औरें, शुभ करनी दुःख दाई ॥  
देखो भाई महाविकल संसारी ॥२॥

जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागे ।  
कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै ॥  
देखो भाई महाविकल संसारी ॥३॥

आगम वेद सिद्धांत पाठ सुनि, हिये आठ मद आनै ।  
जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै ॥  
देखो भाई महाविकल संसारी ॥४॥

जड सौं राचि परम पद साधै, आतम शक्ति न सूझै ।  
बिना विवेक विचार दरब के, गुण परजाय न बूझै ॥  
देखो भाई महाविकल संसारी ॥५॥

जस वाले जस सुनि संतोषै, तप वाले तन सोषै ।  
गुन वाले परगुन को दोषै, मतवाले मत पोषै ॥  
देखो भाई महाविकल संसारी ॥६॥

# गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोह विकलता छूटै । कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै ॥ देखो भाई महाविकल संसारी ॥७॥

**अर्थ :** हे भाई! देखो तो यह संसारी मानव कितना अधिक दुखी है!

यह मानव अनादिकाल से आत्मा के साथ सम्बद्ध मोह के कारण दुःखी है और राग-द्वेष तथा अज्ञान के दुःसह भार को ढो रहा है।

जीव दूसरे प्राणियों को पीड़ाकारक घोरतम हिंसा से पूर्ण आरम्भ-कार्य करता है; परन्तु उसमें भी वह सुख का ही अनुभव करता है। असत्य भाषण करके दूसरे प्राणी के अन्तस् में ठेस पहुँचाता है, परन्तु अपना स्वार्थ सिद्ध होने से उसमें एक गम्भीर चतुराई मानता है। दूसरे के द्रव्य का अपहरण करके समर्थ और शक्तिशाली समझता है। और अनेक चिन्ताओं के मूल कारण परिग्रह की वृद्धि होने पर भी आत्म-सम्मान की वृद्धि का अनुभव करता है। हे भाई! देखो तो यह संसारी मानव कितना अधिक दुखी है।

संसारी मानव सम्यक् सुख प्राप्त करने के ध्येय से अपने वचन की अनर्गल प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखता है और शरीर का भी दृढ़ता से संगोपन करता है; पर मन की चपलता शान्त नहीं हो पाती। परिणाम यह होता है कि मानव की प्रशस्त साधना भी अंमंगलकारिणी और दुःखद हो सिद्ध होती है। हे भाई! देखो तो संसारी मानव कितना अधिक दुःखी है।

यह मानव अनेक प्रकार के योग के आसनों का अवलम्ब लेकर अशुभ प्रवृत्तियों को रोकता है; परन्तु आत्म-दृष्टि जाग्रत नहीं हो पाती और उसके अभाव में शान्ति-लाभ सर्वथा दुष्कर हो जाता है। इतना ही नहीं, यह अनेक दिव्य उपदेशों का दान करता हुआ 'महत्त' जैसी दुर्लभ उपाधियों को भी प्राप्त कर लेता है; परन्तु अन्तस् से ममता नहीं निकल पाती और वह दुःखी का दुःखी ही बना रहता है। हे भाई! देखो तो संसारी मानव कितना अधिक दुःखी है।

यह मानव आगम, वेद और सिद्धान्तशास्त्रों का पाठ सुनता है, फिर भी इसके इूदय से जाति, लाभ, कुल, बल, तप, विद्या एवं प्रभुता का मद दूर नहीं हो पाता, जिसके कारण यह उन्मत्त को भाँति निरन्तर अपने 'अहं' में चूर रहता है और व्याकुल बना रहता है। हे मानव! देखो तो संसारो मानव कितना दुःखी है।



## भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट, सीतल चित्त भयौ जिम चंदन ।



केलि करे सिव मारगमैं, जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन ॥१॥

सत्यसरूप सदा जिन्हकै, प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन ॥२॥

सांतदसा तिन्हकी पहिचानि, करै कर जोरि बनारसि वंदन ॥३॥

**अर्थ :** जिनके हृदय में निज-पर का विवेक प्रगट हुआ है, जिनका चित्त चन्दन के समान शीतल है अर्थात् कषायों का आताप नहीं है, जो निज-पर विवेक होनेसे मोक्षमार्ग जिनके लिए (केलि) खेल है, जो संसार में अरहंत-देव के लघु पुत्र हैं (थोड़े ही काल में अरहंत पद प्राप्त करनेवाले हैं), जिन्हें (मिथ्यात-निकंदन) मिथ्यादर्शन को नष्ट करनेवाला (अवदात) निर्मल सम्यगदर्शन प्रकट हुआ है; उन सम्यगदृष्टि जीवों की आनंदमय अवस्था का निश्चय करके पं. बनारसीदासजी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं ॥



## भोंदू भाई ते हिरदे की आँखें



तर्ज : अरे जिया जग धोखे की

भोंदू भाई, ते हिरदे की आँखें ।

जै करषै अपनी सुख सम्पति, भ्रम की सम्पति नाखें ॥टेक॥

जे आँखें अमृतरस बरसैं, परखैं केवल वानी ।

जिन्ह आँखिन विलोक परमारथ, होहिं कृतारथ प्रानी ॥

भोंदू भाई, ते हिरदै की आँखैं ॥१॥

जिन आँखिनहिं दशा केवल की, कर्म लेप नहिं लागै ।  
जिन आँखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै ॥

भोंदू भाई, ते हिरदै की आँखें ॥२॥

जिन आँखिन सौं निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै ।  
जिन आँखिन सौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै ॥  
भोंदू भाई, ते हिरदे की आँखें ॥३॥

जिन आँखिन के जगे जगत के, लगे काज सब झूठे ।  
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख, विषय-विकार अपूठे ॥  
भोंदू भाई, ते हिरदे की आँखें ॥४॥

इन आँखिन में प्रभा परम को, पर सहाय नहीं लेखें ।  
जे समाधि सौं लखे अखण्डित, ढके न पलक निमेखैं ॥  
भोंदू भाई, ते हिरदै की आँखें ॥५॥

जिन आँखिन की ज्योति प्रगटकैं, इन आँखिन में भासै ।  
तब इनहूं की मिटे विषमता, समता रस परगासै ॥  
भोंदू भाई, ते हिरदे को आँखें ॥६॥

जे आँखैं पूरनस्वरूप धरि, लोकालोक लखावैं ।  
ए वे यह वह सब विकल्प तजि, निरविकल्प पद पायें ॥  
भोंदू भाई, ते हिरदे को आँखें ॥७॥

**अर्थ :** भाई ! हिये की आँखें वे हैं जो अपनी शाश्वत सुख-सम्पदा को निहारती हैं और भ्रम उपजाने वाली ऊपरी चमक-दमक को नकारती हैं। वे आँखें केवल ज्ञानी परमात्मा द्वारा प्रसारित वाणी का स्पर्श करके, समता के अमृत-रस की वर्षा करती हैं। यही वे नेत्र हैं जिनके द्वारा परमार्थ का दर्शन करके जीव अपना जीवन सार्थक कर लेता है।

भोले मानव, वे ही हृदय की सच्ची आँख हैं, जिनके कारण केवली के पद की प्राप्ति होती है और जिनके कारण आत्मा कर्म के बन्धन से लिप्त नहीं होता और वे ही सच्ची आँखें हैं, जिनके अन्तस् में प्रकट होते ही आत्मा में निरञ्जन अलख की उज्ज्वल ज्योति जागृत हो जाती है।

जिन आँखों से आत्मा और अनात्मा का भेद पाकर, तथा अपने शाश्वत गुणों को निरखकर, ज्ञानी जन आत्म-ज्ञान का चिन्तवन करते हैं, और धारणा प्राप्त करते हैं, और जिन आँखों का विमल प्रकाश इन चर्म-चक्षुओं की विषमता समाप्त करके इनमें भी समता कीज्योति जला देता है, ये वही हृदय की सच्ची आँखें हैं।

भोले मानव, वे ही हृदय की सच्ची आँखें हैं, जिनके हृदय में जाग्रत् होते ही संसार के समस्त कार्यों से अनुरागपूर्ण आसक्ति दूर हो जाती है, मानव मोक्ष-मार्ग की ओर प्रयाण करने लग जाता है और उसका मन विषय-विकार से एकदम अछूता हो जाता है।

भोले मानव, वे ही हृदय की सच्ची आँखें हैं, जिनमें वह सातिशय प्रभा जाज्वल्यमान रहती है जिसे कभी भी किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती और जो समाधि के द्वारा अखण्ड वस्तु का यथार्थ परिज्ञान रखती हैं तथा न जिनपर कोई पदार्थ आकरण कर पाता है और न ही कभी जिनके पलक झपते हैं।

मानव, जब इन अस्त नेत्रों की ज्योति अपने जाग्रत रूप में इन चर्म-चक्षुओं में झलकन लगेगी-ये चर्म-चक्षु भी अन्तर्नेत्रमय हो जावेंगे तब इनका यह वैषम्य दूर हो जायगा और इनमें भी समता-रस लहराने लगेगा। भोले मानव, वे ही हृदय की सच्ची आँखें हैं।

मानव, जो आँखें अपना सम्पूर्ण स्वरूप प्राप्त करके लोक और अलोक का दर्शन कराती हैं और समस्त विकल्पों को दूरकर निविकल्प पद की प्राप्ति कराती हैं। भोले मानव, वे ही हृदयकी सच्ची आँखें हैं।



## भोंदू भाई समुझ सबद



भोंदू भाई! समुझ सबद यह मेरा ।  
जो तू देखे इन आँखिन सौं, तामैं कछू न तेरा ॥टेक॥

ए आँखैं भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी ।  
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इन ही कौ रागी ॥१॥

ए आंखैं दोउ रची चाम की, चामहि चाम विलोवै ।  
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ॥२॥

इन आंखिन कौ कौन भरोसौ, एक विनसें छिन माही ।  
है इनको पुद्गल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ॥३॥

पराधीन बल इन आंखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझै ।  
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनौं कर बूझे ॥४॥

खुले पलक ए कछ इक देखहि, मुंदे पलक नहिं सोऊ ।  
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखैं दोऊ ॥५॥

जंगम काय पाय एक प्रगटै, नहिं थावर के साथी ।  
तू तो मान इन्हें अपने दृग, भयौ भीम को हाथी ॥६॥

तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै ।  
कै तो सहज खलै वे आंखैं, के गुरु संगति खोलै ॥७॥

**अर्थ :** अरे भोले मानव ! तुम मेरी इस बात पर तो विचार करो ।  
जो कुछ तुम इन आँखों से देख रहे हो और अपना समझ रहे हो, उसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है ।

ये आंखे भ्रम ही से उत्पन्न हुई हैं और भ्रम ही के रस में सनी हुई हैं। जहां-जहां भ्रम है, वहाँ-वहाँ इन आँखों का भ्रम है (भ्रम में इन आँखों का ही प्रधान हाथ है), फिर भी तू इन आँखों का रागी बना हुआ है ।

ये दोनों आँखें चमड़े की बनी हैं और चर्म-चर्मक सिवाय वस्तु के अन्तर रूप का दर्शन तो इनसे हो ही नहीं सकता । ये वही आँखें हैं, जिनके कारण तू मोह-निद्रा में मग्न संसार-स्वप्न को देखता है ।

इन आँखों का क्या भरोसा? ये तो क्षण-भर में नष्ट हो सकती है । इंका तो पुद्धल से परिचय है । पर तू तो पुद्धल नहीं है, फिर पर-वस्तु पर क्यों इतना राग और विश्वास करता है?

इन आँखों की पराधीनता देखो, इसको बिना प्रकाश के नहीं दिखाई देता । जिन अग्नि या सूर्य के प्रकाश से देखने वाली आँखों को तू अपना क्यों समझता है?

जब तक पलकें खुली रहती हैं, तब तक तो ये आँखें देख पाती हैं, जैसे ही पालक बन्द हुए कि ये कुछ नहीं देख पातीं । कभी ये आँखें चली जाती हैं, कभी फिर वापस आ जाती हैं, दोनों ही आँखें भ्रामक हैं।

इन आँखों का जंगम-शरीर (त्रस-पर्याय) से ही संबंध है, स्थावर काय के साथ ये नहीं पाई जाती । तूने तो इन्हें अपने निज के नेत्रा मान लिए हैं और फलतः इस प्रकार मतवाला हो गया है जैसे भीम का हाथी ।

तेरे वास्तविक नेत्र तेरी आत्मा के अन्दर बन्द पड़े हुए हैं और तू अन्धा होकर डोल रहा है । या तो ये आँखें खुद ही खुलती हैं (स्वयं-बुद्ध) या सदगुरु की संगति में (बोधित-बुद्ध) खुलती हैं ।



## मग्न है आराधो साधो



मग्न है आराधो साधो अलख पुरुष प्रभु ऐसा ।  
जहां जहां जिस रस सौं राचै, तहां तहां तिस भेसा ॥टेक॥

सहज प्रवान प्रवान रूप में, संसै में संसैसा ।

धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान में लैसा ॥१॥

उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदय सरूप उदैसा ।

व्यवहारी व्यवहार करम में, निहचै में निहचैसा ॥२॥

पूरण दशा धरे सम्पूरण, नय विचार में तैसा ।

दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा ॥३॥

नाहीं कहत होई नाहीं सा, हैं कहिये तो है सा ।

एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहां लौं कैसा ॥४॥  
वह अपार ज्यौं रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यों ऐसा ।  
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसे का तैसा ॥५॥



## मूलन बेटा जायो रे

मूलन बेटा जायो रे साधो,  
जानै खोज कुटुम्ब सब खायो रे ॥टेक ॥



जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोई भाई ।  
काम क्रोध दोई काका खाये, खाई तृष्णना दाई ॥१॥

पापी पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोइ माया ।  
मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा ॥२॥

दुरमति दादी खाई दादो, मुख देखत ही मुओ ।  
मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हुओ ॥३॥

नाम धरयो बालक को भोंदू, रूप बरन कछु नाहीं ।  
नाम धरंते पांडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई ॥४॥

**अर्थ :** कवि बनारसीदास ने एक आध्यात्मिक बेटे के जन्म को दिखाने का प्रयास किया है। वह आध्यात्मिक बेटा 'शुद्धोपयोग' है। दोनों में बड़ी कुशलता से 'सांगरूपक' रचा गया है।

जिस प्रकार मूल नक्षत्र में उत्पन्न होनेवाला पुत्र समूचे कुटुम्ब को खा जाता है, ठीक वैसे ही शुद्धोपयोग के उत्पन्न होते ही परिवार-सम्बन्धी माया-ममता बिलकुल समाप्त हो गयी। उसने जन्म लेते ही ममता-रूपी माता, मोह-लोभरूपी दोनों भाई, काम-क्रोधरूपी दो काका और तृष्णा रूपी धाय को खा लिया।

पापरूपी पड़ोसी, अशुभ कर्मरूपी मामा और घमण्ड नगर के राजा को समाप्त ही कर दिया, तथा स्वयं समूचे गाँव में फैल गया।

उसने दुर्मतिरूपी दादी को खा लिया और दादा तो उसका मुख देखते ही मर गया था। इस बालक के उत्पन्न होने पर भी मंगलाचार के बधाये गाये गये थे।

इस बालक का नाम भौदू रखा गया, क्योंकि उसके कुछ भी रूप ओर वर्ण नहीं हैं। यह तो ऐसा बालक है, जिसने नाम रखनेवाले पाण्डे को भी खा लिया है।



## मेरा मन का प्यारा जो



मेरा मन का प्यारा जो मिले, मेरा सहज सनेही जो मिलै ।  
अवधि अजोध्या आत्मराम, सीता सुमति करै परणाम ॥टेक॥

उपज्यो कंत मिलन को चाव, समता सखी सों कहै इह भाव ।  
मैं विरहिन पिय के आधीन, यों तलफों ज्यों जल बिन मीन ॥१॥

बाहिर देखूँ तो पिय दूर, घट देखे घट में भरपूर ।  
घटमहिं गुप्त रहै निरधार, वचन अगोचर मन के पार ॥२॥

अलख अमूरति वर्णन कोय, कबधों पिय को दर्शन होय ।  
सुगम सुपंथ निकट है ठौर, अंतर आड विरह की दौर ॥३॥

जउ देखों पिय की उनहार, तन मन सबस डारों वार ।  
होहुं मगान मैं दरशन पाय, ज्यों दरिया में बूँद समाय ॥४॥

पिय को मिलों अपनपो खोय, ओला गल पाणी ज्यों होय ।  
मैं जग छूँढ फिरी सब ठोर, पिय के पटतर रूप न ओर ॥५॥

पिय जगनायक पिय जगसार, पिय की महिमा अगम अपार ।  
पिय सुमिरत सब दुख मिटजाहिं, भोर निरख ज्यों चोर पलाहिं ॥६॥

भयभंजन पिय को गुनवाद, गदगंजन ज्यों के हरिनाद ।  
भागई भरम करत पियध्यान, फटइ तिमिर ज्यों ऊगत भान ॥७॥

दोष दुरह देखत पिय ओर, नाग डरइ ज्यों बोलत मोर ।  
बसों सदा मैं पिय के गांउ, पिय तज और कहाँ मैं जाउँ ॥८॥

जो पिय-जाति जाति मम सोइ, जातहिं जात मिलै सब कोइ ।  
पिय मोरे घट मैं पियमाहिं, जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहिं ॥९॥

पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति ।  
पिय सुखसागर मैं सुखसींव, पिय शिवमन्दिर मैं शिवनीव ॥१०॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम ।

पिय शंकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मैं केवलबानि ॥११॥

पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष, पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ।  
पिय मो रसिया मैं रसरीति, पिय व्योहारिया मैं परतीति ॥१२॥

जहाँ पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध, जहाँ पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध ।  
जहाँ पिय राजा तहाँ मैं नीति, जहें पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥१३॥

पिय गुणग्राहक मैं गुणपति, पिय बहुनायक मैं बहुभाँति ।  
जहें पिय तहें मैं पिय के संग, ज्यों शशि हरि में ज्योति अभंग ॥१४॥

पिय सुमिरन पिय को गुणगान, यह परमारथ पंथ निदान ।  
कहइ व्यवहार 'बनारसि' नाव चेतन सुमति सटी इकठांव ॥१५॥



## या चेतन की सब सुधि



राग : भैरू

या चेतन की सब सुधि गई, व्यापत मोह विकलता गई ।  
है जड़ रूप अपावन देह, तासौं राखै परम सनेह ॥टेक॥

आइ मिले जन स्वारथ बंध, तिनहि कुटुम्ब कहै जा बंध ।

आप अकेला जनमै मरै, सकल लोक की ममता धरै ॥१॥

होत विभूति दान के दिये, यह परपंच विचारै हिये ।  
भरमत फिरै न पावइ ठौर, ठानै मूढ़ और की और ॥२॥

बंध हेत को करै जु खेद, जानै नहीं मोक्ष को भेद ।  
मिटै सहज संसार निवास, तब सुख लहै 'बनारसीदास' ॥३॥



## रे मन कर सदा संतोष

रे मन! कर सदा संतोष,  
जातैं मिटत सब दुख दोष ॥टेक॥



बढ़त परिग्रह मोह बाढ़त, अधिक तृष्णा होति ।  
बहुत ईंधन जरत जैंसे, अग्नि ऊँची जोति ॥१॥

लोभ लालच मूढ़ जन सो, कहत कंचन दान ।  
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धन की हान ॥२॥

## नारकिन के पाँय सेवत, सकुचि मानत संक । ज्ञान करि बुझै 'बनारसी' को नृपति को रंक ॥३॥

**अर्थ :** अरे मन, तू सदैव संतोष धारण कर । तुझे मालूम नहीं, इस संतोष के आश्रय से ही संसार के समस्त दुःख और दोष दूर होते हैं ।

परिग्रह के बढ़ने से मोह बढ़ता है और मोह के बढ़ने से तुष्णा बढ़ती है । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अग्नि में अधिक ईधन के डालने से उसकी ज्वाला और अधिक ऊँची होती जाती है ।

रे मन, तू सदैव संतोष धारण कर ॥

मानव परिग्रह-संचय करके सुवर्ण का दान करता है और कहता है हमारे परिग्रह में कौन-सा पाप है, हम तो ऐसा करके सुवर्ण-दान तक करते हैं, परन्तु यह मूर्ख परिग्रह-संचय के पृष्ठवर्ती लोभ और लालच की सीमा पर कुछ भी विचार नहीं करता, जिसकी प्रेरणा से यह परिग्रह संचित किया जाता है । इसके अतिरिक्त इस संचय की आसक्ति में जो यह अहर्निश निमग्न रहता है और इस प्रकार जिस धर्म-धन की हानि उठाता है, उस ओर तो: इसका ध्यान ही नहीं जाता ।

रे मन, तू सदैव संतोष धारण कर ॥

मूढ़ मानव आशा के पीछे नारकियों के - अन्यायी धनियों के पैर पूजता है और उनकी गुलामी करता है और अपने को दीन समझकर सदैव संकोच करता है और संदिग्ध बना रहता है । इसे इतना आत्म-भान नहीं हो पाता कि प्रत्येक जीवात्मा के अन्दर अनन्त-ज्ञान और शान्ति का पुंज छिपा हुआ है और वह संसार में सब कुछ कर सकता है ।

रे मन, तू सदैव संतोष धारण कर ॥



## वा दिन को कर सोच



वा दिन को कर सोच जिय मन में ।  
बनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारी ॥टेक ॥

ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी ।  
आखिर बाजी हारी, करले चलने की तथ्यारी ॥  
इक दिन डेरा होयगा वन में ॥वा...१॥

झूठे नैना उल्फत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी ।  
इक दिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी ॥  
नाहक चित्त लगावे धन में ॥वा...२॥

मिट्टी सेती मिट्टी मिलियो, पानी से पानी ।  
मूरख सेती मूरख मिलियौ, ज्ञानी से ज्ञानी ॥  
यह मिट्टी है तेरे तन में ॥वा...२॥

कहत 'बनारसि' सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवाना ।  
जीवन मरन किया सो नांही, सिर पर काल निशाना ।  
सूझ पड़ेगी बुढ़ापेपन में ॥वा...४॥

**अर्थ :** आत्मन् ! तुम अपने मन में उस दिन की कल्पना तो करो ।

तुमने व्यापारी के रूप में व्यापार किया और एक बहुत बड़ा खाड़ लादा; पर थोड़ी-सी पूँजी होने पर भी जुआ जैसे दुर्व्यसन के शिकार हुए और अन्त में दांव हार गय । अन्त में जब दांव हार गये तो आत्मन् ! अब प्रस्थान की तयारी करना है । यहाँ से प्रस्थान कर तुम्हें वन में डेरा डालना होगा (मरकर शमशान भूमि में जाना होगा) ।

आत्मन् ! तुमने अपने नेत्रों से व्यर्थ तथा मिथ्या ही प्रेम बांधा । संसार में सोना और चाँदी किसका रहा है ? आत्मा के परलोकवासी होते ही सब कुछ यहाँ ही रह जाता है, उसके साथ कुछ भी नहीं जाता । कुटुम्बीजन तथा स्त्री-पुत्रादि और परिजन भी सब यहाँ ही रह जाते हैं । आत्मन् ! तुम इन परकीय पदार्थों तथा धन में व्यर्थ ही अपना मन डुलाते हो ।

हे आत्मन् ! जिस प्रकार मूर्ख से मूर्ख मिल जाता है और ज्ञानी से ज्ञानी पुरुष मिल जाता है, उसी प्रकार मृत्यु के बाद इस शरीर का पार्थिव अंश पृथिवी में मिल जाता है और जलांश जल में । आत्मन् ! तुम्हारा शरीर तो मिट्टी का बना हुआ है, फिर वह तुम्हारे साथ कैसे जायेगा ? वह तो मिट्टी में मिलकर रहेगा ।

हे भव्य आत्मन् ! तुम्हारा गौरव एवं प्रतिष्ठा इसमें है कि तुम अपने शाश्वत एवं निष्कलंक निर्वाण पद को प्राप्त करो । यह पद भी तुम्हारी सम्पूर्ण विशुद्ध चिन्मय दशा के सिवाय अन्य कुछ नहीं है । जन्म और मरण -- यह तुम्हारा स्वरूप नहीं है । यह तो तुम्हारे सर पर कलंक है और इसे धोकर ही तुम्हारी तेजोमय गौरवश्री का प्रकाश होगा ।

आत्मन् ! यदि तुमन सर्वतः समर्थ अपनी यौवनावस्था में अपने परमपद (निर्वाण लाभ) के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया तो वृद्धावस्था में अपनी अकर्मण्यता पर तुम्हें गहरा पश्चात्ताप करना पड़ेगा । उस समय तुम्हें रह-रहकर याद आवेगी कि -- 'मैंने आत्म-स्वरूप के लाभ के लिए कुछ नहीं किया । खेद !'

हे आत्मन् ! तुम अपने मन में उस दिन की कल्पना तो करो, जब तुम आत्म-कल्याण की दिशा में कुछ भी प्रयत्न न करके भवान्तर में जाने के लिए जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे होंगे ।



## सुण ज्ञानी भाई खेती

सुण ज्ञानी भाई खेती करो रे आत्म ज्ञान री ।  
सुण श्रावक भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥टेक॥

तन की तो खेती रे जियरा,  
मन का जो बैल दिया, हल लगेगा गुरु ज्ञान रो,  
सुण श्रावक भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥1॥

खाद न लागे रे जियरा, बीज न लागे,  
टेक्स न लागे सरकार रो,  
सुण श्रावक भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥2॥

खायो न खूटे रे जियरा, चोर न लूटे दाम,  
न लागे छदाम रे,  
सुण श्रावक भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥3॥

गरभवास में करिया रे वादा,

बाहर होयो ने, बेर्इमान रे,  
सुण म्हारा भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥4॥

बालपणों तूने खेल गंवायो, भर जवानी तू तो  
सुख भर सोयो, देख बुढ़ापा तू तो रोयो रे,  
सुण ज्ञानी भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥5॥

कंकरी जोड़ कंकरी तूने महल चुणायो,  
चिड़िया रैन बसेरा रे,  
सुण ज्ञानी भाई खेती करो रे आत्मराम री ॥6॥

भाई जो बंधु थारे कुटुंब कबीला रे,  
कोई न आवे थारे साथ रे,  
सुण ज्ञानी भाई खेती करो रे आत्मराम री ॥7॥

कहत 'बनारसी' समकित धारो,  
यम नहीं आवे थारे पास रे,  
सुण ज्ञानी भाई खेती करो रे आत्मराम री ।  
सुण श्रावक भाई खेती करो रे धुवधाम री ॥8॥





# हम बैठे अपनी मौन सौं

राग : गौरी, तर्ज : सजनवा बैरी हुई गए हमार

हम बैठे अपनी मौन सौं ॥टेक॥

दिन दस के मेहमान जगत जन, बोलि बिगारै कौन सौं ॥१॥

गये विलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ-पैन सौं ।

अब अन्तर गति भई हमारी, परचे राधा रौन सौं ॥

हम बैठे अपनी मौन सौं ॥२॥

प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै बौन सौं ।

छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौन सौं ॥

हम बैठे अपनी मौन सौं ॥३॥

रहे अघाय पाय सुख संपति, को निकसै निज भौन सौं ।

सहज भाव सद्गुरु की संगति, सुरझै आवागौन सौं ॥

हम बैठे अपनी मौन सौं ॥४॥

**अर्थ :** हम तो मौन से बैठे हैं-- हमारा सबके प्रति मैत्रीभाव है। जगत् के हम सब जन दस दिन के मेहमान हैं-न मालूम किसे कब यहाँ से चल देना है। इसलिए हम अप्रिय बोली से किसी का मन क्यों दुखावें!

इस समय हम परमार्थ-पथ के अनुसारी हैं और इस परमार्थरूपी पवन से हमारे समस्त भ्रम के बादल विलीन हो गये हैं। हमारा स्वानुभवरूपी राधारमण से परिचय हो गया है और हमारी प्रवृत्ति भी एकदम अन्तर्मुख हो गयी है। हम तो मौन बैठे हैं--हमारा सबके प्रति मैत्रीभाव है।

हमारे अन्तस् में अमृत पीने की महिमा जागृत हो उठी है और हमारा मन वमन-सेवन से बिलकुल उचट गया है। अब हमें क्षणभर के लिए भी अन्य रस अच्छे नहीं मालूम दे रहे हैं। वे सब फीके हो गये हैं और अब हमारी रुचि केवल आत्माराम के

लावण्य पर ही अटकी हुई है।

हमने जो अक्षय सुख-सम्पत्ति प्राप्त की है, उससे हमारा मन अघा गया है -- भर गया है, अब हमें किसी भी वस्तु के लिए अपने घर से बाहर जाने की जरूरत नहीं है। हमें अपना सहज आत्मिक भावरूपी गुरु मिल गया है और हम संसार के आवागमन से विमुक्त हो चुके हैं।



## चलो सखी खेलन होरी



तर्ज़ : राग काफी होरी

रंग मच्यो जिन द्वार, चलो सखी खेलन होरी,  
ओ चलो सखी खेलन होरी, रंग मच्यो जिन द्वार ॥टेक॥

सुमति सखी सब मिलकर आवो, कुमति ने देवो निकार,  
केशर चन्दन और अर्गजा समता भाव धुलाव ॥  
चलो सखी खेलन होरी, रंग मच्यो जिन द्वार ॥1॥

दया मिठाई तप बहु मेवा सित ताम्बूल चबाय,  
आठ कर्म की डोरी रची है ध्यान अग्नि सूं जलाय ॥  
चलो सखी खेलन होरी, रंग मच्यो जिन द्वार ॥2॥

गुरु के वचन मृदंग बजत है, ज्ञान क्षमा डफ ताल,  
कहत 'बनारसी' या होरी खेलो, मुकतिपुरी को राव ॥  
चलो सखी खेलन होरी, रंग मच्यो जिन द्वार ॥3॥



## पं शानानन्द कृत भजन



अवधू सूतां क्या इस मठ  
अवधू सूतां, क्या इस मठ में ॥टेक ॥

इस मठ का है कबन भरोसा,  
पड़ जावे चटपट में ॥अवधू...१॥

छिन में ताता, छिन में शीतल,  
रोग-शोक बहु घट में ॥अवधू...२॥

पानी किनारे मठ का वासा,  
कवन विश्वास ये तट में ॥अवधू...३॥

सूता सूता काल गमायो,  
अजहुँ न जाग्यो तू घट में ॥अवधू...४॥

# घरटी फेरी आटौ खायो, खरची न बांची वट में ॥अवधू...५॥

## इतनी सुनि निधिचारित मिलकर, 'ज्ञानानन्द' आये घट में ॥अवधू...६॥

**अर्थ :** हे अवधू (हंस, सन्यासी) ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ? इस शरीर के प्रति क्यों तुम इस प्रकार की आसक्ति बुद्धि बनाए हुए हो ? इस मठ का क्या विश्वास है? पता नहीं, किस क्षण बात-की-बात में यह धराशायी हो जाय । हे अवधू ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?

यह शरीर उष्ण की बाधा के कारण क्षणभर में गरम हो जाता है और शीत की बाधा के कारण क्षणभर में ठंडा पड़ जाता है । इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के रोग-शोक भी इस शरीर को व्याकुल किये रहते हैं । हे अवधू ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?

यह शरीर एक ऐसा मठ है, जो पानी के किनारे खड़ा हुआ है । जिस प्रकार पानी के किनारेवाले तट का कोई भरोसा नहीं होता है और किसी भी समय उसके खिसकन की सभावना से मठ के ढह जाने की भी पूर्ण आशंका बनी रहती है, उसी प्रकार इस शरीर का हाल है । उस मठ के समान यह शरीर भी आयुकर्म की समाप्ति के साथ कभी भी नष्ट हो सकता है । हे अवधूत ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?

तुमने इस शरीर-मठ में सोते-सोते अनन्त काल बिता दिया - अब तक तुम इसे अपना मानकर इसके साथ गठबन्धन किये रहे - और अनन्त परिभ्रमण के कारण परिश्रान्त रहे । अरे ! तुमने अब भी अपनी आत्म-ज्योति को नहीं पहचाना ? अब भी आत्म-दर्शन करके शास्वत् कल्याण-मार्ग के पथिक बनों । हे अवधू ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?

तुमने चक्की पीसकर आटा तो खा लिया अर्थात् इस जीवन में तो तुमने जिस किस प्रकार अपना निर्वाह कर लिया, परन्तु यदि परलोक में सुख प्राप्त करन के लिए कुछ सुकृत नहीं कमाया तो वहाँ अनन्त यातनाओं के भोग के सिवाय और क्या मिलेगा ? हे अवधूत ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?

कविवर की प्रस्तुत सबोचना सफल होती है और अबोध मानव अपने अनादिकालीन अज्ञानान्धकाराच्छन्न आत्मा में प्रबुद्ध होता है और अपने अनन्त ज्ञानानन्दमय स्वरूप में स्थिर रूप से प्रतिष्ठित रहने को ही अपना चरम लक्ष्य मान्य कर लेता है । वह अपने वर्तमान लक्ष्यहीन जीवन से विकल हो कह उठता है - हे अवधूत ! तुम इस मठ में क्यों सो रहे हो ?



## क्योंकर महल बनावै पियारे



पल्लो लटके रे म्हारो

## क्योंकर महल बनावै, पियारे ।

पाँच भूमि का महल बनाया, चित्रित रंग रंगावे पियारे ॥टेक ॥

गोखें बैठो, नाटक निरखे, तरुणी-रस ललचावै ।  
एक दिन जंगल होगा डेरा, नहिं तुझ संग कछु जावै, पियारे ॥  
क्योंकर महल बनावै, पियारे ॥१॥

तीर्थकर गणधर बल चक्री, जंगल वास रहावै ।  
तेहना पण मन्दिर नहिं दीसे, थारी कवन चलावै ॥  
क्योंकर महल बनावै, पियारे ॥२॥

हरिहर नारद परमुख चल गये, तू क्यों काल बितावै।  
तिनते नवनिधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमावै, पियारे ॥  
क्योंकर महल बनावै, पियारे ॥३॥

**अर्थ :** प्रिय मानव! तुम यह महल किसलिए बनाते हो?

प्रियवर ! तुम तीव्र रागभाव से प्रेरित होकर पाँच खण्ड का महल बनाते हो और उसमें चित्र-विचित्र रंगों की रंगाई कराते हो। प्रिय मानव! तुम यह महल किसलिए बनाते हो?

प्रियवर ! तुम अपने नव-निर्मापिति भवन की खिड़की में बैठकर नाटक देखते हो और तरुण पत्नी के साथ विषयोपभेग में आसक्त रहते हो। परन्तु तुम्हें पता नहीं है कि एक दिन तुम्हें यह सब छोड़कर जंगल में डेरा डालना होगा। तुम्हारी आयुष्य की समाप्ति पर सब चीजें यहीं रह जाएँगी और लोग तुम्हें जंगल ले जाकर जला आएँगे। तुम्हारे साथ अणुमात्र भी चीज नहीं जाएगी। प्रिय मानव! तुम यह महल किसलिए बनाते हो?

प्रिय बन्धु ! तीर्थकर, गणधर, बलदेव और चक्रवर्ती भी महल को ममत्वजनक मानते हुए छोड़ गये और जंगल में जाकर आत्म-साधना में लीन रहे। प्रियवर ! इन महापुरुषों में से किसी एक का भी महल आज शेष नहीं है। फिर तुम क्यों अपने महल को चिरस्थायी बनाने की दृष्टि से इस प्रकार मोहाकुल हो रहे हो? तुम्हारी हस्ति ही क्या है?

प्रियवर ! हरि, हर और नारद भी जहाँ जन्मे और अपने-अपने समय पर यहाँ से चले गये। ऐसे महापुरुष भी संसार में शाश्वत होकर नहीं रह सके। फिर तुम क्यों अपना समय व्यर्थ व्यतीत कर रहे हो? प्रियवर, तुम नवनिधिमय आत्मचारित्र को प्राप्त करो और ज्ञानानन्दमय आत्मस्वभाव में रमण करो। प्रिय मानव! तुम यह महल किसलिए बनाते हो?





# भोर भयो उठ जागो मनुवा

भोर भयो, उठ जागो, मनुवा, साहब नाम सँभारो ॥

सूतां सूतां रैन विहानी, अब तुम नींद निवारों ।  
मंगलकारी अमृतवेला, पिर चित काज सुधारो ॥ भोर...१ ॥

खिनभर जो तूँ याद करैगो, सुख निपजैगो सारो ।  
बेला बीत्यां है, पछतावै, क्यूँ कर काज सुधारो ॥ भोर...२ ॥

घर व्यापारे दिवस बितायो, राते नींद गमायो ।  
इन बेला निधिचारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमायो ॥ भोर...३ ॥

**अर्थ :** हे मन ! प्रात काल हो गया । उठो, जागो । भगवान् के नाम का स्मरण करो -- विशुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तन करो ।

हे मन ! सोते-सोते रात्रि व्यतीत हो गई । प्रातःकाल हो गया । अब तो तुम भ्रम-नींद छोडो । यह वेला अमृतमयी एवं मगलकारिणी है, अतः स्थिरचित्त होकर आत्म-हित-साधन करो । हे मन ! प्रातःकाल हो गया । उठो, जागो । भगवान के नाम का स्मरण करो - विशुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तन करो ।

हे मन ! यदि तून क्षण-भर के लिए भी भगवान् के नाम का / आत्म-स्वरूप स्मरण किया तो तुझे वास्तविक अनुपम-सुख की उपलब्धि होगी । समय बीत जाने पर पश्चात्ताप ही हाथ रह जाता है । तब फिर किस प्रकार आत्महित-साधन किया जा सकता है ? हे मन ! प्रातःकाल हो गया । उठो, जागो । भगवान् के नाम का स्मरण करो -- विशुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तन करो ।

रे मानव ! घर और व्यापार के क्रिया-कलापों में तो तुमने दिन व्यतीत कर दिया और रात सोते-सोते निकाल दी -- दिन और रात के समय का तनिक भी सद्गुप्योग नहीं किया । अब इस मांगलिक वेला में तो तुम चारित्रनिधि एवं ज्ञानानन्दमय आत्म-स्वरूप में रमण करो । हे मन ! प्रातःकाल हो गया । उठो, जागो । भगवान् के नाम का स्मरण करो -- विशुद्ध आत्म-स्वरूप का चिन्तन करो ।



# पं नयनानन्द कृत भजन



## अरे मन पापनसों नित डरिये



राग : आसावरी

अरे मन पापनसों नित डरिये ॥टेक ॥

हिंसा झूँठ वचन अरु चोरी, परनारी नहीं हरिये ।  
निज पर को दुखदायन डायन, तृष्णा बेग विसरिये ॥  
अरे मन पापनसों नित डरिये ॥१॥

जासों परभव बिगड़े वीरा, ऐसो काज न करिये ।  
क्यों मधु-बिन्दु विषय के कारण, अंधकूप में परिये ॥  
अरे मन पापनसों नित डरिये ॥२॥

गुरु उपदेश विमान बैठके, यहाँ ते बेग निकरिये ।  
'नयनानन्द' अचल पद पावे, भवसागर सो तिरिये ॥  
अरे मन पापनसों नित डरिये ॥३॥



## इक योगी असन बनावे

इक योगी असन बनावे ...  
तिस भखत ही पाप नसावे ॥टेक॥

ज्ञान सुधारस जल भर लावे, चुल्हा शील बलावे... रे योगी ।  
कर्म काष्ठ का चुग-चुग जारे, ध्यान अग्नि प्रजलावे रे ॥  
इक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नसावे ॥१॥

अनुभव भाजन निज-गुण तंदुल, समता क्षीर मिलावे... रे योगी ।  
सोहम् मिष्ठ निशंकित व्यंजन, समकित छौंक लगावे रे ॥  
इक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नसावे ॥२॥

स्याद्वाद् सप्त-भंग मसाले, गिनती पार न पावे... रे योगी ।  
निश्चय नय का चमचा फैरे, विरद भावना भावे रे ॥  
इक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नसावे ॥३॥

आप बनावे आप ही खावे, खावत नहीं अघावे... रे योगी ।  
तदपि मुक्ति पद पंकज सेवे, 'नयनानन्द' शिर नावे रे ॥  
इक योगी असन बनावे, तिस भखत ही पाप नसावे ॥४॥



## ऐसो नरभव पाय गंवायो



ऐसो नरभव पाय गंवायो

धन को पाय दान नहीं दीनों, चारित्र चित्त नहीं लायो  
श्री जिनदेव की सेव न कीनी, मानुष जनम लजायो ॥टेक ॥

विषय-कषाय बढ़यो प्रतिदिन-दिन, आत्म बल सु-घटायो ।  
तज सतसंगत भयो दुख संगी, मोक्ष का पाट लगायो ॥ऐसो...१ ॥

रजतश्वान सम फिरत निरंकुश मानस नाहीं मनायो ।  
कंद मूल मध्य मास भखन को, नितप्रति चित्त लगायो ॥ऐसो...२ ॥

त्रिभुवन पति भयो मैं भिखारी ये अचरज मोहे आयो ।  
श्री जिन वचन सुधा सम तजके 'नैनानन्द' पछतायो ॥ऐसो...३ ॥



## जड़ता बिन आप लखें



जड़ता बिन आप लखें, नाहि मिटे मोरी ॥टेक ॥

लखों जब निज हिये नैन, भयो मोहे अतुल चैन ।  
सम्यक् के अभाव मैंने, कीनी अब फेरी ॥१॥

अतुल सुख अतुल ज्ञान, अतुल वीर्य को निधान ।  
काया में विराजे मान, मुक्ति मेरी चेरी ॥२॥

द्रव्यकर्म विनिमुक्त, भावकर्म असंयुक्त ।  
निश्चयनय लोक मान, परजय वप्रधरी ॥३॥

जैसे दधिमांहि छवि तैसे जड़मांहि जीव ।  
देखी हम अपने 'नैन' आनन्द की देरी ॥४॥



## लिया आज प्रभु जी ने



लिया आज प्रभु जी ने जनम सखी,  
चलो अवधपुरी गुण गावन कों ॥ लिया..॥

तुम सुन री सुहागन भाग भरी,  
चलो मोतियन चौक पुरावन कों ॥ लिया..॥

सुवरण कलश धरों शिर ऊपर,  
जल लावें प्रभु न्हवावन कों ॥ लिया... ॥

भर भर थाल दरब के लेकर ,  
चालो जी अर्ध चढावन कों ॥ लिया... ॥

नयनानंद कहे सुनि सजनी,  
फ़ेर न अवसर आवन कों॥ लिया.... ॥



## हिंसा झूठ वचन अरु



राग आसावरी

हिंसा झूठ वचन अरु चोरी, परनारी नहीं हरिये,  
निज पर को दुखदायन डायन तृष्णा बेग विसरिये... ॥१॥

जासों परभव बिगड़े वीरा ऐसो काज न करिये,  
क्यों मधु-बिन्दु विषय को कारण अंधकूप में परिये... ॥२॥

गुरु उपदेश विमान बैठके यहाँ ते वेग निकरिये,  
'नयनानन्द' अचल पद पावे भवसागर सो तिरिये... ॥३॥



## पं मरुखनलाल कृत भजन



### मेरी उत्तम क्षमा न जाय



यो तन जावे तो जावो, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥टेक॥

बिना दोष दुर्जन दुःख देवे, धीरज धार सबही सह लेवे,  
क्रोध जरा नहीं लाय, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥१॥

क्षमा को धारे जो तन पर, लगे न गोली तोरे बदन पर,  
दुश्मन ही थक जाय, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥२॥

क्रोध अग्नि संसार जला के, क्षमा नीर से उसे बुझाए,  
वह नर धन्य कहाय, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥३॥

क्षमा समान और नहीं दूजा, सभी करो मिल इसकी पूजा,  
'मख्खन' ही सुख पाय, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥४॥

क्षमा करे जग में सुख साता, यही सुरग मोक्ष की दाता,  
यही शिवराज दिलाय, मेरी उत्तम क्षमा न जाय ॥५॥



## तुम सुनो सुहागन नार

तुम सुनो सुहागन नार कहूँ समझाके  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥टेक॥



विद्या की सुंदर झाँझर पहरो पग में ।  
जिससे छम-छम-छम जश फैले सारे जग में ॥  
षटकाय जीव की रक्षा धारो मन में ।  
ऐसे छह बिछिए पहरो पग अंगुल में ॥  
वात्सल्य रूप छल्ले जंजीर लगा के ।  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥तुम...१॥

तुम सत्य वचन की चूड़ी समझ लो बहिनों

पर-द्रव्य हरण के त्याग की पहुंची पहनो  
निर्लोभ रूप कंकण की छवी क्या कहना  
शिक्षा सुंदर कड़े मनोहर गहना ॥  
गुरु भक्ति अंगूठी श्रद्धा चरण चढ़ाके  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥टेक ॥

तुम सोलह कारण का हार गले में डालो  
दश धर्म रूप सुंदर माला बनवा लो  
द्वादश अनुप्रेक्षा चम्पा कली पुवा लो  
वैराग्य रूप जुग नग बिच में डलवा लो  
सम्यक्त्व रूप झूमर माथे लटका के  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥टेक ॥

तुम भेद-ज्ञान साबुन से मलो बदन को  
समरस निर्मल जल से धो डालो तन को  
इम कर स्नान पहर वस्त्राभूषण को  
मुख देखो लेकर तत्त्व ज्ञान दर्पण को  
जिनवचन रूप अंजन को नयन लगाके  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥टेक ॥

इसविधि कर श्रंगार नार जे सतवंती  
वे तीर्थकर सा पुत्र जगत में जनती

करके समाधि मरण देवता बनती  
वे मनुष जन्म तप धार घातिया हनती  
'मख्खन' पहुंचे शिव केवलशान उपा के  
इस भाँति शक्ति श्रंगार करो मन लाके ॥टेक ॥



## भाग्य बिना कछु हाथ न आवे



तर्ज : मत्स्यायन्द सरैया

सिंधु धसै गिरि पै निवसै, अति दुर्गम कानन छानि छवावे,  
फूँकतधातु बनाय रसायन, खोदत भूमि सुरंग लगावे,  
वैद्यक ज्योतिष मंत्र करै नित, व्यंतर भूत पिशाच मनावे,  
यों तृष्णावश मूढ़ फिरैं पर, भाग्य बिना कछु हाथ न आवे।

मात पिता सुत नारि सहोदर, छोड़ि विदेश कमावन जावे,  
काटत काठ पढ़ावत पाठ, लगावत हाट कपाट बनावे,  
कृत्य कुकृत्य करै बनि भृत्य, दिखावत नृत्य बजाय रिझावे,  
यों तृष्णावश मूढ़ फिरैं पर, भाग्य बिना कछु हाथ न आवे।

शीत सहै तन धूप दहै अति, भार बहै भरि पेट न खावे,  
देश विशेद फिरै धरि भेष, महेन बनौ उपदेश सुनावे,  
पाचक वाचक याचक नाचक, गायक नायक रूप बनावे,

ਪੀਰ ਫਕੀਰ ਬਜੀਰ ਬਨੈ, ਤਕਦੀਰ ਬਿਨਾ ਕਛੁ ਹਾਥ ਨ ਆਵੇ।

ਇਨਦ੍ਰ ਨਰੇਨਦ੍ਰ ਫਣੀਨਦ੍ਰਨ ਕੇ ਸੁਖ, ਭੋਗਨ ਕੋ ਨਿਤ ਜੀ ਲਲਚਾਵੇ,  
ਕੰਚਨ ਧਾਮ ਕਰੁੱ ਬਿਸਰਾਮ, ਸਦਾ ਮਮ ਨਾਮ ਤਿਹੁੱ ਜਗ ਛਾਵੇ,  
ਨੂਤਨ ਭੋਗ ਸ਼ਰੀਰ ਨਿਰੋਗ, ਨ ਇ਷ਟ ਵਿਧੋਗ ਨ ਰੋਗ ਸਤਾਵੇ,  
ਧੋਂ ਦਿਨ ਰਾਤ ਵਿਚਾਰ ਕਰੈ ਪਰ, ਭਾਗਿਆ ਬਿਨਾ ਕਛੁ ਹਾਥ ਨ ਆਵੇ।



## ਮੋਹਿ ਸੁਨ ਸੁਨ ਆਵੇ ਹਾਁਸੀ



ਮੋਹਿ ਸੁਨ-ਸੁਨ ਆਵੇ ਹਾਁਸੀ, ਪਾਨੀ ਮੇਂ ਮੀਨ ਪਿਧਾਸੀ ॥ਟੇਕ ॥

ਜਧੋਂ ਮੂਗ ਦੌੜਾ ਫਿਰੇ ਵਿਪਿਨ ਮੇਂ, ਛੁੱਢੇ ਗਨਘ ਬਸੇ ਨਿਜਤਨ ਮੇਂ ।  
ਲਧੋਂ ਪਰਮਾਤਮ ਆਤਮ ਮੇਂ ਸ਼ਠ, ਪਰ ਮੇਂ ਕਰੇ ਤਲਾਸੀ ॥੧॥

ਕੋਈ ਅੱਗ ਭਮੂਤਿ ਲਗਾਵੇ, ਕੋਈ ਸ਼ਿਰ ਪਰ ਜਟਾ ਬਢਾਵੇ ।  
ਕੋਈ ਪੰਚਾਗਿ ਤਪੇ ਕੋਈ ਰਹਤਾ ਦਿਨ ਰਾਤ ਉਦਾਸੀ ॥੨॥

ਕੋਈ ਤੀਰਥ ਵਨਦਨ ਜਾਵੇ, ਕੋਈ ਗੱਗਾ ਜਮੁਨਾ ਨ਼ਾਵੇ ।  
ਕੋਈ ਗਢ ਗਿਰਨਾਰ ਦ੍ਰਾਰਿਕਾ, ਕੋਈ ਮਥੁਰਾ ਕੋਈ ਕਾਸੀ ॥੩॥

कोई वेद पुरान टटोले, मन्दिर मस्जिद गिरजा डोले ।  
दूँढ़ा सकल जहान न पाया, जो घट घट का वासी ॥४॥

'मकर्खन' क्यों तू इत उत भटके, निज आत्मरस क्यों नहिं गटके ।  
जन्म-मरण दुख मिटे कटे, लख चौरासी की फाँसी ॥५॥



## ये आत्मा क्या रंग दिखाता

ये आत्मा क्या रंग, दिखाता नये नये ।  
बहुरूपिया ज्यों भेष, बनाता नये नये ॥टेक॥



धरता है स्वांग देव का, स्वर्गो में जाय के ।  
करता किलोल देवियों के, सँग नये नये ॥१॥

गर नर्क में गया तो, रूप नारकी धरा ।  
लखि मार पीट भूख प्यास, दुख नये नये ॥२॥.

तिर्यञ्च में गज बाज वृषभ, महिष मृग अजा ।  
धारे अनेक भाँति के, काबिल नये नये ॥३॥

नर नारि नपुँसक बना, मानुष की योनि में ।  
फल पुन्य पाप के उदय, पाता नये नये ॥४॥

'मक्खन' इसी प्रकार भेष, लाख चौरासी ।  
धारे बिगारे बार बार, फिर नये नये ॥५॥



## पं बुध महाचन्द्र भजन



### अमृतझर झुरि झुरि आवे



तर्ज : जीव तू भ्रमत सदीव अकेला

अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ॥टेक ॥  
द्वादशांग बादल है उमड़े, ज्ञान अमृत रसखानी ॥१॥

स्याद्वाद बिजुरी अति चमके, शुभ पदार्थ प्रगटानी ।  
दिव्यध्वनी गंभीर गरज है, श्रवण सुनत सुखदानी ॥  
अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ॥२॥

भव्यजीव-मन भूमि मनोहर, पाप कूड़कर हानी ।  
धर्म बीज तहाँ ऊगत नीको, मुक्ति महाफल ठानी ॥  
अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ॥३॥

ऐसी अमृतझर अति शीतल, मिथ्या तपत भुजानी ।  
'बुधमहाचन्द' इसी झर भीतर, मग्न सफल सो ही जानी ॥  
अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ॥४॥



## कुमति को छाड़ो भाई

कुमति को छाड़ो भाई हो ॥टेक ॥



कुमति रची इक चारुदत्त ने वेश्या संग रमाई ।  
सब धन खोय होय अति फीके गुंथ ग्रह लटकाई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥१॥

कुमति रची इक रावण नृप सीता को हर ल्याई ।  
तीन खण्ड को राज खोयके दुरगति वास कराई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥२॥

कुमति रची कीचक ने ऐसी द्रोपदि रूप रिझाई ।  
भीम हस्त थंभ तले गड़ि दुख सहे अधिकाई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥३॥

कुमति रची एक धवल सेठ ने मदन मजूसा ताई ।  
श्रीपाल की महिमा देखि के डील फाटि मरि जाई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥४॥

कुमति रची इक ग्राम कूटने रक्त कुरंगी माई ।  
सुन्दर सुन्दर भोजन तजके गोबर भश्त कराई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥५॥

राय अनेक लुटे इस मारग वरनत कौन बड़ाई ।  
'बुध महाचन्द्र' जानिये दुखकों कुमती द्यो छिटकाई ॥  
कुमति को छाड़ो भाई हो ॥६॥



## चिदानंद भूलि रह्यो सुधि



राग : उझाज जोगीरासा, जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी,

तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥टेक॥

मोह उदय तैं सबही तिहारी, जनक मात सुत नारी ।

मोह दूरि कर नेत्र उघारो, इन में कोई न तिहारी ॥

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी, तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥१॥

झाग समान जीवन जोवन, पर्वत नाला कारी ।

धनपति रंक समान सबन को, जात न लागे वारी ॥

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी, तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥२॥

जुवा मांस मधु अरु वेश्या, हिंसा चौरी जारी ।

सप्त व्यसन में रत्त होय के, निजकुल कीन्हो कारी ॥

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी, तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥३॥

पुन्य पाप दोउ लार चलत हैं, यह निश्चय उरधारी ।

धर्म द्रव्य तोय स्वर्ग पठावै, पाप-नरक में डारी ॥

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी, तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥४॥

आतम रूप निहार भजो जिन, धर्म मुक्ति सुखकारी ।

'बुधमहाचंद' जानि यह निश्चय, जिनवर नाम सम्हारी ॥

चिदानंद भूलि रह्यो सुधि सारी, तू तो करत फिरै म्हारी म्हारी ॥५॥



# जीव तू भ्रमत भ्रमत



राग : असावरी; तर्ज : जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

जीव तू भ्रमत-भ्रमत भव खोयो,  
जब चेत गयो तब रोयो ॥टेक ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप यह धन धूरि विगोयो ।  
विषय भोग-गत रस को रसियो छिन छिन में अति सोयो ॥१॥

क्रोध मान छल लोभ भयो तब इनही में उरझोयो ।  
मोहराय के किंकर यह सब इनके वसि हे लुटोयो ॥२॥

मोह निवार संवारसु आयो आतम हित स्वर जोयो ।  
बुध महाचन्द्र चन्द्र सम होकर उज्ज्वल चित रखोयो ॥३॥



# जीव निज रस राचन खोयो



तर्ज : जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

जीव निज रस राचन खोयो, यो तो दोष नही करमन को ॥टेक ॥  
पुद्गल भिन्न स्वरूप आपण् सिद्ध समान न जोयो ॥१॥

विषयन के संग रक्त होय के कुमती सेजां सोयो ।  
मात तात नारी सुत कारण घर घर डोलत रोयो ॥  
जीव निज रस राचन खोयो ॥२॥

रूप रंग नव जोविन परकी नारी देख रमोयो ।  
पर की निन्दा आप बढ़ाई करता जन्म विगोयो ॥  
जीव निज रस राचन खोयो ॥३॥

धर्म कल्पतरु शिवफलदायक ताको जरनै न टोयो ।  
तिसकी ठोड महाफल चाखन पाप बबूल ज्यों बोयो ॥  
जीव निज रस राचन खोयो ॥४॥

कुगुरु कुदेव कुर्धर्म सेयके पाप भार बहु ढोयो ।  
बुध महाचन्द्र कहे सुन प्रानी अंतर मन नही धोयो ॥  
जीव निज रस राचन खोयो ॥५॥

राचन=लीन; आपणू=अपना; जोयो=देखा; सेजां=बिस्तर, सेज;





# देखो पुद्गल का परिवारा

देखो पुद्गल का परिवारा जामैं चेतन है इक न्यारा ॥टेक ॥

स्पर्श रसना घ्राण नेत्र फुनि श्रवण पंच यह सारा ।  
स्पर्श रस फुनि गंध वर्ण स्वर यह इनका विषयारा ॥  
देखो पुद्गल का परिवारा जामैं चेतन है इक न्यारा ॥१॥

क्षुधा तृषा अरु राग द्वेष रुज सप्तधातु दुखकारा ।  
बादर सूक्ष्म स्कंध अणु आदिक मूर्तिमई निरधारा ॥  
देखो पुद्गल का परिवारा जामैं चेतन है इक न्यारा ॥२॥

काय वचन मन स्वासोच्छास सजू थावर त्रस करि द्वारा  
'बुधमहाचन्द्र' चेतकरि निशिदिन तजि पुद्गल पतियारा ॥  
देखो पुद्गल का परिवारा जामैं चेतन है इक न्यारा ॥३॥

फुनि=फिर;



## देखो भूल हमारी हम



देखो भूल हमारी हम संकट पाये ॥टेक॥

सिद्ध समान स्वरूप हमारा डोले जेम भिखारी ॥१॥  
पर परणति अपनी अपनाई पोट परिग्रह धारी ॥२॥  
द्रव्य कर्मवश भाव कर्मकर निजगल फांसी डाली ॥३॥  
जो कर्मन में मलिन कियो चित बांधे बंधन भारी ॥४॥  
बोये बीज बबूल जिन्होंने खावें क्यो सहकारी ॥५॥  
करम फसायें आग आखे भोगे सब संसारी ॥६॥  
जैन सौख्य अब समताधारो अति गुरु सीख उचारो ॥७॥

जेम=जैसे; पोट=पोटली, गठरी; निजगल=अपने गले में; सहकारी=आम;



## निज घर नाय पिछान्या

निज घर नाय पिछान्या रे,  
मोह उदय होने तैं मिथ्या भर्म भुलाना रे ॥टेक॥



तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।  
पुद्गल जड़ में राचि भयो तूं मूर्ख प्रधाना रे ॥  
निज घर नाय पिछान्या रे ॥१॥

तन धन जोविन पुत्र वधू आदिक निज मानारे ।  
यह सब जाय रहन के नाई समझ सियाना रे ॥  
निज घर नाय पिछान्या रे ॥२॥

बाल पके लड़कन संग जोविन त्रिया जवाना रे ।  
वृद्ध भयो सब सुधिगई अब धर्म भुलाना रे ॥  
निज घर नाय पिछान्या रे ॥३॥

गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।  
'बुध महाचन्द्र' विचार के जिन पद नित्य रमाना रे ॥  
निज घर नाय पिछान्या रे ॥४॥



## विषय रस खारे इन्हैं छाड़त

विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥टेक ॥



मात तात नारी सुत बांधव, मिल तोकू भरमाई ।  
विषय भोग रस जाय नक्क तूं तिलतिल खण्ड लहाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥१॥

मदोन्मत्त वस मरने कूँ, कपट की हथनी बनाई ।  
स्पर्शन इन्द्रिय बसि होके, आय पड़त गज खाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥२॥

रसना के बसि होकर मांछल, जाल मध्य उलझाई ।  
भ्रमर कमल बिच मृत्यु लहत है, विषय नासिका पाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥३॥

दीपक लोय जरत, नैनू बसि, मृत्यु पतंग लहाई ।  
कानन के बसि सर्प हाय के, पींजर मांहि रहाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥४॥

विष खायें ते इक भव मांहि, दुख पावै जीवाई ।  
विषय जहर खाये तैं भव-भव, दुख पावै अधिकाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥५॥

एक-एक इन्द्री तैं यह दुख, सबकी कौन कहाई ।  
यह उपदेश करत है पंडित, 'महाचन्द्र' सुख दाई ॥  
विषय रस खारे, इन्हैं छाड़त क्यों नहि जीव ॥६॥

अर्थ : विषय-रूपी रस खारे हैं, इन्हें तू क्यों नहीं छोड़ता हैं?

माता, पीता, पत्नी, बेटा, भाई, सब मिलकर तुझे मोहित करते हैं। विषयों को भोगकर उनके फल में नरक में जाएगा और वहाँ ये ही भाई बंधु तेरे तिल-तिल टुकड़े करेंगे।

मदशाली बलवान हाथी को पकड़ने के लिए कुट्टीनी (काठ की हथिनी) बनाई जाती है। स्पर्शन इंद्रिय के बस में होकर हाथी लकड़ी की हथिनी के पीछे जाता है और गड्ढे में गिरकर पकड़ा जाता है।

रसना इंद्रिय के वश में होकर मछली मछवारे के जाल में फँस जाती है। ग्राण इंद्रिय के वश में होता हुआ भँवरा कमल में फँसकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

नेत्र इंद्रिय के वश, दीपक की लौ में जलकर पतंगा मृत्यु को प्राप्त होता है। कर्ण इंद्रिय के वश सर्प पकड़ा जाता है और उसे पिंजरे में रहना पड़ता है।

विष खाने से जीव एक बार ही मरण को प्राप्त होता है। विषय रूपी विष को खाकर जीव भव-भव में दुख पाता है।

एक-एक इंद्रिय के वश होकर जीव दुख पाते हैं, तो जो पांचों इंद्रियों के के विषयों को भोगता हो उसे कौन बचा सकता है? इस प्रकार पंडित महाचन्द्र इंद्रियों के विषय को छोड़ने का उपदेश देते हैं, जो की सुख का कारण है।



## सिद्धारथ राजा दरबारे



सिद्धारथ राजा दरबारे, बँट बधाई रंग भरी हो ॥टेक ॥

त्रिसला देवी ने सुत जायो, वर्द्धमान जिनराज वरी हो ।  
कुण्डलपुर में घर-घर द्वारे, होय रही आनन्द-घरी हो ॥1॥

रत्न की वर्षा को होते, पन्द्रह मास भये सगरी हो ।  
आज गगन दिश निरमल दीखत, पुष्पवृष्टि गन्धोद झरी हो ॥2॥

जन्मत जिनके जग सुख पाया, दूरि गये सब दुख टरी हो ।  
अन्तर्मुहूर्त नारकी सुखिया, ऐसो अतिशय जन्म घरी हो ॥3॥

दान देय नृप ने बहुतेरो, जाचिक जन-मन हर्ष करी हो ।  
ऐसे वीर जिनेश्वर चरणों, 'बुध महाचन्द्र' जु सीस धरी हो ॥4॥

**अर्थ :** अहो, आज महाराज सिद्धार्थ के दरबार में रंग-भरी बधाई बँट रही है। देवी त्रिशला ने पुत्र प्रसव किया है। वह पुत्र जिनराज वर्द्धमान हैं। कुण्डलपुर में घर-घर और द्वार-द्वार आनन्द की यह शुभ घड़ी व्याप्त हो रही है। अहो ! रत्नों की वर्षा होते पन्द्रह मास हो गये। आज आकाशदीप्त शिखाएँ निर्मल प्रतीत हो रही हैं और पुष्प-वृष्टि हो रही है, गन्धोदक की झड़ी लगी हुई है। भगवान के जन्म-ग्रहण करते समय संसार ने सुख पाया और सब दुःख दूर हो गये, टल गये। भगवान का अतिशय-युक्त जन्म-वर्णन कैसे किया जाए, उस समय अन्तर्मुहूर्त के लिए नारकियों को भी सुख-प्राप्ति हुई। राजा ने बहुत-सा दान देकर याचकों तथा जनमानस को हर्षित कर दिया। कविवर बुध महाचन्द्र कहते हैं कि मैं ऐसे वीर जिनेश्वर के चरणों में मस्तक नवाते हुए विनय-भक्ति करता हूँ ।



## सहजानन्द वर्णी भजन



### चिद्रूप हमारा इसका



रचना : मनोहर वर्णी

चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा ।  
प्रभुरूप हमारा, इसका ही सहारा ॥  
परभाव के प्रसंग में, नहीं मेरा गुजारा ।  
प्रभुरूप हमारा, चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा ॥टेक ॥

वस्तु स्वरूप ही नहीं, कि पर से कुछ मिले ।  
खुदगर्ज भी किसको कहें, सब सत्त्व के भले ।  
स्पष्ट है, क्या कष्ट है, विकल्प ही क्यों चले ।  
नहीं हम किसी के, कोई नहीं, कुछ भी हमारा ॥  
प्रभुरूप हमारा, चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा ।  
परभाव के प्रसंग में, नहीं मेरा गुजारा ॥१॥

इक क्षेत्र में अवगाहि होके, तन अमित मिले ।  
वे भी रहे न साथ जो, इतने घुले मिले ।  
जड़ वैभवों की बात क्या, ये प्रकट पर डले ।  
रागादि भी न रह सका बन करके हमारा ॥  
प्रभुरूप हमारा, चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा ।  
परभाव के प्रसंग में, नहीं मेरा गुजारा ॥२॥

निज सहज-सिद्ध सहज-ज्ञान, सहज दर्शमय ।  
सहजानन्द स्वरूप, सहज शुद्ध शक्ति मय  
निज सहज चिद्रिलासका जिसमें है सहज लय ।  
मेरा सहज स्वरूप अमित, गुण का पिटारा ॥  
प्रभुरूप हमारा, चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा ।  
परभाव के प्रसंग में, नहीं मेरा गुजारा ॥३॥



## भैया मेरे नरभव विषयों

भैया मेरे नरभव विषयों में न गंवाना ।  
 भैया मेरे आपनो स्वरूप न भुलाना ।  
 देखो निज दृष्टि निभाना ॥टेक॥

ये मन ये विज्ञान निराला, सब गतियों में सबसे आला ।  
 मुक्ति के मंदिर के द्वारों, का यह खोले बंधन ताला ॥  
 अपने में आपही सुहाना-सुहाना ।  
 भैया मेरे नरभव विषयों में न गंवाना ।  
 भैया मेरे अपनो स्वरूप न भुलाना ॥१॥

निज परिचय बिन, जग में डोले ।  
 अब स्वरूप रच अघमल धो ले ।  
 सबके ज्ञाता सबसे न्यारे, निज ज्ञायकता में रात हो ले ।  
 जानो ये सारा विराना-विराना  
 भैया मेरे नरभव विषयों में न गंवाना ।  
 भैया मेरे अपनो स्वरूप न भुलाना ॥२॥

जब लग रोग मरण नहीं आए,

शांति सुधारस पीता जाए ।  
सहजानन्द स्वरूप न भूलो,  
सारा अवसर बीता जाए  
शिवपथ में कदम बढ़ाना-बढ़ाना  
भैया मेरे नरभव विषयों में न गंवाना ।  
भैया मेरे अपनो स्वरूप न भुलाना  
देखो निज दृष्टि निभाना ॥३॥



## पर्व भजन



## आयो आयो पर्व अठाई

आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी,  
करल्यो करल्यो धर्म कमाई, है दिन तारणोजी,  
आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी ॥टेक॥



सुरनर उमग उमग मन माहीं,

बढ़ रह्या प्रभू पूजन के ताहीं,  
दर्शन नंदीश्वर सुखदाई, है शिव सारणो जी,  
आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी ॥१॥

आओ आओ भविजन आओ,  
अवसर पुण्य मिल्यो हरषावो,  
करल्यो सम्यक दर्शन ज्ञान, चरण को पारणो जी,  
आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी ॥२॥

शक्ति नंदीश्वर जाबा की,  
नहीं है वर्तमान पाँवाँ की  
गावां बैठ अठै गुण गान, भव-भय हारणो जी,  
आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी ॥३॥

जिनवर भक्ति सदा सुखदानी,  
कह गया श्री गुरु आत्म ज्ञानी,  
करलो जिनवाणी 'सौभाग्य', सुधारस पारणो जी,  
आयो आयो पर्व अठाई मंगल कारणो जी,  
करल्यो करल्यो धर्म कमाई, है दिन तारणोजी ॥४॥





# आयो पर्व अठाई

आयो पर्व अठाई चलो भवि पूजन जाई,  
आयो पर्व अठाई ॥टेक ॥

श्री नन्दीश्वर के चहुँ दिश में, बावन मंदिर गाई,  
एक अंजन गिरि चार दधि मुख रति कर आठ बनाई,  
एक एक दिश में ये गाई,  
आयो पर्व अठाई चलो भवि पूजन जाई ॥१॥

अंजन गिरि अंजन के रंग है, दधि मुख दधि सम पाई,  
रति कर स्वर्ण वर्ण है ताकी, उपमा वर्ण न जाई,  
निरुपमता छबि छाई...  
आयो पर्व अठाई चलो भवि पूजन जाई ॥२॥

स्वर्ग लोक के सब देव मिल तहाँ पूजन को जाई ,  
पूजन बंदन को हमरो, जी बहुत रह्यो ललचाई,  
कर्सुँ क्या जा न सकाई...  
आयो पर्व अठाई चलो भवि पूजन जाई ॥३॥

यातें निज थानक जिन मंदिर तामें थाप्यो भाई,  
पूजन वंदन हर्ष से कीनो, तन मन प्रीत लगाई,

'सिखर' मनसा फल पाई...  
आयो पर्व अठाई चलो भवि पूजन जाई ॥४॥



## जिनमंदिर का शिलान्यास



जिनमंदिर का शिलान्यास , यह मंगलकारी हो  
धन्य -धन्य जिनराज विराजें,आनंदकारी हो ॥टेक॥

जिन दर्शन कर बहुत जीव , दुख पाप निवारगें  
जिन भक्ति कर भव्य जीव , निज भाव सुधारेंगे  
मोक्षमार्ग का निमित्तभूत यह आनंदकारी हो ॥१ जिन॥

दान पुण्य का उत्तम, अवसर हमने पाया है  
भक्ति भावमय हर्ष हृदय में, नहीं समाया है  
अहो समर्पण द्रव्य भाव का, मंगलकारी हो ॥२ जिन॥

हो सम्यक श्रद्धान हमारा, ज्ञान सु अविकारी  
सहज अहिंसामयी आचरण ,सबको सुखकारी  
स्यादवादमय तत्व निरूपण, मंगलकारी हो ॥३ जिन॥

पंच परम् परमेष्ठी के गुण, हर्ष सहित गावे  
चैत्य चैत्यालय जिनवाणी को ,सविनय शीश नवावे  
जैन धर्म की नित ,प्रभावना मंगलकारी हो ॥४ जिन॥

सुखी रहे सब जीव सहज ही तत्त्व ज्ञान पावें  
विषय कषायों को तजकर ,जिन संयम अपनावे  
धर्माराधक आत्माराधक मंगलकारी हो ॥५ जिन॥



## दश धर्मों को धार सोलह



तर्ज :- ना कजरे की धार....मोहरा

दश धर्मों को धार, सोलह कारण को पाल,  
समता का किया शृंगार, वो आत्म कितनी सुन्दर है ॥टेक॥

भव बंधन तोड़ के भाई, जन रंजन छोड़ के आयी,  
अज्ञान की इस दुनिया में, आत्म से नेह लगाई,  
रलत्रय के सागर में, आत्म का करे शृंगार ॥१॥

माया, मिथ्या छोड़ के आई, मूढ़ताएं तोड़ के आई,

संसार के इस बंधन को, वृद्धता से तोड़ के आई,  
अनुपम है निराली है, आत्म का कर उद्धार ॥२॥



## दशलक्षण के दश धर्मों



तर्ज :- माई रे माई मुंडेर

दशलक्षण के दश धर्मों का, उत्सव आया प्यारा ।  
धर्म ध्यान और पूजन पाठ से, ज्यों दिश हो उजियारा ॥  
बोलो पर्युषण की जय, बोलो दशधर्मों की जय- ॥टेक ॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम ।  
जो नर इन धर्मों को पाले, धन्य- धन्य हो जीवन ॥  
इन दशधर्मों में है समाया, समयसार यह सारा ॥१ धर्म...॥

तप और त्याग तो आभूषण है, इस मानव जीवन के ।  
आकिंचन और ब्रह्मचर्य है पूज्य है योगीजन के ॥  
इन दश धर्मों के पालन से, सुधरे जीवन सारा ॥२ धर्म...॥

मुनिदशा में उत्तम पालन, इन धर्मों का होता ।

इन दशधर्मों से होती है परिणति निर्मल न्यारी ।  
हर अन्तर्मुहूर्त में मुनिवर, ध्याते शुद्धात्म न्यारा ॥३ धर्म...॥



## दस लक्षणों को ध्याके



तर्ज : वो दिल कहाँ से लाऊँ

दस लक्षणों को ध्याके शुभ भावना बनाएँ,  
करें माफ माँगे माफी, यूँ ही पर्व हम मनाएँ ॥

रचते हैं हम जो पूजन सोलह ही कारणों की,  
जीवन में जो उतारे सम्यक् को ही जगाएँ ॥  
दस लक्षणों को ध्याके शुभ भावना बनाएँ ॥१॥

करे नाश क्रोध माना, तजे छल, ना लोभ राखे,  
नार सच बोले, पाले संयम, तप त्याग भाव लाएँ ॥  
दस लक्षणों को ध्याके शुभ भावना बनाएँ ॥२॥

जग में ना कुछ भी मेरा, इस भेद को ही जानें,  
व्रत शील धार करके, सही लाभ ही उठाएँ ॥  
दस लक्षणों को ध्याके शुभ भावना बनाएँ ॥३॥

रत्नत्रयों को घर के, चारित्र की नाव चढ़कर,  
आठों करम खपाके, 'प्रभु' भव के पार जाएँ ॥  
दस लक्षणों को ध्याके शुभ भावना बनाएँ ॥४॥



## दसलक्षण पर्व का समा



तर्ज :- यशोमती मैया

दसलक्षण पर्व का समा ये सुहाना,  
लेकर के आया देखो आज खजाना ॥टेक॥

आता हे जब-जब देखो भादों का महीना,  
तीन रतन से लेके जैसे नगीना  
जड़ा लो नगीना भविजन होSSS खुद को सजाना ॥१॥

दूँढ़ा है सुख को पर में, खुद को तू भूला,  
झूठी मोह माया में कैसा तू फूला,  
भटका तो फिर प्राणी होSSS मर्म न जाना ॥२॥

दश धरम के मोती कैसे झिलमिलाते,  
आत्मा के दर्पण में कैसे जगमगाते,  
यही तो है दौलत अपनी होSSS इसे ना लूटाना ॥३॥

नरतन को पाकर हमने व्यर्थ गमाया,  
भोगों और विषयों में जीवन गंवाया,  
पारस पड़ा है घर में होSSS-२ पत्थर ही जाना ॥४॥

पुण्य से मिला है हमको ऐसा समागम,  
ज्ञान के चक्षु खोलो कहता है आगम,  
भ्रम को मिटा दो वरना होSSS होगा पछताना ॥५॥



## पर्व दशलक्षण मंगलकार



ब्र. श्री रवीन्द्र जी 'आत्मन'

पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ।  
अहो खुशी का अवसर आया, बोलो जय जयकार ॥टेक॥

है यह शाश्वत पर्व धार्मिक, शिवस्वरूप शिवकार ।  
नहीं व्यक्ति, नहिं सम्प्रदाय का, सब ही को सुखकार ॥

पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥1॥

श्री जिनवर की पूजा करिये, विषय-कषाय विडार ।  
सम्यक् भक्ति करो प्रभुवर की होओ भव से पार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥2॥

जिनवाणी की चर्चा सुनिये, भाव विशुद्धि धार ।  
तत्त्वों का सम्यक् निर्णयकर, भेदज्ञान अवधार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥3॥

बैठ एकान्त विचार सु करिये, निज स्वरूप अविकार ।  
निर्विकल्प आत्म अनुभव कर, सफल करो अवतार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥4॥

सम्यकदर्शन ज्ञान सहित, उत्तम चारित्र विचार ।  
क्रोधादिक दुर्भाव निवारो, धरो क्षमादिक सार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥5॥

सत्य पंथ निर्गन्थ दिगम्बर, संयम तप हितकार ।  
त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य धर, सर्व द्वन्द्व निरवार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥6॥

धर्म और धर्मी को समझो, तजो पक्ष दुःखकार ।  
धर्मी के आश्रय से जीवन, होय धर्ममय सार ॥  
पर्व दशलक्षण मंगलकार, पर्व दशलक्षण आनन्दकार ॥७॥



## पर्व दस लक्षण खुशी से



तर्ज :- आवाज दे के न हमको

पर्व दस लक्षण खुशी से मनाओ,  
क्षमाभाव अपने हृदय में जगाओ ॥टेक॥

भरो भाव मार्दव मान को हटाओ,  
रहो दूर छल से तो आर्जव बढ़ाओ,  
वचन सत्य बोलो, शौच धर्म ध्याओ,  
आत्म को अपनी पावन बनाओ ॥१॥

दया जीव षट् काय पर तुम दिखाओ,  
संयम से अपने हृदय को सजाओ,  
तप से करम के शिखर को गिराओ,  
देकर के दान त्याग प्रगटाओ ॥२॥

आकिंचन को उर ला परिग्रह हटाओ,  
वरो शील जप-तप जीवन सार्थक बनाओ,  
साथ सोलह कारण भावना बढ़ाओ,  
रलत्रय की ज्योति में उर जगमगाओ ॥३॥

मंगलमयी पर्व पूरण जो होता है,  
क्षमा याचना का शुभ दिन जो आता है,  
क्षमा ही क्षमा तब अपने मुख पे पाओ,  
क्षमाभाव सबसे क्षमा दरसाओ ॥४॥



## पर्व पर्युषण आया आनंद



पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥टेक॥

पर्व कहें सब उत्तम दिन को, उत्तम वह जिनसे निजहित हो ।  
यह संदेश सुनाया श्री वीतराग भगवान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥१॥

सबकी परिणति न्यारी-न्यारी, आप रहें ज्ञायक अविकारी ।

शत्रु मित्र समझाया, यह धर्म क्षमा गुणखान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥२॥

बड़ापना जो पर से माने, अपनी निधि को न पहचाने ।  
मानकषाय हटाया, यह धर्म मार्दव जान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥३॥

जाने भले ही न अज्ञानी, किन्तु जानते केवलज्ञानी ।  
इस भाँति समझ में आया, अब तजहुँ कपट कृपान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥४॥

मैं पवित्र चैतन्यस्वरूपी, भाव आस्रव अशुचि विरूपी ।  
चाहदाह विनसाया, धारूँ संतोष महान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥५॥

वस्तु-स्वरूप धैरे जो जैसो, सम्यक ज्ञानी जाने तैसो ।  
राग-द्वेष मिटाया, बोले हित-मित-प्रिय बान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥६॥

पंचेन्द्रिय मन भोग तजे जा, निज में निज उपयोग सजै  
षट्काय न जीव नशाया, यह संयम धर्म प्रधान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥७॥

निस्तरंग निजरूप रमे जो, सकल विभाव समूह वमे जो ।  
द्वादश विधि बतलाया, यह तप दाता निर्वाण ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥८॥

राग-द्वेष की परिणति छीजे, चारों दान विधि से दीजे ।  
उत्तम त्याग बताया, हितकारी स्व पर सुजान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥९॥

त्याग करे जो पर की ममता, अपने उर में धारे समता ।  
आकिंचन धर्म सुहाया सब संग तजो दुख खान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥१०॥

विषय बेल विष नारी तजकर, पुद्गलरूप लखो नारी नर ।  
ब्रह्मचर्य मन भाया, आनंद दायिकी जान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥११॥

दशलक्षण अरु सोलह कारण, रत्नत्रय हिंसा निरवारन ।  
वस्तु स्वभाव बताया 'निर्मल' आत्म पहचान ॥  
पर्व पर्युषण आया आनंद स्वरूपी जान ॥१२॥





# पर्व पर्युषण आया है

पर्व पर्युषण आया है, आया है भाई आया है  
धर्म की वर्षा लाया है लाया है भाई लाया है  
हमको जिन दर्शन मिले, जिनवाणी जिनशासन मिले ॥  
पर्व पर्युषण आया है, आया है भाई आया है ॥टेक॥

भगवन तेरी महिमा अपरंपार,  
भक्ति से खुल जाए मुक्ति द्वार  
उपवास कर, विश्वास कर, प्रभु प्रेम का तू प्रयास कर  
प्रभु भक्ति से, मधुबन खिले, प्रभु नयनों का, सावन मिले  
पर्व पर्युषण आया है, आया है भाई आया है ॥१॥

त्याग तपस्या संयम का त्यौहार,  
जिन आगम से मिला हमें उपहार  
हो साधना, आराधना, एकासना, व्रत पारणा,  
जैसा साधन, शक्ति मिले, वैसा उसका जीवन खिले  
पर्व पर्युषण आया है, आया है भाई आया है ॥२॥

सब धर्मों का क्षमा धर्म आधार,  
सृष्टि पे सब जीवों का अधिकार

जय अहिंसा, परमो धरम्, जियो जीने दो- कहे जिन धरम  
आगम के अभ्यास से, आतम में परमात्म मिले  
पर्व पर्युषण आया है, आया है भाई आया है ॥३॥



## पर्वराज पर्यूषण आया



तर्ज : कैसे बनी फूलेरी - भैया द्रूज

पर्वराज पर्यूषण आया भला,  
आया भला, आया भला,  
आया भला ना जाये चला ।  
कि पर्वराज पर्यूषण आया भला ॥टेक॥

धरम के लक्षण दस आगम गिनाये,  
नरभव बगीचा जगत में खिलाये,  
क्षमा आदि पुष्पों की सौरभ फैलाये,  
क्रोधादि काँटों को जड़ से हटाये,  
अन्तिम अनुभव की ज्योति जला ।  
कि पर्वराज पर्यूषण आया भला ॥१॥

उत्तम क्षमा का सन्देशा यही है,

जीवों में छोटा बड़ा कोई नहीं है,  
मान भगावो ये मार्दव पुकारे,  
मान महा विष नाग सखा रे,  
कपट ना कर आर्जव की सलाह ।  
कि पर्वराज पर्यूषण आया भला ॥२॥

त्रय योग एक हो सत्य सिखावे,  
सन्तोष धारो शौच दरशावे,  
लोभ कषाय सब पापों की जड़ है,  
प्राणी के मन पर तो इसकी पकड़ है,  
संयम से धर्म बगीचा खिला ।  
कि पर्वराज पर्यूषण आया भला ॥३॥

तप की अग्न में जले कर्म भारी,  
त्याग मिटावे भ्रमण की बीमारी,  
परिमाण बांधो आकिंचन पुकारी,  
सन्तोष जीवन की सुख फुलवारी,  
'शील' धरो ब्रह्मचर्य महा  
कि पर्वराज पर्यूषण आया भला ॥४॥





तर्ज :- ये देश है वीर जवानों का

# ये पर्व पर्युषण प्यारा है

ये पर्व पर्युषण प्यारा है, ये सब धर्मों से न्यारा है,  
इस पर्व का भैया क्या कहना, ये हैं दस धर्मों का गहना ॥१॥

ये पर्व है दरश विशुद्धि का, ये पर्व है आतम शुद्धि का ॥२॥

ये पर्व हमें बतलाता है, शिवपुर की राह दिखलाता है ॥३॥



## महावीर जयंती आई



तर्ज : बड़ी देर भई नन्दलाला - खानदान

महावीर जयंती आई, प्रिय गाओ आज बधाई,  
कुँडलपुर सिद्धारथ नृप, गृह बाज रही शहनाई ॥टेक॥

धन्य चैत्र सित तेरस की यह घड़ी सुहानी मंगलकार,  
माँ त्रिशला ने प्रसव किये प्रभु तीन ज्ञान घर वीर कुमार,  
तीनों लोक दसों दिश गूंजी, जय जय जय सुखदाई ॥

## महावीर...१॥

जीव मात्र के हृदय हर्ष से खिले कमल से आज विशेष,  
नारक ने भी सुख का अनुभव किया धन्य वह जन्म जिनेश,  
शची सहित हरि आ, जन्मोत्सव करते पूजा गुणगाई ॥महावीर...२॥

जीओ और जीने दो सबको, छोड़ो हिंसा पाप कुकर्म,  
यही इष्ट उपदेश दिया प्रभु बता धर्म का पावन मर्म,  
मानवता के बनो पुजारी, त्यागो जड़ता दुखदाई ॥महावीर...३॥

आओ हिलमिल वीरनाथ के, पद चिन्हों पर बढ़े चलें,  
सम्यक ज्ञानालोक जगाते गौरव गिरि पर चढ़े चलें,  
निजानन्द 'सौभाग्य' प्राप्त हो, छूटे भव की कठिनाई ॥महावीर...४॥



## मंगल गाओ



तर्ज : मानी थारं मान किला पे

मंगल गाओ, खुशी मनाओ, पार्श्वनाथ निर्वाण गये,  
आत्म से परमात्म बनने का पथ कर निर्माण गये ।

काशी देश बनारस नगरी, अश्वसेन भूपति के लाल,  
माँ वामा के नन्द दुलारे, क्षत्री कुल गौरव मणि भाल,  
जीवन में जीवन भर बढ़ते, अपने पद परमाण गये ॥मंगल...१॥

वन क्रीड़ा को जाते मग में, मूढ़ तपसी ईंधन में,  
नाग नागिनी जलते उबारे, महामंत्र देकर क्षण में,  
वस्तु स्वरूप समझ बन योगी, करने निज कल्याण गये ॥मंगल...२॥

काज परिजन समाज सब, पोट परिग्रह की त्यागी,  
वीतराग निर्गन्थ दिगम्बर, महाव्रती वे बड़ भागी,  
उपसर्गों से हुये न विचलित, सुर नर भी पहचान गये ॥मंगल...३॥

दुर्द्वर पर कैवल्य ज्योतिवर, निस्पृह हो उपदेश दिया,  
सित सावण सम्मेदाचल से, महा सिद्ध पद प्राप्त किया,  
वही आज है मोक्ष सप्तमी, गुरुजन यही बखान गये ॥मंगल...४॥



## जय मुनिवर विष्णुकुमार



जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥टेक ॥

दुष्ट बली जब कुमति उपाई, संघ घेर नरमेघ रचाई ।

मच गया गजपुर हाहाकार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥1॥

संघ उपसर्ग की खबर सु-पाकर, पुष्पदंत मुनि अति घबराकर ।

आकर तुमसे करी पुकार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥2॥

गुरु तुम वीतरागता धारी, विक्रिया ऋद्धि प्रकट भई भारी ।

उमड़ा वात्सल्य सुखकार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥3॥

बौने द्विज का वेष बनाया, चमल्कार तप का दिखलाया ।

पड़ गया बलि नृप चरण मँझार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥4॥

मुनियों का उपसर्ग मिटाया, सबको दया धर्म सिखलाया ।

हुआ जिनधर्म का जय जयकार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥5॥

क्षमा भाव धरि बलि को छोड़ा, उसने हिंसा से मुख मोड़ा ।  
धारा जैनधर्म सुखकार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥6॥

सर्वजनों में आनन्द छाया, रक्षाबन्धन पर्व मनाया ।  
हर्षित होय दिया आहार ॥

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार ॥7॥



## वीर की वाणी



वीर की वाणी सुनलो जी, वीर की वाणी सुनलो जी  
विपुलाचल पर्वत पर आ, जिनवाणी सुनलो जी ॥टेक ॥

शुक्ल दशम वैशाख वीर को, केवल ज्ञान हुआ,  
किन्तु दिव्य-ध्वनि खिरी नहीं, ऐसा व्यवधान हुआ ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥१॥

छ्यासठ दिन हो गये, इन्द्र ने अवधिज्ञान जोड़ा,  
गणधर की है कमी, शीघ्र गणधर लाने दौड़ा ।

वीर की वाणी सुनलो जी, वाणी सुनलो जी ॥२॥

बड़ी युक्ति से गौतम ब्राह्मण, को लेकर आया,  
मान स्तम्भ देख गौतम का, मद सब विनशाया ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥३॥

गौतम ने समकित उपजा मुनि-व्रत स्वीकार किया,  
ज्ञान मनःपर्यय पाया गणधर पद धार लिया ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥४॥

तत्क्षण खिरी दिव्य ध्वनि प्रभु की, गणधर ने झेली,  
जिनवाणी कल्याणी ने माँ की उपमा ले ली ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥५॥

प्रथम देशना वीर प्रभु की, सुन जग हर्षया,  
देव, सुरेन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्रों, ने मंगल गाया ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥६॥

द्वादशांग वाणी रचकर, गौतम धन्य हुये,  
श्रावण कृष्णा एकम के दिन, भाग्य प्रसन्न हुये ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥७॥

हम भी प्रभु की वाणी सुनकर, समकित उपजायें,  
शासन वीर जयंति पर प्रभु, के ही गुण गायें ।  
वीर की वाणी सुनलो जी - 2 ॥८॥



## वैशाख शुक्ल



वैशाख शुक्ल दशमी के शुभ दिन, प्रभु ने पाया केवलज्ञान ।  
समवशरण में नाथ विराजे, पर न हुआ उपदेश महान ॥

जिनवचनामृत पान किये बिन, हुए तृष्णातुर सारे जन ।  
वीर प्रभो! अब तो कुछ बोलो, गरजो-बरसो हरो तपन ॥

छियासठ दिन के बाद भरत में, सावन का महिना आया ।  
भव्यजीव के भाग्य जगे, अरु वचन योग भी है आया ॥

इन्द्र गये, गौतम को लाये, भविजन पर कीना उपकार ।  
इन्द्रभूति का पा निमित्त फिर, बही भरत में अमृत धार ॥

धन्य वीर प्रभु, धन्य हैं गौतम, धन्य वीर जिन की है वाणी ।  
धन्य हुई श्रावण की एकम, शासन पाया सुखदानी ॥



# आचार्य श्री धरसेन जो



तर्ज :- दे दी हमें आजादी बिना

आचार्य श्री धरसेन जो न ग्रन्थ लिखाते,  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥टेक ॥

अपने अलौकिक ज्ञान से, सब भेद जानकर,  
बुलवाये दो मुनिराज की महिमा नगर खबर,  
गर वे नहीं मुनिराज, युगल ऐसे बुलाते,  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥१॥

आने से पहले स्वप्न में ही योग्य जानकर,  
दो मंत्र सिद्धि तारा फिर परखा प्रधान कर,  
उत्तीर्ण होकर योग्यता, गर वे न दिखाते ।  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥२॥

पश्चात् पढ़ाया उन्हें, निज शिक्ष्य मानकर,  
उन्हें भी ग्रन्थ लिखा, गुरु उपकार मानकर,  
करुणा निधान मुनि, नहीं गर ग्रन्थ रचाते ।

हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥३॥

श्री पुष्पदंत सूरि, प्रथम खण्ड बनाया,  
अभिप्राय जानने को भूतबलि पै पढ़ाया,  
यदि वे नहीं उस ग्रन्थ का प्रारम्भ कराते ।  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥४॥

उनसे प्रसन्न होय, शेष ग्रन्थ रचाया,  
श्री 'ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी' को पूर्ण कराया,  
गर वे नहीं इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण कराते ।  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥५॥

ग्रन्थाधिराज की हुयी, थी आज ही पूजा,  
इस काल में इससे बड़ा उपकार न दूजा,  
करुणा निधान गुरु अगर ऐसा न कराते ।  
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते ॥६॥



## भूतबली श्री पुष्पदन्त



भूतबली श्री पुष्पदन्त को शत शत करूँ प्रणाम  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥  
इस कलिकाल पंचम मांहि, किया स्व-पर कल्याण ॥टेक ॥

श्री धरसेनाचार्य प्रधानी अल्पायु जब अपनी जानी  
परिपाटी सिद्धान्त लुप्त जब खो जाएगा ज्ञान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥१॥

पत्र दूसरे संघ पठाया, कारण अपना सब समझाया  
द्वै मुनि हो श्रुत योग्य शीघ्र तुम, भेजो हमरे स्थान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥२॥

भूतबली पुष्पदन्त पठाए, श्री गिरनार गुफा में आए  
श्री धरसेन जहां पर तिष्ठे, योगी पुरुष महान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥३॥

तीन दिवस गुरु बने परीक्षक, दी विद्या अक्षर न्यूनाधिक  
विद्या साधन हेतु जाओ तुम निर्जन स्थान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥४॥

न्यूनाधिक को पूर्ण बनाए, विद्या साध गुरु ढिग आए

हो प्रसन्न गुरु अंग ज्ञान दे, किया आत्म कल्याण ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥५॥

भूतबली महाध्वल बनाए षटखंडागम भेद रचाए  
वीरसेन इन टीका कीनी हरा तिमिर अज्ञान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥६॥

ज्येष्ठ सुदी पंचम सुखकारी, हुई सिद्धान्त प्रतिष्ठा भारी  
तब ही से श्रुत ज्ञान पंचमी जग में हुई प्रधान ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥७॥

भव्य जनों सब मिलकर आओ गुरुवानी की महिमा गाओ  
भूतबली श्री पुष्पदन्त को शत शत करुँ प्रणाम ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥८॥

नरनारी मिल हर्ष मनाओ जिनवाणी की पूज रचाओ  
हमको शास्त्र ज्ञान से होगा भव-भव में कल्याण ॥  
तुम्हारी महिमा बड़ी महान ॥९॥



# मंगल महोत्सव भला आ गया



तर्ज़ :- इक परदेशी मेरा दिल ले गया

मंगल महोत्सव भला आ गया, देखो-३ जी आनंद छा गया ॥टेक ॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, सिद्धचक्र का पाठ रचाया,  
पूजा रचाई थाल सजाया, प्रभुजी के सन्मुख अर्घ चढ़ाया,  
मोक्ष का मार्ग हमें भा गया ॥देखो...१ ॥

प्रभुजी की पूजा यहाँ है होती, प्रभु की भक्ति यहाँ है होती,  
प्रभु की चर्चा यहाँ है होती, आत्म चर्चा यहाँ है होती,  
आगम की चर्चा का अवसर आ गया ॥देखो...२ ॥



# अरे मन कैसी होली



तर्ज़ : हमारो कारज कैसे होय

अरे मन! कैसी होली मचाई, खेलत चेतन राई ॥टेक ॥

सम्यग्दर्शन रंग अनूपम, मन पिचकारि भराई ।  
डालत स्वानुभूति तिय ऊपर, अद्भुत ठाठ बनाई ॥

ध्यान में हो इकताई, अरे मन! कैसी होली मचाई ॥१॥

सम्यग्ज्ञान गुलाल उड़ाकर, धूम मची सरसाई ।  
सम्यक्चारित्र धाम अपूरब, रंग नदी बन जाई ॥  
करत कलोल अघाई, अरे मन! कैसी होली मचाई ॥२॥

निजानंद अमृत ठंडाई, पीय पीय हुलसाई ।  
मस्त होय निज आप रमण कर, पर की चाह बुझाई ॥  
द्वैत अद्वैत हो जाई, अरे मन! कैसी होली मचाई ॥३॥

भव-समुद्र से पार करन को, यह होली गुणदाई ।  
तीरथ कर मुनिजन सब खेलें, निज आतम लवलाई ।  
सुखोदधि मगन कराई, अरे मन! कैसी होली मचाई ॥४॥



## कहा बानि परी पिय

कहा बानि परी पिय तोरी,  
कुमति संग खेलत है नित होरी ॥टेक॥

कुमति कर कुबजा रंग राची, लाज शरम सब चोरी ।



रागद्वेष भय धूल लगावे, नाचे ज्यों चकडोरी ॥  
कहा बानि परी पिय तोरी ॥1॥

अक्ष विषय रंग भरि पिचकारी, कुमति कुत्रिय सरबोरी ।  
जा संग चिर दुखी भये, फिर प्रीति करत बरजोरी ॥  
कहा बानि परी पिय तोरी ॥2॥

निजघर की पिय सुधि विसारि के परत पराई पोरी ।  
तीन लोक के ठाकुर कहियत सो विधि सबरी बोरी ॥  
कहा बानि परी पिय तोरी ॥3॥

बरजि रही बरजो नहिं मानत ठानत हठ बर जोरी ।  
हठ तजि सुमति सीख भजि 'मानिक' तो विलसो शिवगोरी ॥  
कहा बानि परी पिय तोरी ॥4॥

**अर्थ :** सुमतिरूपी स्त्री अपने पति आत्मदेव से कहती है कि हे प्रियतम! यह तुम्हें कैसी बुरी आदत पड़ी है कि तुम अनादिकाल से आज तक हमेशा कुमति रूपी स्त्री के साथ होली खेलते हो ! हे प्रियतम! यह कुमति रूपी स्त्री कूर (निर्दयी) है, कुञ्जा (शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ) है, और संसार के मिथ्या रंगों में रची-पची हुई है। इसने लाज- शर्म को पूरी तरह त्याग कर दिया है। यह सदैव राग-द्वेष रूपी धूल को लगाती है और चकडोरी की तरह नाचती रहती है।

हे प्रियतम! उस कुमति रूपी स्त्री ने अपनी पिचकारी में पंचेन्द्रिय-विषयों का रंग भर रखा है और उससे तुम्हें सराबोर भी कर दिया है। तुम इसके साथ ऐसी होली खेलकर अनादि काल से अब तक बहुत दुखी हो चुके हो, परन्तु अभी भी उसी से अत्यधिक प्रेम करते हो।

हे प्रियतम! मैं तुम्हें (कुमति रूपी स्त्री के साथ होली खेलने के सम्बन्ध में) बहुत मना कर रही हूँ, पर तुम मना करते-करते भी मान नहीं रहे हो और जबरदस्ती अपनी ही हठ चला रहे हो।

कविवर माणिक कहते हैं कि अब तुम अपनी बुरी हठ छोड़ो और अपनी सुमतिरूपी स्त्री की उक्त शिक्षा को ग्रहण करो, ताकि रूपी स्त्री के साथ आनन्द से रह सको। तुम मोक्ष रूपी स्त्री के साथ आनंद से रह सको।



# कैसे होरी खेलूँ होरी

कैसे होरी खेलूँ होरी खेल न आवै ॥टेक ॥  
प्रथम पाप हिंसा जा मांही, दूजे झूठ जु पावै ॥1 ॥  
तीजे चोर कलाविद जामैं, नैक न रस चुप जावै ॥2 ॥  
चौथो परनारी सौं परचैं, शील वरत मल लावै ।  
तृष्णा पाप पाचऊं जामैं, छिन छिन अधिक बढ़ावै ॥3 ॥  
सब विधि अशुभ रूप जे कारिज, करत ही वित चपलावै ।  
अक्षर ब्रह्म खेल अति नीको, खेलत हिये हुलसावै ॥4 ॥  
'जगतराम' सोही खेल खेल खेलिये, जो जिन धर्म बढ़ावै ॥5 ॥

**अर्थ :** मैं होली कैसे खेलूँ? खेला ही नहीं जाता। प्रथम तो उसमें हिंसा का महापाप लगता है, दूसरे झूठ का भी उसमें पाप लगता है, तीसरे चोरी का भी पाप उसमें लगता है, चौथा परनारी का सम्पर्क होने से शीलव्रत में भी मलिनता आती है और पाँचवें तृष्णा भी हर क्षण बढ़ती रहती है।

अतः जो सभी प्रकार से अशुभ हो- ऐसी इस होली को मैं कैसे मैं खेलूँ? इससे तो चित्त में अत्यधिक चंचलता उत्पन्न हो जाती है।

कवि जगतराम कहते हैं कि अक्षरब्रह्म का खेल ही वस्तुतः श्रेष्ठ है, खेलने योग्य है, उसे खेलने से चित्त में सच्ची प्रसन्नता उत्पन्न होती है। हमें वही खेल खेलना चाहिए, जिससे जिनधर्म की वृद्धि हो ।





## नेमिनाथ भगवान भजन



### नेमजी की जान बणी भारी



नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥टेक॥

असंख्या घोड़ा और हाथी, मनुष्य री गिणती नहीं आती ।  
ऊंट पर ध्वजा जो फहराती, धमक से धरती थर्ती ।  
समुद्रविजय जी का लाडला, नेमि उन्हों का नाम ।  
राजुल देखो आवे परणवा, उग्रसेन घर ठाम ।  
प्रसन्न भई नगरी मनहारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥१॥

कशुमल बागां अति भारी, कान में कुण्डल छवि न्यारी  
किलंगी तुर्रा सुखकारी, मालगल मोतियन की डारी  
काने कुण्डल जगमगे, शीश मुकुट झलकार

कोटि भानु की करूँ ओपमा, शोभा अपराम्पार  
बाज रह्या बाजा टकसारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥२॥

दृष्ट रही उनकी शहनाई, व्याह में आए बड़े भाई ।  
झरोखे राजुल दे आई, जान को देखी सुख पाई ।  
उग्रसेन जी देख के, मन में करे विचार ।

बहुत जीव करी एकट्ठा, बाड़ो भर्यो अपार ।  
करी सब भोजण की त्यारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥३॥

नेमजी तोरण पर आए, जीव पशु सब ही बिरलाए ।  
नेमजी वचन जु फरमाए, जीव पशु काहे को लाए  
याको भोजन होवसी, जान वास्ते एह ।

एह वचन सुणी नेमजी, थर-थर कांपी देह ।  
भाव सूं चढ़ गया गिरनारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥४॥

पीछे सूं राजुल दे आई, हाथ जब पकड़यो छिन माही ।  
कहाँ तू जावै मेरे जायी, और वर हेरूँ तुझ ताई ।  
मेरे तो वर एक ही, हो ग्या नेमकुमार ।  
और भुवन में वर नहीं, कोटि जो करो विचार ।

दीक्षा फिर राजुल ने धारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥५॥

सहेल्यां सब मिल समझावे, हिये राजुल के नहीं आवे ।  
जगत सब झूठो दरसावे, म्हारे तो मन नेमकुवंर भावे ।

तोड्या कंकण दोरडा, छोड्या नवसरहार ।

काजल टीकी पान सुपारी, तज दिया सब सिंगार ।

सहेल्यां बिलख रही सारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥६॥

तज्या सब सोलह सिंगारा, आभूषण रत्नजड़ित सारा ।  
लगे मोहे सब सुख ही खारा, छोड़कर चाली निरधारा ।

मात पिता पारिवार को, तजता न लागी वार ।

जाय मिलूँ म्हारा नेमपियासूँ, जाय चढ़ी गिरनार ।

बिलखती छोड़ी माँ प्यारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥७॥

दया दिल पशुअन की आई, त्याग कर दीनो छिनमाई ।

नेमजी गिरनारी जाई, पशुन की बंधन छुड़वाई ।

नेम राजुल गिरनार पे, ध्यायो निर्मल ध्यान ।

'नवलराम' करी लावणी, उपजो केवलज्ञान ।

मुक्ति का हुआ जो अधिकारी, देखण को आए नर-नारी  
नेमजी की जान बणी भारी, देखन को आए नर-नारी ॥८॥



## पार्श्वनाथ भगवान भजन



## महावीर भगवान भजन



## बाहुबली भगवान भजन



# दस धर्म भजन



## कपटी नर कोई साँच न बोले



तर्ज : चाँदी की दीवार - विश्वास

कपटी नर कोई साँच न बोले, अपने दिल की गाँठ न खोले,  
करत प्रशंसा निशदिन अपनी, पर का औगण ढूँढत डोले ॥टेक ॥

छल से हँस हँस बाताँ पूछे, अपने दिल की बात न बोले,  
मीठा वचन सुणाय रिझावे, मिथ्या जहर हलाहल घोले,  
कपटी नर कोई साँच न बोले, अपने दिल कौ गाँठ न खोले ॥१॥

ऊपर से किरिया बहु पालै, माँही चाबै विष किलौले,  
ऐसा नर की संगति होवे, दुर्गति माँहि सहे जग झोलै,  
कपटी नर कोई साँच न बोले, अपने दिल की गाँठ न खोले ॥  
करत प्रशंसा निशदिन अपनी, पर का औगण ढूँढत डोले ॥२॥



## तज कपट महा दुखकारी



तज कपट महा दुखकारी, भज आर्जव वृष हितकारी ॥टेक॥

तूने उत्तम नरभव पाया, श्रावक कुल में आया ।  
नहिं कछ भी धर्म कमाया, बन करके मायाचारी ॥१॥

क्यों मायाजाल बिछाता, तू भोले जीव फंसाता ।  
क्यो बगुला भक्ति दिखाता, तेरी मति गई है मारी ॥२॥

माया की भगिया छानी, नहीं बोले सांची बानी ।  
भावे मिथ्या वच सानी, जो दुरगति की सहचारी ॥३॥

छिप करके पाप कमाता, बाहर से धर्म दिखाता ।  
कोई विश्वास न लाता, सब कहते ढोंगाचारी ॥४॥

इससे अब जागो जागो, माया को त्यागो त्यागो ।  
वृष आर्जव मे चित पागो, तज कपटभाव से यारी ॥५॥

तज भाव करोंत समान, अरु बगुला भक्ति महान ।  
यह भाव महा दख दान, भज सरल भाव सुखकारी ॥६॥

जहा किंचित कपट न पायो, वह आर्जव धर्म कहायो ।

यह छंद 'प्रेम' ने गायो, निष्कपट बनो नर-नारी ॥७॥



## जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी

जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी ।  
कर क्रोध करत बहु हानी ॥टेक॥

तेरो रूप अनूपम चेतन, रूपवंत सुखानी ।  
ताको भूल रच्यो पर पद में, विभाव परिणति ठानी ॥  
जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी ॥१॥

क्रोधभाव अन्तर प्रगटावत, बन सम्यक् श्रद्धानी ।  
क्षमा बिना तप संयम सारे, होत नहीं फल दानी ॥  
जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी ॥२॥

तेरा शत्रु मित्र नहिं कोई, तूं चेतन सुज्ञानी ।  
क्षमा प्रधान धर्म है तेरा, जासें वरे शिवरानी ॥  
जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी ॥३॥

क्षमाभाव जो नित भावत हैं, उनकी समझ सयानी ।



उनको 'प्रेम' समागम चाहत, भजत सदा जिनवानी ॥  
जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी ॥४॥



## थाँकी उत्तम क्षमा पै



थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे,  
किस विधि किये कर्म चकचूर ॥टेक ॥

एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर, पास न तिल तुष मात्र हजूर,  
दूजे जीव दया के सागर, तीजे संतोषी भरपूर ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥१॥

चौथे प्रभु तुम हित उपदेशी, तारण तरण जगत मशहूर,  
कोमल वचन सरल सत वक्ता निर्लोभी संयम तपसूर ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥२॥

कैसे ज्ञानावरणी निवार्यो कैसे गेर्यो अदर्शन चूर,  
कैसे मोहमल्ल तुम जीत्यो कैसे किये च्यारु घातिया दूर ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥३॥

ल्याग उपाधि हो तुम साहिब, आकिंचन व्रतधारी मूल,  
दोष अठारह दूषण तजके, कैसे जीते काम क्रूर ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥४॥

कैसे केवलज्ञान उपायो, अंतराय कैसे किये निर्मल,  
सुर-नर-मुनि सेवैं चरण तुम्हारे, तो भी नहिं प्रभु तुम के गर्व ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥५॥

करतदास अरदास 'नैनसुख', दीजे यह मोहे दान जर्व,  
जनम जनम पद पंकज सेवूँ और न चित कछु चाह हजूर ॥  
थाँकी उत्तम क्षमा पै जी, अचम्भो म्हाने आवे ॥६॥



## दस धरम में बस क्षमा



तर्ज : दिल के अरमां आंसुओं

दस धरम में बस क्षमा सिरताज है ।  
उस क्षमा का दिन सुहाना आज है ॥टेक ॥

क्रोध अरु मानादि, आतम के विभाव ।  
तो क्षमा आतमनिधि सुख साज है ।  
उस क्षमा का दिन सुहाना आज है ॥१॥

क्रोध भूलें दान दें उत्तम क्षमा ।  
याचना से मान जाता भाग है ।  
उस क्षमा का दिन सुहाना आज है ॥२॥

गर सभी सोचें, स्व-सुख अरु दुःख का मूल ।  
चहुं कषायों की असि आघात है ।  
उस क्षमा का दिन सुहाना आज है ॥३॥

होगा ये अवसर, सफल नरभव सदा ।  
धोले अन्तर से कलुषता भाव है ।  
उस क्षमा का दिन सुहाना आज है ॥४॥



## तैने दियो नहीं है दान

तैने दियो नहीं है दान,  
तैने सम्पत पाकर क्या किया ।



दान दिया श्रेयांस ने आदि जग के माय,  
आदिनाथ भगवान कूँ बरसे रतन अपार ॥

तैने सम्पत पाकर क्या किया ॥१॥

जय कुमार सुलोचना, दान तना फल पाय,  
दान से शुभ गति पावसी पावें पद निर्वाण ॥  
तैने सम्पत पाकर क्या किया ॥२॥

दान बिना नर जान जी, सुख सम्पत्ति अरु भोग,  
दान बिना शोभा नहीं, जाने सब कोई लोग ॥  
तैने सम्पत पाकर क्या किया ॥३॥

चार दान आगम विधै, भाख्या श्री भगवान,  
दीजो शुद्ध मन भाव सु, पावैं मोक्ष कल्याण ॥  
तैने सम्पत पाकर क्या किया ॥४॥

दान बिना नर जाण जो, जाणै मृतक समान,  
घर मसान सम जाण जो, तने चूट्या चूट्या खाय ॥  
तैने सम्पत पाकर क्या किया ॥५॥



परनारी विष बेल



परनारी विष बेल कूँ मत जोवे रे भाई ।

रावण तीन खण्ड को राजा पड्यो नर्क के माँई,  
और सुनी आगम में बहुजन यातैं दुर्गति पाई ॥  
परनारी विष बेल कूँ मत जोवे रे भाई ॥१॥

मदिरा पीकर होत बावरो लख्या सपरस्याँ नाँही,  
लख्याँ सपरस्याँ सुमरण कीयाँ वह मारे संहजाई ॥  
परनारी विष बेल कूँ मत जोवे रे भाई ॥२॥

दृष्टि विष श्रुत ही मैं सुनी है प्रत्यक्ष कोऊ ना सखाई,  
दृष्टि निषा प्रत्यक्ष येम तै तजो दूर तैं याही ॥  
परनारी विष बेल कूँ मत जोवे रे भाई ॥३॥

जप तप ज्ञान ध्यान संयम यम संगति किया नशाई,  
आतम काज करो तो 'पारस' याकी तज द्यो छाँई ॥  
परनारी विष बेल कूँ मत जोवे रे भाई ॥४॥



शील शिरोमणी रतन



शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी,  
या में दाम न कोडि लागे, नाना विध सुखदाय जी ॥टेक ॥

सुन्दर आभूषण ये पहर्या कंचन जडय जडाव जी,  
शील बिना सब फीका लागे, बिना पुरुष की नारी जी ॥  
शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी ॥१॥

कुल कलंक रावण के लाग्यो, जग में अपयश छायजी,  
सीता सती शीलव्रत पाल्यो, देवकरी जयकार जी ॥  
शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी ॥२॥

सेठ सुदर्शन शूली ऊपर पङ्घो सु परवश जाय जी,  
देव आय सिंहासन रचियो, पुष्प वृष्टि बरसाय जी ॥  
शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी ॥३॥

सती द्वोपदी शील व्रत पाल्यो बढ्यो चीर अधिकायजी,  
धात खंड को राजा हरियो हर कीना अपकारजी ॥  
शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी ॥४॥

इस जग में आभूषण दूजो दीखत नाय लुभायजी,  
शील बिना सब फीका लागे, तजो पराई नार जी ॥

शील शिरोमणी रतन जगत में, सो पहरो नरनार जी ॥५॥



## त्यागो रे भाई यह मान बड़ा



तर्ज : इतनी शक्ति हमें देना दाता

त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बड़ा दुखदाई ॥टेक ॥

है कितने दिन का जीना, जो करते मान प्रवीना ।  
तुम्हीं बतलाओ रे भाई, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बड़ा दुखदाई ॥१॥

यह तन धन यौवन सारा, है इन्द्र धनुष आकारा ।  
न विनसन लागे वार, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बड़ा दुखदाई ॥२॥

कुल जाति रूप मद ज्ञानं, धन बल मद तप प्रभुतानं ।  
आठ मद यही निवार, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बड़ा दुखदाई ॥३॥

यह मान नरक का दाता, आत्म का रूप भुलाता ।

कीर्ति का करै संहार, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बडा दुखदाई ॥४॥

रावण से भूपति भारी, तिन भोगी विपति अपारी ।  
लिया नरकों अवतार, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बडा दुखदाई ॥५॥

इसलिये मान परिहारो अरु मार्दव धर्म सम्हारो ।  
'प्रेम' यह करत पुकार, यह मान बड़ा दुखदाई ॥  
त्यागो त्यागो रे भाई, यह मान बडा दुखदाई ॥६॥



## धर्म मार्दव को सब मिल



तर्ज : ऐसे मुनिवर देखे वन में

धर्म मार्दव को सब मिल निभाना,  
धर्म का रूप जग को दिखाना ॥टेक ॥

मान मानव का गुण बन गया है,  
जब कि अवगुण ही उसको कहा है ।  
अवगुणों को हृदय से हटाना,

धर्म का रूप जग को दिखाना ॥  
धर्म मार्दव को सब मिल निभाना ॥१॥

इस अहं ने ही सबको ठगा है,  
इन्द्रिय विषयों में ही मन लगा है ।  
सोच अब मन को विनयी बनाना,  
धर्म का रूप जग को दिखाना ॥  
धर्म मार्दव को सब मिल निभाना ॥२॥

ज्ञानियों की विनय करना सीखो,  
संयमी की विनय करना सीखो,  
संयमी बनके संयम निभाना,  
धर्म का रूप जग को दिखाना ॥  
धर्म मार्दव को सब मिल निभाना ॥३॥

फल सहित वृक्ष झुकता सदा है,  
ऐसे ही गुण सहित मन कहा है।  
मन का उपवन गुणों से सजाना,  
धर्म का रूप जग को दिखाना ॥  
धर्म मार्दव को सब मिल निभाना ॥४॥

विनय विद्या प्रदाता कही है,

ऋद्धि सिद्धी की दाता वही है।  
'चन्दनामति' हृदय मृदु बनाना,  
धर्म का रूप जग को दिखाना  
धर्म मार्दव को सब मिल निभाना ॥५॥



## मत कर तू



मत कर तू अभिमान रे भाई, झूठी तेरी शान ॥टेक॥

तेरे जैसे लाखों आये, लाखों इस माटी ने खाये,  
रहा न नाम निशान, रे भाई ॥

मत कर तू अभिमान, झूठी तेरी शान ॥१॥

माया का अंधकार निराला, बाहर उजला अन्दर काला,  
मूरख इसको जान, रे भाई ॥

मत कर तू अभिमान, झूठी तेरी शान ॥२॥

झूठी माया झूठी काया, वही तिरा जिन प्रभु गुण गाया,  
जपले वीर भगवान, रे भाई ॥

मत कर तू अभिमान, झूठी तेरी शान ॥३॥

तेरे पल्ले हीरे मोती, मेरे मन मन्दिर में ज्योति,  
कौन हुआ धनवान, रे भाई ॥  
मत कर तू अभिमान, झूठी तेरी शान ॥४॥

मुश्किल से यह नर तन पाया, जैन धर्म का शरणा पाया,  
करले निज कल्याण, रे भाई ॥  
मत कर तू अभिमान, झूठी तेरी शान ॥५॥



## रे भाई मोह महा दुखदाता



../../11\_पं-द्यानतराय-कृत/main/-महा-दुखदाता.txt



## जैनी धारियोजी



जैनी धारियोजी, उत्तम शौच सदा मन भाया ।  
दुखदाई लालच दुख देता, सुनलो उसका हाल ॥टेक ॥

सच्चे मन से लोभ त्याग दो, ये जी का जंजाल ।

कौन कहत है लोभ बिना तुम, होवोगे कंगाल ॥  
जैनी धारियोजी, उत्तम शौच सदा मन भाया ॥१॥

निर्लोभी बनने की शिक्षा, प्रभु से ले लो आज ।  
उत्तम शौच की जाप जप लो, मुक्ति का ये साज ।  
जैनी धारियोजी, उत्तम शौच सदा मन भाया ॥२॥

राग-द्वेष मन में नहीं लाना, ये है काला साँप ।  
निज स्वरूप पहिचान लो प्यारे, फिर देखो तुम आप ।  
जैनी धारियोजी, उत्तम शौच सदा मन भाया ॥३॥

हृदय में संतोष धरोगे, निश्चय बेड़ा पार ।  
'विद्या' पर्व के उत्तम दिन में, कर अपना उद्धार ॥  
जैनी धारियोजी, उत्तम शौच सदा मन भाया ॥४॥



## इस जग में थोड़े दिन

इस जग में थोड़े दिन की जिन्दगानी है ।  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥टेक ॥



नहिं सत्य व्रत सम, जग में वरत बखाना  
नहि झूठ पाप सम, जग में पाप महाना ।  
तज मिष्ट सुधारस, पियत क्षार पानी हैं ॥  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥१॥

जो पगे स्वार्थ में, झूठ वचन बतलाते  
कोई नहि उन पर, निज विश्वास रमाते ।  
सच बात कहें पर, झूठी श्रद्धानी हैं ॥  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥२॥

जो सत्यामृत का पान, सदा करते हैं  
वे सब प्रकार के सुख, अनुभव करते हैं ।  
सत्यार्थ पुरुष की, कीरति फहिरानी है ॥  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥३॥

ज्यों पावक का कन, सघन बनी दहता है।  
त्यों थोड़ा झूठ भी, प्राणों को हरता है ।  
इसलिये झूठ का, करें त्याग ज्ञानी हैं ॥  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥४॥

इस हेतु सत्य के भक्त, बनो नर नारी  
है सत्य धर्म अति, पर्म शर्म दातारी ।

कहें 'प्रेम' सिन्धु, सत धर्म मुक्ति दानी है ॥  
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ॥५॥



## ओ जी थे झूठ



ओ जी थे झूठ वचन मत बोलो,  
ओ जी थे साँच जवाहर खोलो।

ओ जी थे झूठ झूठ सम जानो,  
कोई आगम वचन प्रमाणो जी ॥ओ जी...१॥

ओ जी थे नरका में जब जावो,  
कोई नाना त्रास तो पावो जी ॥ओ जी...२॥

ओ जी कोई चौरासी में भ्रमयो,  
कोई नरतन पाय अमोलोजी ॥ओ जी...३॥

ओ जी थे हँसी ठिठोली नही करज्यो,  
कोई मिथ्या वचन न बकियो जी ॥ओ जी...४॥

ओजी थे हिंसा वचन मत कहिज्यो,  
कोई मरम भेद नहीं कहिये जी ॥ओ जी...५॥

ओ जी थे भरम वचन मत पालो,  
कोई परिग्रह संख्या रखियो जी ॥ओ जी...६॥

ओ जी थे अतिचार मत करना,  
कोई नियम पाल भव तरना जी ॥ओ जी...७॥



## जिया तोहे बार बार



जिया तोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ।  
झूठ कभी मत बोल तू साँच जवाहर खोल ॥टेक॥

जग में से परतीत उठत है लाभ कछु नहिं होय ।  
लाभ कछु नहीं होय चतुर अब सत्य सदा शिव तोल ॥  
जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥१॥

वसुराजा की तरफ गौर कर यही हाल बस होय ।  
यही हाल बस होय देख अब आंख जरा तू खोल ॥

जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥२॥

सत्यघोष सम झूठ बोलकर पकड़ करम को रोय ।

पकड़ करम को रोय मूढ़ कर मत रख दिल में मोल ॥

जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥३॥

आतम हित कुछ सोच बावरे पागल मत तू होय ।

पागल मत तू होय भूलकर आफत मत तू होय ॥

जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥४॥

झूठ बोलकर औरे न ठगनों कहा ठगी से होय ।

कहां ठगी से होय करम नर शुभ कारज कर धोय ॥

जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥५॥

तू 'कुमरेश' समझ अब भी जा झूठ कहें नहीं सोय ।

झूठ कहे ना कोई मिले नहीं नरभव यो अनमोल ॥

जिया टोहे बार-बार समझायो समझरे झूठ कभी मत बोल ॥६॥





## उठे सब के कदम

उठे सबके कदम, देखो रम-पम-पम,  
णमोंकार मंत्र गाया करो,  
कभी खुशी कभी गम, तर रम-पम-पम,  
जिन मंदिर जाया करो ॥

मेरे प्यारे प्यारे भैया, मेरे अच्छे अच्छे भैया,  
जरा मंदिर आया करो,  
कभी पूजा कभी भक्ति, कभी भक्ति कभी पूजा,  
सदा द्रव्य चढ़ाया करो ॥

मेरी प्यारी प्यारी दीदी, मेरी अच्छी अच्छी दीदी,  
जरा पाठशाला जाया करो,  
भक्तामर गाना, मेरी भावना गाना,  
कभी दोनों ही गाया करो ।

मेरे प्यारे प्यारे अंकल, मेरी अच्छी अच्छी आंटी,  
जरा तीरथ जाया करो,

कभी मांगी कभी तुंगी, कभी, तुंगी कभी मांगी,  
कभी दोनों कराया करो ॥

सम्मेद शिखर जी की टोकों से बीस तीर्थकर निर्वाणी,  
पार्श्व प्रभू की पूजा अर्चना करले रे जिन-ज्ञानी  
चंपापुर, पावापुर, राजगिरी, कुंडलपुर भी जाया करो  
कभी तीरथ कभी अक्षर कभी अक्षर कभी तीरथ  
कभी दोनों ही ध्याया करो ॥



## चाहे अंधियारा हो या



चाहे अंधियारा हो, या दूर किनारा हो,  
आवाज हमें देना, हम दौड़े-दौड़े आएंगे ॥१॥

चाहे गरमी सरदी हो, या बिजली चमकती हो,  
आवाज हमें देना, हम दौड़े-दौड़े आएंगे ॥२॥

हम मंदिर जाएंगे, हम पूजा रचाएंगे,  
जिनवाणी सुनने को, हम दौड़े-दौड़े आएंगे ॥३॥

हम शिविर लगाएंगे, अज्ञान नशा एंगे,  
जिनवाणी पढ़ने को, हम दौड़े-दौड़े आएंगे ॥४॥

हम मुनि बन जाएंगे, निज ध्यान लगाएंगे,  
आवाज नहीं देना, हम कभी नहीं आएंगे ॥५॥

हम मुक्ति पाएंगे, हम सिद्ध बन जाएंगे,  
आवाज नहीं देना, हम कभी नहीं आएंगे ॥६॥



## चौबीस तीर्थकर नाम चिह्न



श्री [[वृषभनाथ]] का कहता बैल, छोड़ो चार गति की जेल ।  
[[अजितनाथ]] का कहता हाथी, जग में नहीं है कोई साथी ।  
[[संभवनाथ]] का कहता घोड़ा, जीवन है अपना ये थोड़ा ।  
[[अभिनंदन]] का कहता बंदर, कितनी कषाय भरी है अंदर ।  
[[सुमतिनाथ]] का कहता चक्रवा, धर्म का है जग में रुतवा ।  
[[पद्मप्रभ]] का लाल कमल, कभी किसी से करो ना छल ।  
श्री [[सुपार्श्वनाथ]] का कहता साथिया, काटो अब तुम कर्म घातिया ।  
[[चन्द्रप्रभ]] का कहता चंद्रमा, सच्ची है जिनवाणी माता ।  
[[पुष्पदंत]] का कहता मगर, मोक्षमहल की चलो डगर ।

[[शीतलनाथ]] का कहता कल्पवृक्ष, धर्म मार्ग में हो जा दक्ष ।

[[श्रेयांशनाथ]] का कहता गेंडा, कभी चलो न रास्ता टेडा ।

[[वासुपूज्य]] का कहता भैंसा, जैसी करनी फल हो वैसा ।

[[विमलनाथ]] का कहता सूकर, बुरे काम तू कभी ना कर ।

[[अनंतनाथ]] का कहता सेही, बड़े पुण्य से मिली ये देही ।

[[धर्मनाथ]] का कहता वज्रदण्ड, कभी ना करना कोई घमंड ।

[[शांतिनाथ]] का कहता हिरण, सत्य धर्म की रहो शरण ।

[[कुंथुनाथ]] का कहता बकरा, मोक्षमहाल का पथ है सकरा ।

[[अरनाथ]] की कहती मीन, रत्न कमा लो अब तीन ।

[[मल्लिनाथ]] का कहता कलशा, बनाओ निर्मल मन को जल सा ।

[[मुनिसुव्रत]] का कहता कछुआ, धर्म से जीवन सफल हुआ ।

[[नमिनाथ]] का कहता कमल, शुभ करनी का उत्तम फल ।

[[नेमिनाथ]] का कहता शंख, व्रती संयमी सम रहे निशंक ।

[[पारसनाथ]] का कहता सर्प, मिटाओ मन से सारे दर्प ।

[[महावीर]] का कहता शेर, चलो मोक्ष में करो ना देर ।



## छोटा सा मंदिर

छोटा सा मंदिर बनायेंगे, वीर गुण आयेंगे।  
वीर गुण गायेंगे, महावीर गुण गायेंगे।



कंधों पे लेके चांदी की पालकी, प्रभु जी का विहार करायेंगे।

हाथों में लेकर सोने के कलशा, प्रभुजी का न्हवन करायेंगे।

हाथों में लेकर द्रव्य की थाली, पूजन विधान रचायेंगे।

हाथों में लेकर ताल-मजीरा, प्रभुजी की भक्ति रचायेंगे।

हाथों में लेकर श्री जिनवाणी, पढेंगे और सबको पढ़ायेंगे।

श्रद्धा में लेकर वस्तुस्वरूप, आतम का अनुभव करायेंगे।

चारित्र में लेकर शुद्धोपयोग, मुक्तिपुरी को जायेंगे।



## जगमग आरती कीजे आदीश्वर



जगमग जगमग आरती कीजै, आदिश्वर भगवान की ।  
प्रथम देव अवतारी प्यारे, तीर्थकर गुणवान की ॥टेक ॥

अवधपुरी में जन्मे स्वामी, राजकुंवर वो प्यारे थे,  
मरु माता बलिहार हुई, जगती के तुम उजियारे थे,  
द्वार द्वार बजी बधाई, जय हो दयानिधान की ॥१॥

बड़े हुए तुम राजा बन गये, अवधपुरी हरषाई थी,  
भरत बाहुबली सुत मतवारे मंगल बेला आई थी,  
करें सभी मिल जय जयकारे, भारत पूत महान की ॥२॥

नश्वरता को देख प्रभुजी, तुमने दीक्षा धारी थी,  
देख तपस्या नाथ तुम्हारी, यह धरती बलिहारी थी ।  
प्रथम देव तीर्थकर की जय, महाबली बलवान की ॥३॥

बारापाटी में तुम प्रकटे, चादंखेड़ी मन भाई है,  
जगह जगह के आवे यात्री, चरणन शीश झुकाई है ।  
फैल रही जगती में 'नमजी', महिमा उसके ध्यान की ॥४॥



## जिनमंदिर आना सभी



जिनमंदिर जिनमंदिर आना सभी, आना सभी,  
घर छोड़कर, मोह छोड़कर ॥  
जिनमंदिर मेरे भाई रोज है आना,  
इसे याद रखना कहीं भूल न जाना ॥टेक ॥

चार कषाएं तुमने पाली, पाप किया, पाप किया,  
नरभव अपना तो यों ही बरबाद किया  
जैनी होकर जिनमंदिर को छोड़ दिया  
दुनिया के कामों में समय गुजार दिया,  
जिनमंदिर में भाई रोज है आना,  
इसे याद रखना कहीं भूल न जाना ॥जिन...१॥

जैन धर्म हमको ये सिखलाता है,  
वस्तु स्वरूप स्वतंत्र सबको समझाता है,  
जीव मात्र भगवान है ये सिखलाता है,  
करो आत्म कल्याण समय अब जाता है,  
जिनमंदिर में भाई रोज है आना,  
इसे याद रखना कहीं भूल न जाना ॥जिन...२॥

क्यों जाता गिरनार, क्यों जाता काशी,  
घर में ही तू देख घट-घट का वासी,  
वीर प्रभु की दिव्य देशना में आया है,

अपना प्रभु तो अपने अन्तर में छाया है,  
जिनमंदिर में भाई रोज है आना,  
इसे याद रखना कहीं भूल न जाना ॥जिन...३॥



## ज्ञाता वृष्टा राही हूं



तर्ज़ : नन्हा मुन्ना राही

ज्ञाता वृष्टा राही हूं, अतुल सुखों का ग्राही हूं,  
बोलो मेरे संग, आनंदघन आनंदघन आनंदघन ॥

आत्मा में रमूंगा मैं क्षण क्षण में,  
चाहे मेरा ज्ञान जाने निज पर को,  
अपने को जाने बिना लूंगा नहीं दम,  
आगम की आगम बढ़ाऊंगा कदम,  
सुख में दुख में, दुख में सुख में, एक राह पर चल ॥

धूप हो या गर्मी बरसात हो जहां,  
अनुभव की धारा बहाऊंगा वहां,  
विषयों का फ़िर नहीं होगा जनम,

आगम की आगम बढ़ाऊंगा कदम,  
सुख में दुख में, दुख में सुख में, एक राह पर चल ॥

गुण अनंत का स्वामी हूं मैं मुझमें ये रतन,  
गणधर भी हार गये कर वर्णन,  
अनुपम और अद्भुत है मेरा ये चमन,  
आगम की आगम बढ़ाऊंगा कदम,  
सुख में दुख में, दुख में सुख में, एक राह पर चल ॥



## ज्ञानी का ध्यानी का सबका



तर्ज :- फूलों का तारों का

ज्ञानी का ध्यानी का सबका कहना है  
एक आत्मा ही सच्चा गहना है  
सोना... चांदी... पुद्गल की सेना है ॥टेक ॥

पर को अपना माने यही है तेरी भूल  
रम जा निज में चेतन खिलेंगे समकित फूल  
संयम की साधना... से ही रहना है ॥१ ज्ञानी...॥

आलू जो खाते हैं वो बन जाते भालू  
चाकलेट जो चूसते हैं वे बन जाते चालू  
नरकगति की वे यात्रा कर आते ॥२ ज्ञानी...॥

जीवन के दुःखों से जो डरते नहीं हैं  
ऐसे ज्ञानी बच्चे कभी रोते नहीं हैं  
सुख की है चाह तो दुःख भी सहना है ॥३ ज्ञानी...॥

सत्य अहिंसा सदाचारमय जीवन जिसका है,  
देव-शास्त्र गुरु की वाणी पर श्रद्धा रखता है,  
मोक्ष महल की सीढ़ी पर चढ़ जाता है ॥४ ज्ञानी...॥



## ठंडे ठंडे पानी से नहाना

ठंडे-ठंडे पानी से नहाना चाहिए ।  
रोज नहाके मंदिर को जाना चाहिए ।  
खाना दिन छिपने से,  
खाना दिन छिपने से पहले खाना चाहिए ॥ठंडे॥



माता पिता की सेवा, मिलता है उनको मेवा  
महावीर के दीवाने, सच्चाई क्या है जाने  
वीरा की मधुर वाणी, कितनों ने आज मार्नी (2)  
ओ... बुजुर्गों का दिल ना दुखाना चाहिए  
रोज नहाकर मंदिर को जाना चाहिए  
खाना दिन छिपने से (2), पहले खाना चाहिए (3) ॥१॥

पूजा की ले के थाली, करते है रोज खाली  
भक्ति भजन तो गाते, पर गिरते को ना उठाते  
जो बन पड़े करें हम, चिंता रहे न हो गम (2)  
करुणा दया को अपनाना चाहिए  
रोज नहाकर मंदिर को जाना चाहिए  
खाना दिन छिपने से (2), पहले खाना चाहिए (3) ॥२॥

भूखे को देवे रोटी, प्यासे को देवे पानी  
दो दिन की जिंदगानी, दौलत यही कमानी  
क्या ले के आए थे हम, क्या ले के जाएंगे हम (2)  
यही बात मन में बसाना चाहिए  
रोज नहाकर मंदिर को जाना चाहिए  
खाना दिन छिपने से (2), पहले खाना चाहिए (3) ॥३॥





तर्ज़ : तुझे सूरज कहूँ या चन्दा

# तुझे बेटा कहूँ कि वीरा

तुझे बेटा कहूँ कि वीरा, तू तो है जाननहारा ।  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥टेक॥

ये पंच परम परमेष्ठी, आदर्श पिता ये तेरे,  
हम तो झूठे स्वारथ के संयोगी साथी सारे ।  
तू नितप्रति उनको ध्याना, ज्ञायक नित सांझ सवेरे ॥  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥१॥

तू गुणों के पलने में झूले, विषयों से दूर ही रहना,  
नहीं गंध कषायों की भी, तेरे सहज स्वरूप में बेटा ।  
तू अरस अरूपी भगवन, भगवन् ही बनकर रहना ॥  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥२॥

मोह की अंधियारी बीते खुलते जब ज्ञान के नैना,  
तुम ज्ञायक को नित लखना, संयोग का मोह न करना ।  
तुम सहज हो जाननहारे बस जाननहार ही रहना ॥  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥३॥

तुम सहज हो ज्ञान स्वरूपी और सहज ही ज्ञाता रहना ।

फिर सहज प्रगट हो जाए वह रत्नत्रय का गहना ॥  
जाने कर्म बंधसे न्यारा, अरु गणधर को भी प्यारा ।  
तुम भी चैतन्य में बसना, महावीर बनेगा बेटा ॥  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥४॥

सहज को लखते-लखते, मुक्ति मार्ग प्रगट हो जाए,  
फिर काल अनंतो सुखमय, तुम मुक्ति पुरी में रहना ।  
तुम मुक्त स्वरूप को जानो, अपना स्वरूप पहचानो ॥  
मेरा वीर बनेगा बेटा, महावीर बनेगा बेटा ॥५॥



## नहे मुन्ने बच्चे तेरी



तर्ज़ : नहें मुन्ने बच्चे तेरी, ब्र. सुमतप्रकाश

नहे मुन्ने बच्चे तेरी दृष्टि में क्या है?  
दृष्टि में है ज्ञायक हमारा - २  
हमने मुक्ति को वश में किया है ।

कोई तुमको मुक्ति दे तो, लोगे के ना लोगे ?  
पाप के उदय में, बोलो क्या करोगे ?

कोई हमको मुक्ति दे तो हम तो नहीं लेंगे ।  
पाप के उदय में, ज्ञाता ही रहेंगे ।  
स्वाश्रय से ही मुक्ति होती, जिनवर ने कहा है ॥१॥

हाथ में तुम्हारे देखो, है कर्मों की रेखा,  
आत्मा के आश्रय से, मोक्ष कैसे होगा?  
कर्मों की रेखा से भी, भिन्न ज्ञान की रेखा,  
इस रेखा में चमकती देखी, है समकित की रेखा ।  
रत्नत्रय के पथ पर चलकर, मोक्ष मिलेगा ॥२॥



## पाठशाला जाना पढ़कर



तर्ज़ : लकड़ी की काठी...

पाठशाला जाना, पढ़कर आना,  
कोई जब पूछे जल्दी से बताना, क्या क्या करना पाप है ॥टेक॥

किसी जीव को मारना अथवा चिढ़ाना,  
गाली देना या दिलवाना या सुनकर के हँसना ,  
सुन लो बच्चों 2  
फल तोड़ना , फूल तोड़ना या फिर धक्का देना,

बिन देखे ही चलना फिरना या फिर कुछ खा लेना,  
बोलो बच्चों 2, हिंसा करना पाप है ॥१ पाठ...॥

बिन समझे जो कह दिया, हंसी मज़ाक में कह दिया,  
देखे जाने और वो बिन ही दोषारोपण कर दिया,  
सुन लो बच्चों 2

कठोर वचन हो सुनने में, बुरे वचन जो कह दिया,  
चुगली करना निंदा करना, बताओ ये कौन सा पाप है,  
बोलो बच्चों 2, झूँठ बोलना पाप है ॥२ पाठ...॥

पराये घर में जाना, उसकी वस्तु लेना,  
बिना पूछे हुए कोई वस्तु को उठाना,  
सुन लो बच्चों 2

फल फूल को तोड़ना, खाना या खिलाना,  
खेल खिलौना पेंसिल लेना, देना या दिलवाना,  
बोलो बच्चों 2, चोरी करना पाप है ॥३ पाठ...॥

गंदी गाली देना, टीवी पिक्चर देखना,  
गंदे लड़कों की संगत में, गंदी बातें सीखना,  
सुन लो बच्चों 2

माँ बहनों को बुरा देखना अथवा चिढ़ाना,  
जग की बुराइयों से मन को मैला करना,

बोलो बच्चों 2, यह कुशील है पाप है ॥४ पाठ...॥

घर में चाहे जितना हो संतोष नहीं होता मुझको,  
और लाऊं और लाऊं, कपड़ा गहना पैसा दो,  
सुन लो बच्चों 2

खेल खिलौने तरह तरह के, बस्ता पेंसिल चाहिए,  
यह भी ले लूँ वह भी ले लूँ, पाप का नाम बताइये,  
बोलो बच्चों 2, यह परिग्रह पाप है ॥५ पाठ...॥



## माँ मुझे सुना गुरुवर



तर्ज :- आ चल के तुझे

माँ मुझे सुना गुरुवर की कथा, कैसे संसार मिले  
बचपन कैसा, यौवन कैसा जिनवाणी के साथ चले  
कैसे करुणा प्यार पले

गुरुदेव की माता जागे, ललना को नित्य जगावे  
सोता न रहे जीवन भर, तू काम मनुज के आवे  
आलस तजकर जीवन पथपर करता उपकार चले ॥बचपन॥

मंदिर में घंटा बाजे, भगवन महावीर विराजे  
तू वीर बने जीवन-भर, करुणा और दया ना त्याजे  
मन साफ़ रहे, ये आभास रहे, झूठ कषाय टले ॥बचपन॥



## माँ सुनाओ मुझे वो कहानी

माँ सुनाओ मुझे वो कहानी  
जिससे हो जावे भव-दुख की हानि



जिसमें शुद्धात्मा की कथा हो  
मुनियों के आचरण की दशा हो  
संकटों में सहारा हमें दे  
ज्ञान-धारा का अमृत बहा दे  
जिससे मिल जाए आत्म सुहानी ॥माँ...१॥

जो विभावों की वृष्टि हटाए  
जो स्वभावों की वृष्टि कराए  
जिसमें शुद्धात्म का रस भरा हो  
जिसमें मुक्ति की पक्ती कथा हो

जिससे परिणति होवे वीतरागी ॥माँ...२॥

पाप भावों से हमें जो बचा दे  
आत्म-हिट की विशुद्धि जगा दे  
ऐसी लॉरी हमें तू सुना दे  
मोह की नींद जो भगा दे  
माँ दिखा वो चेतन निशानी ॥माँ...३॥



## ये जैन होने का परिचय



किसी का दिल दुखाना हमको महावीर ने न सिखलाया  
करे सेवा जो औरों की वही है जैन कहलाया  
दुश्मनों को भी क्षमा कर देते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं  
हम प्यार से हर बात सबसे कहते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं  
हम वीर के चरणों में हरदम रहते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं

हमें नफरत नहीं आती दिलों में प्यार रखते हैं

जहां भी काम करते हैं नीयत साफ रखते हैं  
सबको हम अपना बना ही लेते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं  
हम प्यार से हर बात सबसे कहते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं  
हम वीर के चरणों में हरदम रहते हैं  
ये जैन होने का परिचय देते हैं



## रेल चली भई रेल चली



रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ।  
अजब निराली रेल चली छुक-छुक करती रेल चली ॥  
कभी आगे कभी पीछे कभी ऊपर कभी नीचे ।  
दौड़ रही है गली गली ...रेल चली ॥

ये गाड़ी है बड़ी निराली बड़ी तेज रफ्तार है ।  
नाम है जीवन एक्सप्रेस जिसमें दुनिया असवार है ।  
तरह तरह के डिब्बे जिसमें आगे पीछे खड़े हुए ॥  
सबका नाम देह अर तन है इक टूजे से जुड़े हुए ।  
आयु के इंजन से सांस के ईंधन से, ये दौड़ रही है गली गली ।

रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ॥१॥

सुख अर दुख की दो पटरी है जिस पर गाड़ी भाग रही ।

एक सवारी नाम आत्मा इक डिब्बे से झांक रही ॥

पहला स्टेशन बचपन है, नाम है सुंदर प्यारा ।

खेल खिलौने जहां बिक रहे अजब तमासा न्यारा ॥

देखे खेल खिलौने रे लगा मुसाफिर रोने रे ।

इस रोने धोने में गाड़ी तेजी से फिर सटक चली ।

रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ॥२॥

अगला स्टेशन जो आया उसका नाम जवानी ।

प्यास लगी पैसेंजर उतरा नीचे पीने पानी ॥

एक अनोखा और यात्री प्लेटफार्म पर आया ।

उसको भी अपने डिब्बे में फिर उसने बिठलाया ॥

साथी में ऐसा खोया खेल खिलौने भूल गया ।

इस जोड़े को लेके गाड़ी धीरे-धीरे सरक चली ।

रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ॥३॥

आगे को जरा और चली तो डिब्बे में एक शोर हआ ।

इक नन्हा सा और यात्री दोनों के संग और चढ़ा ।

तभी तीसरे स्टेशन का सिग्नल इन्हें नजर आया ।

नाम बुढ़ापा है इसका कुछ उजड़ा उजड़ा सा पाया ॥

गति ट्रेन की मंद हुई खिड़की सारी बंद हुई ।  
असमंजस में पड़ा मुसाफिर फिर भी गाड़ी सरक चली ।  
रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ॥४॥

एक बड़ा जंक्शन आया तो यात्री ने बाहर झाँका ।  
क्या देखा सब सुन लो भाई, था शमशान लिखा पाया ॥  
पहला यात्री बोला मुझको अब तो यहीं उतरना है ।  
ये वो स्टेशन है जहाँ गाड़ी मुझे बदलना है ॥  
साथी रोएँ खड़े-खड़े कौशिक मिस्टर उतर पड़े ।  
तन पिंजड़े को छोड़ आत्मा दूजी गाड़ी बैठ चली ।  
रेल चली भई रेल चली दो पहियों की रेल चली ॥५॥



## वंदे शासन

वंदे शासन



## वर्धमान बोलो भैया बोलो



वर्धमान बोलो भैया, बोलो वर्धमान,  
हृदय के पट खोलो, ले लो प्रभु नाम ॥टेक॥

रागी नहीं द्वेषी नहीं मेरो भगवान्,  
वीतरागी है प्रभु मेरो वर्धमान ॥१॥

काला नहीं गोरा नहीं, मेरा वर्धमान,  
वर्ण रहित है मेरो वर्धमान ॥२॥

कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं मेरो वर्धमान,  
ज्ञान स्वरूपी है मेरो वर्धमान ॥३॥

क्रोधी नहीं, लोभी नहीं, मेरो वर्धमान,  
शांत स्वरूपी है मेरो वर्धमान ॥४॥



सारे जहां में अनुपम



सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे  
हम भक्त-गण हैं उनके, भगवान ये हमारे ॥टेक॥

कल्याण करने वाले, शंकर भी बस यही हैं ।  
कैवल्य बोध जिसका, ये बुद्ध है हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥१॥

पुरुषार्थ प्रगट करता कहती जिसे पुरुषोत्तम  
जो मुक्ति का विधाता, ब्रह्मा यही हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥२॥

त्रैलोक्य के जो स्वामी, फिर भी न मोह ममता  
जगत के जो सहारे, जगदीश ये हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥३॥

नहीं राग-द्वेष कोई, निर्ग्रथ वीतरागी ।  
सर्वज्ञ हितोपदेशी, जिनराज हैं हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥४॥

किस नाम से पुकारूँ, कोई बनें न उपमा ।

कर्मों को जिसने जीता, महावीर ये हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥५॥

चेतन निजात्म ज्योति, आराधना से जागे ।  
परमात्मा है पावन, जिनदेव ये हमारे ।  
सारे जहां में अनुपम, जिनराज हैं हमारे ॥६॥



## सुबह उठे मम्मी से बोले

सुबह उठे मम्मी से बोले हम  
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र



पापा से भी सुबह बोले हम  
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र

दादा से दादी से बोले हम  
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र

दीदी से भैया से बोले हम  
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र

चांवल ले मंदिर में आये  
पंडित जी को देखकर बोले हम  
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र

पुस्तक ले पाठशाला आये  
दीदीजी को देखकर बोले  
हम जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र



## सूरत प्यारी प्यारी है



तर्ज़:—नन्हा-मुन्ना राही हूँ

सूरत प्यारी-प्यारी है, कितनी न्यारी-न्यारी है,  
मेरे स्वामी तेरी जय हो, जय हो, जय हो ॥टेक ॥

तेरी भक्ति करूँगा मैं नित प्रतिपल,  
चरणों में तेरे ही नाथ रहूँगा,  
तेरे गुणों को मैं याद करूँगा, बोलो जय-३ सब ॥सूरत...१॥

तेरे मुखड़े पर मैं वारी जाऊँगा,  
तेरी महिमा मैं नित गाऊँगा,  
तेरे सहारे मैं भव तरुंगा,  
तेरे गुणों को मैं याद करूँगा, बोलो जय-३ सब, ॥सूरत...२॥

क्रोध, मान, माया से दूर रहूँगा,  
अपने कर्मों को मैं चूर करूँगा,  
जीवन में अपने मैं ज्योति भरूँगा,  
तेरे गुणों को मैं याद करूँगा, बोलो जय-३ सब, ॥सूरत...३॥

अपने भक्त की आप पीर हर लो,  
तू ज्ञानी मुझ में कुछ ज्ञान भर दो,  
नैन प्रभु भक्ति का पान करूँगा,  
तेरे गुणों को मैं याद करूँगा, बोलो जय-३ सब, ॥सूरत...४॥



## हम होंगे ज्ञानवान एक दिन



तर्ज :- हम होंगे कामयाब

हम होंगे ज्ञानवान-३ एक दिन,

हो हो मन में विश्वास, पूरा है विश्वास,  
हम होंगे ज्ञानवान एक दिन ॥टेक ॥

हम बनेंगे वीतराग-३ एक दिन,  
हो हो मन में है विश्वास,  
पूरा है विश्वास, हम बनेंगे वीतराग एक दिन ॥१॥

नहीं परद्रव्यों के साथ, लेके स्वद्रव्य का हाथ,  
लेके स्वद्रव्य का हाथ एक दिन,  
हो हो मन में है विश्वास,  
पूरा है विश्वास, हम बनेंगे वीतराग एक दिन ॥२॥

करने आतम का कल्याण-३ एक दिन,  
हो हो मन में है विश्वास,  
पूरा है विश्वास, हम करेंगे कल्याण एक दिन ॥३॥

हम धरेंगे आतम ध्यान-३ एक दिन,  
हो हो मन में है विश्वास,  
पूरा है है विश्वास, हम धरेंगे आतम ध्यान एक दिन ॥४॥



# मारवाड़ी भजन



## कठिन नर तन है पायो



तर्ज : भँवर बागा में आजो जी - राजस्थानी

कठिन नर तन है पायो जी,  
ओ तो चिंतामणि रतन छै, जो हाथ में आयोजी,  
कठिन नर तन है पायोजी ॥टेक ॥

उदय शुभ करम रो आयोजी, (2)  
जद श्रावक कुल जिनवाणी समागम पायोजी ॥कठिन...१॥

करम नरका अटकायो जी, (2)  
कोई पङ्घा निगोदयां माई, जद नरभव पायोजी ॥कठिन...२॥

करम म्हाकै लारै ही चाले जी, (2)  
कोई मोह री मदिरा पावै और जग भटकावै जी ॥कठिन...३॥

विषय संग मरण करावे जी, (2)  
कोई आपाने विसरावै, बहु नाच नचावे जी ॥कठिन...४॥

सीख गुरुवर उर धरल्यो जी, (2)  
म्हाने हेलो देर जगावे, आतम हित करल्योजी ॥कठिन...५॥

देव जिनवाणी ध्यावोजी, (2)  
गुरु चरण में चित ल्यावो, मन शुद्ध बनावो जी ॥कठिन...६॥

रत्नत्रय अंग सजाल्योजी, (2)  
प्रभु करम बंध कटजासी, शिव महलां जास्योजी ॥कठिन...७॥



## गलती आपाँ री न जाणी

( तर्ज : धरती धोरा री - राजस्थानी )

जगरा देव अनन्ता मनाया,  
जाणँ कुण कुण रा गुण गाया,  
पण नही वीतराग ने ध्याया,  
गलती आपाँ री न जाणी आपाँ री ॥



रागी द्वेषी देव मनाया,  
जाणै कुण-कुण रा जस गाया,  
पण नहीं वीतराग ने ध्याया,  
गलती आपाँ री, कि जाणी आपाँ री ॥१॥

जबलौ पर में आपो मान्यो,  
तब लग आपा पर नहीं जान्यो,  
आतम नहि निज माँही आण्यो,  
महिमा आपाँ री, कि जाणी आपाँ री ॥२॥

अब मैं जिनवर शरण आयो,  
जिन दरसन पा मन हरषायो,  
'तारा' आतम रस सरसायो,  
गठरी पापाँ री, कि उतरी आपाँ री ॥३॥



## छवि नयन पियारी जी



तर्ज़ : राग - गोपीचंद

छवि नयन पियारी जी,  
हाँ जी भला छवि नयन पियारी जी,

देखत मन मोहै मूरत आपकी, छवि नयन पियारी जी ।

श्याम वरण और सुन्दर मूरत,  
सिंहासन के माँहि म्हारा प्रभूजी, सिंहासन के माँहि,  
सिंहासन के माँहिक मूरत सोहनी,  
निरत करत है शची, सभा मन मोहनी  
छवि नयन पियारी जी ॥१॥

ठाडो इन्दर नृत्य करत है,  
देख रहे नर नार म्हारा प्रभूजी देख रहे नरनार,  
देख रहे नर नार के मन में चाह है,  
घुंघरू ताल वृंदग अरु बीन बजाय है  
छवि नयन पियारी जी ॥२॥

ठाडो 'सेवक' अरज करत है,  
सुनो गरीब नवाज म्हारा प्रभूजी, सुनो गरीब नवाज,  
सुनो गरीब नवाज के थ्यावस दीजिये,  
आन पड्यो हूँ दुख दूर कर दीजिये  
छवि नयन पियारी जी,  
देखत मन मोहै मूरत आपकी,  
छवि नयन पियारी जी ॥३॥



# निर्मोही नेमी जाओ ना गिरनार



तर्जः निर्मोही ढोला आणो है तो आ

निर्मोही नेमी ! जाओ ना गिरनार,  
काहे जाओ गिरनारी ॥टेक ॥

नवभव प्रीत बिसारी स्वामी, ये क्या चितधारी,  
थे काहे जाओ गिरनारी, थे काहे जाओ गिरनारी ॥

तोरण पर बन आये दुल्हा, गज पर हुये सवार,  
रत्न-जड़ित वस्त्राभूषण धर, अद्भुत रूप सँवार,  
निरख हरषे सब नर-नारी, चकित निरखे सब नर-नारी,  
थे काहे जाओ गिरनारी ॥१ निर्मोही... ॥

राजुल जोवे बाट आपरी, म्हळाँ आओ जी,  
मर जावैली राजुल थारी, मत बिसराओ जी,  
मैं तो जाऊँ बलिहारी, नेमी पे जाऊँ बलिहारी,  
थे काहे जाओ गिरनारी ॥२ निर्मोही... ॥

जो नहि आओ मुझे बुलालो, मैं आऊँगी लार,  
दीक्षा लेकर संयम धारूँ, वास करूँ गिरनार,  
यही तारा मन में धारी,

काहे न चालो गिरनारी,  
निर्मोही नेमी चालो ना गिरनार  
साथ में चालो गिरनारी ॥३॥



## लगी म्हारा नैना री डोरी



राग - कल्याण

लगी म्हारा नैना री डोरी हो जिन सैयाँ,  
लगी जी म्हारा नैना री डोरी, ओ४५५ नैना री डोरी,  
लगी जी म्हारा नैना री नैना री डोरी जी ॥

सोहनी सूरत मोहनी मूरत, (2)  
जब देखूँ तब तोरी, तोरी जी, भला जी भला  
ओ४५५ जब देखूँ तब तोरी, तोरी जी... ॥लगी...१॥

तुम गुण महिमा कह न सकत हूँ, (2)  
कह न सकत हूँ, रह न सकत हूँ, मोमे है बुध थोरी,  
ओ४५५ मोमे है बुध थोरी, थोरीजी ॥लगी...२॥

'चन्द्र खुशाल' दोउ कर जोड़े, (2)  
मेटो भव भव फेरी, फेरी जी,  
ओSS मेटो भव भव फेरी, फेरी जी ॥लगी...३॥



## हजूरिया ठाडो



हजूरिया ठाडो, हजूरिया ठाडो,  
हो जिन तोरी हजूरिया ठाडो,  
हजूरिया ठाडो, हजूरिया ठाडो ॥टेक ॥

प्रभूजी थारी सूरत पर वारी,  
कोटि रवि वारो, कोटि रवि वारो,  
हो जिन तोरी हजूरिया ठाडो ॥हजूरिया...१॥

प्रभू जी तारण विरद सुण्यो छै,  
विरद थारो गाढो, विरद थारो गाढो,  
हो जिन तोरी हजूरिया ठाडो ॥हजूरिया...२॥

प्रभूजी हितकर अरज करूँ हूँ,

करम म्हारो काटो, करम म्हारो काटो,  
हो जिन तोरी हजूरिया ठाडो ॥हजूरिया...३॥



## selected भजन



# श्री श्रुतस्कन्ध यन्त्र

णमो अरिहंताणं  
णमो सिद्धाणं  
णमो आइरियाणं  
णमो उवज्ञायाणं  
णमो लोए सव्वसाहूणं



अङ्गबाह्य के १४ भेद

१. सामायिक
२. चतुर्विशिष्टान्तस्त्र
३. बन्दना
४. प्रतिक्रियण
५. वैचारिक
६. कृतिकर्म
७. दशवेकालिक

अङ्गबाह्य श्रूत के अक्षर

८. उत्तराध्ययन
९. कल्पव्यापाद
१०. कल्पवक्त्य
११. महावक्त्य
१२. पृष्ठदारीक
१३. महाएष्टुरीक
१४. अष्टाविंशिका (विंशिद्वका)



१. परिकर्मणीय पदानि १,४१,०५,०००

१. चन्द्रप्रज्ञातौ पदानि ३६,०५,०००
२. सूर्योप्रज्ञातौ पदानि ५,०३,०००
३. जग्मव्याप्रज्ञातौ पदानि ३,२५,०००
४. द्वीपसागरप्रज्ञातौ पदानि ५२,३६,०००
५. व्याख्याप्रज्ञातौ पदानि ८४,३६,०००

४. पूर्वांगे पदानि १५,५०,००,००५

३. प्रथमातुर्योगे पदानि ५,०००
२. सूत्रे पदानि ८८,००,०००
१२. द्वितीयाद्वाहे पदानि १,०१,६८,५६,००५
११. विषाक्तमुत्राहे पदानि १,८४,००,०००
१०. प्रश्नव्याकरणाहे पदानि १३,१६,०००

५. चूलिकात्यां पदानि १०,४९,४६,०००

१. जलातात्यां पदानि २,०९,८९,२००
२. स्थलातात्यां पदानि २,०९,८९,२००
३. मायागतात्यां पदानि २,०९,८९,२००
४. आकाशगतात्यां पदानि २,०९,८९,२००
५. रूपगतात्यां पदानि २,०९,८९,२००



इन्द्रियाणि-५, मनः-१, अर्थावग्रहादीनि-४, बहु-बहुविद्यादीनि-१२, व्यंजनावग्रहादीनि-४, मतिज्ञानानि-३३६

एकादशाहे पदानि ४,१५,०२,०००

द्वादशाहे पदानि १,१२,६३,५८,००५

मध्यमपदवर्णश्लोकसंख्या ५१,०८,८४,६२१  $\frac{1}{2}$

प्रत्येकमध्यमपदाक्षरसंख्या १६,३४,८३,०७,८८८

सर्वश्रुताक्षरसंख्या १,८४,४६,७४,४०,७३,७०,९५,५१,६१५

पर्याय-पर्यायसमासादिज्ञानानि-२०, अङ्गप्रविष्टम्-१२, अङ्गबाह्यम्-१४